



नमः सिद्धेभ्यः

श्री पंचास्तिकायसंग्रह प्रवचन

(भाग - 2)

परमपूज्य भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ
पर अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
31 अक्षरशः मंगल प्रवचन (गाथा 27 से 62 तक)

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2077

वीर संवत
2548

ई. सन
2021

—: प्रकाशन :—

भगवत कुन्दकुन्दाचार्यदेव की साधनास्थली पौन्नूर हिल
में स्थापित जिनमन्दिर के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में
दिनांक 26 दिसम्बर से 31 दिसम्बर 2021

प्राप्ति स्थान :

— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
— श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820
Email - vitragva@vsnl.com

टाईप-सेटिंग : विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़

प्रकाशकीय

अहो उपकार जिनवर का, कुन्द का ध्वनि दिव्य का।
जिन कुन्द ध्वनिदाता अहो श्री गुरु कहान का ॥

परमपूज्य भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे महासमर्थ आचार्य भगवन्त द्वारा प्रणीत पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ जिनसिद्धान्त और जिनअध्यात्म का प्रवेश द्वारा है। इसमें जिनागम में प्रतिपादित द्रव्य-व्यवस्था और पदार्थ-व्यवस्था का संक्षिप्त में प्राथमिक परिचय प्रदान किया गया है।

उक्त दोनों व्यवस्थाओं की यथार्थ जानकारी बिना जैन सिद्धान्त और जैन अध्यात्म में प्रवेश पाना सम्भव नहीं है, इससे यह पंचास्तिकाय ग्रन्थ सर्व प्रथम स्वाध्याय करनेयोग्य शास्त्र है।

आचार्य जयसेनदेव के कथनानुसार इस शास्त्र की रचना शिवकुमार महाराज इत्यादि संक्षिप्त रुचिवाले शिष्यों को समझाने के लिये हुई है।

महाश्रमण तीर्थंकरदेव की वाणी दिव्यध्वनि का-प्रवचन का सार ही संक्षिप्त में इस शास्त्र में समायोजित किया गया है।

मूल शास्त्र की अन्तिम गाथा १७३ के अनुसार जिनप्रवचन के साररूप 'पंचास्तिकायसंग्रह' सूत्र मेरे द्वारा मार्ग की प्रभावना की हेतु से जिनप्रवचन की भक्ति से प्रेरित होकर कहा गया है।

इस शास्त्र के वाँचन-मनन से होनेवाले लाभ सम्बन्धी नोंध लेते हुए मूल ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि इस प्रकार जिनप्रवचन के सारभूत इस पंचास्तिकायसंग्रह को जानकर जो राग-द्वेष को छोड़ता है, वह दुःख से मुक्त हो जाता है (गाथा-१०३)।

प्रस्तुत पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ पर दो टीकायें जगतप्रसिद्ध हैं। आचार्य अमृतचन्द्रदेव द्वारा लिखी गयी 'समयव्याख्या' और आचार्य जयसेनदेव कृत 'तात्पर्यवृत्ति' नामक टीका।

आचार्य अमृतचन्द्रदेव के मतानुसार इस ग्रन्थ के स्पष्टरूप से दो खण्ड हैं, जिनका उल्लेख टीकाकार ने 'श्रुतस्कन्ध' नाम से किया है।

जबकि तात्पर्यवृत्तिकार आचार्य जयसेन ने इस ग्रन्थ को तीन महा अधिकारों में विभक्त किया है। आचार्य अमृतचन्द्रदेव द्वारा विभाजित प्रथम श्रुतस्कन्ध अनुसार ही आचार्य जयसेन द्वारा विभाजित प्रथम महा अधिकार है। अमृतचन्द्राचार्य के द्वितीय श्रुतस्कन्ध को जयसेनदेव ने दूसरे और तीसरे महा अधिकारों में विभाजित किया है। विशेष इतना ही कि अमृतचन्द्राचार्य जिसे 'मोक्षमार्ग प्रपंच चूलिका' कहते हैं, उसे ही जयसेनाचार्य तृतीय महाअधिकार कहकर पुकारते हैं।

श्री कुन्दकुन्ददेव की मूल रचना में प्रथम श्रुतस्कन्धरूप प्रथम अधिकार में सर्व प्रथम 26 गाथाओं मंगलाचरण और ग्रन्थ लेखन की प्रतिज्ञा उपरान्त षट्द्रव्य तथा पंचास्तिकाय के सामान्य व्याख्यानरूप पीठिका दी गयी है। तत्पश्चात् छह द्रव्य और पाँच अस्तिकाय द्रव्यों का विशेष व्याख्यान प्रारम्भ होता है। गाथा क्रमांक 27 से गाथा क्रमांक 73 तक की कुल 47 गाथाओं में जीवास्तिकाय का विशेष व्याख्यान किया गया है, जो अति महत्त्वपूर्ण ऐसा सर्वाधिक विस्तृत प्रकरण है। 47 गाथाओं में आत्मा के स्वरूप को जीवत्व, चेतयित्व, उपयोगत्व, प्रभुत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, देहप्रमाणत्व, अमूर्तत्व तथा कर्मसंयुक्तत्व इत्यादि विशेषणोंरूप से स्पष्ट किया गया है।

उपरोक्त सभी विशेषणों से विशिष्ट आत्मा को संसार तथा मुक्त दोनों अवस्थाओं पर घटित करके समझाया गया है।

सूक्ष्म अवलोकन करने पर ज्ञात होगा कि 28वीं गाथा के भावार्थ में जैन न्याय का अपूर्व और महत्त्वपूर्ण विषय अर्थात् कि 'सर्वज्ञसिद्धि' की मूलभूत सारगर्भित संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत करके उससे सम्बन्धित विशेष जिज्ञासा की अपूर्ति दूसरे न्याय शास्त्रों से करने सम्बन्धी अनुरोध किया गया है। पद्मराग मणि के दृष्टान्त से देहप्रमाण का विषय अत्यन्त स्पष्ट रीति से गाथा 33 में समझाया गया है, जो मूल टीका द्वारा समझने योग्य है।

तत्पश्चात् 40वीं गाथा और टीका में उपयोग की व्याख्या करके बाद की गाथा में ज्ञानोपयोग के भेदों के नाम और स्वरूप कथन किये गये हैं।

जीव के पाँच भावों की सुपरिचित मूल और मौलिक चर्चा गाथा 56 में प्रस्तुत की गयी है। पाँचों ही भावों के कर्तृत्व प्रकार की सूचना प्रदान करते हुए गाथा 58 में निमित्तमात्ररूप से द्रव्यकर्मी को औदयिकादि भावों का कर्तापना कहा है, तत्पश्चात् कर्म को जीवभाव का कर्तापना होने के सन्दर्भ में पूर्व पक्ष प्रस्तुत करके उसका सचोट समाधान गाथा 60 में प्रस्तुत किया गया है।

वास्तव में किसी भी द्रव्य के कारकों को किसी अन्य द्रव्य के कारकों की अपेक्षा नहीं होती, इस रहस्य को सिद्ध करने निश्चयनय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं अपने-अपने स्वरूप के कर्ता हैं, ऐसा समझाते हुए गाथा 62वीं प्रस्तुत की गयी है।

मूल गाथा इस प्रकार है—

कार्मण अणु निज कारकों से कर्म पर्यय परिणमं।

जीव भी निज कारकों से विभाव पर्यय परिणमं ॥६२॥

संक्षिप्त में 27 से 62 गाथा तक की कुल 36 गाथाओं में जीवास्तिकायरूप आत्मतत्त्व की आगम-अध्यात्मरूप चर्चा तात्विक तथा दार्शनिक शैली में प्रस्तुत हुई है, जिसमें जैन न्याय के कितने ही प्रमेय सहज ध्यान में आ जाते हैं, साथ ही जिनमत—सम्मत वस्तु व्यवस्था के प्रति सभान का तथा आत्मभावना दर्शन विशुद्धि को बल प्राप्त होता है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समयान्तर में पंचास्तिकाय ग्रन्थ पर व्याख्यान हुए हैं। यहाँ क्रमशः धारावाही हुए 88 प्रवचनों को चार भागों में प्रकाशित किये जाने की योजना है। उसमें से यह द्वितीय भाग आप सभी आत्मार्थी भव्यात्माओं के करकमल में प्रस्तुत है। जिसमें कुल 31 अक्षरशः प्रवचन हैं जो षट्द्रव्य पंचास्तिकाय अधिकार की गाथा 27 से 62 पर हुए हैं। विशेष उल्लेखनीय है कि गाथा 54 से 55 तक पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन सी.डी. में अनुपलब्ध होने से प्रवचन ग्रन्थ की पूर्णता हेतु इन गाथाओं के संकलित प्रवचन श्री सद्गुरुप्रवचनप्रसाद (हस्तलिखित दैनिक) से इस हिन्दी प्रकाशन में साभार लिये गये हैं।

इन सभी प्रवचनों को सी.डी. से कम्प्यूटराईज्ड (गुजराती भाषा में) करने का कार्य आत्मार्थी श्रीमती बीनाबेन चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा सम्पन्न किया गया है। जिन्हें सी.डी. से मिलान करने का कार्य आत्मार्थी भाईश्री डॉ. देवेन्द्रभाई दोशी, सुरेन्द्रनगर और स्व० चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है। तीन प्रवचन सन् 1969 के वर्ष में अनुपलब्ध होने से सन् 1963 के प्रवचनों से लिये गये हैं।

प्रस्तुत प्रवचनों का हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज को भी लाभ प्राप्त हो, इस उद्देश्य से इस प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राजस्थान) द्वारा किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का टाईपसेटिंग का कार्य श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ द्वारा सम्पन्न हुआ।

संस्था सभी सहयोगियों के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करती है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ vitragvani.com एवं [vitragvani app](http://vitragvani.app) पर भी उपलब्ध है।

सभी आत्मार्थी जीव इस प्रवचन ग्रन्थ का अध्ययन कर वस्तुस्वरूप के सम्यक् परिज्ञानपूर्वक निज आत्महित साधें इसी भावना के साथ....

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति।

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।



श्री सद्गुरुदेव-स्तुति



(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!



अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल

9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल

पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुर्ब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वी सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक

भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणामन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तों!
तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव
त्रिकाल जयवन्त वर्तों!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तों!!!



अनुक्रमणिका

प्रवचन	दिनांक	गाथा	पृष्ठ क्र.
३१	१५.१२.१९६९	२७-२८	००१
३२	१६.१२.१९६९	२८	०२४
३३	१७.१२.१९६९	२८-२९	०४२
३४	१८.१२.१९६९	२९-३३	०६५
३५	१९.१२.१९६९	३३-३५	०९२
३६	०३.०१.१९७०	३६	११४
३७	०४.०१.१९७०	३७	१३४
३८	०६.०१.१९७०	३७-३८	१५४
३९	०७.०१.१९७०	३८	१७४
४०	०८.०१.१९७०	३८-३९	१९१
४१	१८.०१.१९७०	४०	२१०
४२	१९.०१.१९७०	४१	२३०
४३	२०.०१.१९७०	४१	२५१
४४	२१.०१.१९७०	४१-४३	२६८
४५	२२.०१.१९७०	४३	२८८
४६	२३.०१.१९७०	४३-४४	३०६
४७	२४.०१.१९७०	४५-४६	३२६
४८	२५.०१.१९७०	४६	३४८
४९	२६.०१.१९७०	४६ से ४८	३६७
५०	२७.०१.१९७०	४८	३८८
५१	२८.०१.१९७०	४९-५०	४०६
५२	२९.०१.१९७०	५० से ५३	४२७
संकलित प्रवचन		५४-५५	४४९
५५	०१.०२.१९७०	५६	४५५
५६	०२.०२.१९७०	५७-५८	४७४
५७	०३.०२.१९७०	५८ से ६०	४९५
५८	०४.०२.१९७०	६१-६२	५१७
५९	०५.०२.१९७०	६२	५४०
६०	१०.०२.१९७०	६२	५५९
६१	११.०५.१९७०	६२	५७८
६२	१२.०५.१९७०	६२	५९७
६३	१३.०५.१९७०	६२ तथा १५४	६१०

ॐ
परमात्मने नमः

श्री पञ्चास्तिकायसंग्रह प्रवचन

भाग-२

प्रवचन नं. ३१, गाथा-२७-२८, मगसिर शुक्ल ७, सोमवार, दिनांक-१५-१२-१९६९

पञ्चास्तिकाय-२७ वीं गाथा। जीव का स्वरूप संसारदशावाले आत्मा का सोपाधि और निरुपाधिस्वरूप कहा है। कल प्रश्न था न भाई का, वांकानेर! यहाँ तो संसारी आत्मा में, अनादि का आत्मा संसार में मोक्ष तक कैसा होता है, उसकी बात है।

पहले तो ऐसा कहा न कि जीव, (संसारस्थित), आत्मा जीव है,... अन्वयार्थ में ऐसा है। और गाथा में-टीका में ऐसा है। जीव चेतनेवाला है, ऐसा पहले कहा। 'चेदा' और देखनेवाला है। वह जाननेवाला-देखनेवाला स्वरूप कहना, यह निश्चय है। और जाननेवाला-देखनेवाला सहित कहना, वह व्यवहार। भेद पड़ा न? भेद का व्यवहार या संयोग का व्यवहार, उसे व्यवहार कहते हैं। भेद और संयोग बिना की चीज़ को निश्चय कहते हैं। कहो, समझ में आया?

आत्मा चेतयिता। ऐसा उसका स्वरूप है कि चैतन्य ज्ञान-दर्शनस्वरूप ही है। यह निश्चय से अर्थात् यथार्थरूप से। उसका अन्तर ज्ञान, दर्शन आत्मा है—ऐसा निर्णय करना, वह प्रथम सम्यग्दर्शनरूपी धर्म है। समझ में आया? और चेतन चैतन्यगुणसहित है, ऐसा व्यवहार है, उसे जानना चाहिए। गुण-गुणी भेदरूप है, ऐसा उसे जानना। आदरना उसे त्रिकाली ज्ञायकभाव है वह। ऐसा इसका सार-तात्पर्य है। कहो, समझ में आया?

फिर कहा कि **आत्मा उपयोगस्वरूप है**। उपयोग वह चैतन्य, चेतन द्रव्य है, उसका चैतन्य लक्षण गुण है और उसका उपयोग वह चेतन के परिणाम पर्याय है। आहाहा! ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। इससे किसी भी प्रकार से, दूसरे प्रकार से, उल्टी रीति से माने तो वह जीव को नहीं मानता; इसलिए मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। समझ में आया ?

यह आत्मा चेतन है, उसका चैतन्य गुण है और उसके परिणाम जो हैं पर्याय, वह उपयोग है। वह चैतन्य अनुविधायी परिणामः, चेतन को अनुसरकर होनेवाला उपयोग, उस उपयोगस्वरूप है, यह निश्चय है। उपयोगवाला है, यह व्यवहार है। समझ में आया ? पश्चात् वह **प्रभु है**। प्रभु है। भगवान आत्मा वस्तु है, वह अपने भावकर्म जो पुण्य और पाप के विकल्प, उन भावकर्मों का आस्रव, उनके करने में वह समर्थ है। वह दूसरे के कारण यह पुण्य और पाप के विकल्प होते हैं, ऐसा नहीं है। इस अपराध को स्वयं करने में समर्थ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यह आस्रव भावकर्म अर्थात् पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रतादि के भाव—उसे आस्रव करने में प्रगट करने में समर्थ है। उसे रोकने में बन्ध समर्थ है। भगवान आत्मा अबन्ध स्वरूप होने पर भी अनादि से यह पुण्य और पाप के विकल्पों में अटकता है, ऐसा बन्धभाव करने में भी वह समर्थ है। समझ में आया ? समयसार की दृष्टि का विषय आत्मा लेने जाये तो यहाँ वह अभी मिलान नहीं खाये। भाई!

यहाँ तो आत्मा में विकारी, अविकारी परिणामवाला आत्मा है, यह सिद्ध करना है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन में, सच्ची दृष्टि में, धर्म की दृष्टि में धर्मी को तो अकेला ज्ञायकभाव पूर्ण अखण्ड अभेद वह आत्मा। परन्तु यहाँ तो उसका वास्तविक व्यवहार और भेदवाला या निमित्त का स्वरूप क्या है, यह भी साथ में बतलाते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं कि बन्ध करने में भी समर्थ है। और भावआस्रवों का संवर करने में भी समर्थ है। भगवान आत्मा है तो आनन्दकन्द, सुखकन्दस्वरूप प्रभु आत्मा है। परन्तु इसका उसे भान नहीं, इसलिए उसमें पुण्य और पाप के विकल्प भाव होते हैं, परन्तु उन्हें टालकर संवर करने में वह समर्थ है। संवर अर्थात् धर्म। धर्म, यह धर्म है, हौं! बाकी कहीं कोई क्रियाकाण्ड को ऐसे करे और, वैसे करे न। आँख बन्द करके बैठ जाये

तो कहीं धर्म हो, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। अभी वस्तु ही खबर नहीं कि क्या चीज़ है, और उसकी दशा में क्या होता है, वह दशा कैसी है, वह दशा टल सके ऐसी है या दशा कायम रह सके ऐसी है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि इस भावआस्रव का संवर करने, पुण्य और पाप के भाव जो विकल्प और विकार है, उसे रोकने में आत्मा समर्थ है; इसलिए वह प्रभु है। उसे निर्जरा करने में भी समर्थ है। शुभ-अशुभभाव को छोड़ने में, टालने में, अशुद्धता गलाने में वह समर्थ है। और मोक्ष, शुभाशुभपरिणाम की मुक्ति करने में वह समर्थ है। समझ में आया ? यह ईश्वर कहा। फिर कर्ता। कर्ता है न ? इसमें कर्ता के दो बोल लिये हैं। वास्तव में तो भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, वह शुद्ध आनन्द के परिणाम को करने शुद्ध निश्चय से समर्थ है। पर्याय—कार्य है न, कार्य। शुद्धभाव का कार्य करने में भी प्रभु आत्मा स्वयं समर्थ है। उसे किसी की अपेक्षा नहीं। ऐसे शुभ-अशुभभाव अशुद्ध निश्चय से। शुभ-अशुभभाव अशुद्ध है। निश्चय (अर्थात्) अपनी पर्याय में होते हैं, इसलिए निश्चय। अशुद्ध हैं परन्तु होते हैं पर्याय में, इसलिए निश्चय। अशुद्ध निश्चय से। पहले ऐसा कहा था, ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान वह अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप को, वीतरागभाव को, धर्मभाव को करे, वह समर्थ है। तो यह कैसे निश्चय कहा ? कि निश्चय स्व है और पवित्र है, इसलिए शुद्ध निश्चयनय से स्वकर्ता अपने परिणाम का है।

यहाँ तो यह जानपना करना पड़े। ऐसे का ऐसे अध्धर से पार नहीं पड़े ऐसा। ऊपर से मानो अपने कुछ समझ गये और यह हो गया, ऐसी यह चीज़ नहीं है। अनन्त काल से भटकता प्राणी, उसे अपनी जाति की खबर नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग परमात्मा केवलज्ञानी ने ऐसा आत्मा कहा, ऐसी आत्मा की जिसे खबर नहीं, वह मिथ्यादृष्टि चार गति में भटकता है और दुःखी है। तो कहते हैं कि कर्ता शुद्ध परिणाम का वास्तव में, क्योंकि निश्चय, वह स्वपरिणाम शुद्ध है। और शुद्ध है, स्व है इसलिए निश्चय और वीतरागी परिणाम का कर्ता, इसलिए शुद्ध है। राग-द्वेष के परिणाम का कर्ता, वह राग-द्वेष से अशुद्ध है। है स्व की पर्याय, इसलिए अशुद्ध निश्चय से उसका

कर्ता है। नय का ज्ञान करना पड़े। यहाँ निवृत्ति नहीं मिलती धन्धे के कारण। दो घड़ी, चार घड़ी आवे, उसमें कुछ पता है? ऐई फूलचन्दजी! इन्हीं निवृत्ति लेनी थी। वहाँ घुस गया वह लकड़ा। हैं? दो-तीन लाख कहीं फंस गये। अब इन्हें वापस लेने के लिये रुकना। उसका कमाने के लिये रुकना। अरे! अरे! मार डाला है न जगत को।

मुमुक्षु : किसने मारा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने। आहाहा! ऐसा मनुष्यदेह अनन्त काल में मिलता है। उसमें यदि यह आत्मा जैसा है, वैसा भगवान सर्वज्ञ कहते हैं, ऐसा यदि प्रतीति / श्रद्धा में नहीं लिया (तो) उसका परिभ्रमण टलनेवाला नहीं है। जाति में हुआ हो तो भी मरकर तिर्यच में जायेगा। आहाहा! ऐसी बात है, भाई। आहा!

कहते हैं, मोहादि कर्म जिसका निमित्त है ऐसे, ऐसे लिया है न इसमें तो? वह नहीं लिया। ऐसे भाव का कर्ता होने से जीव कर्ता है। विकार का जीव स्वयं कर्ता है। क्योंकि विकाररूप परिणमता है न! विकाररूप होता है, इसलिए कर्ता है। निमित्त है। समझ में आया? और (असद्भूत व्यवहारनय से) आत्मपरिणाम जिनका निमित्त है... वह नये कर्म बँधते हैं न? नये बँधते हैं उसमें आत्मा के विकारी परिणाम निमित्त हैं। इसलिए असद्भूतव्यवहारनय से कहने में आया है। वह उसका कर्ता है। कर्म का कर्ता जड़ का, हों! हाँ, अभी आज आया है, वह बड़ा आता है न एक १७९ गाथा का? शुद्धनय से भ्रष्ट हो तो कर्म बाँधे। परिणमावे, ऐसा आता है उसमें—टीका में। इसलिए उसने लिया था मोतीलाल ने। देखो यह। कर्म को जीव परिणमाता है, इसलिए निमित्त-नैमित्तिक व्यवहार है, ऐसा नहीं। ऐसा सिद्ध करते हैं न? आहा! अरे! अभी तो! तत्त्व को समझने में ही अभी वक्रता का पार नहीं होता। वह कब धर्म करे और कब उसका कल्याण हो। आहाहा!

कहते हैं कि पौद्गलिक कर्म में जीव के विकारी परिणाम निमित्त हैं। इसलिए वह पौद्गलिक कर्म का कर्ता असद्भूत झूठे नय से कहने में आता है। निश्चय से शुभाशुभ कर्म जिनका निमित्त है, ऐसे सुखदुःखपरिणामों का भोक्तृत्व होने से 'भोक्ता' है,... 'भोक्ता...' निश्चय अर्थात् वास्तव में। वास्तव में अर्थात् उसकी वर्तमान दशा में

सुख-दुःख की कल्पना होती है। जैसे में सुख है, विषय में सुख है। ऐसी कल्पना, हों! शरीर ठीक हो तो ठीक है, सुख है, निरोगी शरीर (हो) तो सुख है। आता है या नहीं? पहला सुख वह निरोगी काया। धूल भी नहीं निरोगी काया। सुन न अब! अच्छे मूढ़ न! ऐसे सब लेख। पहला सुख वह निरोगी काया। शरीर निरोगी वह सुख है। मूढ़ है! वह तो जड़ मिट्टी है। ऐसी तेरी सुख की कल्पना, वह तो मिथ्या मूढ़ की है। दूसरा सुख घर में चार लड़के। चार लड़के हों तो अर्थी ठीक से उठा सके न? चार व्यक्ति हों न चार, ठीक। तीसरा सुख सुकुल की नारी। नारी सुकुल की हो या कुकुल की हो, उसमें तुझे सुख कहाँ से आया? धूल में? कहते हैं या नहीं ऐसा, कान्तिभाई! और चौथा सुख कोठी में जार (अनाज)। घर में वर्ष, दो वर्ष, पाँच वर्ष के दाने पड़े हों तो सुखी। मूढ़ है परन्तु मर जायेगा अभी। तेरे दाने पड़े रहेंगे। हें? और दाने हों तो अन्दर में बिच्छु काटा हो, और पीड़ा होती हो। हाय! हाय! मर जाता हूँ! कैसे मर जायेगा। है न सब यह? यह सुख का सब मानते हैं, सब पड़ा है देखो यह। तेरे ढेर पाँच-दस लाख के। यह पैसा, यह बँगला बड़ा बँगला, ज्वार बड़ी, गेहूँ। बीस रुपये के मण। क्या महँगे मिलते हैं, कुछ खबर नहीं पड़ती। पहले तो दो रुपये, ढाई रुपये के, मण आते थे। पच्चीस रुपये। कहो। पहले दो। यह सब गेहूँ पड़े हैं न कोठी में सौ मण! परन्तु मर जाता हूँ। अरे! हाय! हाय! ऐसी पीड़ा! ऐसी पीड़ा!

एक बार नागरण थी। वह उस पकाने के समय पतला कपड़ा पहने। बहुत पतला पहने। और वह पाट पर बैठने गयी तो नीचे बिच्छु और नीचे काटा। अब, हाय! हाय! हें?

मुमुक्षु : बैठने की जगह में काटा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वहाँ काटा। और पतला वस्त्र पहनकर, वह अधिक वस्त्र धोने पड़े न? पतला वस्त्र था न? पाट पर बैठी और पाट में बिच्छु नीचे से छिद्र में से निकला अन्दर से। एकदम काटा। हाय! हाय! यहाँ होता है न, देखो न, पूरण पोळी करने बैठी, ऐसे मेहमान आये हैं। धूल भी नहीं। सुन न अब! हाय रे हाय!

कहते हैं कि इस शरीर को बिच्छु काटा, इसलिए दुःखी है, ऐसा नहीं है। यह तो

जड़ की अवस्था है। परन्तु यह अवस्था मुझे होती है, ऐसी मान्यता (करता है) इसलिए दुःखी होता है। वह दुःखी और बाहर की अनुकूलता के समय कल्पना करता है कि हम सुखी हैं। हमारे बादशाही है। पैसे टके हाम, दाम, ठाम कहते हैं न? हैं? हाम, दाम और ठाम। हाम अर्थात् हिम्मत, दाम अर्थात् पैसा, ठाम अर्थात् मकान उसके ठिकाने के, रहने के पाँच, पन्द्रह लाख के। सुखी। धूल भी नहीं, सुना न! दुःखी है। परन्तु कहते हैं कि उसमें सुख-दुःख की जो कल्पना जो तू करता है, वह तेरे परिणाम हैं। उसे वह भोगता है। यह निश्चय है। निश्चय अर्थात् उसकी स्वदशा में भोक्ता है। वह भोगना कहीं पर की स्थिति को नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहार से (असद्भूत व्यवहारनय से) शुभाशुभकर्मों से सम्पादित... पूर्व के पुण्य और पाप के कारण से प्राप्त लक्ष्मी, उसमें कुछ पुरुषार्थ से मिलती नहीं। ऐसा होगा? धूल भी नहीं..... अब वह उसके पुण्य और पाप के जैसे परिणाम पूर्व में किये, वैसे रजकण बाँधे। उन रजकणों का पाक होने पर यह धूल का ढेर दिखता है। उसमें है क्या परन्तु तुझे? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि व्यवहार से शुभाशुभकर्म जो बाँधे, उससे प्राप्त हुए इष्ट-अनिष्ट विषय। इष्ट विषय मिले। स्त्री, कुटुम्ब यह सब अनुकूल और अनिष्ट मिले। बिच्छु काटे, सर्प काटे, वह अनिष्ट विषय। उसे जो भोगता हूँ, ऐसा कहना, उस परचीज़ को, हों! उसे भोगता नहीं। परन्तु स्वयं सुख-दुःख की कल्पना को भोगता है, उसमें वह निमित्त है न, इसलिए व्यवहार से भोगता है, ऐसा कहने में आता है। अरे! व्यवहार और निश्चय यह सब। समझ में आया? यहाँ तक तो कल अपने आया है। थोड़ा-सा नहीं।

अब, **निश्चय से....** अर्थात् वास्तव में **लोकप्रमाण होने पर भी,...** भगवान आत्मा, उसके असंख्य प्रदेश, लोक की संख्या जितने हैं। अब वह सब वापस उसे निर्णय करना पड़े। पूरा चौदह लोक ब्रह्माण्ड है। उसमें आकाश के असंख्य प्रदेश हैं। एक परमाणु जितनी जगह को रोके, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसे छोटे में छोटा प्रदेश एक, ऐसे असंख्य प्रदेश लोक में हैं, आकाश में। इतने प्रदेश एक जीव के हैं। क्योंकि यहाँ है, वह यहाँ नहीं, यहाँ है वह यहाँ नहीं, आत्मा, हों! इस शरीर के रजकण तो पृथक्।

ऐसे-ऐसे असंख्य प्रदेश हैं। इस लोक की संख्या जितने हैं, तथापि ऐसा होने पर भी, विशिष्ट अवगाहपरिणाम की शक्तिवाला होने से... देखो अब!

यह स्वयं के ही अवगाहन में छोटा-बड़ा होना, ऐसी शक्ति स्वयं की है। छोटे शरीर में छोटा रहे, बड़े शरीर में उतना हो। ऐसा एक ही शरीर में बड़े सांढ़ जैसा शरीर हो और क्षय हो। (तो) चिड़िया जैसा टेंटुं हो जाये। वह नहीं तुम्हारे कौन रंजनभाई! रंजनभाई का पुत्र था न? वढ़वाण, नहीं तुम्हारे? चक्की के उसमें रहा था। दो हजार के वर्ष में, दो हजार के वर्ष में। ९९ के वर्ष में। हरजीवनभाई थे न? हरजीवन न नाम? उनके परिवार में थे न सेठिया। नाम भूल गये। उनके लड़के को इस गोपाणी में विवाह किया था। बखता गोपाणी बोटद। वह मर गया छह महीने में। जीर्ण शरीर। रूपवान बहुत था। जीर्ण हो गया। वह जती के, जती के हैं न लालचन्दभाई। कमरे पर थे। अन्त में नवकार सुनाने गये थे। परन्तु टेटा जैसा शरीर था। ऐसा शरीर था रूपवान बड़ा! बखता गोपाणी। बखतचन्द सवाणी गोपाणी। सवा गोपाणी बोटदवाला। उनका दामाद। थोड़े समय, आठ महीने रहा था और थोड़े समय तीन, चार महीने से बीमार पड़ गया। मांगलिक सुनाने गये थे। कोई सुनावे नहीं। कहे नहीं कि यह मर गया है। एक महिला ऐसी निकली कुटुम्ब में से। महाराज! अब इसे कुछ सुनाओ, हों! इसकी अन्तिम स्थिति है। कहना किस प्रकार? आठ महीने का तो विवाहित था। समझ में आया? वढ़वाण के थे वढ़वाण के। हमारी ओर के। बहुत वर्ष हो गये थे। १९९९ के वर्ष की बात थी। अट्टाईस वर्ष हुए। फिर उसे कहे, सुनाओ। एक महिला निकली, हों! मुझे ख्याल आ गया था कि यह बचे ऐसा कुछ नहीं है। इस रूपवान शरीर को ऐसा चिड़ा जैसा हो गया।

इस आत्मा के प्रदेश अवगाहन जो संकुचित होते हैं, वे स्वयं के कारण से हैं, ऐसा कहते हैं। जब शरीर ऐसे पुष्ट हो तब ऐसे चौड़े आत्मा के प्रदेश हों, वे भी स्वयं के कारण से। इसलिए विशिष्ट,.... अर्थात् खास, अवगाह.... अर्थात् व्यापना, ऐसा परिणाम की शक्तिवाला होने से... ऐसा। कर्म के निमित्त से उसमें परिणाम अवगाहन छोटा-बड़ा होता है, ऐसा नहीं है। हाँ, परन्तु देखो न, यह शरीर ऐसा हो। उसमें आत्मा के प्रदेश व्यापें, ऐसा है न उतने प्रमाण में? बाकी यह तो यह पड़ जाये, वापस आत्मा के

प्रदेश इतने संकुचित हो जाये। यह कहीं शरीर के कारण नहीं है। उसका अवगाहन अर्थात् प्रदेशों का व्यापना, ऐसे परिणामवाला खास **विशिष्ट अवगाहपरिणाम की शक्तिवाला होने से...** ऐसा। कितने ही कहते हैं न? देखो! इस कर्म के प्रमाण अवगाहन मिलता है। ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। हजार योजन की मछली जीव हुआ। हजार योजन का, हों, अनन्त बार। उतने में कहो व्याप्त हुआ। एक मछली छोटी अँगुल के असंख्य भाग में होती है। उसमें भी अनन्त बार गया है। वहाँ इतनी अवगाहना छोटी। वह कैसे? कि शरीर के कारण? कर्म के कारण? कहते हैं, नहीं। लोकप्रमाण असंख्य प्रदेश में व्यापने की सामर्थ्यवाला होने पर भी उसे क्षण-क्षण में समय में शरीरप्रमाण जो अवगाहना होती है, वह स्वयं की योग्यता से होती है।

यह दिखता नहीं, यह रहा। पच्चीस-पच्चीस वर्ष के जवान ऐसे होते हैं न? छह महीने क्षय हो जाये तो पिघल जाते हैं। पिघल जाते हैं। मात्र अंतड़िया दिखती हैं, हड्डियाँ दिखती हैं। यह सब। अभी कुत्ता कटकर मर नहीं गया था? उसके प्रदेश थे पैर के। संकुचित हो गये। कहाँ गये? आहाहा! समझ में आया? अभी डाघो बड़ा कुत्ता था और पैर कट गया न! यहाँ आकर रोता था। पीड़ा सहन नहीं होती। रोवे... रोवे.... रोवे....। आहाहा! बेचारा डॉक्टर आया था। आयुष्य कहीं.... रोते... रोते... रोते... मर गया। ऐसा रोवे। पीड़ा.... पीड़ा.... पीड़ा...। वह इतना बह गया न। कपड़े जैसी चमड़ी लटकती थी, हाथ लम्बा और खून बहता जाये।

यह सब अवगाहन आत्मा के प्रदेश संकुचित हो गये। वह हड्डियाँ टूट गयीं, इसलिए और कर्म के कारण नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस जीव को अवगाह-व्यापने की परिणामन की शक्ति ही ऐसी है। देखो! **विशिष्ट....** अर्थात् खास, अवगाहन अर्थात् शरीरप्रमाण व्यापना। परिणाम अर्थात् अवगाहना परिणाम, हों! पर्याय उस जाति की। **अवगाहपरिणाम की शक्तिवाला होने से नामकर्म से रचित छोटे-बड़े शरीर में रहता हुआ....** कहो, समझ में आया? **व्यवहार से (सद्भूत व्यवहारनय से)...** पर्याय का अवगाहन हुआ न! सद्भूत व्यवहारनय पर्याय इसकी है न स्वयं की। अवगाहन की छोटी-बड़ी होने की पर्याय इसकी है। जो सद्भूतव्यवहार, वह असद्भूतव्यवहार नहीं है, ऐसा। **(सद्भूत व्यवहारनय से) 'देहप्रमाण' है;**... सद्भूतव्यवहार और

असद्भूतव्यवहार और अशुद्धनय तथा शुद्धनय, यह कौन माने ? आहाहा !

वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं हो सकती । सर्वत्र गप्प-गप्प मारे हैं सबने अध्धर से । वहाँ तो आत्मा है और सर्वव्यापक है और वह शुद्ध है । धूल भी नहीं, सुन न ! भगवान परमेश्वर केवली ने कहा हुआ, ऐसा जीव है । ऐसे जीव को ऐसा है, वैसा उसे बराबर जानना चाहिए । उससे कम, अधिक और विपरीत ज्ञान अकेला दुःखदायक और पाप है, ऐसा कहते हैं । कहो, समझ में आया ? दो कहे—दो न्याय । इसमें दो दिये या नहीं दो । निश्चय और व्यवहार । व्यवहार कैसा सद्व्यवहार । निश्चय कैसा ?—कि असंख्य प्रदेश ऐसे के ऐसे असंख्य रहते हैं, इसलिए निश्चय । भले लोकप्रमाण होने पर भी असंख्य प्रदेश हैं, वे निश्चय और उनकी अवगाहना छोटे-बड़े होने की शक्ति है, इसलिए उसमें हुई है । एकरूप रही नहीं, इसलिए व्यवहार, परन्तु इसकी है, इसलिए सद्व्यवहार । समझ में आया या नहीं ?

अब तीसरा । अमूर्त को सिद्ध करते हैं । 'न हि मूर्तः' ऐसा शब्द है न ? पाठ संस्कृत ऐसा है । 'न हि मूर्तः' निश्चय से अरूपी-स्वभाववाला होने के कारण.... भगवान आत्मा तो अरूपी है । अभी कोई कहता था न ? अरूपी है न ? हाँ, और कोई आया था न ? वह नहीं आया था कोई सेठिया ? हैं ? (असद्भूत व्यवहारनय से) एकत्वपरिणाम के कारण मूर्त होने पर भी,... उसके सामने पहला डाला । वह पहला गया न ? पाठ में मूर्त नहीं न ? उसने सामने डाला व्यवहार से, असद्भूतव्यवहारनय से । देखो, यह असद्भूतव्यवहार । क्योंकि कर्म जड़ है न ! उसके साथ एकत्वपरिणाम के कारण । व्यवहार से एकत्व, हों ! मूर्त होने पर भी,... एकत्वपरिणाम की अपेक्षा से मूर्त कहा जाता है ।

परमाणु जड़ है, मूर्त है । आत्मा अरूपी है । परन्तु दोनों का एक क्षेत्रावगाहन है, इसलिए उसे व्यवहार से मूर्त कहा जाता है । वह कर्म मूर्त है, इसलिए इसे मूर्त कहा जाता है । यह उपचार-व्यवहार है । परन्तु कैसा ? असद्भूतव्यवहार । झूठा व्यवहार है । समझ में आया ? यह अभी एक आया नहीं था वह कोई पैसेवाला बड़ा ? पालीताणा ! हैं ? हुबलीवाला । आत्मा की खबर नहीं होती, बड़ा पैसेवाला सेठिया । पाँच-पचास

लाख खर्च करना हो तो खर्च कर डाले। धूल अब वहाँ कहाँ तेरी धूल थी? महाराज! आत्मा अरूपी है न? कहे, किसका बना होगा? लो! यह सब उसके प्रमुख! ऐसा का ऐसा मूर्ख जैसा है। जैन के प्रमुख कहलाते हैं। लाख, दो लाख खर्च करते हों बारह महीने में, इसलिए उसे कहे, आहाहा! यह तो भारी। सेठिया है तो साथ में व्यक्ति (नौकर) आया था न? धर्मशाला में। प्रमुख है, बड़ा पैसेवाला। महाराज! आत्मा किसका बना होगा? अरूपी तो कहा परन्तु अरूपी। अरे!

आत्मा वस्तु है, अरूपी है, अनादि है। बने किससे? सत् है, वह बने किससे? चैतन्यस्वरूप है। चैतन्यस्वरूप बना किस प्रकार?

मुमुक्षु : परन्तु नया कब बना? वह तो अनादि का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुड़ और मिठास दोनों एक ही चीज़ है। एक चेतन आत्मा और चैतन्य गुण स्वभाव, वह तो अनादि के ऐसे के ऐसे हैं। सत् है, उसकी उत्पत्ति क्या और सत् है, उसका नाश क्या? और सत् है, उसमें पर के कारण से हो—ऐसा हो नहीं सकता। सत् तो अहेतुक है। आहाहा! या तो एक भगवान कर्ता है, ऐसा मान लेना और या सर्वव्यापक मान लेना, बस। मूढ़ होकर पड़ो जाओ। हें? अज्ञानी ऐसा का ऐसा अनादि काल का भटकता है।

कहते हैं कि वस्तु तो कर्म के निमित्त का उपचार करके कहे तो उसे मूर्त कहने में आता है। वस्तु तो अरूपी भगवान है। परन्तु कर्म मूर्त है, उनके सम्बन्ध के एकपने की अपेक्षा लें तो उपचार से उसे असद्भूतव्यवहारनय कहने में आता है। असद् मूर्त कहने में आता है। **निश्चय से अरूपी स्वभावाला होने के कारण...** वास्तव में उसका स्वरूप तो रंग-गन्ध-रस-स्पर्शरहित अरूपी है। अरूपी, परन्तु कुछ रूप होगा या नहीं उसका? उसका रूप है ज्ञान-दर्शन आदि उसका रूप, वह स्वरूप। रूप, वह स्वरूप। परन्तु रंग-गन्ध नहीं, इसलिए अरूपी। समझ में आया?

किसे पड़ी है? आत्मा होगा या नहीं? जिन्दगी बितायी और मरकर जाना फिर नरक और निगोद। हें? यह जागृत के लिये तो कहा जाता है। ऐसी की ऐसी जिन्दगी बितावे होली में। उसे आत्मा क्या है? वीतराग क्या कहते हैं? परमेश्वर कैसी जाति

है ? उसे जानने में भी नहीं जहाँ, तो सर्जे तो कहाँ से ? और स्थिर-धर्म तो कहाँ से हो धूल में ? आहाहा ! निश्चय से भगवान आत्मा तो अरूपी है । उसे रूप-रंग-गन्ध-स्पर्श-रस (है ही नहीं) । अरूपी होने पर भी वह वस्तु है । अरूपी अर्थात् कोई अवस्तु है, ऐसा नहीं है । अरूपी अर्थात् अवस्तु, ऐसा नहीं है । अरूपी अर्थात् कि उसमें वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श नहीं है । परन्तु अरूपी एक वस्तु है, पदार्थ है, महान पदार्थ है, अस्ति सत्ता है । आहाहा ! समझ में आया ?

निश्चय से अरूपी स्वभाववाला होने के कारण 'अमूर्त' है;... वह व्यवहार से पहली बात की ऐसी । पाठ में अमूर्त है । मूर्त नहीं, ऐसा सिद्ध किया । अब जरा निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बतलाते हैं, हों ! थोड़ा । निश्चय से पुद्गलपरिणाम को अनुरूप चैतन्यपरिणामात्मक कर्मों के साथ संयुक्त होने से 'कर्मसंयुक्त' है;... क्या कहते हैं । यह तो अपने आप पढ़े तो कुछ हाथ आवे ऐसा नहीं है, अभ्यास न हो उसे । अभ्यास न हो उसे, ऐसा कहा, हों !

कहते हैं, वास्तव में देखें तो आत्मा के जो पुण्य और पाप के परिणाम होते हैं, वह पुद्गल उदय को अनुरूप है । शान्ति से जानो । वह कर्म है जड़, वह निमित्त है । निमित्त है उदय, उसके अनुकूल है, अनुरूप । अनुकूल कर्म और अनुरूप जीव के पुण्य और पाप के भाव । क्या कहते हैं ?

वास्तव में तो इतना बस । वास्तव में इतना अब । यह पुद्गलपरिणाम.... जो जड़ है, उसके अनुरूप चैतन्यपरिणामात्मक कर्मों के साथ संयुक्त होने से 'कर्मसंयुक्त' है;... अरे ! क्या कहा ? निश्चय से तो विकारी परिणाम संयुक्त है, इसलिए वह निश्चय से कर्मसंयुक्त है । कर्म अर्थात् विकारी परिणाम । इसलिए उसे कर्मसंयुक्त निश्चय से कहा । व्यवहार से दूसरा कहेंगे ।

फिर से । नीचे कहा है, देखो ! संसारी आत्मा निश्चय से निमित्तभूत पुद्गलकर्मों को अनुरूप ऐसे नैमित्तिक आत्मपरिणामों के साथ (अर्थात् भावकर्मों के साथ) संयुक्त होने से कर्मसंयुक्त है... भावकर्म की बात । भावकर्म अर्थात् ? मिथ्यात्वभाव दया-दान के परिणाम, काम-क्रोध के विकल्प । समझ में आया ? ऐसे जो शुभाशुभभाव,

वह कर्म जो उदय है, वह निमित्त है। उसके अनुरूप वह पुण्य और पाप के परिणाम हैं अर्थात् नैमित्तिक। कर्म का उदय निमित्त है, वह व्यवहार हो गया। यह नहीं। और इसमें हुए परिणाम पुण्य और पाप के, दया-दान, व्रत-काम-क्रोध के परिणाम, वे नैमित्तिक हैं। परन्तु नैमित्तिक स्व के हैं, इसलिए यह निश्चय। ऐसे विकारी परिणाम से आत्मा सहित है, इसलिए निश्चय से कर्मसंयुक्त कहा जाता है, भावकर्म। समझ में आया ?

यह जीव कैसा है, उसकी यह गाथा है। लो! आहाहा! ऐसा ही कोई मान ले कि विकारी परिणाम अनादि के मुझमें नहीं। समझ में आया? पर्याय में नहीं, तो वह जीव को जानता नहीं। जीव की उसे खबर ही नहीं। मूढ़ है। समझ में आया? आत्मा तो सब प्रकार से शुद्ध ही है। द्रव्य से शुद्ध, गुण से शुद्ध, पर्याय से शुद्ध। ऐसा नहीं है। ऐसा जीव नहीं है। यदि पर्याय से शुद्ध हो तो उसे यह राग-द्वेष का दुःख और कल्पना वह किसकी है? और यदि दुःख न हो और विकारीभाव न हो तो विकारी को टालना, टालना-यह कहाँ रहा उसे? समझ में आया ?

समयसार में ऐसा आता है कि द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित समयसार, वह आत्मा। वह तो वहाँ द्रव्य की बात है। और यहाँ तो द्रव्य, गुण और उसकी पर्याय का समाप्तपना उसकी सत्ता में, उसकी व्याख्या है। आहाहा! थोड़ी बुद्धिवाले हमारे फावाभाई थे न (वे कहते थे) सवेरे कुछ सुनते हैं, दोपहर में (कुछ) सुनते हैं। वह निर्णय करने जायें तो यहाँ दूसरा आवे, कहे। मूल खबर नहीं होती। अभ्यास ही नहीं होता सत्य का। और फिर गोते खाया करे। सवेरे ऐसा सुनते हैं समयसार में कि आत्मा में द्रव्यकर्म और भावकर्म विकल्प तीन काल में नहीं, उसे आत्मा कहा जाता है। ऐसे आत्मा की श्रद्धा करे तो समकित कहा जाता है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा पुण्य और पाप के परिणामवाला अशुद्ध निश्चय से उसमें है। बाकी उनकेवाला है, ऐसा निश्चय से कहने में आता है। यह पर्याय का निश्चय है। द्रव्य का नहीं। समझ में आया? परन्तु जिस प्रकार से है, उसे उस प्रकार से लक्ष्य में न ले तो फिर तत्त्व की दृष्टि सच्ची नहीं हो सकेगी। उसे जरा भी धर्म हो सकेगा ही नहीं। वह चार गति में भटकनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! इस मृत्यु काल

में यह शरीर काम नहीं करे, श्वास नहीं चले, ऐसा होगा, अरेरे! ऐसा होगा! चारों ओर से शूल चढ़ेगा। बापू! वह तो जड़ की अवस्था है। चलो चलो रे निकाल करो। निकालो-निकालो रे सब कहे। हैं? जहाँ देह छूटे -फू हुआ (वहाँ कहे) निकालो रे निकालो। नहीं तो सड़ेगा, या तो बिगड़ेगा। तो अपने देरी होगी रोटियों की। बराबर मर गया हो आठ बजे अब करना क्या? दस बजे से पहले तो जलाकर आवे नहीं। दस-ग्यारह होगी अच्छा। मन में तो कितनों को ऐसे विकल्प भी होते हैं। हो जाते होंगे या नहीं? आहाहा! अरेरे! देह से पृथक् पड़ने के काल में एकत्वपने माना, उसके दबाव का पार नहीं होता।

यह यहाँ कहते हैं कि पर से तो भिन्न है परन्तु परवाला तुझे कहना, वह तो व्यवहारनय का वचन है। झूठनय का वचन है। परन्तु तेरे विचार की पर्यायवाला अशुद्ध है, वह तो बराबर है, कहते हैं। विकारी पर्याय तेरी दशा में है। समझ में आया? अर्थात् विकार—पुण्य और पाप के विकार ऐसा भावकर्म अर्थात् भावकार्य इस सहित है, ऐसा कहने वह निश्चय है। क्योंकि स्व है, स्व में है इसलिए। स्व-आश्रय निश्चय और पर-आश्रय व्यवहार।

निश्चय से पुद्गलपरिणाम को अर्थात् नये कर्मबन्धन को अनुरूप, नये कर्मबन्धन को अनुरूप। लो! नये कर्म को अनुरूप, यहाँ तो यह आया है। **चैतन्यपरिणामात्मक कर्मों के साथ संयुक्त होने से...** चैतन्यपरिणामात्मक स्वरूप अर्थात् विकार के साथ संयुक्त होने से **कर्मसंयुक्त है....** उसके परिणाम अनुरूप है न नये कर्म को?

अब व्यवहारनय से असद्भूत झूठे नय से **चैतन्यपरिणाम को अनुरूप...** चैतन्य के विकारी परिणाम को अनुरूप। जैसे विकारी परिणाम हुए, उसे अनुरूप ऐसा ही कर्म बँधता है। वह पुद्गलपरिणाम कर्म के साथ संयुक्त होने से कर्म संयुक्त है। यह सूक्ष्म है थोड़े अन्तिम दोनों। वास्तव में तो पुद्गलपरिणाम जो है, नये बँधते हैं वे, हों! उन्हें अनुरूप। नये परिणाम हों, उसके वे कर्म के। पुद्गलपरिणाम को अनुरूप, ऐसा। पहले कहा था पुद्गल का कहा था। उदय कहा था। उदय है निमित्त और विकारी नैमित्तिक वह दूसरी चीज़ हुई। यहाँ तो कहते हैं कि पुद्गल कर्म जो नये बँधते हैं, उसे अनुरूप।

चैतन्यपरिणामात्मक कर्मों के साथ संयुक्त होने से... समझ में आया ?

कर्म भावकर्मसंयुक्त है... क्या कहा यह ? निश्चय से पुद्गलपरिणाम को अनुरूप... क्या पुद्गलपरिणाम ? नये कर्म पुद्गलपरिणाम के हों उन्हें । अनुरूप कौन है ? चैतन्यपरिणामात्मक कर्म विकारीभाव । वैसे तो वे पुद्गलपरिणाम पर हैं, वे स्वतन्त्र हैं । उन्हें यहाँ निमित्त होता है न ? पुद्गलपरिणाम को निश्चय से पुद्गलपरिणाम कहा न ? पुद्गलकर्म को अनुरूप । नये बँधते हैं न ? निमित्तभूत पुद्गलकर्मों को, ऐसा कहा । ऐसे नैमित्तिक आत्मपरिणाम । इसलिए बन्धन में से आया । संसारी आत्मा निश्चय से निमित्तभूत पुद्गलकर्मों को, निमित्तभूत पर हो गये । क्योंकि अनुरूप है न यह तो । पुद्गलपरिणाम को चैतन्यपरिणामात्मक कर्मों के साथ अपने विकारी परिणाम के साथ संयुक्त होने से 'कर्मसंयुक्त' है, ... बस । भावकर्म के साथ संयुक्त, वह निश्चय और द्रव्यकर्म से संयुक्त, वह व्यवहार (इतनी बात है) ।

इसमें स्पष्टीकरण किया है, देखो नीचे । आत्मा को निश्चय से निमित्तभूत पुद्गलकर्मों को अनुरूप ऐसे नैमित्तिक आत्मपरिणाम हुए न ? (अर्थात् भावकर्मों के साथ) संयुक्त होने से वह कर्मसंयुक्त है । निमित्तभूत पुद्गलकर्म और नैमित्तिक अनुरूप परिणाम दोनों का स्पष्टीकरण किया । और व्यवहार से निमित्तभूत आत्मपरिणामों को, अब नये को अनुरूप ऐसे नैमित्तिक पुद्गलकर्म के साथ-द्रव्यकर्म के साथ संयुक्त होने से कर्मसंयुक्त है । नये को आत्मा के निमित्तभूत परिणाम होते हैं । नये हैं, वे नैमित्तिक हैं । यह निमित्त होता है । इससे विकारी परिणामसहित जीव को मानना, वह निश्चय है । और पुराने कर्मों का निमित्तपना और नैमित्तिकपरिणाम यह । यह परिणाम हुए ऐसे को कर्मसहित का कहना, कर्मसहित कहना, वह जड़सहित का कहना, वह असद्भूतव्यवहार है । समझ में आया ? सूक्ष्म पड़ा थोड़ा ।

संसारी आत्मा निश्चय से निमित्तभूत पुद्गलकर्मों को... निमित्तभूत वह है न ? उदय को अनुरूप... कौन ? (तो) कहे, जीव के परिणाम । उन जीवपरिणामसहित है, ऐसा कहना वह निश्चय, भावकर्म । आत्मा भावकर्मसहित है, ऐसा कहना वह निश्चय । क्योंकि उसमें है इसलिए । नैमित्तिक वह है न ? वह तो निमित्त है । और निमित्त जो

व्यवहार कर्म है। उस नैमित्तिक के साथ निश्चय है, वह निश्चय और निमित्त के साथ सम्बन्ध है, वह व्यवहार। नैमित्तिक ऐसे विकारी परिणाम के साथ सम्बन्ध है, वह निश्चय और निमित्त ऐसे कर्म के साथ सम्बन्ध है, ऐसा असद्भूतव्यवहार। ऐसा कौन निवृत्त हो? समझे कौन? छोड़ न। भगवान... भगवान करो। भाई! भगवान करके मर जाये तो भी धर्म हो ऐसा नहीं है, ले! समझ में आया? भगवान.... भगवान.... भगवान.... भगवान.... भगवान.... रट न अन्दर वह तो विकल्प-राग है। राग है, वह अधर्म है। यह यहाँ कहते हैं कि ऐसे अधर्म के परिणामसहित है, उसे अशुद्ध निश्चय कहा जाता है। उसे पूर्व के कर्म निमित्त हैं। नैमित्तिक उसके परिणाम हैं। नैमित्तिक परिणाम से सहित कहना, वह निश्चय है और निमित्त कर्म है, उससे सहित कहना, वह व्यवहार है।

दो चीज़ है। और दो को किस प्रकार जानना, ऐसा कहते हैं। व्यवहार से, असद्भूतव्यवहारनय से चैतन्यपरिणाम को अनुरूप, चैतन्यपरिणाम को अनुरूप पुद्गलपरिणामात्मक कर्मों के साथ संयुक्त होने से 'कर्मसंयुक्त' है। लो!

पहली गाथा २६ गाथाओं में षड्द्रव्य और पंचास्तिकाय का सामान्य निरूपण करके, अब इस २७वीं गाथा से उनका विशेष निरूपण प्रारम्भ किया गया है। उसमें प्रथम, जीव का (आत्मा का) निरूपण प्रारम्भ करते हुए इस गाथा में संसारस्थित आत्मा को जीव (अर्थात् जीवत्ववाला), चेतयिता, उपयोगलक्षणवाला, प्रभु, कर्ता इत्यादि कहा है। जीवत्व, चेतयितृत्व, उपयोग, प्रभुत्व, कर्तृत्व इत्यादि का विवरण अगली गाथाओं में आयेगा।

यहाँ तो अभी संक्षिप्त शब्द कहे हैं। अभी तो एक-एक जीवत्व क्या, कर्ता क्या, इसकी गाथायें पूरी आयेगी। विस्तार। यह तो एक टीकाकार ने स्पष्टीकरण किया है। मूल में नहीं है। मूल में तो नाम ही है। यह जीव, चेतयिता, उपयोग, असहावो, कर्ता, भोक्ता आदि। समझे न? इसका स्पष्टीकरण दो-दो नय से किया था। मूल श्लोक ही आगे पूरे आयेंगे। एक-एक का जीवत्व किसे कहना? कर्ता किसे कहना? आगे पूरे श्लोक आयेंगे। अब सिद्ध की बात चालू हुई। यह संसारी अवस्था की बात की। वह पूरी हुई इतनी। गाथा की अपेक्षा से, हों!

गाथा - २८

कम्मलविप्पमुक्को उड्डं लोगस्स अंतमधिगंता।
सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं॥२८॥

कर्ममलविप्रमुक्त ऊर्ध्वं लोकस्यान्तमधिगम्य।
स सर्वज्ञानदर्शी लभते सुखमनिन्द्रियमनन्तम्॥२८॥

अत्र मुक्तावस्थस्यात्मनो निरुपाधि स्वरूपमुक्तम् ।

आत्मा हि परद्रव्यत्वात्कर्मरजसा साकल्येन यस्मिन्नेव क्षणे मुच्यते तस्मिन्नेवोर्ध्वगमन-
स्वभावत्वाल्लोकान्तमधिगम्य परतो गतिहेतोरभावादवस्थितः केवलज्ञानदर्शनाभ्यां स्वरूप-
भूतत्वादमुक्तोऽनन्तमतीन्द्रियं सुखमनुभवति। मुक्तस्य चास्य भावप्राणधारणलक्षणं जीवत्वं,
चिद्रूपलक्षणं चेतयितृत्वं, चित्परिणामलक्षण उपयोगः, निर्वर्तितसमस्ताधिकारशक्तिमात्रं प्रभुत्वं,
समस्तवस्त्वसाधारणस्वरूपनिर्वर्तनमात्रं कर्तृत्वं, स्वरूपभूतस्वातन्त्र्यलक्षणसुखोपलभरूपं
भोक्तृत्वं, अतीतानन्तरशरीरपरिमाणवगाहपरिणामरूपं देहमात्रत्वं, उपाधिसम्बन्धविविक्त-
मात्यन्तिकममूर्तत्वम् । कर्मसंयुक्तत्वं तु द्रव्यभावकर्मविप्रमोक्षात् भवत्येव। द्रव्यकर्माणि हि
पुद्गलस्कन्धा भावकर्माणि तु चिद्विवर्ताः। विवर्तते हि चिच्छक्तिरनादिज्ञाना वरणादिकर्मसम्पर्क-
कूणितप्रचारा परिच्छेद्यस्य विश्वस्यैकदेशेषु क्रमेण व्याप्रियमाणा । यदा तु ज्ञानावरणादिकर्म-
सम्पर्कः प्रणश्यति तदा परिच्छेद्यस्य विश्वस्य सर्वदेशेषु युगपद्ब्रूयापृता कथञ्चित्कौटस्थमवाप्य
विषयान्तरमनाप्रवन्ती न विवर्तते । स खल्वेष निश्चितः सर्वज्ञसर्वदर्शित्वोपलम्भः । अयमेव
द्रव्यकर्मनिबन्धनभूतानां भावकर्मणां कर्तृत्वोच्छेदः। अयमेव च विकारपूर्वकानुभवा-
भावादौपाधिकसुखदुःखपरिणामानां भोक्तृत्वोच्छेदः । इदमेव चानादिविवर्तखेदविच्छित्ति-
सुस्थितानन्तचैतन्यस्यात्मनः स्वतन्त्रस्वरूपानुभूतिलक्षणसुखस्य भोक्तृत्वमिति ॥२८॥

कर्म मल से मुक्त आतम मुक्ति कन्या को वरे ।

सर्वज्ञता समदर्शिता सह अनन्तसुख अनुभव करे ॥२८॥

अन्वयार्थ : [कर्ममलविप्रमुक्तः] कर्ममल से मुक्त आत्मा [ऊर्ध्वं] ऊपर [लोकस्य
अन्तम्] लोक के अन्त को [अधिगम्य] प्राप्त करके [सः सर्वज्ञानदर्शी] वह सर्वज्ञ-
सर्वदर्शी [अनन्तम्] अनन्त [अनिन्द्रियम्] अनिन्द्रिय [सुखम्] सुख का [लभते] अनुभव
करता है।

टीका :- यहाँ मुक्तावस्थावाले आत्मा का निरुपाधि स्वरूप कहा है।

आत्मा (कर्मरज के) परद्रव्यपने के कारण कर्मरज से सम्पूर्णरूप से जिस क्षण छूटता है (-मुक्त होता है), उसी क्षण (अपने) ऊर्ध्वगमनस्वभाव के कारण लोक के अन्त को पाकर आगे गतिहेतु का अभाव होने से (वहाँ) स्थिर रहता हुआ, केवलज्ञान और केवलदर्शन (निज) स्वरूपभूत होने के कारण उनसे न छूटता हुआ अनन्त अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता है। उस मुक्त आत्मा को, भावप्राणधारण जिसका लक्षण (-स्वरूप) है ऐसा 'जीवत्व' होता है। चिद्रूप जिसका लक्षण (-स्वरूप) है ऐसा 'चेतयितृत्व' होता है; चित्परिणाम जिसका लक्षण (-स्वरूप) है ऐसा 'उपयोग' होता है; प्राप्त किये हुए समस्त (आत्मिक) अधिकारों की 'शक्तिमात्ररूप 'प्रभुत्व' होता है; समस्त वस्तुओं से असाधारण ऐसे स्वरूप की निष्पत्तिमात्ररूप (-निज स्वरूप को रचनेरूप) 'कर्तृत्व' होता है; स्वरूपभूत स्वातंत्र्य जिसका लक्षण (-स्वरूप) है ऐसे सुख की उपलब्धिरूप 'भोक्तृत्व' होता है; अतीत अनन्तर (-अन्तिम) शरीरप्रमाण अवगाहपरिणामरूप 'देहप्रमाणपना' होता है; और उपाधि के सम्बन्ध से 'विविक्त' ऐसा आत्यंतिक (सर्वथा) 'अमूर्तपना' होता है। (मुक्त आत्मा को) 'कर्मसंयुक्तपना' तो होता ही नहीं, क्योंकि द्रव्यकर्मों और भावकर्मों से विमुक्ति हुई है। द्रव्यकर्म वे पुद्गलस्कन्ध है और भावकर्म वे 'चिद्विवर्त' हैं। चित्शक्ति अनादि ज्ञानावरणादिकर्मों के सम्पर्क से (सम्बन्ध से) संकुचित व्यापारवाली होने के कारण ज्ञेयभूत विश्व के (-समस्त पदार्थों के) एक-एक देश में क्रमशः व्यापार करती हुई विवर्तन को प्राप्त होती है। किन्तु जब ज्ञानावरणादिकर्मों

१. शक्ति=सामर्थ्य; ईशत्व। (मुक्त आत्मा समस्त आत्मिक अधिकारों को भोगने में अर्थात् उनका उपयोग करने में स्वयं समर्थ है, इसलिए वह प्रभु है।)
२. मुक्त आत्मा की अवगाहना चरमशरीरप्रमाण होती है, इसलिए उस अन्तिम शरीर की अपेक्षा लेकर उनको 'देहप्रमाणपना' कहा जा सकता है।
३. विविक्त=भिन्न; रहित।
४. पूर्व सूत्र में कहे हुए 'जीवत्व' आदि नव विशेषों में से प्रथम आठ विशेष मुक्तात्मा को भी यथासम्भव होते हैं, मात्र एक 'कर्मसंयुक्तपना' नहीं होता।
५. चिद्विवर्त=चैतन्य का परिवर्तन अर्थात् चैतन्य का एक विषय को छोड़कर अन्य विषय को जाननेरूप बदलना; चित्शक्ति का अन्य अन्य ज्ञेयों को जाननेरूप परिवर्तित होना।

का सम्पर्क विनष्ट होता है, तब वह ज्ञेयभूत विश्व के सर्व देशों में युगपद् व्यापार करती हुई कथंचित् 'कूटस्थ होकर, अन्य विषय को प्राप्त न होती हुई विवर्तन नहीं करती। वह यह (चित्शक्ति के विवर्तन का अभाव), वास्तव में निश्चित (-नियत, अचल) सर्वज्ञपने की और सर्वदर्शीपने की उपलब्धि है। यही, द्रव्यकर्मों के निमित्तभूत भावकर्मों के कर्तृत्व का विनाश है; यही, विकारपूर्वक अनुभव के अभाव के कारण 'औपाधिक सुखदुःख-परिणामों के भोक्तृत्व का विनाश है; और यही, अनादि विवर्तन के खेद के विनाश से जिसका अनन्त चैतन्य सुस्थित हुआ है, ऐसे आत्मा को स्वतन्त्रस्वरूपानुभूतिलक्षण सुख का (-स्वतन्त्र स्वरूप की अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसे सुख का) भोक्तृत्व है।॥२८॥

गाथा - २८ पर प्रवचन

यहाँ मुक्तावस्थावाले आत्मा का निरुपाधिस्वरूप कहा है। सिद्ध परमात्मा संसार की दशा का नाश होकर आत्मा परमात्मदशा पाता है। उसकी अवस्था का निरुपाधि स्वरूप कहा जाता है।

कम्मलविप्पमुक्को उडुं लोगस्स अंतमधिगंता।
सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं॥२८॥
कर्म मल से मुक्त आतम मुक्ति कन्या को वरे।
सर्वज्ञता समदर्शिता सह अनन्तसुख अनुभव करे॥२८॥

देखो! यहाँ तो यह सिद्ध किया। लोकाग्र को पाते हैं। जो आत्मा संसार की विकारीदशा का आत्मा के भान द्वारा अनुभव करके नाश करे, वह परमात्मा होता है।

१. कूटस्थ=सर्वकाल एकरूप रहनेवाली; अचल। (ज्ञानावरणादिकर्मों का सम्बन्ध नष्ट होने पर कहीं चित्शक्ति सर्वथा अपरिणामी नहीं हो जाती; किन्तु वह अन्य-अन्य ज्ञेयों को जाननेरूप परिवर्तित नहीं होती-सर्वदा तीनों काल के समस्त ज्ञेयों को जानती रहती है, इसलिए उसे कथंचित् कूटस्थ कहा है।)
२. औपाधिक=द्रव्यकर्मरूप उपाधि के साथ सम्बन्धवाले; जिनमें द्रव्यकर्मरूपी उपाधि निमित्त होती है ऐसे; अस्वाभाविक; वैभाविक; विकारी।

वह सिद्ध मुक्तदशा होती है। उस मुक्तदशा का स्वरूप वर्णन करते हैं।

टीका—आत्मा (कर्मरज के) परद्रव्यपने के कारण कर्मरज से सम्पूर्णरूप से जिस क्षण छूटता है (—मुक्त होता है),... टीका... टीका। यह आत्मा (कर्मरज के) परद्रव्यपने के कारण... कर्मरज परद्रव्य है। उस कर्मरज से सम्पूर्णरूप से जिस क्षण छूटता है... आठकर्म से जिस क्षण में आत्मा ध्यान द्वारा छूटता है। (—मुक्त होता है), उसी क्षण (अपने) ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण लोक के अन्त को पाकर... लो!

जैसे धुँआ ऊर्ध्व जाता है, वैसे आत्मा अपनी शुद्ध शक्ति की प्रगटता करके, आनन्ददशा की प्राप्ति करके संसारदशा का—मलिनदशा का नाश किया। तब कहते हैं कि उसी समय ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण लोक के अन्त को पाकर... ऐसा। यहाँ मुक्त होता है। जो विकारभाव सहित है, उसने आत्मा के अन्तर के वास्तविक तत्त्व के अनुभव, दृष्टि और स्थिरता द्वारा एक विकारी का नाश हुआ। अविकारीदशा यहाँ प्रगट हुई अर्थात् मुक्त तो यहाँ शरीर में हुआ। शरीर होने पर भी यहाँ मुक्तदशा हुई। समझ में आया ?

जैसी अन्तर संसरणदशा विकार, अज्ञान, राग-द्वेष थे, वह यहाँ संसरणदशा थी। उस दशा का व्यय करके परम शुद्धता की पर्याय प्रगट दशा की, वह यहाँ हुई। व्यय हुआ वहाँ उत्पाद हुआ। व्यय का क्षण, वही उत्पाद का क्षण। समझ में आया ? देखो ! यह मुक्त-मुक्त सब कहते हैं न ? मुक्त होना, मिल जाना। एक आत्मा मुक्त हो जाये, अनन्त में मिल जाये। मूढ़ है। मिले कहाँ ? समझ में आया ? संसार में अपनी सत्ता भिन्न रखकर दुःखी होता (था) और मोक्ष में सत्ता का नाश करके मुक्त में जाये, इसका अर्थ क्या हुआ ? संसार का नाश किया या सत्ता का नाश किया ? यह तो कहते हैं न कि जब मुक्त होता है, तब मिल जाता है। एक-दूसरे में मिल जाते हैं। अनन्त में मिल जाना, इसका नाम मुक्ति। झूठी बात है। जैन में भी ऐसे कितने ही डींग मारनेवाले हैं। पंचावन में आया था न वह, नहीं तुम्हारा क्या कहलाता है ? मणीयार। अन्ध था। ज्योति में ज्योति मिलाये, इसका नाम सिद्ध कहे। ऐसे के ऐसे कोई खबर नहीं होती एक भी ऐकड़ा की। समझ में आया ?

बस देह छूट जाये और मुक्ति हो, इसलिए अनन्त आत्मायें एकरूप हैं, अनन्त में मिल जाये, इसका नाम मुक्ति। अर्थात् क्या? अपनी अस्ति थी, उसे गँवाकर पर में मिल जाये, इसका नाम मुक्ति। अस्ति को भूल गया। इसकी अपेक्षा तो संसार में अपनी सत्ता रखकर दुःखी था, वह स्वतन्त्ररूप से दुःखी होता (था)। उस दुःख की दशा का आनन्दस्वभाव के अनुभव द्वारा, शक्तिरूप आनन्द प्रभु आत्मा पड़ा है। उसके आनन्द के वेदन द्वारा दुःख की अवस्था का व्यय होकर यह यहाँ हुई मुक्ति अवस्था।

यह तो कहते हैं कि ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण... उसी क्षण में लोक के अन्त को पाकर... कहते हैं कि मुक्त यहाँ होता है परन्तु मार्ग में जाये, तब तक अशुद्ध पारिणामिकभाव कहा जाता है। गजब गप्प ही गप्प। समझ में आया? ऐसे गति करता है न ऐसी जरा.... यहाँ मुक्त है, उसी समय वहाँ जाता है। समझ में आया? यह तो समय-समय की स्वतन्त्रता की सिद्ध की प्रसिद्धि की है। यह बात भगवान सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकती। बिना भान के बस अब यह शरीर और राग-द्वेष टाल डालो मुक्ति हो जायेगी। परन्तु मुक्ति क्या? कहाँ होती है? होती है तो कितने काल रहती है? और टालने के लिये क्या साधन है? क्या स्वरूप है? और टालने से क्या रह जाता है? और होता है तो कहाँ से आता है? और होता है तो कितना काल? एक समय रहता है? और गति करे तो एक समय में पहुँचता है या दो समय लगते हैं? आहाहा! परमेश्वर केवली तीर्थकर ने कहा हुआ आत्मा ऐसा है। परमात्मा त्रिकाल ज्ञानी परमेश्वर ने (कहा), इसके अतिरिक्त अज्ञानियों ने कल्पना की और बातें कीं, वे सब मूढ़ता की बातें हैं। आहाहा! हैं? हो जाओ जड़ हो जाओ, ऐसा। शून्य ही है न? आत्मा की अस्ति का कहाँ भान है? कहो, समझ में आया? वजन तो यहाँ है।

आठ कर्मरज से सम्पूर्णरूप से जिस क्षण छूटता है... जिस क्षण में मुक्त होता है, उसी क्षण में। क्षण एक हुआ या क्षण दूसरा हुआ? क्षण अर्थात् एक समय, हों! क्षण अर्थात् वापस असंख्य समय क्षण नहीं। शब्द क्षण प्रयोग किया है। समय है। जिस समय में यहाँ भगवान आत्मा अपना आनन्द और अन्तरशक्तियों का पिण्ड प्रभु वह राग, अज्ञान और अस्थिरता में रुका हुआ था, वह संसार था। उसे छोड़कर स्वभाव में एकाग्र

हो गया। और पूर्ण शुद्ध दशा प्रगट हो गयी। और गया अज्ञान तथा राग-द्वेष। आत्मा पूर्ण शक्ति के सामर्थ्य से जागृत हो गया। ऐसी पूर्ण दशा को मुक्त कहते हैं। मुक्त अर्थात् कहीं लटकना, इसका नाम मुक्ति नहीं है।

श्रीमद् ने कहा न? आत्मसिद्धि में नहीं आता? 'मुक्त कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पन्थ, समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' एक लाईन में भी कितना (भरा है)। परन्तु वाँचनेवाले को कहाँ भान है? वाँचन कर जाये परन्तु क्या कहते हैं, (उसकी खबर नहीं होती)। समझ में आया? सकल मार्ग निर्ग्रन्थ। कहते हैं, जिस क्षण छूटता है, उसी क्षण (अपने) ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण... किसके कारण? अपने कारण से, ऐसा कहते हैं। लोके अन्त को पाता है। लोक के अन्त को। फिर अलोक आवे खाली.... खाली.... खाली.... खाली। जहाँ तक छह द्रव्यस्वरूप लोक है, उस लोक के अन्त में। समझ में आया?

शत्रुंजय से मोक्ष पधारे। देखो! धर्मराजा (युधिष्ठिर), भीमदेव और अर्जुन, तीनों मोक्ष पधारे। उस शत्रुंजय के ऊपर सिर पर है। सीधी-सीधी लाईन में मुक्त विराजते हैं। समश्रेणी, इसलिए वहाँ आगे स्मृति का निमित्त है, इतना है। वहाँ कोई भगवान नहीं नीचे। परन्तु जिस क्षण में वहाँ देह छूटी, उसी क्षण में वहाँ मुक्ति ऊपर रहते हैं। इसलिए नीचेवाले उनका स्मरण करने (वहाँ यात्रा से जाते हैं)। ओहो! भगवान ऐसे हैं। इतना स्मृति का निमित्त है। समझ में आया?

पहले वर्ष में गये थे और तेरह (संवत् २०१३) में मुम्बई। तब एक थे वे बरवाणावाले, नहीं? क्या नाम था? जगजीवनभाई? जगजीवनभाई थे। सब पक्के स्थानकवासी। फिर उन्होंने कहा महाराज! कहाँ जाते हो? सम्मेदशिखर। किसलिए? कि वहाँ परमात्मा अनन्त सिद्ध हुए हैं, जिस क्षेत्र में देह छूटकर पुरानी दशा (छूटकर), उसी क्षेत्र में ऊपर (समश्रेणी से) विराजमान हैं इसलिए वहाँ उनकी स्मृति है।

मुमुक्षु : उसने सुना न हो न कभी?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थानकवासी बरवाणावाले। चंचलबेन के जेठ न? बापू! तुम समझे बिना ऐसे के ऐसे। वहाँ मूर्ति नहीं। वहाँ कोई दे नहीं देता। परन्तु वहाँ आगे एक

क्षेत्र से आत्मा पूर्णानन्द प्राप्त करके सीधा ऊपर विराजता है। सादि अनन्त-अनन्त काल वहाँ विराजमान है।

ऐसी सत्ता की शुद्धता की प्राप्ति वहाँ विराजते हैं। उस क्षेत्र पर है। वे सिरताज हैं। वहाँ बैठे हैं। ओहो! ऐसा स्मृति का निमित्त है। बाकी कहीं कोई दे देता है तीर्थ में से, ऐसा नहीं है। वहाँ क्या दे देवे? समझ में आया? गजब बात कहलाये! आहा! ऐसा सत्! ऐसे का ऐसा वह स्थानकवासी तीर्थ—तीर्थ को उड़ावे न? मूर्ति को उड़ावे न? इसलिए कहे, गजब बात कहलाये! कहा, भगवान वहाँ आते नहीं। भगवान के पास कुछ लेने नहीं जाते। दे क्या? वहाँ भगवान के पास यह है? ऐसा विकल्प आता है, वहाँ आगे स्मृति में। ओहो! श्रीमद् ने कहा न?

सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में
अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो,
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?
कब होऊँगा बाह्यांतर निर्ग्रन्थ जब।

देखो! यह निर्ग्रन्थ मुनि की, नग्न मुनि की भावना भाते हैं। समझ में आया?

कब होऊँगा बाह्यांतर निर्ग्रन्थ जब।
सर्व भाव से उदासीन वृत्ति करी,
देह मात्र वह संयम हेतु होय जब।

देह के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं। यह वस्त्र का धागा ही नहीं और दूसरा कुछ नहीं। देह मात्र संयम (हेतु है), उसकी भी किंचित् मूर्च्छा नहीं हो। आहाहा!

देखो! अपूर्व अवसर ऐसा, स्पष्ट लिखा है। मुनि को-भावलिङ्गी सन्त को देहमात्र निमित्त होती है। बस! उन्हें वस्त्र-पात्र नहीं होते। ऐसी दशा अन्दर मुनि को प्रगट होती है कि आनन्द की लहर अन्दर उछलती होती है। भाव में निर्ग्रन्थता और बाह्य में नग्न दशा, ऐसा कहते हैं। देखो! आता है न?

नग्नभाव मुंडभाव सह अस्नानता,
अदंत धोवन आदि परम प्रसिद्ध जो।

यह तो प्रसिद्ध ही है मूल में भाई! ऐसा कहते हैं। जैन साधु में अट्ठाईस मूलगुण तो प्रसिद्ध है। ऐसा कहते हैं।

नग्नभाव मुंडभाव सह अस्नानता,
अदंत धोवन आदि परम प्रसिद्ध जो।
केश, रोम, नख या अंग शृंगार नहीं,
द्रव्यभाव संयममय निर्ग्रथ सिद्ध जब।

देखो! द्रव्य-भाव संयममय। द्रव्य से भी नग्न और भाव से भी तीन कषाय अभाव। इसका नाम मुनिपना है। ऐसा मुनिपना हमें कब प्रगट हो? ऐसी भावना भाते हैं। आहाहा! समझ में आया? कितने ही कहे, उन्हें मुनिपना प्रगट हुआ था। यह सब विरोध पड़ता है, यह तो। कितने वर्ष में था नहीं? तीसवें वर्ष में?

मुमुक्षु : यह तो तेतीसवें वर्ष में।

पूज्य गुरुदेवश्री : तेतीसवें वर्ष में तो घर में थे। अरे! कहीं वीतरागमार्ग में ऐसी गप्प नहीं चलती। यहाँ तो तोल-तोलकर माप चाहिए। एक भी न्याय बदलना नहीं चाहिए। इसलिए तो कहा न? उसी क्षण में। बाद में दूसरी बात की। देखो! पहली यह बात की। फिर लोक के अन्त को पाकर आगे गतिहेतु का अभाव होने से (वहाँ) स्थिर रहता हुआ,... श्रेणी कहाँ स्थिर हुई है?निश्चय वहाँ था और व्यवहार वहाँ गति का निमित्त नहीं, इतना वहाँ सिद्ध किया, बस! ऐसे जीव को सिद्धदशा सिद्ध होती है। समझ में आया? दूसरे एक-दूसरे में मिल जाते हैं, ऐसा नहीं है। विशेष आयेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३२, गाथा-२८, मगसिर शुक्ल, मंगलवार, दिनांक -१६-१२-१९६९

पंचास्तिकाय, गाथा २८वीं चलती है।

टीका :— यहाँ मुक्तावस्थावाले आत्मा का निरुपाधिस्वरूप कहा है। पहले २७वीं गाथा में ऐसा कहा—आत्मा संसार अवस्था में कैसा था? ऐसी बात की है। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप आनन्द होने पर भी संसार में अशुद्धजीवत्वप्राण से जीता था। पाँच इन्द्रिय, तीन बल, श्वास, आयुष्य की योग्यता प्रमाण। निमित्त से जीता था, वह असद्भूतव्यवहार ऐसा जीवत्व। सिद्ध में कैसा जीवत्व है, उसका यहाँ वर्णन करते हैं। नौ बोल संसारी जीव के लिये थे। ऐसे सिद्ध को भी एक कर्मसंयुक्त है ही। आठ बोल सहित वर्णन करते हैं। समझ में आया?

संसार में भी स्वयं प्रभु था। चेतयिता था, ऐसा आया था न? जानने-देखनेवाला। जानन-देखनस्वरूप निश्चय और व्यवहार दोनों वर्णन किया था। और उपयोग परिणाम थे। जानने-देखने की पर्याय। संसार में उपयोग और प्रभु था। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि शुभाशुभकर्मों का नाश करने में समर्थ था। शुभाशुभकर्म करने में भी समर्थ था और शुभाशुभभावकर्म का नाश करने में भी समर्थ था। कर्ता बाद में लिया। अपने शुभाशुभभाव का कर्ता था, दुःखी था और शुभाशुभभाव का भोक्ता था। ऐसा आया था न? दोनों प्रमाण थे। और कर्म के संग की अपेक्षा से अमूर्त नहीं परन्तु मूर्त था। रहितरूप से अमूर्त है और कर्म संयुक्त था। ऐसे नौ बोल लिये थे।

ऐसी चीज़ यहाँ सिद्ध अवस्था में समझाते हैं कि सिद्ध में क्या है? आत्मा मुक्त होता है। आत्मा का शान्त, आनन्दस्वरूप जैसा अन्दर निरुपाधिस्वभाव है, वैसा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के निरुपाधि परिणाम से निरुपाधि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पूर्णता को प्राप्त करता है, वह सिद्धदशा कैसी है, उसका वर्णन है। आत्मा (कर्मरज के) परद्रव्यपने के कारण कर्मरज से सम्पूर्णरूप से जिस क्षण छूटता है (—मुक्त होता है),... भगवान आत्मा आठों ही कर्मों का अभाव करके, यहाँ से छूट जाता है। शुद्ध निर्मल आनन्द की सिद्धपद की पर्याय की प्राप्ति यहाँ होती है, उसी क्षण में वहाँ ऊर्ध्वगमन में को प्राप्त होता है।

जिस क्षण छूटता है, मुक्त होता है उसी क्षण (अपने) ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण लोक के अन्त को पाकर आगे गतिहेतु का अभाव होने से (वहाँ) स्थिर रहता हुआ, केवलज्ञान और केवलदर्शन (निज) स्वरूपभूत होने के कारण... लो ! उससे न छूटता हुआ। कर्म से छूट गया, ऐसा। पर से छूट गया। परन्तु अपने केवलज्ञान, केवलदर्शन अपना निज स्वरूप, उससे नहीं छूटता हुआ अनन्त अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता है। संसार में इन्द्रिय का निमित्त और सुख-दुःख की कल्पना का भोक्ता था। वह सिद्ध में अनन्त आनन्द का भोक्ता है। परमात्मा आत्मा सिद्ध होता है तो उसके अनन्त केवलज्ञान और केवलदर्शन उनसे न छूटता हुआ... अनन्त अतीन्द्रिय सुख का.... कोई कहता है न कि भाई सिद्ध परमात्मा लोकालोक को देखते हैं, इसका उन्हें अनन्त सुख है।

यहाँ तो कहते हैं, अपना निर्मल केवलज्ञान, केवलदर्शनसहित प्रगट हुआ, उसके अनन्त आनन्द के भोक्ता हैं। संसार में हर्ष-शोक का भोक्ता था। समझ में आया ? धर्मी जीव थोड़ा आनन्द का भी भोक्ता था, थोड़े हर्ष-शोक का भी भोक्ता था, धर्मी। अज्ञानी पूरे हर्ष-शोक का भोक्ता था। सिद्ध पूरे आनन्द के भोक्ता हैं। समझ में आया ?

अनन्त अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता है। यह बात यहाँ तक सिद्ध की ली। अब प्राण उतारते हैं जीव। जीवो प्राण पहले जीव कहा था न ? जीवत्व। 'जीवो हवइ चेदा, जीवो हवइ चेदा।' ऐसा जो शब्द लिया था, उसकी बात करते हैं।

उस मुक्त आत्मा को, भावप्राणधारण जिसका लक्षण (स्वरूप) है... लो ! संसार में तो यह दस प्राण जड़, उसका निमित्त था। और दस प्राण की योग्यता अशुद्धनय से उसका जीवत्व था। सिद्ध में भावप्राण आनन्द, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सत्ता ऐसा जो अपना शाश्वत् भावप्राण स्वभाव, उसकी निर्मल पर्याय धारण करते हैं। ऐसा 'जीवत्व' होता है;... सिद्ध में जीवत्व कैसा है, ऐसा कहते हैं। संसारी में जीवत्व कैसा था ? कहाँ इसमें कहीं कल का याद रहे ? उसमें कहा था। संसारी में जीव, जीवत्व कैसा था ? उसके जड़ दस प्राण हैं, उनका निमित्तपना धारण करता हुआ। और अपनी पर्याय में अशुद्धप्राण को धारण करता था। निश्चय से अन्दर स्वभाव शुद्ध आनन्द है, उसे धारण करता था। परन्तु वह तो कर्तारूप है। समझ में आया ?

पंचास्तिकाय है। अस्तिकाय सिद्ध करते हैं न? तो संसार में अस्तिकपना कैसा है और मुक्ति में जीव का अस्तिकपना कैसा है, उसकी बात करते हैं। संसार में तो अशुद्ध प्राण थे। 'दस प्राणे जीवम्' प्राण भी यथार्थ नहीं। अपने ज्ञान, दर्शन से जीवे, वह सम्यग्दृष्टि जीव थोड़ा वह जीवत्व साधक का प्रकार है। समझ में आया? यहाँ तो परिपूर्ण जीवत्व प्रगट हो गया। जीव में जीवपना, जीव में जीवपना। **मुक्त आत्मा को, भावप्राणधारण जिसका लक्षण (स्वरूप) है, ऐसा 'जीवत्व' होता है;**... जीव का जीवपना। भगवान आत्मा, दर्शन और आनन्दरूपी स्वभावरूप भाव है, ऐसी पर्याय में जीवत्वदशा प्रगट हो गयी। समझ में आया?

भाई! यह तो आत्मा भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव ने संसारी आत्मा कैसा देखा है और सिद्ध कैसे हैं, जीवत्व की व्याख्या चलती है न। णमो सिद्धाणं आता है या नहीं? सिद्धपद कैसा है, वह बताते हैं। संसारपद कैसा है, वह बताया। अब सिद्धपद कैसा है, वह बताते हैं। अनादि-अनन्त उसका जीवन कैसा है, वह बताते हैं। कहते हैं कि मुक्त आत्मा को जो परमात्मा हुए सिद्ध, सिद्ध। **भावप्राणधारण जिसका लक्षण (स्वरूप) है...** आनन्द, ज्ञान, दर्शन, शान्ति, ऐसा अपनी निज दशा में भावप्राण, शुद्ध भावप्राण को धारण करना जिसका स्वरूप है—ऐसा सिद्ध को जीवत्वपना है। कहो, समझ में आया?

यह आजीविका नहीं कर देते। राजा को, क्या कहलाता है शालीयाना कर देते हैं न। भाई हमारे आजीविका है, जीवें वहाँ तक। वह आजीविका तो बाहर की—जड़ की है। समझ में आया? और संसार में जो अन्दर में आजीविका करता है, जो अशुद्ध प्राण से, वह भी दुःखमय आजीविका है। यह सिद्ध तो सुख की आजीविकावाले जीव हैं। उनकी आजीवन आजीविका बँध गयी अब, ऐसा कहते हैं।

आत्मा आनन्दस्वरूप की अन्तर्दृष्टि अनुभव करके, सम्यग्दर्शन प्रगट करके, आनन्द का ज्ञान करके, आनन्द में लीन होकर चारित्र हुआ, उसके फलरूप से अनन्त सिद्धपद प्राप्त हुआ। उसकी आजीविका आजीवन—सादि-अनन्त शान्ति की आजीविका हो गयी। ऐसा उन्हें—सिद्ध को जीवत्व। सिद्ध की पर्याय की बात है न, भाई! समझ में आया? वह नहीं कहता आजीविका बाँध दो भाई! महीने में पचास रुपये। अब पचास।

पहले तो ढाई रुपये विधवा को बाँध देते थे। उसमें—कोर्ट में, कोर्ट में। पहले तो स्त्रियाँ विधवा हो तो पाँच सौ रुपये दे। आठ आना ब्याज आवे, ढाई रुपया। ओहो! ढाई रुपये बहुत, बस। अब यहाँ तो ढाई रुपये का वस्त्र भी एक ठीक सा आवे नहीं, एक महीने चले ऐसा। शाकभाजी तो ठीक और।....

यह कहते हैं सिद्ध की जीवन्तता कैसी है? सिद्ध की जीवन्तता ऐसी है कि अपने में आनन्द अतीन्द्रिय ज्ञान, शान्ति से वे जीते हैं। वह सिद्ध का जीवन है। आहाहा! समझ में आया? अभी भोगीभाई आये थे (कहते थे) मेरा साला, पैसे हुए तो भी चैन नहीं। कॉन्ट्रैक्टर भोगीभाई! अभी आये थे। बड़े-बड़े काम ले आवे कुछ परन्तु चिन्ता बहुत रहती है। कल क्या होगा? एक तो यह सरकार का विवाद बड़ा कांग्रेस का। महातूफान और।.....यह तो कौरवों और पाण्डवों जैसा है। नाश.... यह तो कहे चिन्ता इतने-इतने पैसे हुए तो भी चिन्ता का पार नहीं। कल क्या होगा? यह कहते हैं कि वह चिन्ता सिद्ध को नहीं है। समझ में आया?

आत्मा आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु की शक्ति में आनन्द और ज्ञान भरे हैं, वे पर्याय में प्रगट कर दिये। बस उसका जीवन जीवत्व भावप्राण से जीते हैं। कहो, समझ में आया? ऐसे सिद्ध हैं। ऐसी दृष्टि करना और सिद्ध जैसा मैं हूँ। मेरा स्वभाव भी 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' समयसार नाटक में आता है न? बनारसीदास—'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसा सिद्धपद मेरा है। ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। तो कहते हैं, **उस मुक्त आत्मा को, भावप्राणधारण... ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसी अनन्त परिपूर्णता पर्याय की।** ऐसा जिसने धारण किया है, ऐसा जीवत्व सिद्ध भगवान को जीव का जीवपना होता है।

कहो, उनकी आजीविका बाँध गयी। हें? हमेशा की, सादि-अनन्त। आहाहा! हें? अनन्त काल रहेंगे। तब तक जीव है, तब तक रहेंगे। आहाहा! समझ में आया? पर के जीवन की उसे आवश्यकता नहीं। ऐसे सिद्धपद की पहिचान करके अपना आत्मा सिद्ध जैसा है, ऐसी अन्तर में दृष्टि करना, अनुभव करना, उसका नाम सिद्धपद को जानने का फल है। समझ में आया?

अकेले सिद्ध को जाने कि ऐसा मैं हूँ। वे भी पहले संसारी थे। विकार और अज्ञान का नाश करके ज्ञान और वीतरागता प्रगट की तो सिद्धपद का जीवत्व उसे कहा जाता है। एक बोल है एक। नौ बोल जीव के हैं न? एक बोल आया।

दूसरा। चिद्रूप जिसका लक्षण (स्वरूप) है, ऐसा 'चेतयितृत्व' होता है;... थोड़ी सूक्ष्म बात है। पहले में आया था न? चेता, चेता। उसमें दो बातें ली थी, चैतन्यस्वरूप है, इसलिए निश्चय से चेता है और चैतन्यवाला है, इसलिए व्यवहार चैतन्य पृथक् है, ऐसा लिया था। यहाँ व्यवहार-निश्चय कुछ है नहीं। यहाँ तो अकेले भगवान सिद्ध प्रभु चिद्रूप जिनका स्वरूप है, ऐसा चेतयितृत्व होता है। जानन-देखन की पर्याय चेतना, चेतनावाला चेतन। अग्नि चेताओ, नहीं कहते? कहते हैं या नहीं? हैं? अग्नि बग्नि लावे न थोड़ी देर बाद कहे, चेताओ, चेताओ। यहाँ तो आत्मा चेत गया है। अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि चेतयितृत्व जिसका भाव हो गया है। अब उसके साथ चेतयितृत्व है। समझ में आया? सिद्ध में राग-द्वेष या कुछ है नहीं। भेद की बात की ही नहीं। उन्हें भेद है ही नहीं न? वहाँ भेद-अभेद की दो बात कहाँ है?

चिद्रूप जिसका लक्षण (स्वरूप) है, ऐसा 'चेतयितृत्व' होता है;... ऐसा आत्मा का स्वरूप भी ऐसा ही है, ऐसा कहते हैं। मात्र जाननेवाला-देखनेवाला चेतयिता ऐसा जीव का स्वरूप है। राग-द्वेष, विकल्प, शरीर-फरीर, वह जीव का स्वरूप नहीं। समझ में आया? अन्दर है बीच में। है अन्दर? समझ में नहीं आता? हिन्दी करे तब तो हाँ, हाँ करे। ऐसा कभी सुना न हो। परिचय नहीं न? धर्म का परिचय नहीं। बाहर में ऐसा करना और वैसा करना। यात्रा। यात्रा तो आत्मा में आनन्द का आना, वह यात्रा है। समझ में आया? बाकी यात्रा तो शुभभाव है। है? चिद्रूप जिसका लक्षण (स्वरूप) है, ऐसा 'चेतयितृत्व' होता है;... किसमें? सिद्ध भगवान में। सिद्ध में जानना-देखनापना होता है। दूसरा कुछ उसमें है नहीं। अब उपयोग कहते हैं।

चित्परिणाम जिसका लक्षण (स्वरूप) है, ऐसा 'उपयोग' होता है;... सिद्ध में ज्ञान के परिणामरूप पर्याय ऐसा उपयोग सिद्ध में है। परिपूर्ण ज्ञान का उपयोग, दर्शन का उपयोग वह पर्याय है। चित्परिणाम जिसका स्वरूप है, ऐसा उपयोग सिद्ध में होता है। कहो, समझ में आया? अकेले रहते हैं, कहते हैं। चित्परिणामसहित, उपयोगसहित

रहते हैं। लो! अनादि-अनन्त। सादि-अनन्त ऐसे अनादि अनन्त स्वरूप में थे। प्रगट हुए तो सादि-अनन्त पर्याय में हो गये। स्वरूप तो उपयोग चिदानन्द उपयोग तो त्रिकाली आत्मा में पड़ा है। 'उवओगलकखणो णिच्चं' उपयोग लक्षण तो त्रिकाल भगवान आत्मा में अनादि-अनन्त पड़ा है। उसका साधन किया, अनुभव किया और उपयोग की पूर्ण प्राप्ति की तो वहाँ सिद्ध में उपयोग परिणाम रहते हैं। वे परिणाम हैं, परिणाम हैं, ऐसा कहते हैं। सिद्ध में भी परिणाम हैं। सिद्ध में भी परिणाम। क्या परिणाम? चेतना के परिणाम, वे परिणाम वहाँ हैं। क्योंकि यहाँ शुभ और अशुभ परिणाम थे और शुद्ध थोड़े-थोड़े थे, ऐसे वहाँ पूर्ण चैतन्य परिणाम अकेले रहते हैं। अरे! गजब! समझ में आया?

अब प्रभु। सिद्ध भगवान प्रभुत्व हैं। उनमें प्रभुत्व है। प्राप्त किये हुए समस्त (आत्मिक) अधिकारों की शक्तिमात्ररूप 'प्रभुत्व' होता है;... सिद्ध भगवान परमात्मा, णमो सिद्धाणं। वे सिद्ध भगवान कैसे हैं? कि प्राप्त की हुई नयी वीतराग पूर्णानन्द की पर्याय प्राप्त की, कर्म-कर्म, कायकृत कहलाये न? यह आत्मिक अधिकारों की आत्मा की अधिकारों की शक्तिमात्ररूप 'प्रभुत्व' होता है;... इस शक्ति का उसका प्रभुत्व होता है। उसका तो शासन चलता है। समझ में आया? नीचे है। देखो! शक्ति=सामर्थ्य; ईशत्व। (मुक्त आत्मा समस्त आत्मिक अधिकारों को भोगने में... उसका शासन करने में, है? स्वयं समर्थ है इसलिए वह प्रभु है। अपनी निर्मल पर्याय भोगने में समर्थ है, इसलिए प्रभु हैं।

किसी का जड़ का या पर का स्वामित्व है, इसलिए प्रभु है, ऐसा नहीं है। कहते नहीं, भगवान त्रिलोकनाथ है। ऐसा कहते हैं या नहीं? त्रिलोकनाथ क्या, पर का नाथ है? नहीं। ऐसा कहते हैं। अपनी निर्मल वीतरागी शुद्धपर्याय प्रगट हो, वह उसका स्वरूप है। समझ में आया? यहाँ कहीं पर के तो प्रभु हैं नहीं। मानता है। पर का प्रभु पर—उसका प्रभु वह, और तेरा प्रभु तू। मानता है कि यह मेरा शरीर है और मैं उसका स्वामी हूँ, अधिष्ठाता हूँ, राग का मैं स्वामी हूँ, अमुक का स्वामी हूँ, धूल का स्वामी हूँ। कोई स्वामी नहीं। सुन न? तेरा आनन्द स्व-स्वामी सम्बन्ध तो तेरे स्वरूप में है। ज्ञान, आनन्द, वह तेरे स्व और उनका तू स्वामी। यह देश नेता, सब देश के मालिक होंगे या

नहीं ? दिखते हैं । खूब लिखा है ।कौरव और पाण्डव के साथ मिलाया है । भक्तामर में जोजने । आहाहा ! संसार तो ऐसा चलता ही जाता है ।

यहाँ तो कहते हैं कि सिद्ध का प्रभुत्व स्वयं अपनी पूर्ण शक्ति का विकास करके पूर्ण अधिकार प्राप्त किया । पर्याय में पूर्ण अधिकार प्राप्त किया, उस पर उनका प्रभुत्व है । इसमें हीराभाई पर प्रभुत्व है । यह यहाँ इनकार करते हैं ।

मुमुक्षु :दुःख होता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमेश्वर की प्रभुताय भी आत्मा के प्रभु ऊपर प्रभु नहीं । ऐसा कहते हैं । यह प्रभु जो है भगवान, उसका प्रभु पर्याय का प्रभु है, वह । प्राप्त किये हुए... देखो ! पर्याय प्राप्त की न ? सिद्ध, सिद्धपर्याय । अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख आदि प्राप्त किये । ऐसे समस्त (आत्मिक) अधिकारों की शक्तिमात्ररूप... आत्म अधिकार की शक्तिमात्र प्रभु है । वह उसका प्रभुत्व है । आहा ! दूसरी कोई प्रभुता वहाँ नहीं है । यहाँ मानते थे । वहाँ पहले प्रभुत्व माना था । समझ में आया ?

अब कर्ता । सिद्ध कर्ता है या नहीं ? सिद्धभगवान कर्ता है या नहीं ? किसी जीव के, किसी द्रव्य के, किसी पर के कर्ता हैं या नहीं सिद्धभगवान ? सिद्ध भगवान किसी को मोक्ष दे देवे या नहीं ? किसी को समकित दे या नहीं ?

मुमुक्षु : समकित देने का काम तो गुरु का है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा था न ऐसा । सिद्ध का स्वरूप जाने तो समकित पावे । अरिहन्त का स्वरूप जाने तो पावे, कहा न ऐसा ।

यहाँ तो कहते हैं, समस्त वस्तुओं से असाधारण ऐसे स्वरूप की निष्पत्तिमात्ररूप (निज स्वरूप को रचनेरूप)... समस्त वस्तुओं से असाधारण । राग-द्वेष आदि सबसे पृथक् चीज़ । ऐसे स्वरूप की निष्पत्तिमात्र । भगवान आत्मा ज्ञान, आनन्द स्वभाव से भरपूर पड़ा है, उसकी वर्तमान में जो पर्याय प्रगट हुई वह निष्पत्तिमात्ररूप (निज स्वरूप को रचनेरूप) 'कर्तृत्व' होता है;... अपनी पूर्ण शुद्धता को रचनेरूप सिद्ध को कर्तृत्व होता है । सदा ही अपने स्वरूप की रचना करता है, वह कर्तृत्व है । सिद्ध भगवान

को कहीं पर का कर्तृत्व है या नहीं? ईश्वर कर्ता है न सबको? अरे भगवान! अब मदद करो। ईश्वर कृपा और आता है न, क्या नहीं आता? क्या कहते हैं? मनुष्य प्रयत्न, ईश्वर कर्ता। मकान पर ऐसा लिखते हैं। ऐई! यह ईश्वर कर्ता। धूल भी कर्ता नहीं। लिखे अन्दर।

यहाँ तो कहते हैं कि अपना ईश्वर अपनी शक्ति में से प्रगट होकर जो पर्याय निर्मल हुई, उसका वह ईश्वर और प्रभु है। समझ में आया? लोग ऐसा कहते न कि हम प्रयत्न करते हैं और प्रभु की कृपा हो तो दे। धूल मिले यह पैसा। धूल भी मिलता नहीं, सुन न अब! वह तो तेरे पुण्य परमाणु हो तो आता है। उसमें पुण्य भी तेरा नहीं और पैसा भी तेरा नहीं। पुण्य भी तेरा नहीं और पैसा भी तेरा नहीं। ममत्व भी तेरा नहीं परन्तु मानता है (कि यह मेरे हैं)। आहाहा! समझ में आया? सिद्ध भगवान पूर्ण, पूर्ण स्वरूप कर्तृत्व की रचना। अपनी शुद्ध शक्ति का आनन्द आदि जो स्वभाव, उसकी पर्याय में जो क्षण-क्षण में रचना करता है, उसका नाम सिद्ध को कर्तृत्व है। सिद्ध कोई दूसरे की पर्याय को करते हैं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : तो फिर भगवान अपना करे नहीं तो मानते किसलिए हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : माने कौन भगवान को माने? भगवान को माने तो वह भी विकल्प शुभराग है। अपने भगवान को मानना, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह युगपद कहने से प्रभु तो.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आज आया है चन्द्रशेखर का, शुभ अवसर में। देखो! भाई! न्याय का यह सब। निमित्त उड़ाना है न। उसे निमित्त स्थापित करना है। प्रसन्नराज ऋषि थे। देखो! वे ध्यान में थे, उन्हें केवलज्ञान हुआ। कोई मनुष्य संजय निकला और भगवान की वाणी निकली। देखो! भाई! केवली कहते हैं मैं भी ध्यान करता था तब मेरे ध्यान में मेरे पुत्र का कोई नाश करने की, आहार लेने के बाद बात सुनी तो मेरा ध्यान डिग गया। देखो! निमित्त का असर! प्रसन्नराज ऋषि आते हैं न? प्रसन्नराज! राजा के ऋषि। ध्यान में थे। लड़के को कोई ले जाने आया था। मुनिराज कहे, इसके पुत्र का ऐसा हुआ, वहाँ तो मेरा ध्यान च्युत हो गया। देखो! करते.... करते.... करते.... करते.... हथियार फेंके, मारे, ऐसा करते-करते हथियार हो रहे। हथियार हो रहे और

सिर पर मुकुट था वह मारने गया। वहाँ..... को मुकुट नहीं मिलता। देखो! मुंडाई हुई क्रिया में कितनी देर? कहे केवलज्ञान हुआ और एकदम छू गये। भाई! उसे लड़ाना है न? और लोगों को पसन्द हो, ऐसी बात है। देखो! उसका राज छोड़कर जब ध्यान में बैठा, कहे, मैं ध्यान में बैठा हूँ। ऐई! तो तुम्हारे कुँवर को ऐसा होता है, वैसा होता है, अन्दर खदबदाहट हो गयी।विचार करते-करते बाकी रह गये तो मुकुट लेकर मारने गये तो, आहाहा! अरे! यह क्या, मैं तो मुनि हूँ। वह मुंडाया परन्तु केवलज्ञान मुनि ने किया। ऐई! ऐसे के ऐसे। हैं?

मुमुक्षु : निमित्त स्थापन करे तो.... निमित्त से पर के ऊपर असर हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : असर हुआ। उसके कारण यह केवलज्ञान हुआ।

मुमुक्षु : वह मुंडा नहीं होता तो नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। ऐसा उसे कहना है। इसलिए व्यवहार शुद्धि रखो। और अकेले जो बातें करनेवाले हैं, उन्हें तो क्या होगा? वे वापस एक-दूसरे साधु सुनने जाते थे न? सुनने। प्रसन्न केवली हुए तब। उन केवली के निकट सब सुना तब उसे विचार हुआ। आहा! इतनी कोरी शुद्धि आत्मा की बातें करनेवाले उसके बेचारे के अन्तःकरण कितने मलिन होंगे? हैं? आहाहा! व्यवहार की रुचि। व्यवहार को बहुत स्थापित करे। बापू! व्यवहार होता है। परन्तु कौन सा व्यवहार? यह भगवान की भक्ति का विकल्प भी कब? कि अपने शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप की दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ तो निश्चय हुआ तो विकल्प है, वह व्यवहार है। परन्तु व्यवहार से निश्चय है और व्यवहार धर्म है और व्यवहार मुक्ति का कारण है, यह तीन काल-तीन लोक में नहीं है। समझ में आया? हर्ष है न? लोग प्रसन्न हो जाये। और एक दूसरी बात यह तो सज्जनता की लौकिक।

एक मनुष्य था। गरीब मनुष्य था। आम बेचता था आम। आम... आम। सवेरे शाम बेचते-बेचते थोड़े आम रह गये। अब क्या करे? एक गृहस्थ मिल गया। कहे, भाई! लाओ आम। चार रुपये के बाकी थे, वे गृहस्थ को दे दिये। उस गृहस्थ के पास दस रुपये थे। दस रुपये दिये और कहे छह रुपये मेरी दुकान में वापस देने आना। वह तो गया कोठार में और सेठ भी चला गया। कोठार में जाता था तो रास्ते में सिर फूट

गया। और उसे हॉस्पिटल में ले गये। हॉस्पिटल में जवान मनुष्य और उसकी माता गरीब और वृद्ध। उसे खबर पड़ी तो हॉस्पिटल में आया। पूरे शरीर में पट्टियाँ बँधी हुई थीं। माता यहाँ क्यों आयी माता? तुझे ठीक नहीं? भाई! तुझे ठीक नहीं। ठीक तो माँ सुन! फिर तो मेरी तैयार मरने की है, मरने की। देह की स्थिति पूरी होने में है, मैं नहीं बचूँगा। मुझे अन्दर लगता है देह छूट जायेगी। माँ! मेरा एक कहना करना। मैं छह रुपये लाया हूँ, वह वापस देना चाहिए। तेरे पास अर्थी के, अर्थी के पैसे न हो तो यह पैसे तो उसे जाकर दे आना। बहिन को शिक्षा की। बहिन! माँ का ध्यान रखना। गरीब अवस्था है, वृद्ध अवस्था है। तो तू ध्यान रखना परन्तु छह रुपये तो देने हैं, उसे दे देना। फिर मर गया। और उसकी बहिन छह रुपये सेठ को देने जाती है। देने जाती है और बात करती है। तो सेठ पूछता है, तू छह रुपये कहाँ से लायी? मेरा भाई गुजर गया। क्यों? उस समय तुमने चार रुपये के आम लिये थे न? उसमें तुमने दस रुपये दिये थे, उसमें से छह रुपये वापस देने के बाकी रह गये थे, वे छह रुपये। बहिन ने ऐसी करुण कथा कही कि लोगों को रोना आ गया। सुनकर सबने चन्दा कर दिया तीन सौ रुपये का। देखो! ऐसी बात लोगों को अच्छी लगती है। और बात भी सच्ची। ऐसी लड़की बोली! मेरा भाई गुजर गया है। माता वृद्ध है। मेरे भाई का अन्तिम वचन है। छह रुपये तो सेठ के हैं, उसे देना। बहिन ने कहा, भाई! ले लो। अरे! क्या है? वह तो गुजर गया। कल आम लिये थे वह। आहाहा! सबको रुदन आ गया। देखो! सज्जन का जीवन। लौकिक नीति की बात वह लोगों को ठीक पड़ती है।

यहाँ तो कहते हैं, यह सब तो जीव ने अनन्त बार किया है। सुन न अब। अपने जीवन का चैतन्यस्वरूप क्या है, उसकी दृष्टि और ज्ञान किया नहीं। अब यह तो अनन्त बार वापस निगोद में जायेगा। कसाईखाने लगायेगा। जब तक मिथ्यात्वभाव हो और ऐसी क्रिया हो तो भी फिर कसाईखाने लगायेगा। आत्मा के भान बिना वह पर्याय का चक्कर फिरेगा शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभ चक्कर जाओ। आहाहा! यह लोगों को कीमत नहीं आती। शुभ की बहुत आती है। उससे पुण्य बँधे। और फिर व्यवहार की भूल हो तो बता सके। निश्चयवाले बातें करते हैं और अन्दर में भूल में भरे हुए हों तो बताना हो तो बताना किस प्रकार? इस प्रकार भी लडाव्युं है।

प्रसन्नराज ऋषि ने भी प्ररूपणा में ऐसा ही कहा है। व्यवहार हो तो निश्चय होता है, ऐसा केवलज्ञान में आता है।

भाई! आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप है। ऐसा है तो सम्यग्दर्शन और ज्ञान उसके आश्रय से प्राप्त होते हैं। व्यवहार-प्यवहार से नहीं होता, वह तो राग है। ओहो! शरीर जीर्ण हो जाये, उसे ख्याल आ जाये कि यह देह छूटने की तैयारी है। खिंचता है। अन्त में कह दिया लड़के को, अब देह खिंचती है। अब अभी देह छूट जायेगी। अन्त में यह बात की। वहाँ तो, यह तो देह के रजकण खलबलाहट, खलबलाहट। चलो स्थिति पूरी करके। कहाँ जायेगा? जैसी श्रद्धा, ज्ञान, भावना वहाँ उत्पन्न होगा। वहाँ कोई साथ आकर उत्पत्ति में मदद करेगा? नहीं। आहाहा!

कोई किसी का शरण नहीं है। मृत्यु या जीवन। दोनों ही काल में। जन्म काल में या मृत्यु काल में। कोई शरण नहीं है। शरण तो भगवान आत्मा है। जहाँ दृष्टि करने से शान्ति मिले और जीवन का सुधार यहाँ से हो जाये। बाकी कोई सुधार करने का उपाय नहीं है। आहाहा!

चैतन्य भगवान। देखो! सिद्ध भगवान करते हैं तो यह करते हैं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! तो तुझे भी करनेयोग्य हो तो शुद्धता करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। कर क्या सकता है? एक अँगुली भी ऊँची नहीं कर सकता। आहाहा! जड़, जड़ में, जेल में भगवान भिन्न पड़ा है। समझ में आया? यह आता है न? 'वह दिव्य अन्तःतत्त्व जिससे बन्धनों से मुक्त हो' वह दिव्यशक्तिमान जिससे, अरे! जंजीर तो कैसी, यह शरीर और कार्मण और उसमें तेजस और उसमें राग तथा उसके मध्य में पड़ा हुआ पूरा। दिखते हैं वे सब जेल की सिर के ऊपर दिखते हैं सब। वह तो पड़ा ऐसा का ऐसा आगे। अन्दर गया अन्दर। आहाहा! आता है न? बहु पुण्य पुंज प्रसंग से में (आता है)। दिव्य शक्तिमान यह तो भगवान है। इसे जंजीर में राग और पर की एकता में पड़ा है, उसे निकाल, निकाल, निकाल; इसके बिना तुझे कहीं सुख है नहीं।

इन विषय में सुख, भोग में सुख, इज्जत में सुख, धूल में भी सुख नहीं। मूढ़ मिथ्यात्व से लिप्त ऐसी मान्यता करता है। वह रजनीश अभी विषयानन्द, वह ब्रह्मानन्द है, ऐसा चला है। ऐई! चन्दुभाई! घड़ियाली। अभी ऐसा चलाया है। हैं? आहा!

विषयानन्द के आनन्द में ब्रह्मानन्द है। आहा! हद कर डालते हैं न? अकेला पाप है। हैं? अरे! अपना भगवान आनन्दस्वरूप, वह बाहर निकलकर विकल्प में आनन्द माने, वह महा चैतन्यप्राण का घात होता है। आहाहा! उसे माननेवाले मिले हैं। हजारों लोग, दस-दस हजार लोग इकट्ठे होते हैं। यह जवान, तुम्हारे गाँव में हुआ है न? आहाहा!

यह आत्मा आनन्दस्वरूप, उसे पर में आनन्द मानना, वह महा मूढ़ता है। अपने आनन्द की रचना करे, वह उसका कर्तव्य है, ऐसा कहते हैं। सिद्ध भी वह कर्तव्य करते हैं। आहाहा! आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द आदि पूर्ण पर्याय प्राप्त हुई है। समझ में आया? वह उनका कर्तव्य है। **असाधारण ऐसे स्वरूप की निष्पत्ति...** निष्पत्ति है न? प्राप्ति। उसका कर्तव्य है। ऐसा आत्मा में कभी भी यथार्थ कर्तव्य तो यह है कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द की रचना करना, वह कर्तव्य है। राग का कर्तव्य तो जाननेयोग्य है। एक ऐसी परिणति थोड़ी है, जाननेयोग्य। आदरनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

यह कर्तव्य हुआ। अब भोक्तृत्व। **स्वरूपभूत स्वातन्त्र्य जिसका लक्षण (स्वरूप) है, ऐसे सुख की उपलब्धिरूप 'भोक्तृत्व' होता है;**... सिद्ध में भोक्तापना क्या? सिद्ध क्या भोगते हैं। अनाज, पानी कुछ भोगते हैं? **स्वरूपभूत स्वातन्त्र्य...** अपना ज्ञानानन्द स्वरूपभूत स्वरूप की स्वतन्त्रता जिसका स्वरूप, ऐसा सुख, ऐसा। स्वरूपभूत स्वतन्त्रता, जिसका स्वरूप है, ऐसा सुख। यह सुख की व्याख्या। आहाहा! अपने स्वरूप में आनन्द है, ऐसा स्वतन्त्र सुख। जिसका स्वरूप सुख है, ऐसे स्वरूप की उपलब्धि, ऐसे आनन्द की प्राप्ति। उसकी उपलब्धिरूप भोगना, उसका भोक्तृत्व है। समझ में आया?

अब देहप्रमाण। सिद्ध भगवान अतीत अनन्तर (-अन्तिम) शरीरप्रमाण... गत भव का अन्तिम शरीर तत्-अनुसार अवगाहपरिणामरूप... अवगाहन व्यापनरूप 'देहप्रमाणपना' होता है। मुक्त आत्मा की अवगाहना चरमशरीरप्रमाण होती है... ऐसा कहा न? अतीत अनन्तर। भूतकाल का अन्तिम शरीर। यह अन्तर बिना ऐसा। अनन्तर अर्थात् अन्तर बिना, अन्तिम शरीर। उस शरीर अनुसार अवगाह परिणामरूप देहप्रमाणपना होता है। अन्तिम शरीर प्रमाण सिद्ध भगवान विराजते हैं। आकार ऐसा होता है। वह अपनी योग्यता से, हों! शरीर तो शरीर से मिलता है। **इसलिए उस अन्तिम शरीर की**

अपेक्षा लेकर उनको 'देहप्रमाणपना' कहा जा सकता है। अन्तिम शरीर था, वह छूट गया। तत्प्रमाण आत्मा का आकार पूर्णानन्दस्वरूप का आकार सिद्ध में रह गया। वह देह प्रमाण। पूर्व की अपेक्षा से देहप्रमाण, ऐसा।

और उपाधि के सम्बन्ध से विविक्त ऐसा आत्यंतिक (सर्वथा) 'अमूर्तपना' होता है। लो! उसमें था न पहले मूर्त और अमूर्तपना दोनों। उपाधि के सम्बन्ध से विविक्त—भिन्न, रहित। भगवान को कोई उपाधि है नहीं। ऐसा आत्यन्तिक अर्थात् सर्वथा अमूर्तपना होता है, ऐसा। संसार में कथंचित् मूर्त कर्म के साथ कहने में आता था। यहाँ तो बिल्कुल नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्यन्तिक अमूर्तपना होता है। अमूर्तपना भगवान सिद्ध को प्रगट हुआ, ऐसा आत्मा का स्वभाव है। लो! आठ बोल हो गये।

(मुक्त आत्मा को) 'कर्मसंयुक्तपना' तो होता ही नहीं,... यह नौवाँ बोल। कर्मसंयुक्त है नहीं। संसार में भावकर्म—द्रव्यकर्मसहित थे। आया था या नहीं? कल आया था, याद है। चैतन्यपरिणाम में पुद्गलपरिणाम जिसे निमित्त है। क्या कहते हैं? चैतन्यपरिणाम जो राग-द्वेष का भाव है, उसमें पुद्गलपरिणाम निमित्त है। आया था या नहीं? ऐसे चैतन्यपरिणाम संयुक्त निश्चय से है। क्या कहा? संसारी। पुराने पुद्गल कर्म का उदय जिसे निमित्त है। किसे? अपने विकारी परिणाम को। ऐसे विकारी परिणाम भावकर्म से सहित जीव संसार में है। बराबर है? अब भावकर्म जिसे निमित्त है, ऐसे द्रव्यकर्म का संयुक्तपना असद्भूत व्यवहारनय से है। कहो, भीखाभाई! क्या आता है? द्रव्यकर्म का स्पष्टीकरण क्या किया? कल रात्रि में तुम थे बहुत।

मुमुक्षु : थे साहेब! परन्तु अभी बराबर ख्याल में नहीं आया तो किस प्रकार कहूँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल में नहीं आया।

मुमुक्षु : बाकी पूर्व के जो कर्म हैं, वे अभी के विकारी भाव निमित्त हैं। और नये कर्म का निमित्त, विकारी भाव इतना आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना आता है।

ऐसा नहीं, देखो! सुनो! कि यह आत्मा है, आत्मा। उसके परिणाम में जो शुभ-अशुभ पुण्य-पाप के भाव विकार है। विकार है न? तो उस विकार में पूर्व के कर्म

निमित्त है। पूर्व के कर्म निमित्त है और शुभ-अशुभ विकारी परिणाम नैमित्तिक हैं। तो नैमित्तिक परिणाम संयुक्त हैं, वह निश्चय है। क्योंकि अपनी पर्याय में है न? और जो पुण्य और पाप के परिणाम जिसे निमित्त है। किसे? कर्म को। हैं? द्रव्यकर्म। परन्तु द्रव्यकर्म का क्या लेना? पूर्व का और नया दोनों लेना। समझ में आया?

एक आत्मा में पुण्य और पाप कर्म में निमित्त जो है, वह तो पुराने कर्म। विकार परिणाम आत्मा में होता है, उसे निमित्त है तो पुराने कर्म। उदय। परन्तु आत्मा जिसे निमित्त है—आत्मा के विकारी परिणाम जिसे निमित्त है, वह द्रव्यकर्म। द्रव्यकर्म संयुक्त है। तो द्रव्यकर्म संयुक्त में दो द्रव्यकर्म। पुराने कर्म और नये कर्म दोनों (कर्म) संयुक्त है। नहीं तो ऐसा होगा कि पुण्य और पाप के परिणाम जिसे निमित्त है नये को। तो नये कर्म संयुक्त है और पुराने कर्मरहित है? समझ में आया?

कल रात्रि में कहा था परन्तु भाई ने गड़बड़ की थी। याद रहा नहीं परन्तु बंगड़ी में नहीं करते हों। कहो, समझ में आया? हीराभाई! सवेरे का कितना याद रहा? याद है?

मुमुक्षु : यह देखो तो इतना सब याद रहे तब तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो उसकी बात इसने की थी। यहाँ तो कहते हैं। यहाँ तो कल एक बोल रह गया था, इसलिए अधिक स्पष्ट करते हैं। कि पुराने कर्म और नये कर्म, उसे आत्मा के पुण्य और पाप परिणाम निमित्त है। दोनों को निमित्त है। अर्थात् उस कर्मसंयुक्त इस अपेक्षा से। जड़कर्म संयुक्त असद्भूतव्यवहारनय, इस अपेक्षा से। समझ में आया?

और आत्मा के विकारी परिणाम में निमित्त है जड़। तो वह पूर्व का उदय। एक ही पूर्व का उदय, ऐसा यहाँ लेना। जो विकारी परिणाम होते हैं, उसमें पुराने कर्म का उदय निमित्त है। बस। तो भावकर्म संयुक्त है, यह निश्चय हुआ। अपनी पर्याय में है न? इसलिए निश्चय हुआ। तथा पुण्य और पाप के परिणाम जिसे निमित्त है। जड़ को। जड़ को तो दोनों जड़। नये कर्म बँधे और पुराने पड़े हैं, दोनों में पुण्य और पाप का कर्म निमित्त है। ऐसे पुराने और नये कर्म दोनों संयुक्त है, वह असद्भूतव्यवहारनय से कहने में आया है। क्योंकि जड़ है। समझ में आया?

कल रात्रि में कहा था न? भाई! यह सिद्ध में क्या है? वे तो रहित हैं। उन्हें निमित्त है नहीं। भावकर्म है नहीं तो भावकर्म संयुक्त नहीं। भावकर्म क्या? तो उसका तो शुद्ध चिदानन्द निर्मलानन्द भावकर्म उसके साथ है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो कर्मसहित नहीं आना है न इसमें? (मुक्त आत्मा को) 'कर्मसंयुक्तपना' तो होता ही नहीं,... कर्मसंयुक्तपना कभी नहीं होता। वह तो भगवान अशरीरी अकर्म हो गये। क्योंकि द्रव्यकर्मों और भावकर्मों से विमुक्ति हुई है। लो! परमात्मा सिद्ध भगवान को तो जड़ द्रव्यकर्म से भी विमुक्ति और पुण्य तथा पाप के विकल्प जो भावकर्म है, उससे भी मुक्ति। विमुक्ति (अर्थात्) विशेष मुक्ति। अब पूर्ण हो गये। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अभी णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं करे परन्तु सिद्ध कैसे हैं, उसकी तो अभी खबर नहीं। पहाड़ा बोलता जाये। क्या सिद्ध? क्या अरिहन्त? क्या आचार्य?

द्रव्यकर्म वे पुद्गलस्कन्ध हैं और भावकर्म वे चिद्विवर्त है... यह स्पष्टीकरण किया, यह स्पष्टीकरण किया। द्रव्यकर्म और भावकर्म से मुक्ति मिली परन्तु कहते हैं, वह स्वरूप क्या? द्रव्यकर्म जो जड़ है, पुद्गलस्कन्ध है। उससे भी विमुक्ति मिली परन्तु भावकर्म जो पुण्य और पाप के विकल्प हैं, उनसे भी मुक्ति मिली। एकड़ा है न? नीचे है (फुटनोट में) चिद्विवर्त = चैतन्य का परिवर्तन अर्थात् चैतन्य का एक विषय को छोड़कर अन्य विषय को जाननेरूप बदलना; चित्शक्ति का अन्य-अन्य ज्ञेयों को जाननेरूप परिवर्तित होना।

अब चित्शक्ति अनादि ज्ञानावरणादिकर्मों के सम्पर्क से (सम्बन्ध से) संकुचित व्यापारवाली होने के कारण ज्ञेयभूत विश्व (-समस्त पदार्थों के) एक-एक देश में क्रमशः व्यापार करती हुई विवर्तन को प्राप्त होती है। पहली बात यह करते हैं। क्या? कि आत्मा में जो चित्शक्ति अनादि ज्ञानावरणादि कर्मों के निमित्त से सम्पर्क से, ऐसा लिया है, हों! सम्बन्ध से। कर्म के उदय के साथ ज्ञानपर्याय सम्बन्ध करती है, सम्बन्ध। तो सम्बन्ध करती है तो हीन हो गयी है। चित्शक्ति अनादि ज्ञानावरणादि कर्मों के सम्पर्क से, सम्बन्ध से संकुचित व्यापारवाली होने के कारण। क्या कहते हैं? जानने-देखने की जो अवस्था है, वह कर्म के उदय के साथ सम्बन्ध करने से जानने-देखने की शक्ति

संकुचित हो गयी है। अल्प हो गयी है। अधूरी हो गयी है। समझ में आया ? चित्शक्ति अनादि ज्ञानावरणादिकर्मों के सम्पर्क से (सम्बन्ध से) संकुचित व्यापारवाली... ज्ञान की पर्याय में संकोच व्यापार हो गया है। क्योंकि कर्म के निमित्त में ज्ञान की पर्याय का जुड़ान है। जुड़ान है। कर्म के कारण से नहीं, हों! कर्म के सम्पर्क के कारण से। सम्पर्क किया। आहाहा! कितनी बात करते हैं। देखो!

भगवान आत्मा उसके द्रव्य, गुण हैं वे तो पूर्ण शक्तिवान हैं। परन्तु पर्याय अर्थात् अवस्था में चिद्विवर्तन बदलना। ज्ञान की पर्याय की अवस्था में बदलने से संकुचित हुई है। क्यों? कि कर्म का निमित्त जो है, उस ओर सम्बन्ध किया है। सम्बन्ध किया है तो ज्ञान की जानने की शक्ति संकुचित परिणमन करती है। संकुचित थोड़ी परिणमन करती है, ऐसा कहते हैं। व्यापारवाली होने के कारण ज्ञेयभूत विश्व... देखो! अपने ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य समस्त पदार्थ। उसे एक-एक देश में क्रमशः व्यापार करती हुई... क्योंकि, ज्ञान की पर्याय संकुचित है न? जानने-देखने की अवस्था थोड़ी संकुचित होने से पूरे विश्व को एक समय में जानने का व्यापार नहीं कर सकती। बराबर है? यह सब रात्रि में आता नहीं। नहीं?

मुमुक्षु : आवे और भूल भी जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे और भूल जाये, दोनों साथ में।

मुमुक्षु : फिर उस समय फेल हो जाये, उसकी अपेक्षा यहाँ से कह देना अच्छा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इसमें भी सादी भाषा में बात आती नहीं? भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन से परिपूर्ण भरा हुआ है। उसकी वर्तमान पर्याय संसार में ज्ञेय जानने की शक्ति अपूर्ण है। संकुचित है। क्योंकि कर्म के निमित्त में ज्ञान की पर्याय को सम्बन्ध है तो संकुचित हो गयी है। तो पूरे विश्व को एक समय में जानने की ताकत नहीं है। कहो, समझ में आया?

तो क्या है? ज्ञेयभूत विश्व... पूरा विश्व ज्ञेय है। जाननेयोग्य विश्व है। (समस्त पदार्थों के) एक-एक देश में क्रमशः... थोड़ा पहले जाने, उसे छोड़कर दूसरा जाने, उसे छोड़कर तीसरा जाने — इस प्रकार क्रम से एक-एक भाग में क्रमशः व्यापार

करती हुई विवर्तन को... पलटने को प्राप्त होती है। गजब, भाई! सिद्ध की बात नहीं करते अभी। सिद्ध की बात तो बाद में आयेगी। यह तो संसार में पहले ऐसा होता है, उसकी बात करते हैं।

भगवान आत्मा वस्तुरूप से देखो तो यह ज्ञान, दर्शन से परिपूर्ण, परिपूर्ण है। तीन काल, तीन लोक को जानने की शक्ति से पूरा परिपूर्ण है। परन्तु पर्याय में-अवस्था में ज्ञानावरणीयकर्म के उदय में परद्रव्य का संग करने से, सम्बन्ध करने से आया न उसका संग नहीं आया? संग एव। 'पर संग एव।' पर का संग किया, पर का सम्पर्क किया। वह तो वह की वह भाषा ली। अमृतचन्द्राचार्य की भाषा है। है या नहीं? क्या? २७८ (गाथा) समयसार... (के श्लोक १७४/७५) समझ में आया? जैसे वह परसंग किया है, ऐसे यहाँ अपने शुद्धज्ञान स्वभाव की पर्याय का पूर्ण संग न करके, पूर्ण द्रव्य का संग न करके ज्ञान की पर्याय ने कर्म के निमित्त का संग किया तो ज्ञान की पर्याय संकुचित हो गयी है। हीन हो गयी है। और हीन होने से विश्व के समस्त पदार्थ हैं, उन्हें क्रमसर एक, एक, एक, एक, एक जानने की शक्ति है। एक साथ सबको जानने की शक्ति नहीं है।

ज्ञेयभूत विश्व। यहाँ तो देखो न! स्पष्टीकरण किया है न? तेरा विश्व ज्ञेयभूत है। तेरा ज्ञान तू है न वह। पूरा विश्व राग से लेकर सब वह तेरा ज्ञेयभूत है। तू तो ज्ञानस्वरूप है। सब जाननेयोग्य है बस। जानना, जानना, जानना, वह तेरा स्वभाव है। परन्तु तूने जानने की शक्ति की व्यक्तता परिपूर्ण क्यों न हुई? और अल्प संकुचित क्यों है? नहीं तो स्वभाव परिपूर्ण है तो पर्याय भी परिपूर्ण होनी चाहिए। परन्तु वह ज्ञान की प्रगट अवस्था पर्याय में अवस्था ने ज्ञानावरणीय कर्म के निमित्त का संग किया, परिचर्य किया तो संकुचित हो गयी। ज्ञान की पर्याय हीन हो गयी। समझ में आया?

मुमुक्षु : अभी उदय से आया....

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय से कहाँ हुआ है? सम्पर्क से हुआ है। सम्पर्क किया ऐसा। समझ में आया?

ज्ञेयभूत विश्व के एक-एक देश में... वह भी क्रमशः व्यापार करती हुई विवर्तन को प्राप्त होती है। परिवर्तन को प्राप्त होती है। ज्ञान की पर्याय परिवर्तन को प्राप्त होती है।

एक-एक देश को क्रमशः जानती हुई.... परन्तु अब सिद्ध में क्या होता है? देखो! आहा! कितनी बात की है! एक-एक गाथा में बहुत स्पष्टता। किन्तु जब ज्ञानावरणादिकर्मों का सम्पर्क विनष्ट होता है,... सम्बन्ध विनाश पाता है, ऐसा कहते हैं। कर्म का नाश होता है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : सम्बन्ध छोड़ देता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ दे। ज्ञान की वर्तमान पर्याय, अवस्था कर्म का सम्बन्ध छोड़ देती है, कर्म का सम्बन्ध छोड़ देती है। समझ में आया?

ज्ञानावरणादि कर्मों, देखो! यहाँ तो सब लिये, हों! ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय (इत्यादि) सम्पर्क विनाश पाता है। सम्बन्ध विनाश पाता है। पहले में सम्बन्ध किया और दूसरे में सम्बन्ध विनाश पाता है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! बात कितनी स्पष्ट है! तो भी कहे, नहीं। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय प्रमाण ज्ञान की (पर्याय) हीन होती है।

मुमुक्षु : निमित्त का असर होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का असर धूल में भी नहीं। ज्ञानावरणीय का जितने प्रमाण में उदय, उतना ज्ञान को आवरण आता है। जितना क्षयोपशम उतना ज्ञान खिल जाता है। ऐसी बात है ही नहीं। जितना सम्पर्क करे, उतनी हीन (दशा) हो जाती है। सम्पर्क छोड़ दे, उतनी अधिक हो जाती है। वापस यह थोड़ा पढ़ना चाहिए, हों! मात्र सुनकर पढ़े और मेल मिलावे तो बैठे, ऐसी बात है। इसे घर में कब थी, वह वहाँ आवे? यह मोरारजीभाई के पक्ष में है। देशसेवा का हो न जरा।

किन्तु जब ज्ञानावरणादिकर्मों का सम्पर्क विनष्ट होता है,... वाह! सर्व ज्ञेयभूत विश्व के जो पूरा विश्व जाननेयोग्य है, तेरा नहीं। राग से लेकर सिद्ध भगवान भी ज्ञेयभूत है। अपने ज्ञान में जाननेयोग्य है, सिद्ध भगवान भी अपने ज्ञान में है नहीं। विश्व के सर्व देशों में युगपद् व्यापार करती हुई... वह क्रम से थी। कथंचित् कूटस्थ होकर। समझे? कथंचित् कूटस्थ अर्थात्? जैसी पर्याय पूर्ण हुई, वैसी की वैसी दूसरे समय रहती है। कूटस्थ अर्थात् वैसी की वैसी टिकती है। कूटस्थ अर्थात् परिणमती तो है। इसका स्पष्टीकरण नीचे है। विशेष आयेगा.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३३, गाथा-२८-२९, मगसिर शुक्ल-९, बुधवार, दिनांक -१७-१२-१९६९

२८वीं गाथा। सिद्ध का स्वरूप। २७ में संसारी जीव का स्वरूप बताया। उससे विरुद्ध अब सिद्धस्वरूप का वर्णन। आत्मा की पूर्ण निर्मलदशा होने पर कैसी उसकी अवस्था और स्वरूप होता है, उसका वर्णन है। और ऐसा ही आत्मा का स्वरूप है। जो सिद्धों में से निकल गया, वह आत्मा में से निकलनेयोग्य है। सिद्ध में रहा, वह रहने योग्य है। समझ में आया? जैसे सिद्ध परमात्मा हैं, वैसा ही इस आत्मा का स्वरूप है। क्योंकि सिद्ध जो हुए, वे आत्मा में से हुए हैं। बाकी हो, ऐसा है (नहीं)। लो! क्रियाएँ जो पुण्य-पाप की हैं, उनमें से यह सिद्धपद होगा? शरीर में से होगा? तथा एक समय की पर्याय जो विकार है, उसमें से कहीं सिद्धपद आयेगा? अन्तर में अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द परिपूर्ण स्वभाव सत्ता अस्तिकाय है न? ऐसी परिपूर्ण आत्मा की सत्ता, उसे एकाग्र करने से उसमें से सिद्धपद की प्राप्ति होती है। कहो, समझ में आया?

अब यहाँ तक आया। जरा सूक्ष्म तो है थोड़ा। देखो! **सर्वज्ञपने की और सर्वदर्शीपने की उपलब्धि है।** है नवरंगभाई? २८ का पीछे का भाग है। अन्तिम पाँच लाईन। है? क्या कहते हैं? यह आत्मा जो परमेश्वर है, सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा। ऐसा जो यह आत्मा, वह अपने अन्तर आत्मा के शुद्धस्वरूप की प्राप्ति करने से अत्यन्त पूर्ण एकाग्र होने से सर्वज्ञ और सर्वदर्शीपना प्रगट होता है। समझ में आया? यह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की प्राप्ति होने पर **यही, द्रव्यकर्मों के निमित्तभूत भावकर्मों के कर्तृत्व का विनाश है;...** कहते हैं न, कहते हैं। ऐसा का ऐसा चला नहीं जाता कहीं।

आत्मा में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी स्वभाव है। क्योंकि जो वस्तु हो, उसका ज्ञान, दर्शन स्वभाव जीव का वह परिपूर्ण ही होता है। वस्तु का स्वभाव कहीं अपरिपूर्ण, खण्डित और विकारी नहीं हो सकता। वस्तु में न्याय से। वस्तु है, यह आत्मा और उसका जो ज्ञान, दर्शन और आनन्दस्वभाव वह परिपूर्ण और अखण्ड एकरूप है। ऐसे स्वभाव की अन्तर में अनुभव की प्रतीति करके स्वरूप में स्थिर होने से शक्ति में जो पूर्ण सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है, वह वर्तमान व्यक्तता प्रगट हो, उसे यहाँ सर्वज्ञ और सर्वदर्शी सिद्धपद कहते हैं। समझ में आया?

यह भगवान को द्रव्यकर्मों के निमित्तभूत भावकर्मों के कर्तृत्व का विनाश है;... जड़कर्म का संयोग और उससे उत्पन्न होते पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे भावकर्म। उनका तो उसे नाश है। लो! यह तो समझ में आता है या नहीं। शान्तिभाई! आत्मा के अतिरिक्त बात भी क्या तब? लोगों को ऐसा लगता है कि क्या यह आत्मा? परन्तु आत्मा वह कहीं दौड़ादौड़ करे और पूजा करे, भक्ति करे और यह पालन करे न व्रत, तप करे, वह तो सब विकल्प है।

मुमुक्षु : वह आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मा नहीं। आहाहा! क्या हो? गलत रास्ते दौड़ गया है न अनादि से। उसे निज घर में आना कठिन पड़ता है, कठिन पड़ता है। आहाहा!

कहते हैं, भाई! तुझे दूसरे पदार्थ की शक्ति और सामर्थ्य की तुझे प्रतीति आती है। तो उसका जाननेवाला तू, उसमें कोई शक्ति और सामर्थ्य है? या सब शक्ति और सामर्थ्य पर में ही है? समझ में आया? भगवान आत्मा ऐसा ज्ञानस्वभाव, 'ज्ञ' स्वभाव, स्वभावी वस्तु का 'ज्ञ' स्वभाव, स्वभावी वस्तु उसका दर्शनस्वभाव, स्वभावी वस्तु का आनन्दस्वभाव। ऐसे स्वभाव की अन्तर की प्रतीति करने से कि मैं तो इतने सामर्थ्यवाला हूँ। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी पूर्ण आनन्द के साथ वीर्य भी इकट्ठा आ गया। ऐसे सामर्थ्यवाला हूँ, ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन में प्रतीति करने से आत्मा का इतना सामर्थ्य है, ऐसा प्रतीति में आता है। समझ में आया?

और इस प्रतीति के भाव में जो आत्मा के सामर्थ्य की प्रतीति आयी, उस आत्मा के सामर्थ्य में एकाग्र हो, वह चारित्र। चारित्र वह है, चरना। आनन्दघन भगवान पूर्णानन्द की प्रतीति के पश्चात् उसमें स्थिर होना। स्थिर होने से शक्ति में परिपूर्णता, वह वर्तमान दशा में व्यक्तता परिपूर्णता आवे, यह उसे मोक्ष और सिद्धपद कहते हैं। अरे! इसे कुछ समझना न हो और दरकार न हो तो ऐसे का ऐसा अनादि काल से भटकता है। ऐसे परमात्मा को भावकर्म का नाश है, ऐसा कहते हैं। उसे पुण्य-पाप के विकल्प नहीं होते। संसारी को होते हैं, यह तो पहले कहा। आस्रव और बन्ध हो उसमें। **यही, द्रव्यकर्मों के निमित्तभूत... द्रव्यकर्म अर्थात् जड़कर्म—जड़ ज्ञानावरणी। उसके निमित्तभूत,**

भावकर्म.... अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प, उसका कर्तृत्व.... परिणमन, उसका विनाश है;... उसका परिणमन सिद्ध को है नहीं।

यही, विकारपूर्वक अनुभव के अभाव के कारण... अब वह परमात्मा आत्मा अपनी शक्ति की व्यक्त प्रगटता पूर्ण प्रगट करके उसे विकारपूर्वक अनुभव विकार का जो अनुभव था, उसका अभाव हुआ। **अनुभव के अभाव के कारण औपाधिक सुखदुःख परिणामों के भोक्तृत्व का विनाश है;**... उसे संसार की कल्पना में विषय में सुख है, घानी में पिले तो दुःख है। ऐसी जो कल्पना थी, उस कल्पना के दुःख के परिणामों के भोक्तृत्व का विनाश है। उसका भोगना उसे होता नहीं। कहो, समझ में आया? कहो, अरविन्दभाई! यह धोळा बाजार की बात चलती है यह। सवेरे आता था न? काला बाजार बिना भाई ने कहा काला बाजार में बहुत चलता है। काला बाजार अर्थात् मलिन परिणाम। हैं? वहाँ कहाँ बाहर बाजार था।

अन्दर भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञानमूर्ति में विकारी परिणाम मलिन, वे काला बाजार है। काला बाजार में तो हानि लगे ऐसा है। ऐसा यहाँ कहते हैं। यहाँ तो अब धोळा बाजार कैसे है, वह चलता है। ऐ नवरंगभाई! हैं? यह कहते हैं कि जिसे धोळा अर्थात् उज्वल आत्मा का व्यापार किया, उसे कैसी दशा होती है, उसका वर्णन है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि औपाधिक सुख-दुःख परिणाम। देखो! ऐसा पैसे में, स्त्री में, इज्जत में सुख है, ऐसी कल्पना वह औपाधिक सुख था और प्रतिकूलता में घानी में पिले, छुरा लगे और चक्का में पिल जाये। आहाहा! उसमें माना था कि यह दुःख है। अभी नहीं सुना? एक लड़के का, सुना था न? मुम्बई में। ऐसे रोटी बेल जाना ऐसे बेल गया। ऐसी हिलती थी वह किसी की मोटर। कोई परिचित होता है, बड़ा कोई। हैं? हाँ, कोई आता था। उस ओर से आती थी वह दो मंजिल की बस, उसमें बीच में आ गया। बेचारा ऐसा। उसमें गिरकर रोटी बेल गयी, (वैसे बेल गया)। आहाहा! यह तो ऐसा अनन्त बार हुआ है, यह कहीं नया नहीं है। यह तो देह का पिलना हुआ। उसमें दुःख लगता है, वह देह के पिलने का नहीं। वह मैं हूँ और वह मुझे होता है, ऐसी मान्यता का दुःख उसे अनन्त था। उस दुःख का सर्वज्ञपद में नाश हो गया है, ऐसा कहते

हैं। आहाहा! और ऐसी अनुकूलता बाहर की शरीर सुन्दर, पैसा, इज्जत, कीर्ति, धूल। यह धूल अर्थात् पैसा। दो, पाँच, दस, लाख, बीस लाख। सुखी हूँ। मूढ़ कल्पना जो सुख की करता है। उस औपाधिक सुख का सिद्धपद में अभाव है। कहो, समझ में आया ?

भगवान आत्मा... णमो सिद्धाणं की यहाँ तो बात चलती है। लो! णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं रटे परन्तु क्या चीज़ है, खबर भी नहीं होती। णमो अरिहंताणं। परन्तु अरिहंताणं अर्थात् क्या? णमो सिद्धाणं। परन्तु अब सिद्ध अर्थात् क्या? वे कोई सिद्ध होंगे भगवान। अरिहंताणं अरिहन्त कोई राजा हो गया होगा कुछ। उसमें नहीं, 'ज्ञानमति' ऐसा कहती है। कहते हैं न? यहाँ तो कहते हैं भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्दस्वरूप से विरुद्ध अज्ञान, मिथ्यात्व और राग-द्वेष परिणाम जो अरि अर्थात् वेरी। विकार वेर है। उसका स्वभाव का आश्रय करके नाश किया, इसका नाम अरिहन्त कहा जाता है। यह आत्मा का पद है। यह कोई सम्प्रदाय की भाषा और सम्प्रदाय का कोई राजा नहीं है। समझ में आया ?

उसमें णमो सिद्धाणं। अरिहन्त को चार कर्मों का नाश होता है और चार कर्म बाकी होते हैं। अभी महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। सीमन्धर भगवान णमो अरिहंताणं में। जिन्हें फिर आठों ही कर्मों और शरीर का अभाव हो गया और आत्मा अकेला रह गया पूर्णानन्द की प्राप्ति, उसे सिद्ध कहते हैं। उन सिद्ध का यह वर्णन है। समझ में आया ?

कहते हैं विकारभूत अनुभव के अभाव के कारण, देखो! विकार का जो अनुभव था। अज्ञानी को अनुभव कहीं जड़ का, शरीर का, पैसे का, रोटी, दाल, भात का नहीं था। क्या? संसार में जीव को दाल, भात, रोटी, स्त्री का शरीर, पैसा, मकान का अनुभव नहीं था। वह तो सब परपदार्थ हैं। मालिक, जड़ का मालिक था कब? उसने ऐसा माना था कि यह मुझे ठीक है। ऐसी कल्पना विकार का अनुभव था। और प्रतिकूलता के समय दरिद्रता हो, रोग हो। समझे न? घर में एक खाट उठे वहाँ दूसरा पड़े। ऐसा दो-दो, पाँच-पाँच वर्ष तक कोई निरोगता रहे नहीं। फिर माने कि हम दुःखी हैं। उस दुःख की जो कल्पना, वह उसे विकार का अनुभव था। पर का नहीं, रोग का नहीं, निर्धनता का नहीं। यह कहते हैं। देखो!

विकारपूर्वक अनुभव के अभाव के कारण... जीव में अनादि से जो विकार का

अनुभव था। उसके अभाव के कारण औपाधिक सुखदुःखपरिणामों के... औपाधिक कल्पना का जो सुख-दुःख माना था, उसके भोक्तृत्व का शिवपद में विनाश है। अब अकेला आनन्द का अनुभव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और यही, अनादि विवर्तन के खेद के विनाश से... अनादि ज्ञान की अवस्था खण्ड-खण्डरूप से परिणमन करती थी। खण्ड-खण्ड विवर्तन परिणमन करती, उसका खेद-दुःख था। उसके विनाश से जिसका अनन्त चैतन्य सुस्थित हुआ है... भगवान् आनन्दकन्द ज्ञान में लीन हुआ है। ऐसा जो सुस्थित आत्मा को स्वतन्त्रस्वरूपानुभूतिलक्षण सुख... देखो! यह सुख। आत्मा को स्वतन्त्रस्वरूपानुभूतिलक्षण सुख उसका भोक्ता है। संसार में राग-द्वेष का भोक्ता था। समझ में आया?

धर्म प्राप्त करने पर कुछ आनन्द का भोक्ता और कुछ राग का भोक्ता, ऐसे दो मिश्रित था। यहाँ तो सब इकट्ठा लेना है न? और पूर्ण सिद्ध होने पर अकेला आनन्द का भोक्ता रह जाता है। क्या कहा? अनादि से एकेन्द्रिय के भव से लेकर नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, मिथ्यादृष्टि जैन दिगम्बर साधु होकर। वह व्रत के विकल्प हैं, वे मेरे हैं—ऐसा मानकर मिथ्यात्व के सेवन में अकेला दुःख का अनुभव था। औपाधिक दुःख का अनुभव। और कदाचित् कहीं अनुकूल हो तो माना हो कि मुझे ठीक है, वह औपाधिक कल्पना के सुख का अनुभव, वह संसार है।

अब जब यह धर्म प्राप्त हुआ, तब आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञान है। ऐसी जो प्रतीति होकर आंशिक आनन्द आया और आंशिक अभी राग का भाग (बाकी) रह गया। तो थोड़ा आनन्द का भी अनुभव है, थोड़ा राग का अनुभव है। यह साधकदशा कहलाती है। राग सब टलकर अकेला आनन्द रह जाता है, उसे सिद्धदशा कहा जाता है। आहाहा! दोनों आ गये। ऐई! आहाहा! कुछ किसी ने घर में खोजा है? यह तो अपने देखा न? 'अब हम कबहु न निज घर आये' देखा न? यह तो। वह तो उसमें है, छहढाला में। पहली पुस्तक में था। वह तो उसको दे दी न? पण्डितजी ने दे दी। एक थी।

'अब हम कबहु न निज घर आये, पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये।' भगवान् आत्मा ज्ञान चैतन्य पुंज प्रभु। अनाकुल अतीन्द्रिय आनन्द का रूप ही उसका स्वरूप है। उसके अन्तर के घर में आये बिना इसने पुण्य और पाप, हर्ष-शोक के विकल्प उपाधिरूप

का अनुभव किया है। कहो, बराबर होगा यह ? यह पैसेवाले सुखी होंगे या नहीं ? ऐसे करोड़पति कहलाये। लो, वह कितना, दो अरब चालीस करोड़। दशाश्रीमाली बनिया। अभिमान फट पड़े ऐसा है। धूल भी नहीं। सुन न अब। वह तो धूल है वहाँ बाहर। तुझे कल्पना हुई कि यह मुझे ठीक है। वह उपाधि का सुख है। अर्थात् मलिन सुख है। दुःख है। आहाहा! बराबर होगा। छगनभाई! उस दुःख का अनुभव करता है, यह ऐसा कहते हैं।

इस देव में—स्वर्ग में जाये पुण्यक्रिया करके। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों पुण्य के (तो) स्वर्ग में जाये। इन्द्राणी का सुख बहुत हो, वह सुख भी राग का दुःख है। आकुलता का सुख है। अर्थात् दुःख है। देव दुःखी, राजा दुःखी, रंक दुःखी। आनन्दस्वरूप को भूलकर और जो विकार की उत्पत्ति करे, वह सब दुःख है। समझ में आया ? उस दुःख के टुकड़े दो पड़ गये। थोड़ा ऐसा और थोड़ा दुःखी साधक में। अनादि से अकेला दुःख था वह संसार, वह बहिरात्मा।

अन्तरात्मा होने पर वस्तु का भान (हुआ)। ओहो! आनन्द तो मेरे स्वरूप में मैं आनन्दस्वरूप हूँ। स्वरूपानन्दी मेरी चीज ही आनन्दस्वरूप है। उसका भान होने पर आंशिक आनन्द का वेदन आवे और अभी थोड़ा राग बाकी है, उसका दुःख हो, वह मिश्रितदशा है। उसे अन्तरात्मा की साधक दशा कहा जाता है। और वह सर्वथा राग-द्वेष के परिणाम का भोगने का नाश होकर अकेली अनुभूति का आनन्द का अनुभव हो, उसे पूर्ण सुख का अनुभव करनेवाला, उसे सिद्ध कहने में आता है। उसे परमात्मा कहते हैं। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। तीन दशा जीव की है। कितना रटना ? इसे समझ में आये कितना ? वह फिर कहे बेचारा आत्मा-आत्मा करते हैं। ऐई ! नेमिचन्दजी ! यह तुम्हारे वे आये थे सवेरे। हैं ? कुछ समझ में नहीं आता क्या करे ? अभ्यास ही नहीं होता। बाहर तो बिल्कुल खोटा, जैन में जन्में हैं। णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं। क्या णमो अरिहंताणं ? दिगम्बर किसे कहना ?

दिग् अर्थात् वस्त्र तो ठीक, परन्तु दिग् अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्ति बिना का आत्मा, उसे दिगम्बर कहा जाता है। आहाहा ! क्या हो ? भगवान अन्दर निर्विकल्प

आनन्दकन्द है। उसकी दृष्टि करने से वह दिगम्बर सम्यग्दृष्टि होता है। कहो, यह तुम जन्मे दिगम्बर में, इसलिए खोखा दिगम्बर नहीं। नाम तो चाहे जो दे। चिरायता को कहे। क्या कहलाता है? उसमें आता न? पठन में आता न? हैं? भीखन्तो धनपाल। ऐसा आता था। धनपाल नाम और भीख माँगता था। क्या लक्ष्मी का कुछ आता है नाम भी। पुस्तक में आता था। लकड़ियाँ बेचती लक्ष्मी। नाम क्या? तो कहे लक्ष्मी और बेचे लकड़ियाँ। आहाहा! नाम तो क्या? धूल पड़ी और।

यह तो आत्मा प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अपने स्वरूप से। परन्तु जो कोई चीज़ हो वह स्वरूप से विकृत नहीं हो सकती। स्वभाव हो, वह विकृत नहीं होता। अपूर्ण नहीं होता, दुःख नहीं होता। न्याय से इसे देखना पड़ेगा या नहीं? भगवान आत्मा का वास्तविक स्वभाव तो ज्ञान और आनन्द है। उसे भूलकर पुण्य-पाप के हर्ष-शोक को भोगना, वह प्राणी दुःखदशा का भोगनेवाला है। चाहे तो राजा हो, चाहे तो देव धर्म का भोगनेवाला हो। धर्मात्मा होने से मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ, मुझमें तो शान्ति और आनन्द है। मेरी शान्ति मेरे लिये आनन्द की खोज बाहर में नहीं। मेरा आत्मा आनन्दस्वरूप की खोज में जाने से आनन्द की प्राप्ति हो और थोड़ा राग का दुःख भी रहे। ऐसी दशा को साधक धर्मात्मा अन्तरात्मा कहा जाता है।

इसमें तो न्याय से समझ में आये ऐसा है परन्तु मस्तिष्क ही लगाते नहीं कहीं! भगवान, भगवान, भगवान किया करते हैं। समझ में आया? छह काय की या दया पालो, व्रत पालो। परन्तु तू कौन है? तेरी दया तो पाल पहले। आहाहा! क्यों, भरतभाई! यह सब जवान देखो वहाँ कितना अभ्यास करते हैं घाटकोपर। समझ में आया? भगवान आत्मा.... ५ से ६ जगे हैं, घाटकोपर में युवक! सूक्ष्म अभ्यासी। सूक्ष्म तत्त्व में गहरा उतरने का प्रयत्न करते हैं। प्रयत्न करते हैं। आहाहा! यह वस्तु है या नहीं? है तो उसकी शक्ति और स्वभाव से खाली होगा? वस्तु कहना और स्वभाव से खाली? शक्कर कहना और मिठास से खाली? समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा वस्तु है, तो उसमें बसी हुई शक्तियाँ हैं। वस्तु में बसी हुई, रही हुई। कौन? ज्ञान-आनन्द ऐसी शक्तियाँ बसी हुई हैं। अनादि की वस्तु ऐसी ही

है। उसका अन्तर में राग से भिन्न पड़कर भान होने पर, चारित्रदोष हो। परन्तु राग से भिन्न पड़कर आत्मा आनन्द है, ऐसा स्वाद आने पर उसने आत्मा जाना, वह अन्तरात्मा हुआ। अन्तर आत्मा अर्थात् आत्मा का जो स्वभाव था, उसरूप से प्रतीति और अनुभव में आया। तब अभी उसे थोड़ा राग-द्वेष तो रह जाता है। इसलिए वह मिश्र कुछ सुख है, कुछ दुःख है।

वही आत्मा अपने स्वरूप में एकाकार होकर पूर्ण स्थिरता करता है, तब उपाधि के सुख-दुःख की कल्पना का नाश हो जाता है। समझ में आया? बात तो बहुत सीधी, सरल और सत् है। परन्तु उसके रास्ते गया नहीं न, इसलिए इतना सब अटपटा इसे लगता है न? कुछ करने का कहे न? यह यात्रा करो। वहाँ यात्रा करो। यह यात्रा नहीं, अब सुन न! बाहर के पर्वत पर जाये और चढ़े। वह बराबर शुभभाव हो पुण्य। धर्म-बर्म नहीं। वह शुभभाव की आकुलता है। ऐई! तब कहे यह करना क्यों? परन्तु आता है, वह अलग बात है।

जगत के पाप के परिणाम हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग के। उसकी अपेक्षा कषाय की मन्दता के परिणाम। आकुलता, मन्द आकुलता है। वह तीव्र है। है तो आकुलता। ऐ जयन्तीभाई! अब कौन सुनने आवे? यह भक्ति करना और कहे आकुलता, यात्रा जाना और कहे आकुलता। ऐई! नवरंगभाई! यह शास्त्र पढ़ने का विकल्प, वह भी आकुलता।

मुमुक्षु : सुनना वह ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने का विकल्प भी आकुलता है। आहाहा! बहुत कठिन काम!

यह भगवान आत्मा अनाकुलता का पिण्ड है, इसकी तो उसे खबर नहीं होती। उसमें से तुझे जितना विकल्प आया, वृत्ति उठी, ऐ प्रकाशदास! वह आकुलता है, ऐसा कहते हैं। यह व्रत के परिणाम आकुलता है।

मुमुक्षु : वास्तविक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाय! हाय! वास्तविक नहीं।

वस्तु ऐसी है। यहाँ तो ढिंढोरा पीटकर कहा जाता है न! यहाँ कहाँ अन्दर गुप्त रखा है। शास्त्र में तो प्रत्यक्ष रखा है। देखो न! आहाहा! अनादि पलटन के खेद का

विनाश। है न? अनादि विवर्तना.... विवर्तन अर्थात् पलटना। उसका खेद... था, उसके विनाश से जिसका अनन्त चैतन्य सुस्थित हुआ है... भगवान आत्मा ज्ञान में जम गया। आनन्द में आत्मा जम गया। जम गया। क्या जम गया, नहीं कहते? यह दही जम गया नहीं कहते? दही जमा नहीं कहते? खोण जैसा दही जमा है, ऐसा कहते हैं। छाछ छूटा पानी न रहे और अकुला ढीला-ढीला दही। और कितनों में जमे नहीं और नीचे थोड़ा पानी हो। यह तो खोण जैसा।

इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द के धाम में जहाँ अन्तर प्रवेश करके एकाग्रता हुई, खोल जम गया। अकेला आनन्द हो गया। आनन्द का पूर्ण अनुभव, उसे परमात्मा और सिद्ध कहा जाता है। वही आत्मा की दशा है। अरे! अरे! गजब! अनन्त चैतन्य सुस्थित हुआ है... अनन्त चैतन्य सुस्थित, ऐसा कहा न? अपना जो चैतन्यस्वभाव अनन्त है, उसमें स्थित हो गया, स्थित हो गया। इसलिए कैसे आत्मा को? स्वतन्त्रस्वरूपानुभूतिलक्षण... देखो! वह सुख अपने अन्तर से प्रगट हुआ है, ऐसा कहते हैं। स्वतन्त्रस्वरूपानुभूतिलक्षण सुख का (— स्वतन्त्र स्वरूप की अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसे सुख का) भोक्तृत्व है। उसके भोक्ता सिद्ध भगवान हैं।

संसारी प्राणी हर्ष-शोक का भोक्ता। आत्मा के आनन्द का भोक्ता नहीं। वह दुःख का भोक्ता। स्त्री, शरीर, इज्जत का नहीं। वे तो पर हैं। धर्मी थोड़ा आनन्द और थोड़ा दुःख का भोक्ता है। क्योंकि अभी पूर्ण दशा प्रगट हुई नहीं, इसलिए आत्मा का जो आनन्द है, उसका आश्रय लेकर जितना आनन्द प्रगट हुआ, उतना स्वतन्त्र सुख की अनुभूति। जितना राग बाकी रहा, उतना दुःख। फिर शुभ हो या अशुभ। वह शुभ-अशुभ के दुःख की उपाधि का नाश करके सर्वथा अनुभूति का सुख जिसे प्रगट हो गया, उसे परमात्मा और सिद्ध कहा जाता है। आहाहा!

यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! लॉजिक से समझ में आये ऐसा है। इसमें कहीं.... ऐसा कोई विकल्प-फिकल्प करके नहीं परन्तु अब व्यक्ति को दरकार ही न हो कभी, अरे! मैं कौन हूँ? क्या होता है परन्तु यह? कहाँ मेरी नजर और मैं नजर करनेवाला कौन? नजर करनेवाला कौन और नजर कहाँ डालता है? हैं? जिनमें स्वयं, जिसमें स्वयं नहीं अथवा अपने में जो नहीं, यह नजर डालनेवाला वहाँ नजर डालता है।

पुण्य और पाप, विकल्प और शरीर जो आत्मा में नहीं। नजर डालनेवाला स्वयं और नजर डालता है अपने अतिरिक्त के दूसरे भाव में। आहाहा! गजब है न? समझ में आया? नवरंगभाई!

जाननेवाला.... जाननेवाला.... जाननेवाला.... जाननेवाला.... वह जीव। और जाननेवाले की नजर वह जानने की। वह नजर जाननेवाले की। वह नजर राग, पुण्य और पर में जाये, वह नजर खोटी है। नजर करनेवाला नजर करने में नजर करे, तब वह धर्म पावे। आहाहा! गजब बात, भाई! क्या कहते हैं यह? यह तो सब हड्डियाँ जड़ मिट्टी। अन्दर में पुण्य-पाप के विकल्प उठें, वह दुःख। अब स्वयं आनन्दमूर्ति। नजर करे स्वयं और नजर आनन्द में न डाले परन्तु उस दुःख में (नजर डाले)। गजब, भाई!

मुमुक्षु : अनादि से भूला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भूला है, इसकी खबर नहीं। भूल भी कैसे हुई, इसकी खबर नहीं। भूला नहीं, मानो भूला ही नहीं। आहाहा! कहो।

देखो न! अनन्त चैतन्य सुस्थित... कहा है न? यह ऐसे सुस्थित नहीं था। स्वयं अपने में सुस्थित नहीं था। वह यहाँ राग और पुण्य और पर, शरीर, वाणी, मन और उसमें यह माना था कि यह मैं हूँ। वह तो दुःख में सुस्थित है। आहाहा! बाबूभाई! बराबर होगा यह? यह सब पैसेवाले न तुम्हारे सुखी कहते हैं न? लड़के भी चार। यह पैसे हों, माँ-बाप हो, पैसा-बैसा धूल हो, लाख-दो लाख के मकान ठीक से हों, वह क्या कहते हैं? दुनिया गहल-पागल। पागल तो पागल को सुखी कहे। आहाहा! प्रभु! तू आनन्द से खाली है? कि आनन्द को बाहर खोजने जाता है? और जो आनन्द माँगने जाये और यदि आनन्द तुझमें न हो तो आनन्द बाहर से कहीं से आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह कहते हैं। 'सुखन इच्छन्ति ते नरा, न इच्छन्ति सुख कारणं' सुख को चाहते हैं। परन्तु सुख कहाँ है? और सुख के कारण कहाँ हैं?—उसकी इसे खबर नहीं। 'न इच्छन्ति दुःख लेशई' दुःख को चाहता नहीं परन्तु दुःख के कारण में तत्पर है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। चैतन्य रत्नाकर है। ऐसे अनन्त ज्ञान,

आनन्द ऐसे रतन जिसमें पड़े हैं, ऐसे समुद्र में नजर करता नहीं और जहाँ खाली डबरे राग और द्वेष, पुण्य और पाप और शरीर क्रिया में कहीं आत्मा अंश भी नहीं। कहो, बराबर है? उसमें यह मेरे और यह मैं उनका। आहाहा! प्रभु! तेरी चीज़ तो पूरी नजर में से गयी। तेरा निधान तो तुझे नजर में आया नहीं। आहाहा! परन्तु क्या हो? यह उसकी अन्तर नजर में रीति क्या है, यह जाने बिना वह नजर कहाँ डालना और नजर डालनेवाला कितना है? तीन काल, तीन लोक को जाने, ऐसा नजर डालनेवाला स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? लो, पण्डितजी आये! समझ में आया?

यह जानता है, वह कोई अस्तित्व है या नहीं? अस्तित्व है या खरगोश के सींग हैं? ज्ञात होता है, जानता है, वह कोई अस्तित्व है या नहीं? अस्तित्व है या सत्ता? तो कितनी सत्ता है? उस जाननेवाले का अस्तित्व अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शनवाला अस्तित्व है। आहाहा! उसका स्वभाव है, वह तो अनन्त है, अनन्त है। क्षेत्र छोटा, उसका कुछ नहीं। अन्तर भाव और स्वभाव का सामर्थ्य अनन्त है। ऐसे अनन्त सामर्थ्य को अपनी नजर में न लेकर अनादि से इन्द्रियज्ञानवाला जीव, इसलिए इसने राग और द्वेष और पर को लक्ष्य में लिया। यह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा, अन्तरात्मा को चूककर बहिर जिसमें नहीं, उसमें अपनापन मानकर दुःखी है। चाहे तो जैन साधु हुआ हो या चाहे तो चक्रवर्ती राजा हो, परन्तु जिसकी दृष्टि स्व में नहीं, उस राग और पुण्य और उसमें है, वे सब बहिरात्मा दुःखी प्राणी है। एक प्रकार के हों परन्तु वापस वे।

वह चक्रवर्ती ऐसे दुःखी, उसमें महात्मा होकर लंगोटी छोड़ी और नग्न होकर जंगल में रहता हो। परन्तु भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप है, उसके ऊपर तो दृष्टि नहीं। मात्र दया, दान, व्रत और विकल्प जो राग है, उस पर दृष्टि है। एक जाति के समान दुःखी है। कहो, भीखाभाई! वे यह सिद्ध सुखी हैं। और या सिद्ध के साधक सुखी हैं। जादवजीभाई! वे बहुत कहे, हों! यह तुम्हारे पैसेवाला कहे, हों! पैसेवाले सुखी हैं। भाषा ही ऐसी...! पैसे-टके से सुखी हैं। पैसे-टके से सुखी हैं न? धूल से सुखी है। हें?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ तो मूढ़ पागल किसे कहे ? पागलखाने में सब पागल, वे दूसरे को भी सुखी कहते हैं ।

यहाँ तो कहते हैं कि भाई ! यह व्रत, तप, भक्ति और पूजा लाख कर न, वह सब विकल्प है । वह दुःख है । वहाँ तेरी नजर दुःख पर हो तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं । भाई ! आहाहा ! यह विकल्प बिना का भगवान पूर्णानन्द है, वहाँ नजर डाले तो सम्यग्दर्शन है । बात तो यह है । हैं ? उसे जिसे पूर्णानन्द की प्राप्ति हो गयी, पूरा ! कुछ करने का रहता नहीं । इसलिए कहते हैं कि पूर्णानन्द का भोक्ता है । लो ! समझ में आया ? यह २८ गाथा हुई, लो ! अब २९ (गाथा) ।

गाथा - २९

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पप्पोदि सुहमणंतं अव्वाबाधं सगममुत्तं॥२९॥

जातः स्वयं स चेतयिता सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च।
प्राप्नोति सुखमनन्तमव्याबाधं स्वकममूर्तम्॥२९॥

इदं सिद्धस्य निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखसमर्थनम् ।

आत्मा हि ज्ञानदर्शनसुखस्वभावः संसारावस्थायामनादिकर्मक्लेशसङ्कुचितात्मशक्तिः परद्रव्यसम्पर्केण क्रमेण किञ्चित् किञ्चिज्जानाति पश्यति, परप्रत्ययं मूर्तसम्बद्धं सव्याबाधं सान्त सुखमनुभवति च । यदा त्वस्य कर्मक्लेशाः सामस्त्येन प्रणश्यन्ति, तदाऽनर्गलासङ्कुचितात्मशक्तिरसहायः स्वयमेव युगपत्समग्रं जानाति पश्यति, स्वप्रत्ययममूर्तसम्बद्धमव्याबाधमनन्तं सुखमनुभवति च । ततः सिद्धस्य समस्तं स्वयमेव जानतः पश्यतः, सुखमनुभवतश्च स्वं, न परेण प्रयोजनमिति ॥२९॥

आतम स्वयं सर्वज्ञ-समदर्शित्व की प्राप्ति करे ।

अर स्वयं अव्याबाध एवं अतीन्द्रिय सुख अनुभवे ॥२९॥

अन्वयार्थ : [सः चेतयिता] वह चेतयिता (चेतनेवाला आत्मा) [सर्वज्ञः] सर्वज्ञ [च] और [सर्वलोकदर्शी] सर्व लोकदर्शी [स्वयं जातः] स्वयं होता हुआ, [स्वकम्] स्वकीय [अमूर्तम्] अमूर्त [अव्याबाधम्] अव्याबाध [अनन्तम्] अनन्त [सुखम्] सुख को [प्राप्नोति] उपलब्ध करता है।

टीका : यह, सिद्ध के निरुपाधि ज्ञान, दर्शन और सुख का समर्थन है।

वास्तव में ज्ञान, दर्शन और सुख जिसका स्वभाव है, ऐसा आत्मा संसारदशा में, अनादि कर्मक्लेश द्वारा आत्मशक्ति संकुचित की गयी होने से, परद्रव्य के सम्पर्क द्वारा (-इन्द्रियादि के सम्बन्ध द्वारा) क्रमशः कुछ-कुछ जानता है और देखता है तथा पराश्रित, मूर्त (इन्द्रियादि) के साथ सम्बन्धवाला, सव्याबाध (-बाधासहित) और सान्त सुख का अनुभव करता है; किन्तु जब उसके कर्मक्लेश समस्तरूप से विनाश को प्राप्त होते हैं तब, आत्मशक्ति अनर्गल (-निरंकुश) और असंकुचित होने से, वह असहायरूप से (-किसी

की सहायता के बिना) स्वयमेव युगपद् सब (-सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) जानता है और देखता है तथा स्वाश्रित, मूर्त (इन्द्रियादि) के साथ सम्बन्धरहित, अव्याबाध और अनन्त सुख का अनुभव करता है। इसलिए सब स्वयमेव जानने और देखनेवाले तथा स्वकीय सुख का अनुभवन करनेवाले सिद्ध को पर से (कुछ भी) प्रयोजन नहीं है।

भावार्थ : सिद्धभगवान (तथा केवली भगवान) स्वयमेव सर्वज्ञत्वादिरूप से परिणामित होते हैं; उनके उस परिणामन में लेशमात्र भी (इन्द्रियादि) पर का आलम्बन नहीं है।

यहाँ कोई सर्वज्ञ का निषेध करनेवाला जीव कहे कि-‘सर्वज्ञ है ही नहीं, क्योंकि देखने में नहीं आते’, तो उसे निम्नोक्तानुसार समझाते हैं :-

हे भाई! यदि तुम कहते हो कि ‘सर्वज्ञ नहीं है’, तो हम पूछते हैं कि सर्वज्ञ कहाँ नहीं है? इस क्षेत्र में और इस काल में अथवा तीनों लोक में और तीनों काल में? यदि ‘इस क्षेत्र में और इस काल में सर्वज्ञ नहीं है’ ऐसा कहो, तो वह सम्मत ही है। किन्तु यदि ‘तीनों लोक में और तीनों काल में सर्वज्ञ नहीं है’ ऐसा कहो तो हम पूछते हैं कि वह तुमने कैसे जाना? यदि तीनों लोक को और तीनों काल को सर्वज्ञरहित तुमने देख-जान लिया तो तुम्हीं सर्वज्ञ हो गये, क्योंकि जो तीन लोक और तीन काल को जाने, वही सर्वज्ञ है। और यदि सर्वज्ञरहित तीनों लोक और तीनों काल को तुमने नहीं देखा-जाना है तो फिर ‘तीन लोक और तीन काल में सर्वज्ञ नहीं है’ ऐसा तुम कैसे कह सकते हो? इस प्रकार सिद्ध होता है कि तुम्हारा किया हुआ सर्वज्ञ का निषेध योग्य नहीं है।

हे भाई! आत्मा एक पदार्थ है और ज्ञान उसका स्वभाव है; इसलिए उस ज्ञान का सम्पूर्ण विकास होने पर ऐसा कुछ नहीं रहता कि जो उस ज्ञान में अज्ञात रहे। जिस प्रकार परिपूर्ण उष्णतारूप परिणामित अग्नि समस्त दाह्य को जलाती है, उसी प्रकार परिपूर्ण ज्ञानरूप परिणामित आत्मा समस्त ज्ञेय को जानता है। ऐसी सर्वज्ञदशा इस क्षेत्र में इस काल में (अर्थात् इस क्षेत्र में इस काल में जन्म लेनेवाले जीवों को) प्राप्त नहीं होती, तथापि सर्वज्ञत्वशक्तिवाले निज आत्मा का स्पष्ट अनुभव इस क्षेत्र में इस काल में भी हो सकता है।

यह शास्त्र अध्यात्म शास्त्र होने से यहाँ सर्वज्ञसिद्धि का विस्तार नहीं किया गया है; जिज्ञासु को वह अन्य शास्त्रों में देख लेना चाहिए॥२९॥

गाथा - २९ पर प्रवचन

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पप्पोदि सुहमणंतं अक्वाबाधं सगममुत्तं॥२९॥

नीचे हरिगीत है।

आतम स्वयं सर्वज्ञ-समदर्शित्व की प्राप्ति करे।
अर स्वयं अव्याबाध एवं अतीन्द्रिय सुख अनुभवे॥२९॥

देखो! होता है। होय वह होता है। आहाहा!

इसकी टीका :- यह, सिद्ध के निरुपाधि ज्ञान, दर्शन और सुख का समर्थन है। निरुपाधि ज्ञान, दर्शन और सुख सिद्ध में है। जैसा आत्मा में स्वभाव में निरुपाधि ज्ञान, दर्शन और सुख है; वैसा वर्तमान पर्याय में—अवस्था में प्रगट हुआ, उसे सिद्ध कहते हैं। समझ में आया ?

ऊपर मुक्ति शिला में लटके.... यह अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन और आनन्द। जैसा स्वभाव भगवान आत्मा का था, वैसा अन्तर्मुख होकर प्रगट किया, उसे अनन्त ज्ञान, दर्शन और सुखी कहा जाता है। वे सिद्ध हैं। समझ में आया ? 'नवी सो ही देवता देव' यह लाईन आती है। स्थानकवासी में बहुत सब लोग गाते हैं। राजा सुखी नहीं। सेठ नहीं, सेनापति, विदन्त सुखी मुनि वीतरागी। परन्तु मुनि वीतरागी, हों! मुनि हुआ वह बाबा हो गया और साधु हो गया, इसलिए (वीतरागी, ऐसा नहीं)। हैं? हाँ, विदन्त सुखी मुनि वीतरागी। राग और द्वेष के विकल्प बिना का भगवान, ऐसी दृष्टि और अनुभव और वीतरागता प्रगट हुई है, वह एक सुखी है। बाकी सब दुःखी हैं। कहो, बराबर होगा? सुमनभाई! पुण्य प्रमाण मिलेगा, ऐसी भी जिसे श्रद्धा नहीं, वह काले बाजार में गोठवाई जाता है। हैं ?

मुमुक्षु : बराबर है। पुण्य का भरोसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भरोसा नहीं। पुण्य होगा तो चाहे जहाँ से आयेगा। पुण्य के

परमाणु अन्दर में पड़े हों, उसके कारण आता है। क्या कहीं तेरे प्रयत्न से आता है? बुद्धि के बारदान जैसे भी दस-दस हजार महीने में पैदा करते हैं।

बहुत वर्ष की बात है। एक बार पालेज से माल लेने मुम्बई गये थे। खोजो था, खोजो। यह तो (संवत्) १९६५-१९६६ की बात होगी। हमारे उमराला में एक नौकर था उसमें। मैं और कुँवरजीभाई दोनों माल लेने गये। ६५-६६ में, हों! दुकान में पालेज से। वहाँ सामने होटल थी, खोजो सामने खड़ा था। चाय पीता था। नौकर था। माल लेने गये थे, उसमें बड़े गोदाम माल के। अमुक दो, चार पेटियाँ लीं। फिर वह व्यक्ति कहे, एक पेटी मेरी ले जाओ। बड़ा गोदाम था, वहाँ कहीं। यह क्या? एकान्त में चोरी की, चोरी। कहा, यह नहीं ले जाया जायेगा। तब की बात है, हों! कहा, इसका मालिक कौन है? मैं और कुँवरजीभाई थे दोनों। आणन्दजी था या कुँवरजी था। बहुत बार कुँवरजीभाई के साथ जावे। दोनों दुकानें अलग की न? कहा, यह है कौन? यह मनुष्य व्यापारी कौन है यहाँ का? यह रहा वह खोजो, सामने होटल में चाय पीता है वह। आमदनी कितनी है? बारह महीने में पचास हजार की। तब, हों! ६४-६५ की (बात है)। तब तो बहुत कहलाता था न? अभी तो पचास हजार-पचास हजार में कुछ नहीं होता। नहीं होता। अभी तो लाख, दो लाख, पाँच लाख पैदा करे तो कुछ कहलाये। उस समय तो लोग पाँच, पचास हजार पैदा करे, वहाँ तो!

कहा, नामा लिखना आता है? तो कहे नहीं, नामा तो नौकर लिखता है। मूलचन्द गोपालजी था। हमारे गाँव में उमराला में। पैंसठ पेटी ली थी, वह गोदाम बड़ा था। उसमें से दो पेटी मेरे नाम से ले जाना। वह फिर चुपचाप मुझे देना। कहा, अपने को ऐसा नहीं बैठता, हों! ऐसा धन्धा हो? और दूसरा क्या किया। माल हम दोनों व्यक्ति थे। तब कुछ पौण-पौण मण था न भाई कुछ? पौण-पौण मण रेल में ले आवें। हमारे साथ छह-सात मण, आठ मण वजन था। इसलिए वह छोड़ने आया। वह क्या लेकर? पास होता है? तीन पैसे का, दो पैसे का। छोड़ने आये, तुम छोड़ने आये परन्तु हमें दो और यह डेढ़ मण अलग यह क्या? वह कहे, दिक्कत नहीं आयेगी। अपने को दिक्कत। ऐसे तो हमारी छाप वहाँ पालेज में अच्छी थी। इसलिए कोई कुछ पूछे नहीं। बिल्कुल दिक्कत नहीं आयेगी। वह तो यहाँ चढ़ाने आवे न दो पैसे का गेटपास लेकर। परन्तु

कहा, अपना काम नहीं है, अन्याय कहलाता है। मैंने तो तब कहा था, हों! मैं तो तब भी भगत कहलाता था न? यह अन्याय अपने नहीं, बापू! अपने को दिक्कत? दिक्कत की कहाँ बात है? वहाँ तो अपने पहुँचे तो वहाँ तो अपने सब परिचित हैं। वह क्या कहलाता है? पोर्टर, वह तो बेचारा ले जाये। मास्टर-बास्टर सब बड़े मास्टर। हमारे पक्ष में सब साक्षी थे। हम वहाँ व्यापारी सही न!अपना माल नहीं। पुण्य की श्रद्धा नहीं होती। समझ में आया? पुण्य होगा तो मिलेगा। नहीं होगा तो तेरे लाख रुपये और करोड़ रुपये चले जायेंगे कहीं। यहाँ कहते हैं कि भाई! अभी तुझे पुण्य का प्रतीति नहीं होती? उसे भगवान पुण्य और पाप बिना का, उसकी प्रतीति कहाँ से लाना? आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का सागर प्रभु है। चैतन्यबिम्ब! वस्तु है न? वस्तु, उसमें बसी हुई शक्तियाँ है न? उसमें वास्तु करना, इसका नाम धर्म है। उसमें—स्वभाव में एकाकार होना, उसका नाम धर्म और शान्ति और सुख है। वह आनन्द का अनुभव धर्मी को होता है और या पूर्ण परमात्मा को पूर्ण आनन्द होता है। अज्ञानी को जरा भी आनन्द नहीं होता। दुःखी है। समझ में आया? आहाहा!

पूर्ण भोक्ता, यहाँ कहते हैं। ऐसे सिद्ध को निरुपाधि ज्ञान है। यहाँ तो ज्ञान थोड़ा उघड़ा हुआ है और थोड़ा उपाधिवाला है। वहाँ तो अत्यन्त निरुपाधि, अकेला ज्ञान सूर्य खिल गया। जैसे सोलह कला से चन्द्र खिले, वैसे आत्मा ज्ञान की किरणों से बेहद ज्ञान से खिल गया है। बेहद दर्शन है। और निरुपाधि सुख है। सिद्ध को आनन्द का वेदन है। आत्मा की शक्ति का प्रगट किया हुआ आनन्द का अनुभव है। समझ में आया?

कोई कहे, परन्तु यह ऊपर सिद्ध में अकेले क्या सुखी हैं? ऐसा कहते हैं। वाड़ी नहीं, गाड़ी नहीं, लाड़ी नहीं, घोड़ी नहीं, कुछ नहीं होता। हैं?

मुमुक्षु : कुर्सी नहीं, टेबल नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुर्सी नहीं, टेबल नहीं। पैसा नहीं। उसके मौसम्बी के पेय नहीं। लकड़ियाँ-बकड़ियाँ रखी हो और कपड़े लटकते हों, अन्दर बैठे और ऐसे चारों ओर से। बिस्किट और चाय। वहाँ तो कुछ नहीं, हों!

कहा नहीं था ? अपने भाई थे न ? दास । लालन । बहुत अभ्यास लालन का । १४ वर्ष में गुजर गये । १६ वर्ष की उम्र से अभ्यास । १६ वर्ष से अभ्यास वह ठेठ तक, मरते तक । लालन जामनगर का था । अमेरिका में जाये तो दस-बीस हजार लोग आवे । फिर एक बार ऐसी बात की, (वे) मजाकिया थे । देखो भाई ! मेरे आँधण बिना चले ऐसा नहीं है । क्योंकि दाल और भात का वह आँधण आवे न गरम-गरम । जामनगर का आँधण वापस । आँधण बिना चले ऐसा नहीं है । तब कहे कि मुक्ति में आँधण होगा । नहीं हो तो अपने मुक्ति जाना नहीं । नहीं, परन्तु वापस विचार किया, वापस विचार किया कि यहाँ आँधण है, उसे अपन तो जानते हैं । तो आँधण कहीं घुस नहीं जाता, जड़ है । यहाँ कहाँ घुस गया था । तब सिद्ध भगवान भी ज्ञान में आँधण जाने तो सही । परन्तु वहाँ आँधण लगता है, नवरंगभाई ! मजाकिया, हैं ? मजाकपसन्द थे । तब बाधा नहीं, अब मुक्ति हो जाये तो बाधा नहीं । आँधण है सही वहाँ । क्योंकि यहाँ आँधण और दाल-भात को आत्मा जानता है । आँधण और दाल-भात आत्मा में घुस जाते हैं ?

वहाँ पूर्ण व्यक्त दशा जहाँ प्रगट हुई तीन काल में आँधण और मैसूर और सबको वह जानता है । वह जानने की क्रिया उसे हुई, वह सुखरूप हुई । वह खानेवाला विकल्प करता कि यह ठीक-अठीक है । वह सब दुःख की दशा थी । समझ में आया ? आहाहा !

अब कहते हैं । वास्तव में ज्ञान, दर्शन और सुख जिसका स्वभाव है... देखो ! भगवान आत्मा का तो वास्तव में जानना, देखना और सुख, ऐसा उसका स्वभाव है । तीन लिये भाई इन्होंने वीर्य छोड़कर । है और सामर्थ्य आ जाता है न ? यह आत्मा है न आत्मा, उसमें जानना उसका स्वभाव, देखना उसका स्वभाव और सुख उसका स्वभाव । ऐसा आत्मा । देखो ! अब । वास्तव में ज्ञान, दर्शन और सुख जिसका स्वभाव है, ऐसा आत्मा... आत्मा स्वभाववान और उसका स्वभाव ज्ञान, दर्शन और सुख । संसार अवस्था में ऐसा भगवान आत्मा जिसमें ज्ञान—जानना, देखना, आनन्द, ऐसे स्वभाववाला स्वभावी, ऐसे भाववाला भाववान । आहाहा ! कितनी सादी भाषा में वस्तु की स्थिति वर्णन की है ।

ऐसा भगवान आत्मा । ऐसा नहीं कहा कि यह रागवाला और पुण्यवाला वह आत्मा । उसका स्वभाव राग और दया-दान, व्रत, वह उसका स्वभाव, वह स्वभाव है

नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा एक-एक प्रत्येक आत्मा, वह प्रत्येक ज्ञान, दर्शन और सुख जिसका स्वभाव है। **ऐसा आत्मा संसारदशा में...** अब संसार की दशा में, ऐसा आत्मा होने पर भी, स्वभाववान का स्वभाव यह होने पर भी, उसकी पर्याय में। अब ऐसा लेते हैं। वह स्वभाववान, वह द्रव्य हुआ; स्वभाव, वह गुण हुआ। अब उसकी पर्याय में क्या है, यह बताते हैं। आहाहा!

पर्याय अर्थात् अवस्था। द्रव्य वह स्वभाववान। जैसे शक्कर, वह स्वभाववान, मिठास वह स्वभाव और उसकी परिणति वर्तमान पर्याय वह उसकी अवस्था। ऐसे आत्मा द्रव्य—स्वभाववान; ज्ञान, दर्शन और सुख उसका स्वभाव, शक्ति। उसकी पर्याय में क्या है अनादि का, वह अब कहते हैं। आहाहा!

अनादि कर्मक्लेश द्वारा... देखो! अनादि कर्म के क्लेश द्वारा कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुआ विकारी परिणाम, ऐसे क्लेश द्वारा **आत्मशक्ति संकुचित की गयी होने से...** कर्मशक्ति अर्थात् राग और द्वेष, पुण्य और पाप ऐसे कर्मक्लेश द्वारा, निमित्त तो कर्म है। यहाँ तो उसके निमित्त से हुआ पुण्य-पाप का विकल्प **अनादि कर्मक्लेश द्वारा...** देखो! आहाहा! पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव वह कर्मक्लेश है। क्लेशरूपी कार्य है। उसके द्वारा आत्मशक्ति संकुचित की गयी है। देखो! स्वयं ने की है, ऐसा कहते हैं। पुण्य और पाप के क्लेश द्वारा आत्मशक्ति पर्याय में संकुचित करने में आती है। अवस्था में कहा न?

संसारदशा में, आत्मशक्ति संकुचित की गयी होने से... आहाहा! टीका, जोरदार टीका है न, देखो! देखो! यह सब टीका यहाँ संगमरमर में उत्कीर्ण होनेवाली है। यह तो अमृत है अमृत अकेली टीकाएँ। आहाहा! अद्भुत है परन्तु अब थोड़ा अभ्यास करे, अन्दर देखने जाये तो वहाँ क्या है यह शब्द! अकेले अमृत को उछाले, ऐसे वे शब्द हैं।

कहते हैं, भगवान आत्मा तो ज्ञान, दर्शन और सुख स्वभाववाला होने पर भी, इससे उसकी दशा में—अवस्था में—वर्तमान उसकी हालत में अनादि कर्मक्लेश द्वारा, अनादि से है। कहते हैं। नया कुछ नहीं। वह स्वभाव भी अनादि का है, स्वभाववान भी अनादि का है और विकार भी अनादि का है।

उस विकार द्वारा आत्मशक्ति संकुचित की गयी होने से। ओहो! अपनी ज्ञान, दर्शन और आनन्द की शक्ति संकुचित हो गयी है। समझ में आया? परद्रव्य के सम्पर्क द्वारा इन्द्रियादि के सम्बन्ध द्वारा, कारण कि देखने का ऐसा, उसे इन्द्रिय के कारण निमित्त से है। शक्ति संकुचित है, इन्द्रियाँ जड़ ऐसी जड़, उस द्वारा उसे ऐसा जानना रहा।

परद्रव्य के सम्पर्क द्वारा (-इन्द्रियादि के सम्बन्ध द्वारा) क्रमशः कुछ-कुछ जानता है... वह तो पूर्ण स्वभाव कहा था न पहले? उसके सामने जानता है, ऐसा कहा। **क्रमशः कुछ-कुछ जानता है और देखता है तथा पराश्रित, मूर्त (इन्द्रियादि) के साथ सम्बन्धवाला, सव्याबाध (—बाधासहित) और सान्त सुख का अनुभव करता है;...** तीन की बात ली है।

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा वस्तु स्वयं अनादि और उसके ज्ञान, दर्शन और आनन्द, ऐसी शक्ति स्वभाव भी अनादि। अब अनादि से उसकी पर्याय में, अवस्था में क्या है कि जो शक्ति, सुख और आनन्द बाहर पूर्ण आना चाहिए, उसके बदले पुण्य और पाप के क्लेशभाव में एकाकार होने से उसकी ज्ञान, दर्शन और आनन्द की शक्ति संकुचित हो गयी है। हीन पड़ गयी है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? यह तो बहुत सादी भाषा है।खाना तो सुहाता है। अभी नहीं लोग अच्छे कपड़े पहन लें, अच्छे कपड़े विवाह में बहुत बनाते हैं। अभी कोई कहता है। सगाई में लग्न किया था। ऐसी कुछ बातें करते हैं।

मुमुक्षु : अखबार में आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं? अखबार में आता है। पढ़ा था कोई जैन के लेख में आया था न? यह सादी बात है यह। यहाँ तो अंग्रेज व्यक्ति था और पाँच रुपये देकर निपटा दे। ओहो! उसमें क्या है बाहर की उपाधि में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं। परद्रव्य का, यह इन्द्रियादि के सम्बन्ध द्वारा इस ज्ञान की हीन अवस्था **क्रमशः कुछ-कुछ जानता है और कुछ-कुछ देखता है...** ऐसा लेना सब। क्रम से कुछ-कुछ जाने और कुछ-कुछ देखे। यहाँ अब सुख की बात आयी। **पराश्रित, मूर्त (इन्द्रियादि) के साथ सम्बन्धवाला,...** सव्याबाध अर्थात् बाधासहित विघ्नवाला। इन्द्रियों

के विषय में विघ्नवाला है। इन्द्रियाँ खण्ड-खण्ड हो जाये.... ऐसे विघ्नवाला। आहाहा!

जवान अवस्था जहाँ बीस वर्ष की, पच्चीस वर्ष की ऐसी लट्टू जैसी हो, उसमें अन्दर क्षय हो जाये। क्या है? चलो भाई यहाँ जिथरी। धब्बा है भाई कल ही सुविधा हो जाए पलंग की। देरी लगाना नहीं, हों! हाय! हाय! उसके बेचारे को... एक आया था, हों गोंडल का। जवान लड़का गोंडल का नहीं आया था? शाम को आया था। देखो तो ऐसे शरीर में कोई नहीं। परन्तु मुझे बात की। महाराज! यह मुझे आज क्षय है। ऐसा कहा था, इस शरीर में कुछ दिखता नहीं न? शरीर तो जवान अवस्था बाईस वर्ष की। फोटो में आया है। त्रास हो गया। हाय... हाय! अब कितने महीने रहना? मुश्किल से कमाते और खाते हों, कमाना बन्द हो जाये। पैसे का खर्च हो। आहाहा! मैंने कहा, परन्तु यह शरीर में कोई विघ्न आया, बाधा आयी। स्त्री हो, माता-पिता हो, कुछ कमाता हो दो सौ-तीन सौ का वेतन। हाय... हाय! वेतन बन्द, माँ-बाप को कमानेवाला मैं। और यह (उपाधि आयी)। वह बाधासहित सान्त अर्थात् जो सुख है अन्तवाला है। कहीं सुख अनन्त है नहीं। कल्पना की है और जाय, कल्पना की और जाये। सान्त सुख को अज्ञानी अनुभव करता है। अर्थात् दुःख, ऐसा। संसारी इन्द्रिय के सुख को अज्ञानी अनुभव करता है। आहाहा!

चक्रवर्ती देखो! पैसेवाले और इन्द्र देखो! ये ज्ञान और दर्शन की हीन शक्ति होने से, क्लेश में रुकने से पुण्य-पाप उसे पराधीन ऐसा ही इन्द्रिय की ओर का अव्याबाध नहीं परन्तु बाधावाला ऐसे दुःखरूपी सुख को अनुभव करता है। वास्तविक रीति है तो वह दुःख। किन्तु जब उसके कर्मक्लेश समस्तरूप से विनाश होने से,... देखो! जब उसे कर्म अर्थात् विकल्प पुण्य-पाप के क्लेश हैं। शुभ-अशुभभाव, वे क्लेश हैं—दुःख है—आकुलता है। उसे समस्तरूप से विनाश पाता है। स्वभाव का आश्रय लेकर एकाग्र होने से वह पुण्य-पाप के विकल्प पूरे नाश पाते हैं। तब, आत्मशक्ति अनर्गल... अर्न=आगळिया बिना की ऐसा। अनर्गल शब्द है न? अनर्गल आगळिया बिना की। आगळियो लगाया हो न, दरवाजा नहीं उघड़े ऐसा। हें? अनर्गल शब्द है न? अनर्गल आगळिया बिना की। अर्थात् अंकुश बिना की असंकुचित होने से... आहाहा!

राग और द्वेष के परिणाम नाश होने से वीतरागी आत्मा के स्वभाव का शरण लेकर अन्तर की पर्याय प्रगट हुई। कैसी? निरंकुश.... सिर पर कोई अंकुश नहीं। ऐसी शान्ति अन्दर से प्रगट हुई। और असंकुचित.... पूरी, संकोच जरा भी नहीं। संकोच नहीं होता न? यह साधु आहार लेने जाये न? ऐसा कहे कि यह तुमको संकोच नहीं होता न? हमें दो रोटी-चार रोटी दे ऐसा। सुना है या नहीं? ऐई! कोई पूछे तो पूछे, ऐसा। संकोच नहीं आता न तुमको? ऐसा कहे। क्योंकि हम दो (श्वेताम्बर शिष्य साधु) हैं और दो व्यक्ति हो तो आठ रोटियाँ बनायी हो और हमें चार दो तो तुम्हारे कम होगा। इसलिए पूछे। संकोच नहीं होगा न? तू नजर से देख न दो व्यक्ति हैं और आठ रोटी बनायी हैं तो तुझे देंगे तो उसे संकोच होगा।

मुमुक्षु : वह तो ऐसा ही कहे न, संकोच नहीं होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ऐसा ही कहे न? हमें तो बहुत सब ऐसे मिले हैं न? अकेली महिला हो और रोटी घड़ी हो चार। दो महिलाएँ और लड़के। आहार लेने जाये तो दे कितना वे? एक रोटी मुश्किल से रहे। (दो-तीन तुझे दे तो)। परन्तु उसे कम पड़े, इसे कम पड़े, इसलिए उसे संकोच हुआ कहा जाता है। संकोच हुआ तो उसके प्राण को पीड़ा की कहलाता है। ऐसा इस साधु को नहीं चलता। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, असंकुचित। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन और आनन्द से भरपूर उसमें जहाँ एकाग्र हुआ, वहाँ यह कर्मक्लेश और पुण्य-पाप की आकुलता का नाश हुआ। और निरंकुश और असंकुचित होने से, वह असहायरूप से (— किसी की सहायता के बिना)... उसमें सव्याबाध बाधा थी न? इन्द्रिय सहित।

स्वयमेव, युगपद् सब (-सर्व, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) जानता है... लो! भगवान आत्मा ऐसा सर्वज्ञपद प्राप्त करे, तब स्वयमेव.... स्वयं एव, अपने से; स्वयं एव, स्वयं अर्थात् अपन से युगपद्.... एक साथ; वह क्रम-क्रम से कुछ जानता अनादि संसार में। युगपद् सब (-सर्व, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) जानता है... उसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी परमात्मा कहा जाता है। वह इस आत्मा जैसा होता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जानता है और देखता है... लो! पूर्ण देखता है। और स्वाश्रित.... इन्द्रियों के साथ

सम्बन्ध बिना का। उसमें इन्द्रिय का सम्बन्ध था न ऐसे? स्वआश्रित, अपने आत्मा के आनन्द के आश्रित। मूर्त (इन्द्रियादि) के साथ सम्बन्धरहित, अव्याबाध और अनन्त सुख का अनुभव करता है। उसमें सान्त सुख था न? एक-एक सामने आवे शब्द है। अनन्त सुख। श्रीमद् में आता है। अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो। समाधि सुख में नहीं आता? सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन-ज्ञान अनन्त सहित जो। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा। सादि अनन्त समाधि सुख। सिद्धपद। अपने स्वभाव में शक्तिरूप पड़ा है। उसका अनुभव करके, स्थिरता करके प्रगट किया है। जब से प्रगट हुआ, वह अनन्त काल रहेगा। वह सुखी सिद्ध को कहा जाता है। बाकी सब दुःखी है। अथवा धर्मी थोड़े सुखी हैं। समझ में आया?

पूर्ण सुखी भगवान परमात्मा हैं। अनन्त सुख अनुभव करते हैं। इसलिए सब स्वयमेव जानने और देखनेवाले तथा स्वकीय सुख का अनुभवन करनेवाले सिद्ध को पर से (कुछ भी) प्रयोजन नहीं है। अकेला ज्ञान, दर्शन और आनन्द परिपूर्ण प्रगट हुआ, (उसे) पर की सहायता और पर के प्रयोजन की आवश्यकता नहीं है। उसे स्वाधीन, सुखी, अनुभवी और परमात्मा कहा जाता है। ऐसा यह आत्मा शक्तिरूप से है और प्रगट हो सकता है, ऐसा कहते हैं। इसलिए यह सिद्ध का स्वरूप वर्णन किया है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३४, गाथा-२९-३३, मगसिर शुक्ल-१०, गुरुवार, दिनांक -१८-१२-१९६९

यह पंचास्तिकाय २९वीं गाथा। इसका भावार्थ :- सिद्धभगवान (तथा केवलीभगवान)... सिद्ध भगवान की व्याख्या है। संसारी जीव की अवस्था और क्रम सम्बन्धवाली बात कह गये। अब सिद्ध भगवान की बात है। वह सिद्धभगवान (तथा केवलीभगवान) स्वयमेव सर्वज्ञत्वादिरूप से परिणमित होते हैं;... क्या कहते हैं ? उन्हें कोई इन्द्रियादि और निमित्त की सहायता नहीं है। अपने स्वभाव से सर्वज्ञशक्ति और सर्वदर्शीपना जो शक्ति में है, उससे पर्याय में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य उसरूप परिणमते हैं। यह जीव का अस्तित्व ऐसा है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ?

भगवान एक समय में तीन काल, तीन लोक जानते हैं और एक साथ देखते हैं, और एक साथ अनन्त आनन्द को अनुभव करे, ऐसी अपनी अनन्त पर्यायरूप स्वयं ही परिणमते हैं, होते हैं। उस परिणमन में लेशमात्र भी (इन्द्रियादि) पर का आलम्बन नहीं है। स्वतः स्वभाव ज्ञान और दर्शन से भरपूर भगवान की पर्याय में जहाँ परिपूर्णता प्रगट हुई, उसे पर की सहायता नहीं है।

मुमुक्षु : इन्द्रियादि पर की सहायता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, निमित्त है न। निमित्त है इन्द्रियों का।

मुमुक्षु : परन्तु मदद करता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मदद करता है, इन्द्रियाँ निमित्त है, इतनी बात है। संसार में इन्द्रिय है, मन है, निमित्त है। परन्तु कार्य तो स्वयं से होता है। पराधीन है अर्थात् निमित्त के आधीन इतना स्वयं परिणमता है। केवली को वह है नहीं। ऐसे जीव का अस्तित्व इतना बड़ा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यहाँ कोई सर्वज्ञ का निषेध करनेवाला जीव कहे कि 'सर्वज्ञ हैं ही नहीं, क्योंकि देखने में नहीं आते',... ऐसा। सर्वज्ञ है नहीं, इसका कारण कि देखने में नहीं आते। यह उसका दलील का प्रश्न है। तो उसे समझाते हैं।

तो उसे निम्नोक्तानुसार समझाते हैं:— 'हे भाई! यदि तुम कहते हो कि 'सर्वज्ञ नहीं है', तो हम पूछते हैं कि सर्वज्ञ कहाँ नहीं हैं? इस क्षेत्र में और इस काल में अथवा तीनों लोक में और तीनों काल में? सर्वज्ञ का यह बड़ा विवाद है न?

मुमुक्षु : यह तो उलझनवाला प्रश्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उलझनवाले को (उलझन) निकाल डालनेवाला प्रश्न है। भगवान आत्मा तीन काल और तीन लोक को जानने की पर्याय से, अवस्थारूप से परिणमता है। तो कहते हैं कि ऐसे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है। दूसरा कहे कि ऐसा नहीं। तो किसलिए नहीं? इस क्षेत्र में और इस काल में अथवा तीनों लोक में और तीनों काल में? यदि 'इस क्षेत्र में और इस काल में सर्वज्ञ नहीं है' ऐसा कहो, तो वह सम्मत ही है। इस क्षेत्र में अभी नहीं है। किन्तु यदि 'तीनों लोक में और तीनों काल में सर्वज्ञ नहीं है' ऐसा कहो, तो हम पूछते हैं कि वह तुमने कैसे जाना? तीन लोक में और तीन काल में कहीं सर्वज्ञ नहीं, यह जाना किस प्रकार तुमने? तीन लोक और तीन काल तुमने जाने कि उसमें कहीं सर्वज्ञ नहीं तो तीन लोक और तीन काल जाने, वह सर्वज्ञ है। समझ में आया? सबको जाँचकर कहा न कि तीन काल और तीन लोक में कहीं सर्वज्ञ नहीं है। काल में भी कहीं नहीं और क्षेत्र में भी नहीं, तो तू जाननेवाला हो गया तीन काल, तीन लोक का। सामनेवाले को बन्द करने के लिये होगी यह दलील? वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया?

सर्वज्ञरहित तुमने देख-जान लिया तो तुम्हीं सर्वज्ञ हो गये, क्योंकि जो तीन लोक और तीन काल को जाने, वही सर्वज्ञ है। और यदि सर्वज्ञरहित तीनों लोक और तीनों काल को तुमने नहीं देखा-जाना है... और यदि सर्वज्ञरहित तीन लोक और तीन काल को तुमने देखा-जाना नहीं,... तो फिर 'तीन लोक और तीन काल में सर्वज्ञ नहीं है', ऐसा तुम कैसे कह सकते हो? समझ में आया? इस प्रकार सिद्ध होता है कि तुम्हारा किया हुआ सर्वज्ञ का निषेध योग्य नहीं है।' लो!

सर्वज्ञ हैं, उसका तुम निषेध करो तो कहाँ नहीं है? (तो कहे) सर्वत्र नहीं। सर्वत्र देख आये तुम? सबके जाननेवाले तो तुम रह गये। तो तुम सर्वज्ञ का निषेध किस प्रकार कर सकते हो? और देखा नहीं और तुम सर्वज्ञ का निषेध करो, वह भी उचित नहीं।

मुमुक्षु : अभी कहीं सर्वज्ञ सिद्ध नहीं हो गये ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वज्ञ सिद्ध हो गये युक्ति से और न्याय से । समझ में आया ? यह कहेंगे, देखो !

अब आता है, सिद्ध करते हैं । देखो ! हे भाई ! आत्मा एक पदार्थ है... वस्तु है, यह आत्मा एक वस्तु है । और ज्ञान उसका स्वभाव है;... आत्मा पदार्थ है, वस्तु है । देखो यहाँ । एक ज्ञान उसका स्वभाव है, इसलिए उस ज्ञान का सम्पूर्ण विकास होने पर ऐसा कुछ नहीं रहता कि जो उस ज्ञान में अज्ञात रहे । जहाँ पूर्ण वीतराग हुआ, उस ज्ञान में कुछ बाकी नहीं रहता कि वह अज्ञात रहे ।

जिस प्रकार परिपूर्ण उष्णतारूप परिणमित अग्नि समस्त दाह्य को जलाती है,... जलनेयोग्य ईंधन आदि को अग्नि सबको जलाती है । किसे नहीं जलाये ? इसी प्रकार जाननेवाला किसे न जाने ? जाननेवाला पूर्ण दशा प्रगट हुई, वह सबको जानती है । ऐसी सर्वज्ञदशा इस क्षेत्र में इस काल में (अर्थात् इस क्षेत्र में इस काल में जन्म लेनेवाले जीवों को) प्राप्त नहीं होती तथापि... यह थोड़ा रखा है अधिक । (इस क्षेत्र में इस काल में जन्म लेनेवाले जीवों को) प्राप्त नहीं होती, तथापि सर्वज्ञत्वशक्तिवाले निज आत्मा का... सर्वज्ञशक्तिवाला जो निज आत्मा अपना जो स्वभाव, उसका स्पष्ट अनुभव इस क्षेत्र में इस काल में भी हो सकता है । लो ! यह है जयसेन आचार्य में । समझ में आया ?

यह आत्मा । यहाँ आज ही देरी से आये देरी से हिन्दीवाले, इन्हें भी सुनने का कहाँ भाव है । यहाँ तो पहले आये हों तो हिन्दी आवे । हिन्दी लोगों को कहीं दरकार नहीं । समझ में आया ? इसलिए यह आत्मा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होने के योग्य है, वह अनुभव में आ सकता है । क्योंकि कहीं अटके तो सर्वज्ञ नहीं हो सकता परन्तु राग में और पुण्य में अटकना दूर होकर अन्तर का जो स्वभाव सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, उसमें यदि एकाकार हो तो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो सकता है । यह निर्णय करे, तब तो इसे अन्दर पर्यायबुद्धि टल जाये । समझ में आया ?

मेरा स्वभाव ही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है । क्योंकि वस्तु है, उसका ज्ञान-दर्शन स्वभाव, वह अपूर्ण नहीं होता, कमी नहीं होती । परिपूर्ण एक स्वरूप है । ऐसा आत्मा,

उसकी दृष्टि करने से सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की प्रतीति होती है। समझ में आया ? निमित्त की रुचि छोड़कर, राग की रुचि छोड़कर, अल्पज्ञ अवस्था की रुचि छोड़कर परिपूर्ण द्रव्यस्वभाव ज्ञान, दर्शन से है, ऐसी प्रतीति करने से आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शीवाला, ऐसी केवलज्ञान की श्रद्धा, श्रद्धा में आती है। कहो, समझ में आया ?

सर्वज्ञत्वशक्तिवाले निज आत्मा... देखो ! निज आत्मा वापस अपना। भगवान का सर्वज्ञ, सर्वज्ञ में रहा। आत्मा का स्पष्ट अनुभव इस क्षेत्र में इस काल में भी हो सकता है। लो ! यह शास्त्र अध्यात्मशास्त्र होने से यहाँ सर्वज्ञसिद्धि का विस्तार नहीं किया गया है; जिज्ञासु को वह अन्य शास्त्रों में देख लेना चाहिए। लो !

गाथा - ३०

पाणेहिं चदुहिं जीवहि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो॥३०॥

प्राणैश्चतुर्भिर्जीवति जीविष्यति यः खलु जीवितः पूर्वम्।
स जीवः प्राणाः पुनर्बलमिन्द्रियमायुरुच्छ्वासः॥३०॥

जीवत्वगुणव्याख्येयम् ।

इन्द्रियबलायुरुच्छ्वासलक्षणा हि प्राणाः । तेषु चित्सामान्यन्वयिनो भावप्राणाः,
पुद्गलसामान्यान्वयिनो द्रव्यप्राणाः । तेषामुभयेषामपि त्रिष्वपि कालेष्वनवच्छिन्नसन्तानत्वेन
धारणात्संसारिणो जीवत्वम्। मुक्तस्य तु केवलानामेव भावप्राणानां धारणात्तदवसेयमिति ॥३०॥

श्वास आयु इन्द्रिबलमय प्राण से जीवित रहे ।

त्रय लोक में जो जीव वे ही जीव संसारी कहे ॥३०॥

अन्वयार्थ :- [यः खलु] जो [चतुर्भिः प्राणैः] चार प्राणों से [जीवति] जीता
है, [जीविष्यति] जियेगा और [जीवितः पूर्वम्] पूर्वकाल में जीता था, [सः जीवः]
वह जीव है; [पुनः प्राणः] और प्राण [इन्द्रियम्] इन्द्रिय, [बलम्] बल, [आयुः]
आयु तथा [उच्छ्वासः] उच्छ्वास है।

टीका :- यह, जीवत्वगुण की व्याख्या है।

प्राण इन्द्रिय, बल, आयु और उच्छ्वासस्वरूप है। उनमें [प्राणों में,]
*चित्सामान्यरूप अन्वयवाले वे भावप्राण है और पुद्गलसामान्यरूप अन्वयवाले वे
द्रव्यप्राण हैं। उन दोनों प्राणों को त्रिकाल अच्छिन्न-सन्तानरूप से (अटूट धारा से) धारण
करता है, इसलिए संसारी को जीवत्व है। मुक्त को (सिद्ध को) तो केवल भावप्राण ही
धारण होने से जीवत्व है, ऐसा समझना॥३०॥

* जिन प्राणों में चित्सामान्यरूप अन्वय होता है, वे भावप्राण हैं अर्थात् जिन प्राणों में सदैव
'चित्सामान्य, चित्सामान्य, चित्सामान्य' ऐसी एकरूपता-सदृशता होती है, वे भावप्राण
हैं। (जिन प्राणों में सदैव 'पुद्गलसामान्य, पुद्गलसामान्य, पुद्गलसामान्य' ऐसी
एकरूपता-सदृशता होती है, वे द्रव्यप्राण हैं।)

गाथा - ३० पर प्रवचन

तीसवीं गाथा। अब शुरुआत की, जो पहले कहा था न? 'जीवो' जीवोति हवदि' २७ वीं गाथा में। उसका जीवत्वगुण शुरु किया पहला। २७ वीं गाथा। जीवो हवदि चेदा। जीव का, अब प्राण से उसकी शुरुआत की। इसलिए वहाँ तो संक्षिप्त अर्थ टीकाकार ने किया।

पाणेहिं चदुहिं जीवहि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं।

सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो॥३०॥

श्वास आयु इन्द्रिबलमय प्राण से जीवित रहे।

त्रय लोक में जो जीव वे ही जीव संसारी कहे॥३०॥

समझ में आया ?

टीका :- यह जीवत्वगुण की व्याख्या है। यह जीव में जीवत्वपना क्या, उसकी यह व्याख्या है। प्राण इन्द्रिय, बल, आयु तथा उच्छ्वासस्वरूप हैं। पाँच इन्द्रियाँ, यह प्राण। तीन बल—मन, वचन, काया (यह) आठ। आयु और श्वास। उनमें (-प्राणों में), चित्सामान्य अन्वयवाले वे भावप्राण हैं... देखो! अब।

भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द का अस्तित्व चित्सामान्य। सामान्य अर्थात् कायम... कायम... कायम रहनेवाला। ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसा जो कायम स्वभाव सामान्यरूप से कायम रहनेवाला, वह भावप्राण है। उस भावप्राण का धारक भगवान आत्मा है। ऐसे प्राणवन्त को धरनेवाले आत्मा की दृष्टि करने से उसे सम्यग्दर्शन होता है। यह जीव ऐसा है, ऐसी प्रतीति होती है। समझ में आया ? भाव उनमें (-प्राणों में), चित्सामान्य अन्वयवाले वे भावप्राण हैं... यह क्या समझे ? चित्सामान्य अर्थात् ? आत्मा है न आत्मा, उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द यह सामान्य अर्थात् कायम रहनेवाले, एकरूप। ऐसे जो सामान्य भावप्राण को धरनेवाला, इसलिए जीव है। ऐसे भावप्राण को धरनेवाला जीव, उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और शान्ति प्रगट होती है। यह धर्म है। कहो, समझ में आया ? और पुद्गल सामान्यरूप अन्वयवाला, वह द्रव्यप्राण है। यह

पुद्गल.... पुद्गल.... पुद्गल.... पुद्गल.... यह इन्द्रियाँ पाँच—मन, वचन और काया। देखो! मन भी पुद्गल है। एक यहाँ हृदय में एक मन के परमाणु पुद्गल है, यह वाणी पुद्गल है, यह शरीर पुद्गल है। यह पुद्गल सामान्यरूप अन्वय अर्थात् रहनेवाले सम्बन्ध रखनेवाले कायम। वे द्रव्यप्राण।

उन दोनों प्राणों को त्रिकाल अच्छिन्न-संतानरूप से (अटूट धारा से) धारण करता है, इसलिए संसार को जीवत्व है। लो! संसारीपना वह त्रिकालभावप्राण को त्रिकाल धारता है, ऐसा कहते हैं। जिसका स्वभाव ज्ञान, दर्शन और आनन्द, ऐसे स्वभाव को कायम धारता है; इसलिए उसे जीव कहा जाता है। समझ में आया? संसार, वह जीवत्व है। वह संसार का जीवपना है। तीनों काल भावप्राण जो ज्ञान, दर्शन और आनन्द उसे द्रव्यस्वरूप से धारता होने से संसारी है भले, और पर्याय में द्रव्यप्राण तथा यह जड़ का निमित्तपना है। इस प्रकार तीनों काल में दोनों को धार रखता है। कहो, समझ में आया? जड़ को धार रखे, यह व्यवहारनय का कथन है। और अपने दर्शन, ज्ञान और आनन्द उसके प्राण को धार रखे, वह निश्चय और यथार्थ है। वह वास्तविक उसका जीव है। मुक्त को (सिद्ध को) तो केवल भावप्राणों का धारण होने से जीवत्व है, (ऐसा समझना।) लो!

संसारी को दो प्रकार। अपना स्वरूप है ज्ञान, दर्शन और आनन्द। जीव की व्याख्या है न? राग को धार रखे, वह यहाँ कोई व्याख्या नहीं उसका काम। जानना, देखना, आनन्द, अस्तित्व को धार रखे, ऐसा आत्मा। वह संसार में तीनों काल अपने भावप्राण को धारता होने से और द्रव्यप्राण का सम्बन्ध होने से व्यवहार से उसे भी धार रखता है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

मुक्त को (सिद्ध को) तो केवल भावप्राणों का धारण होने से जीवत्व है, ऐसा समझना। सिद्ध भगवान को तो अकेले भावप्राण का ही धारण है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे प्राण को धार रखते हैं, इसलिए वे सिद्ध कहलाते हैं।

गाथा - ३१-३२

अगुरुलघुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे।
 देसेहिं असंखादा सिय लोगं सव्वमावण्णा॥३१॥
 केचित्तु अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोगजुदा।
 विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा॥३२॥

अगुरुलघुका अनन्तास्तैरनंतैः परिणताः सर्वे।
 देशैरसंख्याताः स्याल्लोकं सर्वमापन्नाः॥३१॥
 केचित्तु अनापन्ना मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः।
 वियुताश्च तैर्बहवः सिद्धाः संसारिणो जीवाः॥३२॥

अत्र जीवानां स्वाभाविकं प्रमाणं मुक्तामुक्तविभागश्चोक्तः ।

जीवा ह्यविभागैकद्रव्यत्वाल्लोकप्रमाणैकप्रदेशाः । अगुरुलघवो गुणास्तु तेषामगुरु-
 लघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठित्वनिबन्धनस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदाः प्रतिसमय-
 सम्भवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानयोऽनन्ताः। प्रदेशास्तु अविभागपरमाणुपरिच्छिन्नसूक्ष्मांशरूपा
 असंख्येयाः । एवंविधेषु तेषु केचित्कथञ्चिल्लोकपूरणावस्थाप्रकारेण सर्वलोकव्यापिनः, केचित्तु
 तदव्यापिन इति । अथ ये तेषु मिथ्यादर्शनकषाययोगैरनादिसंततिप्रवृत्तैर्युक्तास्ते संसारिणः, ये
 विमुक्तास्ते सिद्धाः, ते च प्रत्येकं बहव इति ॥३१-३२॥

अगुरुलघुक स्वभाव से जिय अनन्त गुणमय परिणमें।
 जिय के प्रदेश असंख्य पर जिय लोकव्यापी एक है॥३१॥
 बन्धादि विरहित सिद्ध आस्रव आदि युत संसारि सब।
 संसारि भी होते कभी कुछ व्याप्त पूरे लोक में॥३२॥

अन्वयार्थ :- [अनंताः अगुरुलघुकाः] अनन्त ऐसे जो अगुरुलघु (गुण, अंश)
 [तैः अनंतैः] उन अनन्त अगुरुलघु [गुण] रूप से [सर्वे] सर्व जीव [परिणताः] परिणत
 हैं; [देशैः असंख्याताः] वे असंख्यात प्रदेशवाले हैं। [स्यात् सर्वम् लोकम् आपन्नाः]
 कतिपय कथंचित् समस्त लोक को प्राप्त होते हैं [केचित् तु] और कतिपय [अनापन्नाः]
 अप्राप्त होते हैं। [बहवः जीवाः] अनेक (अनन्त) जीव [मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः]

मिथ्यादर्शन-कषाय-योगसहित [संसारिणः] संसारी हैं [च] और अनेक (अनन्त जीव) [तैः वियुताः] मिथ्यादर्शन-कषाय-योगरहित [सिद्धाः] सिद्ध हैं।

टीका :- यहाँ जीवों का स्वाभाविक 'प्रमाण तथा उनका मुक्त और अमुक्त ऐसा विभाग कहा है।

जीव वास्तव में अविभागी-एकद्रव्यपने के कारण लोकप्रमाण-एकप्रदेशवाले हैं। उनके (जीवों के) 'अगुरुलघुगुण-अगुरुलघुत्व नाम का जो स्वरूपप्रतिष्ठत्व के कारणभूत स्वभाव उसका 'अविभाग परिच्छेद-प्रतिसमय होनेवाली 'षट्स्थानपतित वृद्धिहानिवाले अनन्त हैं; और (उनके अर्थात् जीवों के) प्रदेश-जो कि अविभाग परमाणु जितने मापवाले सूक्ष्म अंशरूप हैं वे-असंख्य हैं। ऐसे उन जीवों में कतिपय कथंचित् (केवलसमुद्घात के कारण) लोकपूरण-अवस्था के प्रकार द्वारा समस्त लोक में व्याप्त होते हैं और कतिपय समस्त लोक में अव्याप्त होते हैं। और उन जीवों में जो अनादि प्रवाहरूप से प्रवर्तमान मिथ्यादर्शन-कषाय-योग सहित हैं, वे संसारी हैं, जो उनसे विमुक्त हैं (अर्थात् मिथ्यादर्शन-कषाय-योग से रहित हैं), वे सिद्ध हैं; और वे हर प्रकार के जीव बहुत हैं (अर्थात् संसारी तथा सिद्ध जीवों में से हर एक प्रकार के जीव अनन्त हैं)॥३१-३२॥

१. प्रमाण=माप; परिमाण। (जीव के अगुरुलघुत्वस्वभाव के छोटे से छोटे अंश (अविभाग परिच्छेद) करने पर स्वभाव से ही सदैव अनन्त अंश होते हैं, इसलिए जीव सदैव ऐसे (षट्गुणवृद्धिहानियुक्त) अनन्त अंशों जितना है। और जीव के स्वक्षेत्र के छोटे से छोटे अंश करने पर स्वभाव से ही सदैव असंख्य अंश होते हैं, इसलिए जीव सदैव ऐसे असंख्य अंशों जितना है।
२. गुण=अंश; अविभाग परिच्छेद। (जीव में अगुरुलघुत्व नाम का स्वभाव है। वह स्वभाव जीव को स्वरूपप्रतिष्ठत्व के (अर्थात् स्वरूप में रहने के) कारणभूत है। उसके अविभाग परिच्छेदों को यहाँ अगुरुलघु गुण (अंश) कहे हैं।)
३. किसी गुण में (अर्थात् गुण की पर्याय में) अंश कल्पना की जाने पर, उसका जो छोटे से छोटा (जघन्य मात्रारूप, निरंश) अंश होता है, उसे उस गुण का (अर्थात् गुण की पर्याय का) अविभाग परिच्छेद कहा जाता है।
४. षट्स्थानपतित वृद्धिहानि=छह स्थान में समावेश पानेवाली वृद्धिहानि; षट्गुण वृद्धिहानि। (अगुरुलघुत्वस्वभाव के अनन्त अंशों में स्वभाव से ही प्रतिसमय षट्गुण वृद्धिहानि होती है।)

गाथा - ३१-३२ पर प्रवचन

यहाँ जीवों का स्वाभाविक प्रमाण तथा उनका मुक्त-अमुक्त, ऐसा विभाग कहा है। गाथा ३१-३२।

अगुरुलहुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे।
 देसेहिं असंखादा सिय लोगं सव्वमावण्णा॥३१॥
 केचित्तु अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोगजुदा।
 विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा॥३२॥
 अगुरुलघुक स्वभाव से जिय अनन्त गुण मय परिणमें।
 जिय के प्रदेश असंख्य पर जिय लोकव्यापी एक है॥३१॥
 बन्धादि विरहित सिद्ध आस्रव आदि युत संसारि सब।
 संसारि भी होते कभी कुछ व्याप्त पूरे लोक में॥३२॥

यहाँ तीन बोल लिये। मिथ्यात्व, योग और कषाय, अव्रत, प्रमाद उसमें डाल दिये।

यहाँ जीवों का स्वाभाविक प्रमाण, है न? माप परिमाण। (नीचे फुटनोट में है।) जीव के अगुरुलघु स्वभाव के छोटे में छोटे अंश (अविभागी प्रतिच्छेद) करने पर स्वभाव से ही सदा अनन्त अंश पड़ते हैं, इसलिए जीव सदा ऐसे (षट्गुणवृद्धिहानियुक्त) अनन्त अंशों जितना है। और जीव के स्वक्षेत्र के छोटे में छोटे अंश करने पर स्वभाव से ही सदा असंख्य अंश पड़ते हैं, इसलिए जीव सदा ऐसे असंख्य अंश जितना है। प्रदेश असंख्य जितना है। और अगुरुलघु के अनन्त पर्याय के विभाग प्रतिच्छेद जितना है। सूक्ष्म बात है, जरा थोड़ी। जानने का अधिकार है न?

जीव वास्तव में अविभागी-एकद्रव्यपने के कारण... क्या कहते हैं? जीव वास्तव में अविभाग जिसका भाग नहीं पड़ता ऐसे एकद्रव्यपने के कारण लोकप्रमाण-एकप्रदेशवाले हैं। लोकप्रमाण एकप्रदेशवाला है। जबकि असंख्यप्रदेश होने पर भी एक प्रदेश लिया अभिन्न। भगवान आत्मा लोक के प्रमाण जितने असंख्य होने पर भी, लोकप्रमाण एकप्रदेशवाला है। लो! कहे असंख्य प्रदेश और फिर एकप्रदेश। निश्चय

से अभेद है न? इतने एकप्रदेश.... वैसे जीवों के अगुरुलघुगुणों अर्थात् पर्याय अंशों। अगुरुलघुत्व नाम का जो स्वरूप प्रतिष्ठत्व के कारणभूत स्वभाव उसके अविभाग परिच्छेद-प्रतिसमय होनेवाली षट्स्थानपतित वृद्धिहानिवाले अनन्त हैं;... जीव में एक-एक गुण की एक-एक पर्याय में षट्गुण वृद्धि-हानि अनादि-अनन्त उसमें हुआ करती है। और (उनके अर्थात् जीवों के) प्रदेश— जो कि अविभाग परमाणु जितने मापवाले... आत्मा में एक परमाणु रखो तो जितना प्रदेश— भाग रुके, उसे एक प्रदेश कहते हैं। ऐसे असंख्यप्रदेशवाले सूक्ष्म अंशरूप हैं वे-असंख्य हैं। देखो! यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होती।

जीव असंख्य प्रदेशी है, ऐसा कहते हैं। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं होती। शरीर प्रमाण चौड़ा होने पर भी एकरूप नहीं है। जैसे सोने का हार एक गट्टा हो, ऐसा नहीं है। परन्तु जैसे सोने की चैन हो चैन। अलग-अलग मकोड़े, वैसे आत्मा में असंख्य प्रदेश क्षेत्र से असंख्य अंश हैं। उसका धाम... धाम असंख्य अंश हैं और गुण अनन्त हैं। यहाँ तो अगुरुलघु पर्याय में लिया है। परमाणु जितने मापवाले सूक्ष्म अंशरूप हैं वे-असंख्य हैं।

ऐसे उन जीवों में कतिपय कथंचित् (केवलसमुद्घात के कारण) लोकपूरण-अवस्था के प्रकार द्वारा समस्त लोक में व्याप्त होते हैं... भगवान आत्मा जब केवलज्ञान पावे, तब केवलसमुद्घात हो, तब लोकप्रमाण होता है। और कतिपय समस्त लोक में अव्याप्त होते हैं। सब जीव कहीं पूरे लोक में व्याप्त नहीं होते। यह सब नीचे लिखा है। और उन जीवों में जो अनादि प्रवाहरूप से प्रवर्तमान मिथ्यादर्शन-कषाय-योग सहित हैं, वे संसारी हैं,.... तीन बोल लिये। लो! आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य और आनन्द होने पर भी पर्याय में अनादि के प्रवाहरूप से प्रवर्तते यह उल्टी मान्यता, विपरीत मान्यता सहित जीव अनादि का संसारी है। यह पुण्य के परिणाम, वे धर्म हैं, पर का कर सकता हूँ, जड़ादि पर की पर्याय मेरे अधिकार की बात है, पर को बचा सकता हूँ, मार सकता हूँ—ऐसा जो भाव वह मिथ्यादर्शन पर्यायसहित जीव अनादि का है। कहो, समझ में आया ?

मिथ्यादर्शन और कषाय पुण्य और पापरूपी कषाय है, वह भी अनादि के हैं।

ऐसे प्रवाहरूप से अनादि। ३२वीं गाथा है पीछे। योग से सहित है और कम्पन। आत्मा के प्रदेशों का कम्पनसहित अनादि का है, उसे संसारी कहते हैं। अस्तित्व सिद्ध करते हैं न? आत्मा अनन्त आनन्द और ज्ञान, दर्शन गुण सम्पन्न होने पर भी संसारी में अनादि प्रवाह से मिथ्यात्व-कषाय और योग के विकारी परिणामसहित है। शरीरसहित है और कर्मसहित है, ऐसा यहाँ नहीं लिया भाई! उसका अस्तित्व उसमें है, इतने में, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! हैं? यह शरीर है न, वह तो यह शरीर तो जड़ है, पर है। उसके अस्तित्व में, होनापना इतना है। पूर्ण ज्ञान, दर्शन और आनन्द आदि गुण होने पर भी संसार में अनादि से विपरीत मान्यता, क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय और प्रदेशों का कम्पन उसके अस्तित्व में सहित, वह संसारी जीव है। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

यह आत्मा जो है, वह वस्तु और उसमें ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त गुण, ऐसा अनादि का होने पर भी उसकी पर्याय में, अवस्था में, हालत में विपरीत अभिप्राय— मिथ्यादर्शन है। समझ में आया? शरीर का कर सकता हूँ, दूसरे का कर सकता हूँ, दूसरे से मुझमें कुछ अच्छा-बुरा होता है, दूसरे को सुख दे सकता हूँ, दूसरे को दुःख दे सकता हूँ, दूसरे को जिला सकता हूँ, दूसरे को मार सकता हूँ। यह लड़के-बड़के, स्त्री, पुत्र, यह लड़के मेरे, यह मान्यता मिथ्यादर्शन अभिप्राय की अनादि की है, कहते हैं। समझ में आया? अनादि की मान्यता यह है। सच्ची मान्यता नहीं, झूठी है। स्त्री, पुत्र तो इसके होंगे या नहीं? आहाहा!

आत्मा अपने स्वभाव सहित है। उसके साथ अनादि का विकार मिथ्यादर्शन, कषाय और योग सहित है, बस! यह संसार, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कुछ लिया नहीं, यहाँ काम नहीं, यह तो बाहर की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा वस्तु और आत्मा के ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण, वह तो कायम रहनेवाली चीज़ है। उसके साथ संसार में शरीर मेरा, इन्द्रिय मेरी, स्त्री मेरी, पुत्र मेरे,

यह देव, गुरु और शास्त्र पर, वे भी मेरे—ऐसी जो मान्यता मिथ्यादर्शन शल्य, वह अनादि की उसके पास पर्यायसहित संसारी है। समझ में आया ?

कहो, यह लड़के अपने नहीं ? यह साथ में बैठा... यह तो यहाँ इनकार करते हैं। उसके अस्तित्व में जीवास्तिकाय सिद्ध करना है न ? उसके अस्तित्व में स्वयं अनादि है, ऐसे इसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द भी अनादि के हैं। इसी प्रकार इसमें पर्याय में संसारी जीव है न, वह यहाँ सिद्ध करना है। उसके अस्तित्व में, मौजूदगी में मिथ्या अभिप्राय सहित है, पुण्य-पाप के कषायसहित है और प्रदेशों के कम्पनसहित है। वह संसारी। **जो उनसे विमुक्त हैं...** लो ! यह सिद्ध। कहो, समझ में आया ? मिथ्यादर्शन-कषाय-योग से रहित, वह सिद्ध, ऐसा यहाँ तो कहा है। हैं ? आहाहा !

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त। अब अनादि-अनन्त में दो दशा—एक संसारदशा, एक सिद्धदशा। उसके अस्तित्व में संसारदशा में मिथ्यादर्शन, कषाय और योग। लो ! समझ में आया ? उसके अस्तित्व में यह है। इस सहित है। स्त्री-पुत्र सहित है, पैसा सहित है, शरीर सहित है—ऐसा नहीं है। क्योंकि वह तो पर चीज है। समझ में आया ? इसकी मान्यता में ऐसा है कि मैं शरीरवाला हूँ, स्त्रीवाला हूँ, परिवारवाला हूँ, आमदनीवाला हूँ, धन्धेवाला हूँ—ऐसी जो मिथ्याश्रद्धासहित है। वह वस्तु सहित नहीं। समझ में आया ? और कषायवाला है। चरित्रदोषवाला है, ऐसा कहा। विपरीत श्रद्धा और कषाय और योग कम्पन, इन तीन सहित इसकी विकारदशावाला संसारी है।

अब यहाँ अस्ति सिद्ध करना है न ? जीवास्तिकाय। **जो उनसे विमुक्त हैं (अर्थात् मिथ्यादर्शन-कषाय-योग रहित हैं)...** भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप पवित्र आनन्द का श्रद्धाभाव प्रगट करके, कषायरहित होकर, योग के कम्पनरहित होकर, सम्यग्दर्शन, स्थिरता और अकम्पन की पर्याय प्रगट हो, वह सिद्ध कहलाता है। कहो, समझ में आया ? **और वे हर प्रकार के जीव बहुत हैं...** अर्थात् ? संसारी भी अनन्त है और सिद्ध भी अनन्त है। लड़के को रस है। आता है न सुनने ! इसके पिता को थोड़ा-बहुत हो या न हो परन्तु इसको है। कहो, समझ में आया ?

इस जगत के अन्दर अनन्त आत्मायें हैं, उन्हें सिद्ध करते हैं। अनन्त आत्मा में दो

भाग, एक अनादि संसारी और एक मुक्त। मुक्त भी अनादि है। परन्तु संसारी प्राणी है, वह संसार की दशा मिथ्यादर्शन-कषाय-योगसहित है। कहो, समझ में आया? और वह दशा टालकर आत्मा की पवित्रदशा जिसने प्रगट की है, उसे सिद्धभगवान कहा जाता है। तो वह दो हालत-पर्याय उसकी है उसमें, ऐसा कहते हैं। संसारदशा की मिथ्यादर्शन-कषाय-योग की भी अस्तित्व पर्याय उसमें है, उस सहित है वह। और सिद्ध में उन तीन पर्यायरहित है। समझ में आया? (अर्थात् संसारी तथा सिद्ध जीवों में से हर एक प्रकार के जीव अनन्त हैं)। निगोद के संसारी जीव भी अनन्त है और सिद्ध के जीव भी अनन्त है। दोनों स्वतन्त्र द्रव्य अनादि के हैं। सिद्ध भी अनादि के हैं, संसारी भी अनादि के हैं। यह आधा घण्टा हुआ न, अब आये! यहाँ तो गुजराती शुरु हुआ तो हो गया फिर। पहले आये होते तो हिन्दी शुरु होता। यहाँ तो टाईम टू टाईम काम है। आड़ा-टेड़ा हो तो कुछ चले, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? आधा घण्टा तो हो गया। अब ३३वीं (गाथा)।

गाथा - ३३

जह पउमरायरयणं खिन्तं खीरे पभासयदि खीरं।
तह देही देहत्थो सदेहमेत्तं पभासयदि॥३३॥

यथा पद्मरागरत्नं क्षिप्तं क्षीरे प्रभासयति क्षीरम्।
तथा देही देहस्थः स्वदेहमात्रं प्रभासयति॥३३॥

एष देहमात्रत्वदृष्टान्तोपन्यासः ।

यथैव हि पद्मरागरत्नं क्षीरे क्षिप्तं स्वतोऽव्यतिरिक्तप्रभास्कन्धेन तद्ब्रह्माप्नोति क्षीरं, तथैव हि जीवः अनादिकषायमलीमसत्वमूले शरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशैस्तदभिव्याप्नोति शरीरम् । यथैव च तत्र क्षीरेऽग्निसंयोगादुद्बलमाने तस्य पद्मरागरत्नस्य प्रभास्कन्ध उद्बलते पुनर्निविशमाने निविशते च, तथैव च तत्र शरीरे विशिष्टाहारादिवशादुत्सर्पति तस्य जीवस्य प्रदेशाः उत्सर्पन्ति पुनरपसर्पति अपसर्पन्ति च । यथैव च तत्पद्मरागरत्नमन्यत्र प्रभूतक्षीरे क्षिप्तं स्वप्रभास्कन्ध-विस्तारेण तद्ब्रह्माप्नोति प्रभूतक्षीरं, तथैव च जीवोऽन्यत्र महति शरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशविस्तारेण तद्ब्रह्माप्नोति महच्छरीरम् । यथैव च तत्पद्मरागरत्नमन्यत्र स्तोकक्षीरे निक्षिप्तं स्वप्रभास्कन्धोपसंहारेण तद्ब्रह्माप्नोति स्तोकक्षीरं, तथैव च जीवोऽन्यत्राणुशरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशोपसंहारेण तद्ब्रह्माप्नोत्यणुशरीरमिति ॥३३॥

अल्प या बहु क्षीर में ज्यों पद्ममणि आकृति गहे ।

त्यों लघु-गुरु इस देह में ये जीव आकृतियाँ धरें ॥३३॥

अन्वयार्थ :- [यथा] जिस प्रकार [पद्मरागरत्नं] पद्मरागरत्न [क्षीरे क्षिप्तं] दूध में डाला जाने पर [क्षीरम् प्रभासयति] दूध को प्रकाशित करता है, (तथा) उसी प्रकार [देही] देही (जीव) [देहस्थः] देह में रहता हुआ [स्वदेहमात्रं प्रभासयति] स्वदेहप्रमाण प्रकाशित होता है।

टीका :- यह देहप्रमाणपने के *दृष्टान्त का कथन है (अर्थात् यहाँ जीव का देहप्रमाणपना समझाने के लिये दृष्टान्त कहा है।)

* यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि दृष्टान्त और दार्ष्टान्त अमुक अंशों में ही एक-दूसरे के साथ मिलते हैं (समानतावाले) होते हैं, सर्व अंशों में नहीं।

जिस प्रकार पद्मरागरत्न दूध में डाला जाने पर अपने से 'अव्यतिरिक्त प्रभासमूह द्वारा उस दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव अनादि काल से कषाय द्वारा मलिनता होने के कारण शरीर में रहता हुआ स्वप्रदेशों द्वारा उस शरीर में व्याप्त होता है और जिस प्रकार अग्नि के संयोग से उस दूध में उफान आने पर उस पद्मरागरत्न के प्रभासमूह में उफान आता है (अर्थात् वह विस्तार को व्याप्त होता है) और दूध फिर बैठ जाने पर प्रभासमूह भी बैठ जाता है, उसी प्रकार विशिष्ट आहारादि के वश उस शरीर में वृद्धि होने पर उस जीव के प्रदेश विस्तृत होते हैं और शरीर फिर सूख जाने पर प्रदेश भी संकुचित हो जाते हैं। पुनश्च, जिस प्रकार वह पद्मरागरत्न दूसरे अधिक दूध में डाला जाने पर स्वप्रभासमूह के विस्तार द्वारा उस अधिक दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव दूसरे बड़े शरीर में स्थिति को प्राप्त होने पर स्वप्रदेशों के विस्तार द्वारा उस बड़े शरीर में व्याप्त होता है। और जिस प्रकार वह पद्मरागरत्न दूसरे कम दूध में डालने पर स्वप्रभासमूह के संकोच द्वारा उस थोड़े दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव अन्य छोटे शरीर में स्थिति को प्राप्त होने पर स्वप्रदेशों के संकोच द्वारा उस छोटे शरीर में व्याप्त होता है।

भावार्थ :- तीन लोक और तीन काल के समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में प्रकाशित करने में समर्थ ऐसे विशुद्ध-दर्शनज्ञानस्वभाववाले चैतन्यचमत्कारमात्र शुद्धजीवास्तिकाय से विलक्षण मिथ्यात्वरागादि विकल्पों द्वारा उपार्जित जो शरीरनामकर्म उससे जनित (अर्थात् उस शरीरनामकर्म का उदय जिसमें निमित्त है ऐसे) संकोचविस्तार के आधीनरूप से जीव सर्वोत्कृष्ट अवगाहरूप से परिणमित होता हुआ सहस्रयोजनप्रमाण महामत्स्य के शरीर में व्याप्त होता है, जघन्य अवगाहरूप से परिणमित होता हुआ उत्सेध

१. अव्यतिरिक्त=अभिन्न (जिस प्रकार 'मिश्री एक द्रव्य है और मिठास उसका गुण है' ऐसा कहीं दृष्टान्त में कहा हो तो उसे सिद्धान्तरूप नहीं समझना चाहिए; उसी प्रकार यहाँ भी जीव के संकोचविस्ताररूप दार्ष्टान्त को समझने के लिये रत्न और (दूध में फैली हुई) उसकी प्रभा को जो अव्यतिरिक्तपना कहा है, यह सिद्धान्तरूप नहीं समझना चाहिए। पुद्गलात्मक रत्न को दृष्टान्त बनाकर असंख्यप्रदेशी जीवद्रव्य के संकोचविस्तार को किसी प्रकार समझाने के हेतु यहाँ रत्न की प्रभा को रत्न से अभिन्न कहा है। (अर्थात् रत्न की प्रभा संकोचविस्तार को प्राप्त होने पर मानों रत्न के अंश ही-रत्न ही-संकोचविस्तार को प्राप्त हुए ऐसा समझने को कहा है)।

घनांगुल के असंख्यातवें भाग जितने लब्ध्यपर्याप्त सूक्ष्मनिगोद के शरीर में व्याप्त होता है और मध्यम अवगाहरूप से परिणमित होता हुआ मध्यम शरीर में व्याप्त होता है॥३३॥

गाथा - ३३ पर प्रवचन

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं।
तह देही देहत्यो सदेहमेत्तं पभासयदि॥३३॥
अल्प या बहु क्षीर में ज्यों पद्ममणि आकृति गहे।
त्यो लघु-गुरु इस देह में ये जीव आकृतियाँ धरें॥३३॥

नीचे किया है, देखो! यहाँ यह ख्याल रखना कि दृष्टान्त और दार्ष्टान्त, सिद्धान्त अमुक अंशों में ही एक-दूसरे के साथ मिलते (समानतावाले) होते हैं, सर्व अंशों में नहीं.... न्याय देंगे।

टीका :- यह देहप्रमाणपने के दृष्टान्त का कथन है (अर्थात् यहाँ जीव का देहप्रमाणपना समझाने के लिये दृष्टान्त कहा है।) देहप्रमाण भगवान आत्मा भिन्न रहता है। भले देहप्रमाण की आकृति उसके प्रमाण में हो, तथापि वह देह से भिन्न है। समझ में आया? अपना आकार भले देहप्रमाण न हो, तथापि देह के आकार और देह के रजकण से भिन्न है। उसका अस्तित्व अत्यन्त भिन्न है, ऐसा अस्तित्व सिद्ध करना है न?

जिस प्रकार पद्मरागरत्न दूध में डाला जाने पर... दूध, दूध, दस सेर दूध हो और उसमें अन्दर एक पद्मरागरत्न ऊँचा डाला हो। अपने से अव्यतिरिक्त प्रभासमूह द्वारा उस दूध में व्याप्त होता है,... लो! अभिन्न.... उसकी प्रभा से दूध अन्दर अभिन्न हो जाता है। एकमेक दूध हो जाता है। ऐसा दिखता है, हों! एकमेक होता नहीं। जैसे शक्कर एक द्रव्य है और मिठास उसका गुण है। ऐसा कई जगह दृष्टान्त में कहा हो तो वह सिद्धान्तरूप से नहीं समझना चाहिए। उसी प्रकार यहाँ भी जीव के संकोच-विकासरूप दृष्टान्त को समझाने के लिये रत्न और (दूध में फैली हुई) प्रभा को जो अव्यतिरिक्तपना कहा है, वह सिद्धान्तरूप से नहीं समझना चाहिए।

अर्थात् क्या ? रत्नप्रभा और पूरी प्रभा व्याप गयी है, ऐसा कहते हैं। वह रत्न तो रत्न के स्थान में हैं। परन्तु दूसरे पुद्गलों के साथ में प्रभा व्यापक है, ऐसा उसका दृष्टान्त लेना। पुद्गलात्मक रत्न को दृष्टान्त बनाकर असंख्यप्रदेशी जीवद्रव्य के संकोच-विकास का किसी प्रकार से ख्याल कराने से हेतु से यहाँ रत्न की प्रभा को रत्न से अभिन्न कहा है। देखो! क्या कहा यह ? दस सेर दूध है, उसमें रत्न डाला है। वह रत्न की प्रभा, उसे रत्न से अभिन्न कहा। नहीं तो प्रभा तो रत्न से भिन्न है। रत्न के रजकणों का स्कन्ध भिन्न है और प्रभा के रजकणों का स्कन्ध भिन्न है। समझ में आया ?

अर्थात् रत्न की प्रभा संकोच-विकास पाने पर मानो कि रत्न के अंश ही—रत्न ही संकोच-विकास प्राप्त हुआ हो, ऐसा ख्याल में लेने का कहा है। ऐसा छोटा हो पाँच सेर दूध में इतनी प्रभा हो ? दस सेर में जितनी हो उतनी ?

इसी प्रकार यह शरीर अंगुल के असंख्यात भाग में निगोद का तो आत्मा उतने में हो। हजार योजन का मच्छ हो तो आत्मा उतने में हो। उसके असंख्यप्रदेश में संकोच-विकास होने की अपनी योग्यता से रहा है। और असंख्यप्रदेश संकोच-विकास होते हैं, ऐसा दृष्टान्त रत्न के साथ लो तो नहीं मिले, ऐसा कहते हैं। रत्न तो उतने में ही रहता है। और रत्न की प्रभा है दूध में, वे भिन्न स्कन्ध है। तथापि प्रवाह को और रत्न को एक गिनकर दृष्टान्त कहा है। हैं ? इतने में आत्मा व्यापक हो जाता है। एक हजार योजन का मच्छ स्वयंभूरमण समुद्र में। जैसे पाँच सेर दूध में मणि हो तो उतनी प्रभा दिखता है और अधमण में डालो तो उतनी प्रभा दिखता है। उसी प्रकार छोटे शरीर में भी असंख्यप्रदेश में उतने में रहा हुआ है। और हजार योजन में भी असंख्यप्रदेश में उतने में रहा हुआ है। इसलिए रत्न के साथ उसका मिलान करो तो आत्मा कहीं रहा और उसके असंख्यप्रदेश वापस चौड़े दूसरे हो गये हैं, ऐसा नहीं है। स्वयं ही आत्मा असंख्यप्रदेश में चौड़ा होता है।

संकोच-विकास का दृष्टान्त देने के लिये रत्न का दृष्टान्त दिया है। परन्तु रत्न को रत्न की प्रभा का मेल असंख्यप्रदेश के साथ नहीं खाता। ऐसा कहते हैं। जानने की बात कही है न! यह असंख्यप्रदेश है, वे स्वयं संकोच-विकास होते हैं। वह रत्न पाँच सेर

दूध में संकोच पावे और दस सेर दूध में चौड़ा हो, ऐसा नहीं है। वह तो उसकी प्रभा संकोच-विकास को पाती है। प्रभा को और रत्न को एक गिनकर इस दृष्टान्त का सिद्धान्त लेना। यह बात केवली के अतिरिक्त आत्मा का ऐसा अस्तित्व अन्यत्र हो नहीं सकता, ऐसा सिद्ध करते हैं। ऐसा आत्मा है, इस प्रकार इसे प्रतीति करना चाहिए। समझ में आया ?

उसी प्रकार जीव अनादि काल से कषाय द्वारा मलिनता होने के कारण... लो ! यहाँ अकेली कषाय ली। भाई ! अनादि काल से कषाय, मिथ्याश्रद्धा—राग-द्वेष, यह सब कषाय है। मिथ्यात्व भी कषाय है। आहाहा ! समझ में आया ? भाई ने लिया है मोक्षमार्गप्रकाशक में, कि भाई ! आत्मा को कषाय से और योग से कर्मस्थिति और रस पड़े, उसे प्रदेश आदि से, कषाय से उसे रस पड़ता है तो कषाय से, उसमें मिथ्यात्व साथ में आ जाता है। विपरीत श्रद्धा वह कषाय है। आहाहा ! दूसरे जीव को मार सकता हूँ, जिला सकता हूँ, ऐसा अभिप्राय वह मिथ्यात्व कषाय है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

ऐसे पुण्य परिणाम जो शुभ दया, दान, व्रत के हैं, वे मुझे धर्म का कारण हैं, ऐसा जो मिथ्यादर्शन का अभिप्राय, वह कषाय है। आहाहा ! बाहर में कोई कषाय करता न हो। शान्त.... शान्त.... शान्त। हैं ? हो ! नग्न दिगम्बर क्या ? मार फाट मारे टुकड़े करे, तो भी क्रोध न करे। ऐसा होने पर भी भगवान आत्मा अन्तर में एक शुभविकल्प दया, दान, व्रत का है, वह मुझे लाभदायक है, वह मेरा स्वरूप है—ऐसा जिसने माना है, उसने मिथ्यादर्शन के परिणाम कषायवाले तीव्र हैं। समझ में आया ? बाहर में कुछ क्रोध न करे। चमड़ी उतरकर क्षार (नमक) करे (छिड़के) तो भी क्रोध न करे। इन्द्राणी ऊपर से डिगाने को आये तो भी डिगे नहीं। अन्दर डिग गया है। आहाहा ! समझ में आया ? कषाय द्वारा मलिनपना है उसे। आहाहा ! पहले उसमें तीन कहे थे। मिथ्यादर्शन, कषाय और योग। इसमें अकेला कषाय लिया। वस्तु सुख और आनन्द होने पर भी कषाय के मिथ्या अभिप्राय और राग-द्वेष के परिणामसहित है, इसलिए वह कषायवाला है।

कषाय द्वारा मलिनता होने के कारण... कर्म द्वारा मलिनपना होने के कारण, ऐसा नहीं कहा। समझ में आया ? आत्मा अकषाय वीतरागस्वरूप होने पर भी कषाय

द्वारा मलिन है। मिथ्या अभिप्राय से मलिन है। आहाहा! कर्म से मैला है, ऐसा नहीं कहा। तुम्हारे सबको यह विवाद उठता है न।

मुमुक्षु : दोनों अनेकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त धूल में भी नहीं। अनेकान्त यह कि कषायभाव से मैलवाला है और जड़ से मैलवाला नहीं, ऐसा अनेकान्त है। स्वयं का अपराध है, वह मिथ्यादर्शन को सेवन करता है। यह कहे कि कुछ बड़ा कषाय है। आहाहा!

भाई! इसे कस अर्थात् संसार का लाभ होता है। साधु होकर भी दूसरे को जिला सकता हूँ, मेरे उपदेश से दूसरे धर्म पावें, इसलिए उपदेश मेरा है और मैं उपदेश कर सकता हूँ—ऐसी जो मान्यता, वह मिथ्यात्वरूपी कषाय से पुष्ट है। आहाहा! ऐई! विपरीत अभिप्राय वही कषाय है, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! उसमें से संसार, भटकने का लाभ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कषाय द्वारा मलिनता होने के कारण शरीर में रहता हुआ... शरीर में रहा हुआ, यह व्यवहार की भाषा है। **स्वप्रदेशों द्वारा उस शरीर में व्याप्त होता है।** ऐसे दूध में वह मणि है न? ऐसा कहा जाता है न दूध में मणि? ऐसा कहा जाता है या नहीं? ऐसा। इसी प्रकार शरीर में रहा है, ऐसा कहे, बाकी शरीर तो जड़ है। आत्मा अरूपी है। यह तो सब रूपी है। भिन्न-भिन्न है। शरीर की कोई क्रिया आत्मा में नहीं है और आत्मा की कोई क्रिया जड़ में नहीं है। समझ में आया? जीवास्तिकाय सिद्ध करना है न? सूक्ष्म पड़े, सूक्ष्म थोड़ा, लोगों को समझ अल्प होती है न? **स्वप्रदेशों द्वारा उस शरीर में...** असंख्यप्रदेश द्वारा उस शरीर में **व्याप्त होता है।** जैसे वह रत्न दस सेर दूध में व्यापता हुआ पूरे दूध में व्याप्त है, ऐसा ज्ञात होता है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा शरीरप्रमाण व्याप्त है अपने प्रदेश द्वारा। **जिस प्रकार अग्नि के संयोग से उस दूध में उफान आने पर...** लो! जिस प्रकार अग्नि के संयोग से वह दूध है न, दूध उसमें मणिरत्न पड़ा है। उफान आया उफान। उफान, उफान। वह पद्मरागरत्न के प्रभासमूह में उफान आता है। ऐसा तो दस सेर दूध है। पद्मरत्न पड़ा है। उतने में पाँच सेर दूध में प्रभा पड़ी है। अब जब अग्नि रखी तो एकदम उफान। उस

पद्मरत्न का भी उफान आया। यों ही आता होगा वह ? उसके जो परमाणु अनन्त स्कन्ध हैं, वे विशेष चौड़े हुए, ऐसा इतना ही लेना है। पाँच सेर दूध में था तो उतने में प्रभा थी (और) दस सेर में डाला तो उतनी प्रभा चौड़ी हो गयी। वह रत्न ही (मानो) विस्तार को पाया, उस प्रभासहित गिना है न इसलिए। समझ में आया ? रत्न तो रत्न है। परन्तु उसकी प्रभासहित रत्न को गिनना है न ? इसलिए प्रभा चौड़ी हो गयी है, ऐसा। दस सेर दूध प्रमाण।

इसी प्रकार आत्मा, यहाँ शरीर इतना है, देखो ! और स्वर्ग में जाये तो छोटे में छोटा सात हाथ का शरीर है वैमानिक स्वर्ग में। आगे एक हाथ का। वह तो अभी कुछ है नहीं। समझ में आया ? उसके आत्मा के प्रदेश वापस यह देह है, तत्प्रमाण चौड़े हो जायेंगे। समझ में आया ?

वैमानिक देव है न ? छोटे में छोटी सात हाथ की अवगाहना है। वैमानिक देव, सौधर्म देवलोक। यहाँ यह शरीरप्रमाण है, वहाँ उस शरीरप्रमाण व्यापक हो जायेगा। जैसे वह मणिरत्न की प्रभा जैसे चौड़ी हुई, उसमें असंख्यप्रदेश चौड़े होंगे, ऐसा ही उसके अस्तित्व का स्वभाव है। ऐसा कहते हैं। शरीर के कारण नहीं, कर्म के कारण नहीं, देवरूप से आया; इसलिए नहीं, गति के कारण नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

उस दूध में उफान आने पर उस पद्मरागरत्न के प्रभासमूह में उफान आता है (अर्थात् वह विस्तार को व्याप्त होता है) और दूध फिर बैठ जाने पर प्रभासमूह भी बैठ जाता है;... उफान बैठ जाये तो वह प्रभा भी बैठ जाती है। उसी प्रकार विशिष्ट आहारादि के वश... लो ! शरीर की बात है। उसी प्रकार विशिष्ट आहारादि के वश उस शरीर में वृद्धि होने पर... बालक था, उसमें से बढ़-बढ़कर, देखो ! यह बड़ा हुआ। आत्मा के प्रदेश भी इतने चौड़े हुए। हू-ब-हू वर्णन करते हैं। आहाहा ! उसके अस्तित्व की स्थिति ऐसी है। दूसरे प्रकार से हो नहीं सकती, ऐसा सिद्ध करते हैं। उसी प्रकार खास आहार, पानी, दूधपाक, मौसम्बी। समझ में आया ?

उस शरीर में वृद्धि होने पर उस जीव के प्रदेश विस्तृत होते हैं... बालक इतना था इतना, शरीर बड़ा। दूध, खाने का साधन किया तो शरीर मोटा-चौड़ा हुआ। तत्प्रमाण

आत्मा के प्रदेश भी चौड़े हो जाते हैं, स्वयं के कारण से। शरीर चौड़ा हुआ, इसलिए चौड़े होते हैं, ऐसा नहीं। किसलिए? यह तो यहाँ सिद्ध करते हैं। शरीर चौड़ा हुआ, इसलिए आत्मा के प्रदेश चौड़े हुए, ऐसा नहीं है। उस दूध में मणिरत्न पड़ा था तो चौड़ा हुआ, वह भी स्वयं की शक्ति से प्रभा के कारण से चौड़ा हुआ, ऐसा कहते हैं। दूध के कारण से नहीं। दूध के कारण से नहीं। दूध उफान में आया, इसलिए स्वयं चौड़ा हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! कैसी सत्ता का अस्तित्व है! देखो न!

भगवान आत्मा असंख्यप्रदेशी होन पर भी वह जितने देह में छोटे, मोटे में जाता है तत्प्रमाण चौड़ा विस्तार हो जाता है, वह स्वयं की शक्ति से होता है। यह आ गया है अपने पहले। आ गया है कहीं? कहाँ? विशिष्ट था न? हैं? २७ में आया था या नहीं? देहप्रमाण था न? विशिष्ट अवगाह-परिणाम की शक्तिवाला होने से, देखो! यह।

निश्चय से लोकप्रमाण होने पर भी, खास अवगाहपरिणाम की शक्तिवाला होने से.... २७ गाथा में आया है। पीछे है। यह ५५वाँ पृष्ठ है। गुजराती है न? ५५वाँ पृष्ठ, देखो! विशिष्ट अवगाहपरिणाम की शक्तिवाला होने से.... है? क्या कहा? कि शरीर के रजकणों में वृद्धि होने से शरीर चौड़ा होता है, वैसे आत्मा के प्रदेश भी चौड़े स्वयं के कारण से होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : होना पड़े, ऐसा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : होना पड़े, ऐसा नहीं। कैसी अस्तित्व की सिद्धि करते हैं? यहाँ और छोटा हो तो उसके प्रमाण में स्वयं चौड़ा हो जाता है। वह दूध में उफान बैठ जाये तो मणिरत्न की प्रभा भी कम हो जाती है। वह स्वयं के कारण से, दूध घटा इसलिए नहीं। उसका शरीर छोटा हो गया, इसलिए अन्दर आत्मा के प्रदेश संकुचित हो गये, ऐसा नहीं। अपने आत्मा के प्रदेश संकोच-विकास स्वयं के कारण से है। (यह) सिद्ध करते हैं, भाई! यह निमित्त को उड़ा देते हैं। निमित्त के कारण संकोच-विकास होता है, ऐसा नहीं। यह सिद्ध करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त को तो सिद्ध करते हैं अग्नि के संयोग से?

पूज्य गुरुदेवश्री : ले, कहा न? निमित्त है। निमित्त है तो निमित्त से कहीं वह

हुआ है ? दूध तो स्वयं के कारण से चौड़ा हुआ है। उसे अग्नि के कारण से दूध चौड़ा हुआ, ऐसा सिद्ध करना है न यहाँ ? परन्तु फिर रत्नप्रभा चौड़ी हुई, वह स्वयं के कारण से हुई है, ऐसा सिद्ध करना है न ? रत्न की प्रभा चौड़ी हुई है, वह स्वयं के कारण से हुई है, ऐसा कहते हैं।

इसी प्रकार कर्म के निमित्त से शरीर मोटा होने पर आत्मा के प्रदेश स्वयं के कारण से विस्तार को-अवगाहना को पाते हैं। साधारण मनुष्य को ऐसा लगता है कि यह एक जानने की चीज़ है या नहीं ? ऐसा जीव है, वैसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं हो नहीं सकता। परमात्मा वीतरागदेव तीर्थकरदेव ने कहा हुआ आत्मा ऐसा देहप्रमाण है, यह यहाँ सिद्ध करना है। ऐसी बात वेदान्त में, बौद्ध में अन्यत्र कहीं हो नहीं सकती। और जैन में भी ऐसा माने कि शरीर चौड़ा हुआ, इसलिए आत्मा को चौड़ा होना पड़ा, वह भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ?

इसने भी आत्मा के असंख्यप्रदेश की संकोच-विकास शक्ति स्वतः है, उसे नहीं माना। पर के कारण संकोच-विकास माना, वह भी दृष्टि विपरीत है। कहो, समझ में आया ? कहीं आचार्य यह बात करते होंगे, (वह) मुफ्त में होगी कोई ? असंख्यप्रदेशी भगवान संकोच-विकास होने के संसार में स्वतःसिद्ध लायक है। समझ में आया ? ऐसा ही आत्मा का संकोच-विकास होने का अस्तित्वपना स्वयं से है। ऐसा कहते हैं। कर्म के कारण नहीं, शरीर के कारण नहीं। लो ! प्रदेश संकुचित होते हैं।

जीव के विस्तार प्रमाण शरीर फिर सूख जाने पर प्रदेश भी संकुचित हो जाते हैं। पुनश्च, जिस प्रकार वह पद्मरागरत्न दूसरे अधिक दूध में डाला जाने पर स्वप्रभासमूह के विस्तार द्वारा उस अधिक दूध में व्याप्त होता है, ... वह रत्न व्यापता है। ऐसा कहा न ? अपने प्रभासमूह सहित। यह तो दृष्टान्त है। उसी प्रकार जीव दूसरे बड़े शरीर में स्थिति को प्राप्त होने पर... हजार योजन में गया अनन्त बार। मछली हजार योजन की है, स्वयंभूरमणसमुद्र में। विस्तार द्वारा वह बड़े शरीर में व्यापता है। ओहोहो ! समझ में आया ? छोटा वस्त्र हो बड़ा परन्तु ऐसे लपेटकर किया हो तो इतने में हो। चौड़ा करे तो इतने में हो। एकदेशी दृष्टान्त कहा। बड़े शरीर में व्यापे हजार योजन में। तो इतना चौड़ा

हो। चौड़ा होने का अस्तित्व, असंख्यप्रदेश का अस्तित्व भी स्वयं से और संकोच तथा विकास होने की योग्यता भी स्वयं से। शरीर के और कर्म के कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो यह दृष्टान्त देते हैं। भाई! लो! कि देखो! इस शरीर में क्षय हो गया तो आत्मा के प्रदेश संकुचित हो गये या नहीं? क्षय के कारण हुए या नहीं? नहीं। समझ में आया? शरीर अच्छा हो। उसमें क्षय हुआ। यह.... अँगुली पतली पड़ जाये, नाक पतला पड़ जाये, वह आत्मा के प्रदेश भी इतने संकुचित होते हैं। शरीर संकुचित हुआ, इसलिए यह प्रदेश संकुचित हुए? नहीं। दिलीप! नहीं? लो! होशियार है! ऐई जीतु! क्या कहा? शरीर के कारण नहीं। तो अपने आप संकोच-विकास होता होगा? संकोच-विकास उसका स्वभाव हो तो सिद्ध में भी संकोच-विकास होना चाहिए। यदि आत्मा के प्रदेश का स्वभाव संकोच-विस्तार होने का हो तो सिद्ध में भी संकोच-विकास होना चाहिए? कॉलेजवाले हैं न ये! यह संसार अवस्था में, विभावी अवस्था में संकोच-विकास होने का स्वतः स्वभाव पर्याय में है। सिद्ध में वह फिर नहीं रहता। ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

संसार में जैसे मिथ्यात्व-कषायसहित के विभाव परिणामसहित है, वह भी स्वयं से है। पर के कारण नहीं; वैसे ही संकोच-विकास भी स्वयं से है, पर के कारण नहीं। ऐसे दो सिद्ध करना है इसमें। आहाहा! और जिस प्रकार वह पद्मरागरत्न दूसरे कम दूध में डालने पर स्वप्रभासमूह के संकोच द्वारा उस थोड़े दूध में व्याप्त होता है; उसी प्रकार जीव अन्य छोटे शरीर में स्थिति को प्राप्त होने पर स्वप्रदेशों के संकोच द्वारा उस छोटे शरीर में व्याप्त होता है। हजार योजन का मच्छ हो, इसका आत्मा हजार योजन में व्याप्त हो। वह मरकर जब निगोद में जाये, आहाहा! तत्त्व का विराधक होकर निगोद में जाये। समझ में आया? अंगुल के असंख्यभाग जितना शरीर रहे। उसका अवगाहन भी उतना ही रहे। समझ में आया ?

उसके अस्तित्व के संकोच-विकास में स्वतःसिद्ध अस्तिरूप से है, ऐसा सिद्ध करना है। भिन्न द्रव्य के संकोच-विकास के कारण आत्मा का संकोच-विकास होता है,

ऐसा नहीं है। आहाहा! छिपकली की पूंछ कट जाती है या नहीं? फिर उसके प्रदेश संकुचित होते हैं न? देखो! यहाँ वह कट गयी, संकुचित होते हैं। हैं? यहाँ तड़पे। कहते हैं कि तड़पे, ... तड़पे वह अपने शरीर की पर्याय से, उसके असंख्यप्रदेश भी स्वयं के कारण से चौड़े हुए हैं। और संकोच होकर वहाँ जाते हैं, वे भी स्वयं के कारण से है। आहाहा! कैसी स्वयंसिद्ध सत्ता का अस्तित्व, ऐसा कहते हैं। पूंछ हो न टूटी हुई, फिर वहाँ चली जाये, फिर असंख्यप्रदेश भी संकुचित वहाँ चले जाये यहाँ से टूटकर। वह छूटने की योग्यता और वहाँ इतनेरूप से रहना, वह स्वयं के कारण से है। शरीर के कारण से या कर्म के कारण से नहीं। ऐसा सिद्ध करना है। कहो, छोटे शरीर में आया। भाई! लो।

भावार्थ :- तीन लोक और तीन काल के समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में प्रकाशित करने में समर्थ ऐसे... यह आया न? विशुद्ध-दर्शनज्ञानस्वभाववाले चैतन्यचमत्कारमात्र शुद्धजीवास्तिकाय से विलक्षण... अब जयसेनाचार्य का डाला है। क्या कहते हैं? कि तीन लोक और तीन काल के समस्त द्रव्य-गुण और पर्याय, उसे एक समय में प्रकाशित करने में समर्थ ऐसा भगवान आत्मा है। समझ में आया? यह जरा लूखा लगे, (इसलिए) वापस डाला माल। हैं?

तीन लोक ऊर्ध्व, मध्य और अधो। तीन काल—भूत, भविष्य और वर्तमान। समस्त द्रव्य। तीन काल के द्रव्य अर्थात् पदार्थ, तीन काल की गुणशक्ति और तीन काल की पर्यायें। एक समय में.... यह आत्मा प्रकाशित करने में समर्थ ऐसे विशुद्ध-दर्शनज्ञानस्वभाववाले... लो! ऐसा यह भगवान विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभाववाला है। चैतन्यचमत्कारमात्र... कैसा है यह? चैतन्य चमत्कार। आहा! वह चमत्कार कहते हैं न कि इसके पास चमत्कार है, अमुक है, ढींकणा है। धूल भी नहीं चमत्कार। सुन न! कुछ कहता था ऐसा चमत्कार। क्या कहता था? कोई कहता था कुछ। समझ में आया? वह है न एक बाबा कैसा? फकीर। साईबाबा। और यह एक वह स्वामीनारायण में गये हैं न एक अभी? योगी महाराज, योगीन्द्रदेव महाराज, कोई कहता था। भाई कहते थे। समझ में आया?

वह कहे चलो-चलो वहाँ। कपूरभाई! वह चुन्नीभाई है न? जहाँ वड़िया। सब चावल रखे वह। यहाँ भी हाँ, हाँ करे। परन्तु स्वयं का हो वह छोड़े नहीं अन्दर से। योगीराज चमत्कारिक है, ऐसा कहा। इन भाई को कहा हो भाई! कपूरभाई के वहाँ उनके वड़िया में मकान है न? इसलिए वहाँ गये होंगे, इसलिए कहे चलो-चलो वहाँ। चमत्कार है, उसे चमत्कार है। वचनसिद्धि। अरे! वचनसिद्धि कहाँ था? परन्तु वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है। अज्ञानी जीव है। वह ईश्वर को कर्ता मानता है। समझ में आया? इस जगत का कर्ता ईश्वर है। परमात्मा है, हम उसके दास हैं। वह तो मिथ्यादृष्टि है। बाहर का प्रभाव इतना लोगों को लगे। वे एक डॉक्टर गये थे न? रतिभाई डॉक्टर है न? वहाँ गये थे। धब्बा लगवाने। अरे भगवान! क्या करता है? दुनिया इस भ्रमणा में कितनी पड़ी है? तथापि कहे अच्छा नहीं हुआ, मुझे कुछ अच्छा नहीं हुआ। लो! रतिलाल डॉक्टर। उसके पास गया था, ऐसा कहता है। ऐसे के ऐसे। भ्रमणा में जगत का दूसरा कुछ कर दे।

एक परमाणु की पर्याय दूसरे से बदले, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। आहाहा! हैं? यह तो यह भाई धब्बा मारे योगीराज। ऐसी की ऐसी भ्रमणा। कौन धब्बा, किसे? जड़ पर, शरीर पर, आत्मा पर। किसे धब्बा लगे और किसे अच्छा हो इसमें? भ्रमणा का पार नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! दूसरे के कारण मानो पर में कुछ होता होगा। भ्रमणा है। हमारे पास भी बहुत आते हैं न कितने ही? महाराज के कारण पैसा बहुत होता है। लो! बहुत के लिये अपन मानते हैं तो पैसा होता है। धूल भी नहीं। पुण्य के बिना पैसा हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : महाराज के पास आवे तो पुण्यवाला ही आवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, वह अलग बात है। साधारण लोग भी बहुत हैं। महीने में मुश्किल से दस रुपये, पच्चीस रुपये आते हों, ऐसे भी बहुत हैं। इसलिए कोई यहाँ आवे तो उसके पास पैसा हो जाये? हैं? यह लकड़ी है यह? इलम की लकड़ी है यह? इस लकड़ी में ईलम होगा, वह तो जड़ है। ईलम तो चैतन्यचमत्कार की बात है। देखो, न, देखो!

चैतन्यचमत्कारमात्र, ऐसी भाषा कैसी ली है ? कैसा है भगवान आत्मा ? यह पुण्य-पाप नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं अकेला शुद्धचैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह ऐसे आत्मा के अन्दर श्रद्धा और ज्ञान करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। वह धार्मिक क्रिया है। समझ में आया ? विशुद्ध दर्शनज्ञानस्वभाव जिसका त्रिकाल शुद्धचैतन्यस्वभाव चैतन्यचमत्कारमात्र शुद्धजीवास्तिकाय से विलक्षण मिथ्यात्वरगादि विकल्पों द्वारा उपार्जित जो शरीरनामकर्म... द्वारा लो ! यह संकोच-विकास होता है, ऐसा आत्मा के प्रदेशों का भी संकोच-विकास स्वयं से है, पर से नहीं होता।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-३५, गाथा-३३-३५, मगसिर शुक्ल-११, शुक्रवार, दिनांक -१९-१२-१९६९

यह पंचास्तिकाय ३३ गाथा का भावार्थ चलता है, भावार्थ । भावार्थ है न ? पृष्ठ ६६ । उसका भावार्थ । हिन्दी-हिन्दी । क्या कहते हैं कि इस जीव का स्वरूप कैसा है ? जो यह आत्मा है, उसका वास्तविक स्वरूप यथार्थरूप से कैसा है ? और जैसा है, वैसी दृष्टि करे तो उसे सम्यग्दर्शन और धर्म होता है । समझ में आया ?कहो, समझ में आया ? क्या कहते हैं, देखो ! भावार्थ । कैसा है यह आत्मा ? सर्वज्ञपरमात्मा परमेश्वर वीतरागदेव ने आत्मा कैसा जाना है और कैसा देखा है ? कि **तीन लोक और तीन काल के समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में प्रकाशित करने में समर्थ है...** जो कोई अपने अतिरिक्त परपदार्थ का कर्ता हो नहीं सकता परन्तु सर्व पदार्थों को जानने में समर्थ है । समझ में आया ? आत्मा के तीन काल और तीन लोक । कोई तीन काल, तीन लोक का आत्मा कर्ता नहीं । और तीन लोक तथा तीन काल में रहनेवाले द्रव्य, गुण, पर्याय वह स्वयं से जो भिन्न जो द्रव्य-वस्तु है, उसकी शक्ति और पर्याय / अवस्था, उसका आत्मा कर्ता नहीं है । क्योंकि वह तो जगत की चीज़ है । उसे एक समय में प्रकाशित करने में समर्थ है । ऐसा जीव है । समझ में आया ?

ऐसा भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल, तीन लोक में रहा हुआ द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् अवस्था—हालत । इन किसी का कर्ता नहीं और पर का भोक्ता नहीं । परन्तु पर का एक समय का ज्ञाता है । समझ में आया ? एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल, तीन लोक को जानने में आत्मा समर्थ है । ऐसा उसके ज्ञान, दर्शन का सामर्थ्य है । **ऐसे विशुद्धदर्शनज्ञान-स्वभाववाले...** ऐसे विशुद्ध दर्शन देखना-जानना तीन काल, तीन लोक में रहे हुए द्रव्य-गुण-पर्याय । द्रव्य-गुण-पर्याय नाम भी सुना न हो । जैनदर्शन की पहली पद्धति । यह तो भक्ति करना, पूजा करना, यात्रा करना, व्रत करना, बस यह । यह राग है, धर्म नहीं । समझ में आया ?

यह धर्म नहीं । यह तो पुण्यभाव है । भक्ति, पूजा, यात्रा, दया, दान, सम्यग्दर्शन बिना का व्रत का भाव, यह सब भाव शुभभाव तो पुण्य है, धर्म नहीं । क्योंकि आत्मा तो

यहाँ कहते हैं कि पुण्य से, विकल्प से लेकर तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला है। ऐसे आत्मा को अन्तर्दृष्टि में लेना, पूर्णानन्दस्वरूप में हूँ, ऐसी दृष्टि करना, इसका नाम पूर्ण आत्मा के अस्तित्व के सत्ता की श्रद्धा (अर्थात् कि) सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया? उसे रागवाला मानना, शरीरवाला मानना, वह तो मिथ्यादर्शन है। वर्तमान में अल्पज्ञ पर्याय है, उतना मानना, वह भी मिथ्यादर्शन है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल में उसने आत्मवस्तु का सम्यग्दर्शन किया ही नहीं। वह छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै (निज) आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।'

अनन्त बार दिगम्बर मुनि हुआ और पंच महाव्रत के विकल्प का शुभराग भी अनन्त बार किया। परन्तु वह कहीं धर्म नहीं। समझ में आया? वह राग से भिन्न कितना है? कि विशुद्ध-दर्शनज्ञानस्वभाववाले... आत्मा तो निर्मल दृष्टा और ज्ञानस्वभाववाले चैतन्यचमत्कारमात्र.... वह तो चैतन्यचमत्कारमात्र एक समय में सबको जाने-देखे ऐसा चमत्कार है। अपने अतिरिक्त कोई विकल्प आदि का कर्ता नहीं है। परन्तु अपने अतिरिक्त तीन काल, तीन लोक का पूर्ण ज्ञाता है। कहो, बराबर है? काम भारी कठिन परन्तु यह? साधारण लोगों को तो बेचारों को अभी समझ में भी नहीं आता। ऐई! पानी-बानी छानना तो कहेंगे उसमें ज्ञान में छना.... वह ज्ञेय है। पानी छानने आदि की क्रिया होती है, उसमें विकल्प होता है, वह तो ज्ञान के ज्ञेय में गया। ज्ञान के कर्तव्य में नहीं। ऐसी बात है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव साक्षात् परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। वर्तमान में विराजते हैं। भगवान की दिव्यध्वनि चलती है। इन्द्र सुनने जाते हैं। संवत् ४९ में कुन्दकुन्दाचार्यदेव गये थे। आठ दिन रहे थे। संजय ने नहीं डाला न अभी? वह डाले सब ठीक बहुत दिन से निकल गया है। वे डालनेवाले कौन उसका यहाँ? धनी-बनी नहीं होगा कोई। कहो, समझ में आया? यह कुन्दकुन्दाचार्य भगवान परमात्मा विराजते हैं, वहाँ आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये हैं। और कहते हैं कि भगवान ने ऐसा आत्मा कहा कि वह तीन काल, तीन लोक के द्रव्य, उसकी शक्ति, उसकी अवस्था और उसके रागादि जो हों विभाव, उन सबको जाने। जाननेवाला आत्मा। परन्तु अपने अतिरिक्त पर का कुछ करे, वह आत्मा नहीं। कहो, पोपटभाई!

गजब काम ! यह सब काम पूरे दिन करते हैं न ? होशियार व्यक्ति तो व्यापार और धन्धा, हैं ? परन्तु यह कितनी धूल निकालकर बड़ा ढेर किया है । है बड़ा ढेर इतना बड़ा मानो क्या होगा यह वह ? अपने आप होगा ? यहाँ तो परमात्मा कहते हैं कि वह जड़ की अवस्था जड़ के कारण से होती है । अपने से नहीं होती । आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं कि चैतन्यचमत्कार भगवान आत्मा एक-एक आत्मा वह शुद्ध जीवास्तिकाय, देखो ! उस शुद्ध जीव के अस्ति वस्तु है । शुद्ध जीव का अस्तित्व है । ऐसे आत्मा की प्रतीति करना । ऐसा आत्मा है, ऐसी अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह धर्म की पहली शुरुआत है । समझ में आया ? इसके अतिरिक्त धर्म कभी होता नहीं । तो कहते हैं कि ऐसा भगवान शुद्धचैतन्यचमत्कार आत्मा से विलक्षण.... देखो ! उससे वि-लक्षण—विपरीत लक्षणवाले । मिथ्यात्तरागादि विकल्पों द्वारा... देखो ! आहाहा !

भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण और परिपूर्ण तत्त्व को जाननेवाला, उसे न जानकर ऐसे चैतन्य से विपरीत मिथ्यादर्शन—मैं राग हूँ, पुण्य मैं हूँ, पुण्य के परिणाम मेरा धर्म है—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और उसमें राग की दशा का भाव, वह राग-द्वेष का भाव, वह विकल्प है । उसके द्वारा उपार्जित जो कर्म । उसके द्वारा तो कर्म उत्पन्न होता है; धर्म उत्पन्न नहीं होता । बराबर है ? आहाहा !

भगवान शुद्ध चैतन्यवस्तु परिपूर्ण विशुद्ध चैतन्यचमत्कार वह तो निजस्वरूप ऐसा है । उससे विपरीत मिथ्याश्रद्धा और पुण्य-पाप के भाव, वे शुद्ध जीव अस्तित्व के अस्तित्व से भिन्न है । कहो, दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प शुद्ध जीवास्तिकाय से भिन्न है अथवा विलक्षण है । ऐसा आया न ? विलक्षण । जैसा भगवान आत्मा का जानने-देखने का लक्षण स्वभाव है, ऐसा पुण्य-पाप और मिथ्यात्व का स्वभाव नहीं । उससे भिन्न है । समझ में आया ?

ऐसे विलक्षण मिथ्यात्तरागादि विकल्पों द्वारा... क्या हुआ ? उपार्जित जो शरीर नामकर्म, उससे तो शरीर बँधा । विकार के परिणाम से, जो अशरीरी भगवान आत्मा को उसके लक्षण से जाना नहीं और पुण्य-पाप और मिथ्यात्वभाव से नये कर्म बँधे । वह कर्म शरीर का कारण है । अशरीरी भगवान आत्मा को मिथ्यात्व और राग-द्वेष (वह) शरीर उपार्जित का कारण है । आहाहा !

वह शरीरनामकर्म उससे जनित... नामकर्म से उत्पन्न हुआ ऐसा (अर्थात् उस शरीरनामकर्म का उदय जिसमें निमित्त है ऐसे) संकोचविस्तार के आधीनरूप से जीव... वह नामकर्म का निमित्त और अपनी योग्यता। कैसी ? कि सर्वोत्कृष्ट अवगाहरूप से परिणमित होता हुआ... एक हजार योजन का मच्छ होता है। स्वयंभूरमण समुद्र में एक हजार योजन का मच्छ होता है। चार हजार कोस जितना लम्बा। वह शरीर क्यों मिला ? कि अपने चैतन्यचमत्कार की दृष्टि नहीं की और विपरीत भाव मिथ्यात्व और राग-द्वेष किये, उससे नामकर्म बाँधा और नामकर्म से शरीर की अवगाहना एक हजार योजन की उत्पन्न हुई। समझ में आया ? अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र है। ऐसे असंख्य, हजार योजन का लम्बा मच्छ हैं। असंख्य, असंख्य। असंख्य। हैं ? संख्या असंख्य है। असंख्य है। अनन्त नहीं। संख्यात नहीं, अनन्त नहीं। असंख्य योजन का एक समुद्र है, उसमें असंख्य तो हजार योजन के मच्छ। ऐसे असंख्य पड़े हैं। वहाँ क्यों गया ? ऐसी अवगाहना क्यों हुई ? अपने आत्मा में एकाकार न होकर मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष के भाव से कर्म उत्पन्न हुए, उससे शरीर प्राप्त हुआ।

आत्मा का भान और श्रद्धा-ज्ञान करके तो अशरीरी हो जाता है। अशरीरी अर्थात् सिद्ध होता है। ऐसा तो किया नहीं। कहो, समझ में आया ? संकोचविस्तार के आधीनरूप से जीव सर्वोत्कृष्ट अवगाहरूप से परिणमित होता हुआ... एक हजार योजन में आत्मा लम्बा-चौड़ा रहता है। अपने से, हों ! इस शरीर के कारण से नहीं, कर्म के कारण से नहीं। अपनी पर्याय का इतना अवगाहन लम्बा, चौड़ा हो गया और महामच्छ के शरीर में व्यापता है। नहीं तो अपना भगवान आत्मा ज्ञान और चैतन्य चमत्कार वस्तु है। उसकी यदि दृष्टि और धर्म प्रगट करे, तब तो वह अशरीरी हो जाये। शरीर मिले नहीं। परन्तु अपने स्वभाव का भान न करके, पर में सुख मानकर और पुण्यादि मेरा है, शरीर मेरा है, कर्म मेरा है, ऐसी मान्यता से और राग-द्वेष से कर्म उपार्जित हुए। उससे एक हजार योजन में व्याप्त शरीर मिला। समकिति बैठे स्वयंभूरमण समुद्र में। असंख्य समकिति हैं। वह शरीर पूर्व के कर्म के कारण मिला, परन्तु अन्तर में तो शरीर से और राग से मैं भिन्न हूँ, ऐसा मच्छ को भी अन्तर में भान है। समझ में आया ? असंख्य पड़े हैं। तो कहते हैं कि असंख्य समुद्र में पड़े हुए एक-एक मच्छ, देखो ! तो समकिति से अधिक

असंख्यगुने मिथ्यादृष्टि हैं। एक समकिति और असंख्य मिथ्यादृष्टि। तो सम्यग्दृष्टि को ऐसा हजार योजन का शरीर मिला, वह पूर्व कर्म के कारण से मिला। परन्तु वर्तमान में अपने में शरीर भी नहीं, शरीर की क्रिया भी नहीं और पुण्य-पाप के विकल्प उठें, वह भी मैं नहीं। मैं तो उनसे भिन्न शुद्ध चैतन्य जीवास्तिकाय मैं हूँ। समझ में आया ?

ऐसा अनुभव तिर्यच को भी समुद्र में होता है। मनुष्य को नहीं होता, न करे उसे। कहो, भीखाभाई! आहाहा! अच्छी बात है। परन्तु यह अन्दर में करना है न या बाहर से? ऐई, कहाँ गये? हीराभाई! और जघन्य अवगाहरूप से परिणमित होता हुआ उत्सेध घनांगुल के असंख्यातवें भाग जितने लब्ध्यपर्याप्त सूक्ष्मनिगोद के शरीर में व्याप्त होता है... आहा! छोटे में छोटा हुआ तो आत्मा के भान बिना मैं ज्ञान-दर्शन का विशुद्ध चैतन्यचमत्कार हूँ, ऐसी अन्तर की प्रतीति, अनुभव बिना अंगुल के असंख्यवें भाग में मच्छ होता है। जो असंख्य इकट्टे हों तो चावल जितने हों। असंख्य मच्छ इकट्टे हों, तब चावल जितने होते हैं। चोखा समझते हो न? चावल। असंख्य, इतनी अवगाहना शरीर की छोटी होती है। छोटी, तो छोटी (अवगाहना) में भी अनन्त बार आया।

अपना विशुद्ध चैतन्यस्वरूप पर को तीन काल-तीन लोक को जानने-देखनेवाला प्रभु, उससे विलक्षण मिथ्यात्व और राग-द्वेष करके एक अंगुल के असंख्यवें भाग में मच्छ, उसमें भी व्याप्त हुआ। हजार योजन में भी आया। सूक्ष्म निगोद के शरीर में अन्तिम में अन्तिम अवगाहना लब्ध्यपर्याप्त सूक्ष्मनिगोद के शरीर में... जगत में सूक्ष्म निगोद है। पूरे लोक में व्याप्त। समझ में आया? यहाँ भी एक शरीर है, उसमें अनन्त जीव हैं। ऐसे असंख्य शरीर निगोद के यहाँ हैं। यह खाली दिखता है न, खाली। इस खाली भाग में भी अनन्त जीव हैं। सूक्ष्म निगोद। दिखता नहीं न? दिखता नहीं तो क्या? वस्तु है। पूरे लोकप्रमाण सूक्ष्म निगोद भरे हैं। तो ऐसा जघन्य अवगाहन छोटी अवगाहना से वहाँ रहा। और मध्यम अवगाहरूप से परिणमित होता हुआ मध्यम शरीर में व्याप्त होता है। अंगुल के असंख्य भाग के विशेष और हजार योजन के मच्छ नीचे, वह भी अनन्त बार हुआ। समझ में आया? अपना शुद्ध-विशुद्ध चैतन्य भगवान ऐसे चैतन्य-चमत्कार की अन्तर प्रतीति अनुभव बिना शरीर में अवगाहन अनन्त बार करके दुःखी... दुःखी... दुःखी.... हुआ। लो! इतना भावार्थ हुआ।

गाथा - ३४

सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्ककाय एक्कट्ठो।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं॥३४॥

सर्वत्रास्ति जीवो न चैक एककाये ऐक्यस्थः।

अध्यवसानविशिष्टश्चेष्टते मलिनो रजोमलैः॥३४॥

अत्र जीवस्य देहादेहांतरेऽस्तित्वं, देहात्पृथग्भूतत्वं, देहांतरसञ्चरणकारणं चोपन्यस्तम् ।

आत्मा हि संसारावस्थायां क्रमवर्तिन्यनवच्छिन्नशरीरसन्ताने यथैकस्मिन् शरीरे वृत्तः तथा क्रमेणान्येष्वपि शरीरेषु वर्तत इति तस्य सर्वत्रास्तित्वम् । न चैकस्मिन् शरीरे नीरे क्षीरमिवैक्येन स्थितोऽपि भिन्नस्वभावत्वात्तेन सहैक इति तस्य देहात्पृथग्भूतत्वम् । अनादि-बन्धनोपाधिविवर्तितविविधाध्यवसायविशिष्टत्वात्तन्मूलकर्मजालमलीमसत्वाच्च चेष्टमानस्यात्मन-स्तथाविधाध्यवसायकर्मनिर्वर्तितेतरशरीरप्रवेशो भवतीति तस्य देहान्तरसञ्चरणकारणोपन्यास इति ॥३४॥

दूध-जल वत एक जिय-तन कभी भी ना एक हों।

अध्यवसान विभाव से जिय मलिन हो जग में भ्रमें॥३४॥

अन्वयार्थ :- [जीवः] जीव [सर्वत्र] सर्वत्र (क्रमवर्ती सर्व शरीरों में) [अस्ति] है [च] और [एककाये] किसी एक शरीर में [ऐक्यस्थः] (क्षीरनीरवत्) एकरूप से रहता है तथापि [न एकः] उसके साथ एक नहीं है; [अध्यवसानविशिष्टः] अध्यवसाय विशिष्ट वर्तता हुआ [रजोमलैः मलिनः] रजमल [कर्ममल] द्वारा मलिन होने से [चेष्टते] वह भ्रमण करता है।

टीका :- यहाँ जीव का देह से देहान्तर में (-एक शरीर से अन्य शरीर में) अस्तित्व, देह से पृथक्त्व तथा देहान्तर में गमन का कारण कहा है।

आत्मा संसार-अवस्था में क्रमवर्ती अच्छिन्न (-अटूट) शरीरप्रवाह में जिस प्रकार एक शरीर में वर्तता है, उसी प्रकार क्रम से अन्य शरीरों में भी वर्तता है; इस प्रकार उसे सर्वत्र (-सर्व शरीरों में) अस्तित्व है। और किसी एक शरीर में, पानी में दूध की भाँति एकरूप से रहने पर भी, भिन्न स्वभाव के कारण उसके साथ एक (तद्रूप) नहीं है; इस

प्रकार उसे देह से पृथक्पना है। अनादि बन्धनरूप उपाधि से विवर्तन (परिवर्तन) पानेवाले विविध अध्यवसायों से विशिष्ट होने के कारण (-अनेक प्रकार के अध्यवसायवाला होने के कारण) तथा वे अध्यवसाय जिसका निमित्त है, ऐसे कर्मसमूह से मलिन होने के कारण भ्रमण करते हुए आत्मा को तथाविध अध्यवसायों तथा कर्मों से रचे जानेवाले (-उस प्रकार के मिथ्यात्वरागादिरूप भावकर्मों तथा द्रव्यकर्मों से रचे जानेवाले) अन्य शरीर में प्रवेश होता है; इस प्रकार उसे देहान्तर में गमन होने का कारण कहा गया॥३४॥

गाथा - ३४ पर प्रवचन

३४ गाथा ।

सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्ककाय एक्कट्ठो।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं॥३४॥

दूध-जल वत एक जिय-तन कभी भी ना एक हों।
अध्यवसान विभाव से जिय मलिन हो जग में भ्रमें॥३४॥

टीका :- क्या कहते हैं ? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मुनि। जगत को फरमाते हैं, कहते हैं। यहाँ जीव का देह से देहान्तर में (-एक शरीर से अन्य शरीर में) अस्तित्व,... एक देह से दूसरे देह में आत्मा अपना अस्तित्व रखता है। बराबर है ? जिस प्रकार एक देह में अपना अस्तित्व है, उसी प्रकार दूसरे देह में अपना ही अस्तित्व है। किसी शरीर के कारण अस्तित्व है, ऐसा नहीं है।

यहाँ जीव का देह से देहान्तर में; देहान्तर अर्थात् अन्य देह में, एक देह से दूसरे देह में अनन्त बार गया। अस्तित्व, एक बात। एक शरीर से दूसरे शरीर में अपना अस्तित्व रखता है। कहीं नाश हो जाता है ? शरीर का नाश हुआ तो आत्मा का नाश हो जाता है ? शरीर नाश पाया तो (आत्मा का) नाश होता है ? आत्मा चला गया, ऐसा कहते हैं। आत्मा चला गया, ऐसा कहते हैं या आत्मा मर गया ? आत्मा यहाँ से चला गया। वापस अपने कहे, हिन्दी में कुछ होगा। हमारे गुजराती में ऐसा कहे, वापस हुआ, वापस हुआ। वापस हुआ (अर्थात्) एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में। आहाहा ! ऐसा

होगा न? कनुभाई! यह हीराभाई गये। यदि एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर। यहाँ इतने ७९, ८० वर्ष कलबलाहट की। वापस यहाँ से मरकर दूसरा शरीर। आहाहा! यह दुनिया में देखो! है न?

अपना अस्तित्व है, वह कहीं दूसरे शरीर में चला जाता है? इस शरीर का नाश हुआ, परन्तु अस्तित्व तो वहाँ भी रहता है। अपना आत्मा का अस्तित्व है न? जीवास्तिकाय सिद्ध करना है न? तो एक देह से दूसरे देह में अपना ही अस्तित्व रहता है। एक बात। देह से पृथक् अपना अस्तित्व एक देह से दूसरे में रहता है, तथापि देह से पृथक् है। यहाँ भी देह से पृथक् है और दूसरे देह में गया वहाँ भी देह से पृथक् है। देह से तो पृथक् आत्मा है। एकमेक है? पृथक् है। और शरीर में देखो! अपना अस्तित्व अपना होनापना शरीर से भिन्न रखता है।

किसी भी शरीर में जाओ छोटे में, बड़े में परन्तु अपना अस्तित्व तो भिन्न रखता है। एकमेक हो जाता है? क्या होगा रमणीकभाई?

मुमुक्षु : आकार एकमेक होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, भाई! धूल भी होगा नहीं। आकार एक नहीं। आकार भिन्न है। बर्तन में पानी हो, पानी। जल। बर्तन हो इतना बड़ा उसमें पानी। तो पानी का आकार भिन्न है, बर्तन का आकार भिन्न है। पानी है न, पानी। उसका आकार है वह भिन्न है और बर्तन का भिन्न है। उसी प्रकार यह शरीर बर्तन (वासण) है, उसका आकार भिन्न है, आत्मा पानीस्वरूप, आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है उसका आकार भिन्न है। उसके आकार में अपने अस्तित्व से आकार है। परन्तु देह से तो पृथक् है, ऐसा सिद्ध करना है न? देखो! दूसरा बोल। तीन बोल सिद्ध करेंगे। आहाहा!

दूसरा बोल। देह से पृथक्त्व तथा देहान्तर में गमन का कारण कहा है। इस गाथा में तीन बोल कहे जायेंगे। एक तो आत्मा का अस्तित्व, एक देह से दूसरे देह में जाने पर भी अपना अस्तित्व रखता है। आत्मा मर नहीं जाता। देह छूट जाती है। दूसरा, देह से पृथक् रहता है। जहाँ-जहाँ जाये, वहाँ शरीर से आत्मा पृथक् रहता है। मच्छ में जाओ, देव में जाओ, नारकी में जाओ, चींटी, कंथवा शरीर में भी आत्मा तो देह से पृथक् है।

आत्मा को और देह को एक माना है यह सब। अब वह तो जड़ है, मिट्टी-पुद्गल है। आत्मा पुद्गल के साथ कभी भी एकमेक हो जाता है? वह तो भिन्न है। उसके आकार भी भिन्न हैं और देहान्तर में, देहान्तर शब्द है न? यह देह छोड़कर दूसरे देह में जाता है, इसका कारण क्या? वह भी यहाँ कहेंगे। तीन बोल। समझ में आया? एक देह छोड़कर दूसरे देह में जाता है तो अपना अस्तित्व तो भिन्न है। और देह से पृथक् है। यहाँ भी अस्तित्व और वहाँ भी अस्तित्व। देह से भिन्न है और देह होने का कारण, अन्य देह में जाने का कारण कौन? कि कर्म। दो बोल लिये। अध्यवसाय और कर्म दो। है न?

‘अध्यवसानविशिष्टः रजोमलैः मलिनः’ अपना अध्यवसाय राग और शरीर के साथ एकत्वबुद्धि का भाव, वह एक देह से दूसरे देह में गमन का कारण है। समझ में आया? रजोमल कर्म, वह निमित्त है। उपादान और निमित्त दोनों लिये। पाठ में है न? टीका में आया है। क्या कहते हैं? देहान्तर में गमन का कारण कहा है। एक देह से दूसरे देह में जाने का कारण दोनों की एकत्वबुद्धि है। राग से एकत्वबुद्धि है, शरीर से एकत्वबुद्धि है। उस अध्यवसाय के कारण एक देह से दूसरे देह में गमन करता है। जिसे अपना माना, उससे छूटता नहीं। वहाँ जाता है। जाओ। आहाहा!

यहाँ तो देह से पृथक् है तो स्त्री, कुटुम्ब, शरीर से पृथक् है या नहीं?

मुमुक्षु : देह तो पृथक् ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो स्त्री, कुटुम्ब से? वह तो कहीं रह गयी धूल बाहर। स्त्री-पत्नी, पति और सब तो परद्रव्य तो कहीं रह गये। उनसे तो जहाँ जाये वहाँ पृथक् है। जहाँ जाये वहाँ पृथक् है। जहाँ जाये वहाँ देह से पृथक् है तो बाकी चीज़ से तो (पृथक् ही है)। तब किसलिए देह में गमन करता है? अपने स्वरूप के साथ के एकत्वस्वभाव को छोड़कर परवस्तु की जो एकत्वबुद्धि है, वह अध्यवसाय है। देखो! यहाँ तो अकेला अध्यवसाय कारण कहा गया है। अध्यवसाय।

शरीर के साथ एकत्वबुद्धि। शरीर की क्रिया होती है, वह मुझसे होती है। और अन्दर दया, दान का विकल्प है, वह मेरा है—ऐसी जो एकत्वबुद्धि अध्यवसाय, वह

एक शरीर में से दूसरे शरीर में जाने का उपाय है। वह भटकने का उपाय है। उससे उल्टा देखो! कि अपना आत्मा शुद्धचैतन्यमूर्ति देह से भिन्न अस्तित्व रखता है। अपना भान किया तो अपना स्वरूप देह से भिन्न जाना। और भिन्न जाना तो अपने ज्ञान, आनन्द का अपना स्वरूप जाना तो उसे देहान्तर होने की कोई क्रिया खड़ी नहीं होती। राग-बाग उसका है ही नहीं। वीतरागदृष्टि हुई। मैं शुद्धचैतन्यमूर्ति आत्मा हूँ। ऐसी अन्तर्दृष्टि की तो वस्तु वीतराग है तो पर्याय भी वीतरागधर्म की हुई। उसे बन्धन नहीं होता। उसे शरीर नहीं मिलता। यह तो सादी भाषा है जीवास्तिकाय। यहाँ तो जीवास्तिकाय की बात करते हैं।

आत्मा संसार-अवस्था में... भगवान आत्मा अपने निज शुद्ध आनन्द और पूर्ण ज्ञान-दर्शनस्वभाववाला अपना इतना अस्तित्व न जानकर, ऐसा मैं हूँ, ऐसा न जानकर संसारदशा में चौरासी लाख के अवतार की दशा में **क्रमवर्ती अच्छिन्न (-अटूट) शरीरप्रवाह में...** एक के बाद एक, एक के बाद एक शरीर मिलता है। शरीर क्रमवर्ती। पहला मिले, फिर दूसरा मिले, फिर तीसरा, ऐसे क्रमवर्ती शरीर मिलते हैं। अनन्त.... अनन्त.... अनन्त शरीर मिले। **क्रमवर्ती (-अटूट) शरीरप्रवाह में...** शरीर से रहित एक समय भी रहा नहीं। साथ में कार्मण और तेजस शरीर साथ में है न। समझ में आया? अटूटक शरीरप्रवाह, जैसे पानी का पूर चलता है। उसमें प्रवाह टूटता नहीं, उसी प्रकार एक शरीर के बाद एक, एक के बाद एक, एक के बाद एक—ऐसे क्रमसर शरीर का प्रवाह अनन्त बार अनन्त काल से हुआ। समझ में आया?

वे पूछते थे न? यहाँ आये थे न? अमेरिकन। हैं? वह अपने को नाम नहीं आता, वह सब तुम्हारा गोटावाला। अमेरिकन पूछता था। यहाँ अमेरिकन आया था न राजुल को (पूछने) निर्णय करने। यहाँ एक लड़की है, उसे पूर्वभव का ज्ञान है। देखी है? नहीं देखी? यहाँ एक लड़की है, उसे पूर्वभव का ज्ञान है। जूनागढ़ से आयी है। आज नहीं आयी। पढ़ने के लिये गयी है। दस वर्ष की उम्र है। ढाई वर्ष से उसे पूर्वभव का ज्ञान है। यहाँ है। सामने मकान में रहती है। इनके लड़के की लड़की है। ढाई वर्ष से उसे पूर्वभव का ज्ञान हुआ है। समझ में आया?

आत्मा तो अनादि है या नहीं? आहाहा! वहाँ एक लुहार थे जूनागढ़ में, उनकी पुत्री थी। ढाई वर्ष में देह छोड़कर यहाँ आयी है। अभी पढ़ने गयी है। सामने मकान में रहती है। उसका मकान है न? उसे पूछे कि तू कहाँ से आयी है? (तो कहे) मैं जूनागढ़ से आयी हूँ। तेरे पिता? वहाँ है। मेरी माता? वहाँ है। ऐसा कहा। आत्मा अनादि है या नहीं? एक शरीर में से दूसरे शरीर में जाता है तो अपना अस्तित्व तो भिन्न रखता है। और एक शरीर में से दूसरा शरीर अटूट धारा। वहाँ शरीर हुआ, छूटा और यहाँ आया। समझ में आया?

सवेरे आयी थी या नहीं? नहीं आती। सामने मकान में रहती है। छोटी दस वर्ष की है। ढाई वर्ष से जातिस्मरण हुआ और पूर्वभव का भान हुआ। वह अमेरिकन भी आया था जाँच करने के लिये। वह अमेरिकन मुझे पूछता था कि यह देह छोड़कर दूसरे देह में जाये तो कितना काल लगता है? ऐसा प्रश्न किया था। बड़ा अमेरिकन आया था। कहा, एक समय, दो समय, तीन समय, चौथे समय में तो शरीर मिलता ही है। फिर इस देह में आत्मा कितने समय में आता है। हिन्दू लोग पाँच महीने बाद आता है, ऐसा कहते हैं। कहा, ऐसा नहीं है। तुरन्त ही आता है। जैसा देह छूट गया कि तुरन्त ही माता के गर्भ में यहाँ आवे या वहाँ एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चींटी, कौआ, कुत्ते में जाये। आहाहा!

भगवान होकर ऐसे भटके! भटकारु। भगवान भटकारु हुआ। श्रीमद् ने कहा है न? प्रभु के गुण का पार नहीं परन्तु उसमें अपलक्षण भी बहुत हैं। भगवान आत्मा अनन्त, अनन्त आनन्द और ज्ञान सम्पन्न प्रभु आत्मा है। अनन्त गुण सम्पन्न, तथापि अपलक्षण का पार नहीं। अपलक्षण अर्थात् दूषित भाव, मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेषभाव ऐसे मलिन (भाव) से प्रभु दुःखी होता है। प्रभु होने पर भी दुःखी होता है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! भान नहीं।

आत्मा संसार (दशा में) अवस्था में क्रमवर्ती... देखो! एक के बाद एक शरीर मिलता है। एक शरीर छूटा तो दूसरा, दूसरा छूटा तो तीसरा। अच्छिन्न (-अटूट) शरीरप्रवाह... शरीर का प्रवाह टूटता नहीं। पानी का प्रवाह जैसे चले, वैसे एक शरीर,

दूसरा शरीर, तीसरा शरीर, चौथा शरीर अनन्त काल में अनन्त शरीर का प्रवाह आत्मा के भान बिना अच्छिन्न धारा से शरीर प्राप्त होता है। समझ में आया ?

शरीरप्रवाह में जिस प्रकार एक शरीर में वर्तता है,... अभी तो अस्तित्व सिद्ध करते हैं। पहला बोल। **उसी प्रकार क्रम से अन्य शरीरों में भी वर्तता है;...** जिस प्रकार एक शरीर में भिन्न रहता है। उसी प्रकार दूसरे शरीर में भी अपनापन भिन्न रखता है। **उसी प्रकार क्रम से... देखो!** दूसरा शरीर होने का है वह। **अन्य शरीरों में भी वर्तता है;...** शरीर में भी वर्तता है, ऐसा कहा। समझ में आया ? अर्थात् दूसरे शरीर में रहता है ऐसा। वर्तता है अपने भाव में। परन्तु दूसरे शरीर में भी अपना अस्तित्व धारण करता है। आहाहा!

इस प्रकार उसे सर्वत्र (-सर्व शरीरों में) अस्तित्व है। एक शरीर, दूसरा शरीर, तीसरा शरीर, चौथा शरीर अनन्त शरीर-सब शरीर में अपना अस्तित्व तो भिन्न रखता है। किसी शरीर में एक हो जाता है, यह तीन काल-तीन लोक में नहीं है। देह छूटने का काल हो, करोड़ों पैसे हों, स्त्री, कुटुम्ब बहुत हों.... डॉक्टर आये पाँच-पाँच हजार के दनीया (पैसा) लेकर, स्थिति पूरी हो गयी। डॉक्टर कहे डाल न चद्दर / शॉल तेरा ? क्या करे ? देह की स्थिति पूरी हो गयी। चलो दूसरे शरीर में। अपने चैतन्य के माहात्म्य की दृष्टि हुई नहीं और पुण्य तथा पाप और पुण्य-पाप के फल में माहात्म्य की दृष्टि हुई, ऐसे काल में एक शरीर में से दूसरे शरीर में अपना अस्तित्व रखता है। कहो, समझ में आया ?

एक शरीर सम्हाले, वापस दूसरा शरीर। जम पड़ा उसमें। अनुभव प्रकाश में आता है न ? आहाहा! एक बात ! जैसे एक शरीर में भिन्न शुद्ध जीवास्तिकाय प्रभु, अपने स्वरूप के भान बिना मिथ्याभ्रान्ति और राग-द्वेष के परिणाम से एक शरीर में वर्तता है, वैसे अनन्त शरीर में क्रमसर वर्तता है। अपने अस्तित्व का कभी नाश नहीं होता। समझ में आया ? एक बात। यह अस्तित्व की बात की। अब देह से पृथक्।

और किसी एक शरीर में, पानी में दूध की भाँति... पानी है और दूध है। दोनों भिन्न हैं। पानी का स्वभाव भी भिन्न है और दूध का स्वभाव भी भिन्न है। वैसे **एक शरीर**

में, पानी में दूध की भाँति... पानी में दूध की भाँति। दूध में सफेदी की भाँति नहीं। पानी और दूध जैसे भिन्न हैं, वैसे भगवान आत्मा यह शरीर पानी और भगवान दूध, ये भिन्न हैं। अभी सबका काम भिन्न-भिन्न है। आत्मा का काम शरीर नहीं करता और शरीर का काम आत्मा नहीं करता। आहाहा! समझ में आया ?

एक शरीर में, पानी में दूध की भाँति एकरूप से रहने पर भी,... एकरूप अर्थात्? दूध और पानी, ऐसा। दूध और पानी एक जगह एकरूप रहे होने पर भी भिन्न स्वभाव के कारण... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा तो जानन-देखन स्वभाव भिन्न है। और शरीर का जड़ स्वभाव अज्ञान स्वभाव भिन्न है। शरीर कहीं जानता है? शरीर कहीं जानता है? मैं शरीर हूँ, ऐसा शरीर जानता है? बिल्कुल नहीं। वह तो जड़ है। आत्मा का जाननस्वभाव है और जड़ का अजाननस्वभाव है। दोनों स्वभाव भिन्न हैं। यह इन्द्रियाँ जानती हैं या नहीं? इन्द्रियाँ नहीं जानती। आँख, नाक, वह तो जड़ है। जड़ क्या जाने? जाननेवाला चेतन और उससे भिन्न स्वभाववाली इन्द्रियाँ। पाँच इन्द्रियाँ हैं, वह तो भिन्न स्वभाव है। भगवान आत्मा का जाननस्वभाव भिन्न है। दोनों का एक स्वभाव नहीं। समझ में आया ?

आँख से ज्ञान होता है या नहीं? जीभ से स्वाद का ज्ञान होता है या नहीं? नहीं। जाननस्वभाव भिन्न है और यह अज्ञानस्वभाव भिन्न है। यह इन्द्रियाँ तो अज्ञान है। जड़ मिट्टी धूल है। समझ में आया? स्वभाव दूध की भाँति। दूध का स्वभाव भिन्न है। जड़ का स्वभाव भिन्न है, तथापि एक जगह रहने से एकपने दिखाई देते हैं। एकरूप से रहने पर भी,... उस जगह एक स्थान में रहने पर भी भिन्न स्वभाव के कारण... आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। राग और शरीर अज्ञानस्वरूप है। दोनों का स्वभाव भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? उसके साथ एक (तद्रूप) नहीं है;... यहाँ भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति चैतन्य पुंज, वह रागरूप नहीं है, शरीररूप नहीं है। अपने चैतन्यरूप से पर में एक दिखता होने पर भी अत्यन्त भिन्न स्वभाव है। समझ में आया ?

यह इन्द्रियाँ तो जड़ है। उनका स्वभाव जड़ है। जाननस्वभाव तो चैतन्य है। एक जगह रहने पर भी, दूध और पानी के स्वभाव की भाँति दोनों का स्वभाव भिन्न है।

आहाहा! लो, यहाँ तो कहते हैं कि मैं इन्द्रियों से जानता हूँ। तो कहे कि आत्मा से जानता हूँ। और इन्द्रियों से जानता हूँ, यह तुझे भ्रम हुआ है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि इन्द्रियों का स्वभाव भिन्न है और तेरा स्वभाव भिन्न है। नहीं, इन्द्रियाँ हो तो मैं जानता हूँ। परन्तु मैं जाननेवाला हूँ तो जानता हूँ, ऐसा नहीं माना। समझ में आया? **भिन्न स्वभाव के कारण उसके साथ एक (तद्रूप) नहीं है;**... ज्ञानस्वरूप प्रभु, जानन-देखन चैतन्य चमत्कार प्रभु, उसका स्वभाव तो जानन-देखन है। और शरीर तथा राग का स्वभाव तो अज्ञान है। दोनों का स्वभाव अत्यन्त भिन्न है। वास्तव में तो राग भी शरीर में जाता है।

यहाँ तो जाननस्वभाव को पृथक् कहा न? समझ में आया? भिन्न स्वभाव के कारण भिन्न है। दोनों का स्वभाव भिन्न है। इन्द्रियाँ जड़-मिट्टी है। वह तो जड़, अजीव है। उनका स्वभाव तो अजीव है। भगवान आत्मा का स्वभाव तो जानन-देखन है और राग-द्वेष होते हैं, वह तो अजानपना है। वह अचेतन है। भगवान तो चेतनस्वरूप है। समझ में आया?

देह में रहता होने पर भी ऐसा पृथक्पना रखता है। शरीर और आत्मा अन्दर मानो एकमेक हो गये हों न, ऐसा.... यह अँगुली जड़ है और चैतन्य तो अन्दर अरूपी भिन्न है। दोनों का स्वभाव ही भिन्न है। अँगुली, वह आत्मा नहीं और आत्मा, वह अँगुली नहीं। बराबर है? परन्तु आत्मा अकेला अँगुली बिना काम कर सकता है?

मुमुक्षु : आत्मा आत्मा का काम करे और अँगुली अँगुली का काम करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा आत्मा का काम करे जानने-देखने का। शरीर शरीर का काम करे जड़ का। जड़ का काम आत्मा करे? अँगुली चलावे, वह आत्मा का काम है ही नहीं। समझ में आया? आगे आयेगा। 'तेण ण स होदि' क्या कहलाये कार्य कारण नहीं सिद्ध में? सिद्ध में लेंगे न? 'ळ वि अप्पणो जम्हा।' ३६ में आयेगा। सिद्ध की व्याख्या करेंगे। ऐसा ही आत्मा है। ऐसा आत्मा है। आहाहा!

आत्मा जड़ का कारण भी नहीं और जड़ का कार्य भी नहीं। शरीर का कर्ता नहीं और शरीर से आत्मा होता नहीं। गजब बात! **और किसी एक शरीर में, पानी में दूध की भाँति एकरूप से रहने पर भी, भिन्न स्वभाव के कारण...** भगवान आत्मा तो जानन-

देखन स्वभाव है। तीन काल-तीन लोक, द्रव्य-गुण-पर्याय सबको जानने-देखने का भण्डार भगवान है। आहाहा! अपने स्वभाव से भिन्न सबका चैतन्यस्वभाव, यह चैतन्यस्वभाव नहीं तो उस अपेक्षा से दूसरा स्वभाव भिन्न है। शरीर का भिन्न है, राग का भी भिन्न है। यह पृथक्पना बताया। पहला अस्तित्व बताया, एक शरीर में से दूसरे शरीर में जाने के समय भी पृथक् रूप से रहता है। यह दो बताये। तीसरा बोल।

देहान्तर में गमन के कारण, अनादि बन्धनरूप उपाधि से विवर्तन (परिवर्तन) पानेवाले... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अनादि बन्धनरूप उपाधि, भावबन्धन की उपाधि राग-द्वेष, पुण्य-पाप के अध्यवसाय से बँधा हुआ है। परिवर्तन पाते हुए भिन्न-भिन्न अवस्था होती है। विविध अध्यवसायों से विशिष्ट होने के कारण... लो! भिन्न-भिन्न राग में एकत्व, पुण्य में एकत्व, शरीर में एकत्व, पर में एकत्व—ऐसे भिन्न-भिन्न अध्यवसाय से खास विशिष्ट होने के कारण। समझ में आया?

इस अध्यवसाय के कारण, गमन का कारण बताते हैं, भाई! चार गति में एक शरीर में से दूसरे शरीर में गमन कैसे करता है? कि दूसरे पदार्थ में अपना एकत्व मानता है, इस कारण से। जिसे अपना माना, उसे वह छोड़ता नहीं। छोड़ेगा नहीं। उस शरीर में अवतार लेगा। आहाहा! समझ में आया? शरीर की स्थिति पूरी होने पर शरीर छूट जाता है। परन्तु.... छोड़ने का भाव नहीं है। छोड़ने का भाव नहीं, वह एकत्वबुद्धि है। तो कहते हैं कि एक शरीर में से दूसरे शरीर में जाना, उसका कारण अध्यवसायों से विशिष्ट... खास पर की और आत्मा की एकत्वबुद्धि का भाव, वही गमन का कारण है। देखो! यहाँ तो यह अध्यवसाय लिया है। भाई! आहाहा! देह की क्रिया मैं करता हूँ, पर की मैं दया पालता हूँ, मैं पर को सुखी-दुःखी करता हूँ, मैं पर से सुखी-दुःखी होता हूँ। ऐसे शरीर में रोग हो, उससे मैं दुःखी हूँ, निरोग हो तो सुखी हूँ, इन दोनों के एकत्व का अध्यवसाय, वही गमन का कारण है, भटकने का (कारण है)। आहाहा! समझ में आया?

मूल पाठ में 'अध्यवसानविशिष्ट' मूल है। पहली बात यह ली, फिर कर्म। अध्यवसाय एकत्वबुद्धि जितनी है, उस एकत्वबुद्धि के कारण दूसरे शरीर में गमन

करता है। कर्म निमित्त है, यह बाद में लेंगे। पहले यह लिया। समझ में आया? उपादान अपनी है न पर्याय। क्या कहते हैं, देखो! अनादि बन्धनरूप उपाधि से विवर्तन (परिवर्तन) पानेवाले विविध अध्यवसायों से विशिष्ट होने के कारण भिन्न-भिन्न एकताबुद्धि है... राग के साथ एकता, पुण्य के साथ एकता, शरीर के साथ एकता, पति से एकता, मकान के साथ एकता, गाँव के साथ एकता। यह गाँव मेरा। कौन सा गाँव? तो कहे हमारा गाँव लींबडी। कौन सा गाँव? तो कहे, हमारा गाँव राजकोट। राजकोट, लींबडी तो भिन्न है। तेरा गाँव कहाँ से आया? हमारा गाँव यह है। हमारा गाँव खेरागढ़ है। यहाँ तो इनकार करते हैं। ऐई! खेरागढ़-बढ़ किसी का है नहीं, वह जड़ का घर है। उसमें अध्यवसाय विशिष्ट अध्यवसाय, खास ऐसा। खास भिन्न-भिन्न अध्यवसाय के कारण से। आहाहा!

इस स्वभाव की एकता, वह मोक्ष का कारण है और परद्रव्य की एकता, वह चार गति के गमन का कारण है। यह बात सिद्ध करते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द-स्वरूप सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार, उसे पर के साथ एकत्वबुद्धि, खास एकत्वबुद्धि, वही संसार में गमन करने का कारण है। बराबर है? दुकान पर बैठे हों तो व्यवस्थित काम होता है। वह मुझसे हुआ, यह पर के साथ एकत्वबुद्धि, यह संसार में भटकने का कारण है। ऐसा कहते हैं। कनुभाई! कहो, रमणीकभाई!

मुमुक्षु : दुकान पर बैठना नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : बैठे कौन? भाव करता है राग आदि, उस राग में बैठा है। पर में तो कहाँ बैठा है?

कहते हैं, वह खास अध्यवसाय विशिष्ट होने के कारण, विशिष्ट अध्यवसाय ऐसा। एक प्रकार का अध्यवसाय नहीं। जहाँ-तहाँ, इस शरीर को मैं चलाता हूँ, अँगुली से मैंने पर जीव को बचाया, वाणी से मैंने दूसरे को उपदेश दिया। ऐसी विशिष्ट परद्रव्य की एकताबुद्धि के साथ वह संसार में भटकने का कारण है। पहला बोल सिद्ध किया। देखो! श्रीमद् में आता है, आत्मसिद्धि में। निश्चय से तो अध्यवसाय गति है, ऐसा आता है। अध्यवसाय गति है। एक जगह है। समझ में आया?

मनुष्य की गति का अध्यवसाय, वह मनुष्यगति का कारण है। ऐसा आता है।

वह आता है न वहाँ भिन्न-भिन्न प्राण में भटका। क्या कहते हैं यह ? गहन बात है शिष्य यह, कही संक्षेप में सार। इसके पहले क्या ? वह वह भोग्य विशेष के, स्थानक द्रव्य स्वभाव, गहन बात है शिष्य यह, कही संक्षेप में सार। उसमें है। उसके अर्थ में है। क्या ? कि वह-वह भोग्य विशेष के, जैसा अभिप्राय, अध्यवसाय किया ऐसे भाग्य स्थान भी अध्यवसाय योग्य है, वहाँ जाता है। समझ में आया ?

यहाँ तो अध्यवसाय लिया। देखो! एकत्वबुद्धि लिया। थोड़े राग-द्वेष हैं, वे ज्ञान में जाते हैं, ज्ञेय में जाते हैं। कहते हैं, अनादि बन्धनरूप.... भावबन्धन, हों! उपाधि से विवर्तन... सब भाव उपाधि है न? (परिवर्तन) पानेवाले... भिन्न-भिन्न विविध अध्यवसायों से विशिष्ट... खास होने के कारण। अनेक प्रकार के अध्यवसायवाले होने के कारण वह गमन करता है। ऐसा कहते हैं। क्योंकि भ्रमण करते हुए आत्मा को... लो! आहाहा! और ऐसे कर्मसमूह से मलिन... लो! अध्यवसाय जिसका निमित्त है... अब लिया। एकत्वबुद्धि जिसका निमित्त है, ऐसे कर्मसमूह से मलिन। पाठ में है न? 'मलिनो अध्यवसानविशिष्टः मलिनो रजोमलैः' ऐसे कर्मसमूह से मलिन होने के कारण भ्रमण करते हुए आत्मा को तथाविध अध्यवसायों तथा कर्मों से रचे जानेवाले... देखो! एकत्वबुद्धि के अध्यवसाय से शरीर रचित है, और कर्म से रचित है। दोनों से, ऐसा कहा। क्या कहा ? समझ में आया ?

तथाविध अध्यवसायों... तथा प्रकार की पर के साथ की एकत्वबुद्धि। आहाहा! शरीर से समिति पालन करता हूँ, शरीर से यत्न करता हूँ। ऐसी जो एकत्वबुद्धि, वह भ्रमण का कारण है। लो! आहाहा! और वह अध्यवसाय जिनका निमित्त है, ऐसे कर्मसमूह से मलिन होने के कारण भ्रमण करते आत्मा को, देखो! दो बातें की। भगवान आत्मा अपने ज्ञान, जानन-देखन स्वभाव की दृष्टि छोड़कर, रागादि पर के साथ एकत्वबुद्धि करता है, वह अध्यवसाय ही परिभ्रमण का कारण है। भिन्न-भिन्न भोगस्थान में उत्पन्न होने का कारण वह अध्यवसाय है। समझ में आया ?

अपने से उत्पन्न होता है, ऐसा सिद्ध करना है। कर्म तो निमित्त है। अपने अध्यवसाय की योग्यता है, तत्प्रमाण भोगस्थान में जाता है। समझ में आया ? तथाविध

अध्यवसायों से रचे जानेवाले और... तथाविध कर्मों से रचे जानेवाले... दोनों लेना। अनादि से आत्मा को उस प्रकार का अध्यवसायों तथा कर्मों से रचे जानेवाले (-उस प्रकार के मिथ्यात्तरागादिरूप भावकर्मों तथा द्रव्यकर्मों से रचे जानेवाले)... दोनों आये। लो! भावकर्म अर्थात् पुण्य-पाप के, मिथ्यात्व का भाव, उससे शरीर की रचना हुई। और कर्म के निमित्त के कारण से रचना हुई, दो कारण बतलाये। आहाहा! बहुत सरस बात है। लो! अन्य शरीर में प्रवेश होता है;... कहो, समझ में आया ?

एक आत्मा को दूसरे शरीर में कोई ईश्वर ले नहीं जाता। कोई परमाधामी भी नहीं ले जाता।

मुमुक्षु : यमराज ले जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यमराज नहीं ले जाता, ऐसा कहते हैं। ऐई! यम होता है न यम, वह दूत आता है और ले जाता है। भैंसा पर बैठे न यम ? फिर वह शंकर के लिंग को पकड़ता है। मुझे नहीं जाना। चल। डोरी डालते हैं न! फोटो में आता है। ऐसी सब बातें गप्प-मिथ्या हैं। समझ में आया ? कोई कहे कि भाई! ईश्वर आकर ले जाता है। सब झूठ है। ईश्वर कहाँ है ? ईश्वर तो परमात्मा पूर्ण आनन्द है। वह किसे ले जाये ? समझ में आया ?

यह क्या कहा जाता है कब्र, कब्र है न उसमें से मानो उसका अन्त आयेगा। क्या कहलाता है अन्तिम ? तब उसे खुदा स्वर्ग में ले जायेंगे और किसी को नरक में ले जायेंगे। जाने का होगा। सब झूठी बातें हैं, ऐसा कहते हैं। तेरा अध्यवसाय एकत्वबुद्धि पर के साथ है, वह तेरे पर शरीर में गमन करने का कारण है। उपादान स्वयं का है। समझ में आया ? और जड़कर्म निमित्त है। अध्यवसाय का निमित्त पाकर कर्म तो अपनी पर्याय से हुए। उन कर्मों से रचित, अध्यवसायों तथा कर्मों से रचे जानेवाले... आहाहा! अन्य शरीर में प्रवेश होता है; इस प्रकार उसे देहान्तर में गमन होने का कारण कहा गया। आहाहा! तीन बोल कहे, तीन। अपना अस्तित्व शुद्धचैतन्यघन, वह अस्तित्व जहाँ जाये, वहाँ अपना स्वभाव रखता है। और जहाँ जाये, वहाँ पृथक् रहता है। अपना अस्तित्व रखता है और जहाँ जाये, वहाँ पृथक् रहता है। तो उपजा कैसे ? कि अपनी

एकत्वबुद्धि जिस प्रकार की थी, उस प्रकार का शरीर मिला। और कर्म जिस प्रकार से बँधे, उस प्रकार से शरीर निमित्त से बना, ऐसा कहा। स्वर्ग में भी अपने अध्यवसाय की योग्यता से जाता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

ज्ञानी को अध्यवसाय है ही नहीं तो वह स्वर्ग में जाता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को स्वर्ग में जाने का होता नहीं। क्योंकि एकत्वबुद्धि नहीं तो स्वर्ग-बर्ग तो है नहीं। वहाँ जाये तो भी ज्ञान में ज्ञेय है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आत्मा का ज्ञान हुआ, भान हुआ तो थोड़ा राग रहा, वह भी ज्ञान का ज्ञेय है और राग से कर्म बँधे और उससे शरीर मिला, वह भी ज्ञान का ज्ञेय है। अपना है नहीं। जिसने अपना माना, वह बुद्धि ही स्वर्ग में और नरक में जाने की योग्यता है। आहाहा! समझ में आया ? ३४ गाथा हुई।

अब सिद्ध की बात करते हैं। यह संसारदशा की की न ? संसारदशा की बात की। अब सिद्ध की बात करते हैं।

गाथा - ३५

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा॥३५॥

येषां जीवस्वभावो नास्त्यभावश्च सर्वथा तस्य।
ते भवन्ति भिन्नदेहाः सिद्धा वाग्गोचरमतीताः॥३५॥

सिद्धानां जीवत्वदेहमात्रत्वव्यवस्थेयम् ।

सिद्धानां हि द्रव्यप्राणधारणात्मको मुख्यत्वेन जीवस्वभावो नास्ति । न च जीवस्वभावस्य सर्वथाभावोऽस्ति भावप्राणधारणात्मकस्य जीवस्वभावस्य मुख्यत्वेन सद्भावात् । न च तेषां शरीरेण सह नीरक्षीरयोरिवैक्येन वृत्तिः, यतस्ते तत्सम्पर्कहेतुभूतकषाययोगविप्रयोगादतीतानन्त-रशरीरमात्रावगाहपरिणतत्वेऽप्यत्यन्तभिन्नदेहाः । वाचां गोचरमतीतश्च तन्महिमा, यतस्ते लौकिक-प्राणधारणमन्तरेण शरीरसम्बन्धमन्तरेण च परिप्राप्तनिरूपाधिस्वरूपाः सततं प्रतपन्तीति॥३५॥

जीवित नहीं जड़ प्राण से पर चेतना से जीव हैं।

जो वचनगोचर हैं नहीं वे देह विरहित सिद्ध हैं॥३५॥

अन्वयार्थ :- [येषां] जिनके [जीवस्वभावः] जीवस्वभाव (-प्राणधारणरूप जीवत्व) [न अस्ति] नहीं है और [सर्वथा] सर्वथा [तस्य अभावः च] उसका अभाव भी नहीं है, [ते] वे [भिन्नदेहाः] देहरहित [वाग्गोचरम् अतीताः] वचनगोचरातीत [सिद्धाः भवन्ति] सिद्ध (सिद्ध भगवन्त) हैं।

टीका :- यह सिद्धों के (सिद्ध भगवन्तों के) जीवत्व और देहप्रमाणत्व की व्यवस्था है।

सिद्धों को वास्तव में द्रव्यप्राण के धारणस्वरूप जीवस्वभाव मुख्यरूप से नहीं है; (उन्हें) जीवस्वभाव का सर्वथा अभाव भी नहीं है, क्योंकि भावप्राण के धारणस्वरूप जीवस्वभाव का मुख्यरूप से सद्भाव है। और उन्हें शरीर के साथ, नीरक्षीर की भाँति, एकरूप वृत्ति नहीं है; क्योंकि शरीरसंयोग से हेतुभूत कषाय और योग का वियोग हुआ

१. वृत्ति=वर्तन; अस्तित्व।

है; इसलिए वे १अतीत अनन्तर शरीरप्रमाण अवगाहरूप परिणत होने पर भी अत्यन्त देहरहित हैं। और २वचनगोचरातीत उनकी महिमा है; क्योंकि लौकिक प्राण के धारण बिना और शरीर के सम्बन्ध बिना, सम्पूर्णरूप से प्राप्त किये हुए निरुपाधि स्वरूप द्वारा वे सतत प्रतपते हैं (-प्रतापवन्त वर्तते हैं)॥३५॥

गाथा - ३५ पर प्रवचन

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्सा।
 ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा॥३५॥
 जीवित नहीं जड़ प्राण से पर चेतना से जीव हैं।
 जो वचन गोचर हैं नहीं वे देह विरहित सिद्ध हैं॥३५॥

टीका :- यह सिद्धों के (सिद्धभगवन्तों के) जीवत्व और देहप्रमाणत्व की व्यवस्था है। सिद्ध में भी आत्मा अपना अस्तित्व भिन्न रखता है। वहाँ देह नहीं है। समझ में आया? यहाँ देह में जाता है तो अस्तित्व भिन्न रखता है और सिद्ध में देह है नहीं। अशरीर भगवान् णमो सिद्धाणं, अकेला आत्मा शुद्धचैतन्यमूर्ति है, उसे सिद्ध कहते हैं। अकेले शुद्ध आत्मा की निर्मल पर्याय पूर्ण हो गयी, वह सिद्ध। वह जीवत्व और देहप्रमाणत्व की व्यवस्था।

सिद्धों को वास्तव में द्रव्यप्राण के धारणस्वरूप जीवस्वभाव मुख्यरूप से नहीं है;... देखो! समझ में आया? सिद्ध में वास्तव में द्रव्यप्राण के धारणस्वरूप जीवस्वभाव तो वहाँ है नहीं। धारणस्वरूप जीवस्वभाव मुख्यरूप से नहीं है। शरीरप्रमाण है न वे तो, उन्हें जीवस्वभाव का सर्वथा अभाव भी नहीं। सिद्ध को द्रव्यप्राण के धारणरूप जीवस्वभाव

१. अतीत अनन्तर=भूत काल का सबसे अन्तिम; चरम। (सिद्धभगवन्तों की अवगाहना चरमशरीरप्रमाण होने के कारण उस अन्तिम शरीर की अपेक्षा लेकर उन्हें 'देहप्रमाणपना' कहा जा सकता है तथापि, वास्तव में वे अत्यन्त देहरहित हैं।)

२. वचनगोचरातीत=वचनगोचरता को अतिक्रान्त; वचनविषयातीत; वचन-अगोचर।

मुख्यरूप से नहीं है। भावप्राण है। क्या कहते हैं ? सिद्ध में पाँच इन्द्रिय, तीन आयुष्य, श्वास, बल आदि है नहीं। तो है क्या ? भावप्राण है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य और अनन्त सत्ता, ऐसे भावप्राण सिद्ध में स्वयं से है। यह परवस्तु का सम्बन्ध सिद्ध में नहीं है। संसारदशा में था, वह सिद्ध में नहीं रहता।

विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ३६

ण कुदोचि वि उप्पणो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि॥३६॥

न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात् कार्यं न तेन सः सिद्धः।
उत्पादयति न किञ्चिदपि कारणमपि तेन न स भवति ॥३६॥

सिद्धस्य कार्यकारणभावनिरासोऽयम् ।

यथा संसारी जीवो भावकर्मरूपयात्मपरिणामसन्तत्या द्रव्यकर्मरूपया च पुद्गलपरिणाम-
सन्तत्या कारणभूतया तेन तेन देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपेण कार्यभूत उत्पद्यते, न तथा सिद्ध-
रूपेणापीति । सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमुत्पद्यमानो नान्यतः कुतश्चिदुत्पद्यत इति । यथैव च
स एव संसारी भावकर्मरूपामात्मपरिणामसन्ततिं द्रव्यकर्मरूपां च पुद्गलपरिणामसन्ततिं कार्यभूतां
कारणभूतत्वेन निर्वर्तयन् तानि तानि देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपाणि कार्याण्युत्पादयत्यात्मनो, न
तथा सिद्धरूपमपीति । सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमात्मानमुत्पादय-न्नान्यत्किञ्चिदुत्पादयति
॥३६॥

अन्य से उत्पाद नहीं इसलिए सिद्ध न कार्य हैं।
होते नहीं हैं कार्य उनसे अतः कारण भी नहीं ॥३६॥

अन्वयार्थ :- [यस्मात् सः सिद्धः] वे सिद्ध [कुतश्चित् अपि] किसी (अन्य)
कारण से [न उत्पन्नः] उत्पन्न नहीं होते [तेन] इसलिए [कार्यं न] कार्य नहीं हैं, और
[किञ्चित् अपि] कुछ भी (अन्य कार्य को) [न उत्पादयति] उत्पन्न नहीं करते [तेन]
इसलिए [सः] वे [कारणम् अपि] कारण भी [न भवति] नहीं हैं।

टीका :- यह सिद्ध को कार्यकारणभाव होने का निरास है (अर्थात् सिद्धभगवान्
को कार्यपना और कारणपना होने का निराकरण-खण्डन है)।

जिस प्रकार संसारी जीव कारणभूत ऐसी भावकर्मरूप *आत्मपरिणामसन्तति और
द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणामसन्तति द्वारा उन-उन देव-मनुष्य-तिर्यच-नारक के रूप में

* आत्मपरिणामसन्तति=आत्मा के परिणामों की परम्परा।

कार्यभूतरूप से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सिद्धरूप से भी उत्पन्न होता है—ऐसा नहीं है; (और) सिद्ध (-सिद्धभगवान) वास्तव में, दोनों कर्मों का क्षय होने पर, स्वयं (सिद्धरूप से) उत्पन्न होते हुए अन्य किसी कारण से (-भावकर्म से या द्रव्यकर्म से) उत्पन्न नहीं होते।

पुनश्च, जिस प्रकार वही संसारी (जीव) कारणभूत होकर कार्यभूत ऐसी भावकर्मरूप आत्मपरिणामसन्तति और द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणामसन्तति रचता हुआ कार्यभूत ऐसे वे-वे देव-मनुष्य-तिर्यच-नारक के रूप अपने में उत्पन्न करता है, उसी प्रकार सिद्ध का रूप भी (अपने में) उत्पन्न करता है—ऐसा नहीं है; (और) सिद्ध वास्तव में, दोनों कर्मों का क्षय होने पर, स्वयं अपने को (सिद्धरूप से) उत्पन्न करते हुए अन्य कुछ भी (भावद्रव्यकर्मस्वरूप अथवा देवादिस्वरूप कार्य) उत्पन्न नहीं करते।३६॥

प्रवचन-३६, गाथा-३६, मगसिर कृष्ण-१०, शनिवार, दिनांक -०३-०१-१९७०

यह पंचास्तिकाय ३६वीं गाथा। यह अधिकार क्या चलता है? यह जीव है, उसका जीवपना कैसा होता है। संसारी में जीवपना कैसा और सिद्ध में जीवपना कैसा है। 'जीव' बोल है न २७ में। जीवो, जीव का जीवभाव संसार में कैसा होता है। राग-द्वेष और अज्ञान के परिणामरूप होता जीव का जीवभाव, वह भटकने का भाव है। समझ में आया?

और सिद्ध भगवान के-परमात्मा, वह भी जीव हैं। उनमें जीवपना है। उन्हें राग-द्वेष और अज्ञान के अभावरूप और आत्मा के आनन्द और ज्ञान के प्राणरूप उनका जीवन है। उसमें वे आनन्द के जीव को जीते हैं। समझ में आया? अज्ञानी संसारी प्राणी राग-द्वेष और अज्ञान के भाव से जीता है। दुःखरूप जीवन है वह। यह बात करते हैं। अब ३६वीं।

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो।

उप्पादेदि ण किञ्चि वि कारणमवि तेण ण स होदि।३६॥

नीचे उसका हरिगीत।

अन्य से उत्पाद नहीं इसलिए सिद्ध न कार्य हैं।
होते नहीं हैं कार्य उनसे अतः कारण भी नहीं ॥३६॥

समयसार में आता है न अपने ३१० गाथा।

टीका :- यह सिद्ध को... सिद्ध भगवान जो 'णमो सिद्धाणं' जो सिद्धपद है, वह कैसा है? कि उन्हें कार्यकारणभाव होने का निरास है। उन्हें विकार के भाव के कारण का निराश है और विकार के कार्यरूप गति का उपजना, उसका भी उसमें निराश अर्थात् है नहीं। (अर्थात् सिद्धभगवान को कार्यपना और कारणपना होने का निराकरण - खण्डन है।) जरा शान्ति से, धीरे से समझना।

अब दृष्टान्त देते हैं। देखो! जिस प्रकार संसारी जीव... अनादि का संसारी आत्मा कारणभूत ऐसी भावकर्मरूप... पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव, वह भावकर्म है—विकारीभाव है। समझ में आया? पुण्य और पाप, दया-दान, व्रत, भक्ति का परिणाम वह शुभ है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना आदि के परिणाम अशुभ है। ये दोनों भावकर्म हैं, ये विकारी भाव हैं। विकारी भाव आत्मपरिणामसन्तति... यह आत्मा ने बनाये हुए, किये हुए परिणाम है।

संसार में भगवान आत्मा चैतन्य आनन्द सिद्धस्वरूप होने पर भी शक्ति और सत्त्व तो ऐसा होने पर भी सिद्धपद अपना आनन्द और ज्ञायक को भूलकर और मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष के भाव को करता है, वह उसका भाव कार्य है। समझ में आया? दूसरा कुछ नहीं कर सकता? शरीर का, वाणी का, व्यापार का—धन्धे का, क्योंकि वह तो परचीज है। परन्तु उसमें जीव कारणभूत ऐसी भावकर्मरूप आत्मपरिणामसन्तति... भाषा देखो! आत्मपरिणामसन्तति... आत्मा के परिणामों की परम्परा। भगवान आत्मा सिद्ध जैसा ज्ञायकस्वभाव चिदानन्द होने पर भी अनादि से संसार में अपनी जाति को भूलकर इन पुण्य-पाप के विकल्प में, राग में मैं हूँ, वह मेरा कर्तव्य है, ऐसी आत्मा की विकारी पर्याय की सन्तति की परम्परा में वह भटकता है। समझ में आया?

संसारी जीव कारणभूत ऐसी... कार्यभूत क्या कहेंगे? कि चार गति उपजे, वह कार्य है। और देवपना उपजे, मनुष्यपना हो, ढोरपना हो, निगोद में जाये, पशु या.... पशु

हो या नारकी हो। परन्तु उसके कारणरूप जो भाव है, वह तो मिथ्यात्व और पुण्य-पाप के विकारी परिणाम वह कारणरूप है। समझ में आया ?

भगवान ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द पूर्ण आनन्द और शान्त, विकाररहित ऐसा स्वरूप होने पर भी अज्ञान से उसे अनादि से पुण्य और पाप के शुभ और अशुभ विकल्प, वृत्तियाँ जो उठती हैं, वे मेरी हैं और वह मैं हूँ—ऐसा भावकर्म अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष के आत्मपरिणामरूपी सन्तति अर्थात् परम्परा को सेवन करता हुआ, वह चार गति में उपजता है। समझ में आया ?

अशुभभाव हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, ऐसे आत्मा के परिणाम की सन्तति को स्वयं सेवन करे तो वह पशु और नरक योनि में उपजे। समझ में आया ? और उसमें दया, दान आदि भाव,... क्या कहा ? जैसे दृष्टान्त देते हैं कि संसारी है, वैसे सिद्ध नहीं है, ऐसा सिद्ध करना है। जीव का जीवपना सिद्ध करते हैं। वे बोल है न भाई ? २७वीं गाथा में। 'जीवो ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता' उस एक-एक बोल का विस्तार करते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा! पुस्तक देना। ऐई! जीवपना जो आत्मा का है, वास्तव में वह तो ज्ञान, आनन्द और शान्ति के भावस्वरूप जीव का जीवपना है। समझ में आया ?

आत्मा, उसका जानना ज्ञान, आनन्द, शान्ति अर्थात् वीतरागभाव, वह उसका भाव और वह जीव का वास्तव में जीवपना है। जीव का जीवपना वह है। परन्तु उसकी अनादि से खबर नहीं होने से जीव के जीवपने के भावस्वभाव को भूलकर और पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना दोनों पुण्य और पापरूपी विकारभाव, उसे वह अपने परिणाम जानकर सेवन करता हुआ चार गति में भटकता है। कहो, सवेरे से तो जरा सरल है न ? सवेरे का जरा सूक्ष्म था। कहो, समझ में आया ? है न भाषा। देखो! जिस प्रकार संसारी जीव कारणभूत ऐसी भावकर्मरूप आत्मपरिणामसन्तति... भगवान आत्मा सत्स्वरूप शुद्ध आनन्दकन्द सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूपी आत्मा है। ऐसे स्वभाव को भूलकर अनादि से भावकर्मरूपी आत्मपरिणाम सन्तति। अनादि से यह शुभ और अशुभभाव तथा ये मेरे, ऐसे मिथ्यात्वभाव को सेवन करता हुआ चार गति में उपजता है। पुण्य-पाप के—अशुभभाव सेवन करे तो

नरक और पशु में जाता है (और) यह दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा आदि का भाव करे, वह मरकर स्वर्ग में जाता है। परन्तु है तो वह चार गति में भटकने के भाव। कहो, समझ में आया ?

संसारी जीव कारणभूत ऐसी भावकर्मरूप आत्मपरिणामसन्तति, सन्तति अर्थात् परम्परा। परम्परा ये इसने सेवन की है। शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप ऐसे भाव की परम्परा अनादि से सेवन करता हुआ और द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणामसन्तति द्वारा... जहाँ ऐसे परिणाम हुए, इसलिए कर्म बँधे जड़, जड़। वे जड़ द्रव्यकर्म कहलाते हैं। जड़ मिट्टी अजीव, वह पुद्गलपरिणाम सन्तति कहलाती है। यह विकारीभाव, वह आत्मपरिणाम की सन्तति परम्परा उसके साथ कर्म बँधे, वे पुद्गलपरिणामसन्तति द्वारा उन-उन देव-मनुष्य-तिर्यच-नारक के रूप में कार्यभूतरूप से उत्पन्न होता है,... लो! समझ में आया ?

वह-वह देवपने जो शुभभाव हो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का, व्रत का और तप का, वह सब करते हैं न विकल्प ? यह उससे पुण्य बँधे तो स्वर्ग में-देव में जाये परन्तु वह देव में भी दुःखी है जीव। नवरंगभाई! समझ में आया ? देवरूप से उपजे। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष, वैमानिकदेव है। वह उपजे। परन्तु है वह शुभभाव, पुण्य की परम्परा के भाव में फलरूप से उसे देवपना उपजता है। उसे आत्मधर्म नहीं होता। समझ में आया ? धर्म के कारण गति में उपजना नहीं हो सकता। गति में उपजता है, वह अधर्मभाव से उपजता है। आहाहा! अधर्मभाव कहो या शुभ और अशुभभाव कहो। दोनों एक ही बात है। हीरालालजी! कठिन काम, भाई!

यह शरीर है, यहाँ की तो बात ही नहीं, यह तो जड़ है। उसके भाव में इसमें क्या किया और क्या फल मिला, उसकी बात चलती है। आहाहा! कहते हैं भावकर्मरूपी, भावकर्म, समझ में आया ? विकारी परिणाम। दया, दान, व्रत, पूजा, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, विषय-वासना—ऐसे शुभाशुभभाव परिणाम की सन्तति एक के बाद बाद, एक के बाद एक वही किया करता है। जैसे डोरी होती है न, क्या कहलाता है यह कांतणी-कांतणी क्या भूल गये तुम्हारे नाम। रेंटिया का चरखा। यह त्राग का डोरा

कातते हैं न, एक के बाद एक डोरा। पूणी, पूणी। पूणी एक के बाद एक संधती है न? इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि अज्ञानी अनादि से सन्तति पुण्य और पाप की पूणी को खेंचा ही करता है। किया ही करता है। समझ में आया? इससे उसका डोरा बुना ही करता है चार गति में भटकने का। आहाहा! कहो, बराबर है। पूनमचन्दजी!

यह सेठिया-बेठिया होना हो तो ठीक है या नहीं? धूल में भी सेठिया ठीक कहाँ से लाये? वे तो दुःखी हैं। यहाँ तो कहते हैं दुःख है। मनुष्यपना, वह देवपना, वह भी दुःख है। शुभ-अशुभभाव के परिणाम में कारणरूप से सेवन करता हुआ इसके कार्यरूप से, देवरूप से उपजता है, वह कारण भी दुःख है और उसके फलरूप से देवपने उपजना, वह भी दुःख है।

भगवान आत्मा का आनन्दस्वभाव भूलकर उस भाव को करे, वह दुःखी है और दुःख के फलरूप से देव और मनुष्य में उपजता है। कहो, हीरालालजी! यह सेठिया-बेठिया दुःखी हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। करोड़ोंपति और यह सब धूलपति, ऐसा कहते हैं न,....

मुमुक्षु : सेठिया सब राह देखते हैं पचास हजार रुपये की कितनी मर्यादा बाँधते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कितने रखने देंगे ऐसा। रखने दे, न दे, उसके साथ सम्बन्ध क्या है? वह ममता है न? और ममता के परिणाम पाप हैं। और ममता घटाकर कोई दया, दान, व्रत, भक्ति के, तप के, अपवास आदि के भाव करे तो वह पुण्य है। दोनों भाव संसार में उपजने के कारण हैं। कहो, मनसुखभाई! यह बड़े भाई को बैठेगा या नहीं यह? यह तो समझ में आये ऐसा है। थोड़ा परिचय करे तो.... सवेरे की बहुत सूक्ष्म बात थी। सवेरे ११वीं गाथा चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो बैठ जाये ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इतनी बात नहीं ख्याल कि प्रभु आत्मा वस्तु-पदार्थ है या नहीं? तत्त्व है न, सर्वज्ञपरमेश्वर ने जिसे आत्मा देखा कि यह आत्मा है, वह आत्मा वस्तु है। उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि भाव भरपूर यह आत्मा है। अब ऐसा आत्मा

जिसे अनादि से दृष्टि में, प्रतीति में, पहिचान में, आश्रय में लिया नहीं, इसलिए उसे अज्ञान और पुण्य और पाप के भाव सन्तति कर्म की उत्पत्ति हुआ करती है।

मुमुक्षु : पुण्य से धर्म नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य स्वयं कर्म दुःख है। दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव स्वयं दुःखरूप है, राग है, कषाय है, आकुलता है। आहाहा! समझ में आया? वृत्ति उठती है। यह करूँ, अपवास करूँ, व्रत करूँ, यह पालन करूँ, यह करूँ, वह सब शुभभाव भी राग है, दुःख है, आकुलता है, उपाधि है, मलिनता है। जहर का अनुभव है। आहाहा!

भगवान आत्मा अमृतस्वरूप है। अमृत आनन्दमूर्ति आत्मा जैसा सिद्ध को आनन्द है, जैसे सिद्ध भगवान को दशा में आनन्द है। वह आनन्द अन्दर था, वह सिद्ध भगवान को प्रगट हुआ। ऐसा ही आनन्द आत्मा में है। जरा भी अन्तर नहीं। परन्तु उस आनन्द के सन्मुख को न देखकर, आनन्द की अस्ति अन्तर्मुख में न मानकर, पुण्य और पाप के शुभ और अशुभभाव करके, दुःख की दशा को करके और दुःख के फलरूप से वह स्वर्ग और नरक में उपजता है। समझ में आया?

वह देवरूप से, मनुष्यरूप से, मनुष्यपने में सेठिया आ गये न, पैसेवाले हो या रंक हों भिखारी। वे सब दुःख के भाव किये, इससे दुःख के फलरूप से यह दशा उन्हें मिली है। बिल्कुल बराबर होगा यह? पैसेवाले दुःखी होंगे? पैसा तो जड़ है, मिट्टी, धूल है। वे मेरे हैं, ऐसी मान्यता दुःखरूप और भ्रमणा है। समझ में आया? आहाहा! और यह पैसा खर्च करने में उपजाने में पाप, रखने में पाप और खर्चने में भी पाप। दया, दान में भी कहीं खर्च करे तो भी वह शुभराग है और शुभराग है, वह आत्मा की शान्ति को लूटनेवाला है। समझ में आया? वह भावकर्म है। अरे! इसने वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर क्या जाति कहते हैं आत्मा और क्या कहते हैं दुःखरूप पुण्य-पाप के भाव, उसका फल क्या, ऐसा इसने अनन्त काल से जाना नहीं। थोथे जगत के सब जानकर, मानकर हैरान-हैरान होकर भटकता है। समझ में आया?

साधु नाम धरावे तो भी दुःखी और मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि उसके जो परिणाम

दया, दान, व्रत के हैं, वे शुभराग हैं, उसे वह धर्म मानता है और वह मेरा कर्तव्य मानता है; इसलिए वह मिथ्यादृष्टि चार गति में उस भाव से भटकनेवाला है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जिस प्रकार संसारी... जीव, सिद्ध के साथ मिलान करना है न यहाँ? कारणभूत ऐसी भावकर्मरूप आत्मपरिणामसन्तति... भाषा भी कभी बहियों में आवे नहीं। बाहर में सुनने में आवे नहीं कि भावकर्मरूप आत्मपरिणामसन्तति-अब अर्थात् क्या? आहा!

ऐसा कहते हैं, भगवान! भाई! तू आनन्द है न, नाथ! तेरा स्वरूप तो शाश्वत् शुद्ध आनन्दकन्द है। उसे भूलकर उसके सामने देखे बिना, पर के सामने देखकर अनादि से पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव वह आत्मा की पर्याय में, अवस्था में परिणामरूप से होते हैं और वही की वही परम्परा इसने सांधी है। कभी रागरहित, पुण्य-पापरहित आत्मा क्या है, ऐसी दृष्टि इसने अनन्त काल में संसार के परिभ्रमण में नहीं की। समझ में आया? आहाहा!

कारणभूत ऐसी भावकर्मरूप आत्मपरिणामसन्तति... और वह निमित्त और नये कर्म बँधे द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणामसन्तति... द्वारा उन-उन देव-मनुष्य-तिर्यच-नारक के रूप में... ऐसा। जैसे-जैसे कारण थे, उस-उस प्रकार से उसने कार्यरूप से देवपना, मनुष्यपना, पशुपना, निगोदपना, एकेन्द्रिय में जाये वह। आहाहा! आलू और शकरकन्द में तत्त्व का विरोध करके, वस्तु का स्वरूप जो है, उसका अनादर करके और मिथ्याभ्रमणा सेवन कर उस-उस गति में अर्थात् उस भ्रमणा के फलरूप से निगोद और आलू, शकरकन्दरूप से उपजता है। बटाटा समझते हो? आलू। समझ में आया? आहाहा!

कार्यभूतरूप से उत्पन्न होता है,... देखो। इसका एक कार्य यह। जैसे भाव शुभाशुभ कारण सेवन किये, उसके कार्यभूत चारगति प्राप्त हुई। और इसने कभी पुण्य-पाप के विकल्प और उसके फलरूप से गति, उससे रहित मेरी चीज़ है, निरुपाधि चैतन्यबिम्ब ज्ञायकमूर्ति आत्मा हूँ, ऐसी दृष्टि की नहीं। आहाहा! सवेरे तो जरा सूक्ष्म आया था न! व्यवहार अभूतार्थ है। आहाहा! यहाँ तो पर्याय जो है न, पर्याय; चाहे तो क्षायिक की पर्याय हो या उदय की पर्याय हो, राग की। कहते हैं कि अभूतार्थ है। अभूतार्थ अर्थात् कायम रहनेवाली वह चीज़ नहीं है; इसलिए शरणभूत नहीं। आहाहा!

समझ में आया ? शरणभूत ध्रुव भगवान चिदानन्द प्रभु, एक समय में महाचैतन्यसत्ता के स्वभाव के सामर्थ्यवाला भगवान, उसमें एकरूपता त्रिकाल ऐसे की ऐसे चली आती है। उसका आश्रय और शरण लेना वह सम्यग्दर्शन और धर्म है।

इसके बिना ऐसा जो अधर्म है, वह अपने नित्यानन्द भगवान को भूलकर और पर्याय में-अवस्था में पुण्य और पाप के भाव सेवन कर कारणरूप से सेवन कर और कार्यरूप से उपजता है। समझ में आया ? **कार्यभूतरूप से उत्पन्न होता है,...** यह कार्य हुआ। देखो! निगोद में उपजे, पशु में उपजे। आहाहा! मनुष्यपना मिले। हार जाये मनुष्यपना। खबर नहीं होती।

मनुष्य मर जाये तो उसे रोते हैं तो उसके लिये वे रोते हैं ? वह मरकर कहाँ गया होगा ? ऐसा कोई रोते हैं। मनसुखभाई! नहीं। अरे! यह लड़का मेरे घर में आया। यह देह छोड़कर कहाँ किस गति (में जायेगा) ? क्योंकि आत्मा तो नित्य है। उसका तो कोई नाश हो, ऐसा नहीं है। वह यह गया कहाँ ? किस अवतार में, कहाँ ? उसकी बात नहीं। अनुकूलता में यह प्रतिकूलता हुई, उसका इसे दुःख लगता है। वह मरकर ढोर में गया या (देव में गया), उसकी तो कुछ पड़ी है ? आहाहा!

संसार तो देखो! एक। एक क्षण में देह का कुर्ता पलटकर जो भाव किये थे आत्मा के भान बिना के, उस भाव में दूसरा कुर्ता (शरीर) आया, एकदम। आहाहा! यह संसार! कहते हैं भाई! तुझे यह संसार तो अनादि से बहता है। इस भाव का प्रवाह तो तेरे पास अनादि का है। उसमें तूने नया क्या किया ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जन्म-मरण के दुःखों को टालने का तूने कुछ किया नहीं, भाई! यह तो जन्म-मरण। जन्मना और मरना कलंक है। आहाहा! देव का भव धारण करना कलंक है। भगवान आनन्द की मूर्ति (है)। समझ में आया ?

जैसे पाँच अँगुली में वह छठी अँगुली लटकती हो, वह काटकर निकाल देने के लिये है। रखने के लिये नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप में पुण्य और पाप के भाव जो जन्म के कलंक हैं, वे निकाल डालने के लिये हैं। उसके बदले रखकर सेवन करके उसके कार्यरूप चार गति में उपजा। समझ में आया ? आहाहा! परन्तु उसकी क्या चीज़ है और उसकी क्या विपरीतता होती है, उसका इसने कभी विचार भी

नहीं किया। अन्ध अन्ध चला जाता है, ऐसा का ऐसा। ओहो! अनादि.... अनादि.... अनादि.... जिसकी आदि नहीं ऐसा भगवान आत्मा ऐसे विकारी मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम की परम्परा सेवन कर चार गति में उपज रहा है। अरे! उसे यह कलंक है! ऐसा कहते हैं। ऐसा सिद्ध भगवान को नहीं होता। ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ?

जैसे वह कार्यभूतरूप से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सिद्धरूप से भी उत्पन्न होता है—ऐसा नहीं है;... क्या कहा ? ऐसे विकारीभाव हों और उसके फलरूप से सिद्ध हो, ऐसा सिद्ध को नहीं है। सिद्ध को विकारीभाव भी नहीं और विकारीभावरूप से गति में उपजे, ऐसा भी सिद्ध को नहीं है। 'सिद्ध भगवान 'सिद्धां' आता है न ? 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु' आता है, लो! किसे खबर ? उसके अर्थ की भी खबर नहीं होती। सिद्ध भगवान अशरीरी प्रभु जिन्हें दया, दान, व्रत के विकल्प का भी जिसमें अभाव है। इसलिए उन्हें रागरूप से, गतिरूप से उपजे और राग को सेवन करे, ऐसा सिद्धपद में है नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

जैसे वह संसारी प्राणी, अरे! संसरण करता हुआ,... इन्होंने सन्तति शब्द प्रयोग किया है न ? अपनी जाति को आनन्दस्वरूप की जाति को भूलकर आकुलता में सुख मानकर इन्द्रियों में, विषयों में, भोग में, पैसे में, इज्जत में, कीर्ति में, धूल में, शरीर में सुख मानकर यह मिथ्याभाव को सेवन कर, जिस प्रकार के इसने परिणाम शुभ-अशुभ किये हैं, उस प्रकार से उसे कार्यरूप गति मिलती है। आहाहा! यह सिद्ध को नहीं होती।

उसी प्रकार सिद्धरूप से भी उत्पन्न होता है... कैसे भाव से सिद्धपने भी उपजता है, ऐसा नहीं है। सिद्ध (-सिद्धभगवान) वास्तव में, दोनों कर्मों का क्षय होने पर,... देखो! परमात्मा अरिहन्त सिद्ध हुए उन्हें तो पुण्य-पाप के भाव और जड़कर्म दोनों का उन्होंने तो नाश किया। आता है या नहीं? लोगस्स में आता है 'विहुयरयमला', 'विहुयरयमला' अर्थ की तो किसे खबर हो, भान भी नहीं होता, क्या है ? भाई कहते हैं, इनकार करते हैं। मोटाभाई कहते हैं अर्थ की भी खबर नहीं। अब अर्थ की भी अभी खबर न हो, उसे तत्त्व क्या कहा जाता है, वीतराग का मार्ग कहाँ है, इसकी खबर नहीं। बराबर है न भाई ? लोगस्स में आता है न विहुयरयमला। अब इसका अर्थ क्या ? कुछ खबर नहीं होती।

लींबडी में एक बार दशाश्रीमाली और विशाश्रीमाली में विवाद हुआ। यहाँ जाति है न दशाश्रीमाली बनियों में। समझते हो न? सेठ हीरालाल बनिया हैं न अपने, तुम्हारे जैसे क्या कहलाये? कासलीवाल कहलाये न, खण्डेलवाल और कासलीवाल। उसी प्रकार यहाँ दशाश्रीमाली और विशाश्रीमाली जाति इस शरीर की यह सब कहते हैं। यह दशाश्रीमाली है और यह विशाश्रीमाली है। यह दशाश्रीमाली और विशाश्रीमाली वहाँ लींबडी में थे। उसमें दोनों को विवाद हुआ। विवाद उठा। बहुत वर्ष की बात है। उसमें यह दशाश्रीमाली की बुढ़िया यह लोगस्स बोलती थी। यह लोगस्स। उसमें 'विहुयरयमला' आया। समझे न? महिला वृद्ध थी। अर्थ नहीं आवे, इसलिए लोगस्स बोलती थी। 'लोगस्स उजयगरे' अपने आता है। 'धम्मतीथयरे' सामायिक में आता है। इसलिए गाथा बोलने लगी, वह सामायिक बाँधे न, इसलिए वह घड़ीयाल रटे और रेती (वाणी) घड़ी रखे न। दो घड़ी हो तो सामायिक पूरी हो गयी, दो घड़ी, उठो। अब उसमें जब लोगस्स आया तब बोली 'एवममये अभिथूया वीहा रोयमर्या', 'विहुयरयमला' है न, उसके बदले कहे 'वीहा रोयमर्या' ओय माई! अपने विवाद है वह यहाँ लोगस्स में कहाँ से आ गया यह? भगवान की स्तुति का पाठ है। 'वीहा रोयमर्या' यहाँ कहाँ से आया यह? 'विहुयरयमला' के बदले 'वीहा रोयमर्या'। ऐ, परन्तु यह आया कहाँ से? देखो! यह वास्तव में इसमें 'वीहा रोयमर्या' कहाँ से आया इसमें? अपना विवाद। वहाँ कहे यह तो 'वीसा रोयमर्या' नहीं। यह तो 'विहुयरयमला' है।

विहुय अर्थात् वि-विशेष धुय। भगवान ने टाले हैं क्या? रयमला। रज अर्थात् आठ कर्म की रज और मल अर्थात् यह भावकर्म यह पुण्य और पाप। पुण्य और पाप के भाव, वे मैल हैं। और कर्म बाँधे, वह जड़ रजकण है। समझ में आया?

'विहुयरयमला'। सिद्ध भगवान ने रज अर्थात् आठ कर्म, यहाँ कहते हैं, न देखो! दोनों कर्म का क्षय होने पर। दोनों कौन? एक तो जड़कर्म जो रज है वह, और पुण्य-पाप के भाव जो भावकर्म हैं वे। 'विहुयरयमला'। रज और मल जिसने टाले, ऐसे सिद्ध भगवान। ऐसा आता है। अर्थ की भी खबर नहीं होती। अब इसे समझाना कि यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान,... मनसुखभाई! भाई ने स्वीकार तो किया है। हैं?

मुमुक्षु : धीरे-धीरे आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आयेगा ठीक। परन्तु हाँ तो किया है। अर्थ बर्त की खबर नहीं। आहाहा! अरे, भगवान! यह तो परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग है। भाई! समझ में आया कुछ ?

जिसे एक समय में तीन काल—तीन लोक हस्तामल की भाँति जानने में आये ऐसे प्रभु की वाणी में यह आया है। भाई! समझ में आया ? भगवान! यह सिद्ध भगवान को तो आठों कर्मों का नाश है। जड़कर्म रज और पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के, काम-क्रोध के शुभाशुभभाव, वे भावकर्म अर्थात् मैल-मल, उसका उन्हें नाश है। 'विहुयरयमला' लोगस्स किया था या नहीं पहले ? पहले किया तो होगा।

मुमुक्षु : अभी याद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी याद है। ठीक। अर्थ-बर्त नहीं। लो, यह बड़े साहित्यकार सेठ ! चार लोगस्स एकदम बोल जायें तो कायोत्सर्ग पूरा हो जाये। णमो अरिहंताणं, लो ! आहाहा !

कहते हैं प्रभु! सिद्धभगवान को तो दोनों कर्मों का क्षय होने पर,... दोनों कर्म कौन ? ऊपर जो कहा था भावकर्म पुण्य-पाप के और द्रव्यकर्म पुद्गल के परिणाम दोनों का सिद्धभगवान को नाश हुआ है। वे आत्मा के अनुभव द्वारा दोनों का जिन्होंने नाश किया है। आहाहा! भगवान आत्मा सिद्धस्वरूप मैं हूँ, ऐसा अन्तर सम्यग्दर्शन अनुभव करके पश्चात् वस्तु में आनन्द में स्थिर होकर भावकर्म और द्रव्यकर्म का सिद्ध भगवान को नाश हो गया है। अब उन्हें पाप और पुण्य तथा कर्म जड़ रहे नहीं कि जिससे उन्हें चार गति में उपजना पड़े। ऐसा उन्हें है नहीं। आहाहा !

इसी प्रकार सिद्धरूप से भी उपजते हैं, ऐसा नहीं। सिद्ध भगवान तो वास्तव में दोनों कर्म का क्षय होने पर, जड़ और भाव (कर्म), दोनों का नाश होने पर स्वयं (सिद्धरूप से) उत्पन्न होते हुए... वे तो स्वयं सिद्धरूप से उपजे हैं। उन्हें गति है नहीं। नीचे अर्थ में है, भाई! समझ में आया ?

दोनों कर्मों का क्षय होने पर, स्वयं उत्पन्न होते हुए... स्वयं कैसे कहा ? संसार में

तो पुण्य-पाप के परिणाम और कर्म, वह दूसरी चीज़ थी। उसके कारण चार गति में उपजता था। यह तो स्वयं सिद्ध भगवान राग और द्वेष, पुण्य और पाप तथा जड़कर्म, उन्होंने दोनों का नाश किया और स्वयं सिद्धरूप से उत्पन्न हुए। केवलज्ञान-केवलदर्शन और आनन्दरूप से उत्पन्न हुए, वह सिद्धदशा कही जाती है। उसे णमो सिद्धाणं कहा जाता है। णमो सिद्धाणं का यह अर्थ है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान! संसारी प्राणी जैसे पुण्य और पाप की परम्परा को सेवन कर, जड़कर्म को निमित्तरूप से बाँधकर और सन्तति चार गति में अवतरित होता है। ऐसा सिद्ध को नहीं है। सिद्ध को तो दोनों कर्म का नाश होने पर स्वयं निर्मल आनन्द और अनन्त ज्ञान, दर्शनपने की दशारूप से सिद्ध उपजते हैं। उन्हें चार गतिरूप से उपजते हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! लो, यह गाथा तो ठीक आयी। तुम्हारे यह रविवार है न, और जरा, आज तो शनिवार है। रविवार तो कल आयेगा। यह लड़के भी आये हैं न बहुत समय से। लड़कों को समझ में आता है या नहीं? ऐई जगदीश! समझ में आता है या नहीं? यह थोड़ा, थोड़ा ध्यान रखना। कहाँ गया पप्पू। ध्यान रख, समझ में आता है या नहीं यह? उत्साही है। कहो, समझ में आया इसमें? इसमें तो सादी भाषा है।

भगवान आत्मा अखण्डानन्द चैतन्यबिम्ब अन्दर पड़ा है। अनादि-अनन्त शाश्वत वस्तु है। उसकी श्रद्धा और उसका अनुभव जहाँ नहीं, उसे पुण्य और पाप का अनुभव और उसकी श्रद्धा है। और उसके कारण चार गति में भटकता है। अब यह तो समझ में आये ऐसा है। लड़कों को भी नहीं समझ में आये, ऐसा है इसमें? कहो, आहाहा!

स्वयं (सिद्धरूप से) उत्पन्न होते हुए... स्वयं क्यों कहा? उन चार गति में तो पुण्य-पाप के विकल्प से और कर्म से उपजता था। वह स्वयं नहीं था। उस विकार के कारण से ऐसे उपजता था, ऐसा कहते हैं। और सिद्ध भगवान इस आत्मा के आनन्दस्वरूप को अनुभवकर स्थिरता की शान्ति को पूर्ण करके और राग और द्वेष और कर्म का नाश करके अकेली सिद्धदशारूप उपजते हैं।

अन्य किसी कारण से (-भावकर्म से या द्रव्यकर्म से) उत्पन्न नहीं होते। देखो! सिद्ध भगवान कोई जड़कर्म के कारण उपजते हैं? यहाँ ऐसा कहा, भाई! उस जड़कर्म

का अभाव हुआ, इसलिए उपजते हैं, ऐसा नहीं है। यह कहते हैं। और पुण्य तथा पाप के विकल्प जो विकार दुःखरूप है, उसका अभाव हुआ और आप स्वयं सिद्धरूप उपजते हैं। पूर्णानन्द और पूर्ण शान्तिपने का अवतरित होना अर्थात् होना, उसरूप होते हैं। उन्हें सिद्ध भगवान कहा जाता है। आहाहा! फिर अब सिद्ध को अवतार नहीं होता।

अन्य किसी कारण से... अर्थात् (-भावकर्म से या द्रव्यकर्म से)... भगवान उत्पन्न नहीं होते। भगवान को द्रव्यकर्म भी नहीं और भाव पुण्य-पाप भी नहीं। इसलिए वह द्रव्य और भावकर्म के कारण कार्यभूत सिद्धदशा है नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

पुनश्च, जिस प्रकार वही संसारी (जीव) कारणभूत होकर... स्वयं कारणभूत होकर, देखो! कार्यभूत ऐसी भावकर्मरूप आत्मपरिणामसन्तति... देखो, उसका कार्य वापस यह अब। वह संसारी प्राणी कारणभूत स्वयं होकर कार्यभूत ऐसी पुण्य-पाप के परिणाम, ऐसी कार्यभूत हुई क्रिया। उसका कार्य लिया भाई इसमें!

अनादि से अज्ञानी कारणभूत होकर जीव स्वयं कारण होकर पुण्य-पाप के विकल्प और मिथ्याभ्रान्ति के कारण ऐसी भावकर्मरूप आत्मपरिणामसन्तति रचता हुआ... उसे रचता हुआ, ऐसा कहा। क्या कहा ? समझ में आया ? संसारी प्राणी स्वयं अपने कारणरूप होकर दूसरा कारण नहीं। स्वयं कारण होकर मिथ्यात्व और पुण्य-पाप के भावरूपी कार्यरूप को रचता हुआ। कार्य को रचता हुआ, उस विकारीरूपी कार्य को रचता हुआ, कारण स्वयं होकर विकारी कार्य को रचता हुआ और द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणामसन्तति रचता हुआ... यह निमित्त से, व्यवहार। यह जब विकार परिणाम को रचता है इसलिए जड़कर्म अपने आप रच जाता है। उसे निमित्त से कहा कि आत्मा उसे निमित्तरूप से व्यवहार से रचता हुआ। आहाहा! फिर से,

कहते हैं, जिस प्रकार प्राणी कारणभूत होकर... देखो! यहाँ तो संसारी जीव कारणभूत होकर, भाई! कर्म का कारण होकर, अमुक कारण होकर—ऐसा नहीं। आहाहा! अपनी भूलरूपी कारण को सेवन कर, आहाहा! अपने को आप भूल के हैरान हो गया। अपने को आप भूल के हैरान हो गया। पोपटभाई बोलते बहुत नहीं? मनसुखभाई!

वढवाण । पोपटलाल सुखलाल । अपने को आप भूल के हैरान हो गया । अपने आप भगवान आत्मा चैतन्य का पुंज है । आनन्द का रसकन्द, सुखकन्द है । समझ में आया ? आहाहा !

उसमें आता है या नहीं ' अब हम कबहु न निज घर आये । ' आता है न भक्ति में ? ' अब हम कबहु न निज घर आये, पर घर भ्रमत फिरत अनेक नाम धराये । ' मैं रागी और मैं पुण्यवाला और मैं पापवाला, मैं दयावाला, मैं व्रत करनेवाला और तप करनेवाला, और सेठिया और मैं रंक तथा मैं भिखारी—ऐसे अनेक नाम अज्ञानरूप से धराकर चार गति में भटका । परन्तु निज घर भगवान आत्मा में कभी निज घर में आया नहीं । निज घर का उसे माहात्म्य ही दिखता नहीं । यह सब माहात्म्य धूल का बाहर का दिखता है । बहुत तो व्रत और तप, दया, दान करे इसलिए, आहाहा ! अपने मानो बहुत धर्म किया । है राग । कि जिसका फल संसार है । आहाहा ! समझ में आया ?

तथापि उसे कारणरूप विकार के परिणाम का कारणरूप होकर कार्यभूत ऐसी भावकर्म । लो ! यह कहा देखा ! पुण्य-पाप के भाव और मिथ्यात्व के भाव, वे कार्यभूत हैं । कारण जीव हुआ, इसलिए कार्य हुआ है, ऐसा कहते हैं । कोई पर के कारण से हुए नहीं । आहाहा ! भगवान आत्मा को कारण न बनाकर शुद्ध चिदानन्दमूर्ति प्रभु, उसे यदि कारण बनावे तो उसकी दृष्टि में कार्यरूप से शान्ति और आनन्द आवे । ऐसा आत्मा के अन्तर वस्तु को कारणपने न बनाकर पर्याय में राग-द्वेष के कारणपने परिणमने से । समझ में आया ? अरे... भारी सूक्ष्म ! ऐसा... ! ऐसा हो तो भाई एक पैसा खर्च डालना लाख, दो लाख खर्चने लाओ । करोड़ में से पाँच लाख, दस लाख खर्च करो तो इतने सब तो दे नहीं परन्तु कदाचित् दस लाख दे देना न, तो भी कहते हैं, उसमें तीन काल में धर्म नहीं है । उसमें राग की मन्दता हो तो पुण्य है । पुण्य है, वह बन्ध का कारण है । आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, **संसारी (जीव) कारणभूत होकर...** ओहोहो ! भाई ! यह जीवपना वर्णन करते हैं । वह जीवत्व शब्द है न पहला । २७वीं में है । जीवत्व की बात है । आहा ! भगवान आत्मा भाव आनन्द और ज्ञानरूपी जीव का जीवत्वरूप से न मानकर अज्ञानरूप से राग-द्वेष और पुण्य-पाप के कारण को सेवन कर **कार्यभूत ऐसी भावकर्मरूप आत्मपरिणमसन्तति, उसे रचता हुआ...** वह आत्मा स्वयं मिथ्यात्व और राग-द्वेष को

रचता है। आहाहा! समझ में आया? प्रभु चैतन्यमूर्ति अनाकुल आनन्द के रस का सुखकन्द है। वह इसमें आता है, हों! निज घर में एक शब्द नहीं आता? सुखकन्द। हैं? शुद्ध-बुद्ध सुखकन्द। भगवान आत्मा तो आनन्दकन्द सुख का कन्द। यह शकरकन्द नहीं? शकरकन्द होता नहीं, शकरकन्द? बाफे, बाफते हैं न, मीठा-मीठा (शकरकन्द)। उसी प्रकार आत्मा सुख का कन्द है। आनन्द के कन्द का दल है। परन्तु अब कहाँ खोजना उसे? कहाँ होगा यह वह कहाँ? अतीन्द्रिय आनन्द का दल रसकन्द आत्मा है। उसे भूलकर पुण्य-पाप के कारणरूप होकर पुण्य-पाप के कार्य को स्वयं करता है। आहाहा!

द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणामसन्तति रचता हुआ... निश्चय से तो स्वयं अपने विकारीभाव को कारणरूप होकर स्वयं कार्य करता हुआ, रचता हुआ और व्यवहार से जड़कर्म को रचता हुआ, जड़कर्म तो उसके कारण से रचा जाता है परन्तु निमित्त है न इसलिए व्यवहार से कहा। **कार्यभूत ऐसे वे-वे देव-मनुष्य-तिर्यच-नारक के रूप अपने में उत्पन्न करता है,**... भाषा देखो! आहाहा! पुण्य और पाप के शुभ और अशुभभाव वे मेरे, ऐसा मिथ्यात्वभाव को सेवन करता हुआ जीव **कार्यभूत ऐसे वे-वे देव-मनुष्य-तिर्यच-नारक के रूप अपने में...** अपने में-पर्याय में उपजाता है, ऐसा यहाँ कहते हैं, हों! आहाहा!

शरीर वह कहीं मनुष्यपना नहीं। वह तो जड़ है। वह तो जड़, वह कहीं मनुष्यपना नहीं। अन्दर में मनुष्यगति की योग्यता का भाव, वह मनुष्यपना है। उस मनुष्यपने को स्वयं अज्ञानभाव से उपजाता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो देह हड्डियाँ हैं। यह तो जड़ है, मिट्टी है। यहाँ कहाँ मनुष्यपना है। मनुष्यपना तो उसकी गति में, जीव की योग्यता में गति है, वह मनुष्यपना है। ऐसा मनुष्यपना पुण्य-पाप के कारण को सेवन करता हुआ, ऐसे भाव को रचता हुआ मनुष्यपना अपने में उपजाता है। सिद्धपना न उपजाते हुए मनुष्यपना उपजाता है। न्याय समझ में आता है?

देखो! देवपना अपने में उपजाता है, भाई! ऐसा कहा। भगवान आत्मा... आहाहा! जीवपना सिद्ध करना है न? अशुद्ध जीवपना यहाँ। भगवान आत्मा ध्रुव पूर्णानन्द का नाथ प्रभु! 'सम्पूर्ण पूर्ण ईदम् आत्मा।' ऐसा होने पर भी, वह उसमें नहीं उपजता हुआ पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव को रचता हुआ, अपने में देवपना, पशुपना,

निगोदपना, नारकीपना उपजाता है। अरे! जीव में सिद्धपने उपजना चाहिए, उसके बदले चार गतिरूप से अपने में उपजता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? कहो, पाटनीजी! गाथा तो ठीक आयी है।

स्वयं वस्तु ज्ञान का—चैतन्य का पुंज और अनाकुल आनन्द के रस का दल, ऐसा होने पर भी उसे भूलकर पुण्य और पाप को रचता हुआ और उसके निमित्त से कर्म को रचता हुआ अपने में, आत्मा की पर्याय में जो शुद्धपना उत्पन्न होना चाहिए, स्वभाव का आश्रय ले तो, उसे शुद्धपना पर्याय में उपजना चाहिए, उसे न उपजाता हुआ अशुद्धपने, चार गतिरूप से उसे उपजाता है। आहाहा!

यह तो अध्यात्म शास्त्र है। उसकी एक-एक बात में बहुत गम्भीरता है। समझ में आया? ओहो! कार्यभूत ऐसे कार्य क्या अन्दर में देवपना, भावपना हो, वह कार्य, हों! देवपने उपजे। अपने में देवपना उपजाता है। जहाँ गया हो, वहाँ मैं देव। पशु में गया हो, तब कहे कि मैं पशु। हें? चींटी, कौवे में गया हो, तब कहे कि मैं चींटी, कौआ। गजब! निर्धनपना हुआ हो तो कहे कि मैं निर्धन हूँ। बापू! कहा नहीं था वह दृष्टान्त (संवत्) १९७० के वर्ष का दृष्टान्त। दीक्षा १९७० में हुई, ५६ वर्ष हुए। १९७० में दीक्षा होकर बाद में गये थे। पौष महीने में जैतपुर। जैतपुर। थे तो गये थे। हीराजी महाराज थे न हमारे सम्प्रदाय में, उन्हें आँख बतलानी थी। नरसिंहभाई डॉक्टर थे, वहाँ जूनागढ़। नरसिंहभाई डॉक्टर। आँख बतलानी थी। पौष महीने की बात है। छप्पन वर्ष पहले की।

उसमें एक हलवाई का पुत्र जवान, रूपवान। कन्दोई समझते हो न? हलवाई, हलवाई। हाँ, वह बहुत रूपवान और ऐसे आया, और कहे, महाराज! भगु पशु है, हों! ऐसा कहे। उसका नाम भगवान था। कन्दोई का, हलवाई का पुत्र था परन्तु बेचारा बहुत भोला। इसलिए वह घर में बात हो न, माँ-बाप बातें करे, वे महिलायें, लड़के की बहू को कहे, भाई भगु पशु है, हों! इसका ध्यान रखना, ऐसा। घर में बात करे न, इसलिए चरणवन्दन किया और ऐसा बोला, महाराज! भगु पशु है, हों! इसलिए मैंने कहा यह ऐसे क्यों बोला? स्वयं का नाम भगवान। पौष महीने की बात है। १९७० की। संवत् १९७०। यह, यह ७० हुए। छप्पन वर्ष का अन्तर है न? यह सन् ७० चलता है। सन् १९७०। वह संवत् १९७० था। महाराज! पैर लगता हूँ! भगु पशु है, हों! कहा, यह ऐसा

क्या बोलता है ? फिर कहे घर में भोला मनुष्य और भोला, पागल कहीं नहीं। बहुत भोला। घर के लोग कहते हैं कि देख भाई! यह भगु पशु है, हों! सम्हालना। लड़के की बहुएँ-बहुएँ ध्यान न रखती हो तो उसके माँ-बाप बैठे हुए इसलिए उन्हें कहे कि भाई यह भगु पशु है, हों! ध्यान रखना। वह यहाँ एकदम चरणवन्दन में कहे।

इसी प्रकार यह भगवान तीन लोक का नाथ आत्मा है, परन्तु वह मान्यता में पशु है, ऐसा मान बैठा है। मैं तो देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं मनुष्यरूप से उपजा हूँ। अरे! भगवान परन्तु कौन है तू यह ? हें ? आहाहा ! हें ? मैं नारकीरूप से उपजा, मैं चींटीरूप से उपजा, सेठिया के घर सेठरूप से अवतरित हुआ, राजा के कुँवररूप से उपजा। परन्तु अरे भगवान ! तू कौन है, परन्तु तू कहाँ उपजा ? कहाँ उपजा, क्या कहेगा परन्तु तू तुझे ? समझ में आया ?

जरा शरीर ठीक मिले तो ऐसा कहे मेरा शरीर अच्छा, दूसरे की अपेक्षा मेरी आकृति दूसरे प्रकार की है। रूपवान आकृति सुन्दर; परन्तु वह तो जड़ है। वह तेरी कहाँ से आयी ? वह तो परमाणु की रचना जड़ की है। समझ में आया ? परन्तु उसके अन्दर में मान बैठा कि मैं ऐसे शरीर में उपजा हुआ हूँ। आहाहा !

यह देव के रूप, भाषा ऐसी है न, देखो ! देव के रूप अपने में उपजाता है। चाहे तो वैमानिक का देव हो। समझ में आया ? परन्तु उन पुण्य-पाप के भाव के कारण को सेवन कर ऐसे कार्यरूप से, देवरूप से, पाप बहुत किये हों तो पशुरूप से और बहुत हिंसा आदि परिणाम नरक के हों तो नरकरूपने अपने में उपजावे। नारकी तो हाँ, मैं नारकी। और ऐसे बहुत से कहते हैं, ऐ बापू ! मरे को मारना नहीं, हों। वह मर गया है, ऐसा कहे भाई। वह यहाँ मोहन मिस्त्री थे न। सात लड़कियाँ थीं, सात। मुश्किल से बेचारा कमाकर खाये। उसमें सात लड़कियाँ इसलिए कुछ न कुछ थोड़ा सा फेरफार करे यह गमला टालने में। क्या कहलाता है यह सीमेण्ट। सीमेण्ट एक गमला डालना हो, दो गमला ऐसा का ऐसा डाले। होगा कुछ मेल अपने को खबर नहीं। यह तो बहुत वर्ष की बात है। १९९४ की। हें ? फेरफार करता था। इसलिए फिर ऐसा बोलता था। भाईसाहब हम मर गये हैं, हों ! मारना नहीं। हमको यह होता है, यह होने दो। कोई हमारा दोष देखना नहीं। सात-सात लड़कियाँ अब हमें विवाह करना है, उसमें हजार-

हजार खर्च करना, वह लाना कहाँ से ? गरीब मनुष्य। उसका लड़का यह काम करता है न ? मेरा यह मान बैठा ले ! कहे, वह जीवती ज्योति है न ऐसा ? हम तो मर गये हैं, हों ! वह मर गये हैं, ऐसा उपजा। लो ! ऐसा माना। हैं ? आहाहा !

कहते हैं देवपने, मनुष्यपने, तिर्यच के निगोदपने, एकेन्द्रियपने, पृथ्वीपने, पानीपने, अग्निपने, वायुपने, वनस्पतिपने और नारक के रूप अपने में उत्पन्न करता है,... आहाहा ! वह पर्याय अपने में उपजाता है, कहते हैं, वह स्वयं स्वतन्त्र है, वह जीव। जीव का जीवपना ऐसा उपजाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! कहो, समझ में आया ? उसी प्रकार सिद्ध का रूप भी (अपने में) उत्पन्न करता है—ऐसा नहीं है;... हाँ.... जैसे विकार परिणाम के कारणरूप होकर जीव चार गतिपने को अपनेरूप उपजाता है, ऐसे सिद्धरूप भी ऐसे पाप परिणाम से उपजाते हैं, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : यह अलग प्रकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अलग प्रकार है। सिद्ध भगवान तो आत्मा के अन्तर अनाकुल आनन्द का धाम चैतन्यधाम भगवान, उस धाम में विराजमान होकर और शक्ति की व्यक्तता प्रगट पूर्ण आनन्द की हुई, वह सिद्धरूप से उपजे, वे ऐसे कारणरूप उपजते नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र अर्थात् अलौकिक शास्त्र हैं। हैं ? आहा ! उनकी एक-एक टीका देखो, अपने तो अब यह संगमरमर में उत्कीर्ण होनेवाले हैं। यह संगमरमर में लिखी है, यह सब टीका, हों ! संस्कृत टीका और मूल श्लोक। यह शास्त्रों के मूल श्लोक। संगमरमर। लगभग पाँच लाख के अन्दर में खर्चा है, ऐसा श्री वजुभाई कहते हैं। अपने को कोई खबर नहीं। वह कुछ गिनती करते थे। यह संस्कृत टीकायें हैं, वे भी संगमरमर में उत्कीर्ण होनी हैं। भगवान की वाणी है टंकोत्कीर्ण। यह टीका है न यह। टीकारूप भी एक व्यक्ति कहता है कि हमको यह तो समझ में आता नहीं। परन्तु प्रयत्न करना न, उसका अनुवाद हो गया है, यह सब नहीं हुआ ? यह सब अनुवाद उसका ? ऐसा कि वहाँ अनुवाद साथ में लिखाये न तो ठीक। अनुवाद कहाँ लिखे ? पाँच लाख अक्षर में यह डाले तो अनुवाद का तो पार न आवे। यह अनुवाद हुआ है या नहीं ? वहाँ

लेखन का यह अनुवाद है। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। अनुवाद बिना हमें कैसे समझ में आये? परन्तु अनुवाद यह हुआ है न? यह पाठ है, उसकी (संस्कृत) टीकायें हैं, उसके अनुवाद हो गये हैं। उन्हें पढ़कर यह पढ़ न? पश्चात् पढ़ना न कि यह अनुवाद यह है। उसका अनुवाद अर्थात् उसका अर्थ। दरकार भी नहीं होती। बहियाँ खोजने के लिये दरकार है, वैसी यह नहीं होती। आहा!

सिद्ध का रूप भी... भाषा रूप प्रयोग की है। देखो! वह देव-मनुष्य-तिर्यच-नारक के रूप भी अपने में उपजाता है, जैसे सिद्ध का रूप भी इस प्रकार अपने में उपजाता है विकार से—ऐसा नहीं है। **सिद्ध वास्तव में, दोनों कर्मों का क्षय होने पर,...** भगवान सिद्ध परमात्मा 'विहुरयमला' रज और मल दोनों टाले होने से, द्रव्यकर्म और भावकर्म दोनों नाश किये होने से, इसका अर्थ कि भावकर्म नाश करनेयोग्य है। भावकर्म रखनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया?

स्वयं कर्म का क्षय होने पर, **स्वयं अपने को (सिद्धरूप से) उत्पन्न करते हुए...** देखो भाषा! भगवान सिद्धप्रभु! पुण्य-पाप के विकल्पों का स्वभाव के आश्रय से नाश किया है। जड़कर्म का नाश उसके कारण से होता है। दोनों का नाश होने पर सिद्ध भगवान अपने में सिद्धपना उपजाते हुए, देखो! यह जीव का जीवत्व। आहाहा! सिद्धपना उपजावे अपनी पर्याय में, वह जीव का वास्तविक जीवपना है। संसारपने, चार गतिपने उपजना वह जीव का वास्तविक जीवपना नहीं है। **अन्य कुछ भी (भावद्रव्यकर्मस्वरूप अथवा देवादिस्वरूप कार्य) उत्पन्न नहीं करते।** देखो! भावकर्म या द्रव्यकर्म देवादिस्वरूप कारण या कार्य कोई उपजाते नहीं। आहाहा! कारण भी नहीं और कार्य भी नहीं। विकार का कारण भी नहीं और विकार का कार्यरूप से उपजना, वह भी उन्हें नहीं।

सिद्ध भगवान अनाकुल आनन्दरूपी दशा में उपजते हैं, स्वयं अपनी दशा में उपजते हैं। वह जीव का जीवत्व यथार्थ है। ऐसा प्राप्त करने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करने से और स्थिरता होने से ऐसी पदवी प्राप्त होती है। दूसरा कोई इसका उपाय नहीं है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३७, गाथा-३७, मगसिर कृष्ण-११, रविवार, दिनांक -०४-०१-१९७०

पंचास्तिकाय की गाथा ३७वीं। ३६ हो गयी। क्या चलता है यह ? जो यह जीव है, जीव का जीवपना। संसार में भी जीव का जीवपना किस प्रकार है और सिद्ध में भी जीवपना किस प्रकार है। यह बात चलती है। यह आत्मा है, वह संसार में द्रव्यप्राण का निमित्त और भावप्राण जो अशुद्ध ज्ञान, दर्शन और वीर्य अर्थात् प्राण अशुद्ध। वह उसका संसार में जीवत्व है। समझ में आया ?

स्वयं भगवान आत्मा ज्ञान, आनन्द और शान्ति के स्वभाव से भरपूर पदार्थ वह उसका वास्तविक जीवन जीवपना होने पर भी संसारदशा में उस स्वभाव का आश्रय नहीं होने से पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन और काया की योग्यता में और श्वास और आयुष्य की क्रिया की योग्यता में वह जीता है। वह अशुद्ध प्राण से जीता है निश्चय से— अशुद्धनिश्चय से। और दस प्राण आदि पाँच इन्द्रियाँ जड़ हैं। वह असद्भूत, इसमें नहीं परन्तु निमित्तरूप है, इसलिए असद्भूतव्यवहारनय से दस प्राण से जीता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

तब अब कहते हैं कि सिद्ध में जीवपना रहता है या नहीं ? इन्द्रियाँ गयीं, बाहर के प्राण गये और अशुद्धता के। सिद्ध भगवान जब मोक्ष पाते हैं आत्मा, तब उसमें कोई जीवपना रहता है या मुक्ति होती है, इसलिए जीव का अभाव हो जाता है ? समझ में आया ? संसार में तो अपनी सत्ता भिन्न रखकर मलिन पुण्य-पाप के भाव और अशुद्ध प्राणरूप से जीना, उस प्रकार उसकी सत्ता का अस्तित्व रख रहा है। परन्तु जिसे आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसा अन्तर आश्रय करके जिसे अशुद्धता टल गयी है, अशुद्धता से मुक्ति हो गयी है, उसकी मुक्ति में जीव का जीवपना रहता है या मुक्त हो गया, इसलिए जीव का अभाव हो गया ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

तो कहते हैं कि जीव का जीवपना तो सिद्ध में भी रहता है। मुक्त होता है मलिन भाव से। मलिनभाव के व्यय में निर्मल भगवान आत्मा अपने अनन्त, ज्ञान, दर्शन की पर्यायरूप से उपजता है, सिद्धपने रहता है। वह उसके भावप्राणरूप से जीता है। ऐसा

जीवपना मुक्तदशा में भी रहता है। समझ में आया? मुक्तदशा में जीव का अभाव होकर दूसरा कोई आत्मा परमेश्वर है, उसमें मिल जाता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? तथा अशुद्धता का नाश हुआ इसलिए जीव के मूल भाव का नाश हो गया और जीवपना मुक्त में नहीं रहता, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह ३७वीं गाथा में कहते हैं। देखो!

गाथा - ३७

सस्सदमध उच्छेदं भव्यमभव्यं च सुण्णमिदरं च।
विण्णानमविण्णानं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे॥३७॥

शाश्वतमथोच्छेदो भव्यमभव्यं च शून्यमितरच्च।
विज्ञानमविज्ञानं नापि युज्यते असति सद्भावे॥३७॥

अत्र जीवाभावो मुक्तिरिति निरस्तम् ।

द्रव्यं द्रव्यतया शाश्वतमिति, नित्ये द्रव्ये पर्यायाणां प्रतिसमयमुच्छेद इति, द्रव्यस्य सर्वदा अभूतपयायैः भाव्यमिति, द्रव्यस्य सर्वदा भूतपयायैरभाव्यमिति, द्रव्यमन्यद्रव्यैः सदा शून्यमिति, द्रव्यं स्वद्रव्येण सदाऽशून्यमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनन्तं ज्ञानं क्वचित्सान्तं ज्ञानमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनन्तं क्वचित्सान्तमज्ञानमिति—एतदन्यथानुपपद्यमानं मुक्तौ जीवस्य सद्भावमावेदयतीति ॥३७॥

सद्भाव हो न मुक्ति में तो ध्रुव-अध्रुवता ना घटे।

विज्ञान का सद्भाव अर अज्ञान असत कैसे बनें? ॥३७॥

अन्वयार्थ :- [सद्भावे असति] यदि (मोक्ष में जीव का) सद्भाव न हो तो [शाश्वतम्] शाश्वत, [अथ उच्छेदः] नाशवन्त, [भव्यम्] भव्य (-होनेयोग्य), [अभव्यम् च] अभव्य (-न होनेयोग्य), [शून्यम्] शून्य, [इतरत् च] अशून्य, [विज्ञानम्] विज्ञान और [अविज्ञानम्] अविज्ञान [न अपि युज्यते] (जीवद्रव्य में) घटित नहीं हो सकते। (इसलिए मोक्ष में जीव का सद्भाव है ही।)

टीका :- यहाँ, 'जीव का अभाव सो मुक्ति है' इस बात का खण्डन किया है।

(१) द्रव्य द्रव्यरूप से शाश्वत है, (२) नित्य द्रव्य में पर्यायों का प्रति समय नाश

होता है, (३) द्रव्य सर्वदा अभूत पर्यायरूप से भव्य (-होनेयोग्य, परिणमित होनेयोग्य) है, (४) द्रव्य सर्वदा भूत पर्यायरूप से अभाव्य (-न होनेयोग्य) है, (५) द्रव्य अन्य द्रव्यों से सदा शून्य है, (६) द्रव्य स्वद्रव्य से सदा अशून्य है, (७) ^१किसी जीवद्रव्य में अनन्त ज्ञान और किसी में सान्त ज्ञान है, (८) ^२किसी जीवद्रव्य में अनन्त अज्ञान और किसी में सान्त अज्ञान है—यह सब, ^३अन्यथा घटित न होता हुआ, मोक्ष में जीव के सद्भाव को प्रगट करता है॥३७॥

गाथा - ३७ पर प्रवचन

टीका - यहाँ 'जीव का अभाव, वह मुक्ति है' इस बात का खण्डन किया है। टीका का पहला शब्द।

सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च।
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे॥३७॥

१. जिसे सम्यक्त्व से च्युत नहीं होना है, ऐसे सम्यक्त्वी जीव को अनन्त ज्ञान है और जिसे सम्यक्त्व से च्युत होना है, ऐसे सम्यक्त्वी जीव के सान्त ज्ञान है।
२. अभव्य जीव को अनन्त अज्ञान है और जिसे किसी काल भी ज्ञान होता है, ऐसे अज्ञानी भव्य जीव को सान्त अज्ञान है।
३. अन्यथा=अन्य प्रकार से; दूसरी रीति से। (मोक्ष में जीव का अस्तित्व ही न रहता हो तो उपरोक्त आठ भाव घटित हो ही नहीं सकते। यदि मोक्ष में जीव का अभाव ही हो जाता हो तो, (१) प्रत्येक द्रव्य द्रव्यरूप से शाश्वत है—यह बात कैसे घटित होगी? (२) प्रत्येक द्रव्य नित्य रहकर उसमें पर्याय का नाश होता रहता है—यह बात कैसे घटित होगी? (३-६) प्रत्येक द्रव्य सर्वदा अनागत पर्याय से भाव्य, सर्वदा अतीत पर्याय से अभाव्य, सर्वदा पर से शून्य और सर्वदा स्व से अशून्य है—यह बातें कैसे घटित होंगी? (७) किसी जीवद्रव्य में अनन्त ज्ञान है—यह बात कैसे घटित होगी? और (८) किसी जीवद्रव्य में सान्त अज्ञान है (अर्थात् जीवद्रव्य नित्य रहकर उसमें अज्ञानपरिणाम का अन्त आता है)—यह बात कैसे घटित होगी? इसलिए इन आठ भावों द्वारा मोक्ष में जीव का अस्तित्व सिद्ध होता है।)

नीचे हरिगीत ।

सद्भाव हो न मुक्ति में तो ध्रुव-अध्रुवता ना घटे ।

विज्ञान का सद्भाव अर अज्ञान असत कैसे बनें? ॥३७॥

मुक्तदशा होने पर आत्मा का आनन्द प्रगट होता है । मुक्त मलिनदशा से होता है । परन्तु वस्तु और वस्तु की शक्ति और वस्तु की पर्याय से मुक्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं । समझ में आया इसमें ? भगवान आत्मा मुक्त होता है अर्थात् कि उसकी वर्तमान दशा में विकार और दुःख दशा है, उससे मुक्त होता है । परन्तु अपना द्रव्यस्वभाव, शक्तिस्वभाव और निर्मल आनन्द आदि पर्यायस्वभाव, वह तो उसमें अस्तिरूप से रहता है । यह सूक्ष्म बात है, भाई !

पंचास्तिकाय भी अध्यात्म है न ? इसका जीव का अस्तित्व, अस्तिकाय है न, अस्तिकाय का वर्णन है न ? है, भगवान आत्मा है । किस प्रकार है ? अनादि-अनन्त द्रव्यरूप से है, गुणरूप से भी अनादि-अनन्त है, पर्याय में अवस्थारूप से संसार में मलिन पर्यायरूप से है । वह मुक्त में मलिनता के अभावरूप होकर निर्मलता वीतराग आत्मा की दशा जो शुद्धस्वभाव है, ऐसा प्रगट होकर जीवरूप से, जीवरूप से जीवपना वहाँ रहता है । वह जीवपना है । समझ में आया ?

यहाँ, 'जीव का अभाव... कितने ही कहते हैं न मैं जीव हूँ—ऐसी सत्ता है, उसका अभाव हो जाना, इसका नाम मुक्ति । दीपक है न दीपक, उसमें धुँआ निकले, धुँआ । धूम, धुँआ निकालना हो तो दीपक को बुझा डालना । तो दीपक का अभाव, वह धुँए का अभाव और अपना भी अभाव । समझ में आया ? ऐसा नहीं है । भगवान आत्मा में जितने पुण्य और पाप के विकल्पों का दुःखरूपभाव वह धूम है, धुँआ है, मैल है, दुःख है, संसार है । उसे नाश करके कहीं द्रव्य, गुण और उसकी पर्याय निर्मल है, उसका नाश नहीं होता । निर्मल पर्याय तो नयी उत्पन्न होती है । उसके अस्तिरूप से वह रहती है । न्याय समझ में आता है ?

जो जीव... ऐसा कितने ही कहते हैं न कि भाई ! मुक्त हुआ न, इसलिए दूसरे द्रव्य में वह मिल गया । अनन्त चीज़ थी, उसमें वह मिल गया अर्थात् अभाव हो गया ।

ऐसी मुक्ति हुई या अभाव हुआ ? मुक्ति तो उसे कहते हैं कि जो पवित्रता की प्राप्ति करे और अपवित्रता से मुक्ति हो। तब तो उस पवित्रता की दशा को प्राप्त हुआ और अपवित्रता से मुक्ति हुई। परन्तु स्वयं से ही मुक्ति हो, अभाव हो जाये तो फिर मुक्ति किसकी ? जीव तो रहा नहीं। समझ में आया ?

संसार में दुःखरूप दशा में अपनी मौजूदगी पृथक् रखे और दुःख की दशा नाश होकर मौजूदगी गँवावे। हैं ? न्याय समझ में आता है कुछ ? आहाहा ! अकेला संसार में भिन्न दुःख से वेदन में दुःखी होकर अपनी सत्ता पृथक् रखता है। बराबर है न ? दूसरे प्राणी चाहे जितने परन्तु अपने आनन्द को भूलकर, विकार के भाव को, दुःख को उत्पन्न करके दुःख के वेदन में भी दूसरे की सत्ता से अपनी सत्ता भिन्न रखता है। तो कहते हैं कि दुःख के वेदन से मुक्ति हुई, तब उसकी सत्ता कुछ रहती है या नहीं ? दुःख से मुक्ति हुई तो जीव की पर्याय की निर्मलता से भी मुक्ति हुई ? और द्रव्य और गुण का भी वहाँ अभाव हो गया ? ऐसा नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ, 'जीव का अभाव, सो मुक्ति है' इस बात का खण्डन किया है। परमात्मा सिद्ध जब यह आत्मा होता है, तब भी अपनी अस्ति... जीवास्ति शब्द है न, यहाँ ? जीव का अस्तित्व कायम सिद्ध में भी रहता है। समझ में आया ? निर्मल आनन्द की पर्याय होकर वह जीता है। वह संसारी दुःखी होकर जीता है। इतना अन्तर है। समझ में आया ? परन्तु उसका जीव का जीवपना मुक्ति में अभाव हो जाता है, ऐसा नहीं है। अब यह जरा लॉजिक से बात सिद्ध करते हैं। लोगों को जरा सूक्ष्म तो पड़े। ऐसा तत्त्व सूक्ष्म है ! देखो ! अब कहते हैं।

द्रव्य द्रव्यरूप से शाश्वत है,.... यदि जीव मुक्त में भी जीवपने न हो तो जीवपने तो द्रव्य शाश्वत् है। तो वह शाश्वतपना फिर सिद्ध में तो रहा नहीं। ऐसा होता नहीं। समझ में आया ? आठ बोल कहेंगे आठ, न्याय से। परन्तु अब यह रास्ता ही कोई अलग प्रकार का है। इस रास्ते न चढ़े तो इसे पकड़ में नहीं आवे। उल्टे रास्ते विपरीत रास्ते चला जाता है, ऐसा का ऐसा।

यह फिर कहा न, यह उल्टे में सुख मानता है। राग, द्वेष और यह हमारी क्रिया

और हम कुछ शुभ प्रवृत्ति करते हैं। कल नहीं कहते थे डेबरभाई! शुभ प्रवृत्ति तो करनी चाहिए। लोकसंग्रह करना चाहिए। लोक अर्थात् क्या? संग्रह अर्थात् क्या? प्रवृत्ति अर्थात् क्या? वह प्रवृत्ति कहाँ रहती होगी? कैसे होती होगी, ऐसा उसका निर्णय करना पड़ेगा या नहीं? ऐसा का ऐसा बिना भान दिये रखे, ऐसे नहीं चलता।

मुमुक्षु : चतुर व्यक्ति कहे, वह सच्चा ही होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : चतुर किसे कहना इसमें? इस दुनिया ने बड़ा ठहराया और कुछ.... हुआ और चतुर हो गया? जैसी चीज़ है और जिस प्रकार से अन्दर वर्तन उलटा और सुलटा कैसे होता है, उसकी खबर नहीं। उसे चतुर कहना किस प्रकार? हैं? यहाँ तो पागल कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पचास प्रतिशत।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं? सौ प्रतिशत। गुलाबभाई! समाधिशतक में तो भगवान आचार्य कहते हैं। आहा! प्रभु! तेरा स्वभाव तो प्रभु आनन्द है न, अतीन्द्रिय नित्यानन्द है न? उस नित्यानन्द में से निकलकर पुण्य-पाप के विकल्प उठाना पागलपन है। आहाहा! गहलता है, तेरी मूर्खता है। आहाहा!

अस्तिवाला भगवान वस्तु अस्तिरूप है न! और अस्तिरूप से, सत्तारूप से होनेपने अस्तिकाय का वर्णन है न! होनापने भगवान आत्मा अपने द्रव्यरूप से अस्तिरूप से उसकी द्रव्य अर्थात् वस्तु हुई वह तो, फिर उसकी शक्ति और उसका स्वभाव और उसका भाव होवे न! उसका भाव जो है, वह ज्ञान, आनन्द आदि अस्तिरूप से, परन्तु अस्ति त्रिकाली है। समझ में आया? उसकी वर्तमान पर्याय अर्थात् हालत—दशा में स्वभाव की त्रिकालता की सत्ता को भूलकर और वर्तमान में पुण्य-पाप के विकल्प की दशा को अपनी मानकर उसमें अटका हुआ जीवन जो है, वह दुःखी जीवन है, पागल जीवन है, अज्ञान जीवन है। समझ में आया? आहाहा!

तब कहते हैं कि पागलपना मिटकर आत्मा को पागलपना जाये और कुछ हो या नहीं उसमें? या पागलपना जाये तो अपागलपना अर्थात् पवित्रता की दशा प्रगट हो। तो

पवित्रता की दशासहित का जीवन अस्तिरूप से रहे, उसे सिद्धदशा कहा जाता है। समझ में आया ?

भाई! यह कहीं वार्ता नहीं या कथा नहीं कि एकदम एक राजा था और एक रानी थी और रानी कुपित हुई और राजा मनाने गया। ऐसा सबके घर में हो, ऐसा वहाँ होता है? गुलाबभाई! (वार्ताकार) ऐसी बातें रच दे, गुलाबभाई वहाँ।

मुमुक्षु : लोग पढ़कर प्रसन्न बहुत होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसन्न हों परन्तु होती है न उसमें रचना ऐसे से ऐसे ऐसी करे और वहाँ अन्दर से। ऐसा मनाकर फिर ऐसा हुआ और फिर ऐसा किया और फिर उस दासी को भेजकर दासी ने ऐसा कहा, उसकी न समझी। तब फिर एक चतुर बाई को भेजकर, ऐसा किया। वह ऐसी बात को मिलावे और वह उसको तो घड़ीक में बाहर निकलना न सुहावे पढ़ते हुए, पढ़ते हुए। हैं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अज्ञानी, तो अज्ञानी को पागल को पागलपने अच्छा कहे और उसमें क्या है ?

ऐ... अभी उसकी वस्तु कौन है ? बापू! भाई! यहाँ तो अभी सिद्धपरमात्मा होता है, यह आत्मा। तब कहते हैं कि जीवपने जीव रहता है या नहीं रहता ? या अपनी सत्ता को गँवावे, इसका नाम सिद्ध और मुक्ति कहलाता है ? पाटणीजी ! आहाहा ! अरे ! इसमें सबके सत् के सत्पने का वास्तविक क्या भाव है, ऐसा इसने कभी अनन्त काल में स्वसन्मुख होकर निर्णय किया ही नहीं। आहाहा ! बाकी के जीवन, क्या जीवन ? आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं कि, आत्मा संसारदशा में, संसरणम् अर्थात् संसारः अर्थात् संसार कहाँ रहता होगा जीव में ? कहीं स्त्री, पुत्र और परिवार तथा कर्म, वह कहीं संसार नहीं है। संसार तो उसे कहा जाता है कि भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का सच्चिदानन्द स्वभाववाला तत्त्व, उसमें से हटकर शुभ और अशुभराग मेरे हैं, उसमें जो आता है, ऐसा

जो मिथ्यात्वभाव, उसे भगवान संसार कहते हैं। जीव का संसार जीव की दशा में होता है। जीव की भूल जीव से भिन्न दूसरे में नहीं होती। समझ में आया ?

जीव का संसार कहो या भूल कहो वह भगवान आत्मा की दशा में उसकी भूल रहती है। वस्तु में भूल नहीं है। हैं ? आहाहा ! भूल, वह वास्तविक स्वरूप हो नहीं सकता। भूल, वह कृत्रिम विकृत दशा है। भगवान आत्मा अकृत्रिम अकृत द्रव्य, गुण स्वभाव का पिण्ड जो है, वह तो एकदम त्रिकाल ध्रुव शुद्ध है। वह किया हुआ नहीं है। तथा उसमें भूल नहीं है। और उसमें मैल नहीं है। परन्तु वह द्रव्यस्वभाव और गुणस्वभाव त्रिकाली का लक्ष्य नहीं और वर्तमान ज्ञान के उघाड़ से इन्द्रियों पर लक्ष्य जाता है, इसलिए उतने को अपना मानकर वहाँ मिथ्यात्वभाव को उत्पन्न करके वह जीव मिथ्यात्वभाव के जीव को जीता है। वह संसारदशा है। वह उसकी दुःखदशा है। समझ में आया ? यह करोड़पति कहलाते हैं, अरबोंपति कहलाते हैं। रूपवान शरीर, स्त्रियाँ इन्द्राणी जैसी, वे सब मानते हों कि हम सुखी हैं। मूढ़ में मूढ़ महा दुःखी हैं। हैं !

मुमुक्षु : लोगों की मान्यता से तो बहुत अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया से तो सत्य तो अलग ही होगा न ? असत्य से तो सत्य अलग जाति होगी।

भगवान आत्मा... अरे ! अनादि का, निजनिधि को भूलकर, निजनिधि भी अनादि की है और उसे भूला हुआ भाव भी अनादि का है। समझ में आया ? वह भूला हुआ अर्थात् मैं राग हूँ और पुण्य हूँ, और पाप हूँ और शरीर हूँ, स्त्री हूँ, पुत्र हूँ और यह देश मेरा और यह धूल मेरी और इस देश का संग्रह करो, देश का रक्षण करो, लोक का कल्याण करो। लो, यह लोक ! लोक अर्थात् क्या ? कल्याण अर्थात् क्या ? लोक में क्या होता है तो उसे कल्याण हुआ कहलाये।

मुमुक्षु : कल्याण तो गरीब है, वह साहूकार हो तो कल्याण हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु गरीब अर्थात् क्या ? उसकी व्याख्या क्या ? गरीब की व्याख्या क्या ? पैसा नहीं वह गरीब, ऐसी व्याख्या तो पैसा नहीं तो उसकी कितनी संख्या नहीं, इसलिए गरीब। कितनी संख्या नहीं उसे गरीब कहना ?

मुमुक्षु : खाने जितना न मिलता हो वह गरीब ।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाने-पीने के रजकण धूल मिली तो धनवान हो गया ? और (खाने-पीने के) रजकण न मिले, इसलिए गरीब हो गया, यह कहाँ की व्याख्या ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : अपने को तो नेता समझता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नेता अर्थात् बड़ा मूर्ख । गुलाबभाई !

यहाँ तो भाई ! न्याय दूसरे प्रकार का है न, बापू ! अरे प्रभु ! तू भूला है कैसे, इसकी तुझे खबर नहीं है । आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं । तेरे शुभभाव के भाव से कोई दूसरे को लाभ हो, ऐसा तीन काल में नहीं बनता । हाँ, उस शुभभाव के कारण तुझमें अनर्थपना उत्पन्न होता है । शान्ति उत्पन्न न होकर अनर्थपना प्रयोजन में दुःख उत्पन्न होता है । वह स्वयं दुःख ही है । होना था कहाँ ? वह राग स्वयं दुःख है । किसे कहना इसमें ? तुमने ऐसा प्रश्न नहीं किया था कि यह बात अब हमें क्यों बैठती नहीं ? तब प्रश्न किया था एक बार ९० में, सदर में (राजकोट) । यह पुण्य-पाप के भर है न, वह दुःख है और इस भर की (बात) क्यों बैठती नहीं ? सबको यह क्यों नहीं बैठती ? (संवत्) १९९० में सदर में (राजकोट) प्रश्न किया था भाई । समझ में आया ?

परन्तु यह ऐसे न्याय, यहाँ अस्तिकाय की बात चलती है । तू है या नहीं ? या अभावरूप है ? अभावरूप हो, वह वस्तु कहलाये ? वह तो भावरूप है । अस्तिकाय है न, अस्तिकाय की व्याख्या है न ? अस्ति—है—काय । असंख्यप्रदेशी स्वयं । असंख्यप्रदेशी उसकी काय, हों ! यह शरीर-बरीर की काय नहीं । असंख्यप्रदेश । एक पॉइन्ट परमाणु को रखे तो जितनी जगह रोके उसे प्रदेश कहते हैं । ऐसा आत्मा अपने अस्तित्व के क्षेत्र में असंख्यप्रदेशी चौड़ा है । वह उसकी काय है । यह शरीर उसकी काय और राग उसकी कार्य है ही नहीं ।

एक असंख्यप्रदेशी काय में अनन्त आनन्द आदि भरे हुए हैं । वस्तु है, उसमें वस्तु के स्वभाव में विकृत कैसे हो ? अपूर्णता कैसे हो ? न्यूनता कैसे हो ? समझ में आया ? न्याय से इसे पकड़ना पड़ेगा या नहीं ? वस्तु स्वयं है ।

श्रीमद् ने कहा है न, भाई! देखो! जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से कौने में है, एक कौने में। जीव एक, अखण्ड, सम्पूर्ण द्रव्य होने से उसका ज्ञानसामर्थ्य सम्पूर्ण है। सम्पूर्ण वीतराग हो, वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ। महासिद्धान्त। गुलाबभाई! है? कौने में है। पूर्व का पहला नीचे। पूर्व का पहला। उगता सूर्य भगवान आत्मा कैसा है? देखो! आहाहा!

जीव, यह एक हो एक। अखण्ड-अखण्ड है, खण्ड नहीं। वस्तु है न पूरी! सम्पूर्ण द्रव्य होने से, वस्तु सम्पूर्ण होने से उसका ज्ञान, यहाँ ज्ञान से बात ली है। आनन्द, शान्ति वह सब उसका सम्पूर्ण स्वरूप है और वह सम्पूर्ण वीतराग हो, वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है। राग को पछाड़कर स्व का आश्रय लेकर पहली दृष्टि में सम्पूर्णता को प्रतीति में अनुभव में ले, फिर सम्पूर्ण में स्थिरता होने पर, अखण्ड एक में स्थिरता होने पर अखण्ड एकता पूर्ण केवलज्ञान आदि प्रगट हो, उसे सिद्धपद और सर्वज्ञपद कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : महासिद्धान्त! परन्तु हमारे एक दिन में कितने याद रखना?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें याद रखने का कहाँ है? वस्तु ऐसी है। हैं? दो और दो चार। चार चौके सोलह, सोलह तिया अड़तालीस, अतड़तालीस दूने छियानवे। ऐसे पहलू हैं, उसमें याद कहाँ रखना, वह तो इस अनुसार वस्तु ही है। हैं? आहाहा! अरे! परन्तु इसका अभ्यास नहीं न, अभ्यास नहीं। उसकी चीज़ है, यह अन्दर में? आहाहा!

कहते हैं कि संसारी जीव की बात तो यह की है कि पुण्य-पाप के कारण को सेवन कर पुण्य-पाप के कार्यरूप से अपने में चार गति उपजाता है। यह तो पहले बात की ३६ (गाथा) में। वह तो दुःखदशा है।

परन्तु जब जीव परमात्मा होता है, तब क्या होता है, कहते हैं। मुक्त हुआ न? मुक्त हुआ तो वस्तु से मुक्त हुआ? गुण से मुक्त हुआ या निर्मलदशा से मुक्त हुआ? या मलिनदशा से मुक्त हुआ? समझ में आया? मलिनदशा से मुक्त होता है और निर्मलदशा से प्राप्त होता है। समझ में आया? जैसे छोटी पीपर में चौसठ पहरी सामर्थ्य अन्दर भरी है। छोटी पीपर में चौसठ पहरी है। उसमें से वर्तमान में कालिमा है और अल्प चरपराहट है। वह अल्प चरपराहट और कालिमा का नाश होकर हरापन और पूर्ण

चरपराहट की पर्याय की प्राप्ति हुई, वहाँ क्या मुक्त हुआ है, वह मलिन और कालिमा से मुक्त हुआ है ? क्या अपनी निर्मल पर्याय हुई, उसमें से मुक्त हुआ है ? निर्मल पर्याय तो हुई। चौसठ पहरी हुई। चौसठ पहरी अर्थात् रुपया अर्थात् सोलह आने। जो शक्ति चौसठ पहरी थी, पीपर में इतना (छोटा) दाना भले हो परन्तु शक्ति और सत्त्व का स्वभाव तो चौसठ पहरा अन्दर प्रगट हो, ऐसी शक्ति है। कि जिससे घोंटने से प्रगट होती है, वह प्राप्त की प्राप्ति है, वह मिलती है और आती है। तब अन्दर में चौसठ पहरी सामर्थ्य जो शक्ति है, उसकी वर्तमानदशा में प्राप्ति होना, उसमें अपूर्णता और मलिनता का नाश होना, उसमें वस्तु का नाश कहाँ होता है ? कहते हैं। समझ में आया ? वह तो मलिनदशा से मुक्ति हुई। परन्तु निर्मल पूर्ण चौसठ पहरी शक्ति की व्यक्तता से तो प्राप्त, उत्पन्न हुआ है। समझ में आया ?

इसी प्रकार भगवान आत्मा, छोटी पीपर तो इतनी छोटी जड़ है। यह दृष्टान्त। वह तो जड़ रजकण है। वह भी बहुत रजकणों का दल है। यह तो एक ही द्रव्य दल है। इसलिए इसका एक-एक सामर्थ्य परिपूर्ण अनन्तर है। ऐसे स्वभाव को भूलकर और अकेले पुण्य और पाप के विकारीभाव से जीवन व्यतीत करना, वह मिथ्या जीवन, दुःख जीवन, संसार जीवन है। वह बहिरात्म जीवन है। वह निगोद से लेकर मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक में गया, वह जीव को जीता है। अब जब साधक होता है, तब भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द है, ऐसी दृष्टि होने पर शुद्धता की निर्मल पर्याय, उस अपूर्ण निर्मल पर्याय से जीवन, वह साधक का जीवन कहा जाता है और निर्मल पूर्ण पर्याय की प्राप्ति का जीवन, वह सिद्ध का जीवन है।

चौसठ पहरी में से पचास, साठ का जीवन हो, वह अपूर्ण है। चौसठ पहरी पूरी प्रगट हो, वह पूरी है। इसी प्रकार परमात्मा, यह आत्मा सिद्ध होने पर अपने आनन्द और ज्ञान जो शक्तिरूप से, स्वभावरूप से, सत्त्वरूप से, परिपूर्ण एकरूप, अखण्डरूप है, उसे एकाग्रता से घोंटते हुए दशा में परिपूर्णता प्रगट हुई, उसका नाम सिद्धदशा। उसमें जीव का द्रव्यपना रहा, गुणपना रहा और पर्यायपना रहा। तीनों रहे हैं।

सिद्ध में पर्यायपना रहता होगा या नहीं ? पर्याय भी उसका पर्यायधर्म—स्वभाव है। वे कहते थे न कि तुम्हारे पर्याय तो अभी सिद्ध में भी लगी है ? हैं ? पीछे पड़ी है ?

बेखरे को खबर नहीं होती। भाषण करे बड़े-बड़े। दाढ़ी रखे, वह रखे। लाखोंपति लोग, दो, पाँच, दस लाख हों। बँगला हो दो-चार लाख का। और उसकी इज्जत बाहर में बड़ी कहलाये। भाषण द्वारा लौकिक कार्यकर्तारूप से यदि सामने पड़े तो। मैं तो पैसेवाला व्यक्ति, हमें कहाँ स्वार्थ है। देखो! भले मारे गप्पा। बहुत कहते थे। भोपाल में गृहस्थ है यह भगवानदास में के कि यह पर्याय तो कहे अभी लगी रही? अब जैन कहलाये। तारणस्वामी के भगत, उसको भी खबर नहीं होती। और भाषण करे यह लोग के ऐसे करे और लोग तो, ओहोहो!

कल भाई ने कहा नहीं था? कि यह सब भ्रमणा है। भ्रमणा का भाषण करने आया हूँ यहाँ। वहाँ। वह तो यहाँ की हाँ वह हाँ भ्रमणा हो, उसकी हाँ वह हाँ की भ्रमणा नहीं। वह कहीं माने भ्रमणा? वह तो कहे, हम ठीक करते हैं। हमारी योग्यता प्रमाण यह प्रवृत्ति होती ही है, ऐसा। परन्तु प्रवृत्ति की व्याख्या क्या? क्या इस शरीर की पर्याय की प्रवृत्ति तुम्हारे करनी है? कर सकते हो?

मुमुक्षु : बोलने की तो की जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलने की तो जड़ की पर्याय है। वह प्रवृत्ति तुम्हारे से है? तुम्हारे अस्तित्व में से उस भाषा की पर्याय का अस्तित्व उठता है? तुम्हारे प्रवृत्ति में इतना विकल्प हो कि उसका ऐसा हो और उसका ऐसा, वह शुभ। शुभराग है, वह तो दुःख है।

मुमुक्षु : सब तालियों से सम्मान करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्मान करते हैं सब ऐसे हों। लड़का विवाह करके आता है तो सम्मान करते हैं या नहीं? ...में डाले। वह कहते हैं न, समझे न? हाँ, वह सफेद कपड़ा और ऐसा सब कुछ बताते हैं। वे आते हैं उसको न। हैं? दादू कहे, क्या कहा? हाँ, 'दादू दुनिया बावरी खोटा करे गल। आ गाड़े बेसाड़ी ने हेड लाव्या ने जाणे जीत्या टोडरमल्ल।' स्त्री आवे और उसमें कुछ रूपवान हो और उसमें दो, पाँच लाख लेकर आयी हो। क्या कहलाता है? दहेज। आहाहा! धूल भी नहीं, सुन न! श्मशान का दहेज है तेरे।

अरे भगवान! तेरी जाति में तू है, तेरे खजाने में कमी नहीं, वह तो अनन्त-

आनन्द का नाथ है। उसकी जिसे खबर नहीं, वह बाहर में यह लेकर आया तो मानो, आहाहा! मानो अब तो टोडरमल्ल जीते मानो। जीते टोडरमल्ल। 'गाड़े बेसाड़ी ने हेड लाव्या।' अब हो गया। दो के चार पैर हुए तो पशु हुआ। पहले दो पैर थे। दो पैरवाला था। स्त्री हुई तो चार पैरवाला हुआ। पशु हुआ। उसमें लड़का हो तो छह पैरवाला हुआ। छह पैर वाला कौन कहा? भँवरा। भँवरा को छह पैर होते हैं, भाई! हैं? वर्णीजी के उसमें डाला है। हाँ छह। और फिर दूसरा लड़का हुआ तो दो लड़के हुए तो लड़के को विवाह करे, वहाँ आठ पैर हुए। मकड़ी को आठ पैर होते हैं। ऐ भीखाभाई!

यह वर्णीजी ने डाला है, उन्हें अर्थ किया है। समयसार के अर्थ। दो पैर, चार पैर, छह पैर और आठ पैर। हो गया अब मकड़ी, फँस गया, आठ हुए इसलिए। अब लड़की का ऐसा करना और बड़ी हुई है न, उसके प्रमाण में अपने कुल की इज्जत प्रमाण वर खोजना चाहिए। साधारण नहीं होता। समझ में आया न, अपनी कन्या बड़ी। अपने पाँच, पच्चीस लाख के, पचास लाख के आसामी। कोई पढ़ा हुआ, गुना हुआ विलायत से आया हो न, वह बड़ी उम्र का हो, क्योंकि पढ़कर आया हो तो पच्चीस-तीस वर्ष तो हो न? ऐसा खोजे। फिर खोजकर हैरान-हैरान हो। कितने मक्खन चुपड़े, तब वह मुश्किल से अभी हाँ करे।

मुमुक्षु : यह तो बहुत सीख लानी पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : अररर! इस दुःख के समुद्र में रचे-पचे हैं और मानते हैं कि हम सुखी हैं। पाटनीजी! तुम्हारे बड़े इज्जतवाले और बहुत लम्बे, खोजना पड़े ठीक सा। हाँ, बढ़िया धर हो, बढ़िया वर हो, साधारण निर्माल्य वर न हो और साधारण निर्बल घर हो तो (ऐसा कहे) तुम्हें कन्या देना भी नहीं आया। इतना भी नहीं आता तुम्हारे घर प्रमाण? अरे घर क्या कहलाये, सुन न! आहाहा! 'गाड़े बेसाड़ी ने हेड लाव्या अने अणे जाणे जीत्या टोडरमल्ल।' चार पैर हुए और उसके निभाने की ममता और भ्रमणा का पार नहीं होता। भगवान! भूल गया अपनी जाति को।

मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरा क्या स्वरूप है, श्रीमद् ने कहा है न भाई! छोटी उम्र में। सोलह वर्ष में। बहु पुण्य पुंज प्रसंग से मैं (कहा है) मैं कौन हूँ आया

कहाँ से और मेरा रूप क्या ? मैं कौन हूँ—कि आत्मा । कहीं से आया तो है वह होगा कहाँ से ? है । वास्तविक स्वरूप क्या है ? वास्तविक स्वरूप तो ज्ञान और आनन्द है । किसके सम्बन्ध में दुःख है रखूँ या परिहार करूँ, इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिए, तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये । आहाहा ! सोलह वर्ष में कहते हैं । आत्मज्ञान सिद्धान्त तत्त्व । आत्मा के ज्ञान के सिद्धान्त तत्त्व अनुभव किये । ओहोहो !

भगवान आत्मा तो सच्चिदानन्द आनन्द शुद्ध पवित्र है न । विकार-विकृतभाव वह दुःखरूप, पर, मैल और आकुलता है । ऐसे सिद्धान्त के तत्त्व जो वस्तु है, ऐसा निर्णय होने पर, स्वभाव सन्मुख का आश्रय होता है और विभाव का आदर टलता है, यह तब सत् के स्वभाव का स्वीकार हुआ कहने में आता है । समझ में आया ? ऐसे स्वभाव के स्वीकारवन्त को पूर्ण प्राप्त दशा हो, तब वहाँ जीवपना रहता है या नहीं ? यह यहाँ प्रश्न है । द्रव्य, द्रव्यरूप से शाश्वत् है । यदि द्रव्य द्रव्यरूप से शाश्वत् है तो जीव भी सिद्ध में शाश्वत् है । द्रव्यपना सिद्ध में भी है । समझ में आया ? जैसे संसार में भी जीव द्रव्यरूप से तो है न कायम ? उसी प्रकार सिद्ध में भी द्रव्य वस्तुरूप से तो शाश्वत् है । समझ में आया ?

दूसरा बोल । नित्य द्रव्य में पर्याय का प्रति समय नाश होता है, ... देखो ! क्या कहते हैं यह । कि क्षण-क्षण में अवस्था बदलती है । पृथक् दिखती है न । नित्य वस्तु होने पर भी, उसकी दशा में अवस्था बदला करती है । तो बदलनापना यदि न हो तो जीवपना नहीं रहता । इसलिए सिद्ध में भी बदलनापना रहता है । द्रव्यरूप से जीव शाश्वत् है सिद्ध में और पर्यायरूप से अवस्था बदलती है । आनन्द का अनुभव समय का, वह दूसरे समय नहीं रहता । आहाहा ! संसारदशा का नाश और परमात्मदशा की उत्पत्ति, ऐसी पर्याय उपजती है और पहली पर्याय जाती है । ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है । ऐसा जो स्वरूप है तो सिद्ध में भी इस जीव का ऐसा जीवपना है । द्रव्य से नित्य है और पर्याय से अनित्य क्षण-क्षण में बदलता है, ऐसा वहाँ घटित होता है । जीव हो, वहाँ ऐसा होता है । अरे ! पर बदले या घटे, उसकी यहाँ बात लेना नहीं । वस्तु स्वयं ध्रुव है, तथापि उसकी दशा में पलटा—पलटा, बदलना, हुआ ही करता है । बदलना न हो, तब

तो कार्य शुद्ध न हो और अशुद्ध टले नहीं। समझ में आया ?

तो कहते हैं, **नित्य द्रव्य में...** नित्य द्रव्य में, वापस भाषा ऐसी है। हाँ, **पर्यायों का...** अवस्था का, **प्रति समय...** प्रत्येक समय में जब विचार बदलते हैं, तो छोटे-छोटे काल में ही विचार बदलते हैं। और विचार बदलते हैं, इसलिए पहले समय की विचारधारा गयी, दूसरे समय की विचारधारा हुई। ऐसा ही द्रव्य का पर्यायस्वभाव है। ऐसा स्वभाव सिद्ध में भी है। पर्याय वहाँ भी पलटती है, ऐसा कहते हैं। सिद्धपना है, वह तो पर्याय है। यह कहीं गुण नहीं है। गुण तो त्रिकाली है। संसार भी गुण नहीं है। अवगुण की पर्याय विकृतदशा है। उस दशा का व्यय होकर निर्मलदशा की उत्पत्ति होती है। ऐसा ही द्रव्य का स्वभाव है। यदि ऐसा स्वभाव है तो सिद्ध में भी वह घटित होता है, ऐसा कहते हैं। जीव का जीवपना ऐसा है, वह सिद्ध में भी वहाँ घटित होता है। ऐसा न हो तो जीवपना ही सिद्ध नहीं होता। समझ में आया ? भारी कठिन काम !

तीसरा बोल। **द्रव्य सर्वदा अभूत पर्यायरूप से भव्य (-होनेयोग्य, परिणमित होनेयोग्य) है,...** भविष्य की पर्यायरूप, होनेयोग्यरूप से वह परिणमता है। कहो, बराबर है ? जीव आनन्द आदि की नयी-नयी पर्यायरूप परिणमने के योग्य है, ऐसा सिद्ध में भी है। क्यों है ? कैसे ? था कुछ ? समझ में आया ? क्या कहा यहा ? **सर्वदा अभूत...** पर्याय से, वस्तु वस्तुरूप से रही है, सर्वदा नहीं हुई—ऐसी पर्यायरूप से परिणमती है। भूतकाल की पर्याय हो गयी, उसरूप परिणमती है, होगी नहीं। भविष्यरूप से हुआ ही करती है, ऐसा ही उसका स्वभाव है। क्या कहा ?

द्रव्य सर्वदा अभूत... अर्थात् नहीं हुई नयी-नयी क्योंकि पर्याय बदलती है। वस्तु-द्रव्य नित्य है। अवस्था बदलती है। बदलती है तो नहीं परिणमित दशारूप परिणमती है। कहाँ तक ? अनन्त काल तक। सर्वदा शब्द है न ? भविष्य में अब सिद्ध की पर्याय परिणमती रुक गयी। अन्तिम पर्याय सिद्ध की आ गयी—ऐसा होगा या नहीं ? अन्तिम अर्थात् क्या ? वस्तु है और वस्तु का बदलना है। वह बदलना और द्रव्यपना सर्वदा रहता है। तो सिद्ध में भी वह निर्मल हुई पर्याय नयी-नयी परिणमते परिणमते सदा रहा करती है। यहाँ संसार में भी पर्याय का अनुभव नया-नया होते टिकता है।

नया-नया विकार का अनुभव है। वहाँ निर्विकारी पर्याय का नया-नया अनुभव होते भविष्य में नहीं हुई (पर्याय)पने परिणमता है। समझ में आया या नहीं इसमें? यह तो न्याय से तो बात आती है, भाई! परन्तु अब क्या हो? जिसे जिस पन्थ में गया नहीं, उसे वह लगे हाव जैसा लगे, हाव जैसा। यह वह क्या है? हैं? आहाहा!

देखो न! आचार्यों ने काम किया है न। आहाहा! गजब काम किया है, ३८ गाथा में। भाई! आत्मा की संसारदशा का वर्णन तो ३६ (गाथा) में किया। वह स्वयं विकार के परिणाम के कारणपने परिणमता हुआ कार्यरूप से गति को अपने में उपजाता है। इस प्रकार संसार में सदा ही परिणमन विकार का, दुःख का हुआ करता है। तब अब सिद्ध हुआ उसमें? सिद्ध हुआ उसमें भी परिणमन तो सदा ही है। द्रव्य सदा है, परिणमन सदा है। वह परिणमन भविष्य का नहीं हुआ, वह नया-नया परिणम ही करता है। आहाहा!

चौंसठ पहरी पर्याय छोटी पीपर में से प्रगट हुई। परन्तु वह वास्तव में ऐसी की ऐसी दिखती है परन्तु नयी-नयी होती है। देखो! यह शरीर। देखो! यह अवस्था दिखती है। ऐसी की ऐसी लगती है। ऐसी की ऐसी नहीं है। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय में यह पर्याय नयी-नयी हुआ करती है और पुरानी जाती है। परन्तु सदृश जैसा लगने से ऐसी की ऐसी है, ऐसा लगा करता है। और ऐसी यदि न हो तो उसकी स्थूलता जो कठिन है, वह नरम पड़ गयी, हरी हुई। वह पर्याय क्षण-क्षण में बदलती न हो तो हरी हुई कहाँ से? और छोटे में छोटे काल में बदलना न हो तो दो समय में बदले, इसका अर्थ क्या? जिसका बदलने का स्वभाव है, वह तो एक समय में बदलता है। परन्तु इसे सूक्ष्मता पकड़ में नहीं आती, इसलिए ऐसा लगता है कि यह ऐसी की ऐसी अँगुली है। (परन्तु) ऐसा नहीं है। अन्दर जो परमाणु है, उन्हें परमाणु में गुण हो, वह नित्य है, परन्तु यह अवस्था है वह तो क्षण-क्षण में नयी-नयी हुआ करती है। यह ऐसा है, ऐसी हुई, ऐसी हुई, यह हुई, वह पर्याय नयी-नयी हुआ करती है। आहाहा! समझ में आया? वैसे तो समान और सरीखी लगती है। देखो! इतनी अँगुली ऐसी कितने वर्ष से ऐसी की ऐसी। यह वेढो और यह वेढो और यह न! वेढो ऐसा का ऐसा लगता है। देखो! चिकना यह कैसा वेढो चिकना न लगे ऐसा। आंको सही न आंको। ऐसा का ऐसा लगे। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में उसमें पलटा होता है। परन्तु स्थूल दृष्टिवाले

सदृशता को देखकर वह की वह दशा है, ऐसा मानते हैं। समझ में आया ?

इसी प्रकार सिद्ध में भी जब द्रव्य से सिद्ध नित्य है, पर्याय से बदलते हैं। तो वह पर्याय नयी-नयी आनन्दरूप से नयी चिदानन्द की पर्यायरूप हुआ करती है, ऐसा कहते हैं। होनेयोग्य, देखो, **द्रव्य सर्वदा अभूत...** अर्थात् नहीं हुई **पर्यायरूप से भव्य (होनेयोग्य, परिणमित होनेयोग्य) है,...** तो सिद्ध में भी आनन्द और केवलज्ञान की पर्याय नयी-नयी होनेयोग्य हुआ करती है। आहाहा! भारी कठिन काम! अन्तर में बैठना! यह तो सिर है, यह तो हड्डियाँ हैं, यह तो कहाँ, यह तो जड़ है। यह चैतन्यबिम्ब जो ज्ञान का पिण्ड है, उसमें यह बात बैठना चाहिए। ज्ञान में ज्ञान होना चाहिए। यह कहीं ज्ञान नहीं। यह तो सिर जड़ है यह।

जाननेवाला गया पश्चात् इसे कहते हैं कि तुझे इसका क्या करना ? कौन सुनता था ? जाननेवाला नहीं होता। वह तो गया। सिर पड़ा रहे। ऐसा, लो ! इसका क्या करना ? यह दस हजार रुपये तुमने पुत्री के नाम से लिखे हैं और मुझे अभी देना या ब्याज से देना, कितने वर्ष में देना ? जाननेवाला नहीं होता। सिर साथ में पछाड़े और बात करे तो कौन सुने वहाँ ? वह तो जड़ है। वह जाननेवाला ज्ञानस्वरूपी प्रभु, जिसमें ज्ञान में भान होता था वह तो गया। आहाहा ! हैं ? वह इस शरीररूप नहीं था, शरीर में नहीं था, शरीर के अस्तित्व के कारण नहीं था। वह तो अपने अस्तित्व के कारण था। समझ में आया ?

अरे ! ऐसी कहे धर्मकथा ! वह तो कहे कि दया पालो, व्रत पालो, अपवास करना, प्रौषध करना, दो, चार, पाँच पुस्तकें बना देना। पैसा खर्च करना, तो समझ में तो आये उल्टा ! हैं ? कर सकता नहीं और कर सकता हूँ, ऐसा माने। उल्टा है। **द्रव्य सर्वदा....** सर्वदा अर्थात् जहाँ तक द्रव्य स्वयं रहे, वहाँ सदा उसमें चिदानन्द की परिणति निर्मलानन्द हुआ ही करती है। भविष्य की पर्याय हुआ ही करती है। ऐसा जीव का स्वभाव है तो जीव का स्वभाव सिद्ध में भी ऐसा रहता है, ऐसा कहते हैं। जीव का जीवपना सिद्ध करना है न ?

‘जीवो’, यहाँ से शुरु किया है न २७वीं गाथा। फिर चेतयिता के बाद लेंगे। चेतयिता। उसके पश्चात् ही आता है। बस २८वीं गाथा में दूसरा बोल आता है। यहाँ

२७ में जीव का जीवपना सिद्ध करना है। समझ में आया? भाई! यह तो आत्मा की भागवत कथा है। यह कथा सुनने में भी जरा इसे बहुत योग्यता और जरा एकाग्रता चाहिए। ऐसी बात है। अनन्त काल की उसकी चीज़ क्या है, ऐसा इसने सुना नहीं। शास्त्र तो ऐसा कहते हैं। सुना नहीं, कहते हैं। तेरी जाति में उल्टा-सुलटापना क्या है और स्वभाव का कायमपना क्या है, वह वास्तविकरूप से तूने सुना नहीं। सुना हो तो जगे बिना रहे नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

चौथा बोल। द्रव्य सर्वदा भूत पर्यायरूप से अभाव्य... वस्तु का ऐसा स्वभाव है कि गयी अवस्था गयी, गयी अवस्था गयी, अब उसरूप से, अब होगा नहीं। समझ में आया? वर्तमान से लेकर गये काल में जितनी अवस्थायें हुईं, उन अवस्थारूप अब नहीं होगा। वह तो गयी। कहो, समझ में आया? द्रव्य सर्वदा भूत... अर्थात् भूतकाल की पर्यायरूप से अभाव्य (-न होनेयोग्य) है;... तो सिद्ध में भी ऐसा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सिद्ध में भी जो पर्याय हो गयी, उसरूप अब होगी नहीं। नयी-नयी होगी। हुई, उसरूप नहीं होगी। हो गयी उसरूप नहीं होगी। नहीं हुई, उसरूप होगी। अरे! ऐसी वस्तु क्या है! अस्तित्व सिद्ध करने का न्याय रखा है पूरा। चार बोल हुए।

पाँचवाँ बोल। द्रव्य अन्य द्रव्यों से सदा शून्य है,... जो कोई तत्त्व हो, वह पर से अभावस्वरूप होता है। शून्य अर्थात् पर से अभावस्वरूप न हो तो स्वयं और पर दोनों एक हो जाते हैं। द्रव्य अन्य द्रव्यों से... भगवान आत्मा या कोई भी परमाणु अन्य द्रव्यों से... अर्थात् अपने तत्त्व, अन्य तत्त्व से शून्य है.... खाली है। यह अँगुली है, वह इस अँगुली से खाली है। शून्य है। यह अँगुली इस अँगुलीरूप परिपूर्ण है और इस अँगुली में इस अँगुली का शून्यपना है। खाली है। यह अँगुली इसमें है नहीं।

इसी प्रकार एक द्रव्य में द्रव्यपने के अपने अस्तित्वपने से शून्य नहीं, अशून्य है। पूर्ण है। परद्रव्य से शून्य है। ऐसा द्रव्य का स्वभाव है तो सिद्ध में भी ऐसा रहता है, ऐसा कहते हैं। जीव का जीवपना क्या—परन्तु सिद्ध करने की (पद्धति)! आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? वस्तु अन्य द्रव्यों से अर्थात् अन्य वस्तु से तो सदा शून्य है। भगवान आत्मा कर्म, शरीर से तो खाली है आत्मा। खाली है या भरा हुआ है? यह

शरीर, वाणीरूप जो शरीर शरीररूप रहा है, उस शरीर से आत्मा खाली है। शरीर आत्मा में नहीं। शरीर का शून्यपना आत्मा में है। शून्यपना न हो तो स्व और पर दोनों एक हो जायें। न्याय समझ में आता है? पर का स्वद्रव्य में शून्यपना अभावपना न हो तो स्व और पर दो भावरूप से एक हो जाये। ऐसा हो नहीं सकता। समझ में आया इसमें? आहाहा!

सदा शून्य हो! अनादि-अनन्त स्वद्रव्य परद्रव्य से शून्य है। अब परद्रव्य से शून्य है, वह परद्रव्य का क्या करे? इस वाणी का और इस हिलने का और इस बोलने का (क्या करें)? सवेरे से उठे तो कितना ध्यान रखता है। देखो न नहाता है, फिर माँग काढ़ता है, फिर काँच में ऐसे-ऐसे मुँह देखता है। नहीं, यह अभी बहुत करते हैं न, क्या कहलाता है? दर्पण में देखो! देखो ऐसा लो माँग में। फिर ऐसा करे। दो भाग करे माँग के। करते हैं न। इस ओर के ऐसे तथा इस ओर के ऐसे फिर तेल चुपड़े। न मिले वे बेचारे पानी चुपड़े। और वह तो टोपी ढाँककर रहती थी और इसलिए बहुत दिक्कत नहीं थी। अब तो उघाड़े सिर, इसलिए उड़ते हैं, एकदम हवा से उड़ते हैं। इसलिए इसे तेल-बेल चुपड़ना चाहिए। इसे उपाधि बढ़ गयी।

यहाँ कहते हैं, परन्तु उस परद्रव्य से शून्य है। आहाहा! स्वद्रव्य में परद्रव्य से खाली स्वद्रव्य है। परन्तु स्वयं से... पैसा वह परद्रव्य है और स्वद्रव्य में परद्रव्य की शून्यता है। आत्मा में पैसा नहीं है।

मुमुक्षु : नहीं साहब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे होंगे? आत्मा में कर्म नहीं, आत्मा में शरीर नहीं, आत्मा में पैसा नहीं, आत्मा में स्त्री, पुत्र कोई चीज़ आत्मा में नहीं। उनसे तो शून्य है। जब पर से शून्य है तो उस द्रव्य का टिकना बन सकता है तो सिद्ध भी परद्रव्य से शून्य है। जितने दूसरे सिद्ध हैं, उनसे भी एक सिद्ध शून्य है। आहाहा! भाषा तो देखो यह! सिद्धपने में जीवपना सिद्ध करते हैं। समझ में आया? अनन्त सिद्ध है न। तो दूसरे सिद्धों से एक द्रव्य शून्य है। आहाहा!

छठा बोल। द्रव्य स्वद्रव्य से सदा अशून्य है;... लो! यह द्रव्य-पदार्थ स्वयं से परिपूर्ण है। अशून्य अर्थात् शून्य नहीं। सम्पूर्ण है। समझ में आया? प्रत्येक द्रव्य, तब

ऐसा जब स्वरूप है तो सिद्ध में भी इस प्रकार से घटित होता है। इसलिए सिद्ध में ऐसा जीवपना है, उसे सिद्ध करते हैं। समझ में आया? द्रव्य अर्थात् वस्तु। स्वद्रव्य से अपने वस्तु से सदा भरपूर है। अशून्य है। अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भगवान भरपूर है। पर से खाली है। स्वभाव से शून्य नहीं। स्वभाव से अशून्य है अर्थात् परिपूर्ण है। आहाहा! तो सिद्धभगवान भी स्वभाव से परिपूर्ण है और पर सिद्ध से शून्य है। दो सिद्ध एक हो जाये, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अनन्त में अनन्त मिल गया, ऐसा लोग नहीं कहते? ज्योति में ज्योति मिल गयी। यह इनकार करते हैं। ऐसा नहीं है। तुझे भान नहीं है। परद्रव्य से तो जीव शून्य है। सिद्ध में भी परद्रव्य से तो शून्य है। अनन्त दूसरे आत्मायें और अनन्त सिद्ध, अनन्त परमात्मा, निगोद के जीव इत्यादि, उनसे एक सिद्ध शून्य है, खाली है, अभावरूप है। शून्य कहो या अभावरूप कहो। और अपने भाव से, द्रव्य से वे अशून्य है। अर्थात् खाली नहीं है। अपने भाव से भरपूर है। कहो, समझ में आया?

जब ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है तो सिद्ध में भी ऐसा ही घटित होता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। दो बोल सूक्ष्म हैं। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३८, गाथा-३७-३८, मगसिर कृष्ण-१४, मंगलवार, दिनांक -०६-०१-१९७०

पाँच अस्तिकाय का वर्णन है। भगवान ने केवलज्ञान में षट्द्रव्य का अस्तित्व और पाँच अस्तिकाय का अस्तित्व। काल है, वह अस्ति है परन्तु काय नहीं है; इसलिए दो प्रकार का वर्णन किया। अब इसमें जीव का स्वभाव जीवत्व क्या है, यह चलता है। कोई कहे कि भाई! यह मुक्ति हुई, संसार में तो विकार करता हुआ अपनी सत्ता पृथक् रखे। समझ में आया ?

विकार करे राग और द्वेष और मिथ्यात्व, इससे तो संसार में उसकी जीव की अस्ति दूसरे तत्त्व से भिन्न रहती है। परन्तु राग-द्वेष और अज्ञान टलने से पवित्रता जहाँ प्रगट हुई, पश्चात् तो दूसरे जीव वहाँ मुक्ति में हैं, उसे मिल जाये या पृथक् रहे ? भिन्न चौका हो, ऐसा कहते थे। भाईलालभाई थे न। बरवाला। पानाचन्दभाई के पिता। अब वहाँ भी सिद्ध में भी अलग चौका। संसार में तो अलग चबूतरा हो। पृथक् विकार करे न पृथक्। राग टला, अज्ञान टला और आत्मा वीतरागस्वरूप पूर्ण पवित्ररूप से प्राप्ति हुई। वह जीव फिर वहाँ जीव में मिल जाये न ? जीव का वहाँ अभाव हो जाये न, उसका नाम मुक्ति ? कहते हैं नहीं, नहीं—ऐसा नहीं है।

यहाँ, 'जीव का अभाव सो मुक्ति है' इस बात का खण्डन किया है। छह बोल चले हैं अपने। एक तो द्रव्य द्रव्यरूप से शाश्वत है, ... वस्तु है, वह वस्तुरूप से तो कायम रहती है। तो जीव सिद्ध का भी जीव है। तो जीवपना उसका द्रव्यरूप से कायम रहता है। वहाँ सिद्ध में भी कायम रहता है। द्रव्यपना कहीं जायेगा ?

नित्य द्रव्य में पर्याय का प्रति समय नाश होता है, ... और प्रत्येक पदार्थ में अवस्था बदलती है। वह बदलती है, ऐसा कार्य तो होता है। तो फिर सिद्ध में भी पर्याय की अवस्था ज्ञानादि की हुई बदलती है। ऐसा जीवपना वहाँ भी है। समझ में आया ? सिद्ध हुए, इसलिए उन्हें पर्याय बदलती नहीं और कूटस्थ हो जाते हैं, ऐसा है नहीं। क्योंकि द्रव्य ही ऐसा नहीं है। ऐसा वहाँ तो सिद्ध करते हैं। द्रव्य वस्तुरूप से नित्य है और पर्यायरूप से बदलनेरूप अनित्य है। तो ऐसा भाव सिद्धभगवान में भी द्रव्यरूप से नित्य है, पर्यायरूप से नाशवान है। ऐसा वहाँ भी है।

द्रव्य सर्वदा अभूत पर्यायरूप से भाव्य है,.... भाव्य कहा है न भाव्य। भाव्य अर्थात् होने के योग्य। वस्तु है, वह नयी-नयी भविष्य की पर्याय से होनेयोग्य होती है। वस्तुरूप से कायम रहकर वस्तु का स्वभाव भविष्य की अवस्थारूप से यहाँ सिद्ध की बात है। सहजानन्द स्वरूप चिदानन्द की आनन्द परिणति, वह अवस्था होने के योग्य सिद्ध में भी भविष्य की पर्याय होने के योग्य वह जीव है। क्योंकि जीव का स्वभाव ही ऐसा है। कहो, समझ में आया? उसका अस्तित्व सिद्ध करते हैं, अस्ति। वह इस प्रकार द्रव्य है, ऐसा।

द्रव्य सर्वदा भूत पर्यायरूप से अभाव्य (-न होनेयोग्य) है;... वस्तु जो है, वह भूतकाल की जो अवस्था हो गयी, उसरूप होनेयोग्य होगी? गयी, बीत गयी जो अवस्था, उसरूप होनेयोग्य वस्तु (होती नहीं)। अब सिद्धरूप से वह वस्तु है। तो सिद्ध को भी जो हो गयी भूतकाल की अवस्था, उसरूप हो, ऐसा नहीं होता। इस प्रकार जीव को जीवपना सिद्ध में भी घटित होता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

द्रव्य अन्य द्रव्यों से सदा शून्य है,.... कोई भी पदार्थ है, वह दूसरे पदार्थ से तो खाली है। ऐसा ही पदार्थ का स्वभाव है। बराबर है? वस्तु जो है, उस वस्तुरूप भले अशून्य अर्थात् भाव से भरपूर हो परन्तु परवस्तु से तो खाली है। वस्तु ही उसे कहते हैं कि जो परद्रव्य से, परवस्तु से खाली हो। खाली हो तो पर से भिन्न टिक सकती है। अपने भाव से भरपूर और पर के भाव से भी भरपूर हो तो पृथक् टिक नहीं सकती। न्याय समझ में आता है?

न्याय से सिद्ध किया है कि परमात्मा सिद्ध हों, वहाँ भी द्रव्यरूप से वस्तु है न वह? तो दूसरे सिद्ध उससे शून्य हैं। समझ में आया? एक सिद्ध में ज्योति में ज्योति मिल गयी। सिद्ध हुए तो ज्योति में ज्योति मिल गयी, ऐसा नहीं है। उसे वस्तु की खबर नहीं है। ऐसा भगवान कहते हैं। समझ में आया? बिना भान के अन्ध-अन्ध चले और माने कि हम कुछ जैनधर्म को कहते हैं। ऐसा नहीं चलता, यहाँ कहते हैं वीतरागमार्ग में, भाई! कहो, कन्हैयालालजी! बहुत से जैन कहते थे। हम वहाँ १५वें (संवत् १९९५) में थे तो एक जैन आये थे। कैसे कहलाते हैं वे भाई? मणियार। मणियार न? मणियार के पुत्र थे नहीं वे अन्ध। हाँ, वह अन्ध आये थे। वहाँ मन्दिर

बनाया है मन्दिरमार्गी का स्वयं ने। आवे, व्याख्यान में तो आवे। महाराज! ज्योति में ज्योति मिल जाये और सिद्ध परमात्मा हो जाये, फिर तो जीव मिल जाये पर में। लो, यह जैन! वाडा में पड़े। गायन गाये। कुछ तत्त्व की खबर नहीं होती।

आता है या नहीं एक में अनन्त और अनन्त में एक। नहीं आता? एक सिद्ध में अनन्त सिद्ध और अनन्त सिद्ध में एक सिद्ध, नहीं आता? परन्तु अर्थात् क्या? जहाँ आगे एक परमात्मा विराजते हैं सिद्ध होकर। उसी क्षेत्र में दूसरे अनन्त सिद्ध हैं। और जहाँ अनन्त सिद्ध हैं, उसी स्थान में एक-एक सिद्ध भिन्न-भिन्न हैं। प्रत्येक सत्ता भिन्न है। वह तो इसलिए यह सिद्ध करते हैं।

वास्तविक जीवास्तिकाय कहो या जीवद्रव्य कहो। यह इस प्रकार ही उसका स्वभाव है। जहाँ जाये वहाँ अपना अस्तित्व भिन्न रखता है। कहीं मिल जाता है किसी में, ऐसा नहीं है। कि भाई! परमात्मा सिद्ध हुए, मोक्ष गये इसलिए हो गया। फिर उन्हें भिन्न चोका क्या? पानाचन्दभाई नहीं? एक बार हम गये थे ८३ में बरवाळा। उन्हें जैन का वह (प्रेम) सही, परन्तु उन्हें वेदान्त का परिचय बहुत, भाईलालभाई को। वेदान्त का। और फक्कड़ व्यक्ति। आजीविका की चिन्ता-बिन्ता कुछ नहीं। जैसा होना हो, वैसा होगा... वेदान्त का परिचय बहुत इसलिए उस भक्तामर में आता है न, विभु शब्द आता है। भक्तामर में विभु, देखो! इसमें भी विभु तो कहा है? व्यापना। कहा, विभु का अर्थ ऐसा नहीं है।

विभु का अर्थ भगवान ज्ञानस्वरूप तीन काल—तीन लोक को जानते हैं। इस अपेक्षा से आत्मा को सर्व व्यापक और विभु कहा है। यह आत्मा पसर जाता है, सबमें मिल जाता है (ऐसा नहीं है)। अनन्त आत्मायें हैं, बहुत कहते हैं न यह गाँधी काल कर गये (देह परिवर्तन हो गया) तो ऐसा कहे अनन्त में मिल गये, भाई तो। अनन्त में मिल गये भाई, ऐसा वे कहते हैं। समाचारपत्र में आया था। अनन्त वस्तु जो है, कोई अनन्त परमात्मा की एक, उसमें मिल जाये भाई वह तो। मूढ़ है। क्या मिल जाये? सत्ता मिल जाती होगी? समझ में आया?

एक यह आत्मा दो से शून्य है, कर्म से यहाँ शून्य है। ऐसा ही आत्मा सिद्ध में भी

परद्रव्य से शून्य है। समझ में आया? कहो, यह पुत्र-पुत्रियाँ, पैसा, स्त्री, पुत्र से तो सहित होगा या नहीं जीव?

मुमुक्षु : इसमें तो इनकार करते हैं। अब आप कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक का एक प्रिय पुत्र हीराभाई जैसा हीरा।

मुमुक्षु : आप तो भिन्न शब्द प्रयोग करते हो, फिर मेरा दूसरा क्या बोलने का रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न कहते हो तुम। परन्तु यहाँ भिन्न है या नहीं? ऐसा कहते हैं। तेरा अस्तित्व पर से अभावरूप है या पर से भावरूप है? यदि तेरा अस्तित्व पर से भी भावरूप हो तो पर में एकमेक हो जाये तो तेरा भिन्नपना नहीं रहता। न्याय से-लॉजिक से बात को समझना पड़ेगा या नहीं इसे? हैं? आहाहा!

देखो न, भगवान आत्मा यहाँ भी वह परद्रव्य से तो खाली है। यहाँ भगवान वस्तु जो है, वह शरीर, कर्म, परपदार्थ सब जो अस्तिरूप से—मौजूदगीरूप से रहे हुए हैं, उनकी अस्ति का आत्मा की अस्ति में अभाव है। यदि आत्मा की अस्ति में उनका भी भाव हो तो दोनों एक हो जायें। तो भिन्न रहते नहीं। ऐसा स्वरूप उसका है नहीं। आहाहा! वास्तविक तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं होती और बिना भान के करो धर्म, करो धर्म। फिर उसका फल। धूल में भी धर्म नहीं होगा। सुन न? धर्म वह कोई अलौकिक चीज़ है। समझ में आया?

द्रव्य स्वद्रव्य से सदा अशून्य है;.... आहा! कोई भी चीज़ द्रव्य वस्तु है, वह परद्रव्य से शून्य है, खाली है। आहा! पर का कोई भी द्रव्य, गुण का अंश एक स्वद्रव्य में आता नहीं। भगवान आत्मा अपने अस्तिरूप से, सत्तारूप से है, उसमें परद्रव्य की सत्ता, उसकी एक समय की पर्याय का अंश भी उसमें नहीं आता। यह शरीर है। वह शरीररूप रहा है या शरीर से आत्मा की पर्यायरूप होकर पर्याय में रहा है। समझ में आया? यह शरीर है या वाणी है। यह शरीर और वाणी अपने अस्तित्व में रहे हैं या तेरी कोई एक समय की अवस्था में आकर रहे हुए हैं? समझ में आया?

परन्तु किसके आवें? तेरा द्रव्य जो है वस्तु और उसकी शक्ति जो ज्ञान, आनन्द,

उसमें तो त्रिकाली है, उसमें तो वह नहीं आता। परन्तु यह शरीर, वाणी, कर्म आदि परद्रव्य परमेश्वर हो, तीन लोक के नाथ तीर्थकर लो या सम्मेदशिखर और यह यात्रा और वह क्या कहलाता है शत्रुंजय और सिद्धगिरी, वह कहीं परद्रव्य का एक अंश आत्मा के वर्तमान अंश में आ जाता है? परन्तु किसकी आवे? वह भिन्न चीज़ है न? आहाहा! कहो, समझ में आया?

वस्तु ही ऐसी है कि परद्रव्य से तो वह खाली, शून्य अभावस्वभाव से वह विराजती वस्तु है। तो सिद्ध भी वस्तु है। परमात्मा णमो सिद्धाणं। वह सिद्ध भी वस्तु है। वह भी परद्रव्य से शून्य अनन्त सिद्ध के साथ में रही हुई है। जहाँ सिद्ध भगवान हैं, उनका पेट अर्थात् यह आत्मा है, उसके असंख्य प्रदेश के क्षेत्र में अनन्त निगोद के जीव हैं। पृथ्वी के असंख्य जीव, पानी के असंख्य जीव, अग्नि के असंख्य, वायु के असंख्य, निगोद के अनन्त। और सिद्ध के अनन्त।

जहाँ आत्मा एक सिद्ध भगवान यह विराजते हैं। पूर्ण शुद्ध आनन्द हुआ, इनके क्षेत्र में ऐसे अनन्त जीव निगोद आदि के हैं और सिद्ध के भी हैं। इसलिए वह वस्तु के अस्तित्व की सत्ता में तो उनकी शून्यता है। परद्रव्य की शून्यता है। परद्रव्य से खाली जीव है। कहो, बराबर होगा? आहा! तो सिद्ध भी ऐसे हैं। जबकि यहाँ भी ऐसा है। यहाँ असंख्यप्रदेशी भगवान आत्मा है। लो! उसमें अनन्त निगोद के जीव यहाँ भी हैं। पृथ्वी, पानीकाय, सूक्ष्म पाँच एकेन्द्रिय जीव पूरे लोक में भरे हुए हैं। और अनन्त परमाणु के पिण्ड स्कन्ध भी पूरे लोक में भरे हैं। यहाँ हैं। परन्तु यह वस्तु स्वयं जब परद्रव्य से शून्य है, तो सिद्ध भगवान भी परद्रव्य से शून्य है। आहाहा! समझ में आया?

अब उसमें मुझे कुछ मदद करो, कुछ सहारा दो और यह करो और वह करो, ऐसा नहीं है, कहते हैं। ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा! तू कहाँ भाव से भरा हुआ नहीं कि जिससे पर की आशा रखकर पर का अंश तुझे कोई दे और तू ले, ऐसा कोई स्वरूप है नहीं। समझ में आया?

द्रव्य स्वद्रव्य से सदा अशून्य है;... प्रत्येक वस्तु अपने भाव से तो भरपूर है। वस्तु है, वस्तु है तो वस्तु का भाव भी वस्तु में भरा ही है। वस्तु वस्तु के भाव से खाली नहीं होती, इस प्रकार सिद्ध भगवान भी स्वयं वस्तु हैं, तो उनके अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि

के गुण से वह अशून्य हैं। अशून्य है अर्थात् भरपूर है। आहाहा! समझ में आया? यह छह बोल तो अपने परसों कहे थे। परसों छह बोल आये थे। दो बोल रहे हैं। छह आये थे न?

सातवाँ बोल। **किसी जीवद्रव्य में अनन्त ज्ञान...** है। यह क्या कहते हैं? नीचे है। देखो!

जो सम्यक्त्व से च्युत होनेवाला न हो, ऐसे सम्यक्त्वी जीव को अनन्त ज्ञान है। अर्थात्? जो यह आत्मा राग से, विकल्प, पर से भिन्न है—ऐसा आत्मज्ञान—आत्मज्ञान, आत्मा का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान ऐसा का ऐसा सादि—अनन्त रहनेवाला है। चौथे गुणस्थान से सम्यग्ज्ञान हुआ। सम्यग्दर्शन हुआ तो मैं शुद्ध चिदानन्द पवित्र निर्मलानन्द हूँ, ऐसा जो ध्रुव स्वभाव की अन्तर ज्ञेय करके प्रतीति हुई, उसमें जो ज्ञान हुआ, वह आत्मा का ज्ञान हुआ। वह ज्ञान ज्ञानरूप से कायम रहता है। इस अपेक्षा से ज्ञान अनन्त है, ऐसा कहा जाता है।

किसी को अनन्त ज्ञान अर्थात् समकृति जीव को जो ज्ञान सम्यक् प्रगट हुआ है, उसका नाश होनेवाला नहीं है, इसलिए वह ज्ञान अनन्त; अनन्त अर्थात् ऐसा का ऐसा, अन्त बिना का, नाश बिना का है। बराबर है? तो सिद्ध को भी केवलज्ञान आदि प्रगट हुए हैं, वे अनन्त हैं। नाश होनेवाले नहीं हैं। आहाहा! लो! एक ओर कहे नाशवान है, दूसरा पर्याय में कहा न। यहाँ कहे नाशवान नहीं। किस अपेक्षा से? कि जो सम्यग्ज्ञान हुआ, ऐसा का ऐसा चालू रहनेवाला है, इस अपेक्षा से अनन्त है। अनन्त अर्थात् अन्त नहीं उसका पर्याय में। तो सिद्धभगवान में भी केवलज्ञान, केवलदर्शन। जिस संसारदशा का नाश होकर निर्मलदशा शक्तिरूप से थी, वह व्यक्तरूप हुई, वह ऐसी की ऐसी चालू रहेगी। समझ में आया?

यहाँ तो जीवपना हो तो ऐसा घटित होता है। तो ऐसा जीव सिद्ध में भी है। **किसी में सान्त ज्ञान है...** सम्यग्ज्ञान हुआ, तथापि स्वरूप को भूल जाये तो उस ज्ञान का अन्त आ जाता है। समझ में आया? आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु है, सच्चिदानन्दस्वरूप सिद्धस्वरूप आत्मा है, ऐसा जो सम्यग्दर्शन हुआ और सम्यग्ज्ञान हुआ, और वापस भूल जाये। नहीं, नहीं, मैं तो रागवाला हूँ, एक पर्याय के अंशवाला हूँ—ऐसी मान्यता होने पर सम्यग्ज्ञान

से नाश हो जाता है। समझ में आया ? सिद्ध में ऐसा नहीं है। समझ में आया ? सिद्ध को जो ज्ञान प्रगट हुआ, उसका नाश हो, ऐसा नहीं है। यहाँ तो सिद्ध जीवपने की ऐसी स्थिति है, ऐसा जीवपना वहाँ इस प्रकार से है। जो प्रगट हुआ ज्ञान, उसका नाश नहीं परन्तु प्रगट हुआ उसका नाश हो, ऐसा सिद्ध को नहीं है। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान हुआ और फिर नाश हो जाये। सिद्ध को ऐसा है नहीं। क्योंकि जीव की यह स्थिति की ऐसी ही मर्यादा है, तो सिद्ध में भी वह ज्ञान अनन्त, अनन्त आता है न, अनन्त समाधि सुख में।

अनन्त-अनन्त समाधि सुख में। अनन्त दर्शन-ज्ञान अनन्त सहित जो, अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा। अनन्त समाधि आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा ! समाधान, शान्ति समाधिस्वरूप। जैसा उसका स्वरूप है, ऐसी प्रगट दशा हो गयी। अनन्त-अनन्त समाधि आनन्द सुख में, अनन्त दर्शन ज्ञानसहित। उस सिद्ध की दशा का कभी नाश नहीं होता। संसार में अल्प ज्ञान जब तक है, तब तक किसी को विपरीत बुद्धि होकर, उस ज्ञान का नाश होना सम्भव है। कहो, समझ में आया ?

किसी जीवद्रव्य में अनन्त अज्ञान... है। अभव्य जीव को आत्मा का ज्ञान कभी होनेवाला नहीं है। इसलिए अज्ञान अनन्त है। बराबर है ? अभव्य जीव को भगवान आत्मा स्वसंवेदन ज्ञान से पृथक् ज्ञात हो, ऐसा है, वह उसे नहीं जानता। इसलिए उस अभव्य को अज्ञान अनन्त है। अर्थात् कि अज्ञान का कभी नाश नहीं होता। यह सिद्ध में तो अज्ञान है नहीं। समझ में आया ?

और किसी में सान्त अज्ञान है... भव्य जीव को, अज्ञानी भव्य जीव को सान्त अज्ञान है। भव्य जीव है, योग्य है और फिर अज्ञान तो अनादि का है और आत्मा शुद्ध चैतन्य का भान नहीं। वह भी उस अज्ञान का अन्त आवे, ऐसा वह जीव है। समझ में आया ? यह अस्तित्व ऐसा है, ऐसा सिद्ध करते हैं। अभव्य को अज्ञान का अन्त नहीं है। परन्तु अज्ञानी भव्य जीव को अज्ञान का अन्त होने के योग्य है। समझ में आया ? ऐसा अज्ञान तो सिद्ध में नहीं। यह तो आठ बोल से द्रव्य को सिद्ध किया है।

किसी जीवद्रव्य में अनन्त अज्ञान और किसी में सान्त अज्ञान है-यह सब, अन्यथा घटित न होता हुआ,... इस प्रकार यदि न हो तो किसी प्रकार द्रव्य और जीवपने की सिद्धि अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। मोक्ष में जीव के सद्भाव को प्रगट करता है।

देखो। मोक्ष में भी जीव का जीवपना रहता है। अन्धकार अज्ञान गया, इसलिए दीपक में जैसे धुंआ बुझ गया, इसलिए दीपक भी साथ में बुझ गया, ऐसा होगा या नहीं? दीपक के धुंए का नाश करना हो तो क्या करना? दीपक बुझा डालो। तो धुंआ भी जायेगा। उसी प्रकार जीव में से अज्ञान निकालना हो तो उसका ज्ञान भी नाश कर डालना, ऐसा नहीं होता। सुन न! अनन्त-अनन्त ज्ञानस्वरूप से भगवान आत्मा है। उसका जो भान हुआ और अज्ञान का नाश हुआ। वह ज्ञान—सादि अनन्त उसमें रहता है। कहो, समझ में आया?

ऐसे जीव के अन्तर द्रव्य में का माहात्म्य इसे आता नहीं। आहाहा! उसकी समय की पर्याय का भी माहात्म्य नहीं, राग का माहात्म्य नहीं, परपदार्थ की अधिकता नहीं, विशेषता नहीं, एक समय की अवस्था की जहाँ अधिकता और विशेषता नहीं। ऐसा भगवान ध्रुवस्वरूपी प्रभु, उसे अधिकरूप से विशेषरूप से दृष्टि में लेना, यह उसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन है। वह उपादेय है। बाकी कोई दूसरी चीज़ उपादेय नहीं। आहा! कठिन बात! यह सब समझना, समझना, समझना। हैं? चैतन्य, वह तो समझण का पिण्ड है।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर हुए, तो क्या हुआ! वह ज्ञान की पर्याय की पूर्णता का पिण्ड हुआ, उसका नाम सर्वज्ञ। समझ में आया? अब वह तो यह वस्तु है, इस प्रकार से इसे समझण... समझण... समझण... समझण करनी पड़ेगी। क्योंकि वह समझण का पिण्ड तो है। इसके बिना उसकी कोई भी क्रिया सच्ची होगी नहीं। यह ज्ञानस्वरूपी भगवान चिदानन्द प्रभु अस्तिरूप से है, ऐसे पूर्ण अस्तित्व का जहाँ स्वीकार हो, तब उसे अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और धर्म होता है। तब उसे शान्ति और सुख होता है। वह शान्ति और सुख फिर सादि-अनन्त रहा करता है। समझ में आया?

द्रव्य जहाँ तक रहे, वहाँ तक उसे शान्ति और आनन्द रहे। पर्याय वहाँ तक रहे। कहो, समझ में आया? **यह सब, अन्यथा...** अर्थात् अन्य प्रकार से (अर्थात्) दूसरे प्रकार से। नीचे स्पष्टीकरण है। मोक्ष में जीव की अस्ति ही न रहती हो तो उक्त आठ भाव घटित ही नहीं होते। यदि मोक्ष में जीव का अभाव ही हो जाता हो तो प्रत्येक द्रव्य, द्रव्यरूप से शाश्वत् है, यह बात कैसे घटे? नीचे नोट है। प्रत्येक द्रव्य नित्य रहकर उसमें पर्याय का नाश हुआ करता है, यह बात कैसे घटित हो? कहो, समझ में आया? आहाहा! शान्ताबेन बोले थे। प्रभुभाई का जीव गया, तब शान्ताबेन (बोले)। ऐई!

अतुलभाई, कहाँ गये ? तुम्हारी माँ बोले थे। प्रभुभाई का जीव गया न। जा, तू तो नित्य है, जहाँ है... है... है... रहेगा। या नाश होनेवाला है ? भीखाभाई ! यहाँ से जा तो वहाँ तो रहेगा। जहाँ है, वहाँ तो तू रहेगा ही। यह कहीं जाये और नाश हो, ऐसा है आत्मा ? वह तो नित्य है। पर्याय बदलने पर भी वस्तु तो कायम रहेगी। जाये तो कहाँ जायेगा जीव अपने में और अपने में रहेगा जहाँ जायेगा वहाँ। आहाहा ! जहाँ जाये वहाँ कोई शरीररूप होगा ? यह शरीर छोड़कर यहाँ भी शरीररूप नहीं तो वहाँ जायेगा, वहाँ शरीररूप होगा ? कर्मरूप होगा ? स्त्री, पुत्र मिले, उसरूप होगा ?

एकेन्द्रिय को स्त्री, पुत्र नहीं है। शरीर और मात्र काया और श्वास और इन्द्रियाँ होती हैं। उसरूप वहाँ जीव होगा एकेन्द्रिय में ? जड़रूप होगा ? वह तो अपनी पर्यायरूप रहेगा। समझ में आया ? प्रत्येक द्रव्य नित्य रहकर उसमें पर्याय का नाश हुआ करता है। यह बात कैसे घटित हो ?

दूसरा बोल। अब प्रत्येक द्रव्य सर्वदा अनागत पर्याय से भाव्य, सर्वदा अतीत पर्याय से अभाव्य, सर्वदा पर से शून्य और सर्वदा स्व से अशून्य है। चार बोल इकट्ठे ले लिये। यह बात कैसे घटित हो ? कोई जीवद्रव्य में अनन्त ज्ञान है—यह बात कैसे घटित हो ? अनन्त ज्ञान नाश नहीं होता ऐसा। और किसी जीवद्रव्य में सान्त अज्ञान है—यह बात कैसे घटित हो ? अर्थात् जीवद्रव्य नित्य रहकर उसमें अज्ञान परिणाम का अन्त आता है—यह बात कैसे घटित हो ? इसलिए इन आठ भावों द्वारा मोक्ष में जीव की अस्ति सिद्ध होती है। वह २७वीं गाथा में 'जीवो' शब्द उठाया है, उसका यहाँ पूरा किया।

'जीवो', जीव कैसा है ? संसार में, सिद्ध में आदि, उसे सिद्ध किया। जीव का जीवत्व सिद्ध किया।

अब दूसरा बोल। 'चेदा'। २७वीं गाथा में है। देखो ! २७वीं गाथा है न ? 'जीवोति' २७वीं गाथा। यह जीवोति की व्याख्या की अभी तक यह सब। अब 'जीवोति हवई' ऐसा है न वहाँ। जीव है, वह है—ऐसा। अब 'जीवोति चेदा' है। अब यह बात सिद्ध करते हैं। भगवान आत्मा चेदा अर्थात् चेतयिता अर्थात् जाननेवाला-देखनेवाला है। देखनेवाला है। भगवान आत्मा चेतनेवाला है, उसका अस्तित्व चेतनारूप है। ऐसा कहते हैं। ३८ गाथा में कहते हैं। यह दूसरे बोल की शुरुआत करेंगे यहाँ।

गाथा - ३८

कम्माणं फलमेक्यो एक्यो कज्जं तु णाणमध एक्यो।
चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण॥३८॥

कर्मणां फलमेकः एकः कार्यं तु ज्ञानमथैकः।
चेतयति जीवराशिश्चेतकभावेन त्रिविधेन॥३८॥

चेतयितृत्वगुणव्याख्येयम् ।

एके हि चेतयितारः प्रकृष्टतरमोहमलीमसेन प्रकृष्टतरज्ञानावरणमुद्रितानुभावेन चेतकस्वभावेन प्रकृष्टतरवीर्यान्तरायावसादितकार्यकारणसामर्थ्याः सुखदुःखरूपं कर्मफलमेव प्राधान्येन चेतयन्ते। अन्ये तु प्रकृष्टतरमोहमलीमसेनापि प्रकृष्टज्ञानावरणमुद्रितानुभावेन चेतकस्वभावेन मनाग्वीर्यान्तरायक्षयोपशमासादितकार्यकारणसामर्थ्याः सुखदुःखरूपकर्मफलानु-भवनसंवलितमपि कार्यमेव प्राधान्येन चेतयन्ते । अन्यतरे तु प्रक्षालितसकलमोहकलङ्केन समुच्छिन्नकृत्स्नज्ञानावरणतयात्यन्तमुन्मुद्रितसमस्तानुभावेन चेतकस्वभावेन समस्तवीर्यान्तराय-क्षयासादितानन्तवीर्या अपि निर्जीर्णकर्मफलत्वादत्यन्तकृतकृत्यवाच्च स्वतोऽव्यतिरिक्त-स्वाभाविक सुखं ज्ञानमेव चेतयन्त इति ॥३८॥

कोई वेदे कर्म फल को, कोई वेदे करम को ।

कोई वेदे ज्ञान को निज त्रिविध चेतकभाव से ॥३८॥

अन्वयार्थः—[त्रिविधेन चेतकभावेन] त्रिविध चेतकभाव द्वारा [एकः जीवराशिः] एक जीवराशि [कर्मणां फलम्] कर्मों के फल को, [एकः तु] एक जीवराशि [कार्यं] कार्य को [अथ] और [एकः] एक जीवराशि [ज्ञानम्] ज्ञान को [चेतयति] चेतती (-वेदती) है।

टीका :- यह, ^१चेतयितृत्वगुण की व्याख्या है।

कोई चेतयिता अर्थात् आत्मा तो, जो अति प्रकृष्ट मोह से मलिन है और जिसका प्रभाव (शक्ति) अति प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुँद गया है, ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा सुख-

१. चेतयितृत्व=चेतयितापना; चेतनेवालापना; चेतकपना।

दुःखरूप 'कर्मफल' को ही प्रधानतः चेतते हैं, क्योंकि उनका अति प्रकृष्ट वीर्यान्तराय से कार्य करने का (-कर्मचेतनारूप परिणमित होने का) सामर्थ्य नष्ट हो गया है।

दूसरे चेतयिता अर्थात् आत्मा, जो अति प्रकृष्ट मोह से मलिन है और जिसका प्रभाव ^२ प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुँद गया है, ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा-भले ही सुख-दुःखरूप कर्मफल के अनुभव से मिश्रितरूप से-'कार्य' को ही प्रधानतः चेतते हैं, क्योंकि उन्होंने अल्प वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से ^३ कार्य करने का सामर्थ्य प्राप्त किया है।

और दूसरे चेतयिता अर्थात् आत्मा, जिसमें से सकल मोहकलंक धुल गया है तथा समस्त ज्ञानावरण के विनाश के कारण जिसका समस्त प्रभाव अत्यन्त विकसित हो गया है, ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा 'ज्ञान' को ही-कि जो ज्ञान अपने से ^४ अव्यतिरिक्त स्वाभाविक सुखवाला है उसी को-चेतते हैं, क्योंकि उन्होंने समस्त वीर्यान्तराय के क्षय से अनन्त वीर्य को प्राप्त किया है, इसलिए उनको (विकारी सुख-दुःखरूप) कर्मफल निर्जरित हो गया है और अत्यन्त ^५ कृतकृत्यपना हुआ है (अर्थात् कुछ भी करना लेशमात्र भी नहीं रहा है)॥३८॥

२. कर्मचेतनावाले जीव को ज्ञानावरण 'प्रकृष्ट' होता है और कर्मफलचेतनावाले को 'अति प्रकृष्ट' होता है।
३. कार्य=(जीव द्वारा) किया जाता हो वह; इच्छापूर्वक इष्टानिष्ट विकल्परूप कर्म। (जिन जीवों को वीर्य का किंचित् विकास हुआ है, उनको कर्मचेतनारूप से परिणमित सामर्थ्य प्रगट हुआ है, इसलिए वे मुख्यतः कर्मचेतनारूप से परिणमित होते हैं। वह कर्मचेतना कर्मफलचेतना से मिश्रित होती हैं।)
४. अव्यतिरिक्त=अभिन्न। (स्वाभाविक सुख ज्ञान से अभिन्न है, इसलिए ज्ञानचेतना स्वाभाविक सुख के संचेतन-अनुभवन-सहित ही होती है।)
५. कृतकृत्य=कृतकार्य। (परिपूर्ण ज्ञानवाले आत्मा अत्यन्त कृतकार्य हैं इसलिए, यद्यपि उन्हें अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है तथापि, उनका वीर्य कार्यचेतना को (कर्मचेतना को) नहीं रचता, (और विकारी सुख-दुःख विनष्ट हो गये हैं, इसलिए उनका वीर्य कर्मफल चेतना को भी नहीं रचता); ज्ञानचेतना को ही रचता है।)

गाथा - ३८ पर प्रवचन

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को।
चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण॥३८॥

नीचे हरिगीत

कोई वेदे कर्म फल को, कोई वेदे करम को।
कोई वेदे ज्ञान को निज त्रिविध चेतकभाव से ॥३८॥

इसकी टीका :- यह, चेतयितृत्वगुण की व्याख्या है। भगवान आत्मा में चेतयितृत्व चेतनापना-जाननापना ऐसे गुण की व्याख्या है। नीचे है। चेतयितृत्व=चेतयितपना चेतनापना, चेतनहारपना, चेतकपना। चेतक चेतकता हो। यह कोई भूत-बूत हो उसे भी चेतक-बेतक कहते हैं, नहीं? वह चेतक नहीं। यहाँ तो चेतनेवाला, उसे चेतक कहते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा चेतनेवाला है, ऐसा कहते हैं। पर का कुछ करनेवाला है, यह स्वरूप में-आत्मा में नहीं है। परन्तु अपने में चेतना तीन प्रकार से है, ऐसा वह है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा के अतिरिक्त एक रजकण को या दूसरे आत्मा को करे करे, कुछ करे, ऐसा उसमें नहीं है। यह कर्ता में आगे आयेगा। परन्तु यहाँ तो चेतनेवाला है, यह सिद्ध करना है। समझ में आया? यह चेतयितृत्वगुण की व्याख्या है। **कोई चेतयिता अर्थात् आत्मा तो,...** जाननेवाले आत्मा तीन प्रकार से चेतनेवाले हैं।

एक आत्मायें कितनेक ऐसे हैं कि जो **अति प्रकृष्ट मोह से मलिन है...** समझ में आया? एकेन्द्रिय जीव है न पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति जीव है, वह हो! वे जीव अति प्रबल मोह से मलिन हैं। स्वरूप के सावधान की कोई खबर नहीं। समझ में आया? भाषा देखो! **अति प्रकृष्ट मोह...** शब्द है। और जिसका प्रभाव (शक्ति) अति प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुँद गया है... दोनों अति प्रकृष्ट लिये हैं। एकेन्द्रिय जीव हैं। समझ में आया? पृथ्वी के जीव, पानी के जीव, अग्नि के जीव, वायु के, वनस्पति के। उन्हें

अति मलिन मोहभाव। परसन्मुख की तीव्र सावधानी है। और ज्ञान उनका ज्ञानावरणीय के निमित्त से स्वयं का ज्ञान वहाँ मुंद गया है। ऐसे जीव अति प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुँद गया है... देखो! भाषा ऐसी है। ऐई! क्या? हाँ,

मुमुक्षु : परपदार्थ से मुंद गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संक्षिप्त कहने के लिये निमित्त से कथन है।

इसकी ज्ञानपर्याय हीन हुई है। ओहोहो! एक पानी की बूँद में असंख्य जीव। कौन स्वीकार करे? एक बटाटा / आलू, कन्दमूल, मूली, गाजर, सूरण, काई देखो न यह काई। एक इतना टुकड़ा, उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर और एक शरीर में अनन्त सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे जीवे। वे जीव बेचारे ज्ञान से घात हुए हैं। ज्ञानावरणी से घात हो गये हैं। कि जिनका ज्ञानपना या जीवपना बतलाने का बाहर में कोई साधन रहा नहीं। आहा! उसे जीव स्वीकार करना, ऐसा बाहर साधन उसमें नहीं रहा। भगवान की आज्ञा से जाने। समझ में आया?

प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुँद गया है... परिणाम हीन हो गया है। ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा... ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा। मोह की तीव्रता और ज्ञानावरणी की उग्रता। उससे उनकी दशा घट गयी है। ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा सुख-दुःखरूप 'कर्मफल', को ही प्रधानतः चेतते हैं,... भाषा ऐसे देखो। टीका में ऐसा स्पष्ट लिया है, हों! वे कहते हैं न, इनकार करते हैं। ज्ञानचेतना सिद्ध को ही होती है। समझ में आया? ऐसा नहीं है। यहाँ तो मुख्यता का कथन है। समझ में आया?

एकेन्द्रिय को कर्मफल ही प्रधानरूप से चेतता है। मुख्यरूप से वह तो राग-द्वेष के परिणाम को भी वेदता है। वीर्य का विकास नहीं है। इससे कर्मचेतना मुख्यरूप से नहीं है। क्या कहा, समझ में आया? जो कार्य दूसरे को दिखाई दे, ऐसा कार्य उनमें नहीं है। मात्र दुःख भोगे, ऐसा दिखता है। एकेन्द्रिय जीव मुरझाते हैं। वह होता है, समझे न? ऐसे चेतक स्वभाव द्वारा सुख-दुःखरूप से... सुख कौन? दुनिया का सुख, हों! उसमें-कल्पना में। कल्पना का सुखी, हर्ष और कल्पना में दुःखी, ऐसी दशा के फल को एकेन्द्रिय जीव चेतता है, वेदता है।

पर को वेदता है और पर को चेतता है, ऐसा नहीं। कर्म को वेदता है, कर्म को चेतता है—ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसे एकेन्द्रिय में से बाहर आया और वहाँ का वहाँ वापस रच-पच गया। वहाँ ही, वहाँ ही। आहाहा! उसमें और कुछ पाँच, पचास लाख पैसे का ढेर दिखाई दे (वहाँ तो) उलझकर मोह में मर गया। आहाहा! अरे भगवान! तेरा चेतना पर का कहाँ है? वीर्य का विकास बाधक तो राग और द्वेष के कार्यरूप चेत, वह बराबर है। परन्तु पर के में चेत जा और पर तुझे चेतते, ऐसा कुछ है नहीं। समझ में आया?

एकेन्द्रिय जीव को ज्ञान का विकास भी बहुत हीन हो गया है। और पर में सावधानी का मोह भी उग्र हो गया है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! वे बेचारे दुःखी प्राणी हैं, दुःख को भोगते हैं। यह सुख-दुःख दोनों दुःख है। पानी के जीव एक बूँद में असंख्य, पृथ्वी के जीव एक टुकड़े में असंख्य, अग्नि के जीव एक तिनके में असंख्य, वायु के जीव इतने में असंख्य, वनस्पति में दो प्रकार—प्रत्येक वनस्पति के एक टुकड़े में असंख्य, निगोद और आलू में एक टुकड़े में अनन्त। तथापि भाव को भूलकर अविद्यमान को स्वीकार किया है। वह विद्यमान, अविद्यमान हो गया एकेन्द्रिय में। समझ में आया?

भगवान आत्मा महाप्रभु, अनन्त ज्ञान-दर्शन और आनन्द का धाम भगवान। ऐसी विद्यमान चीज़ सत्तावाली चीज़ को भूलकर, नहीं सत्ता में अल्पज्ञपना, रागपना, उसकी सत्ता का स्वीकार करके अपनी सत्ता को भूल गया। वह सब एकेन्द्रिय में सुख-दुःख की कर्मफल अर्थात् विकार के फल को वह भोगता है। समझ में आया? वहाँ शरीर को भोगता है या सर्दी, धूप को भोगता है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! एकेन्द्रिय के जीव शीतलता, धूप को भोगते हैं। आहाहा! आलू धगधगते तेल में डाले तो उसमें जो उसे दुःख होता है, वह शरीर का अनुभव नहीं वहाँ। उसे स्वयं को मेरापना शरीर मैं हूँ और यह सत्ता है वह मैं नहीं—ऐसी दृष्टि में वह अज्ञान और राग-द्वेष और दुःख को वेदता है। समझ में आया?

देखो! ऐसे हरितकाय पानी में हो तो ऐसे एकदम हरी दिखती है। ऐसा कैसे?

समझे न ? मानो मलकती है, ऐसा दिखता है। समझे ? आहाहा ! वर्षा आवे पन्द्रह दिन, महीना हो, वहाँ तो ऐसे मानो पृथ्वी ने हरी चुंदड़ी ओढ़ी है। और मानो करमाई गये वनस्पति के जीव। परन्तु वे दुःखी हैं। भाई ! तुझे खबर नहीं। पानी की अनुकूलता मिली इसलिए शरीर इस प्रकार जो दिखता है, वह तो शरीर की (क्रिया) दिखती है। आत्मा कहाँ उसमें ऐसा है ? समझ में आया ?

आत्मा तो अन्दर में राग-द्वेष और सुख-दुःख की कल्पना को वेदता है। उसके अस्तित्व में उसका वेदन है। शरीर की अनुकूलता और प्रतिकूलता का वेदन नहीं। आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : वनस्पति के जीवों को सुख होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख कल्पना का है या नहीं ? राग की मन्दता किसी समय होती है न ? समझ में आया ? मानता है अन्दर। राग मन्द होता है न उसे। शुभ-अशुभभाव हुआ ही करते हैं। सुख अर्थात् यह कल्पना का, हों ! आत्मा के सुख की यह बात कहाँ है ? आहाहा ! नित्य निगोद में रहा। उसे अकेले दुःख का वेदन है, कहते हैं। सुख-दुःख की कल्पना

यह शरीर की हीनता, कृशता, दुर्बलता, सरोगता का वेदन जीव को नहीं होता, ऐसा कहते हैं। यह तो जड़ की दशा है। उसकी दशा का उसे वेदन होता है। समझ में आया ? तो उसकी दशा में चेतयिता-चेतनेवाला राग और द्वेष के फल में चेत गया है। समझ में आया ?का फल है न यह। कर्मचेतना का फल अर्थात् कर्मफलचेतना ऐसा वह कर्म, हों ! राग-द्वेष के परिणाम, अज्ञान के परिणाम, वह कर्मफलचेतना। उसका फल, वह कर्मफलचेतना अर्थात् हर्ष-शोक का वेदन। एकेन्द्रिय जीव अनन्त यह अकेला सुख-दुःखरूप कर्मफल को ही प्रधानरूप से वेदते हैं। अर्थात् कि मुख्यरूप से। राग-द्वेष का कार्य भी वहाँ है। परन्तु वह कार्य है, वह बाहर देखने में नहीं आता, इसलिए उसे गौणरूप से गिनकर उसको प्रधानरूप से कर्म के फल, कर्म अर्थात् राग-द्वेष के भाव का फल, उसे भोगता है। यह राग-द्वेष करना, ऐसा उसे मुख्य नहीं है। वीर्य का विकास एकेन्द्रिय को नहीं है। कहाँ-कहाँ वीर्य घात हो गया, देखो न। ओहोहो !

देखो न, सिद्ध करते हैं, षट्द्रव्य को पंचास्तिकाय में। ऐसी अस्ति जीव की। बाहर जहाँ आया और वीर्य का किंचित् विकास हुआ और राग-द्वेष के कार्य में वह कर्मचेतना करे। व्यापार कर नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। धन्धा-पानी यह लोहे का और सोने का और चाँदी का। यह क्या कहलाते हैं सब? यह वकील की भाषा के, दलील के। यह आत्मा नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं। वीर्य का विकास हो तो यह राग-द्वेष और अज्ञान को करे। यह कर्मचेतनावाले जीव हैं। यह अज्ञानी एकेन्द्रिय बेचारे। कर्मफलचेतनावाले जीव हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

शरीर को अग्नि में जीते जी सुलगावे, तो उसका उसे वेदन नहीं, ऐसा कहते हैं। इसके अस्तित्व में उसका वह अस्तित्व ही नहीं, इसलिए उसका वेदन नहीं। समझ में आया? इसके अस्तित्व में तो यह मैं और मैं उसका, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसका फल जो सुख-दुःख की कल्पना, उसके अस्तित्व की दशा में वह वेदन में है। धर्म नहीं, इसलिए आत्मा का वेदन नहीं। और पर का वेदन तो अज्ञानी को भी होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

‘कर्मफल’ को ही.... ऐसा वापस। ही भले ही कहा। परन्तु प्रधानरूप से चेतता है। ऐसा कहा न मुख्यरूप से तो यह है। तब कोई कहे पाठ में तो ऐसा नहीं। समझ में आया? ‘प्रमाणं फलमेको ऐक्को कज्जंतु णाणमथ ऐक्को।’ ऐसा है। परन्तु कहने का आशय है, वह अन्दर से इस टीका में निकाला है। समझ में आया? संक्षिप्त भाषा में समझ में आये ऐसा है, इसलिए बहुत इसमें से निकालते हैं। सम्यग्दृष्टि को ज्ञानचेतना? ज्ञानचेतना केवल (ज्ञान) हो, उसे ही होती है। उसमें पाठ यह है सही न। अरे भाई! यहाँ तो पूरी बात की बात इन्होंने ली है। समझ में आया? **क्योंकि उनका अति प्रकृष्ट वीर्यान्तराय से कार्य करने का...** देखो! एकेन्द्रिय जीव के अनन्त आत्मा नित्य निगोद आदि इतरनिगोद, उन्हें वीर्य की जागृति, पुरुषार्थ की जागृति बहुत थोड़ी।

कार्य करने का (-कर्मचेतनारूप परिणमित होने का) सामर्थ्य नष्ट हो गया है। अर्थात् कि राग-द्वेष और मिथ्यात्व के कार्यरूप परिणमने का सामर्थ्य मुख्यरूप से नहीं है। अव्यक्तरूप से राग-द्वेष को करता है। यह मिथ्यात्व को करता है। वह कार्य वीर्य

की उग्रता नहीं, इसलिए उसे कर्मचेतना मुख्यरूप से गिनी नहीं है। आहाहा!

देखो! यह भगवान ने-परमेश्वर ने कहा हुआ जीवास्तिकाय का भाव कैसा है, वह यहाँ वर्णन करते हैं। एकेन्द्रिय में ऐसा भाव है, कहते हैं। आहाहा! बाहर की विसात इतनी मनुष्य को और ऐसी! शरीर ठीक हो, पैसा ठीक हो, निरोग हो, वहाँ अपने बस मजा है। अरे भगवान! तू क्या कहता है? भाई! तू मजा मानता है, वह पर के कारण है, पर में है या तेरी कल्पना से तेरे लिये माना है? अभी हमारे बादशाही है। ऐसा कहते हैं न कितने ही? पाँच, दस लाख की आमदनी हो। करोड़, दो करोड़ पैसे हों। ऐई! कहाँ गये? इसके काका आये हैं न? आयेंगे अब? कल आनेवाले हैं न? हैं? कब आनेवाले हैं? कल आनेवाले हैं। इसका भाई। हाय! हाय! यह कौन जाने, क्या होगा यह?

कहते हैं कि, भले उस वीर्य का उघाड़ हो तो वह मिथ्याभ्रान्ति को और राग-द्वेष को करे। इसके अतिरिक्त वह मर्यादा छोड़कर एक रजकण को बदले? घड़ी का धन्धा करे और ऐसा होगा? जादवजीभाई! पैसा-बैसा लेन-देन करे या नहीं? नहीं करे। यह तुम पहले करते थे, अब लड़के करते हैं। अब जयन्तीभाई (करते हैं) पश्चात् और यह होगा। इनकार करते हैं। यह नहीं होगा। ऐई! ठीक है। अभी इतना उत्साह है। आहाहा! ठीक है। लड़का भाग्यशाली है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भगवान यह कहकर ऐसा कहना चाहते हैं कि एकेन्द्रिय जीव भी हुआ तो वहाँ उसे वेदन है, उसकी मुख्यता है। उस वेदन की पर्याय में है वेदन। पर का नहीं और पर में नहीं। समझ में आया? उसके अस्तित्व में। ऐसे प्रतिकूलता का लक्ष्य करके द्वेष करे, अनुकूलता में राग करे। यह राग और द्वेष को वेदता है जीव। उस परवस्तु को नहीं। उस परवस्तु के कारण से वह वेदन है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! कौन कहते हैं, इसमें अनन्त जीव है। आहाहा! पूर्व में अनन्त माता-पिता किये। लड़के करे, वे मरकर अभी निगोद में पड़े हैं। समझ में आया?

यह प्रिय में प्रिय पुत्र थे। उनके बिना एक क्षण नहीं चले। यह उनके बिना अनन्त काल गया। और वह उसमें रहा, उसे खाने के लिये उत्साह से खाये। आहाहा!

समझ में आया? ऐसा एक लेख शास्त्र में-कथा में आता है कि उसका पिता मरकर कुत्ता हुआ। फिर उसके पिता का था श्राद्ध। बारह महीने का श्राद्ध। दूधपाक-दूधपाक बनाया हुआ और वह कुत्ता खाने आवे और यह मारे। ऐसे फिर से खाने आवे और यह मारे। फिर उसने एक साधु को पूछा कि यह है क्या? तो कहे, जिसका तूने श्राद्ध किया है, वह तेरा बाप यह है। उसे तो खबर नहीं। उसे ऐसा कि यह हम खाते तो मेरा खाऊँ, खाऊँ, ऐसा हो जाये। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति ज्ञानस्वभाव से भरपूर ऐसी अन्दर में अनुभवदृष्टि न हो, तब तक ऐसी दशा अनादि से वेद रहा है, ऐसा कहते हैं। तुझे अति प्रकृष्ट तीन प्रकार रखे। एकेन्द्रिय प्राणी को मोह की तीव्र मलिनता, पर में सावधानी, ज्ञान की हीनता अति प्रकृष्ट न्यून और वीर्य का उघाड़ कम। तीन बोल लिये। **प्रकृष्ट वीर्यान्तराय से कार्य करने का सामर्थ्य नष्ट हो गया है।** एकेन्द्रिय को नहीं बेचारे (को)।

अब दूसरे, अब कर्मचेतना। दूसरे चेतयिता अर्थात् आत्मा, जो अति प्रकृष्ट मोह से मलिन है... वे कर्मचेतनावाले हैं तो मोह से मलिन। अति विशेष मोह से मलिन हैं, ऐसा। अन्तर इतना है उसमें। जिसका प्रभाव प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुँद गया है... अति प्रकृष्ट, नहीं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव हैं, उसे जरा वीर्य का उघाड़ थोड़ा अन्दर पुरुषार्थ है। इसलिए उसे प्रभाव ज्ञानावरणीय से मुँद गया है, उग्र नहीं है। उसे ज्ञान का थोड़ा उघाड़ है। है न? दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। नारकी, मनुष्य, देव, पशु। ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा... अति प्रकृष्ट मोह से, आहाहा! पंचेन्द्रिय हुआ और लोग कहते हैं न, हम गरीब से पैसे हुए फिर। उसमें स्त्री और पुत्र और पाँच-पाँच, दस-दस पुत्र हों। दस पुत्र। पाँच-पाँच हाथ के लम्बे।

कहते हैं, उसे ज्ञानावरणीय से मुँद गयी हुई दशा है। किञ्चित् उघड़ी हुई है और मोह से तीव्र मलिन है। ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा—भले ही सुख-दुःखरूप कर्मफल के अनुभव से मिश्रितरूप से भी... देखो, कर्मचेतना राग-द्वेष और मिथ्यात्व को करती है, उसमें उसके फल का वेदन भी मुख्यरूप से नहीं परन्तु गौणरूप से अन्दर है। कर्मचेतना का तुझे मुख्यरूप से गिना है। फल का मिश्रितरूप से साथ का साथ है। भ्रमणा।

आहाहा! यह पुण्यपरिणाम करता हूँ, वह मुझे धर्म है। यह पाप करने के परिणाम मुझे सुखरूप है। ऐसी जो भ्रमणा, उसके फल को भ्रमणा के कार्य करने में उसके फल को अनुभव से मिश्रितरूप से भी—‘कार्य’ को ही प्रधानतः चेतते हैं,... भाषा ऐसी है। देखो! भाई!

यह कर्मचेतना मुख्यरूप से है। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय मुख्यरूप से है। स्पष्टीकरण कल आयेगा। राग करना, पुण्य करना, पाप करना, मिथ्यात्व करना, ऐसा भाव। उसके वीर्य के उघाड़ के कारण, विशेष ज्ञान का उघाड़ विशेष नहीं, परन्तु थोड़ा उघाड़ है, ऐसा कहते हैं। आवरण प्रकृष्ट है परन्तु अति आवरण नहीं, ऐसा। और परसन्मुख के मोह की मलिनता की उग्रता है। हैं? तो यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप। संकल्प-विकल्परूपी कार्य के फल के मिश्रितरूप से वह करता है। आहाहा! व्यापार, धन्धा कर सकता है, यह बात यहाँ कर्ता में नहीं कहते। जादवजीभाई! आहाहा!

इसकी अस्ति में हो, वह करे। पर की अस्ति को क्या करे और पर की अस्ति में यह कैसे जाये? कि उसे यह करे। भारी-भारी भ्रम भाई! **कार्य को ही....** कार्य अर्थात् कर्म, कर्म अर्थात् विकार। **भले ही सुख-दुःखरूप कर्मफल के अनुभव से मिश्रितरूप से... हो, ऐसा।** फल का उसमें साथ में हो परन्तु मुख्यरूप से कार्य को ही सेवन करता है, करता है, ऐसा। कार्य को ही प्रधानरूप से चेतता है। विकार में चेत जाता है, विकार में, विकार में, विकार में। आहाहा! अरे! चेतनेवाला चेतनेवाले में न चेतकर वह कार्य राग-द्वेष और पुण्य-पाप में चेतता है। मलिनता, मिथ्यात्वभाव है। कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वह यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के परिणाम भी राग है। उस राग के कार्य में चेत जाता है कि यह मेरा कार्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? परन्तु यह कार्य करे तो वह विकार और मिथ्याभ्रान्ति को करे कार्य में। इससे कहीं भगवान की पूजा, हाथ ऐसे-ऐसे करे या मन्दिर बना सके, ऐसा नहीं है। पुस्तक बनावे या यह बनावे, ऐसा कार्य करे जीव, वीर्य का विकास है इसलिए, कहीं ऐसा नहीं है। आहाहा! वीर्य-पुरुषार्थ की जागृति है, उघाड़ थोड़ा। और ज्ञान मुंद गया

है, हीन हुआ है। अति प्रकृष्ट नहीं, परन्तु मोह की तीव्रता, मलिनता है। परसन्मुख की सावधानी है, इसलिए वह मिथ्या राग और पुण्य-पाप और उनके फल के मिश्रितरूप से उस राग के पुण्य-पाप के मिथ्यात्व के कार्य को प्रधानरूप से करता है।

क्योंकि उन्होंने अल्प वीर्यान्तराय के क्षयोपश से कार्य करने का सामर्थ्य प्राप्त किया है। देखो। वह राग-द्वेष करने का कार्य, हों! यह परमाणु फरमाणु का काम नहीं... पुण्य-पाप और मिथ्यात्व के भाव को करने का वीर्य उघड़ा हुआ है। पर का काम करने के लिये बहुत वीर्य है और शरीर को ऐसे रख सकता है और ऐसा कर सकता है, ऐसा है नहीं। यह दो बातें की, तीसरी करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३९, गाथा-३८, मगसिर कृष्ण-अमावस्या, बुधवार, दिनांक -०७-०१-१९७०

यह पंचास्तिकाय और षट्द्रव्य का वर्णन है। उसमें वर्तमान जीवास्तिकाय में जीव क्या-क्या करे और क्या फल भोगता है, उसकी व्याख्या है। पहले दो बोल आ गये। ३८ गाथा। चेतयितृत्व, यह जाननेवाला, जाननेवाला आत्मा है। वह जाननेवाला आत्मा एकेन्द्रिय जीव में पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति में तो यह राग-द्वेष और हर्ष-शोक के फल को ही भोगता है। कर्मफलचेतना। वह जीव के चेतयिता, जानपना ज्ञान जो गुण है, उस गुण के ओर की दृष्टि एकेन्द्रिय में है नहीं। ऐसे जीव अपनी दशा में हर्ष-शोक की, सुख-दुःख की कल्पना में विकार के फल को अनुभव करते हैं-वेदते हैं। वे दुःखी हैं। यह सुख-दुःख दोनों दुःख है। समझ में आया ?

आत्मा आनन्दस्वरूप है। उसे भूलकर एकेन्द्रिय हुए हैं। समझ में आया ? उसे भूलकर पुण्य और पाप के भाव जो विकार है, उसके फलरूप से उन्हें अकेले दुःख का वेदन है। सुख-दुःख अर्थात् कल्पना का सुख ऐसे अनुकूलता इष्ट जरा हो, वहाँ ठीक है, ऐसा मूढ़ अव्यक्तरूप से भान बिना अनन्त काल एकेन्द्रिय में कर्मफल को अर्थात् विकार के अनुभव को भोगता है।

ऐसा कहकर यह कहा कि वे जीव नहीं आत्मा के अनुभव को भोगते, नहीं शरीर आदि संयोगी चीज़ को अनुभव करते। हैं ? वे तो पर हैं। शरीर का कोई भोग नहीं सकता। आहार-पानी आदि बाह्य चीज़ को कोई नहीं भोग सकता, वह तो पर-जड़ है। भोगता है, वह अपने में सुख-दुःख की कल्पना अव्यक्तरूप से मिथ्यात्वभावसहित बहिरात्मा, स्वभाव की सन्मुखता से भूलकर परसन्मुख का मोह का भाव जिसे उग्र हो गया है। ऐसे जीव हर्ष-शोक के दुःख को भोगते हैं। कहो, समझ में आया ?

कर्तापना है परन्तु वह गौणरूप से है। मुख्यरूप से कहा है न ? एकेन्द्रिय जीवों में मुख्यरूप से कर्मफल को भोगते हैं। गौणरूप से मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि के भाव को करते हैं। परन्तु वीर्य का विकास पुरुषार्थ का थोड़ा है, इसलिए उसे मुख्यरूप से दुःख का, हर्ष-शोक का वेदन ही कर्मफलचेतनारूप से वेदते हैं, ऐसा यहाँ सिद्ध किया है।

अब हुआ त्रस। उसमें से निकलकर। दूसरा बोल कल अपने चल गया है। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, यह पशु, देव, नारकी, यह सेठिया, रंक-भिखारी, गरीब। ये सब आत्मायें कार्यचेतना को फलसहित भोगते हैं। अर्थात्? कार्यचेतना अर्थात्? मिथ्यात्वभाव, भ्रमणा का भाव और राग-द्वेष को करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव एक शरीर और पर की क्रिया बिल्कुल नहीं कर सकते। समझ में आया? यहाँ अस्तिकाय सिद्ध करना है न? षट्द्रव्य और पंचास्तिकाय, जीवास्तिकाय। तो जीव त्रस हुआ तो वीर्य का किंचित् विकास है, पुरुषार्थ का। इससे वह जीव राग और द्वेष, पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ, संकल्प-विकल्प को करता है और उसके दुःख के फल के मिश्रितभाव को वेदता है। कर्तापनासहित भोगता है। समझ में आया?

यह मनुष्य हो या देव हो या नारकी हो, वे शरीर के किसी भी रजकण को या परमाणु को करे या वेदे, ऐसा है नहीं। वह तो परचीज है।

मुमुक्षु : परमाणु को स्पर्श नहीं करे तो कुछ नहीं। रुचि को तो स्पर्श करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह रुचि अर्थात् यह शरीर। कहा न पूरा। इस शरीर को आत्मा अभी स्पर्श ही नहीं करता।

मुमुक्षु : रुपये को तो स्पर्श करता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपया धूल, (उसकी बात) तो अब कहीं रह गयी। ऐ न्यालभाई! यह रुपये को स्पर्श करता है या नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! हैं? आहाहा!

मुमुक्षु : आपने इनकार की है और आप हाँ करो तो हमने हाँ की।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु की स्थिति हो, ऐसा होगा न? वस्तु यहाँ क्या कहते हैं परमेश्वर कि जीवास्तिकाय। जीव अस्तपने असंख्यप्रदेशी आत्मा। वह त्रस होकर क्या करे? स्थावर होकर क्या भोगे और त्रस होकर क्या करे अनादि से। या स्थावर होकर वह, अहो! अपना महाप्रभु चैतन्य आनन्द ईश्वर को भूलकर पामरता के राग-द्वेष और पुण्य-पाप के, हर्ष-शोक के फल को भोगता है। दुःखी है।

एकेन्द्रिय प्राणी यह वृक्ष के यह हरे-हरे बाहर दिखते हैं, वह तो शरीर है। यह शरीर, वह जीव नहीं। उसमें जो जीव चेतन है, वह तो उसके दुःख को ही भोगता है।

कोई कहे कि उसे पानी अनुकूल मिले, आहार अनुकूल मिले, तब उसे किंचित् सुख होगा या नहीं? यह कल्पना में सब उसे दुःख ही है। आहाहा! ऐसे अनन्त भव में निगोदरूप से प्रत्येक जीव रहा है। समझ में आया?

उसमें से निकलकर त्रस हुआ। दो इन्द्रिय चींटी, मकोड़ा, मनुष्य, पशु, तो कहते हैं कि वह चेतकस्वभाव द्वारा मोह अर्थात् मलिन है। पर में सावधानी का भाव हैं। अपना आनन्द और ज्ञायकस्वभाव ईश्वरत्वस्वभाव की सावधानी को भूले हुए हैं। भगवान् अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति अपना सहजानन्द स्वरूप, उसकी सावधानी अर्थात् उस ओर के झुकाव को भूले हैं। परसन्मुख के कार्य राग और द्वेष या पुण्य और पाप, ऐसे भाव को वह करे। न करे आनन्द को, न करे पर के कार्य को। बराबर होगा? न्यालभाई! घड़ी का काम नहीं करता, ऐसा यहाँ कहते हैं। यह सत्य होगा? क्योंकि घड़ी का अस्तित्व जड़रूप अस्तित्व है। और वह जड़रूप अस्तित्व में जड़ के परिणाम की क्रिया जड़ करता है। भीखाभाई!

मुमुक्षु : जी प्रभु! आप कहते हो, फिर क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसा है, वह कहीं ख्याल में आता है या नहीं ख्याल में न्याय से, न्याय से?

यहाँ तो जीव करे और भोगे, वह उसकी दशा में करता और भोगता है। पर का एक तिनका तोड़ सके या तिनके को जोड़ सके, क्या कहलाता है तुम्हारे? ऐई! पार्ट कहलाये न नयी घड़ी के। हैं? वह पार्ट। और तुम्हारे क्या कहलाते हैं? मोटर के भी पार्ट।

मुमुक्षु : वह मोटर के पार्ट और यह घड़ी के पार्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोटर के और घड़ी के पार्ट। कहते हैं कि हराम उस पार्ट को स्पर्श करे और करे तो जीव।

भ्रमणा से अज्ञानी मूढ़ पाप को सेवनकर मानता है कि मैं यह इसका कुछ करता हूँ। वह तो मिथ्यात्वभाव, झूठाभाव, असत्यभाव, पाखण्डभाव सेवनकर मानता है। परन्तु कर नहीं सकता। क्यों, बराबर होगा, मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : हाँ, बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या बराबर होगा ? यह तुम्हारा न्यालभाई ने कितना किया । देखो ! घड़ीयाल का कितना करते हैं यह सब । लोग बातें करते हैं । हम कहाँ देखने गये थे ।

मुमुक्षु : जो उपाधि आवे और उसके पास जाये, उसे खबर पड़े न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! भगवान ! तू तेरे द्रव्य, गुण और पर्याय में है । तेरा द्रव्य जो चेतन है । उसके गुण जो ज्ञानादि हैं और उसकी अवस्था विकारी है । स्थावर और त्रस । उसमें तू है । नहीं वह शरीर में, नहीं वह वाणी में, नहीं वह पैसे में, नहीं वह व्यापार में । जिसमें नहीं उसका वह कैसे करे ? न्याय समझ में आता है कुछ ?

अरे ! यह सब भी तूफान करते हैं न ! कितने पैसे संग्रह करे, रखे, बाँटे, व्यापार करे । यहाँ कहते हैं कि हराम करता हो तो । तेरी पर्याय में तुझे झूठेपन के भाव में ऐसा भासित होता है, भास होता है । कि मैं इसका यह करता हूँ । करता ही नहीं । करे तो वह तू करता है कि 'इसका करूँ', ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, महास्वरूप का अनादररूपभाव और राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव, ऐसे कर्मचेतना कर्म अर्थात् कार्यचेतना । यह तेरा कार्य है । अज्ञानी का भी कार्य विकार का करना, वह उसका कार्य है । समझ में आया ?

कहो, मनहरभाई ! यह क्या कहते हैं, भंगार-बंगार का कुछ कर नहीं सकता, ऐसा कहते हैं । गजब परन्तु यह ! भंगार का कितना करता है तू तो । कितने रुपये सम्हाल, निकालना, डालने का । पचास-पचास हजार आमदनी हो । ऐसे से ऐसे हो और धूल हो और वा हो न । ऐई ! कहाँ गये अमुलखभाई ? वह आया था न तुम्हारा । हाँ, आया था । कहे, हम बापू को लेने आये हैं । कहा, बापू इनकार करते हैं । नहीं आना । मैंने पूछा कि किसलिए आया है तू ? लेने आया हूँ । अब बापू वहाँ आवे तो कुछ जरा, उन्हें कुछ पड़ी नहीं । हमारा जैसा हो वैसा हो, जाओ करो तुम्हारा । हमारे नहीं आना । परन्तु कौन करता था ? यों ही वह । आहाहा ! जहाँ बैठा हो, वह लाती के लाकडाने फिरा सकता है ? हैं ? आहाहा !

दुकान पर बैठा हो वह एक भी बर्तन का टुकड़ा ऐसे से ऐसे कर सकता है ? तीन काल में नहीं, ऐसा कहते हैं । वह तो जड़ है । जड़ की अवस्था के कार्य जड़ करे । तेरे अधिकार की वह बात तू मानता है । है नहीं । तेरे अधिकार की इतनी बात है कि मैं

इसका करता हूँ, इसका-इसका बिगाड़ता हूँ, इसका इसका सुधारता हूँ। इसको मदद करता हूँ, ऐसा जो मिथ्यात्व तेरा भाव, उसे तू करे। समझ में आया ?

इस मिथ्यात्वभाव के साथ दुःख का वेदन साथ में मिश्रित है। कि आत्मा का आनन्द नहीं तथा पर का वेदन उसमें नहीं। स्त्री का शरीर, लक्ष्मी, मकान, इज्जत, कीर्ति, वे तो पर जड़ सब चीज़ है। उसका आत्मा को करना भी नहीं और उसका भोगना भी नहीं। भोग-भोग की धूल की वस्तु, इसके लिये तो यह यहाँ सिद्ध करते हैं। भोग-उपभोग की वस्तु तेरा भाव। परवस्तु भोगना और उपभोग हो, यह बात है नहीं। इसीलिए तो यहाँ जीवास्तिकाय! परमेश्वर सन्त ऐसा कहते हैं कि भाई! तेरा भगवान परमेश्वर पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा तू है, हों! परन्तु उस परमात्मा को पीठ देकर, अनादर करके और यह मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेषभाव को करता है यह। और दुःख को भोगता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह अधर्म को करता है और अधर्म को भोगता है, ऐसा कहते हैं। जादवजीभाई! सत्य होगा यह? यह सब पैसेवाले फिरावे और ब्याज उपजावे। टका का, डेढ़ टका का। अमुक का, अमुक का... अब तो साहूकार भी डेढ़ टका देते हैं। सुना है। पहले तो कहाँ आठ आना और छह आना मुश्किल से देते थे। अब तो कौन जाने क्या हो गया। पैसा तो सस्ता हो गया है न! भाव महँगा हुआ और पैसा सस्ता हुआ। यह उसमें सस्ता-महँगा किसे कहना? आहाहा! ऐई!

यहाँ तो कहते हैं कि एक आँख की पलक भी फिराना, वह आत्मा का कार्य नहीं है। आत्मा कर नहीं सकता। यह करता है कि मैं इसका करूँ, ऐसे मिथ्यात्वभाव को करे और उसके साथ दुःख को वेदता है। दुःख को वेदता होगा? हाँ, परन्तु यह सब लाल, पीले, जैसे तो दिखते हैं। शरीर दिखता है परन्तु उसमें ऐसा सुखी हैं, ऐसा बहुत लोग कहते हैं। पैसे-टके से सुखी हैं। कुटुम्ब कसा हुआ कुटुम्ब है। ऐसी लोग बातें करते हैं। बातें नहीं करते? कसा हुआ कुटुम्ब, सब इकट्ठा हुआ, ऐसी बातें करे, वे स्त्रियाँ फुरसत में हो न मानो! इकट्ठा हो न विवाह के समय कसा हुआ कुटुम्ब। कसा हुआ कुटुम्ब अर्थात् सब निरोगी इकट्ठे हुए हैं, ऐसा। उसमें कोई अभी मर नहीं जाये ऐसा। धूल भी नहीं, सुन न! भ्रमणा में पड़ा भगवान! तेरी बात को भूल गया। तेरी जाति को तू भूल

गया, प्रभु! भूलकर तूने मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव को किया दुःख में। वर्तमान दुःखी और उसके फलरूप से नरक और निगोद में दुःखी। आहाहा!

अरे! कोई पुण्यभाव करे। कार्यचेतना की बात है न यहाँ? तो भी पुण्यभाव वह वर्तमान कर्तृत्वरूप से करे, वह भी दुःखी है। और उसके फलरूप से स्वर्ग में या इस धूल में या सेठाई में जाये, वह भी दुःखी है बेचारा। भिखारी, रंक आत्मा की प्रभुता को भूलकर पामरता राग और द्वेष की पामरता के कर्तृत्व से दुःखी है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! तेरे प्रभु को तू भूल गया है। समझ में आया? तेरे सनाथ चैतन्यनाथ है अन्दर भगवान पूर्णानन्द का प्रभु! जैसे परमात्मा परमेश्वर हैं, वैसा ही तू है।

तेरी परमेश्वरता कहीं बाहर से नहीं आती। अन्दर में परिपूर्ण प्रभु है, भाई! उसका तुझे विश्वास नहीं। और यह विश्वास पर का करूँ और इसका ऐसा करूँ तो ऐसे ठिकाने पड़ेगा और इसका ऐसा करूँ तो ऐसे ठिकाने पड़ेगा। क्या कहते हैं? क्या उस रेल में नहीं वह रेल कहीं ऐसे। गाँव का नाम क्या उसका है? नहीं वह रेल में अपने गये थे और अटक गया। वहाँ रेल आगे चलती थी। हैं? सराडीया। यह सराडे चढ़ाना है, ऐसा कहे। ऐसा कुछ उसमें वहाँ याद आया था। सराडीयुं गाँव है। वहाँ रेल है। आगे नहीं। मास्टर-बास्टर बेचारे वहाँ थे। जैन नहीं था। ऐसा कहते थे। बहुत से। सराडीया स्टेशन है। वहाँ सब लोग मानते हैं कि हम सीधी राह पर चढ़ा देते हैं। मूढ़ है। सीधी राह पर चढ़ाते नहीं? तेरा पिता यह करता है न वहाँ सब।

मुमुक्षु : कल्पना करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्पना करता है। गजब भाई! गजब लड़का है तुम्हारा! ग्यारह वर्ष का लड़का कहता है, कल्पना करते हैं।

मुमुक्षु : यह तो होता हो, वह कहे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐ न्यालभाई! आहाहा!

भाई! तुझे खबर नहीं। तेरे अस्तित्व में क्या करता है और पर के अस्तित्व में तू कुछ कर सकता नहीं, ऐसी तुझे खबर नहीं। बेखबर अज्ञानी मूढ़ होकर। आहाहा! कहते हैं कि कार्यचेतना को करे। कार्य को प्रधानरूप से चेतते। कौन सा कार्य? भ्रमणा

मिथ्यात्व है। यह पुण्य के भाव वे मुझे सुखरूप हैं, यह अनुकूल सामग्री, इसलिए मैं सुखी हूँ। प्रतिकूलता, इसलिए मैं दुःखी हूँ। ऐसे मिथ्यात्वभाव को चेतें और वेदें और करें। आहाहा! समझ में आया? कार्य करने का सामर्थ्य प्राप्त किया है। लो! यहाँ तक आया है अपने।

अब तीसरी बात। अब धर्मी की बात। ७३ पृष्ठ है। ७३ का पहला पेरिग्राफ है। तू नहीं रखता पंचास्तिकाय? ऐई! दिलीप! पंचास्तिकाय बहुत हैं। देना-देना भाई, लड़कें को देना। ७३ पृष्ठ, इसकी पहली लाईन, ७३ की।

और दूसरे चेतयिता... अर्थात् यह एकेन्द्रिय और त्रस के कार्य करनेवाले अज्ञान के, विकार के, इसके अतिरिक्त के अब आत्मायें। समझ में आया? **अर्थात् आत्मा,...** चेतयिता अर्थात् जाननेवाले आत्मायें जिसमें वे सकल मोहकलंक धुल गया है... सकल परसन्मुख की सावधानी का कलंक था, उसे जीव ने नाश किया है। आहाहा! **सकल मोहकलंक...** पर में सावधानी का कलंक था, उसे। पर के कार्य करूँ और राग-द्वेष करूँ और पुण्य-पाप करूँ और ऐसे भाव, वह मोहरूपी कलंक है। उसे कलंक है। आहाहा! वह मोहकलंक धुल गया है... आत्मा के आनन्दस्वरूप के भान द्वारा वह भाव धुल गया है। टल गया है, ऐसा भी नहीं कहा। धुल गया है, साफ हो गया है, ऐसा। समझ में आया?

यह तो उत्कृष्ट बात ली है। केवली की बात लेते हैं। परन्तु पूरा किया है, पूरा किया है, उसकी बात ली है। सम्यग्दर्शन से, प्रथम धर्म की शुरुआत से आत्मा परमात्मा पूर्ण विश्वास में लेकर जिसने राग और अल्पज्ञ पर्याय का स्वामीपना छोड़ दिया है। पर का स्वामीपना तो छोड़ा है। धर्मी (को) शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, इज्जत यह स्व और उसका मैं स्वामी, यह दृष्टि तो छूट गयी है। यह मेरा स्व और मैं इसका स्वामी, यह तो मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व के कार्य को करता है। यह बात दूसरे भाग में गयी। समझ में आया?

तब धर्मी कैसे हैं? धर्म करनेवाले सुखी जीव कैसे होते हैं? कि जिसने भगवान् आत्मा ध्रुव शुद्धचैतन्य ज्ञायक नित्यानन्द प्रभु अकेला अतीन्द्रिय आनन्दरस जिसमें-

आत्मा में पड़ा है। उसमें जिसकी सावधानी हुई है; इसलिए पर में सावधानी की एकताबुद्धि तो उसने धो डाली है। समझ में आया ?

यहाँ तो सम्यग्दर्शन से लेकर है। बात तो यहाँ पूरी है, मुख्यता। परन्तु पहले से जिसने, ओहो! जितने क्रियाकाण्ड के विकल्प हैं, पुण्य-पाप के, वे सब मुझमें नहीं, मेरे नहीं, मेरा कर्तव्य नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

मैं तो एक चैतन्यज्ञायकमूर्ति चेतनेवाला, जाननेवाला, आनन्द करनेवाला हूँ। ऐसा जिसने अपने परमेश्वर का परमस्वरूप, रूप, उसकी सावधानी की है और परसन्मुख की सावधानी की एकता को जिसने धो डाला है। समझ में आया ? यह सम्यग्दृष्टि को ज्ञान का वेदन और ज्ञान की चेतना होती है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ? उसे पर का तो करने का है ही नहीं। वह तो अज्ञानी को (भी) नहीं। परन्तु ज्ञानी को अन्दर पुण्य और पाप के विकल्प उठें, उसका वह कर्तव्य ज्ञानी को नहीं है। वह कर्मचेतना ज्ञानी को नहीं है। आहाहा! धर्मो सुख के पंथ में चढ़ा, उसने तो भगवान आनन्द के धाम में अन्दर प्रवेश किया; इसलिए तो उसे सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में दिखता है, तथापि वह है अपने ज्ञान और आनन्दस्वभाव की ही दशा में। इसलिए उसे पर का कुछ भी करना और पुण्य-पाप के राग का कर्तव्य करना, यह दृष्टि नाश कर डाली है। समझ में आया ? इसका नाम धर्म है। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के पन्थ में यह धर्म है। अन्यत्र तो कहीं है ही नहीं। अन्यत्र तो कहीं वस्तु ही नहीं है। बातें चाहे जिस प्रकार की बड़ी-बड़ी करे और यह सब शून्य एकड़ा बिना के बढ़ते हैं। आत्मा सर्वज्ञ वीतरागस्वरूप है, ऐसी अन्तर में सन्मुख होकर अल्पज्ञ पर्याय की बुद्धि-दृष्टि छोड़कर, सर्वज्ञपने की दृष्टि करके, राग और विकार की बुद्धि छोड़कर वीतरागस्वभाव से परिपूर्ण हूँ। ऐसा जिसने अन्तर में विश्वास जानकर ज्ञान के स्वभाव का माहात्म्य करके प्रगट किया है, उस जीव को आत्मा के ज्ञानस्वरूप का एकाग्रपना है। उसे राग का और पुण्य का एकाग्रपना नहीं है। समझ में आया ? अरे! धर्म ऐसा। गजब धर्म, भाई!

अब इसमें पूजा, भक्ति, दया और दान इनमें कहीं धर्म है या नहीं? हैं? नहीं?

ले! वाह! ऐ न्यालभाई! वहाँ तुम्हारे ऐसा सुनने को नहीं मिलता वहाँ। सीधी लाईन में ऐसा लड़का भी नहीं मिलेगा। देखो! आहाहा! यह शुभ विकल्प है। दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति शुभ विकल्प-राग है। वह ज्ञानी कर्मचेतना में एकाग्र नहीं। ज्ञाता है, जाननेवाला है। यह आया था न सवेरे में। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो यह सम्यग्दर्शन से लेकर जिसने पूर्ण मोह का नाश किया है और जिसे केवलज्ञान प्रगट हुआ है। ऐसी उत्कृष्ट दशावाले को ज्ञानचेतना अर्थात् अकेला ज्ञान का ही अनुभव है, ऐसी यहाँ बात सिद्ध की है। समझ में आया? गजब बात गजब! दुनिया से बहुत अन्तर, बहुत अन्तर। हैं? आहाहा! दुनिया पैसेवाले को निरोगी को लड़के जिसके घर में ठीक दो, चार, पाँच, छह, सात हों। आबरू, कीर्ति हो तो सुखी कहे। यहाँ कहते हैं कि वह दुःखी है। उस चीज़ के कारण नहीं। परन्तु उसकी ओर के झुकाव का भाव है, वह दुःख है। समझ में आया?

उस धर्मी जीव को धर्म अर्थात् भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। चिदानन्द का अस्तित्व है। यहाँ यह सिद्ध करना है न? मेरा अस्तित्व तो ज्ञान और आनन्द के परिपूर्ण अस्तित्वरूप मैं हूँ। ऐसा जिसने अन्तर प्रभुत्व शक्ति का परिपूर्ण प्रभुत्व, उसका जिसने अन्तर में स्वीकार किया है। वह ज्ञान में अर्थात् स्वभाव में एकाग्र है, उसे पुण्य-पाप के विकल्प निचलीदशा में होते हैं परन्तु उसका वह कर्ता और उसका वह वास्तव में भोक्ता भी नहीं है। पर का कर्ता-भोक्ता तो अज्ञानी भी नहीं। अज्ञानी करता था राग और द्वेष, संकल्प और विकल्प। जहाँ-जहाँ खड़ा हो, वहाँ-वहाँ वह यह करता था। दूसरा एक छिलका रजकण का बदलना, यह उसके अधिकार की बात नहीं है। परद्रव्य को वह क्या करे? आहाहा! यहाँ तो बड़े-बड़े काम करते हैं न लोग, ऐसा कहते हैं न? भाई! कहे, वे अज्ञानी भले कहें। इससे कहीं वस्तु है, वह बदल जाये, ऐसा है कहीं? आहाहा! समझ में आया?

धर्मी जीव तो उसे कहते हैं, कि जिसे आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अस्तित्ववाले अनन्त आत्माओं के, परमाणु, उनकी होती दशा के कार्य को मैं करता हूँ, यह तो मानता नहीं। परन्तु अपनी दशा में जरा कमजोरी के कारण शुभ और अशुभभाव होता है और उसका जरा हर्ष-शोक का भाव भी उसमें होता है। उसे वह ज्ञानी करता भी नहीं और

निश्चय से उसे भोगता (भी) नहीं। आहाहा! तब अब यह खाये-पीये और मजा कब करेगा यह? लोग कहते हैं न खाओ-पीओ और ये मजा! ईश्वर ने दिया है तो खा-पीकर मजा करते हैं। महा मूढ़ है, कहते हैं। मूढ़-मूढ़ महा पाड़ा मूढ़ है। ऐई! हाय-हाय! गजब! आहाहा!

भगवान आत्मा जिसमें पुण्य के विकल्प की क्रिया का भी जिसमें अभाव है। ऐसे स्वभाव का आदर नहीं और तुझे राग की क्रिया का आदर है, वह तो कर्तापने की बुद्धि मिथ्यात्व और अज्ञान और दुःखरूप बुद्धि है और जिसके फल में भी दुःख में ही वह जानेवाले हैं। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि जिसने अब उस दुःख को टाला है। दुःख, वह मेरा स्वरूप ही नहीं है। पर तो मेरा स्वरूप नहीं, पर के काम करना या पर को भोगना, वह तो मेरी द्रव्य-गुण शक्तिवान और शक्ति में तो नहीं, परन्तु मेरी दशा में वह नहीं। समझ में आया? ऐसी जिसने सम्यग्दृष्टि प्रगट की है और जिसने आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, ऐसा ज्ञान में एकाग्र अर्थात् स्व में एकाग्र हुआ है। उसने परसन्मुख के मोह के कलंक को धो डाला है। समझ में आया? गजब!

जिसमें वे सकल मोहकलंक धुल गया है... और आगे बढ़ने पर जो अस्थिरता के अंश धर्मी को होते हैं, उन्हें भी जिसने स्वरूप की अन्तर एकाग्रता द्वारा धो डाले हैं। जिसे अशुद्धता जरा भी रही नहीं। ऐसे केवली की ज्ञानचेतना को ज्ञानचेतना कहा जाता है। समझ में आया? **सकल मोहकलंक धुल गया है...** कलंक धुल गया है, ऐसा है न? कलंक का शब्द है न! **तथा समस्त ज्ञानावरण के विनाश के कारण...** धर्मी जीव ने निचलीदशा में ज्ञानमूर्ति को आवरण करनेवाले ऐसे प्रकृति, मति आदि का नाश किया है। समझ में आया? और स्वचेतना को पकड़कर अनुभव करे, ऐसा ज्ञान जिसे प्रगट हुआ है। और आगे जाने पर पूर्ण ज्ञान अन्तर में एकाग्र होने पर **समस्त ज्ञानावरण के विनाश के कारण...** जिसे सभी ज्ञानावरण आदि का एक रजकण भी रहने नहीं दिया। नाश किया है, ऐसी निमित्त से बात है।

जिसका समस्त प्रभाव अत्यन्त विकसित हो गया है... जैसे कली खिल जाती है। लाख पंखुड़ी की गुलाब की कली होती है। गुलाब होता है न, गुलाब फूल। हजार-हजार पंखुड़ी के फूल तो यहाँ के हैं ही। कहाँ थे? कौन सा गाँव? गये थे न तालाब में।

चीखली, चीखली चीखली न? वहाँ उस तालाब में हजार-हजार पंखुड़ी के फूल, लाख पांखुड़ी का गुलाब का फूल। होवे ऐसे कली छोटी। खिले तब ऐसे लाख पंखुड़ी।

उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर ज्ञान, दर्शन, आनन्द की अनन्तता के स्वभाव से भरपूर है। उसकी अन्तर एकाग्रता द्वारा खिल गयी दशा। केवलज्ञान, केवलदर्शन आनन्द जिसे खिल गया है। केवली की बात ली है न! समझ में आया? **जिसका समस्त प्रभाव अत्यन्त विकसित हो गया है...** अत्यन्त खिल गया। खिल गया है, ऐसा भी नहीं। अत्यन्त लिख गया है। आहाहा! जैसे सूर्य हजार किरणों से बाहर आता है और प्रभाव करता है; उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य अन्तर की स्वभाव की शक्ति की एकाग्रता द्वारा वर्तमान पर्याय में अनन्त ज्ञान आदि व्यक्तरूप से प्रगट किये हैं। **ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा...** ऐसे अन्तर के ज्ञान के वेदन चेतक द्वारा **'ज्ञान' को ही....** ज्ञान को ही, उस आत्मा के आनन्द को और ज्ञान को ही अकेला वेदता है। समझ में आया?

'ज्ञान' को ही.... केवली की बात ली है न पूरी? पूरी बात ली, हों परन्तु गौणरूप से चौथे से सम्यग्दर्शन, ज्ञान शुरु होता है। शुरुआत हुए बिना पूरी कहाँ से हो? परन्तु यहाँ तो पूरी की बात की है। कहते हैं कि सर्वज्ञ परमेश्वर अपना सर्वज्ञस्वभाव जो था, ऐसा चेतकरूप से ज्ञान को चेतकर प्रगट किया है। आहाहा! किसी व्यवहार की क्रिया दया, दान, व्रत करके इस ज्ञान को चेतकरूप से प्रगट किया है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कठिन काम यह!

इसमें कहीं व्यवहार का अवकाश होगा? कोई और ऐसा कहता है। एक व्यक्ति तो ऐसा कहता था (कि) इन पैसेवालों का अवकाश कहीं है सही? ऐसा पूछता था। बहुत वर्ष की बात है। कौन सा वर्ष? बहुत वर्ष हुए लींबडी। ८१ के वर्ष। हैं? यह चला आता है। ८१ के वर्ष में लगडी थे न लगडी। मोहनलाल लगडी। ओघडचन्द, मोहनलाल और केशवलाल तीन भाई थे न? बहुत पैसेवाले। पैसे तो तब कुछ खर्च किये थे। एक पचास हजार कुछ दिये थे जैनशाला में। कोई पाठशाला में दिये थे। तब, हों! ८१ (संवत् १९८१) की बात है। दरबार व्याख्यान में आये थे। यह दादवा दरबार थे न तब? लींबडी दरबार। हैं? व्याख्यान में आये थे। फिर कहे, कल हमारे आना है।

परन्तु यहाँ कहा, हमारा समय पूरा हो गया। अब हम किसी के लिये रुकनेवाले नहीं हैं। सेठिया को कह दिया—लालचन्द सेठ को। हम कोई रुकनेवाले नहीं हैं। राजा आवे या न आवे। हमारा समय पूरा हो गया है। फिर वापस चले आवे बेचारे। महाराज! इन पैसेवालों का कोई स्थान इसमें—धर्म में होगा? यहाँ सवालालभाई आये थे न, अभी नहीं। थोड़े दिन। लींबडी से नहीं, सवाईलाल का पिता मोहनलाल लगडी। पैसेवाले व्यक्ति, बहुत लाखोंपति बहुत। वह तो दे पैसा पच्चीस, पचास हजार। यहाँ पाठशाला में, अमुक में, अमुक में। साधु महिमा करे।

मुमुक्षु : करे ही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी करे नहीं। क्या है उसमें? समझ में आया?

कहा, पैसेवाला का स्थान धर्मी में, धर्म में नहीं है। चन्दुभाई! यहाँ तो धर्म में धर्मीभाव का स्थान है। पैसा जड़ है। उसके साथ क्या सम्बन्ध है तुझे? तेरे कहाँ पैसे थे? समझ में आया? यह महाराज तो गजब कहते हैं, भाई! हमारी तो दूसरे महिमा करते हैं। यहाँ तो कहे पैसे का कोई स्थान नहीं। ऐसे बड़े गृहस्थ को पच्चीस, पच्चीस लाख, पचास लाखवाले। अब इतने खर्च करेंगे। पधारो, पधारो होता है। पाठशाला, जैनशाला पैसेवालों से निभती है। गरीबों से निभेगी? कैसे होगी? धूल से भी नहीं निभता। वह तो उसके कारण से निभना हो तो निभे। जड़ की पर्याय जड़ के कारण से होती और टिकती है। क्या तुझसे टिकती है वह? तूने की है न पाठशाला और जैनशाला? वह तो परमाणु की पर्याय है। समझ में आया?

यह तो कहे, किसी को गिनते नहीं। गिनते नहीं, ऐसा है, कहा। परन्तु वे सब पैसेवाले मानकर बैठे हों बड़ा करके। हम ऐसा करते हैं। हम हैं तो धर्म की प्रभावना ऐसी होती है। गरीब लोग क्या करें? गरीब लोग अर्थात् क्या कहा? व्याख्या क्या? आत्मा में रंकाई 'राग मैं', ऐसा माना, वह गरीब है। और आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव है रागरहित, वह बादशाह और फादशाह है। कहो, समझ में आया? यह तो कहे राजा कह गये तो भी ये जल्दी उठ गये। भाई आये। अंकीवाडीया है न, दो कोस दूर। बाहर बैठे थे। अभी टाईम हो गया नहीं था और तो बाहर बैठे थे। यह राजा कह गये कि हमारे

कल आना है तो भी वे तो रहे नहीं। हमारी टाईम स्थिति हो तत्प्रमाण हम रहेंगे, कहा। राजा आवे या नगरसेठ आवे। हमारे क्या है यहाँ? ८१ की बात है। यह ऐसा ही मानते हैं, यह सब पैसेवाले कितने ही तो उसमें के।

परमात्मप्रकाश में तो यहाँ तक कहा है कि पंचम काल के वैभव पैसेवाले, हैं? इतना उसे अभिमान अन्दर आ जाता है, कहते हैं। हम ऐसे हैं, हम ऐसे हैं, हम ऐसे निभाते हैं, हम यह निभाते हैं। इस वैभव से मद चढ़ता है; मद से उसे मतिभ्रम हो जाता है। मतिभ्रम से उसे मिथ्यात्व होकर दुर्गति में चला जाता है। परमात्मप्रकाश में। ऐई! मोहनभाई! ऐसा शब्द है, गाथा है। परमात्मप्रकाश शास्त्र। समझ में आया? वैभव, पुण्य के कारण वैभव मिले और वैभव के कारण मद चढ़े। आहाहा! हमारे वैभव तो देखो! बँगला तो देखो। चालीस-चालीस लाख के बँगले। ऐई! लाखों रुपये दो-दो, पाँच-पाँच लाख के गहने घर में। और जहाँ देखो! वहाँ बँगले में ऐसे हिरण के मुख और अमुक नहीं करते। सब रखते हैं न? बैल का मुख। पशु होना है न इसे! वे सींग लम्बे और सब चारों ओर शोभा शृंगार करे। हैं?

कहते हैं कि वैभव से तो मद चढ़ता है, उसे अन्दर से मद चढ़ता है। शराब पीया हो उसने। और वैभव से मद और मद से मति भ्रम। बुद्धि में भ्रष्ट हो जाता है फिर ऐसे। विवेक सत्य-असत्य का रहता नहीं। मति भ्रष्ट हुई, जाओ मोह में होकर चार गति। नरक में जाये। नरक में जाये-नरक में जाये, नरक में ऐसा कहे। इस पंचम काल में। धूल में भी नहीं सुन न अब? वैभव तो तेरा आत्मा में है।

आनन्दकन्द प्रभु है न! ज्ञान और अनाकुल शान्ति के स्वभाववाला वैभव तो प्रभु तुझमें तू है न। यह वैभव कैसा? कहो, ऐई मलूकचन्दभाई! तुम्हारा कोई व्यक्ति कहता था। हैं? न्यालभाई और तुम्हारे न्याल को। होगा कोई कहता था। एक व्यक्ति कुछ। हैं? राजेन्द्र। वह कहता था कि न्यालभाई के वैभव के समक्ष पूनमभाई का वैभव कुछ नहीं। ऐसा कहता था। बात आयी थी। कौन देखने गया है? शब्द आये थे। ऐ न्यालभाई! यह तुम्हारी बात करता था। एक व्यक्ति। राजेन्द्र नहीं वह मोटरवाला। हैं?

मुमुक्षु : सब वहाँ उतरे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उतरे। उतरे तो सही न।

मुमुक्षु : सब लोगों को रहने का स्थान ऐसा वैभववाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा वैभववाला हो, ऐसा। परन्तु वह कहता था कुछ। सुना हुआ। अपने क्या? वह तो पूनम में है न वह मोटर का ड्राईवर। हमारे यहाँ आता था, हों! मोटर में किसी समय आता था। अभी आया था। कोई ड्राईवर न हो तो वह आता था। हैं? राजू। राजू नहीं। दूसरा कौन? होगा कोई। वह दूसरा उसको। फिल्मवाला। ठीक। अपने को कुछ.... वह कहे कि न्यालभाई का स्वीट्जरलैण्ड में पूनमभाई के वैभव से तो कैसा वैभव! उसे बेचारे को अन्दर से गलगलिया हो गया। धूल में भी नहीं, अब सुन न तेरे वैभव को। आहाहा!

अरे, भगवान! अनन्त वैभव आनन्द और ज्ञान से भरपूर ऐसे वैभव का माहात्म्य नहीं और पर का माहात्म्य मूढ़ता, मूढ़ता की मदिरा पी है। धर्मी ने मूढ़ता का नाश किया है। आहाहा! छह खण्ड का राज हो चक्रवर्ती, छियानवें हजार स्त्रियाँ जिसके घर में हों। पद्मनी जैसी हों! अरे! हमारा कोई नहीं। और जो हमारा है, वह तो हमारे पास है। हम हमारे भाव से दूर एक समयमात्र नहीं और जो दूर यह चीज़ है, वह समयमात्र हमारे में आयी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, वह धर्मात्मा सर्वज्ञ होता है। उसका-आत्मा का ज्ञान करके ज्ञानचेतना को प्रगट करके वह पुण्य-पाप के विकल्प और विकारभाव से भिन्न भगवान है, ऐसे भान में, भान में आया हुआ जो असाध्य था, वह साध्य में आया। आहाहा! अनादि से असाध्य था। विकार के परिणाम में एकाकार होता हुआ वह अपने स्वरूप के साध्यरहित था, असाध्य था। असाध्य था, वह साध्य में आया। अरे! मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। ऐसे 'ज्ञान' को ही—कि जो ज्ञान अपने से अव्यतिरिक्त स्वाभाविक सुखवाला है उसी को—चेतते हैं,... देखो! अब। आहाहा! वह ज्ञानस्वभाव भगवान जानना स्वभाव, उसमें एकाकार है। जो ज्ञान ज्ञानस्वरूप से पृथक् नहीं, ऐसा स्वाभाविक आनन्द के सुखवाला वेदन है वहाँ। आहाहा! वह सुखी है। समझ में आया?

दुनिया में भी नहीं कहलाता, 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुःखिया रे। एक

ही सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुःखिया रे। यह नहीं आवे भव का अन्त।' यह भव का अन्त न आवे, ऐसे प्राणी दुःखी हैं बेचारे। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि धर्म उसे कहते हैं और ज्ञानस्वभाव भगवान ज्ञान स्व... भाव, स्व... भाव अपना ज्ञानभाव, उसकी एकाग्रता का भाव कि जो उसके आनन्द के सुख से वह ज्ञान अव्यतिरेक पृथक् नहीं है। आहाहा! देखो! यह सुख। यह सुखी। समकित्ती सुखी है। जितने अंश में ज्ञानस्वरूप में एकाग्रता है, वह ज्ञान सुख के भाव से भिन्न नहीं है। समझ में आया?

क्यों—कि, भगवान आत्मा में ज्ञान है, ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द है। तो जहाँ ज्ञान में एकाग्रता हुई तो ज्ञान जैसा सम्यक् प्रगट हुआ, ऐसा आनन्द भी साथ में थोड़ा वेदन में आये बिना नहीं रहता। आहाहा! अरे! सातवें नरक का नारकी जिसे एक चावल का दाना मिले नहीं, पानी की बूँद मिले नहीं, और सोने का कम्बल मिले नहीं, रहने का आवास मिले नहीं। कहते हैं कि समकित्ती वहाँ सुखी है। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि, चैतन्यसुख का धाम जिसने अनुभव किया और पकड़ा है। सातवें नरक में हों। आहाहा! जिसकी प्रतिकूलता का पार नहीं। जिसे जन्म से सोलह रोग। आहाहा! और शीत की वेदना का संयोग इतना कि लाख मण का लोहे का गोला टीप-टीपकर मजबूत किया हुआ, छह महीने तक निरोगी लुहार के लड़के ने। वह लोहे का गोला वहाँ डालो तो अग्नि में जैसे घी का पिण्ड पिघल (बिखर) जाता है, उसी प्रकार लाख मण का लोहे का गोला शीत की दशा में पिघल जाता है। ऐसे नरक में रहा होने पर भी धर्मी की दृष्टि संयोग में नहीं, राग में नहीं, एक समय की पर्याय जितने में नहीं। आहाहा! समझ में आया? गजब काम भाई ऐसा धर्म का।

कहते हैं कि, यह आत्मा के सुख के स्वादिया वह ज्ञान के साथ सुख को स्वादता है। और सर्वज्ञ परमेश्वर तो पूर्ण ज्ञान के साथ पूर्ण आनन्द को स्वादते हैं। समझ में आया? जैसे दूज का चन्द्रमा प्रकाश और चन्द्र के भाग का वह अंश है। पूर्ण खिला हुआ पूनम से पूर्ण खिलता है। जैसे भगवान आत्मा सम्यग्दर्शनरूपी दूज प्रगट किया, शुद्ध चैतन्य के आश्रय से और विश्वास से अन्दर में जाकर (प्रगट किया)। राग के विकल्प की एकता तोड़कर स्वभाव की एकता में ज्ञानदशा के साथ आनन्द का अनुभव होता है। उसे सुखी और धर्मी कहा जाता है। कहो, समझ में आया? भारी विवाद। आहाहा!

यह तो पूर्व-पश्चिम जैसा अन्तर नहीं लगता है ? यह वीतराग का ऐसा कहना होगा ? यह जैन परमेश्वर का मार्ग होगा ऐसा ? जैन परमेश्वर तो, यह कहे भक्ति करो, पूजा करो, व्रत पालो, तप करो, वर्षीतप करो। हैं ? आहाहा! कहते हैं, नहीं, इनकार करते हैं। भगवान ऐसा तो कहते नहीं थे। यह हीराजी महाराज तो अपने। बोटाद से दो कोस नागवदर गये थे। हीराजी महाराज हमारे सम्प्रदाय के गुरु। ऐसा तो कहते नहीं थे कानजी महाराज कहते हैं ऐसा। कहाँ उन्हें खबर थी ? बेचारे हीराजी महाराज बेचारे ! कषाय मन्द, ब्रह्मचारी। परन्तु तत्त्व की एक अंश की भी खबर नहीं न ! यह बात ही नहीं थी। समझ में आया ?

तुमने हीराजी महाराज को देखा है ? (संवत्) १९७४ में गुजर गये, १९७४। यह तो बहुत वर्ष हो गये न, कितने ? ५२ हो गये। हैं ? इनके जन्म के पहले, सच्ची बात। बावन वर्ष हो गये। १९७४ में नहीं था इन्फ्लूएँजा। इन्फ्लूएँजा बहुत था। तब चैत्र कृष्ण अष्टमी। तुम्हारे ही थे न कौन ? तुम्हारे ससुर निकले थे। तुम्हारे ससुर निकले थे। रास्ते में मर गये हीराजी महाराज। चार कोस तो चले। कहाँ से, रामपरे से। और कांप में जाना था। चार दिन तो चले, हों ! खेराडी आये, वहाँ डचूरो चढ़ा जरा। रास्ते में गुजर गये। हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे। वहाँ इनके ससुर थे, निकले घोड़े से। परन्तु ऐसा देखा तो... भागे। डॉक्टर ऐसे देखे तो इन्फ्लूएँजा का ऐसा और सब। गाँव के निकट जाते हैं, वहाँ साधु सामने आते हैं। कहते हैं ? कहाँ जाते हो ? हीराजी महाराज के दर्शन करने। हैं ? पड़े थे, वे हीराजी महाराज ! हाँ, हीराजी महाराज थे। रास्ते में गुजर गये। वे तो पड़े थे। गुजर गये। हाँ, रास्ते में सामने साधु आते थे और उसे कहा। हीराजी महाराज थे वे ? इनके ससुर थे वे। ७४ की बात है।

परन्तु इस बात की खबर नहीं होती। बात सुनी हुई नहीं। कहलाते ऐसे चौथे काल के साधु। ऐसी उनकी छाप, हो ! हीराजी महाराज की। क्रिया और व्रत और बहुत। परन्तु वस्तु की वस्तु क्या है। यह ज्ञानानन्द भगवान है। उसे राग की क्रिया करना सौंपना, वह कलंक है। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा भगवान चैतन्य, सर्वज्ञ तीर्थंकर परमेश्वर ने कहा। ऐसा आत्मा जिसने

अन्तर में दृष्टि में लिया, उसे आनन्द के साथ ज्ञान का वेदन है, कहते हैं। आहाहा! यह तो अनन्त गुणा साथ में है। तो सुख का लेना है न। सुख के लिये ही तरसता है न जगत। मरकर भी सुख लेना। हैं? प्राण खोकर सुख लेना। गले में फाँसी करके भी सुख लेना। ओहोहो! तिल भर भी सुख कहाँ है, और कैसे मिलता है, इस रीति की खबर नहीं होती, खबर नहीं होती। आहाहा! ऐसे के ऐसे जन्म गँवाये अनन्त काल के। कहते हैं कि जिसे जन्म-मरण टालना है, उसे तो भगवान आत्मा परमेश्वर ने कहा है, ऐसा ईश्वर प्रभु स्वयं पूर्ण है। स्वयं ही परमात्मा है। उसे परमात्मा दूसरे की सहायता की भी आवश्यकता नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

जो ज्ञान अपने से अव्यतिरिक्त... है न नीचे? अव्यतिरिक्त अर्थात् अभिन्न। स्वाभाविक सुख ज्ञान से अभिन्न है, इसलिए ज्ञानचेतना स्वाभाविक सुख के संचेतन-अनुभवनसहित ही होती है ऐसा। जैसे राग और पुण्य का करना दुःखसहित ही होता है, उसमें आया था न मिश्रित, कर्तापने में।

जैसे पुण्य-पाप के विकल्पों का करना, वह दुःख सहित होता है। कर्तापना दुःख के फलसहित होता है। इसी प्रकार ज्ञानचेतना सुख के फलसहित होती है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो! यह धर्म करने की रीति। अभी तो सुनी भी न हो, खबर न हो वह क्या करे? ऐसी की ऐसी जिन्दगियाँ / जीवन जाता है, बापू! आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अपने निजस्वभाव से जहाँ सावधान हुआ, तब कहते हैं कि ज्ञानस्वभावी भगवान में एकाग्र हुआ। इसलिए उसे ज्ञानचेतना अर्थात् ज्ञान का चेतना हुआ, एकाग्र हुआ। वह ज्ञान का चेतना आत्मा के आनन्द से पृथक् नहीं होता। वह आत्मा का आनन्द जो वेदन में आता है, वह इन्द्र के, इन्द्राणी के सुख में जहर की जाति में यह बात है नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह उसे चेतता है। उसे यह अनुभव करता है। क्यों उसे अनुभव करता है पूर्ण को? इसकी बात अब बाद में लेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

 प्रवचन-४०, गाथा-३८-३९, पोष शुक्ल १, गुरुवार, दिनांक -०८-०१-१९७०

समझ में आया ? सिद्ध भगवान ! केवलज्ञानी ने पर्याय में स्वभाव प्रगट किया । ऐसा ही यह आत्मा स्वभाव की शक्ति में तो ऐसा ही है । उसमें अन्तर्मुख दृष्टि न करके अनादि से बहिरदृष्टि में पर के कार्य तो कर सकता नहीं । परन्तु अन्दर शुभ और अशुभभाव पुण्य-पाप के भाव—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोगवासना तथा दया, दान, व्रत, भक्ति का, पूजा का विकल्प, वह पुण्यभाव, ऐसे पुण्य और पाप के भाव को अनादि से करता है और उसके फलरूप से हर्ष-शोक के दुःख को वेदता है । समझ में आया इसमें ? न्यालभाई ! क्या कहते हैं यह, परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थकर, जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान प्रगट हुआ है, उन्होंने जीव की तीन प्रकार की जाति देखी है । एक जीव की जाति ऐसी है, वह बाद में कहेंगे । एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति के जीव जो कि अनादि से अपनी जाति को भूल गये हैं । एकेन्द्रिय प्राणी मात्र एकेन्द्रिय शक्ति ही जिसके उघाड़ में रह गयी है । उसके कारण वह कर्म का भाव उसे वह वेदता है, अनुभव करता है, वह कर्मफलचेतना को वेदता है । आत्मा के भान की खबर नहीं । आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति ऐसा प्रभु आत्मा है । उसकी दृष्टि के अभाव के कारण एकेन्द्रिय के प्राणी अकेले सुख-दुःख की कल्पनारूपी उपाधि के दुःख को वेदते, अनुभव करते हैं । उन्हें यहाँ भगवान ने कर्मफलचेतना करते हैं, ऐसा कहा जाता है ।

पर का वेदन उसे भी नहीं है । शरीर का, प्रतिकूल संयोग का या अनुकूल संयोग, वह तो पृथक् परचीज है । उसका एकेन्द्रिय जीव को भी वेदन और अनुभव पर का नहीं है । तथा नहीं स्वभाव आनन्दमूर्ति आत्मा ऐसा सम्यग्दर्शन । उसके भान बिना वह हर्ष और शोक, कल्पना का सुख, कल्पना का दुःख, ऐसे भाव को वेदता है । राग-द्वेष करता है, यह उसकी वहाँ मुख्यता नहीं है । क्योंकि एकेन्द्रिय में वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ की जागृति बहुत कम थोड़ी है । इसलिए उसे करने में राग-द्वेष के कार्य करने के भाव, भाव, हों । पर के कार्य कर सके, वह तो कुछ है नहीं । परन्तु राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव एकेन्द्रिय को भी होते हैं । निगोद को भी होते हैं ।

भगवान ने ऐसे जीव देखे हैं कि जो अभी निगोद में से कभी निकले नहीं। उसी में और उसी में एकेन्द्रिय में और एकेन्द्रिय में जन्मे और मरे, जन्मे और मरे ऐसा अनन्त काल उसमें गया है। यह सब प्राणी आत्मा के स्वभाव के भान का तो वहाँ अवकाश नहीं, इसलिए उसे मात्र कर्मफल। कर्मफल अर्थात् राग और द्वेष के, मिथ्यात्व के भाव करता है और उसके फलरूप से मुख्यरूप से कर्मचेतना की गौणरूप से राग-द्वेष और मिथ्यात्व को कर्तापना गौणरूप से और फल का भोगना मुख्यरूप से। इस प्रकार उस एकेन्द्रिय की जाति में यह सिद्धि अस्तित्वरूप से है। हैं? विकल्प है न, शुभादि है न! शुभ भी उसे विकल्प है। संयोग की बात नहीं परन्तु राग की मन्दता का शुभ विकल्प उसे है। निगोद के जीव को है। एकेन्द्रिय है न प्राणी, आत्मा है न! हैं? दोनों शुभ-अशुभ परिणाम उसे भी चला ही करते हैं।

निगोद के जीव एक शरीर में अनन्त आत्मायें हैं। यह आलू, शक्करकन्द, मूली, गाजर के एक कण में असंख्य तो शरीर हैं और एक शरीर में अभी तक जो सिद्ध हुए, छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ परमात्मपद को पाते हैं। ऐसा प्रवाह जगत में होता है। तो वह सिद्ध की संख्या जितनी अनन्त काल में छह महीना और आठ समय में छह सौ आठ मुक्ति पावे, उसकी अभी तक की जो संख्या सिद्ध की हुई, उससे अनन्तगुणे उस आलू के एक टुकड़े में इतने उसमें असंख्य शरीर और एक शरीर में उससे अनन्तगुणे सिद्ध से (अनन्तगुणे) जीव हैं। न्यालभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : होगा कहाँ? है ऐसा। घड़ियों के कारण सूझता कहाँ है इसे? यह रखना और यह छोड़ना, यह टालना और यह करना, ऐई! इसे, जिसे जो हो वह, यह तो उसकी बात चलती है। जेठाभाई! इन्हें यह लिखने का था ऑडीटर का। बहियाँ देखे किसी की। यह बहियाँ-फहियाँ देख सकने की क्रिया इसकी नहीं। यह उसमें भगवान आत्मा के अस्तित्व में तो यह राग-द्वेष, पुण्य-पाप और हर्ष-शोक तो करे और वेदे, इतना उसके अस्तित्व में है। बाकी उसके अस्तित्व में दूसरा कुछ है नहीं। दूसरा नहीं, उसे वेदे कैसे? और दूसरा नहीं, उसे करे कैसे? न्याय समझ में आता है? पूनमभाई! बराबर है। आहाहा! कैसे होगा इसमें, जयन्तीभाई! हैं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ इनकार नहीं किया जाता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कल भाई कहते थे न न्यालभाई, बाहर निकले वहाँ तो बदल जाते हैं। यहाँ आवें तब यहीं रह जाँ, ऐसा हो जाता है। हैं? आहाहा!

भगवान! एक तू तुझे भूलकर भगवान आत्मा आनन्द का कन्द है, सुख कन्द है। चैतन्यपुंज प्रभु है आत्मा। उसे भूलकर अनादि से एकेन्द्रिय जीव में इसने हर्ष-शोक के भाव को ही वेदन किया है। दुःख को ही इसने वेदन किया है। समझ में आया? नहीं इसने अनुभव किया आत्मा, सम्यग्दर्शन नहीं, इसलिए नहीं इसने अनुभव किया पर। क्योंकि परवस्तु इसमें नहीं है। बराबर है? आहाहा! यह दुःख को वेदे एकेन्द्रिय प्राणी बेचारा। यह शरीर दिखे और यह पानी, वनस्पति के, पृथ्वीकाय के यह तो शरीर है। परन्तु अन्दर जीव जो है, वह अपनी चैतन्य ऋद्धि, निधान भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और केवलज्ञान का वह कन्द प्रभु है। समझ में आया?

आज आया था कहीं उस समाचारपत्र में-वीर वाणी (में)। 'अब हम कबहु न निज घर आये', वीरवाणी आती है। 'अब हम कबहु न निज घर आये, पर घर फिरत बहुत दिन बीते।' यह शुभ और अशुभ परिणति विकार की दशा। उसे मेरा मानकर और उसमें मैं अनन्त काल से घूम रहा हूँ। 'पर घर फिरत बहुत दिन बीते।' अनन्त काल गया, मनुष्यपना हुआ तो भी उसे आत्मा अन्दर राग और पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न चिदानन्दस्वरूप है, उसकी इसने निज घर की दृष्टि कभी... कभी... कभी... कभी... की नहीं। आहाहा! समझ में आया? 'पर पद निज पद मान मगन है, पर पद निज पद..'

यह शुभ और अशुभ विकल्प है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ की वृत्तियाँ हैं, वे भी पर पद हैं। वे निज पद नहीं। और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प जो उठता है, वह भी पर पद है। वह निज पद नहीं। भारी कठिन काम। समझ में आया? 'पर पद निज पद मान मगन है, पर पद निज पद...' भगवान आत्मा तो शरीर, वाणी यह मिट्टी, धूल से तो अत्यन्त भिन्न है। ऐसा अन्दर में पुण्य और पाप के विकल्पों की वासना वृत्ति उठे, उससे भगवान आत्मा तो

भिन्न है। क्योंकि जो शरीर और कर्म आदि हैं, वे तो अजीवतत्त्व हैं। और शुभ और अशुभभाव जो होते हैं, वे तो आस्रवतत्त्व हैं। आस्रवतत्त्व, अजीवतत्त्व से आत्मा तो ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। समझ में आया? 'पर पद निज पद मान मगन ह्वै, पर परिणति लपटाये।' अरे रे! पुण्य और पाप के विकारी भाव मेरे, ऐसा मानकर अज्ञानी उसमें लिपट गया है। समझ में आया? आहाहा!

साधु अनन्त बार हुआ, बाह्य त्याग अनन्त बार किया परन्तु अन्तर भगवान आत्मा आनन्दकन्द जो निजानन्द प्रभु, उससे विरुद्ध की वृत्तियाँ जो पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ है, उससे भिन्न दृष्टि की नहीं; इसलिए परपरिणति को मेरी (निज) मानकर उसमें लिपट गया। कहो, न्यालभाई! घड़ियों में लिपट गया, ऐसा कुछ नहीं यह। ऐ पूनमभाई! तुम्हारे मकान का है, लो न। बाईस मंजिल के मकान बनाते हैं, ऐसा नहीं। वह तो परवस्तु, अजीवतत्त्व है। अजीव का अस्तित्व अजीव में अजीवपने के कारण है। वह अजीवपने का अस्तित्व जीव के कारण नहीं और जीव की दशा में से अजीवपने का अस्तित्व नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह शरीर, कर्म, यह वाणी, यह पदार्थ, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, स्त्री, कुटुम्ब आदि परवस्तु, उस पर में भगवान आत्मा नहीं और आत्मा की वर्तमान दशा में वह परपदार्थ नहीं। बराबर है? यह तो समझ में आये ऐसा है। यह कहीं ऐसा नहीं तुम्हारे... आहाहा! परन्तु वह विकारी परिणति विकल्प उत्पन्न करके, शुभ-अशुभ वासना खड़ी करके लिपट गया। व्यभिचारी हो गया। आहाहा! समझ में आया?

'शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर।' कैसा है प्रभु अन्दर? शुद्ध है, पवित्र है, बुद्ध है। यह ज्ञान का कन्द, ज्ञान का पुंज, ज्ञान का कन्द है और सुखकन्द है। जैसे शक्करकन्द जैसे रस का कन्द है वैसे भगवान आत्मा अन्तर में उसका स्वरूप तो आनन्दकन्द है। आहाहा! कहाँ खोजना? कहाँ है, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? 'शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर, आतम गुण नहीं गाये।' ऐसे आत्मा के गुण को कभी एकाग्र किया नहीं। गुण गाये का अर्थ यह है। मेरा आत्मा भगवान आनन्द का कन्द प्रभु है। जितने केवलज्ञानी पूर्ण परमात्मदशा को प्राप्त हुए, वे सब दशायें आयी कहाँ से? कहीं बाहर

से आती है ? आहाहा ! क्या राग के, पुण्य-पाप के परिणाम में से वह दशा आती है ? शरीर, वाणी यह जड़ है, जड़रूप रहे हैं । यह शरीर जड़रूप रहा है जड़ होकर । उसमें केवलज्ञान की प्राप्ति का उपाय उसमें है ? समझ में आया ?

ओहो ! भगवान आत्मा केवलज्ञान और सुख का तो कन्द है, प्रभु ! उसमें एकाग्र होने पर प्रथम तो सम्यग्दर्शन अनुभव होता है कि, ओहो ! आत्मा शुद्ध और पूर्ण सुख का कन्द है । ऐसे अन्तर सम्यग्दर्शन में आनन्द के स्वाद का भान आवे, तब उसे आत्मा का धर्म और सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसा कहने में तब आता है । समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! 'नर पशु देवन को निज मान्यो, नर पशु देवन,' शरीर मिले, वे तो जड़ हैं । परन्तु अन्दर गति 'नर पशु देवन को निज मान्यो, परजयबुद्धि कहायो ।'

एक समय की अवस्था अन्दर की राग-द्वेष के परिणाम, वह पर्यायबुद्धि, वह अवस्थाबुद्धि, मिथ्यात्वबुद्धि में परिणम गया, कहते हैं । परन्तु भगवान आत्मा अन्दर ध्रुव चिदानन्दस्वरूप है । उसकी एक पल भी कहीं नजर और नजर की नहीं । आहाहा ! प्रेमचन्दभाई ! सत्य होगा यह ? एकदम सत्य ? गजब परन्तु यह सब । अभी तो दूसरा सुनाई देता है न सब बाहर में तो यह दूसरा सुनाई देता है । भगवान ! तेरी जाति कोई अलग है, भाई !

कहते हैं 'अमल अखण्ड अतुल अविनाशी चेतन भाव न भाये' भगवान अन्दर वस्तु है, वह तो अमल-निर्मल है । निर्मल है तो उसमें से निर्मलपना प्रगट होता है । समझ में आया ? (छोटी) पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट और हरा रंग भरा हुआ है । वह कहीं बाहर से नहीं आता । घोंटने से कहीं बाहर से नहीं आता । घोंटने से आवे तब तो कंकर घोंटना चाहिए, तो उसमें से आना चाहिए । उसमें है कहाँ भाई ! उस छोटी पीपर के अन्दर में चौंसठ पहरी चरपराहट और हरा रंग भरा है । उसमें से बाहर दशा में आता है । ऐसा यह भगवान आत्मा छोटी पीपर का क्षेत्र छोटा, रंग काला, और चरपराहट में अल्प, परन्तु अन्दर में उसकी चौंसठ पहरी चरपराहट और हरा रंग परिपूर्ण पड़ा है ।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा अमल है । अन्दर परिपूर्ण निर्मलता भरी है । अरे ! कैसे जँचे ! समझ में आया ? अमल, अखण्ड एकरूप वस्तु है यह । और अतुल-जिसे कोई उपमा (नहीं दी जा सके) । किसकी उपमा देना उसे ? उसकी उपमा उसे ।

अविनाशी—नाश नहीं जिसका त्रिकाल ऐसी ध्रुव चीज़ भगवान नित्यानन्द प्रभु! 'चेतन भाव न भाये।' ऐसे ज्ञान के-आनन्द का आत्मतत्त्वभाव कभी भी अन्तर्मुख होकर उसमें एकाग्रता नहीं की। समझ में आया ?

'हित न हित कछु समझो नांही।' हित और अहित क्या है, कुछ समझा नहीं। हित भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है। उसमें एकाग्र होना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, रमणता, वह हित है। तथा पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ जो वृत्तियाँ उठती हैं, वे सब अहित हैं। समझ में आया ? 'हित न हित कछु समझो नांही, मृगजलवत् ज्यों धाये।' यह मृग पानी नहीं वहाँ मृगजल में पानी देखकर खारी जमीन में सूर्य की किरणें पड़ने से मानो जल हो, ऐसा दिखाई देता है, परन्तु जल है नहीं।

इसी प्रकार भगवान आत्मा 'मृगजलवत् ज्यों धाये।' इस शरीर में और स्त्री में और परिवार में और इज्जत में और पुण्य तथा पाप के भाव में मुझे कुछ ठीक है, ऐसा मृगजल जैसा अनादि से अज्ञान से धाया। पूनमचन्दभाई! क्या कहते हैं यह ? अरे! अरे! गजब बात यह तो! वहाँ तो तुम्हारी महिमा चलती हो बड़ी, हों, हैं ? धूल में भी नहीं। यह बराबर कहते हैं तुम्हारे पिता। यहाँ तो भगवान कहते हैं कि सुन न अब! पैसे भी कहाँ तेरे थे ? शरीर कहाँ तेरा था ? वह तो पैसा पैसे के होकर रहे हैं। वह अजीव होकर रहा है या तेरी जीव की दशा में आकर रहा है ? अजीव होकर रहा है। यहाँ तो भगवान इससे दूसरी बात करते हैं कि पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत विकल्प वृत्ति उठती है वह। यह करूँ, यह करूँ। वह वृत्ति भी आस्रवतत्त्व में आस्रवरूप से रही है। वह आत्मतत्त्व में आये नहीं। आहाहा! क्या हो ?

जगत ने जीवतत्त्व भगवान ने कहा हुआ क्या है, वह सुना नहीं, समझना नहीं। समझ में आया ? और धर्म करना है, ऐसा मानते हैं। धूल में भी जैन कहना किसे ? थैली में चिरायता हो और ऊपर लिखे शक्कर, इसलिए चिरायता कड़वा मिट जायेगा ? चालीस रुपये की मण शक्कर। चालीस रुपये की मण शक्कर, बोरी पर लिखा। बोरी में चिरायता कड़वा जहर। यह सुदर्शन (वटी) आता है न कड़वा, देखो न! कैसा होता है ? हैं ? अन्दर में सुदर्शन भरा हो, ऊपर लिखे शक्कर। इसी प्रकार जैनपना क्या है,

उसकी इसे खबर नहीं। और हम जैन हैं, वह तो बोरी (थैली) के चिरायता पर शक्कर लिखने जैसा है।

जैन तो परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव उसे ऐसा कहते हैं कि यह अहित पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे अहित हैं। परवस्तु तो पर में रही है। मेरी चीज़ तो पुण्य-पाप से भिन्न अखण्ड-आनन्दकन्द है। उसे अन्दर में 'मृगजलवत् जो धाये।' उसमें न आकर पुण्य और पाप के विकल्प में धायो—दौड़ा। उसमें कुछ है, उसमें कुछ है। इसमें आत्मा का कुछ कल्याण, हित है। 'ज्ञान पद निज निज पर परवे, सद्गुरु बैन सुनाये, ध्यानतराय।' कवि द्यानतराय हुए हैं। अब निज निज पर परवे...

भगवान आत्मा तो ज्ञानानन्द की ज्योति प्रभु चिदानन्द ध्रुव है और पुण्य-पाप के विकल्प राग, वह तो पर है। ऐसा सद्गुरु ने बताया है। ऐसा परमेश्वर केवलज्ञानी और सन्तों ने यह बात परमात्मा के घर से कही है। समझ में आया? सुनने को मिले नहीं वह समझे कब, विचार करे कब और प्रयोग करे कब? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि जो प्राणी एकेन्द्रियरूप से दुःखी है इस प्रकार, फिर आया त्रस हुआ, त्रस कहते हैं। दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय—मनुष्य, देव, नारकी, पशु-ढोर, उसे कुछ वीर्य का विकास है। एकेन्द्रिय की अपेक्षा पंचेन्द्रिय प्राणी को या दो इन्द्रिय को कुछ पुरुषार्थ की जागृति है। इससे वह पुण्य और पाप के राग और कर्तासहित हर्ष-शोक को भोगता है। वह कार्यचेतना है। त्रस से लेकर दो इन्द्रिय से लेकर मनुष्य और देव अज्ञानी अपने स्वभाव के आनन्द को भूलकर अकेले पुण्य और पाप के कार्य के विकार को करते हैं। वे कर्म में चेत गये हैं। विकार में चेत गये हैं। वे विकार में जागृत हो गये हैं। समझ में आया? अरे! अरे! गजब बातें यह तो।

कहते हैं कि त्रस जीव तो मनुष्य आदि हो या देव हो। धनाढ्य कहलाते हों या गरीब कहलाते हों, लट कहलाती हो या इन्द्र कहलाते हों। समझ में आया? कहते हैं कि, उनके तो कार्य में एकाग्र हो गये हैं। कौन सा कार्य? पर का नहीं। शुभ और अशुभ, पुण्य-पाप के विकल्प जो उठते हैं शुभ-अशुभराग। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम वह पुण्य है। हिंसा, झूठ, पाप, उसमें भी अज्ञानी चेत गये हैं। उसमें रुक गये हैं। उस कार्य

को, विकार के कार्य को कर्मचेतना को करते हैं। पर का कुछ करते नहीं। आत्मा के आनन्द का करना उसके घर में है नहीं। समझ में आया ? यह दो बातें हुईं। अब, तीसरी।

यहाँ आया है, यहाँ अपने, देखो ! कि जो ज्ञान अपने से अव्यतिरिक्त स्वाभाविक सुखवाला है उसी को—चेतते हैं,... अब ज्ञानी-धर्मी वह अपना स्वभाव राग और द्वेष के पुण्य-पाप के (भाव की) वर्तमान अस्ति होने पर भी, उससे मेरी अस्ति चैतन्य भगवान की भिन्न है। ऐसा भगवान ने कहा है और ऐसा वस्तु का अस्तित्व है। इस प्रकार अपने आत्मा में ज्ञानस्वरूपी भगवान में चेतता है, एकाग्र होता है, उसे ज्ञानचेतना अर्थात् आत्मचेतना अर्थात् आत्मा के धर्म की चेतना, उसे कहा जाता है। अरे ! गजब बात, भाई ! समझ में आया ? यह धर्मचेतना। वह कर्मफलचेतना, एकेन्द्रिय (को) और त्रस को कर्मचेतना। धर्मी को सम्यग्दृष्टि जहाँ से हुआ मनुष्य हो, देव हो, नारकी हो, पशु हो।

भगवान आत्मा निजतत्त्व में तो आनन्द, शान्ति और ज्ञान की मूर्ति प्रभु है। वह पुण्य-पाप के विकल्प के राग के कर्तृत्व और फल से भिन्न है। ऐसा जहाँ अन्तर में सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली दशा प्रगट होती है, धर्म की पहली दशा, वह आत्मा को चेतती है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसे जरा राग और द्वेष और पुण्य-पाप होने पर भी उनमें ज्ञानी को एकाग्रता नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

क्योंकि उन्होंने समस्त वीर्यान्तराय के क्षय से अनन्त वीर्य को प्राप्त किया है... अब यहाँ सर्वज्ञ को लिया है। सम्यग्दर्शन में, धर्म की पहली दशा में राग, विकल्प, शरीर, अजीव और आस्रवतत्त्व से भिन्न हूँ, ऐसा अन्तर में आनन्द के अनुभव का ज्ञान, उसे वीर्यान्तराय का क्षयोपशम है और पुरुषार्थ की जागृति है। तो उसे तो आत्मा के ज्ञान में स्वरूप की एकाग्रता का चेतन, चेतना-जागृत होना, वह जागृत दशा उसे वर्तती है। और आगे जाकर स्वरूप में एकाग्र होकर भगवान आत्मा चिद्घन, आनन्दकन्द प्रभु में एकाग्र होकर जिसने केवलज्ञान प्रगट किया, परमात्मा अरिहन्त हुए, अरिहन्त हुए, सिद्ध हुए, उन्हें तो कहते हैं कि **समस्त वीर्यान्तराय के क्षय से अनन्त वीर्य को प्राप्त किया है, इसलिए उनको (विकारी सुख-दुःखरूप) कर्मफल निर्जरित हो गया है...** परमात्मा अरिहन्त को विकार के परिणाम हट गये हैं, टल गये हैं, उन्हें है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

और अत्यन्त कृतकृत्यता हुई है। है, ७३ पृष्ठ पर है। इसमें कुछ सूझ पड़े, ऐसी नहीं है। वहाँ तुम्हारे घर में पुस्तकों में ऐसे रखा हो तो वहाँ। अभ्यास नहीं होता। उल्टे अभ्यास सब। ऐ पूनमभाई! यहाँ तो यह बात है। यहाँ कहीं मक्खन लगाने की बात यहाँ नहीं है। हें? यहाँ तो सेठ-सेठ के कारण निवृत्ति नहीं मिलती सुनने की। लो! हमारे कुंवरजीभाई को कहते थे न! रामजीभाई ने कुछ पूछा था कि, कुंवरजीभाई! तुमको सेठ कितने कहें? हजार बार, हजार बार तो नहीं परन्तु पाँच सौ बार तो कहे.... पालेज में दुकान थी। कुंवरजीभाई को कुंवरजी सेठ-कुंवरजी सेठ करे। बढ़ते... बढ़ते... बढ़ते... बढ़ गये। दो-दो, ढाई-ढाई लाख की आमदनी और तब साधारण थे दो रुपये में मण। महीना ले आते थे। उसमें से यह बढ़ गये। बढ़ जाये न लोग पूरे दिन सेठ हो, सेठ... सेठ... सेठ....। रामजीभाई ने पूछा तुम्हें कितनी बार कहते हैं वहाँ? यहाँ तुम्हें कोई सेठ नहीं कहता। कहे, हजार बार तो कहते होंगे या नहीं? हजार बार तो नहीं, पाँच सौ बार तो सेठ कहे। अब सेठ... सेठ कहे उसमें तेरा क्या भला हुआ? हें? सेठ तो उसे कहते हैं कि जिसने राग और पुण्य-पाप से भिन्न करके आत्मा की श्रेष्ठ दशा प्रगट की, श्रद्धा, ज्ञान, समकित में, उसे सेठ कहा जाता है। वह इसके बिना सब रंक और भिखारी है। आहाहा! बराबर होगा इसमें? जयन्तीभाई!

कहते हैं, भगवान आत्मा सर्वज्ञ होता है। प्रथम सम्यग्दर्शन अनुभव करके अन्तर स्वरूप में रमणता करके जब पूर्ण वीर्य प्रगट होता है, तब ज्ञान में पूर्ण एकाग्रता होती है और एकाग्रता होने पर उसमें अनन्त आनन्द भी साथ में होता है। और उसके साथ वीर्य पूर्ण उघड़ा हुआ है, इसलिए उस बल में अशुद्धता का जिसे नाश हुआ है। अत्यन्त कृतकृत्यपना हुआ है (अर्थात् कुछ भी करना लेशमात्र भी नहीं रहा)। अभी साधक समकित्ता को तो आत्मा शुद्ध चैतन्य की दृष्टि होने पर भी स्वरूप में स्थिरता की क्रिया बाकी है। यह सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त हुए, उन्हें यह कुछ करने का बाकी है नहीं। आत्मा में स्थिर हो गये। पूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन अन्तर स्वभाव के आश्रय से प्रगट करके स्थिर हो गये। कहो, समझ में आया? अब इसका दृष्टान्त देते हैं। यह तो ऊपर से बात की। किसे-किसे होता है, ऊपर से अपने बात की। ३९ न? गाथा ३९।

गाथा - ३९

सर्वे खलु कर्मफलं स्थावरकाया तसा हि कज्जुदं।

प्राणित्तमदिक्कंता णाणं विंदन्ति ते जीवाः॥३९॥

सर्वे खलु कर्मफलं स्थावरकायास्त्रसा हि कार्ययुतम्।

प्राणित्वमतिक्रान्ताः ज्ञानं विन्दन्ति ते जीवाः॥३९॥

अत्र कः किं चेतयत इत्युक्तम् ।

चेतयन्ते अनुभवन्ति उपलभन्ते विन्दन्तीत्येकार्थाश्चेतनानुभूत्युपलब्धिवेदनानामे-कार्थत्वात्।
तत्र स्थावराः कर्मफलं चेतयन्ते, त्रसाः कार्यं चेतयन्ते, केवलज्ञानिनो ज्ञानं चेतयन्त इति ॥३९॥

स्थावर कर्म फल भोगते, त्रस कर्मफल युत अनुभवे।

प्राणित्व से अतिक्रान्त जिनवर वेदते हैं ज्ञान को ॥३९॥

अन्वयार्थ :- [सर्वे स्थावरकायाः] सर्व स्थावर जीवसमूह [खलु] वास्तव में [कर्मफलं] कर्मफल को वेदते हैं, [त्रसाः] त्रस [हि] वास्तव में [कार्ययुतम्] कार्यसहित कर्मफल को वेदते हैं और [प्राणित्वम् अतिक्रान्ताः] जो प्राणित्व का (-प्राणों का) अतिक्रम कर गये हैं [ते जीवाः] वे जीव [ज्ञानं] ज्ञान को [विन्दन्ति] वेदते हैं।

टीका:-यहाँ, कौन क्या चेतता है (अर्थात् किस जीव को कौनसी चेतना होती है), वह कहा है।

चेतता है, अनुभव करता है, उपलब्ध करता है और वेदता है-ये एकार्थ हैं (अर्थात् यह सब शब्द एक अर्थवाले हैं), क्योंकि चेतना, अनुभूति, उपलब्धि और वेदना का एक अर्थ है। वहाँ स्थावर, कर्मफल को चेतते हैं; त्रस, कार्य को चेतते हैं; केवलज्ञानी, ज्ञान को चेतते हैं।

भावार्थ:-पाँच प्रकार के स्थावर जीव अव्यक्त सुख-दुःखानुभवरूप शुभाशुभकर्मफल को चेतते हैं। द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीव उसी कर्मफल को इच्छापूर्वक इष्टानिष्ट विकल्परूप कार्यसहित चेतते हैं। १ परिपूर्ण ज्ञानवन्त भगवन्त (अनन्त सौख्य सहित) ज्ञान को ही चेतते हैं॥३९॥

१. यहाँ परिपूर्ण ज्ञानचेतना की विवक्षा होने से, केवली भगवन्तों और सिद्धभगवन्तों को ही ज्ञानचेतना कही गई है। आंशिक ज्ञानचेतना की विवक्षा से तो मुनि, श्रावक तथा अविरत

गाथा - ३९ पर प्रवचन

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा॥३९॥

यह तो भगवान के घर के महासिद्धान्त हैं, भाई! केवली परमेश्वर वीतरागदेव ने देखे हुए, कहे हुए महासिद्धान्त और नियम हैं यह। लोगों को सुनने को मिलता नहीं और बाहर से सिरपच्ची में पड़े हैं और धर्म मानते हैं। ऐसे का ऐसा अनन्त काल उन्होंने गंवाया है। समझ में आया? नीचे इसका हरिगीत है।

थावर करम फल भोगते, त्रस कर्मफल युत अनुभवे।
प्राणित्व से अतिक्रान्त जिनवर वेदते हैं ज्ञान को ॥३९॥

इस ओर इसकी टीका :- यहाँ, कौन क्या चेतता है... आत्मा कहाँ-कहाँ क्या करता है, चेतता है। राग में चेतता है, दुःख में चेतता है या आत्मा में चेतता है। उसकी जाति कौन है, उसके लिये यह गाथा है।

चेतता है, अनुभव करता है,... अनुभव करता है अर्थात् प्राप्ति करता है। प्राप्ति करता है अर्थात् वेदता है—ये एकार्थ हैं... यह सब शब्द एक अर्थ में आते हैं। क्योंकि चेतना,... भगवान आत्मा चेतता है, पुण्य-पाप के भाव में एकाग्र होता है या हर्ष-शोक के फल में एकाग्र होता है। वह चेत गया राग और कर्म और फल में। और स्वयं आप चेत गया राग और द्वेष के विकल्प होने पर भी उनसे मेरी चीज़ आनन्दकन्द प्रभु भिन्न है। उसमें जो चेत गया, उसे भी यहाँ चेतना, अनुभूति, उपलब्धि और वेदना का एक अर्थ है। आहाहा!

किसकी प्राप्ति हुई? कि स्थावर कर्मफल को... प्राप्ति करते हैं, चेतते हैं,... स्थावर अर्थात् एकेन्द्रिय जीव। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, वह जीव है। वे क्या करते हैं? कर्मफल को चेतते हैं, कर्मफल का अनुभव करते हैं, कर्मफल को प्राप्त करते हैं,

सम्यग्दृष्टि को भी ज्ञानचेतना कही जा सकती है; उनका यहाँ निषेध नहीं समझना, मात्र विवक्षाभेद है, ऐसा समझना चाहिए।

कर्मफल को वेदते हैं। समझ में आया? यह राग का फल कर्मफल, इसलिए कहा न! राग-द्वेष के भाव, उसका फल दुःख। उसे वेदते हैं। समझ में आया? बुद्धि का विकास नहीं, वीर्य का उघाड़ नहीं; इसलिए वे प्राणी बेचारे अनादि के एकेन्द्रिय में पड़े हैं। यह जीव भी अनादि का एकेन्द्रिय में नित्य निगोद में ही था। उसमें से निकले, तब बाहर त्रस में आते हैं। अभी इतने जीव निगोद में पड़े हैं कि अनन्त काल से अभी लट हुए नहीं, लट हुए नहीं और लट होंगे भी नहीं। आहाहा! और ऐसे अनन्त जीव भगवान परमेश्वर तीर्थंकर केवलज्ञानी ने ऐसे जीवों की अस्ति एकेन्द्रिय में देखी है। समझ में आया?

ऐसा कहने का आशय यह है कि भाई! तू तो बाहर आया है न अब। तुझे अब निगोद में वापस जाना है या यहाँ तुझे सिद्धपद होना है? समझ में आया? आहाहा! 'प्रभु का मार्ग है सूरों का कायर का नहीं काम।' इसमें कायर-हीन का काम नहीं है। समझ में आया? कहते हैं, **स्थावर...** स्थावर जीव जो एकेन्द्रिय है। आता है न पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। वे कर्मफल को चेतते हैं। कर्म अर्थात् जड़ की बात यहाँ नहीं है। जड़कर्म तो अजीव है। उसे कहीं जीव वेदता नहीं। जीव तो अरूपी है। और कर्म तो जड़ रूपी है। वह अरूपी, रूपी को कैसे स्पर्श करे और वेदे? वह वेदे तो हर्ष-शोक के सुख-दुःख की कल्पना को वेदता है। ऐसी स्थावर जीव की जाति इस प्रमाण रही है। कहते हैं। समझ में आया?

'वचनमृत वीतराग के परम शान्त रसमूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' पुरुषार्थ हीन को, यह क्या कहते हैं—यह बात अन्दर में बैठती नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग होगा? समझ में आया? कहते हैं, **स्थावर कर्मफल को चेतते हैं...** बस! उसे तो हर्ष-शोक का, दुःख का। हर्ष अर्थात् यह कल्पना। जरा सुख कल्पना है न, शुभभाव आवे तो। निगोद के जीव को भी भगवान ऐसा कहते हैं (कि) एकेन्द्रिय जीव को निरन्तर शुभ-अशुभ... शुभ-अशुभभाव हुआ ही करते हैं। क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ। क्यों?—कि भगवान ने ऐसा देखा है कि क्षण-क्षण में वह—एकेन्द्रिय जीव साता-असाता बाँधा ही करता है। क्षण में साता, क्षण में असाता। साता वह शुभभाव से बाँधती है; असाता वह पाप से बाँधती है। ऐसे शुभ और अशुभभाव निगोद के जीव को,

जिसके मन नहीं है, वाणी नहीं, ऐसे प्राणी भी ऐसे सुख-दुःख की कल्पना के भाव चेतता है। कहो, समझ में आया? उसके भावफल को अनुभव करता है।

एकेन्द्रिय जीव को, आलू को अग्नि में डालो तेल की कढ़ाई में तो तेल की उष्णता को वह नहीं वेदता, ऐसा कहते हैं। क्योंकि तेल की उष्णता तो जड़ दशा है। उस तेल की उष्णता-उष्णपना, वह तो जड़ के अस्तित्व में रहा हुआ है। जड़ के अस्तित्व में रहा हुआ वह चैतन्य के अस्तित्व में कैसे आवे? समझ में आया? अरे! क्या कहे और क्या माने, कहते हैं। खबर नहीं होती। अनादि का पागल जैसा।

मुमुक्षु : पागल जैसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल जैसा ही है? ले! यह तुम्हारा लड़का। ऐई! ११ वर्ष का ही है, हों! वह पागल जैसा है, ऐसा कहता है। पूनमभाई!

मुमुक्षु : पागल जैसा नहीं, पागल ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल ही है, पागल जैसा नहीं, वापस ऐसा कहता है। जैसा नहीं। उसे उपमा नहीं देना, ऐसा कहता है। है न? ऐई! पागल जैसा नहीं। जैसा तो उपमा दी। पागल ही है। ऐई! है न? ऐई! जादवजीभाई! यह तुम्हारा पौत्र। यह भी कहते थे, यह हमारा लड़का आगे बढ़ जायेगा। पागल ही है। भगवान! तुझे पागलपन है, भाई! तुझे गहलता है। आहाहा!

स्थावर में तो फल के भोगने की गहलताई है अकेली, कहते हैं। समझ में आया? वह अग्नि को वेदता नहीं। गर्म पानी में एकेन्द्रिय जीव को ऐसे डाला तो उसे गर्म पानी का वेदन नहीं। गर्म पानी का अस्तित्व तो जड़ के अस्तित्व में है। उस जड़ का अस्तित्व वह चैतन्य की दशा में नहीं आता। चैतन्य की दशा में और हालत में तो मैं यह सुख-दुःख को भोगूँ, ऐसी कल्पना उसकी दशा में आती है। उसे वह वेदता है। आहाहा! अरे! कुछ खबर नहीं होती अभी। यह छुरा लगता है न यहाँ, कहते हैं। उस छुरे का वेदन जीव को नहीं है, वह तो जड़ है। और वह तो जड़ के अस्तित्व में छुरा और शरीर के टुकड़े होते हैं, वे तो जड़ के अस्तित्व में हुआ। वह आत्मा की पर्यायरूपी दशा में वह अस्तित्व नहीं आया। आहाहा! समझ में आया?

उसकी अज्ञानदशा में तो यह मुझे ठीक नहीं और यह मुझे ठीक है, ऐसी जो विकारी कल्पना करता है, वह उसके अस्तित्व में है, उसे वह वेदता है। आहाहा! समझ में आया? यह समझ में आये ऐसा है, हों! यह सादी भाषा है। इसमें कहीं बड़ा कोई,... परन्तु इसने सुना न हो न, इसलिए यह ऐसा लगता है कि यह क्या होगा? यह वह कैसा धर्म होगा? इन वीतराग का यह धर्म है। यह सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं परमात्मा अभी (विराजते हैं)। समझ में आया? तीर्थकररूप से। अनन्त तीर्थकर हुए, अनन्त होंगे। वे सब भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह कहे, (पागल) जैसा नहीं कहना, पागल ही है। ऐई! गजब बात, भाई! भाई! अपने आप कहा। भगवानस्वरूप है। ज्योति है न? आहाहा! समझ में आया?

भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, वह तो सच्चिदानन्द—सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द अर्थात् सुखरस। उसका वह भण्डार भगवान आत्मा है। उसे भूलकर एकेन्द्रिय जीव अकेले सुख-दुःख की कल्पना के विभाव, विकार दुःख की दशा को वेदते हैं। आहाहा! नहीं भगवान आत्मा का वेदन, नहीं उसे पर का वेदन। बराबर है यह? यह तो समझ में आये ऐसा है। सादी भाषा है। इसमें कहीं कोई ऐसी अटपटी और बड़े भंगभेद सीखे तो आवे, ऐसा कुछ है नहीं। यह तो सत् की प्रसिद्धि का जाहिर डंका-ढिंढोरा है। आहाहा!

स्थावर कर्मफल को चेतते हैं,... कर्म अर्थात् जड़ यहाँ नहीं लेना। भाव, विकारी भाव। निर्विकारी प्रभु, क्योंकि निर्विकार न हो तो निर्विकारीदशा आये कहाँ से? समझ में आया? केवलज्ञान वीतरागदशा, वह दशा है, पर्याय है, अवस्था है। वह आयी कहाँ से? पुण्य-पाप के विकल्प राग में से वह दशा आती है? वहाँ कहाँ है? अन्तर के स्वरूप में महाप्रभु अनन्त आनन्द और ज्ञान का कन्द सुखकन्द प्रभु है, उसमें एकाग्र होने से उसमें से प्रवाह आता है। उसका एकेन्द्रिय को तो भान नहीं। इसलिए वह दुःख को वेदता है।

त्रस कार्य को चेतते हैं,... यह त्रस जीव। दो इन्द्रिय लट। तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव, ढोर / पशु, नारकी, यह त्रस कार्य को चेतते हैं। अर्थात् उन्हें कोई वीर्य का विकास है, राग करूँ, पुण्य करूँ, पापभाव करूँ, ऐसे विकार भाव

के कर्म का कार्य वह करता है। धन्धे का कार्य करता नहीं। ऐ पूनमभाई! सच्ची बात होगी यह? अभी तो कुछ बाईस-बाईस मंजिल के बड़े बँगले होते हैं न? धूल में भी नहीं, वह तो अजीवतत्त्व है। भगवान तो यह कहते हैं कि वह तो अजीवतत्त्व होकर मकान रहे हैं। वह कहीं तेरे होकर रहे हैं और तेरे कारण होते हैं, ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब काम, भाई! यह तो बड़ी उथल-पुथल करते हैं न! धन्धा कितना उथल-पुथल का। ढोकला का और रुई का। आहाहा! समझ में आया?

प्रभु इनकार करते हैं, बापू! तुझे खबर नहीं। भाई! तेरे अस्तित्व में क्या होता है, इसकी तुझे खबर नहीं। जो दूसरी चीजों का अस्तित्व है, उसमें तेरा प्रवेश नहीं। इसलिए दूसरे के अस्तित्व का कार्य तुझसे नहीं होता। आहाहा! अरे! बात तो बहुत सीधी और मीठी है, परन्तु लोगों को सुनने मिलती नहीं न! ऐई डण्डे मारे उल्टे-सीधे फिर। ऐसे से ऐसे और ऐसे से ऐसे। आहाहा! भगवान! तू भूला है, कहते हैं, हों! तेरे निजघर को भूला है। त्रस होकर, मनुष्य होकर, देव होकर, नारकी होकर, हजार योजन का मच्छ होकर। स्वयंभूरमण समुद्र में भगवान हजार योजन के मच्छ कहते हैं। चार हजार कोस लम्बे। ऐसे असंख्य मच्छ वहाँ हैं। कहते हैं कि वे सब आत्मज्ञान बिना के जो हैं, उसमें भी असंख्य आत्मज्ञानी हैं। समझ में आया?

उस स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य मच्छ में असंख्यवें भाग में असंख्य आत्मज्ञानी जीव पशु में हैं। प्रेमचन्दभाई! आता है कहीं? ढाई द्वीप बाहर आता है न! हैं.... असंख्य वर्ष हुए परन्तु वे तो पहाड़ा हो गया। आहाहा! वे तिर्यच वहाँ आत्मज्ञानी हैं। पूर्व में कुछ भूल करके पशु तो हुए परन्तु फिर अन्दर से जागृत हो गये। ओहो! यह क्या? यह चन्द्र, सूर्य क्या दिखता है यह? अन्दर प्रतिमा जैसे मच्छ देखे। उसे देखकर यह क्या है यह? अन्दर में चैतन्यबिम्ब प्रभु भगवान आत्मा में अन्दर उतर जाते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न पड़कर आत्मा का अनुभव करके सम्यग्दृष्टि ऐसे असंख्य पड़े हैं, स्वयंभूरमण समुद्र में। उसे कहते हैं कि राग और द्वेष का कार्य उसके नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

मात्र जो प्राणी त्रस होकर दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। दो इन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया नहीं आता? हैं, एकेन्द्रिया, दो इन्द्रिया आता है या नहीं?

अभिया वतिया लेशीया, परन्तु इसका अर्थ भी कहाँ और कौन और क्या होगा ? विहुयरयमला, नहीं कहा था अभी। यह लोगस्स में आता है न विहुयरयमला ? अर्थ नहीं आवे तो दशा, विशा को लींबडी में विवाद हुआ। बहुत वर्ष की बात है। दशाश्रीमाली की बुढ़िया को अर्थ आवे नहीं। विहुयरयमला तो विशा रोय मर्या। ऐ परन्तु अपनी विवाद की बात लोगस्स में कहाँ से आयी यहाँ ? समझ में आया ? परन्तु अर्थ तो देखो, इसमें ? क्या है यह विहुयरयमला। विहुयरयमला शब्द है। वहाँ तो ऐसा कहा है कि विहुय विशेषे हुय अर्थात् टाले हैं जिसने। रयमला। रज अर्थात् आठ कर्म की जीव की धूल और मल अर्थात् पुण्य-पाप के मैल भाव। जिसने टाले और परमेश्वर हुए हैं, उन्हें मैं स्तवन करता हूँ, ऐसा वहाँ कहते हैं। तुमने किया होगा या नहीं ? हैं ? अब ? ऐई ! हुआ होगा पहले। हैं ? आहाहा ! मजदूरी की इतनी, कहते हैं।

राग और द्वेष, पुण्य और पाप के विकल्प, संकल्प-विकल्प को यह कार्यरूप करनेवाला अज्ञानी त्रसरूप से यह करता है। आहाहा ! नहीं करता अज्ञानी पर के कार्य। शरीर को हिलाना या वाणी का बोलना, यह नहीं कर सकता तथा नहीं करता वह आत्मा के आनन्द का वेदन। सम्यग्दर्शन नहीं और आत्मभान नहीं। इसलिए वह राग-द्वेष, पुण्य और दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध विकल्प जो उठता है, वह मेरा कार्य है, मैं उसका कर्ता हूँ। त्रिकाली द्रव्य को विकारी मानकर कर्ता होकर विकारी परिणाम का कार्य करता है। बस, इतना उसकी मर्यादा में है। इसके अतिरिक्त दूसरे का छिलका फिराना, आँख की पलक घुमाना वह आत्मा की पर्याय का अधिकार नहीं है। आहाहा ! अरे ! समझ में आया ?

ऐसे बोले उसमें। अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व, जीव को अजीव माने तो मिथ्यात्व। लोग बोलते हैं न ! हैं ? परन्तु यह जड़ की क्रिया, यह अजीव है और उसे आत्मा करे, यह मानना मिथ्यात्व है। इसकी तो उसे खबर नहीं। आहाहा ! भाषा तो पहाड़े बोले जाये। पच्चीस मिथ्यात्व नहीं आता ? कुसाधु को साधु माने, परन्तु कुसाधु किसे कहा जाता है, उसकी खबर नहीं होती। साधु किसे कहा जाता है, उसकी खबर नहीं होती। यह क्रियाकाण्ड करे, वह साधु। यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य-पाप के परिणाम करे, वह कर्ताबुद्धि अज्ञानी कायकृत... का कर्ता है। वह धर्मी नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

क्या कहा ? तीन शब्द में पूरा रख दिया। अनन्त जीवों की संख्या में तीन जाति। एक स्थावर जीव की जाति। हर्ष-शोक को अनुभवता है, दुःख को। यह हर्ष अर्थात् सुख की जिसमें कल्पना। पैसा-बैसा हो न, स्त्री अनुकूल हो न, फिर मानता है न हम सुखी हैं, यह कल्पना है कल्पना। सुख की नहीं। यह कल्पना दुःख है। समझ में आया ? हैं ? यह कल्पना दुःख है। सुख अर्थात् मानता है न यह ? अभी हम सुखी हैं। हमारे बादशाही है। किसकी बादशाही है, धूल की ? धूल कहाँ तेरी चीज़ थी, वह बादशाही तुझमें आ जाये। अरे ! कठिन, ऐई पाटनीजी !

बादशाही तो प्रभु उसे कहते हैं। यह तीसरे बोल में लेंगे। यह तो दूसरे बोल की बात है न ? त्रस, मनुष्य, देव, पशु और नारकी। अज्ञानी राग और पुण्य-पाप के शुभभाव, विकल्प को, विकल्प के कर्तृत्व के कार्य को करता है। उसकी प्रधानता राग-द्वेष करने के कार्य की है। गौणरूप से उसका दुःख भोगता है, उसकी मुख्यता नहीं। एकेन्द्रिय को करने की मुख्यता नहीं। भोगने की मुख्यता है। करे तो वह भी राग-द्वेष करता है अज्ञान। समझ में आया ? वह भी दुःख भोगता है और यह भी दुःख भोगता है। परन्तु राग-द्वेष करे।

भगवान तो ज्ञानमूर्ति प्रभु है। अनाकुल आनन्द का रस का कन्द आत्मा है। उसकी नजर जहाँ नहीं, उसकी नजर में तो यह पुण्य और पाप के विकल्पों की वासना खड़ी होती है, वह मैं और वह मेरा कर्तव्य। बराबर होगा छगनभाई ! यह सब कार्यकर्ता कहते हैं न, कार्यकर्ता क्या किया तुमने ? वांकानेर में कार्यकर्ता कहलाते हैं। यह सब नेता कहलाते हैं। पंचशील ऐसा करे। धूल भी करता नहीं, सुन न ? सड़कें बनावे और कुंए खुदाते हैं न, हैं ? बनावे, कौन बनावे, यहाँ कहते हैं। धूल भी नहीं बनाता। वह तो रजकण की पर्याय रजकण से रजकण में हुई है। तेरे अस्तित्व में वहाँ अस्तित्व की ऐसी दशा हुई है ? आहाहा ! भारी भ्रम अज्ञानी का ! समझ में आया ?

अजीव और जीव को दोनों को एक मानता है। ऐसा अज्ञानी करे तो क्या करे ? कार्य को चेतता है। कार्य अर्थात् विकारी भाव को वेदता है और वहाँ चेत जाता है। ऐसे ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा की धर्म की दृष्टि का चेतना, उसे नहीं है। गजब व्याख्या, भाई ! समझ में आया ? अरे ! परमेश्वर ने कहे हुए तत्त्वों की भी इसे खबर नहीं होती

और मानता है कि भगवान ने कहा वह सच्चा। परन्तु तुझे खबर तो नहीं, और सच्चा कहाँ से आया? भगवान क्या कहते हैं, इसकी तो खबर नहीं। समझ में आया?

इसे नहीं देव की खबर, नहीं गुरु की खबर। गुरु कैसे होते हैं और क्या कहते हैं और क्या बात को बतलाते हैं? शास्त्र किसे कहते हैं, उसकी भी इसे खबर नहीं। यह शास्त्र तो ऐसा कहते हैं, देव ऐसा कहते हैं और गुरु तो ऐसा कहते हैं। कहे, त्रस जीव कार्य करे तो मात्र अपनी दशा में, अवस्था में शुभ-अशुभ संकल्प, विकल्प को करे। इसके अतिरिक्त कोई भी छिलका फिरा सके, यह तीन काल में नहीं होता। कहो, समझ में आया इसमें? कितने बोल याद रखना इसमें? एक घण्टे। तो ऐसी वार्ता हो तो जरा याद रहे। यह तो दो और दो=चार जैसे सीधे शब्द हैं। एक से दस तक के जैसे अंक हैं, उसके बाद सब अंक हैं सब गिनती के। यह सिद्धान्त तत्त्व है।

भगवान आत्मतत्त्व आनन्दस्वरूप है। उसे भूलकर त्रस जीव मनुष्य और देव, पशु और नारकी अपनी दशा में कार्य को करे, विकार को करे। उस विकार को करे और उसके साथ उसके दुःख को भोगे। कहो, समझ में आया? कंथवा या कुंजर—हाथी, गरीब या धनवान, नारकी और देव सब पुण्य-पाप के विकल्प में कर्ताबुद्धि में पड़े हैं। उस विकार के कार्य को करते हुए दुःख को वेदते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! जादवजीभाई! यह सब पैसेवाले को लोग सुखी कहते हैं न?

मुमुक्षु : लोग कहते हैं और भगवान इनकार करते हैं, हमारे क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल पागल को कहते हैं कि यह। पागल पागल को कहते हैं कि यह सुखी है, पागल। आहाहा!

भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव 'केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं' आता है न मांगलिक में? वह कौन सा धर्म? आहाहा! समझ में आया? यह पुण्य और पाप के विकल्प के कार्य की रुचि छोड़कर और आत्मा आनन्दकन्द की रुचि करके जो ज्ञान और आनन्द का वेदन हो, वह 'केवलीपण्णत्तो धम्मो' जीव को शरण है। कहो, बराबर होगा या नहीं? यह ब्लडप्रेसर हो, तब क्या होता है, खबर है या नहीं? आहाहा! देखो न! यह शान्तिभाई लींबडीवाले अभी। शाम तक यहाँ थे। पौने आठ बजे तक। लो!

शान्तिलाल खीमचन्द, लींबडी। हैं ? वढवाण के। शाम तक थे। साढ़े बजे को गये। साढ़े नौ नीचे उतरे। कुछ पेट में जरा सा। बारह बजे समाप्त! यह छठ, छठवीं के दिन। बारह बजे समाप्त! अभी दर्शन कर गये हिम्मतभाई के साथ। कैसे कहलाते हैं ? जे. हिम्मतलाल हैं न ? बड़े व्यापारी लोहखण्ड के व्यापारी, उनके साथ आये थे। दोनों कामकाज वहाँ मन्दिर होता है न कामकाज... क्षण में देह छूट गयी। क्या हो ? यह शरीर ठण्डा पड़ने लगा, लो। लो, अपने प्रेमचन्दभाई को तो एक सेकेण्ड। प्रेमचन्द मगनलाल-महासुखभाई के पिता। एक सेकेण्ड में यहाँ बैठे थे, व्याख्यान सुना। रामजीभाई के साथ घर गये। घर में वहाँ से काकी के पास गये। खाने बैठे। कहा, मुझे रोटी की रुचि नहीं है। चावल और कुछ खाकर जरा सो रहे थे, वहाँ पैर-पैर दाबते थे। पेशाब करने उठे। सोते हुए फू... हो गया। लो। यहाँ आये कि यह प्रेमचन्दभाई को कुछ ठीक नहीं है। ठीक नहीं क्या, निपट गया है। आहाहा! ऐसा ही कहे न ? आहाहा!

भाई! यह जड़ की अवस्था जिस काल में होनेवाली है, उसे कोई बदल नहीं सकता। वह आत्मा का कार्य नहीं। परन्तु इसे जँचे कैसे ? पूरे दिन अभिमान (कि) 'मैं करूँ... मैं करूँ यही अज्ञान है, गाड़ी का भार ज्यों श्वान खींचे।' गाड़ी सब बड़ी सौमण की गाड़ी, उसे बैल हाँकते हों और नीचे कुत्ता हो, सिर पर छूता हो थोड़ा-थोड़ा ठाटुं (कुत्ते को ऐसा भ्रम होता है कि गाड़ी) मुझसे चलती है। अरे ! गिरेगी तो कुचल जायेगा। चले क्या धूल, सुन न ? इसी प्रकार यह सब पर के काम यह पर की दया पालता हूँ और पर की हिंसा करता हूँ, यह काम आत्मा के नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? तेरा काम तो इतना कि शुभाशुभभाव को करना, यह तेरा कार्य, यह अज्ञानभाव में। आत्मा के भान में नहीं। आत्मा के भान में क्या होता है, यह फिर...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४०

अथोपयोगगुणव्याख्यानम् ।

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो।

जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि॥४०॥

उपयोगः खलु द्विविधो ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः।

जीवस्य सर्वकालमनन्यभूतं विजानीहि॥४०॥

आत्मनश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः । सोऽपि द्विविधः-ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्च। तत्र विशेषग्राहि ज्ञानं, सामान्यग्राहि दर्शनम् । उपयोगश्च सर्वदा जीवादपृथग्भूत एव, एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वादिति ॥४०॥

ज्ञान-दर्शन सहित चिन्मय द्विविध है उपयोग यह।

ना भिन्न चेतनतत्त्व से है चेतना निष्पन्न यह ॥४०॥

अन्वयार्थ :- [ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः] ज्ञान और दर्शन से संयुक्त ऐसा [खलु द्विविधः] वास्तव में दो प्रकार का [उपयोगः] उपयोग [जीवस्य] जीव को [सर्वकालम्] सर्व काल [अनन्यभूतं] अनन्यरूप से [विजानीहि] जानो।

टीका:-आत्मा का चैतन्य-अनुविधायी (अर्थात् चैतन्य का अनुसरण करनेवाला) परिणाम सो उपयोग है। वह भी दो प्रकार का है-ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। वहाँ, विशेष को ग्रहण करनेवाला ज्ञान है और सामान्य को ग्रहण करनेवाला दर्शन है (अर्थात् विशेष जिसमें प्रतिभासित हो, वह ज्ञान है और सामान्य जिसमें प्रतिभासित हो, वह दर्शन है।) और उपयोग सर्वदा जीव से *अपृथग्भूत ही है, क्योंकि एक अस्तित्व से रचित है॥४०॥

* अपृथग्भूत = अभिन्न। (उपयोग सदैव जीव से अभिन्न ही है, क्योंकि वे एक अस्तित्व से निष्पन्न हैं।

प्रवचन-४१, गाथा-४०, पौष शुक्ल १०, रविवार, दिनांक -१८-०१-१९७०

पंचास्तिकाय षट्द्रव्य । भगवान् केवलज्ञानी परमात्मा जो उन्हें केवलज्ञान शक्तिरूप से सर्वज्ञस्वभाव था, वह व्यक्तरूप अनुभव करके प्रगट किया । उन भगवान् ने इस जगत में छह द्रव्य और पंचास्तिकाय, क्योंकि छह द्रव्य में काल अस्ति है परन्तु काय नहीं । इसलिए षट्द्रव्य का स्वरूप और जीवास्तिकाय आदि पाँच का स्वरूप भगवान् ने देखा, वैसा वर्णन किया । उसमें जीव के स्वरूप का वर्णन चलता है । यहाँ आया है । चालीसवीं गाथा ।

अब उपयोग गुण का व्याख्यान है । यह जीव है जो आत्मा, उसमें उपयोग अनादि-अनन्त होता है । समझ में आया ? जानने-देखने के परिणाम उसे अनादि-अनन्त होते हैं । शरीर, वाणी, मन होता नहीं, वह तो पर है । वह कहीं इसकी चीज़ नहीं है । तथा कर्म जड़ है, वह भी इसके साथ अनादि-अनन्त होता नहीं तथा अन्दर में पुण्य-पाप का विकार हो, वह भी क्षणिक (है), अनादि-अनन्त नहीं है । यह आ गया है ।

मात्र आत्मा भगवान्, उसे जानने-देखने का जो उपयोग विशेष लक्षणवाला तत्त्व, वह उपयोग तो अनादि-अनन्त है । चाहे तो निगोद में अज्ञानरूप से हो तो उसे मति-श्रुत का अज्ञान होता है । चाहे तो सिद्ध हो तो केवलज्ञान और केवलदर्शन का उपयोग होता है । यह उसकी चीज़ है । ऐसा कहते हैं । समझ में आया ? कहते हैं, देखो ! ४० (गाथा) ।

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो ।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि ॥४०॥

नीचे हरिगीत-

ज्ञान-दर्शन सहित चिन्मय द्विविध है उपयोग यह ।
ना भिन्न चेतनतत्त्व से है चेतना निष्पन्न यह ॥४०॥

इसकी टीका— आत्मा का, चैतन्य-अनुविधायी (अर्थात् चैतन्य का अनुसरण करनेवाला) परिणाम सो उपयोग है । देखो ! अब व्याख्या ।

भगवान आत्मा में त्रिकाली ज्ञान और दर्शन उपयोग, शक्तिरूप उपयोग त्रिकाल है। समझ में आया? आत्मा वस्तु और जानने-देखने का जो स्वभाव, वह आत्मा में त्रिकाल है। उसके बारह प्रकार के परिणाम हैं, उसकी व्याख्या चलती है। समझ में आया? जीव का अस्तित्व सिद्ध करना है न? जीव अस्तिरूप से किसमें है? कि जीव अस्तिरूप से उसके उपयोग में है। अभी उपयोग की व्याख्या है न? अज्ञानरूप से राग-द्वेष में भी है। यह बात आ गयी।

अज्ञानरूप से पुण्य और पाप के विकल्प जो हैं, उनका कर्ता होता है। वह भी उसमें वह है अज्ञानी। और वह शुभ और अशुभ के, हर्ष-शोक का भोक्ता अनादि से है। वह भी है, परन्तु वह कहीं उसका अनादि-अनन्त स्वरूप नहीं। समझ में आया? जब तक राग-द्वेष करे, तब तक करे। भोगे, तब तक भोगे। वह तो क्षणिक वस्तु है। भगवान आत्मा चैतन्य सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो देखा, उसमें दर्शन और ज्ञान कायम असली पूर्ण स्वभाव से भगवान आत्मा को देखा। ऐसा शाश्वत् जो आत्मा का स्वभाव कि जिसके बिना यह आत्मा नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

कर्म बिना रह सकता है, शरीर बिना रह सकता है, विकार बिना रह सकता है, ऐसा उसका स्वभाव है। परन्तु उपयोग बिना रह सके, ऐसा उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? व्याख्या करते हैं जरा उपयोग की। **आत्मा का....** भगवान आत्मा वस्तु है। उसका चैतन्य गुण है। जानना-देखना, ऐसा गुण त्रिकाली गुण, शक्ति, सत्त्व, सत् का सत्त्व, सत्त्व है। आत्मा चैतन्य है, और उसके जानना-देखना वह चैतन्य का गुण है। समझ में आया?

यह पैसा प्राप्त करना और पैसा टालना, ऐसा उसका गुण नहीं है - ऐसा कहते हैं। है उसमें या नहीं? पैसा प्राप्त करना या नहीं?

मुमुक्षु : धूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है? आहाहा! परन्तु धूल बिना चलता है कुछ? हैं?

मुमुक्षु : आत्मा को तो सब वस्तु बिना चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा को दूसरी सब वस्तु बिना चलता है, ऐसा कहता है। देखो! यह लड़का कहता है, ग्यारह वर्ष का। देखो!

मुमुक्षु : बड़ा होगा न....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा वस्तु है।

भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा। वह तो निज सत्ता से शुद्ध प्रभु है। वह अपनी सत्ता से अस्तिरूप से तो स्वयं अत्यन्त शुद्ध और आनन्द है। ऐसे आत्मा को जो जानना-देखना, वह भी शुद्ध, त्रिकाली शुद्ध है। उसके बारह प्रकार की पर्याय-परिणाम हों, वे भी पर के कारण नहीं। अपने ज्ञानगुण और दर्शनगुण को अनुसरकर होते हैं, वह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? भाई! यह इन्द्रिय हो तो ज्ञान हो, आँख हो तो ज्ञान हो, मन हो तो ज्ञान होता है। नहीं, ऐसा नहीं। भले लेश्या हो अवलम्बन निमित्तरूप से, समझ में आया?

स्वयं भगवान आत्मा जागृत चैतन्य दर्शन-ज्ञान के स्वभाव से, स्वभाव से भरपूर वह तो सूर्य है। किसे खबर कहाँ होगा? समझ में आया? चेतन सूर्य है। यह उसका जैसे सूर्य का प्रकाश स्वभाव है, वैसे भगवान आत्मा का जानना-जिसमें विशेष प्रतिभास हो, जिसमें सामान्य विशेष प्रतिभास हो सामान्य। ऐसा एक आत्मा में जानना और देखना ऐसा अनादि-अनन्त गुण है। यह उसकी निधि और यह उसकी चीज़ है। लक्ष्मी और शरीरादि को जानना-देखना, यह उसका स्वभाव है। परन्तु लक्ष्मी को प्राप्त करना और रखना, यह उसका स्वभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। शोभालालजी! आहाहा! कठिन बात! तथापि हैरान... हैरान... हो जाता है अनादि से। आहाहा! हैं?

मुमुक्षु : मनुष्य हो तो रुपये तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य हो वह फिर मानो मुझे पैसे के बिना चलता नहीं, इसके बिना चलता नहीं, अपुत्र हो तो पुत्र बिना चलता नहीं और इसके बिना चलता नहीं। मर गया परन्तु उसके बिना चला, कहा नहीं? कोई भी पदार्थ भगवान कहते हैं और ऐसा होता ही है। नहीं तो वस्तु रह नहीं सकती। जो वस्तु है, वह अपने भाव में रही हुई है और परवस्तु के भाव के अभाव से रही हुई है। बराबर है? यह एक अँगुली है, यह

अँगुली है। यह अँगुली अँगुली से रही हुई है। और यह दूसरी अँगुली के अभाव से रही हुई है। दूसरी अँगुली नहीं इसमें, तब रही हुई है। दूसरी अँगुली इसमें हो तब तो दोनों एक हो जाती हैं।

इसी प्रकार आत्मा अपनेरूप से त्रिकाल है और पररूप से तो वह नहीं। पर बिना इसने चलाया है। बराबर होगा ? पर बिना इसने चलाया है। रोळव्युं है न, यह तो अपनी काठियावाड़ी भाषा है, चलाया है। यह तो बोटद में, यह प्रश्न हुआ था। हरजीवनभाई। हरजीवनभाई थे न समढीयाणावाले। नागरभाई के भाई। ऐसे स्वामीनारायण कहलाये। नागरभाई अपने जैन में थे। समढीयाणा बोटद के पास। पैसे बिना चले नहीं। महाराज ! आप कहते हो परन्तु हमारे पूरे दिन पैसे बिना चलता नहीं। पर बिना चलता नहीं और आप कहते हो कि पर की इसमें कुछ आवश्यकता नहीं है। ऐ शिवलालभाई ! तुम्हारे बोटद में। क्या कहलाती है वह मंजिल थी न म्युनिसिपलिटी की ? वहाँ प्रश्न किया थी। कहा, किसी चीज़ बिना चलता नहीं ?

आत्मा ने अपने बिना चलाया नहीं। परन्तु पर बिना तो अनादि से चलाया है। और पर इसमें है नहीं। परन्तु कभी खबर भी नहीं होती कुछ। यह तो यह सवेरे से शाम तक मजदूरी करना, कमाने की, खाने की, चलाने की। मरकर हो गया जाओ। परन्तु क्या है ? मैं एक आत्मा हूँ। भाई ! प्रभु कहते हैं और ऐसा है। तू तेरे बिना तेरे जानने-देखने के उपयोग के व्यापार बिना कभी रह नहीं सकता। समझ में आया ? परन्तु पर चीज़ बिना तो रहा हुआ ही है। बराबर होगा। ... भाई ! हैं ? आहाहा !

यह शरीर, यह वाणी, यह कर्म, इन सब चीज़ों का तो आत्मा में अभाव है। बराबर है ? शरीर आत्मा की किसी अवस्थारूप हुआ है ? लाडुलालजी ! यह तो मिट्टी है न... आहाहा ! परन्तु भारी भ्रमणा। स्त्री, पुत्र का आत्मा या उसका मकान कहलाये, वह उसके होकर रहे हैं ? या तेरी दशा में आ गये हैं ? उसके होकर रहे हैं। तेरे होकर तो रहे नहीं, तो तेरे हैं कहाँ उसमें ? बराबर है। ऐई नटुभाई ! आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि तेरे हों, वे तेरे बिना तू रह नहीं सकता और तेरा न हो, उसके बिना तू त्रिकाल रह सकता है। उपयोग बिना कभी रह नहीं सकता, ऐसा कहते

हैं। 'सर्वकालं' शब्द पड़ा है न? 'जीवस्स सर्वकालं आणणभूदं' भगवान आत्मा तीन काल में जानने-देखने के परिणाम के अतिरिक्त उसका अस्तित्व पृथक् हो नहीं सकता। जानने-देखने के परिणाम से अनन्यमय है, अस्तित्वमय दोनों का एक अस्तित्व है। आत्मा का अस्तित्व और जानने-देखने का अस्तित्व दोनों का अस्तित्व-होनापना एक है। हैं? आत्मा का अस्तित्व और शरीर, कर्म, स्त्री, पुत्र का अस्तित्व, दोनों का अस्तित्व एक है—ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

परन्तु इसके भारी भ्रम घुस गया है न! उसमें मनुष्य हुआ और कुछ पंचेन्द्रिय हुआ और कुछ उघाड़ हुआ। हो गया। हैं? अरे! मैं कहाँ हूँ, कहाँ जाऊँगा, क्या होता है, क्या होगा - सब भूल गया। आहाहा! क्षण में देह छूटकर अन्यत्र कहीं जाना है और देह छूटा हुआ ही पड़ा है, इसका होकर रहा नहीं। क्षेत्रान्तर दूर हो, तब ऐसा लगता है कि यह अब इससे मैं पृथक् पड़ा। पृथक् तीनों काल है, वह पृथक् पड़ता है। उपयोगरहित आत्मा कभी रहे, ऐसा नहीं होता। आहाहा! इसका अर्थ यह कि जब-जब इसे संयोग जिस प्रकार के दिखाई दे, उन्हें जाने-देखे, उसके परिणाम वे इसके हैं। भाई! ऐसा कहते हैं मूल तो। भले मिथ्याश्रद्धारूप से ऐसा माने कि ये मेरे हैं, परन्तु उसे जाने, दिखाई दे वह उसके परिणाम हैं। मिथ्याश्रद्धा है तो ऐसा मानता है कि यह मेरे हैं, मेरे हैं, मानता है। परन्तु ये जाने-देखे वे इसके परिणाम हैं और मेरे हैं, वह भी इसके परिणाम मिथ्यात्व के हैं। समझ में आया?

आत्मा का, चैतन्य-अनुविधायी (अर्थात् चैतन्य का अनुसरण करनेवाला) परिणाम... परिणाम अर्थात् अवस्था; परिणाम अर्थात् पर्याय, सो उपयोग है। अभी यहाँ पर्याय का उपयोग (कहना है)। त्रिकाल उपयोग है, वह तो त्रिकाल है। आहाहा! यह तो प्रगटरूप से भगवान आत्मा का जो चैतन्यगुण है, जानने-देखने का स्वभाव है, उसे अनुसरकर परिणाम होते हैं। शरीर, वाणी, कर्म को अनुसरकर यह जानने-देखने के परिणाम नहीं होते।

मुमुक्षु : इन्द्रिय को अनुसरकर?

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय को अनुसरकर भी नहीं होते। मन को अनुसरकर, वह

तो परवस्तु है। भगवान तो अन्दर भिन्न है। आहाहा! भिन्न को भिन्न की खबर नहीं होती। अनादि से अज्ञानी की भ्रमणा। तब कहते हैं भान हुआ हो, वह तो सब छोड़कर चला जाये या नहीं? बाहर निकल जाये न? वन में चला जाये या नहीं? वन में कहाँ जाना था? वन में भी दूसरी चीज़ जहाँ है, वहाँ तो सब पड़ी ही है। जहाँ है, वहाँ से दृष्टि पर में से उठाकर मुझमें मैं हूँ। पर में मैं नहीं। बस, यह दृष्टि बदली, ज्ञानी चाहे जिस क्षेत्र और काल, भाव में दिखाई दे। समझ में आया? वह आत्मा में ही है। समझ में आया?

और अज्ञानी तो है तो आत्मा के परिणाम में जहाँ-तहाँ। परन्तु मानता है कि मैं यह देव में हूँ और यह हूँ और यह हूँ। उसके जानने-देखने के परिणाम में वह है। उसमें नहीं, तथापि मानता है कि उसमें मैं हूँ। आहाहा! कहो, समझ में आया? कहते हैं कि आत्मा का चैतन्य को अनुसरण करनेवाला, चैतन्य से उत्पन्न होनेवाला परिणाम-पर्याय, उसे भगवान उपयोग कहते हैं। कहो, समझ में आया? ऐसा कहने से कि भाई! यह अधिक संयोग है, इसलिए इस प्रकार के जानने-देखने के परिणाम उन्हें अनुसरकर हुए, ऐसा नहीं है। इस प्रकार ही हो जाये, इसलिए तो यह बात करते हैं। कहते हैं न लड़कों को बाहर घुमाते हैं। क्या कहलाता है वह? पर्यटन। पर्यटन में बुद्धि आती है। धूल भी नहीं आती सुन न! वह तो यहाँ बात करते हैं। क्योंकि भगवान आत्मा का चैतन्यगुण, उसे अनुसरकर स्त्राव होता है। पर को अनुसरकर उस काल में नहीं होता। कहो, समझ में आया?

कुछ दिखता नहीं। मानता है भ्रम में। बुद्धि के बारदान जैसा हो भले घूमे साथ में। छह-छह हजार रुपये डालकर आवे। उसे क्या कहलाता है वह? रेली पर्यटन में, पर्यटन में घूमते हैं न? हैं? ट्यूर। जो कहे वह। वह भटकना। बुद्धि साधारण हो फिर ऐसे के ऐसे बुद्धि लेकर आवे। उसमें कुछ बढ़ता नहीं। वह तो अपने परिणाम अपने से होते हैं, किसी पर के कारण नहीं होते। जैसे लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये देश से परदेश में जाये तो वहाँ लक्ष्मी मिले, ऐसा मानता है। उसी प्रकार यहाँ मानो बहुत घूमा हो तो बुद्धि खिले। धूल में भी नहीं। पैसा, वह भी उस पूर्व का पुण्य हो तो आते हैं। वहाँ देश

में जाये या परदेश में जाये। इसी प्रकार तेरे जानने-देखने के भाव भी चाहे जहाँ जाये तेरा ज्ञान, दर्शन के गुण को अनुसरकर होते हैं। आहाहा! यह अक्षर को अनुसरकर नहीं होते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! अक्षर को अनुसरकर, वह वाणी को अनुसरकर जानने-देखने के परिणाम नहीं होते, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

क्या कहा? देखो! एक शब्द में तो पूरा महासिद्धान्त है। द्रव्य, गुण और पर्याय तीन सिद्ध किये हैं। नवरंगभाई! आहाहा! आत्मा, वह द्रव्य है। द्रव्य अर्थात् वस्तु, पदार्थ। चैतन्य उसका गुण है। जानना-देखना उसका शक्ति स्वभाव है। उसे अनुसरकर उसमें से जानने-देखने के परिणाम उपादान से स्वतन्त्र होते हैं। इसमें यह निमित्त उड़ जाता है। वह कहे, चश्मा हो तो दिखता है। अरे, लो! करो चर्चा, कहे। लींबडी में। चन्द्रशेखर। चन्द्रशेखर न? आया था। चर्चा करो। बापू! चर्चा किसकी भाई! मार्ग सूक्ष्म है। देखो! सूक्ष्म-सूक्ष्म कहकर तुम्हारे ऐसा कहकर, यह तुम्हारे भक्त समझते नहीं और समझेंगे। उन्हें तुम समझाओ। ये समझने आये हैं और यह तो तुम्हारे तो आड़ी बात करे, अरे! भाई! लो, यह चश्मा उतार डालो। चश्मा उतारे तो दिखेगा? चश्मे को अनुसरकर उपयोग का भाव होता है, ऐसा वह कहता है। यहाँ भगवान इनकार करते हैं। लो! बराबर है? यह सबका कहते थे। देखो! यह सबको देखो।

आत्मा जाननेवाला-देखनेवाला का भण्डार है। उसे अनुसरकर उसकी क्षण में, क्षण में मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय या कैवल्य... दर्शन। आगे आयेगा। दर्शन उपयोग चक्षु, अचक्षु, अवधि, है अज्ञान। मति, श्रुत या विभंग। भाई! तुझे खबर नहीं। तेरी नजर तुझमें है। तेरे भाव जानने-देखने के तेरे गुण को अनुसरकर है। अक्षर को अनुसरकर नहीं। सुनकर अनुसरकर नहीं, ऐसा कहते हैं। हाय... हाय! कहे और फिर कहे बैठ जाओ एक ओर। और ऐसा कहे वापस। अरे भगवान! भाई! तुझे खबर नहीं। जिस काल में वाणी का योग हो, उस काल में वाणी निकलती है। उस वाणी के कारण वहाँ ज्ञान होता है, इस सामनेवाले को (बिल्कुल नहीं)। जादवलालजी! तो फिर करूँ कहते हो, किसलिए नहीं होता हो तो। ऐसा कहे वापस। अरे भगवान! तू यह क्या करता है? आहाहा! तुम यह किसलिए करते हो, तब न हो तो? बस, निमित्त से तो होता नहीं। तो

फिर निमित्त छोड़ दो उसे समझाने का। परन्तु कौन छोड़े, कौन रखे, सुन न! यह तो वाणी के कारण वाणी आती है। आहाहा! कठिन काम! अज्ञानी ने माना है।

मुमुक्षु : ऐसा करके बात उड़ाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा करके उड़ाते हैं।

यहाँ क्या कहते हैं। एक लाईन। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव समवसरण में परमात्मा विराजते हैं, महाविदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धर परमात्मा वर्तमान में विराजते हैं। विहरमान भगवान आते हैं न, और सामायिक में आज्ञा लेते हैं न, भाई! सामायिक में नहीं लेते आज्ञा? सीमन्धर भगवान विराजते हैं। परन्तु कहाँ है और कौन है, यह किसे खबर? माँ जय भगवान। आहाहा! वे सीमन्धर भगवान ऐसा फरमाते हैं। जहाँ कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे। संवत् ४९। दो हजार वर्ष हुए, कुन्दकुन्दाचार्य। भगवान विराजते हैं न, क्योंकि आयुष्य लम्बा है न? करोड़पूर्व का आयुष्य है। यह तो दो हजार वर्ष पहले गये थे। आठ दिन वहाँ भगवान के पास रहे थे। वहाँ से आकर यह पंचास्तिकाय, समयसार आदि बनाये हैं। लो! समझ में आया?

उसमें कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि भगवान ऐसा फरमाते थे कि भगवान आत्मा का जो ज्ञान और दर्शन जो गुण है, शक्ति है, वह सत् जो वस्तु है, उसका वह सत्त्व है, भाव है। उसे अनुसरकर उसके क्षण-क्षण में परिणाम होते हैं। जानने-देखने के परिणाम जगत को भ्रम (में) डाल देते हैं कि यह मन और इन्द्रियाँ हों, सुनते हैं तो यह परिणाम होते हैं। तो सुनने किसलिए जाते हो? और वापस ऐसे ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! अरे भगवान!

कहते हैं, चैतन्य को अनुसरण करनेवाला परिणाम। परिणाम अर्थात् पर्याय। परिणाम अर्थात् यह लड़के का परिणाम आवे, ऐसा नहीं। यह कक्षा का परिणाम क्या आया? अमुक का क्या आया, नहीं कहते? पढ़कर परीक्षा में परिणाम। यह यहाँ नहीं। परिणाम अर्थात् पर्याय। परिणाम अर्थात् अवस्था। आत्मा की ज्ञान, दर्शन को अनुसरण कर होनेवाली अवस्था, उसे परमेश्वर उपयोग कहते हैं। उस उपयोगरहित जीव कभी नहीं हो सकता। क्योंकि वह सर्व काल और अनन्यभूत, दो शब्द पड़े हैं न!

जानने-देखनेवाले का स्वरूप तेरा प्रभु अनादि-अनन्त है। वह सब कहीं तुझमें नहीं है—स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, शरीर, वाणी, मन। वह तो उनके होकर, जड़ के होकर जड़रूप से परिणम रहे हैं। पर के होकर पररूप से परिणम रहे हैं। बदल रहे हैं। तुझे तो नजर तेरे आत्मा में डालनी है। आहाहा! कहते हैं कि (**चैतन्य का अनुसरण करनेवाला**) परिणाम... देखो! तीनों आ गये। चेतन आत्मा, वह द्रव्य है। उसे जानने-देखने की शक्ति का सत्त्व, सत् का सत्त्व जो है, सत्त्व-कस-भाव वह गुण है। उसे अनुसरणकर होनेवाली अवस्था-परिणाम, वह उपयोग है। समझ में आया ?

तेरे द्रव्य, गुण और पर्याय तुझमें है। तेरी पर्याय तेरे गुण को अनुसरकर होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अपना अस्तित्व कहाँ है, इसकी खबर नहीं होती। इसलिए उसे यहाँ मानो यह इन्द्रियाँ और शरीर और यह हो न, उनका अस्तित्व है तो तेरे अस्तित्व में उसके कारण पर्याय, परिणाम होते हैं, यह कहते हैं, ऐसा अस्तित्व है ही नहीं। जीवास्तिकाय का अस्तित्व इस प्रकार होता ही नहीं। तुझे भ्रम हो गया है, भाई! आहाहा! वह भी दो प्रकार का है... लो! चैतन्य को अनुसरणकर होनेवाले परिणाम, पर्याय वह तुझसे कभी भिन्न नहीं। और तेरा स्वरूप सर्व काल में परिणामसहित है। उपयोगरूपी परिणाम सहित है। भले सिद्ध में हो तो केवलज्ञान, केवलदर्शन के परिणाम, वे भी वह परिणाम है। केवलज्ञान और केवलदर्शन भी परिणाम है, पर्याय है; गुण नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

गुण तो भगवान आत्मा में भण्डाररूप से भरा हुआ परिपूर्ण है। यह तो अनन्तवें भाग की अवस्था। आहाहा! कहते हैं, यह जानने-देखने के केवलज्ञान, केवलदर्शन की पर्याय-परिणाम है, वह भी गुण को अनुसरकर हुए हैं। समझ में आया ? यह वज्रनाराचसंहनन मजबूत हो, मनुष्य देह हो। अरे! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि मोक्षमार्ग के परिणाम थे, इसलिए केवलज्ञान के परिणाम हुए, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया ? आत्मा में, आत्मा में शुद्ध ज्ञान, आनन्दस्वरूप हूँ—ऐसी प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता उससे भी केवलज्ञान के परिणाम नहीं। मगनभाई! यह व्यवहार की बातें। पूर्व में पर्याय कौन थी, उसका ज्ञान कराया है। साधकपना ऐसा किया। यह

साधकपना जोर से पर्याय में ला देता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे... अरे! गजब मार्ग, भाई! मगनभाई! आहाहा!

शुक्लध्यान है, इसलिए केवलज्ञान हुआ, ऐसा इनकार करते हैं। देखो, यहाँ! वह तो गुण को अनुसरकर त्रिकाल ज्ञान, दर्शन का उपयोग जो भाव, उसे अनुसरकर केवलज्ञान हुआ है। आहाहा! समझ में आये ऐसा है, हों! यह कहीं न समझ में आये, ऐसा नहीं है। ऐसी सूक्ष्म बात नहीं है। सवेरे की कुछ सूक्ष्म थी। यह तो बहुत सादी और सरल है। परन्तु अब इसे इसके घर में क्या है, इसकी खबर नहीं होती और पर के घर की चीज़ अपनी मानकर बैठे तो वह रहे नहीं और इसका दुःख मिटे नहीं। आहाहा! कितनी बात करते हैं।

वह भी दो प्रकार का है... यह उपयोग जो जानने-देखने का है, उसके जो परिणाम हैं, उन परिणाम दो प्रकार के हैं। **ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग**। एक ज्ञान के परिणाम, एक दर्शन के परिणाम, जानने के भाव अर्थात् पर्याय। एक देखने की पर्याय। **वहाँ, विशेष को ग्रहण करनेवाला ज्ञान है...** लो! (अर्थात् विशेष जिसमें प्रतिभासित हो...) भाषा ऐसी की है न अर्थ में, देखो! नीचे कोष्ठक में। अर्थात् कि जगत की सभी चीज़ों में से भेद भेदरूप से, भिन्न-भिन्नरूप से जिसमें भासित हो, ऐसे परिणाम को ज्ञानपरिणाम कहते हैं। भासित हो, ऐसा कहते हैं। उसमें आ जाये दूसरी चीज़ और दूसरी चीज़ के कारण यह परिणाम हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **सामान्य और विशेष को ग्रहण करनेवाला ज्ञान है...** ग्रहण करनेवाला अर्थात् कि जिसमें विशेष प्रतिभासित होते हैं। अर्थात् कि जिस परिणाम में भिन्न-भिन्न चीज़ का भास हो, उस परिणाम को ज्ञानपरिणाम उपयोग कहते हैं। अरे! अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया? भगवान आत्मा में जो परिणाम जानने के, उसका क्या स्वरूप कहते हैं? जानने के परिणाम का स्वरूप क्या? कि जिसमें विशेष प्रतिभास हो। कि यह भगवान है, यह ज्ञान है, यह आत्मा है। ऐसे भिन्न-भिन्न चीज़ जिस प्रकार से अनेकरूप से भिन्न-भिन्नरूप से विशेषरूप से जैसा है, वैसा उसका भास जिस परिणाम में हो, उस परिणाम को ज्ञानउपयोग के परिणाम कहा जाता है। आहाहा! गजब बात!

अब उपयोग की व्याख्या में यह क्या बात!अरविन्दजी! हैं? हैं तो सत्य सत्य, परन्तु क्या करे? वह कहे नहीं, इसलिए वहाँ आयेगा वापस, हों, ...ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम और अवलम्बन दोनों लेंगे। यह तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं, पहले यह बात सिद्ध करके। अब वे कहे जितने प्रमाण में ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो, उतने परिणाम में उसे परिणाम होते हैं। ऐ सेठ! परन्तु उसे कहाँ दरकार थी, जो ऊपर कहे वह ठीक। हैं? यहाँ तो कहते हैं। राजमल्लजी! समझे बिना जय जय महाराज! यद्वा तद्वा करने से नहीं समझ में आयेगा। परन्तु क्या यद्वा तद्वा।

यहाँ तो भगवान परमेश्वर कहते हैं कि तुझे तेरी पर्याय का ज्ञान है तुझे यथार्थ? तो यथार्थ ज्ञान हो तो चीज़ ऐसी तुझे ख्याल में आये कि मेरे परिणाम जानने के भले विशेष को जाने। विशेष को जाने, तथापि विशेष के कारण नहीं। समझ में आया? कहो, समझ में आया सेठ! यह तम्बाकू बम्बाकू का आता है न बड़ा ढेर! तम्बाकू की जाति की और... सींदरी के बड़े पत्ते। यह कहते हैं ऐसे बड़ा ढेर पड़ा हो अलग अलग प्रकार के पत्ते और आकार यह और यह। यहाँ जो कसी जाए उसकी विशेषतायें, अनेकतायें, भिन्न-भिन्न दशायें या गुण या द्रव्य। उसका भिन्न द्रव्य, भिन्न गुण और भिन्न अवस्था, वह सब यहाँ ज्ञात होते हैं, उस विशेष के कारण नहीं। तेरे परिणाम के कारण उसमें वे ज्ञात होते हैं। आहाहा! निमित्त का तो भुक्का उड़ाते हैं। हैं? गजब चर्चा है। आहा!

भाई! तेरी शक्ति तो तेरे जानने-देखने के परिणामवाली है। उस शक्ति में से वे परिणाम आते हैं। भाई! तुझे खबर नहीं। खबर बिना का पर के कारण मुझे जानने-देखने के भाव हुए, पर के कारण हुए तो पर में से आये? पर में वह शक्ति थी कि वहाँ से वे यहाँ आये? तब कोई ऐसा कहे कि जैसा विशेषपना सामने है, ऐसा वहाँ ज्ञान क्यों होता है? इसलिए कुछ विशेष की विशेषता ज्ञान के परिणाम में कुछ मदद है। शरीर, वाणी, मन जैसा है, वैसा अन्दर ज्ञात होता है, देखो! वे ज्ञात नहीं होते। वास्तव में तो ज्ञान के परिणाम अपने हैं, उसमें उनका वह स्वभाव है कि स्व को और पर को जानना, ऐसा उनका स्वभाव। वह भाव स्वयं से स्वयं में हो, उसे ज्ञात होता है।

यह वस्तु भी यहाँ तो उस वस्तु का ज्ञान होता है, ऐसा वहाँ कहने में उस

परिणाम को बतलाना है न, इसलिए जानने के परिणाम, उसमें सम्यग्ज्ञान में देखो! तो उस परिणाम में द्रव्य-गुण अपने अपनी पर्याय भी और परवस्तु विशेषरूप से भिन्न-भिन्न है। उसी प्रकार यह आत्मा वस्तु है, उसमें ज्ञान-दर्शन गुण और उसमें परिणाम यह सब भिन्न-भिन्न है। यह सब जिस भाव में-पर्याय में ज्ञात होते हैं, उस पर्याय को विशेषरूप से ज्ञानपरिणाम का जाता है। समझ में आया? गजब धर्म भाई ऐसा!

जिसकी अपेक्षा एकेन्द्रिया, द्विन्द्रिया करके तस्स मिच्छामिदुक्कडम कर डालें, हो गया जाओ। लो! यह सिरपच्ची मिट जाये। ऐ वाडीभाई! दोनों वाडीभाई बैठे हैं न साथ में। कभी भी दरकार ही कहा की है। उसमें तस्स उत्तरीकरणं इच्छामि परिवक्कमणा इरिया ववरोविया तस्समिच्छामि दुक्कडम। परन्तु कैसा जीव, किसने मारा और क्या किया कुछ इसका ख्याल है? ऐई नटुभाई! यह ऐसा कहते हैं कि जीव ऐसा भगवान उसके ज्ञान और दर्शनगुण उसके परिणाम मुझसे न होकर पर से होते हैं, ऐसा माना, यह उसने जीवियाओ ववरोविया किया है। उसने अपने जीव के परिणाम की हिंसा की है। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐ मगनभाई! हैं? इस प्रकार इसे ख्याल में आना चाहिए। बापू! यह तो सत्य ऐसा है। सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी तीर्थकरों से निश्चित हुआ सत्य है। समझ में आया?

‘केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणम्’ आता है न? मांगलिक में नहीं आता? अर्थ किसे आते हैं? शान्तिभाई को तो सब आता था हों तुम्हारे। मस्तिष्कवाले थे। परन्तु अब यह स्थिति कैसी हो गयी! बहुत मस्तिष्क, रुचि अच्छी, जानना अच्छा...। देह की स्थिति हो वह रहे न वहाँ? उसमें कहाँ नया क्या है? अकस्मात् भी नहीं और कुछ नहीं। यह वस्तु अकस्मात् क्या हो? जिसके जो परिणाम क्रमसर होनेवाले हैं, वे होते हैं, उसमें अकस्मात् कहाँ आया? आहाहा! भगवान ने तो देखा है कि इस समय यह परिणाम होगा। तत्प्रमाण होता है, उसमें अकस्मात्-बकस्मात् कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि, जिसमें विशेष को ग्रहण करनेवाला ज्ञान... वह ग्रहण करनेवाला है न! विशेष को जाननेवाला ज्ञान, ऐसा। विशेष को ग्रहण करनेवाला अर्थात् जाननेवाला

ज्ञान, इतना उसका अर्थ करना पड़ा। जिसमें विशेष प्रतिभासित होते हैं। भगवान आत्मा की पर्याय में विशेषपना अर्थात् अनेकपने की भिन्न-भिन्न द्रव्य-गुण-पर्याय की जाति, उसका यहाँ ज्ञान हो, इसलिए उसे विशेष का ज्ञान हुआ; इसलिए उसे विशेषरूपी ज्ञान के परिणाम कहे जाते हैं। समझ में आया ?

सामान्य को ग्रहण करनेवाला दर्शन है... सामान्य अर्थात् सब चीज़ कों भेद पाड़े बिना 'है' सब, बस इतना। है, ऐसा भी नहीं। है सब। ऐसा जो परिणाम में, है नीचे कहा है। देखो ! सामान्य जिसमें प्रतिभासित होते हैं। भेद बिना जिस परिणाम में प्रतिभास हो, उस परिणाम को दर्शन परिणाम, दर्शन पर्याय कहा जाता है। यह तेरा अस्तित्व कहाँ है, यह बताते हैं। तेरा अस्तित्व नहीं शरीर में, नहीं वाणी में, नहीं राग-द्वेष में। आहाहा ! तेरे अस्तित्व में तीन में तेरा अस्तित्व है। द्रव्य में अर्थात् वस्तु में, उसके गुण में अर्थात् शक्ति में और उसकी इस वर्तमान अवस्था में तेरा अस्तित्व है, जीवास्तिकाय, उसमें जीवास्तिकाय है। समझ में आया ?

अपना अस्तित्व छोड़कर कोई दूसरे के अस्तित्व में कभी जाता नहीं। जाता है ? आहाहा ! यह सब धन्धा करते होंगे बड़े-बड़े। नारियल का धन्धा है न वाडीभाई ? शान्तिभाई कहते थे। हमारे सेठ ऐसे हैं कि सेठ बहुत नरम। हमारे सेठ जैसा कोई नहीं। एक बार कहते थे। आहाहा ! कौन करे धन्धा, भगवान ! यह धन्धे की होनेवाली क्रिया है, वह जिसके परिणाम में ज्ञात होती है, उस परिणाम को ज्ञान कहते हैं। उस पर्याय की विशेष अवस्था को जीव नहीं करता। उसकी विशेष अवस्था है, इसलिए ज्ञान परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह विशेष अवस्थाएँ होती हैं, कमाई बढ़ने लगे, पाँच हजार, दस हजार, बीस हजार। अरब रुपये होंगे लो न तब। अंक गिनना है न ! कहाँ साथ में खाना है और पीना है ? कहते हैं कि उस चीज़ की जो विशेषताएँ जो द्रव्य-गुण की पर्याय की है। विशेषताएँ। यह उपयोग का विशेष शब्द प्रयोग किया है न पहले में ? २७वीं गाथा में। 'उपयोगविशेषिदो' ऐसा शब्द प्रयोग किया है। वह मूल शुरु किया है न। 'जीवो हवदि' 'जीवो ति हवदि चेदा, जीवो ति हवदि चेदा उपयोगविशेषिदो' ऐसा शब्द पड़ा है

उसमें। हाँ, विशेष लक्षित किया है फिर अन्दर। 'उपयोगविशेषितः' उपयोग लक्षित है ऐसा। 'विशेषितो' शब्द पड़ा है न! समझ में आया? परिणाम है न वह। आहाहा!

कहते हैं कि जो उपयोग में जिसके परिणाम में दूसरी सब चीजें भेद पड़े बिना ज्ञात हो जाये, उस परिणाम को दर्शन कहते हैं। वह परिणाम उसके हैं। यह चीज़ दिखती है, यह उसकी नहीं। और वह चीज़ सामान्य है, इसलिए दर्शन परिणाम होते हैं, ऐसा भी नहीं। अरे! गजब बात, भाई!

और उपयोग सर्वदा जीव से अपृथग्भूत ही है,... वह व्याख्या की 'जीवस्य सर्वकालम्' तीसरे पद की व्याख्या चलती है। पहले दो पद की व्याख्या हुई। 'उवओगो खलु दुविहो जाणेण य दंसणेण संजुतो' अब यहाँ कहते हैं कि, यह उपयोग अर्थात् आत्मा में जानने-देखने के बारह प्रकार के परिणाम, वह उपयोग बारह प्रकार के वह के वह हों, ऐसा नहीं भले, परन्तु वह उपयोग तो सर्वथा जीव से पृथक् नहीं। देखा! अपृथग्भूत, अभिन्न है। उपयोग सदा जीव से अभिन्न ही है। एकमेक है। यह जानने-देखने के परिणाम हुए। जो चीज़ शरीर, वाणी आदि का अस्तित्व, उसमें इसका अस्तित्व नहीं। परन्तु इस अस्तित्व का निमित्त और ज्ञान हुआ स्वयं को अनुसरकर। ऐसा और दर्शन हुआ स्वयं को अनुसरकर। उस परिणाम में अपना अस्तित्व है। समझ में आया?

उस अस्तित्व के परिणाम अपने जीव से पृथक् नहीं हैं। जो चीज़ ज्ञात होती है, वह चीज़ जीव की दशा से भिन्न है। बराबर है? जो चीज़ जानने-देखने में ज्ञात होती है, वह चीज़ जानने-देखने से भिन्न है। परन्तु यहाँ भगवान कहते हैं कि जो जानने-देखने के तेरे भाव हैं, वे तुझसे भिन्न नहीं। आहाहा! समझ में आया?

प्रिय में प्रिय पुत्र तो इसके होते होंगे या नहीं? नहीं होते? धूल भी नहीं होते, सुन न! अब इस शरीर को पाल-पोसकर ऐसे... ऐसे... ऐसे... करकरके कितना काल गया। पूरा होग तब हाय! हाय! अरे हमारी सेवायें मुफ्त में गयीं। महिलाओं में रोवे फिर। बहुत सेवायें की हों न। पति हो कि उसका पुत्र हो। मर गया बीस वर्ष का पुत्र उसका। बहुत तो दो वर्ष का विवाह हो। दवा हो पाँच, दस हजार, पच्चीस हजार खर्च किये हों फिर, अरे रे! हमारी सेवायें व्यर्थ गयीं। हमारा रात्रि जागरण व्यर्थ गये। ऐसे

महिलायें बातें करती हैं, रोती हैं। अलेखे लगा अर्थात् समझ में आया? हमारा रात्रि जागरण काम नहीं आये। अरे! कब लेखे लगता था वहाँ तेरा रात्रि जागरण। तेरा जागरण यहाँ रहा। दूसरी चीज़ वहाँ रही। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जो चीज़ ज्ञात होती है, वह तेरे अस्तित्व में नहीं है। परन्तु तेरे अस्तित्व में जो जानने-देखने के परिणाम हों, वे तुझसे हुए हैं और तुझसे पृथक् नहीं हैं। ऐसी तो स्पष्ट बात है। आहाहा! विवाद... विवाद... करे। नहीं, दो कारण बिना कार्य होता नहीं। अब भले निमित्त हो, किसने इनकार किया? परन्तु यहाँ तब तो अपने उपयोग से परिणाम हुए। तब भले ही निमित्त की उपस्थिति मनाती हो, किसने इनकार किया है? इसलिए उसके कारण हुआ है? बड़ा उपादान-निमित्त का झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा। व्यवहार, निश्चय और क्रमबद्ध पाँच के झगड़े। वह एक समझे तो पाँचों (झगड़े) टूट जाए ऐसा है। आहाहा!

कहते हैं और उपयोग... भगवान आत्मा जानने-देखनेवाले के स्वभाववाला तत्त्व 'उवओगो लकखणो निच्चं' भगवान ने आत्मा को उपयोग लक्षण तो नित्य कहा है। यह त्रिकाल की बात की है। यह उसके परिणाम की बात है। यह परिणाम त्रिकाल रहेंगे। किसी प्रकार के फिर केवलज्ञान के हों या अज्ञान के हों। मति-श्रुत निगोद में आलू, शक्करकन्द में अनन्त जीव हैं न। तो भी उस जीव को भी उपयोग के परिणाम अपने को अनुसरकर होते हैं। कि उसे तो एक ही इन्द्रिय है, इसलिए अभी इतना कम ज्ञान है। पाँच इन्द्रिया हुई, इसलिए उसे अनुसरकर अधिक ज्ञान हो, पाँच इन्द्रियाँ मिली इसलिए (अधिक ज्ञान हो)। नहीं, ऐसा नहीं है। यहाँ इनकार करते हैं। समझ में आया? और मन मिला, उसे-मन को अनुसरकर कहीं अधिक क्षयोपशम परिणाम में हो? इनकार करते हैं, ऐसा नहीं। ऐई! आहाहा!

जब होता है, होता है तब सारे अन्दर दर्शन-ज्ञान की शक्ति जो सत्त्व है, उसे अनुसरकर ही तेरे परिणाम होते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन, वह भी सामान्य और विशेष उपयोग है। वह भी एक समय में दो है। और वह भी आत्मा के गुण को अनुसरकर होते हैं। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया?

यह वज्रनाराचसंहनन मजबूत हो तो केवलज्ञान हो। तब केवलज्ञान हो न और वज्रनाराच संहनन न हो? तो उसका अस्तित्व उसमें है। उसके कारण यहाँ केवलज्ञान के परिणाम होते हैं? अन्तर भगवान आत्मा, ध्रुव चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु है। उसका उपयोग अन्दर में झुकने पर उसे अनुसरकर उसे केवलज्ञान के परिणाम होकर जीव की मुक्तदशा हो जाती है। आहाहा! समझ में आया?

मोक्षदशा निमित्त को अनुसरकर नहीं होती। राग और व्यवहार विकल्प जो है, उसे अनुसरकर नहीं होती। परन्तु पूर्व का जो उपयोग है चार ज्ञान का व्यापार, उसे अनुसरकर केवलज्ञान का उपयोग नहीं होता। आहाहा! अरे! यह सत्य ऐसा ही है। ऐसा जो अन्दर जाने ही नहीं, उसका ज्ञान मिथ्यारूप से ज्ञान करता है, वह दुःखरूप दशा में भटकता है। फिर भले त्यागी हुआ हो और साधु हुआ हो परन्तु जिसके ज्ञान में विपरीतता और उल्टापन है, उसे सुलटाई का भान नहीं है। वे सब भटकने के-भटकने के वे सब रास्ते हैं। समझ में आया?

भगवान का एक वाक्य भी महा सत्य को-सत्य को सिद्धान्तरूप से सिद्ध करता है। परमेश्वर केवलज्ञान परमात्मा। आहाहा! कितना कहा है! **उपयोग सर्वदा...** कि जब तुझे ऐसा हो कि केवलज्ञान हुआ तो, वह केवलज्ञान ही तुझसे तुझे होता है, एक बात। पर को अनुसरकर नहीं। दूसरा, कि तुझसे वह केवलज्ञान अभिन्न है। तुझसे भिन्न नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

संहनन और हड्डियों का शरीर तो अत्यन्त पृथक्, अत्यन्त पृथक्। उसका काम वह करता है, तेरा काम तू कर। आहाहा! यह कहीं शरीर अच्छा हो तो अन्तर पड़े न उपयोग को, ऐसा नहीं कहते भाई! हं... नहीं पड़ती? न पड़ती है। लो!

मुमुक्षु : वह तो जड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ है।

मुमुक्षु : यह तो स्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... चैतन्य है। समझ में आया? शरीर तो जड़ है। ऐई

जादवजीभाई! जड़ को अनुसरणकर चैतन्य के भाव होंगे? आहाहा! एक सिद्धान्त समझे न, तो कितना हल हो जाये अन्दर का। कहते हैं कि यह उपयोग जो कहा। उपयोग के भेद बाद में लेंगे, बारह। परन्तु यह उपयोग जो है, वह जीव से अभिन्न है। एकमेक है। जैसे शरीर, वाणी, मन से आत्मा पृथक् है। वैसे उसके उपयोग से आत्मा पृथक् नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि जानने-देखने के उपयोग की धारा द्वारा, जो अन्दर जा, वह उपयोग कहाँ से उठता है? जानने-देखने के जो भाव, जानने-देखने का अस्तित्व, वह किसके अस्तित्व में से आता है? समझ में आया? यह डोरी कहाँ से चलती है? आहा! अनुभवप्रकाश में आता है न? समझ में आया? मन और इन्द्रियों के कारण नहीं। आहाहा! शास्त्र में ऐसा आवे। लो! मतिज्ञान का नोकर्म बादाम, पिस्ता और दूध को, केसरिया दूध वहाँ से मतिज्ञान... में आता है, लो! ऐई! पाटनीजी! भाई! अपने सामाने की बात को लक्ष्य में तो लेना चाहिए या नहीं? ऐसा आता है। यह बादाम, पिस्ता खाकर मानो मति खुले। मर जाता है न कुछ करके, सुन न अब! यह क्या वह ब्राह्मी नहीं आती? तेल-तेल। ठण्डा-ठण्डा होता है, इसलिए मस्तिष्क अच्छा रहता है। धूल भी नहीं रहता, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। ऐई मधुभाई! यह वकील सब कोर्ट में जाते होंगे, तब सब व्यवस्थित लेकर जाते होंगे या नहीं?

मुमुक्षु : नींद उड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ...आहाहा! दूध केसरिया हो, डाले न अन्दर बराबर मस्तिष्क खिले। मर गया। मूढ़ है, सुन न? हाँ, वह तो जड़ चीज़ है। जड़ के कारण ज्ञान की खिलावट होगी? या ज्ञान की खिलावट तो तेरे अन्तर में नजर कर और गुण को अनुसरकर खिलावट होगी। आहाहा! समझ में आया?

वह उपयोग तो सर्वदा जीव से भिन्न नहीं है। नीचे है न। उपयोग सदा जीव से अभिन्न है, क्योंकि वे एक अस्तित्व से निष्पन्न हैं। यह दूसरा बोल आयेगा। 'जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि' फिर इसका अर्थ किया वहाँ। अनन्यरूप से अर्थात् कि अस्तित्व निकाला फिर उसमें से। क्योंकि एक अस्तित्व से रचित हैं। क्या कहा

यह ? कि भगवान आत्मा में जो जानने-देखने का गुण जो है, शक्ति जो है, उसे अनुसरण कर जो जानने-देखने के परिणाम होते हैं, वे परिणाम और आत्मा का अस्तित्व का अस्तित्व एक ही है, सत्ता एक है। जीवास्तिकाय सिद्ध किया, उसकी सत्ता एक है। जो चीज़ उसमें ज्ञात होती है, उसकी सत्ता भिन्न है। समझ में आया ?

यह स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा, ज्ञान-दर्शन में ज्ञात होते हैं। परन्तु वे चीज़ें भिन्न हैं, तेरे कारण नहीं और तुझमें वे नहीं। अरेरे! गजब बात! ऐसी बात है। क्या कहा यह ? उपयोग सर्वदा जीव से अभिन्न है, इसलिए दूसरी चीज़ें भिन्न हैं। उनका यहाँ ज्ञान हो, वह स्वयं से हुआ है, अपने को अनुसरकर, वह अपृथक् है; पृथक् नहीं और उन दो का अस्तित्व एक ही है। दूसरी चीज़ है, उसका अस्तित्व और तेरे इस परिणाम का अस्तित्व अत्यन्त भिन्न है। परन्तु तेरे जानने-देखने के परिणाम का अस्तित्व इस तेरे अस्तित्व से वह पृथक् नहीं है। आहाहा!

देखो न, दीपक जैसी बात है, परन्तु अब लोगों को तो ऐसी पड़ी ही कहाँ है अन्दर ? विवाद... विवाद! नहीं, अकेले उपादान से हो, वह निश्चयाभास है। ठीक! निमित्त का भी थोड़ा सहारा (अर्थात् कि) मदद थोड़ी-थोड़ी सहारा हो सहारा।

मुमुक्षु : तो फिर अपना सहारा कब आवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस चीज़ को वापस सहारा देनेवाला कौन ? तुझे वह सहारा दे, फिर उसे कौन (सहारा) दे ? और फिर उसे दूसरे को कौन दे ? रहने दे न! ऐसा करने की अपेक्षा कोई किसी को किसी का सहारा नहीं है।

‘सर्वकालं अण्णभूदं’ है न ? ‘सर्वकालं’ ऐसा शब्द लिया। ‘अण्णभूदं’ के दो अर्थ निकाले। पृथक् नहीं क्योंकि पृथक् का न्याय निकाला, न्याय निकाला, क्योंकि एक अस्तित्व से रचित है। ओहो! टीका, वह टीका है न! समझ में आया ? सन्तों ने जंगल में रहकर अमृत बहाया है—अमृत प्रवाहित किया है। दिगम्बर सन्त जंगल में रहते थे। ज्ञान में मस्त रहते थे। उसमें विकल्प आया और शास्त्र रच गये। आहाहा!

भाई! तेरी चीज़ में जो परिणाम है न, उनसे तू पृथक् नहीं है और वे परिणाम तथा तू वस्तु त्रिकाल, गुण और द्रव्य। इन दोनों का अस्तित्व दो नहीं। दो का अस्तित्व

एक है। आहाहा! समझ में आया? चालीस गाथा हुई, लो! चालीस में इतना अधिक एक घण्टे में कहा गया। ऐई! दिलीप! बहुत आया, हों! आहाहा! ऐसा कहकर तेरी स्थिति का अस्तित्व तुझसे कैसे है, यह उसे बतलाते हैं। तेरे द्रव्य-गुण का अस्तित्व तो तुझसे है ही, द्रव्य अर्थात् वस्तु। गुण अर्थात् शक्ति। वह तो ठीक परन्तु इन बदलते परिणाम में न्यूनाधिक परिणाम दिखते हैं, उसमें किसी पर की सहायता या मदद है? द्रव्य-गुण में भले नहीं, परन्तु होनेवाले उपयोग के परिणाम जो हैं, किसी को विशेष ज्ञात हो, किसी को थोड़ा उसमें कोई भी संयोग और निमित्त का सहारा-मदद है? विशेषता दिखती है न!

मुमुक्षु : एक अपेक्षा से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी अपेक्षा से पर से नहीं। ऐई! आहाहा!

तब कहे कि समयसार जैसी चीज़ को सुनने पर उसके परिणाम अलग दिखते हैं और जब पाण्डव पुराण सुनता हो, तब परिणाम अलग, इतना तो कुछ निमित्त का सहारा है या नहीं? निमित्त की विशेषता है या नहीं? ऐई सेठ! यह उत्तर देश की बात तो बाद में। तुम इनकार करो तो समयसार किसलिए हाथ में लेते हो? समयसार से कुछ विशेष पर्याय तुझमें होती है और पदमपुराण पढ़ो तो कुछ विशेषता होती है। तो इसमें कहते हैं कि, नहीं। उस समय भी परिणाम अपने-अपने को अनुसरणकर हुए हैं। पाण्डव पुराण पढ़ता हो तो भी वे परिणाम उसे अनुसरकर हुए हैं, पर के कारण हुए नहीं। परिणाम और आत्मा का अस्तित्व एक है। अस्तित्व एक है, इसलिए उसके परिणाम अपृथक् हैं। परिणाम परिणामी वस्तु से द्रव्य-गुण से पृथक् नहीं हैं। इस प्रकार उसका निर्णय करे तो इसे सत्य का पता लगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४१

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि गाणाणि पंचभेयाणि।
कुमदिसुदविभंगाणि य तिणि वि णाणेहिं संजुत्ते॥४१॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानि ज्ञानानि पञ्चभेदानि।
कुमतिश्रुतविभङ्गानि च त्रीण्यपि ज्ञानैः संयुक्तानि॥४१॥

ज्ञानोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत् ।

तत्राभिनिबोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानं कुमतिज्ञानं कुश्रुतज्ञानं विभङ्गज्ञानमिति नामाभिधानम् । आत्मा ह्यनन्तसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धज्ञानसामान्यत्वात् । स खल्वनादिज्ञानावरणकर्मावच्छन्नप्रदेशः सन्, यत्तदावरणक्षयोपशमादिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषणावबुध्यते तदाभिनिबोधिकज्ञानम्, यत्तदावरणक्षयोपशमादिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषणावबुध्यते तत् श्रुतज्ञानम्, यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं विशेषणावबुध्यते तदवधिज्ञानम्, यत्तदावरणक्षयोपशमादेव परमनोगतं मूर्तद्रव्यं विकलं विशेषणावबुध्यते तन्मनःपर्ययज्ञानम्, यत्सकलावरणात्यन्तक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्यं सकलं विशेषणावबुध्यते तत्स्भाविकं केवलज्ञानम् । मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमाभिनिबोधिकज्ञानमेव कुमतिज्ञानम्, मिथ्यादर्शनोदयसहचरितं श्रुतज्ञानमेव, श्रुतज्ञानम्, मिथ्यादर्शनोदय-सहचरितमवधिज्ञानमेव विभङ्गज्ञानमिति स्वरूपाभिधानम् ।

-इत्थं मतिज्ञानादिज्ञानोपयोगाष्टकं व्याख्यातम् ॥४१॥

मतिश्रुतावधि अर मनः केवल ज्ञान पाँच प्रकार हैं।

कुमति कुश्रुत विभंग युत अज्ञान तीन प्रकार हैं ॥४१॥

अन्वयार्थ :- [आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि] आभिनिबोधिक (-मति) श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल- [ज्ञानानि पंचभेदानि] इस प्रकार ज्ञान के पाँच भेद हैं; [कुमतिश्रुतविभंगाणि च] और कुमति, कुश्रुत और विभंग-[त्रीणि अपि] यह तीन (अज्ञान) भी [ज्ञानैः] (पाँच) ज्ञान के साथ [संयुक्तानि] संयुक्त किये गये हैं। (इस प्रकार ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं।)

टीका:-यह, ज्ञानोपयोग के भेदों के नाम और स्वरूप का कथन है।

वहाँ, (१) आभिनिबोधिकज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्यय

-ज्ञान, (५) केवलज्ञान, (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान और (८) विभंगज्ञान-इस प्रकार (ज्ञानोपयोग के भेदों के) नाम का कथन है।

(अब उनके स्वरूप का कथन किया जाता है :-) आत्मा वास्तव में अनन्त, सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक, विशुद्ध ज्ञानसामान्यस्वरूप है। वह (आत्मा) वास्तव में अनादि ज्ञानावरणकर्म से आच्छादित प्रदेशवाला वर्तता हुआ, (१) उस प्रकार के (अर्थात् मतिज्ञान के) आवरण के क्षयोपशम से और इन्द्रिय-मन के अवलम्बन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य का विकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है, वह आभिनिबोधिकज्ञान है,

(२) उस प्रकार के (अर्थात् श्रुतज्ञान के) आवरण के क्षयोपशम से और मन के अवलम्बन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य का विकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है, वह श्रुतज्ञान है,

(३) उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से ही मूर्त द्रव्य का विकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है, वह अविधिज्ञान है,

(४) उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से ही परमनोगत (-दूसरों के मन के साथ सम्बन्धवाले) मूर्त द्रव्य का विकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है, वह मनःपर्ययज्ञान है,

(५) समस्त आवरण के अत्यन्त क्षय से, केवल ही (-आत्मा अकेला ही), मूर्त-अमूर्त द्रव्य का सकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है, वह स्वाभाविक केवलज्ञान है,

(६) मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का आभिनिबोधिकज्ञान ही कुमतिज्ञान है,

(७) मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का श्रुतज्ञान ही कुश्रुतज्ञान है,

(८) मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का अवधिज्ञान ही विभंगज्ञान है। - इस प्रकार (ज्ञानोपयोग के भेदों के) स्वरूप का कथन है।

इस प्रकार मतिज्ञानादि आठ ज्ञानोपयोगों का व्याख्यान किया गया।

भावार्थ :- प्रथम तो, निम्नानुसार पाँच ज्ञानों का स्वरूप है :-

१. विकलरूप से = अपूर्णरूप से; अंशतः।

२. विशेषतः अवबोधन करना = जानना। (विशेष अवबोध अर्थात् विशेष प्रतिभास, सो ज्ञान है।)

निश्चय से अखण्ड-एक-विशुद्धज्ञानमय ऐसा यह आत्मा व्यवहारनय से संसारावस्था में कर्मावृत्त वर्तता हुआ, मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर, पाँच इन्द्रियों और मन से मूर्त-अमूर्त वस्तु को विकलरूप से जो जानता है, वह मतिज्ञान है। वह तीन प्रकार का है : उपलब्धिरूप, भावनारूप और उपयोगरूप। मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम से जनित अर्थग्रहणशक्ति (-पदार्थ को जानने की शक्ति), वह उपलब्धि है; जाने हुए पदार्थ का पुनः-पुनः चिंतन, वह भावना है और 'यह काला है', 'यह पीला है' इत्यादिरूप से अर्थग्रहण व्यापार (-पदार्थ को जानने का व्यापार), वह उपयोग है। उसी प्रकार वह (मतिज्ञान) अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणारूप भेदों द्वारा अथवा कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पदानुसारीबुद्धि तथा संभिन्नश्रोतृताबुद्धि ऐसे भेदों द्वारा चार प्रकार का है। (यहाँ, ऐसा तात्पर्य ग्रहण करना चाहिए कि निर्विकार शुद्ध अनुभूति के प्रति अभिमुख जो मतिज्ञान, वही उपादेयभूत अनन्त सुख का साधक होने से निश्चय से उपादेय है, उसके साधनभूत बहिरंग मतिज्ञान, तो व्यवहार से उपादेय है।)

वही पूर्वोक्त आत्मा, श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर, मूर्त-अमूर्त वस्तु को परोक्षरूप से जो जानता है, उसे ज्ञानी श्रुतज्ञान कहते हैं। वह लब्धिरूप और भावनारूप है तथा उपयोगरूप और नयरूप है। 'उपयोग' शब्द से यहाँ वस्तु को ग्रहण करनेवाला प्रमाण समझना चाहिए अर्थात् सम्पूर्ण वस्तु को जननेवाला ज्ञान समझना चाहिए और 'नय' शब्द से वस्तु के (गुणपर्यायरूप) एक देश को ग्रहण करनेवाला ऐसा ज्ञाता का अभिप्राय समझना चाहिए। (यहाँ ऐसा तात्पर्य ग्रहण करना चाहिए कि विशुद्धज्ञानदर्शन जिसका स्वभाव है, ऐसे शुद्ध आत्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक जो भावश्रुत, वही उपादेयभूत परमात्मतत्त्व का साधक होने से निश्चय से उपादेय है किन्तु उसके साधनभूत बहिरंग श्रुतज्ञान तो व्यवहार से उपादेय है।)

यह आत्मा, अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर, मूर्त वस्तु को जो प्रत्यक्षरूप से जानता है, वह अवधिज्ञान है। वह अवधिज्ञान लब्धिरूप तथा उपयोगरूप, ऐसा दो प्रकार का जानना। अथवा अवधिज्ञान देशावधि, परमावधि और सर्वावधि, ऐसे भेदों द्वारा तीन प्रकार से है। उसमें, परमावधि और सर्वावधि चैतन्य के उछलने से भरपूर आनन्दरूप परमसुखामृत के रसास्वादरूप समरसीभाव से परिणत चरमदेही तपोधनों को होता है। तीनों प्रकार के अवधिज्ञान निश्चय से विशिष्ट सम्यक्त्वादि गुण से होते हैं। देवों और नारकों के होनेवाले भवप्रत्ययी जो अवधिज्ञान, वह नियम से देशावधि ही होता है।

यह आत्मा, मनःपर्ययज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर, परमनोगत मूर्त वस्तु को जो प्रत्यक्षरूप से जानता है, वह मनःपर्ययज्ञान है। ऋजुमति और विपुलमति, ऐसे भेदों द्वारा मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का है। वहाँ, विपुलमति मनःपर्ययज्ञान पर के मन-वचन-काय सम्बन्धी पदार्थों को, वक्र तथा अवक्र दोनों को, जानता है और ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान तो ऋजु को (अवक्र को) ही जानता है। निर्विकार आत्मा की उपलब्धि और भावनासहित चरमदेही मुनियों को विपुलमति मनःपर्ययज्ञान होता है। यह दोनों मनःपर्ययज्ञान वीतराग आत्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठान की भावनासहित, पन्द्रह प्रमादरहित अप्रमत्त मुनि को उपयोग में-विशुद्ध परिणाम में-उत्पन्न होते हैं। यहाँ मनःपर्ययज्ञान के उत्पादकाल में ही अप्रमत्तपने का नियम है, फिर प्रमत्तपने में भी वह संभवित होता है।

जो ज्ञान घटपटादि ज्ञेय पदार्थों का अवलम्बन लेकर उत्पन्न नहीं होता, वह केवलज्ञान है। वह श्रुतज्ञानस्वरूप भी नहीं है। यद्यपि दिव्यध्वनिकाल में उसके आधार से गणधरदेव आदि को श्रुतज्ञान परिणमित होता है, तथापि वह श्रुतज्ञान गणधरदेव आदि को ही होता है, केवली भगवन्तों को तो केवलज्ञान ही होता है। पुनश्च, केवलीभगवन्तों को श्रुतज्ञान नहीं है इतना ही नहीं, किन्तु उन्हें ज्ञान-अज्ञान भी नहीं है अर्थात् उन्हें किसी विषय का ज्ञान तथा किसी विषय का अज्ञान हो, ऐसा भी नहीं है-सर्व विषयों का ज्ञान ही होता है; अथवा, उन्हें मति-ज्ञानादि अनेक भेदवाला ज्ञान नहीं है-एक केवलज्ञान ही है।

यहाँ जो पाँच ज्ञानों का वर्णन किया गया है, वह व्यवहार से किया गया है। निश्चय से तो बादलरहित सूर्य की भाँति आत्मा अखण्ड-एक-ज्ञान-प्रतिभासमय ही है।

अब, अज्ञानत्रय के सम्बन्ध में कहते हैं -

मिथ्यात्व द्वारा अर्थात् भाव-आवरण द्वारा अज्ञान (-कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान तथा विभंगज्ञान) और अविरतिभाव होता है तथा ज्ञेय का अवलम्बन लेने से (-ज्ञेय सम्बन्धी विचार अथवा ज्ञान करने से) उस-उस काल दुःनय और दुःप्रमाण होते हैं। (मिथ्यादर्शन के सद्भाव में वर्तता हुआ मतिज्ञान, वह कुमतिज्ञान है; श्रुतज्ञान, वह कुश्रुतज्ञान है; अवधिज्ञान, वह विभंगज्ञान है; उसके सद्भाव में वर्तते हुए नय, वे दुःनय हैं और प्रमाण, वह दुःप्रमाण है।) इसलिए ऐसा भावार्थ समझना चाहिए कि निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूतिस्वरूप निश्चय सम्यक्त्व उपादेय है।

इस प्रकार ज्ञानोपयोग का वर्णन किया गया॥४१॥

प्रवचन-४२, गाथा-४१, पौष शुक्ल १२, सोमवार, दिनांक -१९-०१-१९७०

पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य का अधिकार। गाथा ४१वीं, कल ४० हुई।

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि।
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते॥४१॥
मतिश्रुतावधि अर मनः केवल ज्ञान पाँच प्रकार हैं।
कुमति कुश्रुत विभंग युत अज्ञान तीन प्रकार हैं॥४१॥

टीका :- यह, ज्ञानोपयोग के... यहाँ क्या कहा था पहले कि यह आत्मा है, उसके अस्तित्व का वर्णन मुख्य करते हैं। आत्मा में अस्तिरूप से उपयोग है। जानना-देखना उसके उपयोग में उसका अस्तित्व है। और वह उपयोग जानना-देखना और आत्मा दो का अस्तित्व एक है। समझ में आया ?

पर चीज़ से जैसे आत्मा भिन्न है, वैसे उपयोग से कहीं भिन्न नहीं है। जानना-देखना उसके उपयोग के अस्तित्व की सत्ता में है। अर्थात् वह जानने-देखने के बारह प्रकार वे स्वयं को अनुसरकर होते हैं। क्योंकि उसकी शक्ति का परिणामन उस प्रकार का है। समझ में आया ? दूसरे से होता नहीं और दूसरे को अनुसरकर होता नहीं और दूसरे हैं इसलिए बारह प्रकार का जानना-देखना उपयोग होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? ऐसा वर्णन करते हैं। देखो ! षट्द्रव्य में जीवास्तिकाय का स्वरूप ज्ञानोपयोग जो है, उसके भेदों का वर्णन और उसके स्वरूप का कथन इसमें दो है। ज्ञानोपयोग के प्रकार कितने और उपयोग के बारह में उनका स्वरूप क्या ? दो प्रकार का कथन है।

आभिनिबोधिकज्ञान,... पहला नाम। मतिज्ञान—मतिज्ञान, दूसरा श्रुतज्ञान, तीसरा अवधिज्ञान, चौथा मनःपर्ययज्ञान, पाँचवाँ केवलज्ञान... उसमें तीन अज्ञान कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और विभंगज्ञान—इस प्रकार (ज्ञानोपयोग के...) जानने के विशेष प्रकार का जानना, उसमें भेद पाँच अथवा तीन यह हैं। पाँच सम्यक् हैं और तीन मिथ्या हैं। परन्तु है इसका, अपने उपयोग में यह है। समझ में आया ? राग-द्वेष और पुण्य-पाप यह इसका शाश्वत् स्वरूप नहीं है। समझ में आया ? करे, तब तक करे; भोगे, तब तक

भोगे अज्ञानभाव से। कर्ता छूटे तो उसमें उपयोग कभी छूटे नहीं। समझ में आया ? अहो ! अनादि काल से अपना ज्ञान उपयोग लक्षण जो स्वरूप, वह आत्मा है, ऐसा न जानकर इसने राग-द्वेष, पुण्य-पाप और परवस्तु मेरी है, उसमें उपयोग को लगाकर, उपयोग है स्वयं का, उसे अपने में न लगाकर पर में लगाकर, 'पर, वह मेरे हैं', ऐसी मान्यता से परिभ्रमण करता है। कहो, समझ में आया ?

इसीलिए कहते हैं न, भाई ! तेरे उपयोग में आठ प्रकार ज्ञान में विशेष से तुझमें तुझसे है। समझ में आया ? उन भेदों के नाम दिये। अब उनका स्वरूप कहते हैं। स्वरूप भी क्या आवे, उसका भाव क्या ? आत्मा वास्तव में, भगवान आत्मा वास्तव में तो अनन्त विशुद्धज्ञान सामान्य स्वरूप है। है ? यह भगवान आत्मा वास्तव में तो अनन्त... यह एक व्याख्या हुई। किसकी, तो आगे कहेंगे। सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक,... देखो ! आत्मा असंख्यप्रदेशी चिद्घन, वह असंख्यप्रदेशी आत्मा है। उसमें अनन्त विशुद्ध ज्ञानसामान्यस्वरूप... व्याप्त है। कहो, समझ में आया ?

वस्तु आत्मा, उसके असंख्य प्रदेश, वह उसका क्षेत्र—क्षेत्र, स्थल—स्थल। उसका यह स्थल, उसका यह मुकाम, उसकी यह जगह। यह बँगला—बँगला जगह की नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यवहार-प्यवहार से भी नहीं। यह तो व्यर्थ में मेरा मानता है। ऐई ! इसकी जगह / स्थल तो असंख्यप्रदेश हैं। आहाहा ! उसमें भावरूप से अनन्त विशुद्ध ज्ञानसामान्यस्वरूप है। सामान्य अर्थात् त्रिकाल ज्ञान की बात है। समझ में आया ?

देखो ! आत्मा लिया। आत्मा असंख्यप्रदेशी लिया। असंख्य प्रदेश। सवरे एक बात हुई थी थोड़ी। पर्याय और द्रव्य की। भगवान आत्मा का जो द्रव्य है, वह तो ध्रुव और एकरूप स्वभाव से भरपूर, यह सामान्य कहा न ? यह पहली उसकी बात है। सामान्य चैतन्य अनन्त परन्तु स्वभाव अनन्त है। उसकी पर्याय में अनन्त जो है, उसके अनन्तवें भाग में पर्याय में अंश होते हैं। चाहे तो केवलज्ञान हो तो भी। है न ? आत्मा वास्तव में अनन्त, सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक,... यह अनन्त जाता है उसमें। क्योंकि आत्मप्रदेश कहीं अनन्त नहीं है। प्रदेश तो असंख्य है। उसके असंख्यप्रदेश में ध्रुवरूप से, सामान्यरूप से, एकरूप से, अखण्डरूप से रहा हुआ सामान्यज्ञान है। ज्ञान तो विशेष है न ? तो यहाँ

सामान्यज्ञान क्यों कहा यहाँ? सामान्य अर्थात् पर्याय बिना का, विशेष बिना का सामान्य, ऐसा। पर्याय बिना का सामान्य त्रिकाल। समझ में आया?

आत्मा असंख्य प्रदेश, उसमें अनन्त एकरूप ज्ञान व्यापक है। उसकी एक समय की पर्याय में यह अनन्त जो है, उसका अनन्तवाँ भाग एक समय में आता है। चाहे तो मति हो, श्रुत हो या केवल्य हो। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त ज्ञान से व्यापक वह असंख्य प्रदेश में प्रभु, उसके अनन्तवें भाग के भाग में बारह है। समझ में आया? उसके जो बारह उपयोग हैं, उसमें ज्ञान के आठ हैं। उस अनन्त भाव से भरपूर भगवान के अनन्तवें भाग के यह आठ बोल की बात है। समझ में आया?

पाँच ज्ञान हो या तीन अज्ञान हो, परन्तु वह अनन्त, आहा! जिसका स्वभाव भाव है। अन्त बिना का स्वभाव है। और स्वभाव है, वह एकरूप है। सामान्य अर्थात् एकरूप। सामान्य अर्थात् वह दर्शन का सामान्य, ऐसा यहाँ नहीं। समझ में आया? उसके अस्तित्व में ऐसा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसकी एक समय की पर्याय है, वह तो तीन काल की अपेक्षा में तो एक समय की पर्याय अनन्तवें भाग में काल भी आवे। काल भी अनन्तवें भाग में आवे, भाव भी अनन्तवें भाग में आवे। क्षेत्र में भाग अभी बराबर निश्चित नहीं होता। असंख्य प्रदेश में उसके भाग का अंश थोड़ा है पर्याय में। सामान्य का अर्थ भाग पूरा है। यह वह सामान्य है। वह उसकी पर्याय आठ प्रकार से, उसका एक अंश भाग है। इसलिए वह भी क्षेत्र में के बहुत भाग का अंश है। त्रिकाली क्षेत्र से भी उसका एक अंश, त्रिकाल अर्थात् असंख्य प्रदेश, उसमें पर्याय का क्षेत्र बहुत थोड़ा है। काल भी एक समय है और भाव अनन्त है। उसके अनन्तवें भाग में पर्याय में भाग आता है। समझ में आया?

ऐसा जो आत्मा वास्तव में, देखो! यह सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हो सकती। कहो, मगनभाई! बराबर होगा या नहीं यह? वेदान्त-फेदान्त भी अभी कहाँ? नहीं, नहीं। यह तो अन्यत्र बहुत जगह, ऐसा कहते हैं न। अमुक आज आये थे न? पाण्डिचेरी में ऐसा कहते हैं। पाण्डिचेरी में बेचारा लजाता था नाम बोलते-बोलते। जैन सही न। वहाँ आता व्याख्यान में। वाडा में था वाडा में मन्दिरमार्गी। पाण्डिचेरी, बोलते-बोलता लजाता था। ऐसा कि यहाँ महाराज साहेब के

पास बहुत बेचारा बहुत समय से.... अपना सोनगढ़ जैसा पाण्डिचेरी में या कहीं यह तत्त्व नहीं है। समझ में आया ? जैनदर्शन में भी वीतराग दर्शन के अतिरिक्त कहीं नहीं तो उसमें तो गन्ध भी नहीं। शोभालालजी! वहाँ भी उस समय प्रमुख होना पड़े। बड़े भाई को कहीं न कहीं किसी समय जाना पड़े न.... में प्रमुख होकर। ऐ राजमलजी! सुना है या नहीं? नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! आहाहा! यह भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी ने देखा और वह इस प्रकार का ही होता है। दूसरे प्रकार का हो नहीं सकता। द्रव्य से एक और गुण से ज्ञान से सामान्य एक। और उसकी विशेष पर्याय में आठ भाग। वह तो उसके भाव और काल और क्षेत्र से बहुत भाग गुणे माने। यह कहे पर्याय हुई। आहाहा! समझ में आया ?

वैसे तो आत्मा... आत्मा सब करे न 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं।' यह आत्मा कहाँ था वह ? यह तो एक बात ऊपर से लोगों को कहे कि आत्मा ऐसा होगा। परन्तु यह आत्मा ऐसा होगा। और यह वस्तु का स्वरूप ही द्रव्य-गुण और पर्याय इस स्वरूप में ही उसका पूरा सत्व और अस्तित्व रहता है। समझ में आया ? **आत्मा वास्तव में अनन्त, सर्व आत्मप्रदेशों में...** अनन्त आत्मप्रदेशों, ऐसा है ? ऐसा नहीं। यह तो दो बार, तीन बार कहा। आत्मा वास्तव में अनन्त, बस यहाँ रुकना। **सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक,...** ऐसा। यह असंख्य प्रदेश है। प्रदेश अनन्त नहीं। प्रदेश असंख्य है।

पूरा भगवान शरीर के रजकण-रजकण से भिन्न चीज़ है। आहाहा! कर्म के रजकण से भिन्न तू, भाई! तेरा अस्तित्व भिन्न है, परन्तु ऐसे भाव से अस्तिरूप से तेरा तुझमें एकपना है। वह आत्मा सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक है, पसरा हुआ है। असंख्य प्रदेश में, पूरा उसका स्वरूप है। **विशुद्ध ज्ञानसामान्यस्वरूप है।** सामान्य अर्थात् शाश्वत् उसका ज्ञानस्वभाव विशुद्ध... विशुद्ध... विशुद्ध... एकरूप सामान्यस्वभाव उसका है। वह तो द्रव्य और गुण दोनों वर्णन किये। द्रव्य, क्षेत्र और गुण तीन वर्णन किये। द्रव्य अर्थात् आत्मा, क्षेत्र अर्थात् असंख्य आत्मप्रदेश और गुण में ज्ञान विशुद्ध, दर्शन सामान्य यह गुण वर्णन किये। कहो, समझ में आया इसमें ?

अब इसकी पर्याय वर्णन करते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। उसमें द्रव्य, क्षेत्र

और भाव का वर्णन किया। अब उसके काल का वर्णन उसकी समय की पर्याय कैसी होती है, उसका वर्णन करते हैं। समझ में आया? देखो! वह (आत्मा) वास्तव में अनादि ज्ञानावरणकर्म से आच्छादित प्रदेशवाला वर्तता हुआ,... देखो, दोनों लिये। वास्तव में अनादि ज्ञानावरणकर्म। पहले इनकार करते थे ४०वीं गाथा में। वह स्वयं से ही बारह उपयोग होते हैं। 'चैतन्यअनुविधायीपरिणामउपयोगः' यह बात सिद्ध करके यहाँ निमित्तपना सिद्ध करते हैं। स्वयं आत्मा वस्तुरूप से तो भगवान चैतन्यबिम्ब पुंज, चैतन्यसूर्य। चैतन्य ज्ञानसामान्य एकरूप असंख्य प्रदेश में वह तो चैतन्यसूर्य है। अपनी अस्ति का तत्त्व कैसा है, ऐसी इसे खबर नहीं होती। समझ में आया?

और दूसरे की अस्ति का स्वीकार करने गया—यह है और यह है। परन्तु तू है कितना? यह जो आत्मा अनादि ज्ञानावरणकर्म से एक शब्द प्रयोग किया है। अनादि से ज्ञानावरणीय का निमित्तपना, व्यवहार से ज्ञानावरणीय से आच्छादित है और पर्याय में अपने भाव ज्ञान के आवरण से आच्छादित हैं। समझ में आया? होने से प्रदेशवाला वर्तता हुआ,... वापस यह भाषा प्रयोग की है। ऐसे आच्छादित प्रदेशोंवाला असंख्य प्रदेश में उस जाति का आवरण है। समझ में आया?

कोई प्रदेश खुल्ले हैं। आठ रोचक और दूसरे आच्छादन हैं, ऐसा नहीं—ऐसा सिद्ध करते हैं। श्वेताम्बर में आता है आठ रोचक निरावरण खुल्ले हैं। खुल्ला हो तो असंख्यों भाग खुल्ला हो गया। असंख्यवाँ भाग खुल्ला होने पर केवलज्ञान का असंख्यवाँ भाग प्रगट हो गया और असंख्यवाँ भाग प्रगट होने पर लोकालोक को जाने। क्योंकि इससे तो अनन्तगुणी जानने की शक्ति है। यहाँ तो कहते हैं इतनी एक बात में समाविष्ट कर देते हैं। कि वह अनादि ज्ञानावरणकर्म से आच्छादित प्रदेशवाला वर्तता हुआ,... वह स्वयं उसमें वर्तता हुआ। कर्म के आवरण में और भाव आवरण में स्वयं वर्तता हुआ।

उस प्रकार के (अर्थात् मतिज्ञान के) आवरण के क्षयोपशम से... अब मति की बात लेते हैं न! मतिज्ञान के आवरण के क्षयोपशम से, देखो! यहाँ से लो। देखो! मति का क्षयोपशम हो इतना ज्ञान का उघाड़ होता है। परन्तु यह पहले (गाथा) चालीस में कह गये, वह क्या लगाया था?

मुमुक्षु : यह बात भी है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात भी क्या है ? वह तो ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम उसकी पर्याय में—जड़ में है। निमित्तरूप से है। यहाँ क्षयोपशम तो स्वयं से हुआ है। यह बात चालीस में हो गयी। 'चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग' अपने गुण को अनुसरण कर पर्याय होती है। निमित्त को अनुसरण कर पर्याय नहीं होती। समझ में आया ?

मूल द्रव्य, गुण और पर्याय, वह जैनदर्शन की मूल चीज़, उसके ज्ञान बिना सब गड़बड़ उठी। बाबूलालजी! ज्ञान नहीं होता फिर कुछ का कुछ मनाया, किसी ने कुछ मनाया, किसी ने कुछ माना और सुननेवाले को खबर नहीं होती, इसलिए जय नारायण! फिर यह कहे वह सच्चा। आहाहा! एक तो आवरण का क्षयोपशम भिन्न निमित्त से और दूसरा इन्द्रिय और मन का अवलम्बन निमित्त। इन्द्रिय और मन का अवलम्बन मति है न, मति। ऐसे मन और इन्द्रिय का निमित्त है। होता है स्वयं से। वह ज्ञान की पर्याय मति से होती है, ज्ञानगुण को—सामान्यगुण को अनुसरण कर (होती है)। उसमें अनन्त निमित्त है पाँच इन्द्रियाँ और मन। कर्म का क्षयोपशमरूप से निमित्त है। **मूर्त-अमूर्त द्रव्य का...** इस मतिज्ञान में मूर्त अर्थात् जड़ आदि और अमूर्त अर्थात् अरूपी।

....द्रव्य को विकलरूप से **विशेषतः अवबोधन करता है**,... मतिज्ञान है न थोड़ा अर्थात् अपूर्णरूप से। **विकलरूप से....** अर्थात् अपूर्णरूप से। और विशेषतः अवबोधना, जानना। विशेष अवबोध। विशेष प्रतिभास वह ज्ञान है। ऐसा कहा था न इसलिए। विशेषता अवबोधते हैं। विशेषरूप से मतिज्ञान में भिन्न-भिन्न भाव, वह मतिज्ञान में स्वयं में भाव से ज्ञात होते हैं। उसे मतिज्ञान कहते हैं। लो! वह **आभिनिबोधिकज्ञान है**;... लो! यह मतिज्ञान का नाम है आभिनिबोधिक।

उस प्रकार के (अर्थात् श्रुतज्ञान के).... पर्याय ज्ञानस्वभाव को अनुसरकर अनुविधायी उसके कारण से होती है। श्रुतज्ञान अन्दर गुण के आधार से और आश्रय से होता है। परन्तु उसमें निमित्तपना किसका है, यह सच्चा कराते हैं, ज्ञान कराते हैं। श्रुतज्ञान के आवरण के उघाड़ से अर्थात् क्षयोपशम। और मन के अवलम्बन से। यहाँ अकेला मन लिया। उसमें पाँच इन्द्रियाँ थीं। मूर्त-अमूर्त द्रव्य को विकलरूप से अर्थात् अंशरूप से, अपूर्णरूप से, विशेषतः विशेषरूप से प्रतिभास हो, उसे श्रुतज्ञान कहा जाता है। कहो, श्रुतज्ञान वह यह पृष्ठ नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

श्रुतज्ञान आत्मा की पर्याय में होता है। इस पृष्ठ में कहीं श्रुतज्ञान नहीं है, इसमें ज्ञान नहीं, यह तो जड़ है। समझ में आया? कहो, सेठ! इस जिनवाणी में ज्ञान या नहीं वाणी में? वाणी तो जड़ है। जड़ में ज्ञान कैसा? यहाँ आत्मा में ज्ञानगुण जो त्रिकाली है। उसके अनुसरकर, उसके कारण से जो श्रुतज्ञान होता है, तब उसे श्रुतज्ञानावरणीय का क्षयोपशम होता है और मन का उसमें निमित्त होता है। ऐसे ज्ञान के अस्तित्ववाला वह श्रुतज्ञानवाला, उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। उसकी सम्पदा में यह है। पैसा-बैसा और स्त्री-पुत्र और परिवार उसके द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में नहीं है। समझ में आया?

इसकी पर्याय में तो यह है, कहते हैं भाई! तुझे तेरी खबर नहीं होती, इससे कहीं कोई दूसरी चीज़ नहीं, उससे कुछ उसमें आ जाये? और होवे वह चला जाये? उसकी होने की उसे खबर नहीं। ज्ञानस्वरूप भगवान को अनुसरकर यह वस्तु है—वस्तु है। उसमें ज्ञानगुण अर्थात् शक्ति अर्थात् आत्मा सत् है, उसका वह सत्त्व, वह भाव है। उस सत् के सत्त्व को अनुसरकर होती पर्याय वह तेरे भाव से तुझमें है। समझ में आया? आहाहा! वह श्रुतज्ञान है;... लो!

अब अवधि। यह प्रकार देखो! यह श्रुतज्ञान के जितने प्रकार वे सब श्रुतज्ञान में आ गये। छोटे में छोटा श्रुतज्ञान हो या बारह अंग का उघाड़ हो। समझ में आया? परन्तु पर के लक्ष्यवाला उघाड़ व्यवहार साधन कहेंगे। स्व के उघाड़ के लक्ष्यवाला वह निश्चय साधन है। है या नहीं? अन्दर है। आयेगा, अर्थ में आयेगा। भावार्थ में आयेगा। इस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से ही मूर्तद्रव्य को विकल्परूप से अवधि-अवधि। विकल्परूप से अर्थात् अपूर्णरूप से और विशेषतः अर्थात् विशेष प्रतिभास, उसे अवधिज्ञान कहा जाता है। अवधिज्ञान, वह आत्मा की एक पर्याय है। ज्ञान की एक विशेष अवस्था है। सामान्य जो ज्ञान त्रिकाली, उसे अनुसरकर होती एक दशा है। समझ में आया?

कितने ही कहते हैं कि यह चिह्न अवधिज्ञान आदि हो, उसे अवधि हो और.... हैं? होता है, होता है सही। शास्त्र में निमित्त के अस्तित्व है और ऐसा चिह्न होता है, उसे ऐसा होता है और ऐसा चिह्न हो। यह बात करते थे। परन्तु होता है, वह अपने कारण से। नहीं कि अवधिज्ञान के चिह्न हैं, इसलिए होता है। समझ में आया? अब मनःपर्ययज्ञान।

उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से ही... ऐसा 'ही' शब्द है न जहाँ, उसे

लोग माने कि उसका क्षयोपशम हो तो ही, परन्तु उसका क्षयोपशम हो कब ? तू तुझमें क्षयोपशम करे, तब उसमें क्षयोपशम उसका होता ही है। परमनोगत (-दूसरों के मन के साथ सम्बन्धवाले)... मनोगत पर के मन के सम्बन्धवाले पदार्थ। मूर्त द्रव्य का विकलरूप से... विकल अर्थात् अपूर्णपना। विशेषतः... अर्थात् सामान्यरूप से और विशेष भेदवाला। अवबोधन करता है, वह मनःपर्ययज्ञान है;... लो! अब अन्तिम केवलज्ञान महापूज्य।

समस्त आवरण के अत्यन्त क्षय से, देखो! यहाँ से यहाँ माँडी, ऐसा कहे न रतनचन्द्रजी! तुम आवरण के क्षय से बात करो। नवनीतभाई! अरे भगवान! वह तो निमित्त की बात है। स्वयं केवलज्ञान की पर्याय आत्मा के गुण के अनुसरण कर होती है। यह तो पहली बात ४० (गाथा) में कह गये। 'चैतन्यअनुविधायीपरिणामउपयोगः' केवलज्ञान जलहल ज्योति तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी दशा वह आत्मा के ज्ञानगुण को अनुसरण कर होती है। संहनन या मनुष्यदेह या श्रवण या मनन या चिन्तवन या विकल्प किसी के आश्रय से केवलज्ञान नहीं होता। आहाहा!

भगवान चैतन्य का चोसला चैतन्य का पिण्ड है। महाप्रभु चैतन्य है। उसका सामान्य जो गुण है एकरूप ज्ञान, उसे अनुसरकर केवलज्ञान होता है। समझ में आया ? वह केवलज्ञान समस्त आवरण के अत्यन्त क्षय से,... यहाँ निमित्त से कथन है। वे कहते हैं न कि तुम कर्म के क्षय से होता है, ऐसा नहीं कहते, परन्तु आत्मा स्वयं जब पुरुषार्थ से जागृत होकर अज्ञान को क्षय करे, तब कर्म का क्षय अपने आप होता है। ऐसा है। यहाँ तो... झुकाने से पहले बात कर गये हैं। केवलज्ञान भी भगवान आत्मा शक्तिरूप, गुणरूप, भावरूप ज्ञानस्वभाव जो 'ज्ञ' स्वभाव पड़ा है, उसमें अन्तर एकाग्र होकर स्वसन्मुख की एकाग्रता से उसे केवलज्ञान होता है। तब केवलज्ञानावरण का क्षय होता है। क्षय का अर्थ कर्मरूपी पर्याय थी, वह अकर्मरूप हो जाती है। कर्म की पर्याय अकर्मरूप हो जाती है। उसे पर्याय का काल अकर्मरूप होने का है, इसलिए (हो जाती है)। समझ में आया ?

ये सब सिद्ध (साबित) होते हैं। कर्म निमित्त है। वस्तु है या नहीं ? परन्तु स्वयं के कारण वहाँ निमित्त है या कोई उसके कारण से निमित्त है, इसलिए यहाँ आवरण है ?

निमित्त हटे इसलिए आवरण हटता है या अन्दर से भाव आवरण ? ऐसा है नहीं, यह तो ४० में बहुत स्पष्टीकरण कल घण्टे में पाँच लाईन में बहुत आ गया। समझ में आया ?

ओहो! केवल ही (-आत्मा अकेला ही)... लो! उसमें तो अपेक्षित कहा था। यहाँ तो अकेला भगवान आत्मा चैतन्य के स्वभाव से भरपूर प्रभु को अवलम्बकर केवल—अकेला आत्मा पर की अपेक्षा या निमित्त की अपेक्षा भी वहाँ नहीं। (-आत्मा अकेला ही) मूर्त-अमूर्त द्रव्य का... तीन काल के जड़ को और अमूर्त को, अमूर्त में तो धर्मास्ति और आत्मा दोनों आ गये। सकलपने... देखो! उसमें विकल था। चार में विकल अर्थात् अपूर्णरूप से। यहाँ सकलरूप से। विशेष तो वहाँ भी था। विशेषतः अवबोधन करता है, वह स्वाभाविक केवलज्ञान है। लो! यहाँ स्वाभाविक शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया ?

‘लाख बात की बात (यही) निश्चय उर लाओ’ आता है न, छहढाला में। विश्वास बैठे नहीं न, क्या हो ? मेरी सम्पदा प्रभु पूर्णानन्द से भरपूर है। ज्ञानस्वभाव... ज्ञानस्वभाव सामान्य ज्ञानस्वभाव। प्रवचनसार में आता है न ? असाधारण ज्ञान को कारणरूप से ग्रहण करके। असाधारण केवलज्ञान ज्ञानगुण जो है, उसे कारणरूप से ग्रहण करके केवलज्ञान की पर्याय आत्मा के प्रदेश पर पसर जाती है। आहाहा! समझ में आया ?

लोगों को बात यह कि यह महाप्रभु चैतन्य की सत्ता का इतना महा स्वरूप है, यह बात उनके अन्दर में साधारण मस्तिष्क में प्रवेश नहीं होती। बहुत पामरता वेदन की है न अनादि से ! पामरता वेदकर, पामरता को जानकर, पामरता में रहा है। आहाहा! यह ऑपरेशन होता है न, देखो न ! ऐई पण्डितजी ! रतनजी ! यह ऑपरेशन होता है या नहीं ? इंजेक्शन लगाते हैं या नहीं ?

भगवान आत्मा आँख बन्द करके अन्दर पड़ा हुआ नहीं। यह आँख बन्द हो या खुले, ऐसा खुला हुआ चैतन्य भगवान आँखें खुले ऐसा होता है। ऐसा सामान्य ज्ञान शक्तिरूप से महाप्रभु स्थित ही है। उसे अन्तर में कारणरूप से ग्रहण करके अर्थात् वर्तमान दशा के कार्य को कारणरूप से इसे अन्दर बनाकर। आहाहा! त्रिकाल भगवान आत्मा चैतन्य ध्रुव, ऐसा है वहाँ असाधारण ज्ञान को कारणरूप से ग्रह लिया है। गुण अलग पड़ता नहीं, परन्तु गुण असाधारण जो ज्ञान है, उसे पकड़ने जाये, वहाँ द्रव्य ही

पकड़ में आता है। समझ में आया? अरे! यह जन्म-मरण मिटाने का पन्थ और पद्धति तो यह है भाई! समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा सकलरूप से स्वाभाविक केवलज्ञान जो पर्याय है, एक हो। सामान्य जो गुण है, उसके अनन्तवें भाग का एक यह अंश है। सामान्य जो ज्ञानस्वभाव शक्ति है, उसमें से केवलज्ञान तो अनन्तवें भाग का एक अंश है। ऐसे अंश हुआ ही करे, परन्तु वह सामान्य कभी कम नहीं होता। समझ में आया? कैसे विश्वास में (आवे)? ऐसा विश्वास आने पर उसे निमित्त से पृथक् पड़ जाये, राग से अधिक हो जाये, अधिक अर्थात् भिन्न। एक समय की पर्याय के लक्ष्य से छूटकर अधिकरूप से पर से भिन्न भासे, ऐसा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अपनी दृष्टि में आने पर उसे केवलज्ञान की प्रतीति होने पर, उसे केवल ज्ञान में एकाग्र होने पर केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

वह स्वाभाविक केवलज्ञान है। देखो! वे चार विभाविक कहे। इसका अर्थ हुआ न? चार तो विभाविक कहे। नियमसार में आता है न! चार ज्ञान, मूल पाठ में आता है, विभाविक है। केवलज्ञान एक स्वाभाविक है। उसमें जरा निमित्त की सद्भाव की अपेक्षा, अभाव की अपेक्षा रहती है। अब तीन अज्ञान। यह पाँच ज्ञान की—सम्यग्ज्ञान की बात की।

मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का आभिनिबोधिकज्ञान ही कुमतिज्ञान है,... आहाहा! कुमति। उसे मति में कुमतिपना। उल्टा ही सब सूझता है। समझ में आया? उसे अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा सब उल्टे ही होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहा! वस्तु स्वयं चैतन्य भगवान ऐसे सम्यग्ज्ञान से भरपूर प्रभु, उसका जहाँ आश्रय नहीं, अवलम्बन नहीं। आधार में उसे लिया नहीं। ऐसे को तो कुमतिज्ञान में दूसरे सब आधार इससे होता है और यह हुआ और ऐसा होता है और वैसा होता है। यह सब ज्ञान, वह कुमति है वह सब देखो न! तुम्हारे क्या कहलाते हैं यह? ले गये चन्द्रमा में और अपोलो और अमुक-ठींकणा और। रॉकेट अपोलो। अपोलो क्या कहा? हाँ, वह। वह सब कुज्ञान है। ले कौन जाए धूल! वह तो उसकी परमाणु की पर्याय वहाँ होने की हो वह होती है। आहाहा! उसमें इस शंका का पार धमाधम! अरे! सुन न अब। भगवान की तुझे क्या

खबर पड़े, बापू! यह केवलज्ञान को देखा, सर्वज्ञ ने कहा, वह तीन काल में बदले ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

यहाँ तो भगवान परमात्मा कहते हैं कि जिसे मिथ्याश्रद्धा के उदय में जो वर्तता है, उसका ज्ञान जो मति का है, वह कुमति है। कहो, समझ में आया ? मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का श्रुतज्ञान ही कुश्रुतज्ञान है;... नौ पूर्व तक पढ़ जाये श्रुतज्ञान। लो! परलक्ष्यी श्रुतज्ञान कुश्रुत है। और मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का अवधिज्ञान ही विभंगज्ञान है। विभंगज्ञान। विभंग-उलटा ज्ञान। इस प्रकार (ज्ञानोपयोग के भेदों का) स्वरूप का कथन है। ज्ञान उपयोग के भेदों के-भेदों के स्वरूप का कथन है, ऐसा। पाँच भेद तो किये थे।

इस प्रकार मतिज्ञानादि आठ ज्ञानोपयोग का व्याख्यान करने में आया। अब भावार्थ। प्रथम तो निम्नानुसार पाँच ज्ञानों का स्वरूप है। निश्चयनय से अखण्ड-एक-विशुद्धज्ञानमय ऐसा यह आत्मा... सत्य दृष्टि से तो भगवान आत्मा निश्चय अर्थात् सत्य सच्चा। ऐसा जो नय से देखें तो अखण्ड-एक-विशुद्ध ज्ञानमय। पाठ में आया था विशुद्धज्ञान। इतना शब्द विशेष किया था जयसेनाचार्य में से। अखण्ड-एक-विशुद्धज्ञानमय ऐसा आत्मा। देखो! यह आत्मा ऐसा ही है। निश्चय से, सच्ची दृष्टि से, सत्यनय से देखें तो अखण्ड-एक-विशुद्धज्ञान है प्रभु।

ऐसा यह आत्मा व्यवहारनय से संसारावस्था में कर्मावृत्त वर्तता हुआ,... निमित्त में वर्तता हुआ। मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर, पाँच इन्द्रियों और मन से मूर्त-अमूर्त वस्तु को विकल्परूप से जो जानता है,... लो! विकल्परूप से-विशेषरूप से जानता है। वह मतिज्ञान है। वह तीन प्रकार का है :... मतिज्ञान के तीन प्रकार किये। जयसेनाचार्य की टीका में है, उसे यहाँ जरा समझाया है। एक उपलब्धिरूप... एक भावनारूप... एक उपयोगरूप.... यह आत्मा में होनेवाली मतिज्ञान की दशा के तीन प्रकार।

एक लब्धि-प्राप्तिरूप, एक भावनारूप, एक उपयोगरूप। व्याख्या :- मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम से जनित अर्थग्रहणशक्ति (पदार्थ को जानने की शक्ति) वह उपलब्धि है,... लब्धि कहो या उपलब्धि कहो। मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम होते ही ज्ञान की पर्याय में निर्मल प्राप्ति होना, उसे लब्धि अथवा उपलब्धि कहा जाता है।

उसकी व्यवहार लब्धि। यह ज्ञान की पर्याय का उघाड़, उसे यहाँ लब्धि कहा जाता है। प्राप्ति अर्थात् लो। दूसरी कोई चीज़ उसे प्राप्त नहीं होती। यह मतिज्ञान की लब्धि प्राप्त होती है। लो! कहो, समझ में आया ?

जाने हुए पदार्थ का पुनः-पुनः चिन्तन सो भावना है... यह काला है, यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह आनन्द है इत्यादि। ऐसा जाना हुआ भाव का लब्धरूप हुए में इस प्रकार बारम्बार चिन्तवन करना, उसे भावना कहा जाता है। और 'यह काला है', 'यह पीला है'... रंग का दृष्टान्त दिया है। इत्यादिरूप से अर्थग्रहण व्यापार (-पदार्थ को जानने का व्यापार), वह उपयोग है। मति के तीन प्रकार किये। लब्धि, भावना और उपयोग। आहाहा! कितना याद रखना इसमें? अवधि थोड़ी और काम बहुत है। यहाँ तो भाई! जानने और देखने का है ही कहाँ? वह तो सब केवलज्ञान का कन्द है न। समझ में आया? आहाहा!

तीन काल-तीन लोक को तो जैसे ग्रास करके पी जाये, ऐसा तो भगवान आत्मा है। मुँह बड़ा और ग्रास छोटा। हैं? आहाहा! परन्तु उसके केवलज्ञान के पेट अथवा उसके स्वभाव का पेट इतना बड़ा है कि तीन काल और तीन काल को तो एक समय में जानता है, तथापि अनन्त गुण का जानने का बाकी रह जाता है। अनन्त से अनन्तगुणा होता तो भी जानता। ज्ञान किसे कहते हैं? भाव-भाव, ऐसा भाव ख्याल आना चाहिए। जिसका स्वभाव है। जिसका स्व-अपनी जाति का भाव है, उस भाव की मर्यादा क्या? ओहोहो! वह भाव सबको अटके बिना, रोके बिना सबको जाने, वह तेरी लब्धि और वह तेरा स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

यह तीन प्रकार हुए। उसी प्रकार वह (मतिज्ञान) अवग्रह,... किसी भी चीज़ पहली शुरुआत में जानना, फिर विचारना, फिर निर्णय अवाय और धारणा। ऐसे भेदों द्वारा भी भेद पड़ते हैं। बाकी कोष्ठबुद्धि। कोष्ठ-कोठे में चीज़ हो तो पड़ी रहती है और ऐसा ज्ञान जो कुछ ज्ञान आया, वह उसमें पड़ा रहे, सम्हला रहे, जाये नहीं। इस प्रकार से मतिज्ञान की लब्धि का उघाड़ अन्दर में होता है। कहो, समझ में आया?

बीज बुद्धि... थोड़े में से बहुत जाने, ऐसा भी मतिज्ञान में केवलज्ञान को कहना हो, वह भी मतिज्ञान जान ले। ऐसी उसकी ताकत है। समझ में आया? आता है न

मतिज्ञान, केवलज्ञान को बुलाता है। ऐसा आता है। भगवान आत्मा ऐसे ज्ञानानन्दस्वरूप को पकड़कर जो ज्ञान हुआ, वह मतिज्ञान अब केवलज्ञान को बुलाता है। इसलिए केवलज्ञान अल्पकाल में आओ, ऐसी भावना भाता है। समझ में आया? केवलज्ञान को बुलाता है, कहीं पड़ा है और आना, ऐसा नहीं कहते? ऐसा है अन्दर में पड़ा है और आना, प्रगट हो अल्प काल में, ऐसा। ऐसी मतिज्ञान की बीजबुद्धि में ताकत है। बीजबुद्धि है न। **पदानुसारीबुद्धि....** एक पद सुनने पर बहुत पद का ज्ञान हो जाये। मतिज्ञान का ऐसा ही प्रकार उघाड़ का अन्दर है कि एक शब्द-पद पड़ने पर ख्याल सब बहुत का आ जाये। समझ में आया? ऐसी उसकी ताकत है।

संभिन्नश्रोतृताबुद्धि.... एक-एक इन्द्रिय से पाँच इन्द्रिय का ज्ञान हो। वह पैर से सुने। ऐसी लब्धि है मति की। हैं? आँखें बन्द हो तो पैर से देखे। ऐसा उघाड़ अन्दर है। समझ में आया? और जो आँख यह उघाड़ी, उसमें से-आँख में से जानता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। यहाँ वह आँख उघाड़ी, उसमें वह जाने, बन्द होती तो नहीं जानता? जो जानने की पर्याय में पर्याय से जानता है। कहीं इसके कारण नहीं जानता। यह तो जड़ है। इसका अस्तित्व तो अत्यन्त पृथक् है। समझ में आया? **संभिन्नश्रोतृताबुद्धि** ऐसे भेदों द्वारा चार प्रकार का है। संभिन्न, समझ में आया? एक-एक इन्द्रिय से पाँचों का ज्ञान करे। हैं? एक-एक इन्द्रिय से सब ज्ञान करे, ऐसा। नाक से सुने। नाक से ज्ञान करे। हाँ, ऐसी लब्धि है। मति का ऐसा प्रकार है। समझ में आया?

उसकी लब्धि की शक्ति। आहाहा! यहाँ, ऐसा तात्पर्य ग्रहण करना चाहिए... अब इसका सार ग्रहण करने की बात। **निर्विकार शुद्ध अनुभूति के प्रति अभिमुख जो मतिज्ञान...** लो! अब इसका सार। निर्विकार शुद्ध अनुभूति के प्रति अभिमुख जो मतिज्ञान। जो मतिज्ञान आत्मा के स्वरूप-सन्मुख की अनुभूति करे, वह मतिज्ञान यथार्थरूप से आदरणीय है। प्रगट करने की अपेक्षा से। समझ में आया?

निर्विकार शुद्ध अनुभूति... भगवान आत्मा का जो अनुभव, आनन्द का अनुभव, ज्ञान का जो अनुभव, स्वभाव का जो अनुभव, उसमें जो सन्मुख-अभिमुख जो मतिज्ञान। जो ज्ञान स्वभाव की सन्मुख की अनुभूति करे, वह मतिज्ञान वास्तव में मतिज्ञान है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

वही उपादेयभूत अनन्त सुख का साधक होने से निश्चय से उपादेय है,... अनन्त सुख का साधक है। निर्दोष, निर्विकार, शुद्ध अनुभूति आत्मा की। आहाहा! भगवान आत्मा ध्रुव है, शुद्ध है। उसे अनुसरणकर अनुभूति, उसके सन्मुख का हुआ जो ज्ञान, वह मतिज्ञान, वह निश्चय से आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का साधक होने से, वह मतिज्ञान आदरणीय है। कहो, समझ में आया ?

इस संसार के ज्ञान के सामने यह सब बहियाँ और यह वकालत और यह सब। जो भगवान आत्मा का अनुभव करे, उसके सन्मुख जो ज्ञान हो, वह आत्मा का ज्ञान मतिज्ञान कहा जाता है। जिसके घर का है, उसके घर में जाये। ज्ञान तो घर की अपनी वस्तु है। उसके सन्मुख होकर, वह अभिमुख शब्द था न पहला ? आभिनिबोधिक शब्द था न, इसलिए स्पष्टीकरण किया। आभिनिबोधिक मति को कहते थे। आभिनिबोधिक अर्थात् अनुभव के प्रति अभिमुख, ऐसा। समझ में आया ?

राग को वेदे, विषय की वासना को वेदे, वह कहीं मतिज्ञान नहीं है, कहते हैं। वह तो अज्ञानपने से अनादि का जो वेदन है, वह मतिज्ञान नहीं। आहाहा! भगवान निर्दोष आत्मा की अनुभूति, आनन्द का वेदन, उसके सन्मुख की जो मति, वह वास्तव में आदरणीय और उपादेय है। समझ में आया ? सारांश तो यह है न! ध्रुवस्वरूप भगवान के सन्मुख का—अभिमुख हुआ अभिमुख, उसके अभि—सन्मुख हुआ। उसके अभिमुख हुआ। बाहर से विमुख हुआ। समझ में आया ?

जो ज्ञान की दशा स्वभाव—सन्मुख हुई है। और शुद्ध निर्विकारी अनुभूति के सन्मुख की दशा, उस मतिज्ञान को आदरणीय और उपादेय गिनने में आता है। उसके साधनभूत बहिरंग मतिज्ञान... यह शास्त्र का ज्ञान आदि। निमित्त-निमित्त। उसके साधनभूत... अर्थात् निमित्तरूप। बहिरंग मतिज्ञान तो व्यवहार से उपादेय है।

मुमुक्षु : उपादेय !

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादेय अर्थात् निमित्त... उपादेय (अर्थात्) व्यवहार से जाननेयोग्य है, ऐसा। आदरनेयोग्य है यह। उसे आदर... इसका आदर... उपचार, वहाँ आरोप किया। शास्त्रज्ञान को व्यवहार से उपादेय है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : उपादेय नहीं, ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; उपादेय नहीं, उसे उपादेय कहना, इसका नाम व्यवहार है। आहाहा! दुनिया की बुद्धि तो कहीं रह गयी। दुनिया की चतुराई कहीं रह गयी, देखने ले गये थे। जीप में बैठाकर मल्हारगढ़.... देखा कहाँ-कहाँ क्या है। देखनेवाला स्वयं को देखे, वह ज्ञान को ज्ञान होता है। है स्वयं से। उसे यह निश्चय से स्वसन्मुख होता हुआ आता है। है तो हेय। आहाहा! पुराण में ऐसा है, अमुक में ऐसा है, इसमें ऐसा है, देखो यह—देख यह—इस जगह ऐसा कहा है। क्या है परन्तु अब तुझे? है क्या? हैं?

मुमुक्षु : पुराण में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पुराण में। सर्वत्र कहा है। परन्तु तेरी जगह तेरा ज्ञान न आवे, वहाँ तक ज्ञान कहने में नहीं आता। समझ में आया? तेरे नौ पूर्व का पढ़ा हुआ ज्ञान धूलधाणी वा पानी है। समझ में आया? आहाहा!

नौ पूर्व में तो कितना जानपना? हाथी खड़ा रहे और स्याही इतनी हो, उस स्याही से लिखे तो लिखा नहीं जाये। इतना नौ पूर्व का (ज्ञान!) परन्तु कहते हैं कि वह सब हेय है। उसे व्यवहार से निश्चय से यह उपादेय मति स्व-पर के सन्मुख हुई है, ऐसे जीव के लिये उस ज्ञान को और व्यवहार से निमित्तरूप से साधक कहा जाता है। आहाहा! मगनभाई! आहाहा! हमारे तो प्लेटफार्म पर रखोगे नहीं। उसे प्लेटफार्म पर रखना। बढ़ गये। अब सुन न! तुझे खबर पड़े, क्या कहा जाता है यह? ऐई सेठ! बापू! आहाहा!

जिसके घर में ज्ञान भरा हुआ है, ऐसे ज्ञान के सन्मुख हुआ, अभिमुख हुआ, उसका आश्रय लिया। उस ज्ञान को ज्ञान शास्त्र से सार में कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो! यह जयसेनाचार्य प्रत्येक में निकालते हैं न शब्दार्थ, नयार्थ, भावार्थ निकालते हैं न! उसके साधनभूत बहिरंग मतिज्ञान तो व्यवहार से उपादेय है। शास्त्र का ज्ञान, पठन वह तो व्यवहार से, वह निश्चय हो तो, हों! नहीं तो वह व्यवहार भी नहीं है। आहाहा! यह मति की बात की। लो!

वही पूर्वोक्त आत्मा, श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर,... अब श्रुत की बात। मूर्त-अमूर्त वस्तु को परोक्षरूप से जो जानता है, उसे ज्ञानी श्रुतज्ञान कहते हैं। वह लब्धिरूप और भावनारूप है तथा उपयोगरूप और नयरूप है। चार प्रकार हैं। श्रुतज्ञान में चार प्रकार। 'उपयोग' शब्द से यहाँ वस्तु को ग्रहण करनेवाला प्रमाण समझना चाहिए... आत्मप्रमाण है न उपयोग से, जवाब देते हैं न। लब्धि अर्थात् उघाड़, भावना अर्थात् बारम्बार चिन्तन, उपयोग अर्थात् प्रमाणज्ञान और नय अर्थात् एक अंश का ज्ञान, ऐसा लेना। उसमें उपयोग का अर्थ किया था कि अर्थग्रहण व्यापार। यहाँ उपयोग का अर्थ ऐसा लेना, कहते हैं। वस्तु और पूरा ज्ञान प्रमाण समझना।

सम्पूर्ण वस्तु को जाननेवाला ज्ञान समझना चाहिए और 'नय' शब्द से वस्तु के (गुणपर्यायरूप) एक देश को ग्रहण करनेवाला ऐसा ज्ञाता का अभिप्राय समझना चाहिए। नय एक गुण को और एक पर्याय को जाननेवाला भाव। या एक भाग को जाननेवाला भाव, उसे नय कहते हैं। पूरी चीज़ को जाननेवाला ज्ञान, उसे प्रमाण कहते हैं। पूरी चीज़ को जाननेवाला ज्ञान, वह प्रमाण। द्रव्य-गुण और पर्याय पूरी। और उसके एक भाग को जाननेवाला ज्ञान, उसे नय कहते हैं। वह भी है तो उपयोगात्मक नय। परन्तु अंशरूप उपयोग है। वह पूरे अंशी के प्रमाणरूप उपयोग है। अरे! अरे! नय है, वह उपयोगरूप है। परन्तु एक भाग के जाननेवाला उपयोग है। और जो यह उपयोग जो कहा, वह पूरी चीज़ को पूरी जाने, पूरी। अपनी पूरी चीज़ को जाने, उसे प्रमाणज्ञान कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ ऐसा तात्पर्य ग्रहण करना चाहिए कि विशुद्धज्ञानदर्शन जिसका स्वभाव है, ऐसे शुद्ध आत्मतत्त्व के... विशुद्धज्ञानदर्शन भगवान आत्मा का स्वभाव है, शाश्वत्। ऐसे शुद्ध आत्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान... ऐसे आत्मा का सम्यक् श्रद्धान। भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, उसका विशुद्धज्ञानदर्शन जिसका शाश्वत् स्वभाव है। ऐसे शुद्ध आत्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप... अर्थात् आचरण। अभेदरत्नत्रयात्मक जो भावश्रुत... लो!

इस अभेद रत्नत्रय को भावश्रुत कहा। भावश्रुत को (समयसार) १५वीं गाथा में जैनशासन कहा। 'पस्सदि जिनशासनं' वह शासन है।

मुमुक्षु : आठवें (गुणस्थान) की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ चौथे (गुणस्थान) की बात है। अभी आठवें की कहाँ बात है? चौथा किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। चौथा अर्थात् भगवान हो गया द्रव्यदृष्टि से। समझ में आया? पर्याय में तो आये बिना रहेगा नहीं। परन्तु अब खबर नहीं होती, अब क्या हो? अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु! समझ में आया?

इसका एकाध गुण का अंश विकास पावे तो उस गुण को गुण का विकास कहते ही नहीं। समझ में आया? आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड अनन्तानन्त का, उसकी दृष्टि बिना अनन्तानन्त गुण की एक साथ पर्याय व्यक्तरूप से शुद्ध प्रगट नहीं होती और उसके बिना जितने गुण की कोई नम्रता, कोई कषाय मन्दता, कोई राग की पर्याय आवे, वह सब पर्याय मिथ्याज्ञान की पर्याय है। आहाहा! क्योंकि वस्तु पूरी अनन्त गुण के अनन्ता अनन्त गुण का पिण्ड, उसका तो आश्रय है नहीं। एकाध गुण में अन्दर में कोई नम्रता प्रगट हुई, कोई मन्द कषाय प्रगट हुई, कोई ज्ञेय आया, कोई अमुक आया। वह वस्तु नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो रत्नत्रयात्मक भगवान आत्मा त्रिकाली जो विशुद्ध दर्शनस्वरूप, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चरित्र ऐसा भावश्रुतज्ञान, ऐसा भावश्रुतज्ञान। आहाहा! वही उपादेयभूत... आदरणीय परमात्मतत्त्व का साधक होने से... उसमें अनन्त सुख का साधक होने से, कहा था मति में। यहाँ परमात्मतत्त्व का साधक होने से निश्चय से उपादेय है... इस सर्वज्ञ का साधक यह श्रुतज्ञान है। मगनभाई! आज सब बात तो सूक्ष्म पड़ी। पूरा घण्टा सब। सब जानने की बात। किन्तु उसके साधनभूत बहिरंग श्रुतज्ञान तो व्यवहार से उपादेय है। निश्चय से यह उपादेय है, वहाँ शास्त्रज्ञान हो तो उसे व्यवहार से निमित्तरूप से गिनकर साधन का आरोप करके साधन कहा है। साधन नहीं, उसे साधन कहा जाता है। ऐसा श्रुतज्ञान का अन्तर में स्वरूप है। उसे भलीभाँति जानकर उसे प्रगट करना चाहिए।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४३, गाथा-४१, पौष शुक्ल १३, मंगलवार, दिनांक -२०-०१-१९७०

जीवास्तिकाय का वर्णन है। ज्ञानोपयोग की व्याख्या चलती है। आत्मा में अभिनिबोधिकज्ञान, जो ज्ञानस्वभाव सन्मुख होकर निर्विकार शुद्ध चैतन्य की परिणतिरूप से परिणमता है, उसे यहाँ मतिज्ञान कहा जाता है। यह तो वह आया। देखो! अभिबोध सन्मुख। क्या करना? प्रश्न आये थे। आज वापस बहुत बार। अभिनिबोधिक आया था न कल।

निर्विकार शुद्ध अनुभूति के प्रति अभिमुख जो मतिज्ञान... लो! ७७ पृष्ठ बड़े पेरेग्राफ में अन्तिम लाईन। निर्विकार शुद्ध अनुभूति के प्रति अभिमुख। जानकर, पहिचानकर, विचारकर करने का अन्तिम यह है। निर्विकारी आत्मा शुद्ध चैतन्य की अनुभूति। परमानन्दस्वरूप आत्मा की निर्विकारी अनुभूति वह स्वभाव-सन्मुख हुआ मतिज्ञान। वही आदरणीय है। समझ में आया?

बाकी बाह्य के ज्ञान शास्त्र आदि के हैं, वह व्यवहार से निमित्तरूप से कहे गये हैं। यह वस्तुस्थिति है। आत्मा की ज्ञानपर्याय वस्तु स्वभाव-सन्मुख हुई और निर्विकारी अनुभूति हो, वह मतिज्ञान मोक्ष का साधक। कहो, समझ में आया? श्रीमद् में आता है न, मोक्ष का उपाय। मोक्ष उपाय सुधर्म। सुधर्म कहा है न?

आत्मा है, वह नित्य है, है कर्ता निजकर्म।

है भोक्ता अरु मोक्ष का, मोक्ष उपाय सुधर्म॥

मोक्ष उपाय सुधर्म। सुधर्म अर्थात् क्या?

यह अन्दर आत्मा-सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करना, इसका नाम सुधर्म है। समझ में आया? हैं? ऐसा कहा था। कहा है और शब्द प्रयोग किया है। देखो न, मोक्ष उपाय सुधर्म। पहले कहा न कि 'पाँचों उत्तर से हुई, आत्मा विषे प्रतीति, होगी मोक्ष उपाय की सहज प्रतीति इस रीत।' जिसे आत्मा है, त्रिकाली-नित्य है, वह अज्ञानरूप से राग-द्वेष का कर्ता, ज्ञानरूप से आनन्द और शान्ति का कर्ता, अज्ञानरूप से दुःख का भोक्ता, ज्ञानरूप से आनन्द का भोक्ता और उसकी मुक्ति पूर्णानन्द की प्राप्ति-

मुक्ति होती है। ऐसे पाँच बोल का जिसे अन्तर निर्णय आत्मा में प्रतीति, ऐसा कहा है न? मन द्वारा, ऐसा नहीं। लोग विचार नहीं करते। समझ में आया?

‘आत्मा विषे प्रतीति होगी मोक्ष उपाय की...।’ उसे मोक्ष का उपाय जो सुधर्म, स्वभाव सन्मुख जो दर्शन, ज्ञान और चारित्र की पर्याय, उसे यहाँ सुधर्म कहा है। वही मोक्ष का उपाय है। और निश्चय पर्याय है वीतरागी, वह मोक्ष का उपाय है। व्यवहार-व्यवहार बीच में विकल्प है, वह मोक्ष का उपाय नहीं है, ऐसा कहा। लो! उसमें भी आया या नहीं इसमें? भगवान की भक्ति भी मोक्ष का उपाय है, ऐसा इसमें नहीं कहा। सुधर्म कहा है। ऐसा नहीं आता वह। इसलिए लोगों को ठीक पड़ता है और मुक्ति नहीं और भक्ति नहीं, इसलिए यह ठीक (पड़ता है) बहुतों को, ऐसा उन सामनेवालों को ठीक पड़े, मूल से स्पष्टता इसमें आवे नहीं कुछ।

यहाँ कहते हैं कि जो ज्ञान आत्मा को अपने आनन्दसहित मतिज्ञान की दशा उत्पन्न हो, वही आदरणीय और वही मोक्ष का उपाय है। ऐसा है। समझ में आया?

शास्त्रज्ञान या बाह्यज्ञान, वह कहीं मोक्ष का उपाय नहीं। श्रुतज्ञान में भी यह आया अन्तिम। भावश्रुत, वही उपादेय है, देखो! **विशुद्धज्ञानदर्शन जिसका स्वभाव है,...** भगवान आत्मा जिसका कायम का स्वरूप अर्थात् स्वभाव अर्थात् भाव। विशुद्धज्ञानदर्शन जिसका स्वभाव, ऐसा आत्मा। **ऐसे शुद्ध आत्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान...** लो! यहाँ तो निश्चय है। **सम्यक् ज्ञान-(सम्यक्) अनुचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक जो भावश्रुत...** ऐसा कहा था, ऐसा। व्यवहाररत्नत्रय की इसमें तो बात भी नहीं ली। वह तो विकल्प है। भगवान आत्मा अपने परम निधान की सम्हाल करते हुए जो शान्ति और सम्यक्ज्ञान सुख का प्रगट होता है, वही परमात्मतत्त्व का साधक है। वह भावश्रुतज्ञान परमात्मतत्त्व का साधक है। मगनभाई! निश्चय से वह उपादेय है। आहा! गजब बात!

जिसे आत्मा की शान्ति प्राप्त करनी हो। आनन्द की प्राप्ति करनी हो अर्थात् कि मुक्ति। दुःख से मुक्त और आनन्द की पूर्ण की प्राप्ति, इसका नाम मुक्ति, इस मुक्ति के स्वरूप का साधक, परमात्मतत्त्व का साधक, विशुद्ध विशुद्ध दर्शन-ज्ञान आत्मा स्वभाववाला, उसकी अन्तर सन्मुख श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह अभेद रत्नत्रय अर्थात्

पर्याय का अभेदपना द्रव्य में हो, उस पर्याय को मोक्ष के कारणरूप भावश्रुतज्ञान कहा जाता है। गजब बात! भारी सूक्ष्म! बाहर की बातों से कुछ पता लगे, ऐसा नहीं है।

यहाँ तक तो आया है। मति और श्रुत। अब यह आत्मा, अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर, मूर्त वस्तु को जो प्रत्यक्षरूप से जानता है, वह अवधिज्ञान है। अवधिज्ञान की व्याख्या। वह अवधिज्ञान लब्धिरूप तथा उपयोगरूप ऐसा दो प्रकार का जानना। सम्यग्दृष्टि को अवधिज्ञान होता है। छह खण्ड के स्वामी भरत चक्रवर्ती को भी अवधिज्ञान था। छह खण्ड का राज, जिनके घर में ९६ हजार तो स्त्रियाँ और ७२ हजार पाटण, नगर ४८ हजार नगर। यह इत्यादि। ९६ करोड़ सैनिक, ९६ करोड़ गाँव। जहाँ-जहाँ थे वहाँ ऐसा। उनके नहीं थे, ऐसा कहना है। हैं? उनके घर में थे। जहाँ थे, वहाँ थे। परन्तु बाहर में संयोगरूप से इतनी समृद्धि होने पर भी भरत को अवधिज्ञान था। शोभालालजी! आहाहा!

आत्मा है न, आत्मा है न। महा भण्डार आनन्द से भरपूर है न! कहते हैं कि वह अवधिज्ञान प्राप्त होता है, वह लब्धिरूप है। और जब देखने को उपयोग लगावे, उस उपयोगरूप उसके दो प्रकार कहे जाते हैं। तीर्थंकर आदि तो तीन ज्ञान को लेकर ही अवतरित होते हैं। समझ में आया? भले राज में पड़े हों। तीन ज्ञान है। समझ में आया? नेमिनाथ भगवान तीन ज्ञान लेकर आये थे। श्रीकृष्ण और वासुदेव से छोटे थे। युद्ध में गये थे। साथ में आये थे। रथ लेकर साथ में गये थे। अवधिज्ञान तो है। खबर नहीं उन्हें? उपयोग लगावे तो खबर पड़े कि इस जगह इस समय जीता जायेगा और जरासंध मरेगा। समझ में आया? यह कहीं उपयोग बारम्बार लगाते हैं? है अन्दर ज्ञान की एक ऐसी दशा वृद्धि की कि मतिश्रुतज्ञान तो साधकरूप से मोक्ष के कारणरूप है और यह तो एक अन्दर वैभवरूप है। समझ में आया? यह न हो तो कहीं मोक्ष का साधकपना अटकता नहीं है। परन्तु अन्तर एक आत्मा का ऐसा वैभव प्रगट होता है कि जो अवधि अर्थात् मर्यादित जानता है।

लब्धिरूप अर्थात् उघाड़रूप, शक्ति की व्यक्तरूप और उपयोग, उसके व्यापाररूप। दो प्रकार से। अथवा अवधिज्ञान, देशावधि,... अर्थात् थोड़ा अवधि। परमावधि.... अर्थात् पूरा बहुत अवधि। और सर्वावधि... अर्थात् पूर्ण अवधि। परम उत्कृष्ट अवधि और

सर्वावधि। ऐसे भेदों द्वारा तीन प्रकार से है। उसमें परमावधि और सर्वावधि किसे होता है? देखो! परमावधि और सर्वावधि चैतन्य के उछलने से... चैतन्य भगवान ज्ञान से भरपूर जैसे समुद्र। जल से भरा और जैसे उछले और ज्वार में पानी आवे; वैसे चैतन्य के मध्य बिन्दु में जो महा अनन्त-अनन्त स्वभाव का बिन्दु चैतन्यशक्ति जो सत्त्व पड़ा है। उसके उछलने से, उछला कहते हैं अन्दर से। समझ में आया?

ऐसे भरपूर आनन्दरूप परमसुखामृत के रसास्वादरूप समरसीभाव से परिणत चरमदेही तपोधनों को होता है। ऐसा कहते हैं। जिन्हें अन्तिम देह होती है। उन्हें ऐसा सर्वावधि और परमावधि होता है। जिसे अन्दर से आत्मा उछल गया है। आहाहा! समझ में आया? शक्ति का सागर भगवान उसकी पर्याय में उछल गया है, कहते हैं। यह तो वीतरागता बतलाते हैं, हों! ऐसे मुनि को अवधिज्ञान होता है इतना। इतना कहना है। अवधिज्ञान इस प्रकार होता है, ऐसा नहीं कहना।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इसका कुछ नहीं। वह होवे इन्हें। परन्तु किसे? ऐसे को होता है, ऐसा कहते हैं। चरमशरीरी ऐसा जो हो, उसे होता है, इतना यहाँ बतलाना है। समझ में आया?

परमावधि और सर्वावधि चैतन्य के उछलने से... आहाहा! चैतन्य उछला, कहे, वह यह क्या होगा? भगवान चैतन्य प्रभु। जैसे फुब्बारे को ऐसे दबाते हैं न अन्दर से (और) पानी निकलता है न; उसी प्रकार भगवान चैतन्य के रस से भरपूर है। उसे एकाग्रता के दबाव से पर्याय में चैतन्य उछलता है। आहाहा! समझ में आया? भरपूर आनन्दरूप परमसुखामृत के रसास्वाद... अतीन्द्रिय आनन्द के रसिक सन्तों को, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह छद्मस्थ है, हों! यह छद्मस्थ की बात चलती है न। यह अवधिज्ञानी की बात चलती है न? आहाहा! परमात्मा के सुखामृत आनन्दस्वरूप प्रभु के अमृत के रसिक स्वादी आत्माओं को समरसीभाव से परिणत... परन्तु वापस वीतरागभाव से परिणत, ऐसा। देखो! मुनि। आहाहा!

जिसे वीतरागभाव से अप्रमत्तदशा परिणमित हुई है, हुई है। समझ में आया?

ऐसी वीतरागदशा हुई। भले छठवें में हो। चरमदेही तपोधनों को होता है। जिन्हें अन्तिम देह हो, उन्हें सर्वावधि और परमावधि होता है। मुनि को ही होता है, ऐसा कहना है। गृहस्थाश्रम में ऐसा नहीं हो सकता।

मुमुक्षु : भगवान को तो गृहस्थाश्रम में था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परमावधि, सर्वावधि नहीं था। देशावधि (था)। परमावधि और सर्वावधि की बात चलती है न! गृहस्थाश्रम में भगवान को परमावधि और सर्वावधि नहीं होता। देशावधि था। तीनों प्रकार के अवधिज्ञान विशिष्ट सम्यक्त्वादि गुण से निश्चय से होते हैं। लो! समरसीभाव से अन्दर परिणत है न! वीतरागभाव से परिणत ऐसे चरमदेही तपोधनों को होता है। तपरूपी-आनन्दरूपी जिन्हें धन है, महासन्त है, नग्न दिगम्बर बाह्य से (होते हैं)। जिन्होंने अन्तर में आनन्द की उछाल मारी है। आनन्द पर्याय में आकर पछाड़ खाता है। समझ में आया ? आहाहा !

ऐसे तपोधनों को, यह अस्ति है, ऐसा जीवास्तिकाय—ऐसा कहते हैं। जीव के अस्तित्व में ऐसी दशा सन्तों को होती है, ऐसा जीवास्तिकाय तत्त्व है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? यह विशिष्ट समकित आदि गुण से अर्थात् निश्चय समकित आदि ऐसा। विशिष्ट अर्थात् खास। आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य ध्रुव की अन्तर की प्रतीति स्वभाव सन्मुख में पसरकर, श्रद्धा को ध्रुव में पसराकर जो निश्चय समकित, निश्चय ज्ञान और निश्चयचारित्र होता है, ऐसे गुण से निश्चय से होता है। लो! ऐसे को यह तीन प्रकार के अवधिज्ञान होते हैं। वह देशावधि संसार में भी होता है। परन्तु ये, ऐसे समकित आदि गुण हों, उन्हें।

देवों और नारकों को होनेवाले भवप्रत्ययी... यह तो भवप्रत्ययी है। देव और नारकी हो, इसलिए उसे वह अवधि होती ही है। अवधिज्ञान वह नियम से देशावधि ही होता है। वह थोड़ा है, ऐसा कहते हैं। देशावधि है।

यह आत्मा, मनःपर्ययज्ञानवरण का क्षयोपशम होने पर,... अब चौथा मनःपर्ययज्ञान। यह आत्मा के ज्ञानगुण की पाँच पर्यायें। चैतन्य वस्तु के चैतन्य ज्ञानगुण की पाँच पर्यायें। यह उसकी ऋद्धि। उसके अस्तित्व में होता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

यह पैसे के ढेर और गिनती गिनते नहीं ? गिनते हैं या नहीं ? कि हमारे पास साठ लाख हैं और सत्तर लाख हैं और अस्सी लाख हैं और धूल लाख हैं । अंक गिनते हैं बड़े-बड़े । धूल है । वह दिलीप कहता था । पैसा तो कहे धूल है । दादा को कहे न धूल है ! कहाँ गये जादवजीभाई ? नहीं ? हं.... पालीताणा लड़के भी गये सवेरे । आये होंगे तीन बजे । कहो, समझ में आया ? पैसा तो धूल है । धूल होगी ? ऐ जीतु ? हैं ? परन्तु वास्तविक नजर में क्या हो तब ? परमाणु का दल जड़ है ।

वास्तव में तो सकल जगत है ऐंठवत । पूरी दुनिया उचिष्ठ है । ऐसे अनन्त बार संयोग आकर छूट गये । ऐंठ समझते हो ? जूठन । 'सकल जगत है ऐंठवत्, अथवा स्वप्न समान, वह कहिये ज्ञानी दशा, बाकी वाँचा ज्ञान ।' पूरी दुनिया जूठन (उचिष्ठ) है । परमाणु के एक रजकण से लेकर, 'रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की, सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो ।' वह तो पुद्गल है । हीरा और माणिक और चौंसठ गुणे हार चक्रवर्ती को होते हैं । समझ में आया ? चकदा चिपकाये हुए हीरा-माणिक के और ऐसे-ऐसे । एक ही हार पहने तो पूरा हृदय / छाती ढँक जाये । एक ही । परन्तु है तो सब पुद्गल के ठाठ हैं, जड़ के, मिट्टी के शृंगार हैं । आहाहा !

भगवान कहते हैं कि जिसने उसकी ममता छोड़ी है, और जिसने आत्मा के मुनिपने की दशा प्रगट की है, उसे यह मनःपर्ययज्ञान होता है । समझ में आया ? यह मनःपर्ययज्ञान गृहस्थाश्रम में नहीं होता । कहो, उसमें आता है न यह । उपासक में श्वेताम्बर में । आणंद (श्रावक) को अवधिज्ञान हुआ था । समाधिमरण के समय । बीस वर्ष में । बीस वर्ष तक श्रावकपना पालन किया । अन्त में संथारा किया था । आणंद श्रावक श्वेताम्बर में है । आणंद पहला है ।आहार लेने निकले हैं, उसने सुना कि आणंद ने संथारा किया है । लाओ न जाऊँ ! हैं ? वन्दन करने क्या जाये ? कराने को.... ऐसा कि जाऊँ, मैं देखूँ । कैसा है ? जाता है, वहाँ कहे सेठ साहेब ! मुझे अवधिज्ञान हुआ है, आणन्द कहता है । तब गौतम कहते हैं कि ऐसा अवधिज्ञान तुझे कितने प्रमाण में गृहस्थाश्रम में नहीं होता । कहो, गणधर को अभी खबर नहीं । इसलिए आणंदजी तुम प्रायश्चित लो ! प्रभु ! सच्चे का प्रायश्चित या खोटे का ? ऐसा आणंद पूछता है, आणंद श्रावक । खोटे का तो प्रायश्चित मुझे नहीं होता । बस इतना... लो ! यह सब बात कल्पित बनायी हुई है ।

गणधर जैसों को भी खबर नहीं ? यहाँ तो साधारण को भी कहते हैं कि देशावधि यहाँ होती है, परमावधि यहाँ होती है, सर्वावधि यहाँ होती है। वह फिर वहाँ भगवान के पास जाते हैं। आहार रखते हैं कि महाराज! ऐसा हुआ। मुझे क्या ? जा.... अरे! मुनि की यह दशा होगी ? आहार लेकर पात्रा में दो अधमण उठाना मजदूर की भाँति। हें ? यह मजदूर की तरह उठावे न भार, वह मुनि को नहीं होता। भाई ! तुझे खबर नहीं। मुनि तो हल्लके फूल जैसे हैं। जिन्होंने तीन कषाय का नाश किया है। बाहर में ऐसे नग्नदशा है। एक मोरपिच्छी, कमण्डल उपकरण है, दूसरा उन्हें कुछ हो नहीं सकता। भिक्षा में आहार हाथ में लेते हैं। और उन गणधर को इतनी भूल, इसकी बीस वर्ष के श्रावक को ऐसा अवधिज्ञान नहीं होता। फिर माफी माँगते हैं। तब वह कहे, देखो ! कितना विनय ! ...भाई उसमें यह। यह तो न्याय की बात है, हों ! यह वस्तु विचारने के लिये।

जगत को जहाँ-जहाँ सम्प्रदाय में दृष्टि बँध जाती है, उसे फिर सत्य-असत्य का विवेक नहीं रहता। कहाँ इसमें किसे मैं गणधर को भी ऐसा सिद्ध करता हूँ। समझ में आया ? गणधर को तो परमावधि स्वभाव से ज्ञान होता है। भाई ! अन्तिम शरीर है। उन्हें अन्तिम शरीर है। जितनी ऋद्धि मुनि को सर्वोत्कृष्ट हो, वह सब उनके पास होती है। सब गौतम गणधर के पास है। आहाहा !

कहते हैं, वह मनःपर्ययज्ञान परमनोगत मूर्त वस्तु को जो प्रत्यक्षरूप से जानता है... पर के मन में जो मूर्तपना हो, वह मनःपर्ययज्ञान प्रत्यक्ष जानता है। वह मनःपर्ययज्ञान है। उसके दो भेद हैं। ऋजुमति और विपुलमति ऐसे भेदों द्वारा मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का है। उसके भेद, उसका स्वरूप। विपुलमति मनःपर्ययज्ञान पर के मन-वचन-काय सम्बन्धी पदार्थों को, ... वह उत्कृष्ट है। वक्र तथा अवक्र दोनों को, ... सीधा और पूर्व का... होवे ऐसा इत्यादि। दोनों को विपुलमति जानता है और ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान वह अवक्र को सीधा ही जानता है। निर्विकार आत्मा की उपलब्धि और भावना सहित चरमदेही मुनियों को विपुलमति मनःपर्ययज्ञान होता है। क्या कहते हैं ? विपुलमति (मनःपर्यय) ज्ञान तो जिसे अन्तिम देह हो, ऐसे मुनि को होता है।

जो मुनि नग्न हैं, दिगम्बर हैं, अन्तर आत्मध्यान प्रगट हुआ है। वीतराग परिणति

उछल गयी है। समझ में आया ? अन्तिम देह है उसे निर्विकार आत्मा की उपलब्धि... निर्दोष वीतरागस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति दृष्टि में, ज्ञान में हो गयी है। और भावना सहित है... उसे अन्दर एकाग्रता सहित है। मुनि अर्थात् क्या ? ओहोहो! ऐसे चरमदेही मुनियों को विपुलमति मनःपर्ययज्ञान होता है। ऐसे पहले नम्बर के मनःपर्ययज्ञान के भेद की दशा अन्तिम देहवाले को होती है।

यह दोनों मनःपर्ययज्ञान वीतराग आत्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठान की भावनासहित,... देखो, किसे प्रगट होता है, ऐसा। किसे प्रगट होता है। फिर हो भले प्रमाद दशा में हो। वीतराग आत्मतत्त्व के... देखो, यह आत्मतत्त्व ही वीतराग है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह पुण्य और दया-दान और व्रत वह आत्मतत्त्व का भाव नहीं है। आहाहा! समरस का पिण्ड प्रभु आत्मा, ऐसा वीतरागी आत्मतत्त्व देखो न, यह भाषा की है। ऐसा वीतरागी आत्मभाव, उसकी सम्यक् श्रद्धा। यह भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति। निजस्वरूप वीतरागभाव की सन्मुख की सम्यक् श्रद्धा, उसके सन्मुख का ज्ञान और... समझ में आता है ? अनुष्ठान-आचरण। वह स्वरूप में स्थिरता का आचरण। आनन्द में... आनन्द में... आनन्द में... मौज में। आहाहा!

दुनिया कहती है कि हमें मजा पड़ता है। समझ में आया ? उसमें यह स्त्री में, हास्य में, कौतुहल में, और पुण्य-पाप के विकार में। समझ में आया ? यह मजा पड़ता है, वह मानता है, वह वीतरागतत्त्व का अनादर करता है। उसे सच्ची श्रद्धा नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा इस देह के हड्डियों के कर्म से परमाणु से तो पृथक् है। परन्तु अन्दर पुण्य और पाप के विकल्पों की आड़ में प्रभु भिन्न पड़ा है। ऐसे आत्मा की श्रद्धावाले को पर में मजापने की वृत्ति नहीं हो सकती। मजा समझते हो न ? लहर, क्या कहते हैं ? बस लहर है हमारे। चालीस लाख का बँगला हो संगमरमर का। सोने का आंकडिया हो। हीरा का झूला हो। हीरे के झूले रे,.... सुखी हूँ। धूल में भी नहीं, सुन न! मूढ़ कहाँ हो गया तू ? कहाँ उलझ गया ? आहाहा!

जिसे एक शुभ विकल्प में भी मजा भासित होता है, वह वीतरागी आत्मतत्त्व का अनादर करता है। वीतराग आत्मतत्त्व है न! सेठ! यह छह लाख के तुम्हारे बँगले में

मौज मानते हैं, वह कहते हैं मूढ़ है। ऐसा कहते हैं। हैं? हाँ... ऐसा कहते हैं। जिसे वीतरागी मजा आनन्द का अन्दर है, ऐसी जिसे अन्तर श्रद्धा-ज्ञान-अनुष्ठान हुए हैं, उसे मुनि कहा जाता है। आहाहा! ऐसे मुनि को यह मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। गृहस्थाश्रम में यह नहीं होता। आहाहा! समकित भी जिसे पर में मजा माने, उसे समकित उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! मगनभाई! परन्तु अच्छे लड़के आज्ञाकारी हों, आठ-आठ लड़के पाँच-पाँच हाथ के लम्बे बड़े। हैं? आज्ञाकारी हों। बापूजी! बापूजी! करे, वहाँ तो ऐसा फट जाये अन्दर से ऐसे। अरे भगवान! क्या है भाई! तेरे आनन्द के लिये परचीज यदि तू मानता हो, तो बड़ा आत्मा में आनन्द है, उसका तू खून करता है। आहाहा! इस जीवन्त की तुझे श्रद्धा नहीं है। यह आनन्द से भरपूर भगवान वीतरागभाव के स्वभाव से भरा हुआ, आहाहा! उसकी सम्यक् श्रद्धा, ऐसा कहा न! आहाहा!

भाई! सम्यग्दर्शन अर्थात् समकित अर्थात् कि वीतरागी आत्मतत्त्व के आनन्द में जिसे रुचि और दृष्टि है। जिसे जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव भी दुःखरूप लगता है। उसमें भी मजा नहीं है। आहाहा! यह तो वीतरागी आत्मतत्त्व कहा है न? कहो, रसिकभाई! क्या होगा यह? यह वीतराग का मार्ग ऐसा होगा जैनदर्शन का? परमेश्वर केवली ने कहा हुआ। केवलज्ञानी परमात्मा परमेश्वर ने ऐसा फरमाया कि जिसे वीतरागी आत्मतत्त्व की अन्तर सम्यक् श्रद्धा होती है, सम्यग्दर्शन होता है, उसे पुण्य के परिणाम में भी वह मजा नहीं मानता। समझ में आया?

देखो न, यह सिंह के भव में भगवान को सम्बोधन करने आते हैं न? हैं? देव। मैं मुनियों के पास से सुना है कि वहाँ हिरण को झपट्टा मारता है। जंगल का महा सिंह! वे मुनि ऊपर से उतरते हैं। खड़े रहते हैं। साथ में बैठते हैं। उसे ऐसा लगा कि यह मेरे निकट सामने तो नहीं आते, होवे वह भागे, यह तो ऊपर से आकर सामने खड़े-बैठे हैं। है कौन यह? क्या है यह? ऐसा देखा। अरे सिंह! हिरण पर (पैर की) थाप पड़ी है। हमने सन्तों से-केवली से सुना है, हों!

हे आत्मा! तू दसवें भव में तीन लोक का नाथ तीर्थकर महावीर होगा, हों! अरे आत्मा! तेरी शक्ति ऐसी है, हों! यह तू क्या करता है? समझ में आया? आहाहा!

विश्वास तो कितना! देखो तो सही! यहाँ सिंह देखता है, हिरण को मारता है और श्रद्धा में उसे ऐसा हो गया कि यह तो दसवें भव में तीर्थकर है। हें? हमने केवली से सुना है, हों! तुम इस स्थिति में, क्या तुम्हारी दशा! अरे! तुम तो तीर्थकर होनेवाले हो न, तीन लोक के नाथ जन्मने पर चौदह ब्रह्माण्ड जहाँ हिलेगा, वह स्थिति होनेवाली है और यह क्या? ऐसे देखता है, हों! यह क्या कहते हैं?परन्तु उसे उस जाति का उघाड़ इसलिए इस भाषा का भाव एकदम समझ जाता है। ओहो! यह मुनि मुझे ऐसा कहते हैं कि तू दसवें भव में तीर्थकर होनेवाला है। आँख में से आँसू बहने लगते हैं। अरे! हम कहाँ किस स्थिति में होनेवाले हैं और किस स्थिति में हम अभी हैं। हें? वीतरागभाव उसे अन्दर में रुचा है। ऐसा स्थान हो। माँस खाता हो। आहाहा! क्षण में पलटता है। आत्मा की ताकत है न! ऐसे वहाँ पेट में तो अभी माँस के टुकड़े थोड़े से अभी पड़े हैं। हिरण को खाता है तो। हें? यह उसके अस्तित्व में रहे। यहाँ यह सिद्ध करना है न!

आत्मा के अस्तित्व अर्थात् मौजूदगी में तो वीतरागता है ही। हम तो वीतराग... वीतराग... वीतराग... हैं। ऐसी दृष्टि सिंह के भव में हो जाती है। लो! आहाहा! हें? क्या न हो, क्यों न हो। भाई! आत्मा में कब पूर्ण प्राप्ति नहीं, उस पूर्ण प्राप्ति में से पर्याय न ही आवे, ऐसा कहाँ नहीं काल उसका? आहाहा! पूर्ण से भरपूर, भरपूर भगवान ऐसे पानी से भरा है न जैसे घड़ा। भरित अवस्था में आता है न? संस्कृत में आता है। भरित अवस्था। सत् स्वरूप अवस्थ निश्चय। यह घट, घट जैसा है न देखो न यह। घड़ा जैसा आता है। उसमें वह भगवान भी घड़े जैसा आकार से अन्दर है। भिन्न आकार से। उसमें छलाछल ज्ञान, आनन्द और वीतरागता भरी है। ऐसे आत्मा की जिसे श्रद्धा हो, यह सब उड़ जाये। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे आत्मा की श्रद्धा, ऐसे आत्मा का ज्ञान। वीतरागी आत्मतत्त्व का ज्ञान। भाषा देखो, ओहोहो! शास्त्र का ज्ञान, वह भी ज्ञान नहीं। पर का ज्ञान तो कहीं नहीं। वीतराग आत्मतत्त्व के सम्यक्ज्ञान-अनुष्ठान... यह भगवान आत्मा वीतरागी भाव से भरपूर है। उसमें आचरण / अनुष्ठान करना, उसमें रमना, ऐसी भावना.... एकाग्रता सहित है, पन्द्रह प्रमादरहित है... उत्पन्न होने के काल की बात करते हैं न? उत्पन्न होने के काल की बात। आहाहा! समझ में आया?

तीर्थकरों को तो उसी क्षण में जहाँ मुनि होते हैं और उसी क्षण में अप्रमत्तदशा होती है और एकदम मनःपर्ययज्ञान हो जाता है। गणधर गौतम को हुआ है न, अब वे तो गौतम गणधर ब्राह्मण थे। भगवान को ऐसे देखा, आहाहा! उनकी ऋद्धि बाहर की तो क्या करना! शुभभाव के परिणाम वे यह। पूरा सब। उनकी शुद्धता की क्या बात करना? समझ में आया? वह सब सामग्री तीर्थकरपने की तो एक शुभभाव के फलरूप से है। भगवान तो शुभभाव रहित है। वीतरागभाव से है। आहाहा! ऐसा अन्दर भान होने पर मनःपर्ययज्ञान (हो गया)। साधु पद। साधु के प्रमुख, लो!

कहते हैं, ऐसी भावनासहित, पन्द्रह प्रमादरहित अप्रमत्त मुनि को उपयोग में— विशुद्ध परिणाम में—उत्पन्न होते हैं। अन्तर में उपयोग अप्रमत्तदशा में जमा है, वहाँ आगे मनःपर्ययज्ञान होता है... आवे तो रहे। उत्पन्न होने के काल तो यह है। आहाहा! जिसे अप्रमत्तदशा है। सच्चे मुनि हों उन्हें तो हजारों बार छठवाँ-सातवाँ आया ही करता है। सच्चे जो मुनि भगवान कहते हैं, उन्हें तो अप्रमत्त-प्रमत्त आया ही करता है। परन्तु जब मनःपर्ययज्ञान होता है, तब उन्हें अप्रमत्तदशा में होता है। ऐसा सिद्ध करना है। अप्रमत्तदशा हो, उसे मनःपर्ययज्ञान हो, ऐसा कुछ नहीं। परन्तु मनःपर्ययज्ञान हो, उसे अप्रमत्तदशा में होता है। समझ में आया? वह आत्मा की एक ऋद्धि है। यहाँ मनःपर्ययज्ञान उत्पाद काल में ही अप्रमत्तपने का नियम है, फिर प्रमत्तपने में भी वह रहता है।

जो ज्ञान.... अब केवलज्ञान की व्याख्या। भगवान आत्मा का पूर्ण ज्ञान। **जो ज्ञान घटपटादि ज्ञेय पदार्थों का अवलम्बन लेकर उत्पन्न नहीं होता...** उस ज्ञेय का जिसमें निमित्त नहीं। आहाहा! वह केवलज्ञान है। उसे अकेला ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा को केवलज्ञान कहते हैं। है यह पर्याय, हों! आहाहा! समझ में आया?

वह श्रुतज्ञानस्वरूप भी नहीं है। वह केवलज्ञान श्रुतज्ञानस्वरूप नहीं है। धवल में आता है भगवान को श्रुतज्ञान हुआ था, ऐसा आता है, देखो! अर्थात्? उन सन्तों को श्रुतज्ञान होता है न, उसमें निमित्त है, इसलिए श्रुतज्ञान शब्द कहा। भगवान को कहाँ श्रुतज्ञान है? परन्तु धवल में पाठ ऐसा आता है। श्रुतज्ञान, पहले भाग में आता है अर्थात् कि जो सुननेवाले को एकदम भावश्रुतज्ञान का अवलम्बन होता है, उसका वह निमित्त

है, इसलिए उसे भी श्रुतज्ञान कहा गया है। भगवान को श्रुतज्ञान नहीं होता। वाणी में श्रुतज्ञान आता है, ऐसा कहते हैं।

यद्यपि दिव्यध्वनिकाल में उसके आधार से गणधरदेव... देखो! भगवान की जब दिव्यध्वनि खिरती है, ॐ.... ऐसी आवाज निकलती है। दिव्यध्वनि। दिव्य अर्थात् प्रधान ध्वनि अर्थात् आवाज। वीतराग सर्वज्ञ को जब प्रधान आवाज निकलती है। समझ में आया? आहाहा! दिव्यध्वनि! देखो! कितनी आवाज आती है। **उसके आधार से गणधरदेव आदि को श्रुतज्ञान परिणमित होता है, तथापि वह श्रुतज्ञान गणधरदेव आदि को ही होता है, केवलीभगवन्तों को तो केवलज्ञान ही होता है।** (श्रुतज्ञान) नहीं। उन्हें तो केवलज्ञान है। केवलज्ञान श्रुतज्ञान कहता है, ऐसा आता है न? धवल में पहले भाग में नहीं आता है? कहते हैं, श्रुतज्ञान ही कहते हैं। ऐसा कि केवलज्ञान नहीं कहा जाता। ऐसा कहना है। ऐसा कहना है। समझ में आया?

धवल के पहले भाग में यह आता है। केवली के मुख में से ध्वनि निकलती है वह श्रुतज्ञान निकलता है, ऐसा। केवल में तो पूरा ही होता है। श्रुतज्ञान सुननेवाले को अन्दर परिणमन स्व के आश्रय से होता है, तब दिव्यध्वनि को निमित्तरूप से कहा जाता है। उससे भी नहीं होता। लोग चिल्लाहट मचाते हैं। लो! अभी तो। अररर..! दिव्यध्वनि से ज्ञान नहीं होता? दिव्यध्वनि में भी कहाँ यह ज्ञान था? दिव्यध्वनि तो अनन्त बार सुनी। ज्ञान तो यहाँ है। अन्तर में है वहाँ से आता है। बाहर में है ज्ञान वहाँ दिव्यध्वनि की वाणी में-जड़ में है? लादुलालजी! यह लोग चिल्लाहट मचाते हैं। स्पष्ट बात आयी, वहाँ अन्दर से चिल्लाहट मचाते हैं। अररर...! दिव्यध्वनि से भी केवलज्ञान नहीं? शरीर नहीं मिले कहे, उसे वाणी नहीं मिले। बात तो सच्ची, वाणी और शरीर तो मिलते ही नहीं। अब अशरीर होगा। उसे वाणी और शरीर कहाँ से होंगे? ऐई! आहाहा!

कहते हैं, वह श्रुतज्ञान केवलज्ञानी को होता नहीं। **केवलीभगवन्तों को श्रुतज्ञान नहीं है इतना ही नहीं, किन्तु उन्हें ज्ञान-अज्ञान भी नहीं है...** अर्थात्? कुछ जानना और कुछ न जानना, ऐसे दो भाग वहाँ नहीं हैं। वह यहाँ केवल लिया है न? अकेला ज्ञान है, अकेला ज्ञान। जलहलता दीपक प्रगट हो गया। चैतन्य के प्रकाश की पर्याय में सूर्य ही प्रगट हो गया।

मुमुक्षु : निमित्त कारण कहलाये न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त कारण-फारण जानता नहीं। निमित्त कारण यहाँ है ही नहीं। आहाहा! परन्तु क्या करे? ज्ञान-अज्ञान भी नहीं है अर्थात् उन्हें किसी विषय का ज्ञान तथा किसी विषय का अज्ञान हो ऐसा भी नहीं है—सर्व विषयों का ज्ञान ही होता है;... ऐसा। केवल लिया न? केवल। अकेला ज्ञान का पिण्ड। हजारों, लाखों, अनन्त सूर्य से जैसे प्रकाशमान हो। वैसे असंख्य प्रदेश में दीपक असंख्य प्रगट हो गये। आहाहा!

ऐसा जो केवलज्ञान, वह सर्व विश्व को जाननेवाला। अथवा, उन्हें मतिज्ञानादि अनेकभेदवाला ज्ञान नहीं है... उसे चार ज्ञान नहीं, कहते हैं। श्वेताम्बर में कहते हैं केवलज्ञान हो तब... तत्त्वार्थसूत्र में... खोटी बात। पूर्ण है, वहाँ अधूरा कहाँ रह गया अब? एकाकार हो गया। अकेला चैतन्य सूर्य। अपने स्व-परप्रकाशक की पर्याय से परिपूर्णरूप से जहाँ प्राप्त हुआ, अब उसे अधूरापन रहा नहीं। कहो, समझ में आया? केवलज्ञान एक ही है। ऐसा केवलज्ञान एक ही है। आहाहा!

यहाँ जो पाँच ज्ञानों का वर्णन किया गया है, वह व्यवहार से किया गया है। क्या कहा? यह आत्मा के ज्ञानगुण की पर्याय के भेद आये, वह पर्यायें व्यवहार हैं। केवलज्ञान व्यवहार है। अरे... अरे! राग-विकल्प तो व्यवहार। पर्याय है न? भगवान् ध्रुव चैतन्य जो है, निश्चय वस्तु है, उसमें और यह पर्याय कहाँ है? वह तो एकरूप है, समान। पाँचों ज्ञान व्यवहार से वर्णन किये गये हैं। यह केवलज्ञान व्यवहार से वर्णन किया गया है। आत्मा को केवलज्ञान है, यह व्यवहार से कहा गया है। अरे... अरे! कठिन बात! मगनभाई!

निश्चय से तो बादल रहित सूर्य की भाँति आत्मा अखण्ड-एक-ज्ञान-प्रतिभासमय ही है। आत्मा अखण्ड—एक, दो शब्द जहाँ हो वहाँ प्रयुक्त होते हैं न? उसमें आया है न अखण्ड एक। एक-अखण्ड। एक-अखण्ड... यहाँ अखण्ड-एक है। आत्मा भगवान् एक-अखण्ड-ज्ञानप्रतिभास, वह तो अकेला ज्ञान के प्रतिभास से तो कहना चाहिए ऐसे तो। त्रिकाल हो, त्रिकाल। वह आश्रय करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया?

यह कौने में है। जीव एक—अखण्ड सम्पूर्ण ज्ञान होने से, है न? सम्पूर्ण द्रव्य

होने से। वस्तु है न, उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है। वस्तु अखण्ड—एक पूर्ण द्रव्य होने से, वस्तु होने से। उसका गुण ज्ञान, वह भी सम्पूर्ण अखण्ड—एक है। सम्पूर्ण ज्ञान है, स्वभाव वह आत्मा। केवलज्ञान की पर्याय तो व्यवहार है, कहते हैं। कहो, भीखाभाई! इस केवलज्ञान को व्यवहार कहा। अब इसमें व्यवहार, एक भाई वे आये थे कि हमारे व्यवहार दवा करना या नहीं? ऐसा पूछते थे। लो! मंगलभाई! हैं? है वह तो त्रिकाल है। उसमें केवलज्ञान तो होता है। होता है, इसलिए व्यवहार है। होता है, वह व्यवहार है। है... है... है... है त्रिकाली एकरूप ज्ञायक अखण्ड, वह निश्चय है। आहाहा!

अभी तो बाहर के विवाद। अरे भगवान! तू किसके साथ विवाद करता है? तेरे साथ विवाद। ऐसा पूर्ण प्रभु है, उसके साथ विवाद। उसे विश्वास में भी नहीं आता। ऐसा कहाँ होगा? ऐसा कहे। कैसे होगा? बात में होगा उसमें? अरे भगवान! सुन न, बापू! आहाहा! यहाँ तो अस्तिकाय का वर्णन चलता है न? छह द्रव्य में द्रव्य का—जीव का अस्तिकाय इतना ही अस्तित्व द्रव्यरूप है। पूर्णानन्द ज्ञान अखण्ड ज्ञान, अखण्ड एकरूप ज्ञान, वह पूर्ण अस्तित्व है। पर्याय का अस्तित्व तो व्यवहार में जाता है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा अखण्ड—एक—ज्ञानप्रतिभासमय है। लो, यह पाँच ज्ञान की व्याख्या हुई।

अब, अज्ञानत्रय के सम्बन्ध में कहते हैं :- मिथ्यात्व द्वारा अर्थात् भाव-आवरण द्वारा... भाषा देखो, भाव-आवरण वह है, बृहद्द्रव्य टीका जयसेनाचार्य। भाव-आवरण है। भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान का पिण्ड प्रभु इतना मैं नहीं। ऐसी जो मान्यता, वह भाव-आवरण है। ज्ञानावरण तो जड़ है। वह तो पर है। उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

भगवान आत्मा अभाव का... अभाव हो, उसे उपचार करने में आवे, ऐसा एक है। अभाव हो उसे उपचार करने में आवे। भाव को उपचार! नित्य वस्तु है, नित्य है आत्मा नित्य है। हं.... उसमें आता है। क्या कहलाता है? उत्तरपुराण। उसमें आता है। वस्तु नित्य है। उस नित्य को उपचार क्या? उपचार तो अभाव को उपचार कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? नित्य वस्तु नित्यानन्द प्रभु को उपचार क्या? है, इस प्रकार से उसे उपचार क्या? समझ में आया?

भाव-आवरण। उसे भाव-आवरण अनादि का है। यह इतना नहीं। मैं अल्पज्ञ हूँ, या रागवाला हूँ या ऐसी जो मान्यता, वही ऐसे स्वभाव को आवरण करनेवाली है। समझ में आया? पूर्ण प्रभु द्रव्यस्वभाव को आवरण करनेवाला। यह द्रव्यस्वभाव इतना यह है, वह मैं नहीं। मैं तो अल्पज्ञ प्राणी हूँ, रागवाला हूँ—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव वह ऐसे स्वभाव को आवरण करनेवाला है। रोकनेवाला है। दूसरा कोई रोकनेवाला नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मिथ्यात्व द्वारा अर्थात् भाव-आवरण द्वारा अज्ञान (-कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान तथा विभंगज्ञान)... तीन उत्पन्न होते हैं। तीन अज्ञान उत्पन्न होते हैं। और अविरतिभाव होता है... वहाँ अविरतिभाव होता ही है। ऐसा कि अज्ञान है, वहाँ अविरति होती ही है। जहाँ अज्ञान भाव-आवरण है और वहाँ विरतिपना हो, ऐसा नहीं होता। साधु हुआ परन्तु अन्दर अज्ञानभाव है, उसे विरतिपना है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्तर में आनन्दमूर्ति भगवान् अल्पज्ञ पर्याय की भी रुचि छोड़कर और सर्वज्ञस्वभावी पूर्ण की प्रतीति का दृष्टि-अनुभव न हो, उसे विरतिपना, महाव्रतपना, मुनिपना व्यवहार से भी नहीं होता। समझ में आया? अविरतिभाव होता है तथा ज्ञेय का अवलम्बन लेने से (-ज्ञेयसम्बन्धी विचार अथवा ज्ञान करने से) उस-उस काल दुःनय और दुःप्रमाण होते हैं। जिसे मिथ्याभ्रान्ति का आवरण है, उसे नय का विकल्प सब दुःनय है, कुनय है और प्रमाण भी कुप्रमाण है। आहा!

पूरा द्रव्य क्या है और पर्याय क्या है, उसका ज्ञान नहीं। तथा द्रव्य का एक भाग और पर्याय का एक भाग, उसका भी उसे ज्ञान नहीं। द्रव्य का एक भाग इतना बड़ा, ऐसा इसे ज्ञान नहीं, इसलिए उस नय को कुनय और दुःनय कहा जाता है। आहाहा! हैं? बहुत सरस बात! बहुत सरस बात!

भगवान् आत्मा द्रव्य अर्थात् वस्तु से परिपूर्ण प्रभु, पर्याय से अंश। दोनों का जिसे ज्ञान नहीं यह भाव-मिथ्याआवरण के कारण। त्रिकाली स्वभाव ऐसा है, वह बैठा नहीं, विपरीत बैठा है। उसे द्रव्य सम्बन्धी का नय भी कुनय है और पर्याय सम्बन्धी भी कुनय है। समझ में आया? और पूरा आत्मा सम्बन्धी का प्रमाण भी दुःप्रमाण है। दो होकर एक साथ जाने, उसे दुःप्रमाण है इसे। दो का भी यथार्थ भान इसे प्रमाण में है नहीं। आहाहा! किस प्रकार बात की है!

बाहर की जहाँ बात आवे करोड़ों और अरबों रुपये की बाहर की। वहाँ तो मनुष्य को अन्दर गहरे-गहरे गलगलिया हो जाता है। हैं ? फूलचन्दभाई ! बाहर से तो ऐसा कहे कि ठीक... परन्तु गहरे तो... आहाहा ! पाँच-पाँच लाख की एक दिन की आमदनी और अरबों रुपये, आहा ! यह तो कितना सुखी होगा ? दुःखी का सरदार है। अच्छा, सुन न अब ! जिसकी महाऋद्धि भगवान् द्रव्य स्वभाव की, उसका तो इसने अनादर किया है। समझ में आया ? और ऐसी ऋद्धि मेरी है, ऐसा माना है। वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! कहो, समझ में आया इसमें ?

यहाँ तो द्रव्यस्वभाव का जिसे ज्ञान नहीं, उसे नय, वह दुःनय है, ऐसा कहते हैं। वास्तविक ज्ञायकभाव आत्मा यह परिपूर्ण वस्तु निश्चयनय है, उसकी उसे खबर नहीं। खान में से निकालते-निकालते सौ वर्ष में भी बीत जाये। यह तो केवलज्ञान निकालते-निकालते अनन्त काल में भी बीते नहीं। हैं ? आहाहा ! कहो, समझ में आया ? भगवान् आत्मा... अरे ! वह कैसा कितना है, उसे अन्दर में भाव में कहते हैं, नहीं बैठा न, इसलिए उसे भाव-आवरण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया इसमें ?

अनन्त-अनन्त परमात्मा सिद्ध भगवान् जिसके गर्भ में-पेट में स्थित है, आत्मा में स्थित है। एक परमात्मा नहीं, अनन्त। अपना परमात्मा, पर परमात्मा तो... अपनी केवलज्ञान दशा की परमात्मदशा हो, ऐसी अनन्त दशायें। द्रव्यस्वभाव इतना बड़ा द्रव्यस्वभाव, उसे नहीं मानकर अंश को मानता है, वह द्रव्य के आवरणवाला है। मिथ्यात्व के भाव-आवरणवाला है। उसने आत्मा को रोका है। ऐसी प्रतीति करने से रोका है उसे। मिथ्यात्वभाव ने ऐसे स्वभाव को प्रतीति करने से रोका है। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! कोई भी जगत का रजकण या राग का कण वह मुझमें नहीं है। इतना तो नहीं परन्तु अल्प ज्ञान भी मैं नहीं। ऐसा जिसे नहीं जँचा, उसे अल्प ज्ञान और राग के भाव का भावमिथ्यात्व-आवरण है। इसके लिये ऐसा भगवान् आत्मा उसे अन्तर में बैठता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, उस काल में, उस-उस काल ज्ञेय का अवलम्बन लेने से दुःनय होता है... ऐसा कहते हैं। देखो ! और दुःप्रमाण होता है। आहाहा ! क्योंकि महाप्रभु ऐसी चीज़

ही किसी प्रकार उसे विश्वास में नहीं आती। विश्वास में प्रगटपने का अंश और राग है, उतना मैं—ऐसा मिथ्यात्व से माना हुआ भाव-आवरण है। उसे तो क्षण-क्षण में उस कारण से कुनय ही प्रगट होते हैं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! मेरी बात भी क्या, उसकी बड़ी बात। बड़े की बातें बड़ी होती हैं। समझ में आया?

मिथ्यादर्शन के सद्भाव में... मिथ्यादर्शन अर्थात्? परिपूर्ण स्वभाव की श्रद्धा के अभाव में, मिथ्यादर्शन के भाव में, ऐसा। सद्भाव कहा न! वर्तता, उस काल में उघड़ता हुआ मतिज्ञान और कुमतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान, वह कुश्रुतज्ञान है। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा अर्थात् सच्ची वस्तु परिपूर्ण है, उसकी श्रद्धा नहीं और विपरीत श्रद्धा स्वभाव का अनादर करके राग आदि पुण्य आदि के परिणाम का कर्तव्य मेरा है। और उससे मुझे कल्याण होगा, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव पूरा भगवान निराकुल अनाकुल आनन्द का अनादर करके और उसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह सब कुमति है। शास्त्र पढ़े तो भी कुमति है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

और श्रुतज्ञान वह कुश्रुतज्ञान है। उघड़ा हुआ श्रुतज्ञान दिखाई दे ग्यारह अंग जैसा, नौ पूर्व जैसा। पूर्ण प्रभु आत्मा के अविश्वास में, उसका विश्वास गया है सब अल्पज्ञ और राग में। अल्पज्ञान और राग में। इसलिए उसका श्रुत सब कुश्रुत है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! और अवधिज्ञान वह विभंगज्ञान है। उसके सद्भाव में वर्तते नय, वे दुःनय और दुःप्रमाण हैं, ऐसा। मिथ्याश्रद्धान में वर्तता मतिज्ञान कुमति, श्रुतज्ञान (वह) कुश्रुत; नय (वह) कुनय और प्रमाण (वह) कुप्रमाण, ऐसा। इसलिए ऐसा भावार्थ समझना चाहिए कि निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूतिस्वरूप निश्चय सम्यक्त्व उपादेय है। आहाहा!

वह यह निर्विकार शुद्ध आत्मा, उस आत्मा की व्याख्या फिर अनुभूतिरूप, उसका अनुभव यह पूर्णानन्द प्रभु है। शुद्ध ध्रुव चैतन्य है। उसकी अनुभूति में प्रतीति होना, उसे सच्चा समकित सत् का स्वीकार करनेवाला कहा जाता है। कहो, समझ में आया? अन्तिम योगफल यह है। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४४, गाथा-४१-४३, पौष शुक्ल १४, बुधवार, दिनांक -२१-०१-१९७०

पंचास्तिकाय। षट्द्रव्य और पंचास्तिकाय भगवान ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे। उनमें जीवास्तिकाय का स्वरूप क्या है, वह वर्णन है। इसमें जीव जो है, वह ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग स्वरूप है। यह चलता है। आत्मा जो है आत्मा, वह जानने के व्यापारवाला है और देखने के व्यापारवाला है। त्रिकाली उसका एक स्वरूप है। शरीर, वाणी आदि वह कहीं उसका स्वरूप नहीं, वह तो परचीज़ है। तथा पुण्य और पाप को विकल्प राग आदि, वह भी विकार है। वह कहीं आत्मा की चीज़ नहीं। उसके बिना भी आत्मा प्राप्त हो सकता है। परन्तु उपयोग बिना आत्मा प्राप्त हो, ऐसी वह चीज़ है नहीं। समझ में आया ?

आत्मा सामान्य ज्ञानस्वरूप अनादि-अनन्त है। वह गुण स्वरूप है। उसके पर्याय के आठ प्रकार हैं। पाँच सम्यक्ज्ञान के और तीन अज्ञान के। यह बात आ गयी है। अन्त में वहाँ ऐसा कहा, भावार्थ में आया न उसमें। ४१ गाथा का अन्तिम (पेरेग्राफ)।

इसलिए ऐसा भावार्थ समझना चाहिए कि निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूतिस्वरूप निश्चय सम्यक्त्व उपादेय है। अन्तिम लाईन है। ४२ गाथा के ऊपर इस ओर। ८९ पृष्ठ। वहाँ, समझ में आया ?

भावार्थ ऐसा समझना कि निर्विकार शुद्ध भगवान आत्मा त्रिकाली वीतरागस्वरूपी शुद्ध आत्मा का अनुभव, उसके सन्मुख की दशा होकर ज्ञान और आनन्द का अनुभव, उसकी प्रतीति को यहाँ निश्चय समकित कहा जाता है। यह धर्म की शुरुआत है। सुखी होने के पंथ की यह रीति है। बाकी सब दुःखी होने के रास्ते हैं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा सामान्य अर्थात् शाश्वत् ज्ञानस्वभाव का धारक, उसे अन्तर में सन्मुख होकर निर्विकारी शुद्ध ऐसा आत्मा, उसकी अनुभूति ऐसे ज्ञान और आनन्द स्वभाव को अनुसरण कर पुण्य-पाप के विकल्पों को छोड़कर, उनका अनुसरण छोड़कर, निमित्त का अनुसरण छोड़कर, वस्तु जो आत्मा पदार्थ है शुद्ध निर्विकार, उसे अनुसरण कर अन्तर्मुख में अनुभूति होना, उसकी अन्दर में प्रतीति होना, इसका नाम सच्चा

समकित। यह जैन हुआ अर्थात् धर्मी हुआ। इतने शब्द में बहुत सब भरा है। इसमें देखो! हैं न? यह कहा न, इतना तो अब होता है।

ऐसा भावार्थ समझना चाहिए कि निर्विकार शुद्ध आत्मा.... है वह तो। पुण्य-पाप के विकल्प नहीं। शरीर, वाणी, मन नहीं। ऐसा उसका अस्तित्व निर्विकार शुद्ध आत्मा है। उसकी अनुभूति। यह निर्विकार शुद्ध आत्मा, वह तो शाश्वत् चीज़ हुई। अब उसका जो अन्तर वर्तमान अनुभव, वह पर्याय हुई। समझ में आया? सूक्ष्म बात है भाई! इसे कभी अभ्यास ही नहीं होता न। क्या आत्मा, क्या मेरे अस्तित्व में क्या है और कहाँ अस्तित्वरूप में नहीं। इसकी खबर बिना अनादि काल से परिभ्रमण चलता है। दुःखी है, यह प्राणी दुःखी है।

आत्मा में निर्विकार आनन्द और निर्विकार ज्ञान भरा है शाश्वत् की चीज़। उसे अनुसरण कर अन्तर में दृष्टि होकर अनुभव होना, पुण्य-पाप के अनुभव से मुक्त होकर स्वभाव चैतन्यस्वभाव। देखो न, निर्विकार शुद्ध आत्मा की व्याख्या। आत्मा कैसा है (कि) निर्विकार शुद्ध आत्मा, इसका। शुद्ध की बात तो कहाँ है? कहो, स्वरूपचन्द्रभाई!

प्रत्येक का आत्मा वस्तु है न अन्दर, पदार्थ है या नहीं। यह जैसे मिट्टी है यह जड़। वैसे चैतन्य पदार्थ है। वस्तु है। वस्तु है, उसमें बसी हुई उसकी शक्तियों का गुणरूपभाव वह बसे हुए अन्दर अनादि-अनन्त है। खबर नहीं होती। इस रास्ते चढ़ा नहीं। सीढ़ी में गया नहीं। समझ में आया? आत्मा महाप्रभु है। वह देव का देव है। आहाहा! समझ में आया?

निज आत्मा निर्विकार शुद्ध प्रभु, ऐसा पहले ज्ञान करके फिर निर्विकारी शुद्ध आत्मा के सन्मुख होकर पुण्य-पाप के विकल्प से विमुख होकर; विमुख होकर—यह तो नास्ति से बात है। परन्तु सन्मुख होकर पुण्य-पाप के विकल्प से विमुख होता है। डॉक्टर आते हैं या नहीं थोड़ा-थोड़ा सुनने वहाँ? आते हैं। यह तो और किसी दिन सुना न हो और सब नया लगे ऐसा है यह सब। यह वह क्या होगा यह? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर देवाधिदेव तीर्थकर परमात्मा ने इस आत्मा का स्वरूप ऐसा कहा है। कि तू स्वयं ही देवाधिदेव है। आहाहा! हम तेरे देव, ऐसा जो कहना, वह तो व्यवहार है। वह

व्यवहार अर्थात् विकल्प है। हमको मानने से हमारे सामने देखकर तू हमें मानेगा, तब तो राग है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐ सेठ!

परमात्मस्वरूप है। परम आत्मस्वरूप चिदानन्द, जिसके स्वभाव में अनन्त-अनन्त शक्तियाँ संख्या से और एक-एक शक्ति का स्वभाव का अपरिमितपना—मर्यादा बिना की जिसकी शक्ति का गुण और भाव है। ऐसा भगवान आत्मा, उसके सन्मुख होकर। सन्मुख होकर, यह तो दशा हुई। समझ में आया? पर से विमुख होकर, निमित्त, पुण्य-पाप की एक समय की अवस्था जो है, उससे भी विमुख अर्थात् लक्ष्य छोड़कर, आहाहा! सुखी होना हो तो यह मार्ग है।

भगवान पूर्णानन्द निर्विकार शुद्ध है। उसे अनुसरणकर, उसके सन्मुख होकर जो अनुभूति ज्ञान की, आनन्द की, शान्ति की, शुद्ध स्वभाव की अनुभूति, वही निश्चय समकित है। वह सच्चा समकित, उसे समकित्ता कहा जाता है। यह प्रभुदासभाई तो यहाँ महीने रह गये हैं। चन्द्रकान्तभाई के साथ। चन्द्रकान्तभाई के दामाद के साथ (यहाँ रह गये)। चन्द्रकान्तभाई शान्त व्यक्ति हैं। दिमागवाले हैं। समझने की बहुत रुचि और अच्छा है। इस डॉक्टर को कहे, मिलना है पहला-पहला।

मुमुक्षु : डॉक्टर को आँख का ऑपरेशन तो करना पड़ेगा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऑपरेशन तो यह है। पर्दा पड़ा है आड़ा। मैं एक दया, दान, व्रत, आदि विकल्प है, वह राग है। वह मैं हूँ, यह चैतन्य के आड़े महामिथ्यात्व का बड़ा पर्दा है। यह उसे चीरने की बात है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा, कल कहता था दिलीप कल। आहाहा! वस्तु! गजब वस्तु स्वरूप! बालक है, तब महिमा तो करते हैं न! ऐई! ११ वर्ष का लड़का। वस्तुस्वरूप गजब अलौकिक बात! सरस वस्तु है। बापू! यह तो आनन्द के रसवाली वस्तु है। सरस... सरस—रससहित। यह पुण्य-पाप के जो विकल्प उनका वेदन तो वह जहर का वेदन, दुःख का वेदन। आहाहा! कोढ़ी को जैसे वह गलित कोढ़ हो, अँगुलियाँ गले। उसी प्रकार पुण्य-पाप के वेदन में शान्ति गलती है, जलती है, सुलगती है। यह संसार है। इसका नाम अनादि दुःख संसार है। समझ में आया?

भगवान आत्मा... वस्तु है न! कैसी? कि निर्विकार शुद्ध आत्मा.... यह इतने शब्द में समाहित कर दिया है। उसमें विकार नहीं। पुण्य-पाप का विकार नहीं। ऐसी जो चीज़, उसका बराबर वास्तविक पहले ज्ञान करके और उस परसन्मुख की रुचि छोड़कर, भगवान आत्मा निर्विकार शुद्ध पवित्र का धाम आत्मा आनन्द का धाम, उसका अनुभव करना, उसे अनुसरणकर दशा का होना, उसे यहाँ निश्चय समकित, समकित्ती उसे सच्चा समकित कहते हैं। यह देव-गुरु-धर्म को मानना और नौ तत्त्व को मानना, वह समकित नहीं है, ऐसा कहते हैं। ठाकोरदासजी! यह समकित कहे और सर्वत्र गुरु मानना, वह समकित। कहते हैं, नहीं। यह इनकार करते हैं। तुझे तू मान? समझ में आया?

तेरे माहात्म्य की शक्तियाँ क्या हैं, तेरा माहात्म्य क्या है, यह तूने सुना नहीं। भगवान ने ज्ञान में देखा, श्रीमद् ने कहा न अन्त में, नहीं। 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कहे सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।' अरूपी आनन्द का कन्द स्वभाव का सागर स्वभाव की पुतली, उसे भगवान ने देखा। जो स्वरूप सर्वज्ञ ने ज्ञान में देखा, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब। वाणी जड़, भगवान आनन्द का कन्द। वह वाणी शत्रु, चैतन्य से विरुद्ध उस वाणी द्वारा क्या कहे? समझ में आया?

ऐसा जो भगवान आत्मा, उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे? सर्वज्ञ की वाणी में भी जहाँ उसका रूप पूरा आया नहीं। वाणी में कितना आवे? उसका ईशारा आवे। ऐसी चीज़ प्रभु! तू स्वयं सच्चिदानन्द का नाथ है। समझ में आया? उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे? अनुभवगोचरमात्र रहा वह ज्ञान जो। जो यह अनुभूति। उसका ज्ञानस्वरूप भगवान का उसे ज्ञान द्वारा जानकर वेदना—अनुभव करना, उसका नाम भगवान ने आत्मा की उसने पहली शुरुआत धर्म की की है और निश्चय अर्थात् सच्चा समकित्ती अर्थात् सच्चा तत्त्व का स्वीकार करनेवाला कहा। नहीं तो वह झूठा है। समझ में आया?

ऐसे को अनुभूति वह निश्चय समकित, वह सच्चा समकित, वही ग्रहण करनेयोग्य है। वही प्रगट करनेयोग्य है। कहो, उपादेय कहा न। एक शब्द में इतना समाहित किया। शोभालालजी! आहाहा! जयसेनाचार्य में यह टीका में अन्तिम यह है। इस प्रकार ज्ञानोपयोग का वर्णन किया।

गाथा - ४२

दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं।
अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं॥४२॥

दर्शनमपि चक्षुर्युतमचक्षुर्युतमपि चावधिना सहितम्।
अनिधनमनन्तविषयं कैवल्यं चापि प्रज्ञप्तम्॥४२॥

दर्शनोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत् ।

चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति नामाभिधानम् । आत्मा ह्यनन्तसर्वात्म-
प्रदेशव्यापिविशुद्धदर्शनसामान्यात्मा । स खल्वनादिदर्शनावरणकर्मावच्छन्नप्रदेशः सन्,
यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुरिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तच्चक्षुर्दर्शनम्,
यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुर्वर्जितेतरचतुरिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं
सामान्येनावबुध्यते तदचक्षुर्दर्शनम्, यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते
तदवधिदर्शनम्, यत्सकलावरणात्यन्तक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्यं सकलं सामान्येनावबुध्यते
तत्स्वाभाविकं केवलदर्शनमिति स्वरूपाभिधानम् ॥४२॥

चक्षु-अचक्षु अवधि केवल दर्श चार प्रकार हैं ।

निराकार दर्श उपयोग में सामान्य का प्रतिभास है॥४२॥

अन्वयार्थ :- [दर्शनम् अपि] दर्शन भी [चक्षुर्युतम्] चक्षुदर्शन, [अचक्षुर्युतम्
अपि च] अचक्षुदर्शन, [अवधिना सहितम्] अवधिदर्शन [च अपि] और [अनन्तविषयम्]
अनन्त जिसका विषय है ऐसा [अनिधनम्] अविनाशी [कैवल्यं] केवलदर्शन [प्रज्ञप्तम्]
- ऐसे चार भेदवाला कहा है।

टीका:- यह, दर्शनोपयोग के भेदों के नाम और स्वरूप का कथन है।

(१) चक्षुदर्शन, (२) अचक्षुदर्शन, (३) अवधिदर्शन और (४) केवलदर्शन - इस
प्रकार (दर्शनोपयोग के भेदों के) नाम का कथन है।

(अब, उसके स्वरूप का कथन किया जाता है:-) आत्मा वास्तव में अनन्त, सर्व
आत्मप्रदेशों में व्यापक, विशुद्ध दर्शनसामान्यस्वरूप है। वह (आत्मा) वास्तव में अनादि
दर्शनावरणकर्म से आच्छादित प्रदेशोंवाला वर्तता हुआ, (१) उस प्रकार के (अर्थात्

चक्षुदर्शन के) आवरण के क्षयोपशम से और चक्षु-इन्द्रिय के अवलम्बन से मूर्त द्रव्य को विकलरूप से सामान्यतः अवबोधन करता है, वह चक्षुदर्शन है,

(२) उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से तथा चक्षु के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों और, मन के अवलम्बन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य को विकलरूप से सामान्यतः अवबोधन करता है, वह अचक्षुदर्शन है,

(३) उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से ही मूर्त द्रव्य को विकलरूप से सामान्यतः अवबोधन करता है, वह अवधिदर्शन है,

(४) समस्त आवरण के अत्यन्त क्षय से, केवल ही (-आत्मा अकेला ही), मूर्त-अमूर्त द्रव्य को सकलरूप से सामान्यतः अवबोधन करता है, वह स्वाभाविक केवलदर्शन है।-इस प्रकार (दर्शनोपयोग के भेदों के) स्वरूप का कथन है॥४२॥

गाथा - ४२ पर प्रवचन

अब दर्शन की व्याख्या चलती है। ४२। मूल श्लोक। वह संजुक्ततम कहा था न पहला उसमें। वह इन सब सहित है, सहित है, उपयोगसहित है ऐसा कहना है।

दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं।
अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं॥४२॥

नीचे उसका हरिगीत है। यह मूल श्लोक है, उसका नीचे हरिगीत है।

चक्षु-अचक्षु अवधि केवल दर्श चार प्रकार हैं।

निराकार दर्श उपयोग में सामान्य का प्रतिभास है॥४२॥

भगवान ने ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं। उसकी टीका। टीका इस ओर ४२ गाथा।

टीका :- यह, दर्शनोपयोग के भेदों के नाम और स्वरूप का कथन है। पहला नाम चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन—इस प्रकार (दर्शनोपयोग

१. सामान्यतः अवबोधन करना = देखना। (सामान्य अवबोध अर्थात् सामान्य प्रतिभास वह दर्शन है।)

के भेदों के) नाम का कथन है। भेद ऐसे हैं चार। अब इनका स्वरूप। अब इनका स्वरूप। दर्शन का स्वरूप।

आत्मा वास्तव में अनन्त, सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक,... यह अनन्त एक ओर रखना। और सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक, यह दूसरी ओर। यह अनन्त विशेषण विशुद्ध दर्शन-ज्ञान स्वरूप है उसका (विशेषण है)। समझ में आया ? भगवान आत्मा ऐसा है कि वास्तव में अनन्त। इतनी बात। क्या अनन्त, यह बाद में कहेंगे। सर्व आत्मप्रदेश भगवान आत्मा के प्रदेश असंख्य हैं। एक परमाणु एक रजकण यदि यहाँ रखो तो इतने भाग को प्रदेश कहते हैं। ऐसा यह आत्मा असंख्य प्रदेशी चौड़ा है। शरीरप्रमाण शरीर से भिन्न। शरीरप्रमाण क्षेत्र से, तथापि शरीर से भिन्न। अत्यन्त असंख्य प्रदेश का यह पिण्ड है। यह सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक है दर्शनगुण। दर्शनगुण। देखने का उपयोग असंख्य प्रदेश में व्यापक है। शरीर-फरीर, वाणी, मन उसमें है ही नहीं। समझ में आया ?

अनन्त विशुद्ध दर्शनज्ञानस्वरूप है। दर्शनसामान्यस्वरूप है। भगवान सामान्य अर्थात् यहाँ सामान्य अर्थात् एकरूप लेना। वह तो विशुद्ध दर्शन है। अत्यन्त देखने के निर्मल स्वभाववाला एकरूप दर्शनरूप है। ऐसा उसका स्वभाव है। कैसा है ? अनन्त स्वभाव है। आहाहा ! समझ में आया ?

विशुद्ध दर्शनसामान्यस्वरूप है। वह (आत्मा)... अब उसकी चार की व्याख्या करते हैं। यह गुण की व्याख्या की। अब उसकी पर्याय की व्याख्या करते हैं। वास्तव में अनादि दर्शनावरणकर्म से आच्छादित प्रदेशोंवाला वर्तता हुआ,... ऐसा होने पर भी, अनादि से अपने भाव-आवरण से ढँका हुआ, उसमें निमित्त दर्शनावरणीय निमित्त। उससे ढँके हुए आत्मप्रदेशवाला। वह आत्मप्रदेश में ढँकण है, कहते हैं। किसका ? मिथ्यात्व का। भाव-आवरणमय पहले आ गया है।

मैं ऐसा नहीं। मैं रागवाला, अल्पदर्शन उपयोगवाला, ऐसी जो मान्यता, उस मान्यता द्वारा भगवान अनन्त विशुद्ध दर्शन सामान्यस्वरूप, वह ढँक गया है। उसकी आँख में वह आता नहीं। मगनभाई ! आहाहा ! गजब बात, भाई ! समझ में आया ? अनन्त विशुद्ध दर्शनज्ञानस्वरूप होने पर भी, अनादि दर्शनावरणकर्म से आच्छादित प्रदेशोंवाला

वर्तता हुआ,... असंख्य प्रदेश में सामान्य दर्शन व्यापार शक्तिरूप पड़ा है। वह पर्याय में ऐसे ढँक गया है। क्यों? इतना दर्शन उपयोगमय अनन्त स्वभावमय, ऐसा न मानकर अनादि इन्द्रिय की ओर के लक्ष्यवाला जो दर्शनोपयोग है। वह अल्प उपयोग है, उतना मैं हूँ और दया, दान के विकल्प आदि होते हैं, उतना और वह मैं हूँ—ऐसे भाव से पूरा दर्शनसामान्यस्वरूप है, वह ढँक गया है। कहो, नवनीतभाई!

यह तो मक्खन की बात है, यह अकेली। आहाहा! क्षयवाले को मक्खन देते हैं। यहाँ भी वृद्ध यहाँ हैं न अपने, देखो! जीथरी। क्षयवाले को मक्खन बहुत देते हैं, मक्खन। यह क्षय लागू पड़ा है न! कौन सा क्षय? कि जो अनन्त दर्शनस्वरूप भगवान दृष्टा जिसका स्वभाव। जिसका स्वभाव दर्शन, दृष्टा, उसका माप क्या? अनन्त है, कहते हैं। बेहद स्वभाव। अपरिमित स्वभाव, मर्यादा बिना का जिसका अनन्त दर्शनस्वभाव। वह मैं विकल्प और रागादि को देखनेवाला जो यह सामान्य दर्शन देखनेवाला। ऐसा जो उपयोग का अंश वर्तमान प्रगट है, उतना मैं, वह मैं—ऐसे मिथ्यात्वभाव से अर्थात् झूठे भाव से। सच्चा ऐसा भाव है, वह ढँक गया है। अरे! अरे! बात समझना कठिन। समझ में आया?

कहो, स्वरूपचन्दभाई! ऐसा स्वरूप है। आहाहा! पहले समझण तो करे। ख्याल में तो बात को ले। भगवान आत्मा की महिमा क्या करना, कहते हैं। भगवान स्वयं साक्षात् प्रभु ही है। आहाहा! दर्शन उपयोगवाला अनन्त-अनन्त स्वभाववाला स्वयं प्रभु है, ऐसे प्रभुत्व की शक्ति को अल्प उपयोगवाला हूँ, रागवाला हूँ—ऐसी पर्यायबुद्धि से, पर्यायबुद्धि अर्थात् अंशबुद्धि से, अर्थात् मिथ्याबुद्धि से। सारे अनन्त दर्शन उपयोग स्वभाव का आच्छादन हो गया है। कहो, समझ में आया? आहाहा! उसकी इसे खबर नहीं।

यह वर्तता हुआ। उस प्रकार के (अर्थात् चक्षुदर्शन के) आवरण के क्षयोपशम से... चक्षुदर्शन। चक्षुदर्शन के उघाड़ से और चक्षु-इन्द्रिय के अवलम्बन से मूर्त द्रव्य को विकलरूप सामान्यतः अवबोधन करता है,... विकलरूप से अर्थात् अपूर्णरूप से। सामान्य अर्थात् कि जिसमें सामान्य प्रतिभास होता है। भेदवाला भास नहीं। सामान्य प्रतिभास ख्याल में आवे ऐसा उसे दर्शन उपयोग। परन्तु वह दर्शन उपयोग यह है, ऐसा भी उसमें नहीं। सूक्ष्म है, कहते हैं। ज्ञान की अपेक्षा दर्शन का व्यापार उसे अवबोधे वह चक्षुदर्शन

है,... यह चक्षु यह नहीं, हों! चक्षु से देखना, यह नहीं। अन्तर में जो कुछ विशेष ज्ञान होने से पहले, चक्षु के निमित्त में अन्दर ज्ञान होने से पहले। ज्ञान-दर्शन का क्षयोपशम उस जाति का, चक्षु से जानने से पहले उपयोग हो, उसे चक्षुदर्शन उपयोग कहते हैं। उस उपयोगसहित जीव है। उस उपयोगसहित जीव है। रागसहित और पुण्यसहित और निमित्तसहित है नहीं। समझ में आया ?

उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से तथा चक्षु के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों के मन के अवलम्बन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य को विकलरूप से सामान्यतः अवबोधन करता है, वह अचक्षुदर्शन है,... यह व्याख्या है। पहले नाम दिये थे। यह उसका स्वरूप है।

अब अवधि। उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से ही मूर्त द्रव्य को विकलरूप से... अपूर्णरूप से, अंशरूप से सामान्यतः... अर्थात् भेद बिना जाने (देखे) वह अवधिदर्शन है,... वह जीव की पर्याय हुई। वह जीव की पूँजी है। आहाहा! समझ में आया ?

त्रिकाल उसके उपयोग बिना का वह जीव होता नहीं। यह चार इन्द्रियों का जानने में आवे, उससे पहले का जो एक व्यापार, उसे यहाँ अचक्षुदर्शन कहते हैं। और अवधिज्ञान पर जो जानने में जो विशेष जाने, उसके पहले एक अवधिदर्शन होता है, उसे अवधिदर्शन का उपयोग कहा जाता है। अब केवल (दर्शन)।

समस्त आवरण के अत्यन्त क्षय से,... अर्थात् कि आत्मा अपने पूर्ण स्वभाव के अन्तर में सावधानीरूप से आकर आवरण का क्षय होता है। केवल ही (-आत्मा अकेला ही),... उसे निमित्त के अवलम्बन बिना, ऐसा। उसमें दो लिया था न। क्षयोपशम से और निमित्त लिया था। यहाँ क्षय से; निमित्त नहीं। ऐसा भाई! उसमें अवलम्बन लिया था न, इसमें क्षय से लिया परन्तु निमित्त नहीं। भगवान आत्मा दर्शन उपयोग में लोकालोक एक साथ देखे, ऐसा उसका स्वभाव, उसे केवलदर्शन कहते हैं। यह पाठ में है न! 'अणिधणमणंतविसयं' जिसका अन्त नहीं और जिसका विषय अनन्त है, ऐसा केवली। 'पण्णतं'... भगवान ने, मूल पाठ में है न! 'अणिधणम' उसका नाश नहीं। और 'अणंतविसयं' जिसका विषय अनन्त लोकालोक तीन काल-तीन लोक एक

समय में दर्शन में भेद बिना दिखाई दे। ऐसा आत्मा की दर्शनगुण के स्वभाव की पर्यायरूप दशा को केवलदर्शन उपयोग कहा जाता है। भारी सूक्ष्म! समझ में आया ?

यह इसकी मूडी—पूँजी है, कहते हैं। आहाहा! इसके अस्तित्व में तीन काल, तीन लोक देखे, ऐसा इसका उपयोग, वह इसकी पूँजी, इसकी पूँजी और इसका विषय अनन्त हो, ऐसा इसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? मूर्त-अमूर्त द्रव्य को सकलरूप से सामान्यतः अवबोधन करता है, वह स्वाभाविक केवलदर्शन है। उसमें स्वाभाविक केवलज्ञान आया था। स्वाभाविक केवलदर्शन है। जो आत्मा में अनन्त विशुद्ध दर्शन—देखनेरूप भाव अनादि ध्रुव शुद्धरूप से है, उसके आश्रय से प्रगट हुई केवलदर्शन पर्याय एक समय में तीन काल, तीन लोक को अवबोधे अर्थात् देखे, उस पर्याय को केवलदर्शन उपयोग चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग कहा जाता है। अरे! कितना याद रखना इसमें ?

दर्शन जो उपयोग है त्रिकाल, आत्मा दर्शन का धारक। अनन्त विशुद्ध दर्शन, वह गुण, उसे अनुसरणकर जो केवलदर्शन होता है, उसे वर्तमान उपयोगरूपी पर्याय में उसे गिनकर, पूर्ण पर्याय स्वाभाविक उसे कहा जाता है। कहो, समझ में आया? कितना इसमें याद रहे ऐसा है? क्या हाँ, ना नहीं किया। क्या करे? आहाहा! यह अन्तिम याद रखनेयोग्य है। तीन क्षयोपशम तो ठीक परन्तु यह भगवान आत्मा में, वस्तु है तो उसका कोई कायमी स्वभाव तो है या नहीं?

नित्य रहनेवाला तत्त्व अविनाशी भगवान तो उसका कोई स्वभाव अविनाशी है या नहीं? कहते हैं कि दर्शन और ज्ञान उपयोग है, वह उसका अविनाशी त्रिकाली स्वभाव है। बाकी राग और पुण्य और पर, वह तो इसका स्वभाव है नहीं। उपयोग की अल्पज्ञ दशा हो, वह कहीं इसका मूल पूर्ण स्वभाव नहीं है। तथापि वह उपयोग होता अवश्य है साधक में। समझ में आया ?

ऐसा दर्शनोपयोग स्वाभाविक इन चार दर्शन के स्वरूप का यह कथन है। देखो! स्वरूप का कथन है। हैं? ऊपर से कहा था न, उनके स्वरूप का कथन किया जाता है, ऐसा था न। पहले भेद के नाम रखे और यह स्वरूप का कथन है। उपोद्घात ही यह है। अब ४३वीं गाथा। अब क्या कहते हैं? देखो! ४३।

गाथा - ४३

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि।
तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियं ति णाणीहिं॥४३॥

न विकल्प्यते ज्ञानात् ज्ञानी ज्ञानानि भवन्त्यनेकानि।
तस्मात्तु विश्वरूपं भणितं द्रव्यमिति ज्ञानिभिः॥४३॥

एकस्यात्मनोऽनेकज्ञानात्मकत्वसमर्थनमेतत् ।

न तावज्ज्ञानी ज्ञानात्पृथग्भवति, द्वयोरप्येकास्तित्वनिवृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात्, द्वयोरप्यभिन्न-प्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात्, द्वयोरप्येकसमयनिवृत्तत्वेनैककालत्वात्, द्वयोरप्येकस्वभावत्वेनैकभावत्वात्। न चैवमुच्यमानेप्येकस्मिन्नात्मन्याभिनिबोधिकादीन्यनेकानि ज्ञानानि विरुध्यन्ते, द्रव्यस्य विश्वरूपत्वात्। द्रव्यं हि सहकर्मप्रवृत्तानन्तगुणपर्याया-धारतयानन्तरूपत्वादेकमपि विश्वरूपमभिधीयत इति ॥४३॥

ज्ञान से नहीं भिन्न ज्ञानी तदपि ज्ञान अनेक हैं।

ज्ञान की ही अनेकता से जीव विश्व स्वरूप है ॥४३॥

अन्वयार्थ :- [ज्ञानात्] ज्ञान से [ज्ञानी न विकल्प्यते] ज्ञानी का (-आत्मा का) भेद नहीं किया जाता; [ज्ञानानि अनेकानि भवन्ति] तथापि ज्ञान अनेक है। [तस्मात् तु] इसलिए तो [ज्ञानिभिः] ज्ञानियों के [द्रव्यं] द्रव्य को [विश्वरूपम् इति भणितम्] विश्वरूप (-अनेकरूप) कहा है।

टीका:- एक आत्मा अनेक ज्ञानात्मक होने का यह समर्थन है।

प्रथम तो ज्ञानी (-आत्मा) ज्ञान से पृथक् नहीं है; क्योंकि दोनों एक अस्तित्व से रचित होने से दोनों को एकद्रव्यपना है, दोनों के अभिन्न प्रदेश होने से दोनों को एकक्षेत्रपना है, दोनों एक समय में रचे जाते होने से दोनों को एककालपना है, दोनों का एक स्वभाव होने से दोनों को एकभावपना है। किन्तु ऐसा कहा जाने पर भी, एक आत्मा में आभिनिबोधिक (-मति) आदि अनेक ज्ञान विरोध नहीं पाते, क्योंकि द्रव्य विश्वरूप

है। द्रव्य वास्तव में सहवर्ती और क्रमवर्ती ऐसे अनन्त गुणों तथा पर्यायों का आधार होने के कारण अनन्तरूपवाला होने से, एक होने पर भी, 'विश्वरूप' कहा जाता है॥४३॥

गाथा - ४३ पर प्रवचन

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि।

तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियं ति णाणीहिं॥४३॥

ज्ञान से नहीं भिन्न ज्ञानी तदपि ज्ञान अनेक हैं। यहाँ तो ज्ञानस्वभावी भगवान् एकरूप में होने पर भी पर्याय में अनेक हैं। वह अनेकपना वह विरुद्धता को प्राप्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

ज्ञान से नहीं भिन्न ज्ञानी तदपि ज्ञान अनेक हैं।

ज्ञान की ही अनेकता से जीव विश्व स्वरूप है॥४३॥

सबको जाननेवाला ऐसा आत्मा, उसे भगवान् ने द्रव्य—आत्मा कहा है। समझ में आया ? विकल्प से लेकर तीन काल, तीन लोक को जाननेवाला, वह आत्मा है। बाकी उसका करनेवाला और उसमें रहनेवाला, वह आत्मा नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं यह ? समझ में आया ? ध्यान रखे तो पकड़े। भाषा बहुत सादी है। भाव तो भले ऊँचे हों।

कहते हैं, एक आत्मा अनेक ज्ञानात्मक होने का यह समर्थन है। ४३ की टीका। है न ? भगवान् आत्मा ज्ञान और दर्शन ऐसे स्वभाव से एकरूप होने पर भी, उसकी दशा में अनेकपना होता है। वह एक और अनेकपना विरोधता को प्राप्त नहीं होता। समझ में आया ? अब यह तो एकदम प्राथमिक बात है। प्रथम तो ज्ञानी (-आत्मा) ज्ञान से पृथक् नहीं है;... है टीका ? भगवान् आत्मा जैसे शरीर, वाणी पूरी दुनिया से जैसे पृथक्

१. विश्वरूप=अनेकरूप। (एक द्रव्य सहवर्ती अनन्त गुणों का और क्रमवर्ती अनन्त पर्यायों का आधार होने के कारण अनन्तरूपवाला भी है, इसलिए उसे विश्वरूप (अनेकरूप) भी कहा जाता है। इसलिए एक आत्मा अनेक ज्ञानात्मक होने में विरोध नहीं है।)

है और उसमें पुण्य-पाप के विकल्प राग विकार होता है, उससे भगवान आत्मा पृथक् है। उसी प्रकार यह आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव से पृथक् नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

उसके अस्तित्व में विकार आदि का नहीं, पर का नहीं, परन्तु उसके अस्तित्व में जो जानने का स्वभाव है, उस अस्तित्व के गुण से आत्मा कहीं पृथक् नहीं है। दोनों होकर एक है। आत्मा और जानना—ज्ञान, दोनों होकर एक ही है। समझ में आया ? आहाहा! प्रथम तो ज्ञानी अर्थात् आत्मा, यहाँ तो निज स्वरूप को इसने कभी जाना नहीं। उसे जाने बिना बाहर के बाचका भरे हैं। बाचका, वह क्या अपनी गुजराती भाषा ? धुँए के बाचका नहीं कहते हैं ? हैं ? बाचका। धुँआ निकले बाचका भरे। मुठी मारे धुँआ ? थैली में रहे ? भरे तो। करते हैं, वह रबर में भरकर नहीं करते ?

मुमुक्षु : उसमें रहे, इसमें न रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह न रहे। धुँआ न रहे। समझ में आया ?

धुँए का ओशीका नहीं होता। ओशीका नहीं करते ? हवा भरकर। सोने के लिये अन्दर हवा भरकर। इसी प्रकार धुआँ भरकर ओशीका नहीं होता। इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप के भाव से खाली है। परन्तु ज्ञान-दर्शन के भाव से भरपूर है। आहाहा! यह ज्ञानी आत्मा वस्तु, उसका जो ज्ञान-जानना, वह जानना जिसमें ज्ञात होता है, ऐसा जो ज्ञान और जो जाननेवाला जो आत्मा, दोनों भिन्न नहीं हैं। यह तो समझ में आये ऐसा है न, स्वरूपचन्द्रभाई !

जिसके अस्तित्व में—सत्ता में। पुण्य-पाप, शरीर, वाणी, मन नहीं। जिसके अस्तित्व में जानना ऐसा भाव है। परन्तु वह भाव और आत्मा भाववान, दोनों भिन्न नहीं है। यह ज्ञान के अंशों के प्रदेश-क्षेत्र पृथक् और आत्मा का प्रदेश-क्षेत्र। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, वर्णन करते हैं यह चार। चार वर्णन करते हैं। आहाहा! समझ में आया ? यह चौदिशी नहीं करते तुम्हारे मकान बेचते हैं तब ? हैं ? चतुर्दिशा—चार दिशा बताते हैं। पूर्व में वह अमुक का घर है, पश्चिम में वह अमुक है.... समझे न ? वह मेघना हो तो भी ऊपर हो, उसकी मंजिल एकाध और ऊपर आठ मंजिल पड़े वह। हैं ? क्या

कहलाता है वह ? माघ-मेडी । ऐसे होता है न ऊपर वहाँ उसका ऊपर हो तो फिर इसका हक वहाँ नहीं होता । नीचे भोंयरा होता है... सात, आठ, दस, पच्चीस, हाथ दूर किसी का हो, इसका हक वहाँ नहीं होता । इसका हक अमुक मर्यादा तक में होता है । चारों दिशा को लिखते हैं कि इन चारों दिशा में रही हुई एक चीज़ है । अवस्तु है और देनेवाला मफतलाल है, ऐसा नहीं । उसी प्रकार यह भगवान आत्मा वस्तु है । और उसे जाननेवाला मफतलाल नहीं, उसे जाननेवाला अस्तित्ववाला है । अरे ! गजब बात, भाई !

कहते हैं, उस जाननेवाले को जानना, ऐसा जो ज्ञान, भेद दोनों को नहीं है । जैसे पुण्य-पाप के विकल्प को और आत्मा को भेद है । आहाहा ! हैं ? वास्तव में तो पुण्य-पाप के भाव, यह शरीर, वाणी, मन जो है, उसका क्षेत्र भिन्न है । उसका क्षेत्र भिन्न है, उसका द्रव्य भिन्न है, उसका भाव भिन्न है और उसकी पर्याय भिन्न है । ऐसे वास्तव में तो पुण्य-पाप का क्षेत्र भी भिन्न है । ऐई ! मेल है न ! आहाहा ! यह क्षेत्र भिन्न और यह क्या होगा ? उसका स्थल । वह जितने में रहा हुआ है, उतना उसका वह स्थल । दल, स्थल, क्षेत्र, भूमि । उसकी भूमि में तो ज्ञान रहा हुआ है । पुण्य-पाप आदि भाव उसकी भूमि में-स्थल में हैं नहीं । समझ में आया ? अरे ! भारी !

आत्मा की बात छोड़कर सब बातें करो—दया पालो, व्रत पालो और भक्ति करो, पूजा करो । सब व्यर्थ है । बिना एक के शून्य, उसमें कहीं हाथ तुझे लागू पड़ेगा नहीं । आहाहा ! प्रथम तो धर्मी भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने इस आत्मा को उसके ज्ञान गुण से भिन्न देखा नहीं । भगवान ने इस आत्मा को शरीर से, वाणी से, परिवार से, क्षेत्र से, पर देश आदि से और पुण्य-पाप के भाव से भगवान ने इस आत्मा को भिन्न देखा है । इस आत्मा को, हों ! उसके आत्मा को तो भिन्न प्रगट किया है । नवनीतभाई ! आहाहा !

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी प्रभु ने इस आत्मा को ऐसा देखा है कि, यह पुण्य और पाप के राग का क्षेत्र, उसके द्रव्य आदि से पृथक् आत्मा है । परन्तु इसमें जो ज्ञानस्वभाव भरपूर है, उससे पृथक् देखा नहीं । समझ में आया ? अरे ! यह सब समझना-समझना आवे इसमें । परन्तु यह तो समझण का पिण्ड है । आहाहा ! **क्योंकि दोनों एक अस्तित्व से रचित होने से...** क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा वस्तु और उसका ज्ञानस्वभाव,

उसका ज्ञानगुण वह सत् ऐसा आत्मा का सत्व, भाव। सत्व-सत्व, वह ज्ञान। वह सत्, उसका सत्व ज्ञान, दोनों भिन्न नहीं हैं। सत्वो-सत्वो क्या कहते हैं? वह नहीं कहते तुम्हारे गेहूँ का बना हुआ। साथवो। गेहूँ का साथवो बनता है या नहीं? तुम्हारे नहीं बनता? ऐई! गेहूँ के आटे को सेंककर सत्तू बनाते हैं। बहुत वर्ष पहले सुना हुआ। यह तो साथवो अर्थात् क्या? हैं? सत्तू बोलते हैं न, हाँ! बस वही। लादुलालजी! कहे, सत्तू! हैं? क्या कहते हैं? उसमें हिन्दी में कहते हैं कि सत्तू बोलते हैं। यह कहते हैं न यहाँ। हिन्दीवाले कहते हैं न। यह साथवा का होता है। अपने उसे साथवो कहते हैं, सत्तू कहते हैं। सत्तू, सच्ची बात है। वे नहीं गरीब लोग भी सत्तू खाते हैं। नहीं आता बिहार में। डोलीवाले, उन्हें आटा डाले, वह साथ में हो तब सेर गेहूँ। आटा-आटा। उसमें क्या कुछ वह डालकर खाते हैं। हैं, मिर्ची और नमक डालकर खाते हैं बेचारे लोंदा बनाकर। गरीब लोग बेचारे। बहुत गरीब हो। दो पैसे का आटा मुश्किल से। सत्तू-सत्तू कहते हैं। डाले न उस कपड़े में। बर्तन-फर्तन कहाँ थे। गरीब लोग। अरे! ऐसा सुना है, हाँ! हाँ, हम वहाँ गये थे, सम्मेशिखर में बहुत। यहाँ तो दूसरा कहना है कि यह आत्मा जो सत् है, उसका ज्ञान वह उसका सत्व है। समझ में आया?

जो ज्ञान और आत्मा एक अस्तित्व से रचित होने से... एक अस्तित्व के भाव से रचित होने से दोनों को एकद्रव्यपना है,... भाषा देखो! ओहोहो! हैं? दोनों एक द्रव्यपना। बहुत वस्तु। आहाहा! ऐसा आत्मा है, ऐसी अन्तर प्रतीति और दृष्टि में न आवे, तब तक उसे धर्म और समकित नहीं होता। वह मर जाये व्रत और तप और क्रिया करके मर जाये, सूख जाये तो भी उसे धर्म नहीं होता। समझ में आया?

क्योंकि जिसमें एक द्रव्यपना नहीं, ऐसा क्रियाकाण्ड करे और द्रव्य को लाभ हो, (ऐसा है नहीं)। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प है, उसे और आत्मा को एक द्रव्यपना नहीं है। भाई! वह तो परद्रव्य है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! ठाकोरदासजी! ऐई! यह भगवान की भक्ति, पूजा, दान, दया और व्रत के भाव, आत्मा को और इन दोनों को एक द्रव्यपना नहीं है। आहाहा! एकपने अस्तित्व रचित हो तो भिन्न कभी पड़े नहीं। आहाहा! यहाँ तो तेरी चीज़ में क्या है और कैसे है, और किस प्रकार है, इसका इसे ज्ञान कराते हैं। और उसका ज्ञान न हो और तब तक वह

पर से पृथक् न हो और पर से पृथक् हुए बिना उसे सम्यग्दर्शन का धर्म नहीं होता।

गजब लॉजिक रखा है। देखो! पूरे न्याय से। कि आत्मा ज्ञान से पृथक् नहीं। वह तो ठीक। कारण? अब उसे कारण दिया। हेतु? वह दोनों एक अस्तित्व से रचित होने से... कहो, इस स्त्री को अर्धांगिनी कहते हैं। दोनों एक अस्तित्व से रचित हैं? हीराभाई का और यह भीखाभाई का एक अस्तित्व है या नहीं? आहाहा! पैसा, शरीर का अस्तित्व और आत्मा का अस्तित्व दोनों का होकर अस्तित्व एक अस्तित्व से है या नहीं? नहीं, नहीं। भाई! तुझे खबर नहीं। समझ में आया? दोनों के दो अस्तित्व— अस्तित्व के भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया? हैं? बहुत भरा, अलौकिक बात है। परन्तु इसने कभी सुना भी न हो कि यह क्या कहते हैं परन्तु यह?

व्रत, दया और कन्दमूल न खाना, सूर्यास्त पूर्व भोजन करना, अपवास करना, तपस्या करना, ऐसा तो जैन में सुनते हैं। परन्तु ऐसी बात कैसी यह? हैं? लाडुलालजी! सवेरे उठकर नवकारसी करना, फिर पोरसी करना, फिर यह करना। एक तो इसने यह सब किया है। हैं? दो पोरसी। हैं? हाँ, ऐसा करना, फिर अपवास करना या यह करना। कन्दमूल न खाना, हरितकाय न खाना। प्रत्येक वनस्पति जितनी छोड़े इतना धर्म। यह सब खोटी बात है, यहाँ तो कहते हैं क्योंकि जिसे तू छोड़ना चाहता है, उसका अस्तित्व तुझसे भिन्न है। अब उसे छोड़ना, वह तुझमें है कहाँ? छूटा हुआ ही है। तथापि छोड़ना है, ऐसा मानता है, वह मिथ्या अभिप्राय सेवन करता है और मानता है कि मैंने कुछ किया और छोड़ा। छोड़ा है धर्म। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं। अहो! भगवान आत्मा वस्तु है, इसका जो यह जानना, जिसके अस्तित्व में है, वह जानना; जानना, वह गुण और आत्मा गुणी, दोनों भिन्न नहीं कहीं? समझ में आया? दोनों कारण? दोनों अर्थात्? आत्मा और ज्ञान दोनों, गुणी और गुण दो, दोनों। गुणी भगवान और ज्ञान गुण शक्ति से दोनों एक अस्तित्व से उनका अस्तित्व का होना एक ही अस्तित्व है। उसके दो अस्तित्व ज्ञान का अस्तित्व अलग, आत्मा का अस्तित्व अलग, जैसे शरीर का अस्तित्व अलग, आत्मा का अस्तित्व अलग, वैसे ज्ञान का अस्तित्व अलग, आत्मा का अस्तित्व अलग—ऐसा नहीं है। भाई! ऐसी धर्म कथा

तो किस प्रकार की यह ? लोग बेचारे नये हों न, रूढ़िगतवाले, उन्हें तो ऐसा लगे कि यह क्या कहते हैं ? आहाहा ! बापू ! तुझे तेरी वस्तु की खबर नहीं । परमेश्वर यह कहते हैं । समझ में आया ?

एक होने से, एक अस्तित्व के भाव से रचित होने से, भाषा देखो ! आत्मा जिस प्रकार से है, उस प्रकार से उसका ज्ञान भी उसी प्रकार से अस्तित्व से है । ऐसा भगवान गुण और गुणी से पृथक् नहीं है । आहाहा ! ऐसे तो बाहर में ऐसा कहते हैं कि भाई ! ये भाई डण्डा मारने से पानी कहीं अलग पड़े ? ऐसी बातें करते हैं न ! एक मूँग की दो फाड़ । और ऐसा भी कहे, भाई तो भिन्न ही पड़े न ! जो आवे वह फावे, ऐसा बोले । भाई पहले तो भाई तो भाई भिन्न ही पड़े न ! भाई तो भिन्न है, ऐसा और कहे । फिर वापस कहे भाई कहीं डण्डा मारने से पानी अलग पड़े ? पानी हो, उसमें डण्डा मारे—लकड़ी ऐसे, तो वापस पानी इकट्ठा हो जाता है । ऐसा होगा यह ज्ञान और आत्मा में ? आहाहा !

जैसे पानी में ठण्डापन और पानी दोनों भिन्न नहीं हैं । परन्तु पानी में जितनी उष्णता अथवा जो विकार-मैल उससे पानी भिन्न है । वैसे भगवान आत्मा शरीर, कर्म और वाणी के अस्तित्व से अत्यन्त भिन्न जाति की सत्ता उसकी है । और पुण्य-पाप के मैल से भी उसका अस्तित्व अत्यन्त भिन्न है । ऐसा जब तक अन्तर में न जाने, तब तक उसे आत्मा में अस्तित्व की जो स्थिति है, उस प्रकार से इसने जाना नहीं । समझ में आया ? मेरी धर्म कथा, देखो ! ऐसी धर्म कथा !! मुम्बई में यदि ऐसा लगाये तो कहेंगे कि यह वह क्या लगाया है ? हैं ? यहाँ तो अब बहुत वर्ष हो गये न ! पैंतीस वर्ष हुए यहाँ । इस जंगल में पैंतीस वर्ष । यहाँ तो बहुत पैंतीस वर्ष से बहुत लोग सुनते हैं । सेठ ! सेठ तो और अब आये । ओहोहो !

भगवान ! तेरी नजर ज्ञान है । वह नजर करनेवाला जो आत्मा, उससे नजर पृथक् नहीं है । आहाहा ! वह नजर जो जानता है, उसकी नजर में जाकर आत्मा को पकड़े । आहाहा ! ऐसा कहते हैं । क्योंकि दोनों भिन्न नहीं हैं । पुण्य-पाप के राग और निमित्त से तो वह पकड़ में आये, ऐसा नहीं है । क्योंकि उसमें वे हैं नहीं । आहाहा ! समझ में आया ?

परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा ने ऐसा तत्त्व कहा है। भाई! समझ में आया? सम्प्रदाय में सुनने मिले नहीं, ऐसा यहाँ सुने तो कहे, अरे! यह तो सोनगढ़ का धर्म कहलाता है। और ऐसा कहे पहले। यह सोनगढ़ का धर्म और ऐसा कहते थे। वह आया था न कोई अभी नहीं? चिमनभाई ने कहा था न! आया था उस पत्र में आया था। वह कैसा तुम्हारा जलगाँव। चिमनभाई हैं या नहीं? यह जलगाँव का कोई पत्र आया था, हों! वह चिमनभाई गये थे न तब। वहाँ मराठी है और मारवाड़ी भी है। नहीं? दिगम्बर। अब उनका पत्र आया है, कुछ किसी का। कि वे लोग ऐसा मानते थे कि यह तो कानजीस्वामी का पन्थ अलग है। अपना पन्थ.... वे लोग ऐसा कहे, यह तो पन्थ अपना ही लगता है। यह तो.... वह बात सुनी हुई नहीं। जैनदर्शन का तत्त्व सुना हुआ नहीं। इसलिए ऐसा लगे कि यह तो उनका पन्थ ही अलग है। सोनगढ़ का पन्थ अलग, मथुरा के चेला जुदा। क्या कुछ कहते हैं न? हैं? आणन्दभाई का पत्र.... आणन्दलाल का पत्र... आणन्दभाई का कि यहाँ यह लोग करना चाहते हैं। भाई! ऐसा नहीं। बापू!

यह तो वीतराग का मार्ग है। बापू! तुमने सुना नहीं, तुझे खबर नहीं इसलिए कुछ दूसरे का हो जाये? किसी व्यक्ति का पन्थ है यह? क्या कहते हैं यह? जलगाँव—जलगाँव है न, वहाँ जाना है न! वहाँ वेदी प्रतिष्ठा है। दिगम्बर में पड़े, यह खबर नहीं होती। कितने ही बेचारे कहते थे। गरीब लोग मजदूरी करे और पूरा करे। उसमें यह हाथ में... भगवान के दर्शन कर आवे एक बार जाओ जय भगवान। दो घड़ी बैठें। आधे घण्टे। स्वाध्याय—ब्याध्याय तो पढ़नेवाला हो तो पुराण—बुराण पढ़े और सुने जायें। हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं।

तेरे भगवान को पहुँचने के लिये ज्ञानगुण वह तेरा है। वह ज्ञानगुण और गुणी कभी भिन्न पड़ते नहीं। इसलिए दो का अस्तित्व का एक होने से उसका द्रव्य एक द्रव्य है। दो, उनका द्रव्य एक है। ज्ञान का द्रव्य अलग और आत्मा का द्रव्य अलग, ऐसा नहीं है। पुण्य—पाप के परमाणु पर्याय जो है, उसका द्रव्य अलग है वास्तव में। यहाँ इन्होंने ऐसा लिया है। पुण्य—पाप के विकल्प को भी परद्रव्य गिना है। स्वद्रव्य नहीं। यह दया, दान, व्रत विकल्प उठे, वह वृत्ति उठती है। ऐसा तो इसने अनन्त बार किया है। नौवें ग्रैवेयक गया तब नहीं किया? समझ में आया? यदि परद्रव्य से स्वद्रव्य को लाभ हो तो

ऐसा तो अनन्त बार किया है।

यहाँ तो कहते हैं **दोनों एक अस्तित्व से रचित होने से...** नये रचित होंगे ? भाषा तो ऐसी है। अर्थात् कि दोनों अनादि के ऐसे हैं। भगवान आत्मा और उसका जानने का जो शक्ति-गुण। दोनों अनादि के एक अस्तित्व अर्थात् एक सत्ता से हैं दोनों, ऐसा। दो की एक सत्ता से दो है। इसलिए अनादि से एक रचित है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? गजब बात, भाई!

भगवान आत्मा और जानने का जो कायमी अनादि-अनन्त गुण। समझ में आया ? वह गुण और भगवान गुणी। इन दो का अस्तित्व एक अस्तिरूप से रचित होने से दोनों एकद्रव्यरूप है। ज्ञान का द्रव्यपना अर्थात् वस्तुपना अलग और आत्मा का वस्तुपना अलग, ऐसा है नहीं। देखो ! यह राग से और पर से भिन्न करके ज्ञान से अभिन्न है, ऐसा बताते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? अरे ! अरे ! पकड़ना भी कठिन इसे अभी तो यह। **दोनों के अभिन्न प्रदेश होने से...** अब और सूक्ष्म आया, वापस इसका।

भगवान आत्मा वस्तु अस्ति-सत्ता और उसका-ज्ञान का अस्तित्व। दो के क्षेत्र के अंश भिन्न नहीं हैं। जैसे इस अँगुली के प्रदेश अलग और इस अँगुली के दोनों अलग। वैसे यह अँगुली और इसका रक्त, इसका प्रदेश कोई अलग नहीं है। इसी प्रकार आत्मा और ज्ञान के प्रदेश भिन्न नहीं हैं। दोनों का क्षेत्र एक है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! पुण्य-पाप का क्षेत्र तो भिन्न कहा है, हों ! संवर अधिकार में। हाँ। वह तो अलग क्षेत्र है ही। शरीर, वाणी, मन, कर्म आदि भिन्न स्थल है, उसका स्थल भिन्न है। उसका, समझ में आया ? सत्ता भूमि-भूमि। इसकी भूमि आत्मा से अत्यन्त भिन्न है। शरीर, वाणी, कर्म की भूमिका, भूमि, वह आत्मा से अत्यन्त भिन्न है। इसी प्रकार आत्मा और ज्ञानगुण की भूमि भिन्न नहीं। दोनों के अभिन्न प्रदेश होने से ज्ञान नाम का गुण और जाननेवाला दोनों के क्षेत्र के अंश सत्ता स्थल सत्ता भूमि... समझ में आया ? यह शब्द है उसमें। समयसार नाटक में है। जहाँ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का वर्णन किया है न ? क्षेत्र को ऐसे वर्णन किया है... समयसार नाटक (में) समझ में आया ? क्या धर्म कहते हैं ? यह धर्म किस प्रकार का ?

कहते हैं कि वस्तु ही ऐसी है, उस प्रकार से इसे जाँचे तो उसे धर्म कहने में आता है। आहाहा! आत्मा धर्मी, उसका ज्ञान धर्म, दोनों के प्रदेश भिन्न नहीं, दोनों एक है; इसलिए ज्ञान से लक्ष्य करके जहाँ द्रव्य में लक्ष्य हो, तब उसे पर्याय में सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ?

गजब श्लोक आया है! ऊँचा है! दोनों के अभेद प्रदेश होने से, क्षेत्र, क्षेत्र। मकान का क्षेत्र, शरीर का क्षेत्र, यह तो आत्मा के क्षेत्र से भिन्न क्षेत्र है। परन्तु आत्मा वस्तु है और उसका जो ज्ञानगुण है, उनका दोनों का क्षेत्र एक है। दोनों का क्षेत्र भिन्न नहीं है। ज्ञान दूसरे क्षेत्र में रहे और आत्मा दूसरे क्षेत्र में रहे, ऐसा नहीं है। जैसे शरीर दूसरे क्षेत्र में रहे, और आत्मा दूसरे क्षेत्र में रहे, वैसा इसमें नहीं। समझ में आया ? आहाहा!...

एक लड़की आयी थी अभी। ... समझ में आया—यह क्या कहते होंगे ?

मुमुक्षु : पुत्री की पुत्री की पुत्री।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... दोनों व्यक्ति आये थे। एक छोटी लड़की। एक बजे जाना है। एक लड़की उसकी माँ को... समझ में आया—यह क्या होगा ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया ? यह तो अपना दलीचन्द का लड़का है, वह भी कहता है। दलीचर बालचन्द। दलीचन्द है न, उसका पुत्र है। समझ में आया ? लड़का न ? चेतन ! चेतन। समझ में आया ? एक व्यक्ति तो कहे, समझ में आया ? कहते हैं, वे महाराज कब आयेंगे ? समझ में आया ? बहुत प्रकार की प्रसिद्धि हो न ! समझ में आया, यह भगवान आत्मा है स्वयं। सुन न !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह आत्मा वस्तु और उसका ज्ञानगुण, यह द्रव्य एक है और दोनों का क्षेत्र एक है, इसलिए उसे शोधने के लिए बाहर जाना नहीं है। पुण्य-पाप और निमित्त में उसे शोधना नहीं, कहते हैं। ज्ञान और आत्मा एक है, इसलिए यहाँ शोधने से आत्मा प्राप्त हों, ऐसा है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-४५, गाथा-४३, पौष शुक्ल १५, गुरुवार, दिनांक -२२-०१-१९७०

यह पंचास्तिकाय। ४३वीं गाथा है, ४३। क्या कहते हैं? एक आत्मा अनेक ज्ञानात्मक होने का यह समर्थन है। अर्थात् क्या कहते हैं? कि जिसे धर्म करना हो, उसे क्या करना? अर्थात् कि जन्म-मरण के दुःख नाश करके आत्मा की प्राप्ति और शान्ति की प्राप्ति करना हो, उसे क्या करना? कहते हैं कि वह आत्मा और ज्ञान दोनों तादात्म्य सम्बन्ध से एकरूप हैं। एक ज्ञान की अवस्थाएँ भले अनेक हों। उससे कहीं तत्त्व को विरोध नहीं आता। परन्तु जो आत्मा और जानना अर्थात् ज्ञान, वह दोनों चीज़ एक है। दो का एक अस्तित्व से रचित तत्त्व है। शरीर, वाणी, मन वे पृथक् हैं तथा पुण्य और पाप के विकल्प, वे भी भिन्न चीज़ हैं। संयोगी भाव है। वह आत्मा का स्वभाव नहीं।

यह शरीर, वाणी, कर्म तो संयोगी पदार्थ है। अर्थात् कि उनके आश्रय से कहीं आत्मा को कल्याण और धर्म हो, ऐसा है नहीं। आत्मा में होनेवाले शुभ और अशुभभाव। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध आदि शुभाशुभभाव, वह आत्मा को और उन्हें एकरूप—तद्रूप सम्बन्ध नहीं है। वह संयोगी सम्बन्ध है। नवनीतभाई! संयोगी अर्थात् कि उसकी—स्वभाव की जाति नहीं। विभाव विकल्प है, वृत्तियाँ हैं। इसलिए उन्हें और आत्मा को एकरूपता—तद्रूपता नहीं है। इसलिए जिसे आत्मा वस्तु है, उसकी जिसे प्राप्ति करनी हो, उसे यह ज्ञान, वह आत्मा। ज्ञान, वह आत्मा—ऐसी दो की तादात्म्य सम्बन्धवाली शक्ति, उसमें एकाग्र होने से जो ज्ञान की दशा हो, वह स्वाभाविक ज्ञान की क्रिया होने से वह धर्म है। अरे! अभी पकड़ना कठिन। क्या कहते हैं यह। सेठ! बात तो सरल आती है। परन्तु अब....

आत्मा, धर्म करनेवाला आत्मा का धर्म क्या है? उसका धर्म ज्ञानस्वभाव है। और ज्ञानस्वभाव और स्वभाववान आत्मा, दोनों तादात्म्यरूप एकरूप है। दोनों का अस्तित्व अर्थात् होनापना दोनों का भिन्न नहीं है। जैसे शरीर, वाणी का अस्तित्व भिन्न है और पुण्य-पाप का अस्तित्व भी आत्मा के स्वभाव से अत्यन्त पृथक् रूप है। उसी प्रकार आत्मा और ज्ञान के तादात्म्यसम्बन्ध में पृथक्ता नहीं, एकरूप सम्बन्ध है। इसलिए ज्ञान, वह आत्मा। ज्ञान, वह आत्मा। जाननेवाला ऐसा स्वभाव, वह स्वभाववान, उसका

स्वभाव। वैसे वर्तमान पर्याय में—अवस्था में ज्ञान, वह आत्मा—ऐसे एक से रचित तत्त्व होने से ज्ञान में एकाग्र होने से आत्मा में एकाग्र हुआ जाता है। समझ में आया? इसलिए उसे यहाँ धर्म कहा जाता है। आहाहा! गजब धर्म, भाई!

कहते हैं कि ज्ञानी अर्थात् आत्मा ज्ञान से पृथक् नहीं। जिसे आत्मा धर्म करनेवाला कौन है? यह प्रश्न उठता है या नहीं? भाई! यह अपने रात्रि में डॉक्टर ने प्रश्न किया था न! घटाना—घटाना क्या? डॉक्टर। घटाना क्या, उसमें आया था न? क्रम-क्रम से कम करना—घटाना आया था न? उसमें एक प्रश्न है कि घटाना क्या? उसमें होवे वह घट सकता है। परवस्तु तो उसमें नहीं, इसलिए घटाना या उठवुं करना, यह कुछ रहता नहीं।

अब इसकी पर्याय में पुण्य और पाप के शुभअशुभभाव हैं। उन्हें घटाना अथवा उनका अभाव करना। तो भी जब उसे घटाना और अभाव करना, तो जिसमें वस्तु नहीं, वह पुण्य-पाप वस्तु नहीं आत्मा में, वह उसकी ओर के लक्ष्य से उन्हें घटा सकता है और उनका अभाव कर सकता है। न्याय समझ में आता है कुछ?

कोई कहे, मुझे तो अधर्म घटाना है। अधर्म अर्थात् क्या? कहीं शरीर, वाणी अधर्म है? इसकी पर्याय में—अवस्था में विपरीत मान्यता है कि मैं पुण्य और पापवाला हूँ, परवाला हूँ, स्वभाववाला मैं नहीं, ऐसी जो दृष्टि विपरीत है। यह विपरीत दृष्टि है, वह स्वभाव में नहीं है। नहीं है, वह उसे टाल सकता है? टालना है, उसका अभाव करना परन्तु जिसमें नहीं, उसका आश्रय ले तो वह टाल सकती है और उसका अभाव हो सकता है। न्याय समझ में आता है?

धर्म की पद्धति कोई अलौकिक दूसरी है। साधारण समाज को जो मिलता है, वह चीज़ अलग है। और वीतराग परमेश्वर का कहा हुआ तत्त्व निरालम्बी स्वभाव, वह कोई अलग चीज़ है। कहते हैं कि भाई! तू दुःखी है। दुःखी न हो तो आनन्द का वेदन होना चाहिए। दुःखी है। दुःख को वेदता है। विकार को वेदता है। दुःख को और अधर्म को तू वेदता है, उस अधर्म का तू कर्ता होता है। अब तब सुखी, और सुखी होना हो तो वह अधर्म ऐसी जो वर्तमान दशा में भाव विकारी है, वह मेरे स्वभाव में नहीं। क्योंकि टालना है तो जिसमें नहीं हो, वह टाल सकता है। समझ में आया?

आत्मा, ज्ञान और आत्मा एक वस्तु है। उसमें वह पुण्य-पाप के विकल्प भी नहीं। शरीर, वाणी, मन तो एक समय की अवस्था में भी नहीं। समझ में आया? अस्तित्व सिद्ध करना है न यहाँ तो? षट्द्रव्य में आत्मद्रव्य, पंचास्तिकाय में जीवास्तिकाय का यह वर्णन है। कहते हैं कि आत्मा और ज्ञान दोनों पृथक् नहीं हैं। इसलिए उसे ज्ञान, वह आत्मा, अन्दर जाननेवाला—जाननेवाला स्वभाव, वह आत्मा, ऐसे अन्दर में एकाकार होने पर उसे अधर्मपना दुःखपना नाश होता है और सुख की उत्पत्ति होती है। उसे धर्म कहते हैं। अरे! अरे! गजब धर्म, भाई!

तो कहते हैं, आत्मा और ज्ञान से, यह ज्ञानी और ज्ञान से पृथक् नहीं। क्योंकि दोनों एक अस्तित्व से रचित होने से, जानने का स्वभाव, जानने का गुण और उसे जिसके आधार से है, ऐसा आत्मा। दो के अस्तित्व अर्थात् दो के होनापना पृथक् नहीं है। दोनों का एक ही अस्तित्व है। समझ में आया? **दोनों एक अस्तित्व...** अर्थात् सत्ता से, अस्तित्व के भाव से दोनों रचित होने से **दोनों को एकद्रव्यपना है,...** जाननेवाला और जानना, यह दोनों एक वस्तु है। पुण्य-पाप और आत्मा दोनों एक चीज़ नहीं है। आहाहा! गजब! समझ में आया? यह एक बात आयी।

दोनों के अभिन्न प्रदेश होने से... आत्मा, वह असंख्यप्रदेशी है। उसी प्रकार उसका ज्ञानगुण भी असंख्यप्रदेशी है। पुण्य-पाप के विकल्प, उनका क्षेत्र पृथक् है। क्योंकि मलिन है। वैसे ज्ञान और आत्मा का क्षेत्र पृथक् नहीं। गजब ऐसा धर्म भारी। भाई! हैं? इसकी अपेक्षा तो सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण करना नहीं? ऐई दिलीप!

मुमुक्षु : अनन्त बार कर लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहता है कि ऐसा तो अनन्त बार कर लिया। लड़का कहता है कि आत्मा के भान बिना सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण अनन्त बार किये, ऐसा कहता है। ऐई, शोभालालजी!

मुमुक्षु : शरमाना पड़े ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरमाना पड़े ऐसा है इस लड़के से। ग्यारह वर्ष का लड़का है। वह कहता है कि आत्मा के भान बिना ऐसी क्रिया तो अनन्त बार की। ऐसा

कहता है। इसकी गुजराती भाषा है न! समझ में आया? ऐ आगरा! यह लड़का ऐसा कहता है।

कहते हैं कि भगवान आत्मा अपना ज्ञान और आत्मा दोनों एक हैं। ऐसी दृष्टि छोड़कर। उसने पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण जो विकल्प कहलाये, वैसी क्रिया तो अनन्त बार की है। यह छहढाला में आता है न, छहढाला में, नहीं? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' यह आता है। आत्मा वस्तु अस्तित्व का तत्त्व और जानना... जानना.... जानना.... जानना.... वह अस्तित्वाला तत्त्व दोनों का अस्तित्व एक है। दोनों के प्रदेश अर्थात् स्थल, उनका क्षेत्र दोनों का एक है। आहाहा!

ज्ञान के क्षेत्र को देखने जाओगे, वहाँ आत्मा का क्षेत्र उसमें इकट्टा, या एक ही है, आ जाता है, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प उठें, उनका क्षेत्र आत्मा से भिन्न है। आहाहा! गजब बातें, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग अनन्त अमृत आनन्द के कुण्ड को उछालकर जो अनुभव करते हैं, वैसे परमात्मा की वाणी में यह आया है। समझ में आया? यह परमात्मा इन्द्र और समवसरण की सभा में ऐसा फरमाते थे। वह यह सन्देश लेकर कुन्दकुन्द आचार्य आये, वे स्वयं कहते हैं। आहाहा!

कहते हैं कि जो यह आत्मा है अन्दर वस्तु और उसका जो ज्ञानस्वभाव जानना... जानना... जानना। जैसे शक्कर है, वैसे शक्कर का मिठास स्वभाव है। दोनों का क्षेत्र पृथक् नहीं है। क्षेत्र भिन्न है? दोनों का अस्तित्व भिन्न है? शक्कर और मिठास दोनों का अस्तित्व—होनापना एक है। दोनों का क्षेत्र भी एक है। जैसे शक्कर में मैल है। उस मैल का क्षेत्र का अस्तित्व भिन्न और उसका क्षेत्र भी भिन्न है। और जो शक्कर जिस चीज़ में रखी हो—बर्तन में (रखी हो), उस बर्तन का अस्तित्व और क्षेत्र अत्यन्त भिन्न है। इसी प्रकार यह शरीररूपी बर्तन यह हड्डियाँ आदि, इनका क्षेत्र और भाव अत्यन्त भिन्न है। तथा अन्दर पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह भी आत्मा के स्वक्षेत्र और स्वद्रव्य से अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! उसे भगवान तो परद्रव्य कहते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का विकल्प है, उसे परद्रव्य कहते हैं। तो क्षेत्र भी भिन्न और द्रव्य भी भिन्न और

उसका काल भी भिन्न और सत्व अर्थात् भाव भिन्न। उसी प्रकार आत्मा और ज्ञान का पृथक्पना नहीं है। क्योंकि वस्तु स्वयं भगवान ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! प्रज्ञाब्रह्म, प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान और ब्रह्म अर्थात् आनन्द। वह ज्ञान और आनन्द का धाम आत्मा है। समझ में आया ?

दोनों के अभिन्न प्रदेश होने से... किसके—दोनों के ? आत्मा और ज्ञान। जैसे शक्कर और मिठास, जैसे दूध और दूध की सफेदाई। दूध और दूध का श्वेतपना, इन दोनों का एक अस्तित्व है। दोनों का एक क्षेत्र है। दूध में जो पानी होता है, उस पानी का अस्तित्व भी भिन्न, उसका क्षेत्र भी भिन्न और उसकी शक्ति और भाव भी भिन्न। गजब सूक्ष्म बातें!

कहते हैं कि दोनों के प्रदेश अर्थात् क्षेत्र, अर्थात् स्थल, अर्थात् सत्ता अर्थात् भूमि। ज्ञान की भूमिका और आत्मा की भूमि दोनों एक है। इसलिए ज्ञान, वह आत्मा। ऐसे ज्ञान के लक्ष्य से चलकर जो अन्तर में जाना, उसकी दशा में जो धर्म की एकाग्रता होती है ज्ञान की, उसे जन्म-मरण और उद्धार करने की शक्ति उस पर्याय में है। समझ में आया ? भारी सूक्ष्म। इसमें तो पहुँचना, यह सब सिर में यह दिखाई दे न, देखनेवाला दिखाई दे नहीं और दिखाई दे, वह चीज़ आत्मा से भिन्न है। जिसके अस्तित्व में दिखते हैं। कहो, समझ में आया ?

वह अस्तित्व उसका भिन्न है। वह लड़का प्रश्न करता था, नहीं था। छोटा है एक हमारे। क्या नाम उसका ? परेश है। जामनगर का एक लड़का है। ऐई, दिलीप! उसे अभी वर्ष होंगे बारह, तेरह, चौदह। दो, तीन, चार, पाँच वर्ष पहले प्रश्न किया था उसने जामनगर में। परेश है न छोटा। तब दस वर्ष का होगा। हैं ? सात वर्ष का ? लो ! तब सात वर्ष का। हैं ? हाँ, सात वर्ष का। उसने प्रश्न किया। कैसा प्रश्न किया। महाराज ! आप कहते हो कि आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा, परन्तु आत्मा हमारे कहाँ देखना ? आँख खोलकर देखते हैं तो यह दिखता है, बन्द करें तो अंधेरा दिखता है। उसमें देखना कहाँ हमारे ? यह सात वर्ष के लड़के ने पूछा। ऐ, स्वरूपचन्द्रभाई ! आत्मा है न ! खड़ा होकर पूछा, हों ! ऐई !

तुम कहते हो कि आत्मा देखो, आत्मा को पहिचानो, परन्तु आत्मा कहाँ है ?

ऐसा देखें तो यह दिखता है, आँखें बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है। भाई! अन्धेरा कौन देखता है, कहा। अन्धेरे के अस्तित्व में अन्धेरा दिखता है या अन्धेरे से भिन्न ज्ञान के अस्तित्व में अन्धेरा दिखता है? डॉक्टर! बराबर है? कहा, अन्धेरा दिखता है, वह अन्धेरा जाननेवाले का अस्तित्व अन्धेरेरूप है? अन्धेरे को जाननेवाला अन्धेरा नहीं है। अन्धेरे को जाननेवाला ज्ञान का अस्तित्व है। लड़के ने प्रश्न किया था। भाई! लाडुलालजी! यह प्रश्न, हों! अब तो होशियार हो गया है। तीन, चार, पाँच वर्ष हो गये अब तो। अब तो सब प्रश्न ऐसे करें, उसमें से प्रश्न किया था आत्मसिद्धि में से।

आत्मसिद्धि में १९वीं गाथा में ऐसा आता है कि छद्मस्थ गुरु को केवली पैर लगते (वन्दन करते) हैं। यह कैसे बने महाराज? ऐसा प्रश्न किया था। जादवदासजी! आत्मसिद्धि में है न? श्रीमद् की आत्मसिद्धि। इसमें १९वीं गाथा में आता है न। 'गुरु रह्य छद्मस्थ पण विनय करे भगवान।' यह कैसे बने? केवली विनय कैसे करे छद्मस्थ का? ऐसा प्रश्न किया था। समझ में आया? नहीं, शशीभाई! कहा, भाई! केवली किसी का विनय नहीं करते। केवली तो परिपूर्ण परमात्मदशा है, वह किसका विनय करे? वह तो इस प्रकार से ऐसी शैली यह विनय की स्थापित की होगी, बाकी वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। केवली, गुरु का विनय करते ही नहीं। केवली परिपूर्ण दशा जहाँ अनन्त ज्ञान और आनन्द की दशा हुई, उसे कहाँ अपूर्णता है कि वन्दन करे, दूसरी चीज़ और वन्दनीक में, ऐसा कुछ है नहीं। परिपूर्ण दशा वह केवली गुरु का विनय करते ही नहीं। ऐसा लड़के ने आत्मसिद्धि में से प्रश्न किया था। और यह सब इतने वर्ष से पढ़नेवाले हों उन्हें शंका नहीं होती। ऐई! हैं? यह तो आत्मसिद्धि सच्ची आत्मसिद्धि। वह कहे, परन्तु यह कैसे है? न्याय मिलता नहीं। ऐ, स्वरूपचन्दभाई!

केवली परिपूर्ण परमात्मा, वे किसका विनय करे? विनय करनेवाले को विकल्प होता है। भगवान को तो विकल्प है नहीं। और उनसे बड़ा कोई नहीं तो किसका विनय करे? कहा, भाई! तुम्हारी बात सत्य है। यह तो एक प्रकार की शैली से लिखा गया है। वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। लाडुलालजी! १९वीं गाथा में है न? आत्मसिद्धि में १४२ गाथा में।

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा, अरे पहले से। कहते हैं कि दूसरे का विनय

करना, वह एक विकल्प है और उस विकल्प का क्षेत्र और भाव आत्मा के ज्ञान और भाव से पृथक् चीज़ है। आहाहा! भारी काम कठिन। समझ में आया? **दोनों के अभिन्न प्रदेश होने से...** भगवान आत्मा जाननेवाला... जाननेवाला। वह अन्धकार को जानता कौन है? अन्धेरा अन्धेरे के अस्तित्व में ज्ञात होता है या अन्धेरा उसके जाननेवाले के अस्तित्व में ज्ञात होता है? जो अन्धेरे को जानता है, वह अन्धेररूप नहीं है। बराबर है? स्वरूपचन्दभाई! जो अन्धेरे को जानता है, वह अन्धेररूप नहीं है। जो राग को जानता है, वह रागरूप नहीं है। परन्तु जाननेवाला उसके ज्ञान से भिन्न नहीं है। आहाहा! भारी सूक्ष्म पड़े। अभ्यास नहीं होता। और बाहर की बात में फँस गये हों। उन्हें इस तत्त्व के ऊपर, सम्यग्ज्ञान के ऊपर आना जगत को भारी कठिन पड़े। समझ में आया?

यहाँ तक तो कल अपने आया था। **दोनों के अभिन्न...** दोनों कौन? ज्ञान और आत्मा। राग और ज्ञान नहीं तथा राग और आत्मा नहीं। आहाहा! जाननेवाला... जाननेवाला। वह जाननेवाला और आत्मा दोनों का क्षेत्र एक और अस्तित्व भी एक। यह निर्णय कौन करता है? यह पर्याय निर्णय करती है। पर्याय अर्थात् अवस्था निर्णय करती है। यह ज्ञान, वह आत्मा, दोनों का अस्तित्व एक और दोनों का क्षेत्र अभिन्न। एक ही क्षेत्र है। ऐसा ज्ञान निर्णय करता है। तो द्रव्य जो वस्तु हुई आत्मा, उसका ज्ञानगुण हुआ तथा ज्ञान और आत्मा एक है, ऐसा जो निर्णय करती है, वह पर्याय है। यह पर्याय, वह धर्म है। समझ में आया?

अब तीसरा बोल। **दोनों एक समय में रचे जाते होने से...** आत्मा और ज्ञान दोनों का एक काल है। दोनों अर्थात् आत्मा और ज्ञान। जानना और आत्मा जाननेवाला दोनों एक समय में **एक ही काल होने से एक ही काल में रचे जाते होने से...** एक काल में ही होने से, ऐसा। **दोनों को एककालपना है,...** ज्ञान के अस्तित्व का काल अलग और आत्मा के अस्तित्व का काल अलग, ऐसा है? नहीं। दोनों एक ही काल है। दोनों का एक ही काल है। पुण्य-पाप के अस्तित्व का काल भिन्न और आत्मा का काल भिन्न। आत्मा त्रिकाली और ज्ञान त्रिकाली है। तथा पुण्य-पाप तो क्षणिक एक समय की विकल्प अवस्था है। वह आत्मा का स्वरूप नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि **दोनों एक समय में रचे जाते होने से...** रचित होने से यह तो, रचित

होने से का अर्थ दोनों एक काल में है, ऐसा। हैं ? आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... और ज्ञान... ज्ञान गुण ज्ञान गुण ज्ञान गुण स्वभाव। शक्कर... शक्कर... शक्कर. और मिठास... मिठास... मिठास... ऐसा का ऐसा है। उसी प्रकार भगवान आत्मा और ज्ञान का काल दोनों का एक ही है। इसलिए वह ज्ञान और आत्मा एक है। ऐसा अन्तर में दृष्टि करके ज्ञान और आत्मा एक होने से ज्ञान में एकाग्र होना, वह आत्मा की स्वाभाविक धार्मिक क्रिया है। यह कर्ता-कर्म (अधिकार समयसार) में आ गया है कि स्वाभाविक क्रिया होने से, उसका भगवान ने निषेध नहीं किया। भाई! ६९-७० (गाथा) में। समझ में आया ?

क्या कहा यह ? यहाँ तादात्म्य सम्बन्ध कहा है वहाँ, यहाँ पृथक् नहीं कहा, वह तो एक की एक बात की। समझ में आया ? आत्मा, वे कहें आत्मा... आत्मा दस महीने में दस दिन कूटा कहे। एक बार १९९५ के वर्ष में। हैं ? (संवत्) १९९५ के वर्ष में राजकोट में चातुर्मास था न। दस महीने और दस दिन। तो फिर एक व्यक्ति ऐसा भी निकला, एक नागर था वह। कैसा नागर, नहीं। छेलभाई! कि महाराज ने दस महीने और दस दिन आत्मा की बात की है। १९९५ के वर्ष की बात है। उसे कोई दस लाईन में लिखे तो उसे दस रुपये इनाम दूँगा। ऐसा। यह ९५ की बात है। तीस वर्ष पहले राजकोट में। दस महीने और दस दिन की वहाँ स्थिति चौमासा था। उसे कोई दस लाईन में सार लिखे, उसे दस रुपये दूँगा। कौन लिखे उसे सार ? कौन समझे इतना सब कुछ ? किसी ने लिखा नहीं।

यहाँ तो एक मिनट में ज्ञात हो ऐसी चीज़ है। दस मिनट में नहीं। हैं ? यह जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... ज्ञात हो... ज्ञात हो... ज्ञात हो... ज्ञात हो... और जाननेवाला दोनों एक है। बस, इसके अन्दर में एकाकार होना, वह पूरे चौदह पूर्व और बारह अंग का सार है। आहाहा! क्योंकि ज्ञान जानना, वह उसका स्वरूप है। स्वयं स्वरूपवान है। स्वरूपवान और स्वरूप दोनों का काल भिन्न नहीं हो सकता। इसलिए जहाँ ज्ञान को पकड़ा, उसने उस काल में आत्मा को ही पकड़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

पुण्य-पाप के विकल्प और शरीर, वाणी, कर्म और उसका अस्तित्व अत्यन्त

भिन्न है। जिसे आत्मा की प्राप्ति अर्थात् धर्म करना हो, उसे तो राग और पुण्य के विकल्प का लक्ष्य छोड़कर ज्ञान और आत्मा दोनों का एक काल है, इसलिए ज्ञान को पकड़ने से आत्मा उसी काल में पकड़ में आता है। ज्ञान को पकड़ने से आत्मा उस काल में पकड़ में आ जाता है। राग को पकड़ने से आत्मा पकड़ में आये, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी चीज़ है। लाडुलालजी! बाहर में तो स्थूल... स्थूल बात चले। यहाँ तो सब सूक्ष्म चलती है जरा। बाहर में अब जहाँ एक दिन रहना हो, दो व्याख्यान हो, एक दो व्याख्यान हो और ऐसा लगाये तो क्या कहते हैं यह? ऐ सेठ! सागर-बागर में भी ऐसा तो वहाँ नहीं चलता। दो-दो हजार, तीन-तीन हजार लोग हों, अब उसमें यह क्या कहते हैं? बात तो आवे परन्तु उसकी थोड़ी दृष्टान्त दे दलील ऐसा करके (बात आये)। आहाहा!

कहते हैं भगवान। भगवान, भगवान को कहते हैं। भगवान आत्मा को भगवान परमेश्वर कहते हैं। भगवान! तेरा जो जानने का गुण है न, जानने की शक्ति है न, जानने का सत्व है न, वह और आत्मा का सत्। सत् है न आत्मा, सत् है न। सत् और सत्व दोनों का काल एक ही है। अर्थात् कि जिस काल में तू ज्ञान को पकड़े, तब आत्मा पकड़ में आ जाता है। समझ में आया? अरे! यह क्या पकड़ना परन्तु इसमें? ऐई! जेठालालभाई!

मुमुक्षु : पर्याय पकड़ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय से द्रव्य पकड़ना। पर्याय पकड़ना नहीं। द्रव्य पकड़ना। अरे! अरे! क्या कहते हैं?

कहते हैं कि वर्तमान दशा गुण में एकाग्र हो तो वह आत्मा में ही एकाग्र हुआ है। वर्तमान दशा यदि पुण्य और पाप में एकाग्र हो तो अनात्मा में एकाग्र हुआ है। समझ में आया? दोनों एक समय में रचित होने से दोनों को एक कालपना है। अब भाव। गाथा तो बहुत अच्छी आ गयी है।

दोनों का एक स्वभाव होने से दोनों को एकभावपना है। दोनों का एक स्वभाव होने से दोनों को एकभावपना है। अर्थात्? दोनों को अर्थात् आत्मा वस्तु और उसका

ज्ञान स्वभाव शक्ति, सत्त्व, गुण, दोनों का एक स्वभाव होने से उस आत्मा का स्वभाव और ज्ञान स्वभाव कोई भिन्न चीज़ नहीं है। ज्ञानस्वभाव और आत्मा दोनों का एक स्वभाव होने से दोनों का एक भाव है। दोनों का एक भाव है। दोनों के दो भाव हैं, ऐसा है नहीं। अरे! अरे! कठिन बात, भाई! समझ में आया ?

ऐसी धार्मिक वस्तु। हैं ? आहाहा! वीतराग के घर का महास्वरूप तो ऐसा है, बापू! परमेश्वर केवलज्ञानी, दूसरे तो अन्ध अन्ध ने जाने-देखे बिना दिये रखा है। ऐसा होता है और ऐसा होता है और ऐसा होता है। यह तो साक्षात् प्रत्यक्ष एक समय में जो स्वरूप है, उसे पूर्ण प्रगट करके जिसने तीन काल, तीन लोक हथेली में जैसे आँवला दिखता है, वैसे देखा है। ऐसे परमात्मा की वाणी मीठी संयोग सम्बन्ध से ऐसा कहा जाता है। उस वाणी में ऐसा आया है। उस वाणी को आगम कहा जाता है, शास्त्र कहा जाता है। वह शास्त्र ऐसा कहता है कि भगवान ऐसा कहते हैं, सब एक ही है या नहीं ?

भाई! तेरा भाव है न जो ज्ञानभाव, वह स्वभाव स्व अर्थात् अपना भाव और आत्मा का स्वभाव, दोनों का एक ही स्वभाव है। आत्मा और ज्ञानस्वभाव दोनों भिन्न नहीं हैं। शक्कर और मिठास का स्वभाव, मिठास का स्वभाव भिन्न और शक्कर का स्वभाव भिन्न, ऐसा है कहीं ? इसी प्रकार भगवान आत्मा बहुत ही सीधी और सरल बात है। परन्तु इसने कभी अभ्यास में ली नहीं, इसलिए यह तत्त्व (समझ में आया नहीं)।

भगवान आत्मा, इन सबका अस्तित्व भिन्न है, उनका लक्ष्य छोड़कर ज्ञान भगवान आत्मा और ज्ञानस्वभाव दोनों का स्वभाव एक होने से दोनों का भाव एक है। इसलिए राग और पुण्य का भाव, वह आत्मा के साथ एक नहीं है। देखो! व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं न जिसे ? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के विकल्प, वह भाव और आत्मा के भाव एक नहीं हैं। वह तो संयोगीभाव है, उपाधि है। यह तो निरुपाधिक स्वभावभाव एक है। आहाहा! समझ में आया ?

ज्ञानप्रज्ञाब्रह्म भगवान आत्मा, आत्मा और प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान, उनका-दोनों का स्वभाव एक होने से दोनों का भाव एक है। अर्थात् कि ज्ञानभाव को अवस्था में पकड़ने से आत्मा का भाव और आत्मा ही पकड़ में आता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : पुण्य-पाप का भाव भिन्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न है।

मुमुक्षु : तो आत्मा को भटकना किसलिए पड़ता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों, वह पुण्य-पाप भिन्न है, इसलिए भटकता है। उन्हें अपना मानता है इसलिए। परन्तु यह उन्हें अपना मानता है न ? अपना मानता है न यह ? न माने तो न भटके। वह तो बात चलती है यह।

शुभ और अशुभभाव, वह आत्मा का भाव नहीं। तथापि वे मेरे हैं, ऐसा मानता है, इसलिए उसमें भटककर परिभ्रमण करता है। क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : आत्मा के साथ पुण्य-पाप को जरा सम्बन्ध क्यों नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं सम्बन्ध। परन्तु मानता है न ? पर्याय में सम्बन्ध है, ऐसा मानता है। मान्यता है। यह सवेरे आया नहीं था ? मानता है कि मुझे सम्बन्ध है। सम्बन्ध है, इसलिए बन्ध है। बन्ध है, इसलिए उनके संगवाला हूँ। बस, यह भाव ही उसे चार गति में भटकाता है। समझ में आया ?

यह बात तो आगे आ गयी है। अब बन्ध में आयेगी। जब आत्मा पुण्य-पाप से भिन्न, तो फिर उसे पुण्य-पाप से बन्धन क्यों होता है ? आता है न भाई अन्दर ? भाई ! यह उनका संग करता है। भगवान राग और पुण्यभाव से असंग-भिन्न चीज़ है। तथापि उनके वश होकर 'वह मैं हूँ' ऐसा मानता है। समझ में आया ? वह है इसमें अधिकार है न आगे। समयसार। बन्ध अधिकार में है। जब तुम उसे-विकार को एक ओर भिन्न कहते हो, तथा तुम कहते हो कि विकार बन्ध का कारण है। यह कैसे हुआ ? यह प्रश्न है, हों ! समझ में आया ? स्फटिकमणि का दृष्टान्त। यही प्रश्न है यहाँ। १७४ कलश है, देखो ! (समयसार)।

रागादयो बन्धनिदानमुक्ता स्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः ।

आत्मा परो वा किमु तन्निमित्तमिति प्रणुनाः पुनरेवमाहुः ॥१२-१७४ ॥

हे भगवान ! यही कहेंगे। रागादि को बन्ध के कारण कहा। पुण्य-पाप को बन्ध

का कारण कहा। पुण्य और पाप के भाव बन्धन और कारण कहा और उनको शुद्ध चैतन्यमात्र ज्योति से भिन्न कहा। समझ में आया? पुण्य और पाप के भाव एक ओर आप तो कहते हो कि भगवान आत्मा से भिन्न। तथा कहते हो कि आत्मा को वे बन्ध के कारण हैं। तब भिन्न हैं और बन्ध के कारण कैसे? यह प्रश्न है। समझ में आया? तब रागादि का निमित्त कौन है? आत्मा है या दूसरा कोई? कौन करे कि ऐसे जीव के परिणाम? आचार्य भगवान फिर से ऐसा कहते हैं। वह स्वयं कर्म के निमित्त में पुण्य-पाप के भाव के वश हो जाता है। इससे स्वयं पुण्य-पाप का भाव भिन्न होने पर भी भिन्न के आधीन हो जाता है, इसलिए उस मिथ्यात्वभाव से परिभ्रमण (करता है) और दुःखी है। समझ में आया? अरे! यह पाठशाला अलग प्रकार की, यह तो कॉलेज ही अलग प्रकार की है। यह तो पामरता मिटकर भगवान होने की कॉलेज है। नर का नारायण हो। यह नारायण स्वरूप है। यहाँ तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप ही भगवान है। आहाहा!

कहते हैं कि आनन्द और आत्मा का द्रव्य एक, क्षेत्र एक, काल और भाव एक। यहाँ तो ज्ञान से वर्णन किया है। क्योंकि उसका थोड़ा प्रगट अंश है न, इसलिए। आनन्द का अंश अनादि से प्रगट नहीं है। इस प्रकार भगवान आत्मा, आत्मा, वस्तु और अतीन्द्रिय आनन्द, वह अतीन्द्रिय आनन्द जो आत्मा का गुण और आत्मा दोनों का द्रव्य एक है। दोनों का अस्तित्व एक है, इसलिए द्रव्य एक है।

आत्मा और अतीन्द्रिय आनन्द। यह विकल्प उठते हैं, वह तो दुःख है। दया, दान, व्रत, काम, क्रोध की वृत्तियाँ उठें, वह तो दुःख है। उसका द्रव्य और क्षेत्र एक है नहीं। परन्तु भगवान आत्मा जो आकुलतारहित आनन्द; विकल्प है, उससे अभाव स्वभावरूप आनन्द और आत्मा, दोनों का क्षेत्र एक है, दोनों का काल एक है और दोनों का भाव एक है। समझ में आया?

सच्चिदानन्द प्रभु है। सत् शाश्वत्, सत् शाश्वत्, चिद्-ज्ञान और आनन्द। सच्चिदानन्दस्वरूप है। उसके ज्ञान और आनन्द के अस्तित्व से आत्मा का अस्तित्व भिन्न नहीं है। ज्ञान और आनन्द के क्षेत्र से आत्मा का क्षेत्र भिन्न नहीं है। और ज्ञान और आनन्द के काल से आत्मा का काल भिन्न नहीं है तथा ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से

आत्मा का स्वभाव भिन्न नहीं है; इसलिए भाव दोनों का एक है। आहाहा! गजब! हैं? बातें तो ऐसी हैं। यह तो परमेश्वर के घर की बात है। परन्तु अब लोगों को इस जाति का अभ्यास नहीं न, इसलिए बाहर से मन्थन करके बाहर से आत्मा निकालना है। जिसमें नहीं उसमें से निकालना है। हैं? लोहे की खान खोदने पर तो लोहा निकलता है। सोने की खान खोदने पर सोना निकलता है। पुण्य-पाप के विकल्प की खान तो लोहे की है। भगवान, वह भाववाला नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या हो? समझ में आया?

ऐसी धर्म की कथा यह वह किस प्रकार की? बापू! धर्म का स्वरूप ही ऐसा है। भाई! दुनिया ने उसे कुरूप में दूसरे प्रकार से जगत के समक्ष रखा है। समझ में आया? आहाहा! परमात्मा परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी वे अनन्त आनन्दमय हैं। परमेश्वर अनन्त आनन्दमय है। वह पर्याय में अनन्त आनन्दमय है। वह आनन्द की पर्याय आयी कहाँ से? आनन्द की पर्याय आयी कहाँ से? कि उसमें आनन्द नाम का गुण और जो आत्मा दोनों का द्रव्य एक, क्षेत्र एक, काल और भाव एक है। इसलिए आनन्द में एकाग्र होने पर उस आत्मा में ही एकाग्र होता है। इसलिए उसे आनन्द की दशा अर्थात् धर्म की दशा प्रगट होती है। आनन्द की दशा प्रगट होती है, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? फिर ऊपर दिया है, समझने के लिए १७४-१७५ (समयसार)।

पर का संग करता है। वास्तव में आत्मा उसका कारण नहीं है। परन्तु आत्मा पर का संग करता है, इसलिए वह पुण्य-पाप खड़े करता है। यह प्रश्न हो गया है पहले। शास्त्र में हो गया है। ठीक न! आहाहा! तेरी सत्ता में, तेरे अस्तित्व में आनन्द और ज्ञान का अस्तित्व है। दोनों का स्वभाव दोनों एक है। पुण्य और पाप का अस्तित्व, उसका भाव और तेरा भाव दोनों एक नहीं है। आहाहा! गजब! नजर कहाँ डालना इसमें? किस प्रकार पकड़ना? भाई! तू कहाँ है? यहाँ अभी नहीं कहते? यह मेरे पास रखा। नहीं कुछ जवाब देते? कुछ कहते हैं न, हैं? अमुक, कहाँ है? मेरे पास हूँ। ऐसा बोलते हैं न कुछ अभी। नवनीतभाई! नहीं बोलते? जवाब ऐसा ऐसा आवे। किसी समय बोलते हैं। सामने आवे ऐसा। मेरे पास हूँ। ऐसा कहते हैं कि तू कहाँ हो? कहे, मैं ज्ञान और आनन्द में हूँ। मैं राग और पुण्य में हूँ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

श्रीमद् में नहीं आया। सोलह वर्ष में श्रीमद् में। 'मैं कौन हूँ आया कहाँ से, और मेरा रूप क्या?' मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है? वह स्वरूप। 'सम्बन्ध दुःखमय कौन है स्वीकृत करूँ परिहार क्या, इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिए, तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये।' सोलह वर्ष में पुकार करते हैं। लो! समझ में आया? मैं कौन हूँ? मैं आत्मा हूँ। कहाँ से आया? हूँ उसे होना क्या होता है? हूँ उसे होना क्या होगा? है ही अनादि से। मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है? वास्तविक स्वरूप क्या है? पुण्य और पाप और शरीर-बरीर वह मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है। ज्ञान और आनन्द वह मेरा वास्तविक स्वरूप है। आहाहा! गजब बात, भाई!

कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं? यह तो समझ में आये ऐसी बात है, हों! न समझ में आये ऐसी बात यहाँ होती ही नहीं। आचार्यों ने न समझ में आये ऐसी बात की ही नहीं। आहाहा! परन्तु इसे कुछ दरकार नहीं होती। दरकार नहीं होती। अरे रे! मैं क्या हूँ, कहाँ जाऊँगा? मेरा क्या होगा? और मेरी दशा में क्या है? कि जो दशा मुझे दुःखरूप लगती नहीं। दशा में तो विकल्प और पुण्य-पाप के विकार हैं। इसे दुःख नहीं लगता। दुःख तो कोई सर्प आवे, बाघ पकड़े तब दुःख लगता है। उस संयोग का दुःख दिखता है इसे, परन्तु वे संयोगीभाव स्वयं दुःखरूप हैं, ऐसा इसे भासित नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

प्रभु का मार्ग है शूरोँ का, यह कायर का नहीं काम। हरि का मार्ग है रे शूरोँ का, यह कायर का नहीं काम जो ने। प्रथम पहले मस्तक रखकर, एक वळतां लेवुं नाम जो ने। प्रभु का मार्ग है रे शूरोँ का, यह कायर का नहीं काम जो ने। यह कायर, नपुंसक, हीन का यह काम नहीं है, भाई! समझ में आया? रण चढ़या रणशींगा बाजे, यह कायर वहाँ से भागे। हैं? रणशींगा जहाँ बजे बाजा और जहाँ अन्दर तो शूरवीर वहाँ खड़े रहें। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भगवान! तेरा भाव तो नाथ, ज्ञान और आनन्द वह तेरा भाव है न, प्रभु! तेरा भाव। लो! एक बार पूछा नहीं था? एक बार प्रश्न पूछा था। ठाकोरदासजी! एक बार प्रश्न पूछा था। कहा, सोने का भाव क्या है? तो सब विचार में पड़ गये। मैंने कहा

सोने का भाव क्या ? तो सब कहे किसी को खबर नहीं। डेढ़ सौ डेढ़ सौ। वह डेढ़ सौ डेढ़ सौ वह सोने का भाव कहलाता है ? वह तो तुम्हारा कल्पित भाव है। सोने का भाव तो उसका पीलापन, चिकनापन, वजनपना, वह सोने का भाव है।

मुमुक्षु : जो कीमत आपने कहा उसकी क्या खबर ? हम तो बाजार में कीमत पूछकर कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे ! यह मुझे यहाँ क्या काम है ? लाडुलालजी ! रात्रि में प्रश्न किया था कि भाई ! सोने का भाव क्या है ? आत्मा का भाव क्या ? यह सीधे पूछने जाऊँ तो और... कहा, सोने का भाव क्या है ? कोई कहे कि क्या कुछ बोले थे कोई ? कौन जाने। इतना भाव होगा, यह भाव होगा। हैं ? भगवानजीभाई ने कहा होगा। सोने का भाव। बापू ! सोने का भाव यह नहीं है। सोने का भाव सोने से भिन्न नहीं होता और यह तो तुम्हारा कल्पित भाव है। पच्चीस रुपये का तोला न ! तोला अर्थात् रुपया भार। दो सौ रुपये का तोला। यह तो तुम्हारा कल्पित भाव है। कल्पित किया हुआ भाव है। यह कहाँ उसका भाव है ? उसमें दो सौ रुपये का तोला हो जाये और सोना बहुत उजला हो जाये ? और पच्चीस रुपये का तोला हो, इसलिए सोना कहीं हीन पड़ जाये ? उसका भाव है यह ?

सोने का भाव सोने में रहा हुआ पीलापन, चिकनापन, वजन वह सोने का भाव जो कि भाव और सोना दोनों भिन्न नहीं होता। उसका भाव कम-ज्यादा नहीं होता। समझ में आया ? हैं ? बराबर है ? इसी प्रकार भगवान का भाव क्या, कहा आत्मा का (भाव क्या) ? फिर तो समझ गये कि यह तो दूसरी बात करते हैं। समझ में आया ? भाव की बात चलती है न ? आत्मा का भाव क्या ? कि आत्मा का भाव ज्ञान और आनन्द। जो भाव कायम एकरूप रहे। जो कम-ज्यादा न हो। गुण की बात है न यहाँ ? गुण और गुणी दोनों एक भाव से है। आहाहा ! पर्याय तो वह ऐसा निर्णय करे, तब उसे पर्याय सिद्ध होती है। समझ में आया ? आहाहा !

आत्मा के भाव में हीनाधिकता होती होगी ? भाव अर्थात् गुण, गुण अर्थात् शक्ति। कहो, पाटनीजी ! सोने का भाव क्या है, सब विचार में पड़ गये। कहे, कितना

होगा ? एक सौ पैंसठ, पौने दो सौ। अब यहाँ क्या काम है तुम्हारे सोने के भाव का, कहा। दो सौ रुपये का तोला, इसलिए सोना कहीं उजला हो जाता होगा ? उसका भाव कहीं दूसरे प्रकार का होता होगा ? और पच्चीस रुपये तोला हो, रुपया भार। पहले तो बारह रुपये का गदीयाणो था। छोटी उम्र में हम थे तो ऐसा सुनते थे। बारह रुपये का गदीयाणो। गदीयाणो अर्थात् आधा रुपया भार। चौबीस रुपये का तोला था। लो ! हम छोटी उम्र के थे तब ऐसा सुना हुआ। बारह रुपये का गदीयाणो कहते, हमारे यह काठियावाड़ में। गदीयाणो अर्थात् आधा रुपया भार। तोला अर्थात् एक रुपया भार। तोला में चौबीस रुपये थे, तब।

यह तो कल्पना का भाव है। आत्मा में पुण्यवाला और पापवाला, वह तो कल्पना का भाव है। उसका भाव नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? अरे ! गजब बात, भाई ! कहते हैं, भगवान आत्मा और उसकी सत्ता स्थल में रहा हुआ ज्ञान, इन दोनों का स्वभाव तो एक है न, इसलिए एक स्वभाव होने से दोनों का भाव एक ही है। जो आत्मा का भाव, वही ज्ञान का भाव और ज्ञान का भाव, वही आत्मा का भाव। आहाहा ! निज पूँजी को, निज मूडी को कभी इसने देखा नहीं, माना नहीं इसने। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, इस शरीर का भाव तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है। यह शरीर है, परमाणु है। उनका भाव रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, यह उसका भाव है। और वह भाव और परमाणु का द्रव्य तो एक है। क्षेत्र एक, काल एक और भाव एक। समझ में आया ? यह परमाणु है—यह रजकण। अस्तित्व है न इन रजकणों का ? इनके अस्तित्व का, रजकणों का अस्तित्व और इनके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श के गुण का अस्तित्व दोनों का अस्तित्व तो एक ही है। इसलिए द्रव्य दोनों एक है। ऐसे परमाणु और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श का क्षेत्र एक है, इसलिए दोनों का अभिन्न क्षेत्र एक ही है। परमाणु और रंग, गन्ध, रस, स्पर्श की काल स्थिति एक ही है। जिस काल में वर्ण, गन्ध है, उस काल में द्रव्य है—परमाणु है। और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श का भाव और परमाणु दोनों का स्वभाव एक होने से, दोनों का भाव एक है। समझ में आया ? परमाणु का भाव, वह तेरा भाव नहीं—ऐसा कहते हैं। हैं ? परमाणु का भाव तो परमाणु के साथ अभेद है। बराबर है ? गजब बात, भाई !

वीतराग सर्वज्ञ का पन्थ उज्ज्वल... उज्ज्वल, परन्तु इसे सुनने को मिलता नहीं।

और कुछ का कुछ रास्ते चढ़े और मान बैठे कि हम कुछ धर्म करते हैं। आहाहा! तब इसे सोनगढ़वाले को ऐसा कहते हैं न कितने ही यह एकान्त है, यह ऐसा है। अब तू सुन न! एकान्त और अनेकान्त की तुझे क्या खबर पड़े? मार्ग जाने बिना। समझ में आया? यह एकान्त है। ज्ञान और आत्मा का भाव एकान्त एक भाव है। लो, भाई! या अनेकान्त है उसमें? ज्ञान और आत्मा, यह तो आत्मा घुंटा है। समझ में आया?

भगवान अस्तित्व आत्मा का, उसका ज्ञान-दर्शन का ज्ञान का भाव, इन दोनों का स्वभाव एक होने से दोनों के भाव एक हैं। दोनों के भाव में अन्तर नहीं। आत्मा का भाव भिन्न और ज्ञान का भाव भिन्न, (-ऐसा नहीं) यह गुण की बात चलती है, हों! समझ में आया? ऐसा निर्णय करे, उसे पर्याय में धर्म होता है। आहाहा! गजब बात भाई! **दोनों का एक स्वभाव होने से दोनों को एकभावपना है।** परन्तु ऐसा कहने में आता होने पर भी क्या कहते हैं? एकरूप भाव ज्ञान और आत्मा का एकरूप और अभिन्न क्षेत्र से, अभिन्न द्रव्य, अभिन्न काल और अभिन्न भाव **कहा जाने पर भी, एक आत्मा में आभिनिबोधिक (-मति) आदि अनेक ज्ञान विरोध नहीं पाते,...** ज्ञान एक गुण और भाव एक और आत्मा का भाव एक, तथापि उसकी पर्यायें भिन्न-भिन्न मति, श्रुत, अवधि होती है न? वह कहीं विरोध नहीं आता, वह तो पर्याय में भेद है। वह तो ज्ञान का स्वरूप ही है। विश्व को जानना और विश्व शब्द से स्व-पर को जानना, यह तो उसकी पर्याय का धर्म है। समझ में आया?

विश्व के किसी भी पदार्थ का काम करना, वह उसका धर्म नहीं। हैं? विश्व को जानना पर्याय में, वह तो इसका स्वभाव हैं। ज्ञान मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान यह अनेक पर्यायें होने पर भी ज्ञान को और आत्मा को एकपना होने पर भी अनेकपना विरोध प्राप्त नहीं होता। पर्याय में अनेकपना प्रगट होता है। आहाहा! गजब बात करते हैं, भाई! वह वेदान्त कहे न एक ही वस्तु है। उसे गुण भिन्न और पर्याय, यह नहीं। अरे! तुझे खबर नहीं। सुन न! समझ में आया?

जानने का भाव और जाननेवाला एकरूप अभिन्न होने पर भी, पर्याय में या दशा में मतिज्ञान थोड़ा उघड़े, श्रुतविशेष, अवधिविशेष, मनःपर्ययविशेष, केवल (ज्ञान) तो

पूरा। ऐसी दशायें होने पर भी वह तो उसका पर्याय का अवस्था के स्वभाव का धर्म है। वह अनेकपना होने पर भी गुण और गुणी का एकपना, उसमें टलता नहीं। अरे! गजब बात! फिर से।

कहते हैं कि यह ज्ञानभाव और स्वभावभाववाला आत्मा दोनों एक है। एक है तो दोनों का एकपना ऐसा चाहिए। वह एकपना गुण और गुणी को एकपना है। परन्तु फिर प्रगट दशा में अल्प ज्ञान, विशेष ज्ञान, ऐसी दशायें पर्याय में—अवस्था में होती है, वह तो पर्याय का धर्म है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! गुण और गुणी का धर्म और भाव एक है। परन्तु उसकी पर्याय का अनेक धर्म है, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! क्या बात करते हैं न! अनेक ज्ञान विरोध को प्राप्त नहीं होते। क्योंकि द्रव्य विश्वरूप है। लो! एक द्रव्य विश्वरूप है। आहाहा!

आत्मा पूरे विश्व अर्थात् जगत के समस्त पदार्थों को जाननेवाला है। उसके अस्तित्व में पूरी दुनिया ज्ञात हो, ऐसी वह वस्तु है। विश्वरूप अर्थात् विश्व के ज्ञानरूप। समझ में आया? क्योंकि द्रव्य विश्वरूप है। यहाँ वापस पूरा किया है न! विश्वरूप है अर्थात् अनेकरूप है, ऐसा। विश्वरूप है अर्थात् अनेकरूप है। द्रव्य ज्ञान की पर्याय अपेक्षा से—अवस्था अपेक्षा से अनेकरूप है। वस्तु और गुणरूप से एक है, तथापि जानने की-देखने की पर्याय निर्मल, अल्प, विशेष निर्मल, विशेष निर्मल ऐसा जो द्रव्य का अनेकपना, वह उसका स्वरूप है। पर्याय का उसका, द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों का ज्ञान दिया। विशेष कहेंगे। समय हो गया।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४६, गाथा-४३-४४, पौष कृष्ण ०१, शुक्रवार, दिनांक -२३-०१-१९७०

इसलिए जिसे आत्मा का हित करना हो, उसे तो इस ज्ञानस्वभावी आत्मा पर एकाग्र करना। जिससे उसे आत्मा के स्वभाव की शक्ति जो है, वह पर्याय में प्रगट हो। सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि शान्ति। उसे यहाँ धर्म कहा जाता है। उसके अस्तित्व में ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आत्मा के अस्तित्व में राग, पुण्य, दया, दान, विकल्प, यह उसके अस्तित्व में नहीं है। तथा यह शरीर, वाणी, मन की जो क्रियायें अथवा वस्तु, वह भी आत्मा में नहीं है। इसलिए जो आत्मा में है, वह यहाँ अनन्य अर्थात् एकरूप है, ऐसा सिद्ध करना है। यह आत्मा और ज्ञान द्रव्य से भी एक है, क्षेत्र से भी एक है, काल से भी वही है और भाव से भी उसका एक ही भाव है।

जीवास्तिकाय अथवा जीवद्रव्य इस प्रकार ही उसका अस्तित्व है। ऐ सेठ! यह बाहर की चीज़ कुछ भी उसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। अतः धर्म के लिये बाह्य चीज़ के अवलम्बन से धर्म हो, ऐसा नहीं है। तथा अन्दर में कोई दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, तप के, व्रत, अपवास के विकल्प, वह भी उसकी मूल वस्तु में नहीं है। जो सदा कायम रहे, ऐसी वह चीज़ नहीं है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं, उसे अनेक ज्ञान एक आत्मा में इस प्रकार होने पर भी, एक आत्मा में अभिनिबोधिक (-मति) आदि अनेक ज्ञान विरोध को प्राप्त नहीं होते। पहले यह लिया है, भाई! वैसे तो फिर सहवर्ती गुण और पर्याय को अनेकपना कहेंगे। पहले ऐसा लिया है। समझ में आया?

हाँ, फिर उसे उसके सहवर्ती और क्रमवर्ती पर्यायों से अनेकपना है, ऐसा सिद्ध करेंगे। अनेकपने को सिद्ध करने के इसमें दो प्रकार हैं। क्या कहा यह? वस्तु भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का धाम भगवान। उस ज्ञानस्वभाव से आत्मा अभिन्न है द्रव्य से, क्षेत्र से भी अभिन्न है, काल से अभिन्न है और भाव से अभिन्न है। ऐसा होने पर भी उसके ज्ञानगुण की अवस्था के पाँच प्रकार पड़ते हैं। यह विरोध को प्राप्त नहीं होते। पहले ऐसा लिया। देखा?

एक आत्मा में आभिनिबोधिक (-मति) आदि अनेक ज्ञान विरोध नहीं पाते,...
समझ में आया? यह अवस्था में निर्मलता अल्प-अधिक-अधिक ऐसे ज्ञान की पर्याय

के भेद होते हैं, तथापि वे भेद, ज्ञान का एकपना है, उसे वह विरोध नहीं करता। आता है न अपने निर्जरा अधिकार में?—कि मतिज्ञान आदि भेद तो ज्ञान का अभिनन्दन करते हैं। निर्जरा अधिकार (गाथा २०४) में आता है। ऐसी सूक्ष्म बातें! कहते हैं कि, भाई! तू आत्मा है। और तेरी मूल शक्ति और स्वभाव तो ज्ञान है। वह ज्ञान उसकी वर्तमान अवस्था में ज्ञान और आत्मा एकरूप है, ऐसा अन्तर में निर्णय करके स्थिर होता है, तब उसे ज्ञान की पर्यायें पाँच प्रकार की प्रगट होती हैं, किसी को। समझ में आया? किसी को तीन—मति, श्रुत और केवल। किसी को चार—मति, श्रुत, अवधि और केवल। किसी को पाँच—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल। किसी को अवधि नहीं होती और मति, श्रुत, मनःपर्यय और केवल। यह वस्तु उसकी चीज़ है, उसकी दशायें प्रगट होती हैं। उसमें कहीं पुण्य और पाप की विकल्पदशा वह उसकी चीज़ में नहीं है, इसलिए उसकी दशा में भी नहीं होती, ऐसा कहते हैं। उसकी दशा में वह नहीं है। समझ में आया?

वस्तु—यह चीज़ तो एकदम पर शरीर, वाणी, मन इन्हें और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका शरीर तो स्वयं अजीव के द्रव्य, गुण, पर्यायरूप से रहा हुआ है। बराबर है? यह शरीर तो अजीवरूप से द्रव्य-गुण-पर्याय रहा हुआ है। जीव की पर्याय में इसका एक अंश भी सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार अन्दर आठ कर्म, यह वाणी, मन, वह तो अजीवरूप से अपने गुण और गुणी के सम्बन्ध से उसके अजीवपने की पर्याय में और द्रव्य-गुण में रहे हुए हैं। अब आत्मा में जो कुछ विकार रहा हुआ है, वह विकार शाश्वत् चीज़ नहीं है; इसीलिए वह कृत्रिम है और कृत्रिम है, इसलिए आत्मा को आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आश्रय करनेयोग्य तो त्रिकाली ज्ञान और आत्मा एक है, उसका आश्रय करनेयोग्य है। भारी सूक्ष्म! समझ में आया?

ऐसा जो आत्मा, ऐसा कहा जाने पर भी,... कहते हैं कि चारों वस्तु एक है, अर्थात् कि ज्ञानगुण, स्वभाव और स्वभाववान। द्रव्य से एक अर्थात् वस्तु से एक, उनके क्षेत्र अर्थात् स्थल अर्थात् सत्ता एक.... काल एक, ज्ञान और द्रव्य का काल भी एक ही है और भाव भी एक। दोनों का स्वभाव एक होने से भाव भी एक है। ऐसा कहा जाने पर भी, एक आत्मा में आभिनिबोधिक (-मतिज्ञान) आदि अनेक ज्ञान विरोध नहीं

पाते,... इस चैतन्य को अनुसरणकर होनेवाले मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय, केवलज्ञान यह अनेकरूप से प्राप्त होते हैं। एक होने पर भी पर्याय में अनेकरूप से प्राप्त होते हैं, यह एकपना और अनेकपना विरोध को प्राप्त नहीं होता। समझ में आया ?

कारण में यह देते हैं अब। सिद्धान्त ऐसा कहा कि (मति) आदि अनेक ज्ञान विरोध नहीं पाते, क्योंकि द्रव्य विश्वरूप है। आत्मा विश्वरूप है। अर्थात् ? विश्वरूप है अर्थात् ? कि द्रव्य वास्तव में सहवर्ती... आत्मा के साथ रहनेवाले ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुणवाला है। और क्रमवर्ती—उनकी क्रम-क्रम से होनेवाली ज्ञान-दर्शन आदि की अवस्थायें, वे क्रम से होती हैं। गुण अक्रम साथ में है। पर्याय क्रम से है। ऐसे अनन्त गुणों तथा पर्यायों का आधार होने के कारण... कहते हैं कि भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर केवली ने देखा हुआ वह (आत्मा)। समझ में आया ? वह आत्मा, ऐसा क्यों कहा कि दूसरे बहुत से ऐसा कहते हैं कि भाई ! उसमें भी आत्मा कहा है, अमुक में भी आत्मा कहा है। ऐसा कहते हैं न ?

सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह आत्मा किसी ने सच्चा देखा और जाना नहीं। परमेश्वर वीतराग तीर्थकरदेव ने जो एक समय में तीन काल, तीन लोक देखे, उसमें जो आत्मा को—एक-एक को आत्मा देखा। ऐसा आत्मा अज्ञानी ने कभी देखा नहीं। समझ में आया ? बात करे भले कि आत्मा ऐसा है और आत्मा ऐसा। परन्तु कैसा है, यह देखे बिना ऐसा-वैसा तू कहाँ से कल्पना करने लगा ?

कहते हैं, वस्तु भगवान आत्मा पर के अस्तित्व से तो भिन्न है, पुण्य-पाप के विकल्पों की वृत्तियों से भी भिन्न है परन्तु उसके ज्ञानादि गुणों से तो वह अभिन्न है। ऐसा उसका एकरूप से गुण और गुणी का एकरूप होने पर भी, उसकी पर्यायों में अनेकपना प्राप्त हो, वह विरोध को प्राप्त नहीं होता। बस, उसका स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अरे ! यह और क्या ! एक आत्मा पाँच पर्यायरूप हो ? वह तो पर्याय का स्वभाव है। समझ में आया ?

अब कारण में ऐसा दिया कि द्रव्य विश्वरूप है। भगवान आत्मा अनेकरूप है। यह आत्मा एक-अनेकरूप है। अनेकरूप है किस प्रकार ? उसमें पाँच पर्याय से अनेकरूप कहा। समझ में आया ? अब यहाँ गुण और पर्याय अनन्त है, इसलिए वह अनेकरूप है,

ऐसा सिद्ध करते हैं। वास्तविक द्रव्य, गुण और पर्याय, उसका उसने ज्ञान अनन्त काल में किया नहीं। और वह इसके अतिरिक्त झमेला यह दया, दान, व्रत और भक्ति, पूजा और अपवास कर-करके जो इसमें नहीं ऐसे विकल्प करके उसने काल को गँवाया है। आहाहा!

परन्तु यह बात बाहर कहने से लोगों को ऐसा हो जायेगा। मानते होते हैं न, ऐई! धर्म होगा, धर्म होगा। पातक चढ़े। कौन कहता था? खेतसीभाई। ऐसा कि हजार, दो हजार लोग लेकर छुरी निकले छुरी... छुरी। छुरी। हैं?

मुमुक्षु : यात्रा में निकले।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकले। निकलना है अभी जामनगर से एक हजार लोग। बस में ढाई सौ साथु साथ में। माघ शुक्ल तेरस से। लोग कहते हैं यह पैदल जाये तो पाप का पातक नाश हो जाये। खेतसीभाई! अरे... अरे...! मार डाला है न! परन्तु तेरी पर्याय में क्या अन्तर पड़ा? यह पैदल चला और गया। लो, वे तो पैर चले। तेरी पर्याय में क्या हुआ? कहे, मैंने एक बार खाया। क्या कहलाता है छह प्रकार में? हैं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पादविहारी एकलथाणी एक ऐसा आता है। हैं? सचित परिहारी। हैं? र, आवे तब ऐसे। आहाहा!

पूरा सचेत आत्मा इसने तो परिहार किया। जागती ज्योति भगवान आत्मा है। उसका इसने ज्ञान और उसका आश्रय किये बिना यह सब विकल्पों की अनेक प्रकार की क्रियाओं में रुका, वह तो बन्धन में आत्मा को डाला। बन्धन में डाला? आहाहा! वह भी है न, भाई! इसे खबर नहीं, ऐसा मनुष्यदेह। आहाहा! अरे! भव को उगारने का अवसर इस मनुष्यदेह में है। नहीं तो चौरासी की खान ऐसी गहरी है। आहाहा! सवेरे आया नहीं था? 'भवभय से डरी चित्त' चार (गति) भव के भय से डरी चित्त। पहले सवेरे आया था पहला। ऐसा कि मैंने यह भव्यों को सम्बोधन करने के लिये जो जीव चार गति के दुःख से डरते हैं, उन्हें सम्बोधन करता हूँ। ऐसा कहा। अन्तिम में फिर ऐसा आया, स्वयं के लिये कहता हूँ। अन्तिम (दोहा) योगसार। निज सम्बन्ध का। स्वयं भी है न वहाँ? आहाहा!

चार गति के दुःख से डरकर। हैं ? चारों गति दुःख है। स्वर्ग भी दुःख, नरक भी दुःख, मनुष्य भी दुःख, सेठई दुःख, रंक भी दुःख सब दुःख है। क्योंकि आत्मा आनन्दस्वरूप से उल्टे विकल्पों के जाल में फँसना, वह दुःख है। समझ में आया ?

ऐसे दुःख से जिसे डर लगा हो। अरे ! मेरा क्या होगा ? कहीं कोई साधन (नहीं), मुझे कोई मदद करे, ऐसी दुनिया में कोई चीज़ नहीं। बाहर में कोई नहीं। हैं ? अन्तर में आत्मा ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरपूर केवली परमात्मा ने प्रगट किया, ऐसा ही मैं हूँ। ऐसा जिसने अन्तर गुण-गुणी की एकता का अन्दर पर्याय अर्थात् अवस्था द्वारा दो की एकता का अन्दर भान हो, उसे सम्यग्दर्शन होता है और उसे जन्म-मरण टल जाते हैं। जन्म-मरण कैसे ? भगवान आत्मा को जन्मना, वह तो कलंक है, कहते हैं। यह आया था न ? 'शर्मजनक जन्मो टले...' जन्म तो शर्म है। शर्म-शर्म कलंक है। आहाहा ! कैसे जँचे ?

यह बाहर में... लाल-पीला लगे। पाँच-पच्चीस लाख की पूँजी हो। शरीर कुछ ठीक हो, स्त्री कुछ ठीक हो, पुत्र ठीक हो। बादशाही है। दुःख के समुद्र में डुबकी मारी है। भान नहीं, तुझे भान। सन्निपात है, सन्निपात। यह यहाँ कहते हैं कि भाई ! भगवान आत्मा में एक भव भी नहीं और भव का भाव भी नहीं। परन्तु भव के भाव को भव को जानने के ज्ञान के स्वभाववाला है। समझ में आया ?

ऐसा एकरूप ज्ञानस्वभाव वस्तु के साथ अभिन्न और एक होने पर भी उसकी पर्यायों में पाँच प्रकार—अवस्था मति, श्रुत आदि हो, वह तो पर्याय का अनेकरूप होना, उसका धर्म है। गुण और गुणी का एकरूप रहना, उसका वह धर्म है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? और द्रव्य विश्वरूप है। **द्रव्य वास्तव में सहवर्ती...** साथ में रहनेवाले आत्मा में अनन्त गुण हैं। अनन्तानन्त गुण हैं। भगवान आत्मा में ज्ञान-दर्शन-आनन्द यह पहले ज्ञान से बात की थी। एक गुण से। अब कहते हैं, वह तो अनन्त गुणसहित है। वह तो ज्ञान से तो बात की। समझ में आया ?

भगवान आत्मा वास्तव में सहवर्ती ज्ञान है अनादि। दर्शन है, आनन्द है, शान्ति-चारित्र्य है। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण वस्तु एक होने पर भी गुण तो अनन्त हैं। गुण साथ में रहनेवाले हैं। गुण एक के बाद एक रहनेवाले, ऐसा है नहीं। **सहवर्ती और क्रमवर्ती...**

और क्रम-क्रम से उन गुणों की पर्याय होती है, वह जानने की, देखने की, श्रद्धा की, स्थिरता की, ऐसी अनेक अवस्थायें अनन्त गुण की अवस्थायें अनन्त। **अनन्त गुणों तथा पर्यायों का आधार होने के कारण...** लो! यह गुण और पर्याय का आधार आत्मा है। यह गुण और पर्याय का आधार कोई राग और निमित्त है, इसलिए यह गुण और पर्याय है, ऐसा नहीं है। आहाहा! देखो! किस प्रकार से बात करते हैं!

कहते हैं कि भगवान आत्मा अनन्त गुणों का आधार है। ऐसी अनन्त उसकी अवस्थाओं का भी वह आधार आत्मा है। अरे! ऐसा अनन्त-अनन्त और उसका आधार एक। अनन्त रूपवाला होने से इस प्रकार से कहा। गुण अर्थात् शक्तियाँ, जैसे वस्तु अनादि-अनन्त है, वैसे उसके गुण भी अनन्त एक साथ अनादि-अनन्त गुण हैं। और पर्यायें क्रमवर्ती हैं। एक के बाद एक होती है। वह सब अवस्थायें और गुण, उनका आधार द्रव्य है।

मुमुक्षु : उसमें निमित्त कहाँ गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन जाने कहाँ गया होगा ? ऐई! पाटनीजी! पर्याय में देव आधार, गुरु आधार, शास्त्र आधार। कहते हैं कि कोई आधार है नहीं। उसका आधार तो आत्मा है। आहाहा! अरे! समझ में आया ?

द्रव्य स्वयं वस्तु, उसकी शक्तियाँ अर्थात् गुण अनन्त सहवर्ती गुण साथ में रहनेवाले हों। और पर्यायें-अवस्था। उस अवस्था और गुण का आधार तो आत्मा है। कहो, समझ में आया ? उसमें आता है, वह तो प्रभु ने दिया। लो! यहाँ तो इनकार करते हैं (कि) किसी से दिया नहीं जाता वह तो ऐसा आता है। हैं ?

मुमुक्षु : ऐसा देते हैं, यह बात सच्ची हो तो ही लिखा होगा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : देते हैं, आता है न द्रव्य, क्षेत्र, धर्म और काम और मोक्ष दे, ऐसा लिखा, ऐसा आता है। अष्टपाहुड में आता है। ददाति। आता है अष्टपाहुड में। होता है का अर्थ यह तुमको समझाते हैं और तुम समझकर प्रगट करो तो निमित्त से ऐसा कहा जाता है। कौन दे और कौन ले। किसके पास है ? आहाहा!

ऐसा पाठ है, अष्टपाहुड में, हों! हाँ, कुन्दकुन्ददेव (कृत) ददाति पी देवः क्या

दे? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। भगवान तो पुण्य दे, पैसा दे, भोग दे, मोक्ष दे। ऐई! शोभालालजी! ऐसा पाठ है, हों! इसका अर्थ कि पूर्ण सर्वज्ञ परमात्मा है, ऐसा जिसने ज्ञान किया, उसे ज्ञान की दशा प्रगट हो, उसे मोक्ष होगा। और अधूरी दशा रही है, उसमें राग होता है। राग है, वह व्यवहार पुण्य है, व्यवहार धर्म है और राग के फलरूप से संयोगी चीज़ मिलेगी, वह भोग है। परन्तु वह तो जानने के लिये है। वह कहीं आदरने के लिये लक्ष्मी इसके लिये है नहीं। आहाहा!

एक ओर यहाँ कहे ऐसा और कुन्दकुन्द आचार्यदेव (कहे) ददाति इति देवः, देव वह तो स्वयं देव। उसका अर्थ यह निमित्त का ज्ञान है। भाई! वस्तु भगवान, क्योंकि जिसके पास परिपूर्णता है, वह परिपूर्णता समझायेगा, ऐसा। परन्तु जिसके पास नहीं, वह क्या समझायेगा? और परिपूर्णता का जिसे श्रद्धा में भान हुआ। उसे परिपूर्णता प्रगट न हो, तब तक उसका पुण्यभाव, उसे आये बिना नहीं रहता और उस पुण्य में लक्ष्मी आदि मिलेंगे। समझ में आया? लक्ष्मी और पाप का भोग आदि। वह तो जानने की बात है। कहाँ मिले और कौन दे? आहाहा!

कहते हैं, स्वयं ही द्रव्य अनन्त गुणों तथा पर्यायों का आधार होने के कारण अनन्तरूपवाला होने से,... देखो! ऐसा डाला। वह पाँच पर्यायों से अनेकपना सिद्ध किया। और दूसरे प्रकार से सिद्ध किया। अनन्त गुण और अनन्त पर्यायें हैं, इसलिए वह अनेकरूप है। समझ में आया? एक होने पर भी विश्वरूप कहा जाता है। आत्मा एक होने पर भी उसे अनेकरूप कहा जाता है। विश्व अर्थात् अनेक। एक होने पर भी अनेकरूप स्वयं ही अपने रूप से अनेकरूप है। समझ में आया? ऐसा जो उसका स्वभाव है। यह ४३ (गाथा) हुई। इसे गया उसमें बराबर। गया हो न किसी दिन इसलिए कुछ देखने के लिये रुके हों। बाहर की यात्रा और भक्ति का लोगों को इतना माहात्म्य है कि यह समझने की (दरकार नहीं है)। उसी और उसी में रुक गये।

मुमुक्षु : वर्षों से करते आये हैं अपने व्यवहार से....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से। क्या व्यवहार से करते? करते कब थे?

मुमुक्षु : अपने यह सब बात व्यवहार से नहीं हुई?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बोलने की बात है। निमित्त का ज्ञान करने के लिये है। वैसे तो उस निमित्त की अपेक्षा अपने व्यवहार से मानते हैं ऐसा? क्या सन्धि की? चिमनभाई!

व्यवहार भी नहीं। मात्र यह परमेश्वर सर्वज्ञदेव केवलज्ञानी तीर्थकर परिपूर्ण पर्यायवाले हैं। परिपूर्ण द्रव्य, परिपूर्ण गुण, परिपूर्ण पर्याय। इसलिए उनके उपदेश में परिपूर्ण चीज क्या है, यह आता है। और उस परिपूर्ण का प्रतीत जिसे हो, उसे परिपूर्ण पर्याय में प्रगट न हो, तब तक पुण्यभाव आये बिना रहता नहीं और पुण्य के फलरूप से संयोग अर्थ और काम (प्राप्त) होते हैं। इस बात का ज्ञान कराया है। समझ में आया?

भगवान कुछ देते भी नहीं और लेते भी नहीं। भगवान के पास कुछ नहीं कि तुझे दे। समझ में आया? यह तो उसमें भी आता है न, ॐकार में। 'कामदं मोक्षदं चैव', उसमें भी आता है। 'ॐकार बिन्दु संयुक्तम् नित्यम् ध्यायंति योगीनः, कामदं मोक्षदं चैव...' काम को दे, कामदं—काम को दे और मोक्ष को भी दे। आता है या नहीं? यह तो व्यवहार के वाक्य ऐसे ही होते हैं। वहाँ लग पड़ता है कि यह लिखा, परन्तु किस नय का कथन है? यह तो असद्भूत व्यवहारनय झूठे नय के कथन ऐसे हैं। समझ में आया? लो! यह ४३ पूरी हो गयी, लो! नीचे (फुटनोट में) लिखा है देखो! यह।

विश्वरूप=अनेकरूप। (एक द्रव्य सहवर्ती अनन्त गुणों का और क्रमवर्ती अनन्त पर्यायों का आधार होने के कारण अनन्त रूपवाला भी है,...) ऐसा। वह पाँच पर्यायवाला कहा न! पाँच पर्यायवाला कहा था न! अनन्तरूपवाला भी है। (इसलिए उसे विश्वरूप (अनेकरूप) भी कहा जाता है। इसलिए एक आत्मा अनेक ज्ञानात्मक होने में विरोध नहीं है।) वापस योगफल वहाँ यह लिया पाँच पर्याय का।

एक भगवान आत्मा गुण और वस्तु से एक होने पर भी उसकी अवस्था में पर्याय का अनेकपना कहीं विरोध है नहीं। ओहोहो! यह अस्तपना सिद्ध करते हैं। एकपना भी है और अनेकपना भी है। अब ४४ (गाथा)।

गाथा - ४४

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे।
दव्वाणंति यमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति ॥४४॥

यदि भवति द्रव्यमन्यगुणतश्च गुणाश्च द्रव्यतोऽन्ये।
द्रव्यानन्त्यमथवा द्रव्याभावं प्रकुर्वन्ति ॥४४॥

द्रव्यस्य गुणेभ्यो भेदे, गुणानां च द्रव्याद्भेदे दोषोपन्यासोऽयम् ।

गुणा हि क्वचिदाश्रिताः। यत्राश्रितास्तद्रव्यम्। तच्चेदन्यद्गुणेभ्यः। पुनरपि गुणाः क्वचिदाश्रिताः। यत्राश्रितास्तद्रव्यम्। तदपि अन्यच्चेद्गुणेभ्यः। पुनरपि गुणाः क्वचिदाश्रिताः। यत्राश्रिताः तद्रव्यम् । तदप्यन्यदेव गुणेभ्यः । एवं द्रव्यस्य गुणेभ्यो भेदे भवति द्रव्यानन्त्यम् । द्रव्यं हि गुणानां समुदायः । गुणाश्चेदन्ये समुदायात्, को नाम समुदायः । एवं गुणानां द्रव्याद्भेदे भवति द्रव्याभाव इति ॥४४॥

द्रव्य गुण से अन्य या गुण अन्य माने द्रव्य से ।

तो द्रव्य होंय अनन्त या फिर नाश ठहरे द्रव्य का ॥४४॥

अन्वयार्थ :- [यदि] यदि [द्रव्यं] द्रव्य [गुणतः] गुणों से [अन्यत् च भवति] अन्य (भिन्न) हो [गुणाः च] और गुण [द्रव्यतः अन्ये] द्रव्य से अन्य हो तो [द्रव्यानन्त्यम्] द्रव्य की अनन्तता हो [अथवा] अथवा [द्रव्याभावं] द्रव्य का अभाव [प्रकुर्वन्ति] हो।

टीका:-द्रव्य का गुणों से भिन्नत्व हो और गुणों का द्रव्य से भिन्नत्व हो तो दोष आता है, उसका यह कथन है।

गुण वास्तव में किसी के आश्रय से होते हैं; (वे) जिसके आश्रित हों, वह द्रव्य होता है। वह (-द्रव्य) यदि गुणों से अन्य (-भिन्न) हो तो-फिर भी, गुण किसी के आश्रित होंगे; (वे) जिसके आश्रित हों, वह द्रव्य होता है। वह यदि गुणों से अन्य हो तो फिर भी गुण किसी के आश्रित होंगे; (वे) जिसके आश्रित हों, वह द्रव्य होता है। वह भी गुणों से अन्य ही हो।-इस प्रकार, यदि द्रव्य का गुणों से भिन्नत्व हो तो द्रव्य की अनन्तता हो।

वास्तव में द्रव्य अर्थात् गुणों का समुदाय। गुण यदि समुदाय से अन्य हो तो समुदाय कैसा? (अर्थात् यदि गुणों को समुदाय से भिन्न माना जाये तो समुदाय कहाँ से घटित होगा? अर्थात् द्रव्य ही कहाँ से घटित होगा?) इस प्रकार, यदि गुणों का द्रव्य से भिन्नत्व हो तो, द्रव्य का अभाव हो॥४४॥

गाथा - ४४ पर प्रवचन

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे।
 दव्वाणंतिमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति॥४४॥
 द्रव्य गुण से अन्य या गुण अन्य माने द्रव्य से।
 तो द्रव्य होंय अनन्त या फिर नाश ठहरे द्रव्य का॥४४॥

दो बोल! ओहोहो! टीका :— द्रव्य का गुणों से भिन्नत्व हो... भगवान आत्मा... यह तो प्रत्येक द्रव्य की बात है। परन्तु यहाँ आत्मा को सिद्ध करना है। वस्तु भगवान आत्मा है, वह द्रव्य है, वस्तु। उसके गुण ज्ञान, दर्शन, आनन्द उसकी शक्ति। गुण शक्ति ज्ञान, दर्शन, आनन्द। ऐसे गुणों से वह गुणी भिन्न हो तो एक बात। और गुणों का द्रव्य से भिन्नत्व हो तो... ऐसा। द्रव्य का गुणों से भिन्नपना और गुणों का द्रव्य से भिन्नपना। पारस्परिक लिया है। तो दोष आता है—उसका यह कथन है। देखो! ऐसा स्वरूप वीतराग के अतिरिक्त, सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त सब आत्मा... आत्मा चाहे जितना करे परन्तु वह अन्यत्र कहीं है नहीं। समझ में आया ?

परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा, जिन्हें तीन काल, तीन लोक एक समय की ज्ञान की पर्याय को जानने से जान लिये। इतना भगवान आत्मा उसे जो असंख्यप्रदेशी अनन्त गुण और पर्यायवाला देखा, ऐसा भगवान की वाणी में आया। अब यह कहते हैं कि ऐसी चीज़ सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरे पन्थ में, दूसरे मार्ग में कहीं नहीं हो सकती। समझ में आया ?

अब यह सिद्ध करते हैं, कि भगवान आत्मा और उसके गुण, यह द्रव्य का गुण से पृथक्पना और गुण अर्थात् ज्ञानदर्शन गुण का द्रव्य से पृथक्पना हो तो क्या दोष

आवे, उसका यह कथन है। गुण वास्तव में किसी के आश्रय से होते हैं;... गजब टीका! यह देखो! गुण जो है वह किसी के आधार से होते हैं। यह द्रव्य के आधार से गुण होते हैं। गुण के आधार से गुण नहीं होते। अरे! गजब बात, भाई! यह बात उसे द्रव्य-गुण की पर्याय की खबर न हो न, इसलिए फिर लोग यह बाहर में चढ़ा दें। अपवास करो और व्रत पालो और यात्रा करो, यह तुम्हारे धर्म। हैं ? अरेरे! ऐसा अवसर। जवाहरात का धन्धा छोड़कर शाक-भाजी का धन्धा। समझ में आया ? इसका समय चला जाता है। यह बहुतों को तो मनुष्यपना मिला परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उसका लाभ लिया नहीं, वे मनुष्यदेह हार गये। और फिर कब मनुष्यदेह मिलेगी, अब इसकी कोई खबर है ? और लोग इसे रोते हैं ? अरेरे ! मेरा लड़का मरकर कहाँ गया होगा ? उसे कौन होगा ? अरे यहाँ एक घण्टे भर नींद न आवे तो चैन नहीं आता। खाने का जरा देरी हो तो ठण्डे का गर्म हो जाये, गर्म का ठण्डा हो जाये। ठीक पड़ता नहीं था। अरे ! उसे क्या होगा ? वह कोई रोता है उसे ? इसे तो यह हमारा स्वार्थ था। कमाकर देता था, ऐसा करता था, वह करता था। चला गया। और अपने को बापूजी ! बापूजी ! करता हो। अरेरे ! चला गया, लो ! बापूजी किसके और बाप किसके ? भाई किसकी चीज़ किसके साथ। आहाहा !

किसका लड़का और किसकी लड़की ? किसके माँ और बाप ? अन्त काल में जाना, अकेला साथ में पुण्य और पाप। बाकी कुछ लेना-देना नहीं। संसार तो वही है न ? पुण्य और पापभाव किये, वे साथ में आनेवाले हैं, बाकी धूल भी आनेवाली नहीं। चिमनभाई ! वह पैसा-बैसा कमाया होगा, उनका कोई साथ में आयेगा या नहीं ?

मुमुक्षु : लड़के भोगेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के भी क्या भोगें, राग को भोगेंगे लड़के। जैसे कहाँ भोगे जाते हैं। वे तो जड़, मिट्टी, धूल है। कहीं जैसे का ग्रास किया जाता है ?

मुमुक्षु : आड़ी-टेड़ी रीति से किया जाता है न, अनाज आवे और अनाज का ग्रास किया जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनाज का भी ग्रास कौन खाता है ? वह तो जड़ है। हैं ? उसमें

राग करे और राग को खाये। आहाहा! अरे! क्या चीज़ है और कैसे होता है, इसकी खबर नहीं होती और उसे आत्मा का हित और धर्म हो जाये? क्या हो? अनन्त बार त्यागी हो गया, अनन्त बार साधु हुआ परन्तु चीज़-मेरी चीज़ मेरे स्वभाव से भरपूर परिपूर्ण प्रभु मैं हूँ, ऐसी अन्तर सन्मुख की प्रतीति जो करनी थी, वह रह गयी। मूल जो करने का था, वह रहा नहीं। बिना एक के शून्य किये। समझ में आया?

अब क्या सिद्ध करते हैं आचार्य? भाई! कोई भी गुण हो गुण, शक्ति, स्वभाव, वह किसी के आधार से होता है। समझ में आया? जैसे ज्ञान। परन्तु ज्ञान ज्ञान के आधार से होता है? ज्ञान तो गुण हो गया। ज्ञान द्रव्य / वस्तु के आधार से होता है। इसी प्रकार रंग, गन्ध, रस, स्पर्श गुण। तो वह गुण गुण के आधार से नहीं होता। रंग, गन्ध, रस, स्पर्श गुण, वह परमाणु द्रव्य है, उसके आधार से होता है। आहाहा! समझ में आया?

गुण वास्तव में किसी के आश्रय से होते हैं; (वे) जिसके आश्रित हों वह द्रव्य होता है। जो गुण जिसके आधार से हो, वह द्रव्य कहलाता है। भगवान आत्मा का ज्ञान-दर्शन आनन्द का गुण, वह आत्मा के आश्रय से है। वह आनन्द कहीं बाहर से नहीं आता। आहाहा! कहते हैं कि आनन्द का आधार तो आत्मा है न, भाई! आनन्द का आधार यह पुण्य-पाप के विकल्प और बाहर की चीज़ें, वह आनन्द का आधार नहीं। समझ में आया? आनन्द नाम का जो गुण आत्मा में है, उस गुण का आधार द्रव्य-वस्तु है। जिसे आनन्द चाहिए हो अर्थात् धर्म और सुख चाहिए हो, उसे उस आनन्द की पर्याय प्रगट करने के लिये आनन्द का आधार द्रव्य की दृष्टि करना चाहिए। आहाहा! भाई! क्या करना परन्तु इसमें? ऐई! पूछता था न सवेरे कि क्या करना? ऐसा कि समझकर प्रतिदिन फिर करना क्या यह? यह करना है।

ज्ञान जानपना ऐसा जो गुण अर्थात् शक्ति, अर्थात् सत्व, उसका आधार तो सत्द्रव्य है। आहाहा! द्रव्याश्रयागुणा। द्रव्याश्रयागुणा। गुण के आश्रय से गुण (नहीं होते), यह तो उमास्वामी का सूत्र है। वह भी किसे ऐसी निवृत्ति हो! हैं? एक तो कमाना, खाना, पीना उसमें बेचारे रुक गये हों। अब उसमें से निवृत्त हो, घण्टे, दो घण्टे तो मस्तक पर कुगुरु उसे सुनावे कि यह करो और यह छोड़ो और यह लो, उसमें फिर इसका काल चला जाये। अरेरे! अवसर मिला, वह अवसर इसने गँवाया। समझ में आया?

कहते हैं कि गुण-गुणी होना है या नहीं तुझे, पर्याय में? पर्याय में गुणी होना है न! अवगुणी होना है या अवगुण टालना है? तो दशा में गुणी होना हो तो यह गुण, वह दशा जिसके आधार से गुण और गुण के आधार से द्रव्य। गुण का आधार द्रव्य। तो द्रव्य का आश्रय ले तो गुणी होने की पर्याय प्रगट होती है। अरे! अरे! गजब! समझ में आया?

तुझे गुणी होना है न, धर्म करना है न, सुखी होना है न, हितरूप करना है न? तो हितरूप तो दशा में होता है। तो वह दशा कहाँ से आवे? कहे, गुण में से। वह गुण कहाँ से? कहे, द्रव्य के आधार से है। जिसे हित करना हो, उसे द्रव्य अर्थात् आत्मा का आश्रय करना चाहिए। ऐसा कहते हैं। 'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि'... यह तो इस रीति से बात ली है। कहो, समझ में आया? वह तो बात क्या एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिय, अभिया जाओ। जीविया ववरोविया तस्समिच्छामिदुक्कडम। कुछ समझने का नहीं। कुछ सिरपच्ची या समय हो नहीं और लो, जाओ। मरकर जाये चार गति में भटके। आहाहा! तस्सउत्तरी करणेण तावकाय ठाणेणं माणेणं जाणेणं, लो। या लोगस्स उज्जोयगरे सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु। क्या अर्थ है, इसकी खबर नहीं होती।

हे सिद्धभगवान! मुझे सिद्धपद दिखलाना। आता है, लोगस्स में आता है न। ऐई चिमनभाई! किया है या नहीं? लोगस्स किया नहीं? कैसी चीज़ है। खड़े हुए थे यह अँगुली से और वह और गया इनका था वह, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लोगस्स में आता है। अपने भी आता है। हाँ, यह कहा न, सिद्धा सिद्धि ममदिसंतु। हे सिद्धभगवान! मुझे सिद्धपद दिखलाओ। यह दिखलाओ का अर्थ मुझे केवलज्ञान प्रगट करो, ऐसा। केवलज्ञान कहीं भगवान प्रगट कर देते हैं? आहाहा! समझ में आया? शाम-सवेरे बोलता है और अर्थ की कुछ खबर नहीं होती। सामायिक हुई, आसन झटककर यह खड़े हो गये। यह आवे तो धर्मी कहलाये, ऐसा।

दीवो ताणं शरणं गई पईट्ठा। नहीं आता? णमोत्थुणं में आता है। अपने भी णमोत्थुण में सामायिक में है, दिगम्बर में। परन्तु यह लोगों को परिचय नहीं न। ऐसा

आता है। एक महिला समझे नहीं और फिर दीवो दीवा टाणे संघवी कूट्या। ऐसा उसका अर्थ किया। दीवो ताणं शरणं गईं पईठ्ठा। णमोत्थुणं में आता है। णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आईगराणं, आता है। यह भी दिगम्बर में सामायिक के पाठ की उसे तो वह तत्वेस मैत्री की विशेषता। परन्तु मूल पाठ यह है। उसमें ऐसा आता है दीवोताणं, आता है न? दीकरूपी धर्म, दीवो ताणं, शरणं गईं पईठ्ठा-आधार। अर्थ सब आते नहीं फिर णमोत्थुणं अरिहंताणं दीवा ताणे संघवी कूट्या। ऐई, परन्तु ऐसा कहाँ से निकाला इसमें? संघवी का विरोध इसमें कहाँ से आया? अपने विरोध तो है बाहर में संघवी के साथ। इसमें कहाँ से आया? ऐसे के ऐसे। ऐई, भगवानजीभाई! अर्थ-बर्थ की कुछ खबर नहीं। बहुत वर्ष निकाले हैं उसमें इसने तो। यहाँ आने पर कहीं वहाँ के वहाँ रहते। हैं? यह तो बहिन यहाँ रहे होंगे फिर उनके कारण। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भाई! तू आत्मा है न! और आत्मा है तो उसमें कुछ गुण है या नहीं? गुण बिना का आत्मा? उसमें अनन्त गुण है। उस गुण का आधार कौन? गुण का आधार आत्मा है। गुण का आधार पर्याय भी नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! जानना, देखना, आनन्द ऐसे अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुण का आधार द्रव्य है, वस्तु है। तो जिसे गुण की पर्याय प्रगट करनी हो, उसे गुण का आधार द्रव्य का आश्रय लेना चाहिए, ऐसा कहते हैं। कोई बात कहना नहीं चाहते, ऐसा नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। कुछ खबर नहीं होती, ज्ञान नहीं होता। और ऐसी बात करे तो ऐसा ज्ञान तो अपने को समझ में नहीं आता। बाकी अपने करते, यह करें। क्या करें? धूल करता है अनादि से अज्ञानी। आहाहा! जेठाभाई!

मुमुक्षु : करता हो वैसा करके....।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस यह आता है।

जिसके आश्रित हों वह द्रव्य होता है। लो! प्रत्येक आत्मा या प्रत्येक रजकण, अनन्त आत्मायें और अनन्त रजकण। उनमें जो गुण है, गुण अर्थात् उसकी जो शक्ति है, वह शक्ति कोई शक्तिवान के आधार से होती है। वह (-द्रव्य) यदि गुणों से अन्य (भिन्न) हो... वह वस्तु है, वह गुण की शक्ति से भिन्न हो तो—फिर भी, गुण किसी

के आश्रित होंगे;... गुणों से अन्य हो तो गुण भी किसी के आश्रय होते हैं वापस। जिसके आश्रित हों, वह द्रव्य होता है। जिसके आश्रय गुण हो, वह द्रव्य होता है। यदि गुणों से अन्य हो... और वह द्रव्य वापस गुणों से अन्य हो। तो फिर भी, गुण किसी के आश्रित होंगे; (वे) जिसके आश्रित हों, वह द्रव्य होता है। वह भी गुणों से अन्य ही हो... वह भी गुणों से अन्य ही होगा। इस प्रकार यदि द्रव्य का गुणों से भिन्नपना हो ऐसा। तो भी भिन्न हो तो, भिन्नत्व हो तो द्रव्य की अनन्तता हो। वस्तु अनन्त हो जाये नहीं? वस्तु अनन्त होती नहीं। गुण अनन्त होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

गुण अनन्त होते हैं। परन्तु वे गुण यदि अन्य के आश्रित न हो और उससे अत्यन्त भिन्न हो तब तो गुण का आधार द्रव्य तो रहा नहीं। और दूसरे का आधार या गुणों का आधार दूसरा। या दूसरा द्रव्य। तो वह गुण तो भिन्न, भिन्न द्रव्य रहा नहीं। ऐसा करने से आधार दूसरा-दूसरा मानोगे तब तो गुण जितने द्रव्य हो जायेंगे। जितने गुण, उतने द्रव्य हो जाये। क्योंकि उनका आधार दूसरा माने नहीं। गुण का आधार भिन्न मानता नहीं। तो जितने गुण उतने द्रव्य हो जायें। अरे! क्या कहते हैं? समझ में आया इसमें?

ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण हैं। उन गुण का आधार द्रव्य, अर्थात् यदि द्रव्य अलग हो तो फिर गुण स्वयं ही अनन्त द्रव्यरूप हो गये। समझ में आया? परन्तु ऐसा नहीं है। वह गुण जो है, पर्याय में यह तो निर्णय करने की बात है। हाँ, वर्तमान पर्याय में-अवस्था में निर्णय होता है कि यह जो ज्ञान, दर्शन गुण है, वह किसी के आधार से है, उससे भिन्न हो-द्रव्य से गुण भिन्न हो—अत्यन्त भिन्न हो तो गुण का आधार द्रव्य रहा नहीं। तो गुण स्वयं द्रव्य हो गया। गुण द्रव्य होने पर अनन्त गुण तो अनन्त द्रव्य हो गये। द्रव्य अनन्त द्रव्य हो नहीं सकते।

गुण अनन्त हों, परन्तु द्रव्य अनन्त हो नहीं सकते। यह एक-एक आत्मा की बात चलती है, हों! आहाहा! ऐसा। यह। और यह पढ़ना हो तो वहाँ सूक्ष्म से पढ़े। सिर फोड़कर,... मेट्रिक में। भटकने की विद्या। ऐई जीतू! वहाँ कितना ध्यान रखता है वहाँ? यहाँ आत्मा क्या है, गुण क्या है अन्दर। उस गुण का आधार यदि द्रव्य न हो तो गुण गुण के आधार से है, तो गुण का आधार वापस दूसरे गुण का आधार कौन? दूसरे

गुण का आधार गुण और उसके आधार से गुण तो द्रव्य अनन्त हो जाये तो। समझ में आया? गुण ही स्वयं अनन्त द्रव्य हो गये। गुणों से अन्य हो तो फिर से भी गुण किसी के आश्रय से हों, अर्थात् द्रव्य हों। तो द्रव्य तो मानता नहीं, भिन्न मानता नहीं।

जिसके आश्रित हों वह द्रव्य होता है। वह भी गुणों से अन्य ही हो—इस प्रकार... ऐसा का ऐसा लिये ही करना, ऐसा कहते हैं। यदि द्रव्य का गुणों से भिन्नत्व हो... वस्तु का गुण से पृथक्पना हो तो द्रव्य की अनन्तता हो। तो ऐसा हो नहीं सकता। यह और लॉजिक तथा कायदा की बात। क्या कहा? कहा न! गुण किसी के आश्रय से होते हैं। जिसके आश्रय से हों, वह द्रव्य होता है। वह यदि गुणों से अन्य हो, और गुणों से अन्य हो तो वह फिर से भी गुण किसी के आश्रय से होंगे। वे जिसके आश्रय से हों वह द्रव्य होगा। वह भी गुणों से अन्य हो तो इस प्रमाण द्रव्य का अनन्तपना सिद्ध हुआ। गुण का अनन्तपना भिन्न रहा नहीं। समझ में आया? गुण स्वयं द्रव्य हो गया। क्या कहते हैं यह? समझ में आया इसमें?

अनन्त है और गुण जो अनन्त ऐसे ज्ञान-दर्शन आदि। उनका आश्रय यदि द्रव्य न हो तो गुण स्वयं अनन्त हो गये। गुण स्वयं अनन्त हो गये। अनन्त द्रव्य हुए। ऐसा हो नहीं सकता। इसलिए द्रव्य का आश्रय करे तो गुण प्राप्त होते हैं। गुण का आश्रय करे तो गुण प्राप्त नहीं होते, ऐसा कहते हैं। एक-एक गुण का आश्रय करे तो गुण प्राप्त नहीं होते। क्योंकि गुण का आधार द्रव्य है। अरे! समझ में आया? सूक्ष्म है जरा। अनन्त गुण हैं या नहीं? यह शरीर छोड़ दो। आत्मा है या नहीं? तो वस्तु है, उसे गुण है। अब गुण का आश्रय यदि तुम द्रव्य न मानो, अन्य है ऐसा मानो, अन्य है ऐसा मानो तो वह गुण है जितने, उतने द्रव्य हो गये। परन्तु गुण का आश्रय द्रव्य एक है, ऐसा रहा नहीं। अथवा उन अनन्त गुण को प्रगट करने के लिये द्रव्य का आश्रय यदि न हो और गुण का आश्रय हो तो एकपना प्रगट होगा नहीं, ऐसा कहते हैं। गजब! फिर से। कभी सुना भी नहीं यह। हैं?

अरे, परमेश्वर का मार्ग क्या है, वह यह स्वयं परमेश्वर हो। कहते हैं कि इसकी ईश्वरता है, उसका यदि आधार द्रव्य न हो तो एक-एक गुण स्वयं द्रव्य हो जाता है।

और एक-एक गुण, द्रव्य होने से गुण के आश्रय से लाभ नहीं होता, ऐसा कहते हैं। गुण के आश्रय से द्रव्य की पर्याय प्रगट नहीं होती। आहाहा! गजब कथन पद्धति! यह तो अभी सुनते हुए समझने में मुश्किल पड़े ऐसा है। ऐई, शोभालालजी! यह तो भक्ति कर डालो, पूजा कर डालो, यात्रा कर डालो, जाओ। लो! हो गया तुम्हारे धर्म। अपवास कर डालो दो, पाँच, दस, आठ, महीना। मर जा न महीने के अपवास कर-करके। वहाँ धूल है। वहाँ कुछ आत्मा के भान बिना कहाँ स्थिर होना है, गुण कहाँ से प्रगट होते हैं, किस खान में गुण हैं? राग की खान में गुण हैं? ऐसा यहाँ कहते हैं, गुण की खान में गुण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

इन निमित्तों में तेरा गुण है कि तू निमित्त में जुड़ जाये और तुझे लाभ हो जाये। यह पुण्य-पाप में वह गुण है, गुण के आधार से वह है? और गुण का आधार गुण है? आहाहा! वह गुण जो है आत्मा का, उसका आधार तो द्रव्य है। इसलिए जिसे गुण की दशा, धर्मदशा, वीतरागदशा, समकितदशा प्रगट करनी हो, उसे गुण का आधार न लेकर गुण का आधार द्रव्य है, उसका आश्रय / आधार लेना चाहिए। पाटनीजी! समझ में आया?

गुण का आश्रय द्रव्य होता है और गुण का आश्रय यदि अन्य द्रव्य अकेला न हो और गुण का आश्रय गुण, गुण का आश्रय गुण तो गुण स्वयं द्रव्य हो गया। इसलिए गुण का आश्रय लेने से जीव को लाभ होगा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वाड़ा में तो कहीं यह बात मिले? इसलिए वे लोग बेचारे सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिमा करो। क्या परन्तु सामायिक कहना किसे? सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमणा धर्म। और दया, दान वह पुण्य, ऐसा। दोनों को पृथक् करते हैं। दान देने का विकल्प, वह राग है और सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण करता हूँ, यह भी विकल्प-राग है। वहाँ कहाँ तुझे अभी सामायिक आयी?

क्योंकि जो गुण प्रगट करना है, वह गुण किस खान में है? जो निर्मल दशा प्रगट करनी है, वह किस खान में है? कि द्रव्य में खान में गुण है। समझ में आया? अकेले गुण पर नजर रखेगा तो गुण अनन्त द्रव्य हो जायें। और अनन्त द्रव्य होंगे, इसलिए एक

ही गुण द्रव्य हो जायेगा। तो उसमें अनन्त गुण को प्रगट करने का द्रव्य जो है, अनन्त गुण का आधार एक द्रव्य हो तो उसका लक्ष्य करने से अनन्त गुण पर्याय में प्रगट हों। एक-एक गुण का लक्ष्य करके यदि करने जायेगा तो विकल्प उत्पन्न होगा। समझ में आया ?

अरे ! गजब ! रसिकभाई ! ऐसा धर्म वीतराग का होगा ? वहाँ तो ऐसा कहे कि भाई ! रात्रिभोजन नहीं करो, कन्दमूल नहीं खाओ, अमुक करो, अपवास करो यह बात चलती है। छह काय की दया पालो। भगवान का मार्ग छह काय की दया का है। यहाँ कहते हैं कि छह काय की दया पालो, यह वीतराग का मार्ग नहीं है। क्योंकि पर की दया आत्मा नहीं पाल सकता। और पर की दया का लक्ष्य है, वह तो राग है। राग के आधार से धर्म होगा ? द्रव्य के आधार से होगा। क्योंकि द्रव्य में सब गुण पड़े हैं। समझ में आया ?

वह भी गुणों से अन्य ही हो—इस प्रकार यदि द्रव्य का गुणों से भिन्नत्व हो तो द्रव्य की अनन्तता हो। वस्तु का गुण से पृथक्पना हो तो द्रव्य का अनन्तपना हुआ। गुण से द्रव्य पृथक् नहीं। द्रव्य से गुण भिन्न नहीं। बात तो समझाना कठिन पड़े, यह बेचारे साधारण लोगों को। महिलायें बेचारी बुद्धि साधारण हो 'जाव करेमि भन्ते सामायिक सावज्जोग पच्चकाणं' सावद्ययोग का त्याग किया। सावद्ययोग किसे कहना, उसे त्याग क्या, तेरी पर्याय में आया क्या, और आवे तो किसके लक्ष्य से आता है ? हैं ?.... वह दिखता नहीं न कुछ बहुत बाहर। घर की चाबी-बावी यहाँ चढ़ाकर सामायिक करने बैठे, ऐसे। तू लुट गया है उसमें, यह तो तुझे खबर नहीं। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं, द्रव्य का गुणों से पृथक्पना यदि हो तो द्रव्य की अनेकता हो जाये। परन्तु गुण का आधार द्रव्य है, वह एक है। गुण अनन्त है। परन्तु अनन्त का आधार एक है। अनन्त का आधार अनन्त नहीं। अनन्त का आधार अनन्त नहीं। इस प्रकार की ऐसी समझ तो सच्ची करे। समझ करे, पश्चात् उसे एकाग्र होने का प्रयत्न करे। परन्तु यह समझ ही जहाँ खोटी है, वहाँ उसे एकाग्र कहाँ होना, इसकी तो कुछ खबर नहीं। ऐसे अभिमान और अभिमान में फिर जिन्दगी चली जाती है। ५०-५०,

६०-६०, ७० वर्ष हो जाओ। आहाहा! बहुत सामायिक की थी, बहुत प्रौषध किये थे। करते क्या हुआ कह यह? एक व्यक्ति मरने पड़ा था। मैंने सामायिक प्रौषध तो बहुत किये थे। भाई! अभी कहीं सूझ पड़ती नहीं। गोला की व्याधि थी गोला। समझे न? फोरम। पेट में ऐसी व्याधि, पैसा-बैसा हुए थे। भगवान! परन्तु तुम सामायिक प्रौषध किये हैं न कहीं। अभी हमको कुछ याद आता नहीं। भगवान भी याद नहीं आते। रहने दो। आहाहा!

परन्तु भगवान आत्मा है, वह तो कभी जाना नहीं। जाना नहीं, देखा नहीं, माना नहीं, अनुभव किया नहीं। उसे धर्म कहाँ से हो धूल में? तेरे लाख सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण कर न, वह तो सब राग है, विकल्प है। ऐसा तो अनन्त बार किया है। उसमें कहाँ धर्म था। धर्म तो द्रव्य में है। राग में धर्म है? धर्मदशा है, वह वीतरागीदशा है। और वीतरागीदशा गुण है, इसलिए द्रव्य के आश्रय से वीतरागी पर्याय आती है। समझ में आया? गुण का आश्रय गुण नहीं, ऐसा कहते हैं। भेद नहीं। गुण का आश्रय गुण नहीं, भेद नहीं। गुण का आश्रय अभेद द्रव्य है। समझ में आया?

यदि द्रव्य का गुणों से भिन्नपना हो तो द्रव्य का अनन्तपना हो। कहो, द्रव्य से गुण भिन्न, गुण से गुण भिन्न। गुण का आधार द्रव्य नहीं, तब तो गुण हो गये अनन्त तो द्रव्य अनन्त हो गये। एकपना रहा नहीं। जीव को धर्म अर्थात् सुखी होना हो तो उस सुख की शक्ति का आधार द्रव्य है, उसके आधार से सुखी होने की पर्याय प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। इस राग के आधार से नहीं, निमित्त के आधार से नहीं, और गुण के आधार से नहीं। समझ में आया?

अब, वास्तव में द्रव्य अर्थात् गुणों का समुदाय। अब द्रव्य की व्याख्या करते हैं। गुण यदि समुदाय से अन्य हो... समझ में आया? गुण यदि समुदाय से, समुदाय अर्थात् द्रव्य। उससे अन्य हो तो समुदाय कैसा? समुदाय किसका कहना? यदि गुणों को समुदाय से भिन्न माना जाये... समुदाय अर्थात् द्रव्य। गुणों को समुदाय से (द्रव्य से) भिन्न माना जाये तो समुदाय कहाँ से घटित होगा? तो समुदाय अभी समुदाय ही घटित नहीं होता। क्या कहा? समुदायी द्रव्य। समुदाय गुणों का समुदाय द्रव्य। उन गुणों को,

गुण यदि समुदाय से अन्य हो, गुण यदि समुदायी, गुण समुदाय। शब्द पूरा। समुदाय द्रव्य वस्तु। वह गुण यदि समुदाय से अन्य हो तो समुदाय कैसा? वह समुदाय कहाँ रहा? समुदाय समझ में आता है?

समुदाय और समुदायी। समुदाय गुण का पिण्ड। यह समुदाय, समुदायी ऐसा द्रव्य। ऐसी भाषा भी कभी सुनी न हो। जैन में जन्मा हो तो भी (सुनी न हो)। समझ में आया? वास्तव में द्रव्य अर्थात् गुणों का समुदाय। गुण यदि समुदाय से अन्य हो तो समुदाय कैसा? तो समुदाय रहा नहीं। गुणों को समुदाय से अर्थात् द्रव्य से भिन्न मानने जाये तो समुदाय ही रहा नहीं। गुण का पिण्ड ही घटित नहीं होता। अर्थात् कि द्रव्य कहाँ से घटित हो? इस प्रकार यदि गुणों का द्रव्य से भिन्नत्व हो... तो, समझ में आया? उसमें द्रव्य से गुणों का भिन्नपना था। इसमें गुणों से द्रव्य का भिन्नपना दो सिद्ध करना था न उसे। द्रव्य का गुणों से भिन्नपना और गुणों का द्रव्य से भिन्नपना, दो बात सिद्ध करनी है न? हैं? एक यदि गुणों का वस्तु से, गुण हैं वे वस्तु से भिन्न हों तो द्रव्य का अभाव हो। द्रव्य रहे नहीं। अरे... अरे! यह सब लॉजिक रखते हैं। वकालत का काम होगा यह? समझने की वकालत यह समझने की है, उसमें क्या है? भगवान न्याय से तो बात करते हैं। परन्तु अब मस्तिष्क को फैलाना तो पड़ेगा।

पहले में ऐसा कहा था कि द्रव्य से गुण भिन्न हो तो द्रव्य अनन्त हो जाते हैं। अब गुणों से यदि द्रव्य अन्य हो तो द्रव्य का नाश, ऐसा कहते हैं। समुदाय समुदायी से यदि भिन्न हो तो द्रव्य का नाश हो जाता है। यह सूक्ष्म पड़े, हों, डॉक्टर को? हैं? द्रव्य का अभाव हो। परन्तु ऐसा कभी होता नहीं। इसलिए गुण का आधार द्रव्य और द्रव्य, गुण बिना नहीं होता; इसलिए द्रव्य ऐसा तत्त्व आत्मा, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और धर्म होता है। दूसरे का आश्रय करने से धर्म नहीं होता।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४५

अविभक्तमण्णत्तं द्रव्यगुणाणं विभक्तमण्णत्तं।
णिच्छन्ति णिच्चयण्हू तत्त्विवरीदं हि वा तेसिं॥४५॥

अविभक्तमनन्यत्वं द्रव्यगुणानां विभक्तमन्यत्वम्।
नेच्छन्ति निश्चयज्ञास्तद्विपरीतं हि वा तेषाम्॥४५॥

द्रव्यगुणानां स्वोचितानन्यत्वोक्तिरियम् ।

अविभक्तप्रदेशत्वलक्षणं द्रव्यगुणानामनन्यत्वमभ्युपगम्यते । विभक्तप्रदेशत्वलक्षणं त्वन्यत्वमनन्यत्वं च नाभ्युपगम्यते । तथाहि-यथैकस्य परमाणोरेकेनात्मप्रदेशेन सहाविभक्तत्वादनन्यत्वं, तथैकस्य परमाणोस्तद्धतिनां स्पर्शरसगन्धवर्णादिगुणानां चाविभक्तप्रदेशत्वादनन्यत्वम् । यथा त्वत्यन्तविप्रकृष्टयोः सहाविन्ध्ययोरत्यन्तसन्निकृष्टयोश्च मिश्रितयोस्तोयपयसोर्विभक्तप्रदेशत्वलक्षणमन्यत्वमनन्यत्वं च, न तथा द्रव्यगुणानां विभक्तप्रदेशत्वाभावादनन्यत्वमनन्यत्वं चेति ॥४५॥

द्रव्य अर गुण वस्तुतः अविभक्तपने अनन्य हैं ।
विभक्तपन से अन्यता या अनन्यता नहीं मान्य है ॥४५॥

अन्वयार्थ :- [द्रव्यगुणानाम्] द्रव्य और गुणों को [अविभक्तम् अनन्यत्वम्] अविभक्तपनेरूप अनन्यपना है; [निश्चयज्ञाः हि] निश्चय के ज्ञाता [तेषाम्] उन्हें [विभक्तम् अन्यत्वम्] विभक्तपनेरूप अन्यपना [वा] या [तद्विपरीतं] (विभक्तपनेरूप) अनन्यपना [न इच्छन्ति] नहीं मानते।

टीका:-यह, द्रव्य और गुणों के स्वोचित अनन्यपने का कथन है (अर्थात् द्रव्य और गुणों को कैसा अनन्यपना घटित होता है, वह यहाँ कहा है।)

द्रव्य और गुणों को 'अविभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना स्वीकार किया जाता है; परन्तु विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अन्यपना तथा (विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना स्वीकार

१. अविभक्त=अभिन्न। (द्रव्य और गुणों के प्रदेश अभिन्न हैं, इसलिए द्रव्य और गुणों को अभिन्नप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना है।)

नहीं किया जाता। वह स्पष्ट समझाया जाता है:—जिस प्रकार एक परमाणु को एक स्वप्रदेश के साथ अविभक्तपना होने से अनन्यपना है, उसी प्रकार एक परमाणु को तथा उसमें रहनेवाले स्पर्श-रस-गुध-वर्ण आदि गुणों को अविभक्त प्रदेश होने से (अविभक्त-प्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना है; परन्तु जिस प्रकार अत्यन्त दूर ऐसे 'सह्य और विंध्य को विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना है तथा अत्यन्त निकट ऐसे मिश्रित 'क्षीर-नीर को विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना है, उसी प्रकार द्रव्य और गुणों को विभक्त प्रदेश न होने से (विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना तथा (विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना नहीं है॥४५॥

प्रवचन-४७, गाथा-४५-४६, पौष कृष्ण ०२, शनिवार, दिनांक -२४-०१-१९७०

पंचास्तिकाय षट्द्रव्य का स्वरूप। उसमें यहाँ मुख्यरूप से जीव के स्वरूप की बात चलती है। उसमें समुच्चय सब बात है। देखो! (४५)।

अविभक्तमणणत्तं दव्वगुणाणं विभक्तमणणत्तं।
णिच्छंति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं॥४५॥
द्रव्य अर गुण वस्तुतः अविभक्तपने अनन्य हैं।
विभक्तपन से अन्यता या अनन्यता नहीं मान्य है॥४५॥

देखो! द्रव्य-आत्मा वस्तु है, उसके गुण हैं, वे किस प्रकार हैं, ऐसा वर्णन करते हैं, सिद्ध करते हैं। जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, उसे द्रव्य और गुण अभेद है, ऐसी दृष्टि करके द्रव्य पर दृष्टि करनी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

पहले तो आ गया है कि भाई! गुण और द्रव्य एक है। पर्याय से अनेक है। पर्याय है न अनेक? पाँच पर्यायें होती हैं, इस अपेक्षा से अनेक है। द्रव्य-गुण स्वरूप से एक

१. अत्यन्त दूर स्थित सह्य और विंध्य नाम के पर्वतों को भिन्न प्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना है।
२. अत्यन्त निकट स्थित मिश्रित दूध-जल को भिन्न प्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना है। द्रव्य और गुणों को ऐसा अनन्यपना नहीं है, किन्तु अभिन्न प्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना है।

है, और पर्याय से अनेक है। ऐसा ही उसका स्वरूप है। भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न... पर्याय होती है, भिन्न... भिन्न... भिन्न... अवस्था होती है, इसलिए उस अवस्था से अनेक कहलाता है और वस्तु से द्रव्य-गुण से एक कहलाता है।

ऐसा इसे निर्णय करके द्रव्य-गुण की ओर लक्ष्य करके पर्याय की भिन्न भिन्नता प्रगट हो, उसे अपनी दशा है, ऐसा जानना चाहिए।की यहाँ बात नहीं है। पुण्य-पाप विकल्प उठें, वह वस्तु में नहीं है। भगवान आत्मा अपने द्रव्यस्वरूप से, गुणस्वरूप से ही है, ऐसा कहते हैं। उसके गुण और द्रव्य कोई अलग नहीं है, यह कहते हैं। देखो! जरा ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। यह तो एकदम सर्वज्ञ का विज्ञान है। सर्वज्ञ का विज्ञान।

टीका :- यह, द्रव्य और गुणों के... भगवान आत्मा, ऐसे प्रत्येक द्रव्य की बात है। परन्तु अपने यहाँ आत्मा को मुख्य लेते हैं। आत्मा वस्तु है और उसके गुण ज्ञान, दर्शन, आनन्द, उसकी शक्ति गुण है। **स्वोचित...** दो के योग्य अनन्यपने का कथन है... उसके योग्य (अ) पृथक्पने का कथन है। ऐसा कहते हैं।

अनन्यपना का उसके योग्य एकपना का कथन है, ऐसा कहते हैं। **अर्थात् द्रव्य और गुणों को कैसा अनन्यपना घटित होता है, वह यहाँ कहा है।** ऐसे तो द्रव्य-गुण, गुण वह द्रव्य है और द्रव्य, वह गुण है। तथापि भिन्न हो गये न, गुण और द्रव्य कहते हैं। परन्तु यह भिन्नपना नहीं। ऐसा कहते हैं। अभिन्न है। जैसे आत्मा शरीर के रजकण, कर्म के रजकणों से भिन्न है और पुण्य-पाप के विकल्पों की दया, दान, भक्ति आदि से जैसे भिन्न है, वैसे वह आत्मा उसके गुणों से भिन्न नहीं है। समझ में आया ?

यह द्रव्य और गुणों के उसके योग्य अनन्यपना, उसके योग्य अनन्य एकपना का कथन है। **द्रव्य और गुणों को अविभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना स्वीकार किया जाता है;**... भाषा ही कभी इसके बहियों में आयी नहीं हो। हैं ? क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा जो है और उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द जो गुण है, वह अविभक्तप्रदेश। उसके प्रदेश गुण के अलग और द्रव्य के अलग, ऐसा नहीं है। अभिन्न-अभिन्न प्रदेश है। द्रव्य और गुणों के प्रदेश अभिन्न हैं; इसलिए द्रव्य और गुणों को अभिन्न प्रदेशों स्वरूप अनन्यपना है, एकपना है। फिर से। आहाहा!

इसमें स्वद्रव्य क्या है और स्वगुण क्या है, ऐसा कभी इसने अन्तर में देखा नहीं और प्रयत्न किया ही नहीं। बाकी तो यह करूँ और यह करूँ, यह करूँ और यह करूँ। उसमें इसकी जिन्दगी चली जाती है। यह धर्म के नाम से भी कुछ व्रत पालन करूँ और कुछ दया पालूँ, पूजा करूँ, भक्ति करूँ और यात्रा करूँ, ऐसी क्रियाकाण्ड के विकल्प में फँस गया। परन्तु उससे तो भिन्न है, ऐसा कहते हैं। ऐसे गुण और द्रव्य से भिन्न नहीं। गुण और द्रव्य तो अनन्य है। एकमेक है। दोनों के प्रदेश अभिन्न हैं, एक है। आ गया था पहला द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। परन्तु यहाँ खास दूसरी बात करनी है।

अनन्यपना है, वह किस प्रकार है, एकपना है, वह किस प्रकार है?—कि द्रव्य और गुणों को भगवान आत्मा और यह परमाणु उसे भी। यह परमाणु है, वह द्रव्य है। उसमें वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श है, यह इसके शक्ति-गुण हैं। उस गुण और द्रव्य को भिन्न प्रदेश नहीं है। भिन्न प्रदेश नहीं, ऐसा उसमें अनन्यपना है। यह परमाणु-पॉइन्ट है। देखो! यह रजकण है न! यह तो बहुत रजकणों का बना हुआ है। यह कहीं मूल चीज़ नहीं। टुकड़े करते... करते... करते... अन्तिम पॉइन्ट रहे उसे परमाणु कहते हैं। तो वह परमाणु द्रव्य है। और उसमें रंग-गन्ध-रस-स्पर्श उसके गुण हैं। उस गुण को और द्रव्य को प्रदेश का अभिन्नपना है। प्रदेश का भिन्नपना नहीं। जो प्रदेश में रंग-गन्ध-रस-स्पर्श है, उसी प्रदेश में द्रव्य है। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा उससे भिन्न परन्तु स्वयं ही प्रदेशस्वरूप द्रव्य है, उसी प्रदेशस्वरूप में गुण है। गुण के प्रदेश भिन्न और द्रव्य के भिन्न, ऐसा नहीं है। अरे! गजब बात यह ऐसी! अनन्यपना स्वीकार किया जाता है;... भगवान ने ऐसा कहा है। और वस्तु का स्वरूप (ऐसा ही है) भगवान आत्मा की अन्दर जहाँ नजर करने जाये तो उसके गुण और द्रव्य के प्रदेश भिन्नपना नहीं है। वह सब अन्दर एकरूप है। समझ में आया?

परन्तु विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना तथा (विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना स्वीकार नहीं किया जाता। अब दो बात कहते हैं। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा और प्रत्येक द्रव्य। यहाँ अपने अधिक आत्मा में लेना है न? उसका विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना गुण के प्रदेशों से वह द्रव्य और द्रव्य के प्रदेश से वह अन्य, ऐसा नहीं है।

तथा विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना तथा गुण के प्रदेश भिन्न और द्रव्य के भिन्न, तथापि एक हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? धीरे से... धीरे से... इसके न्याय-लॉजिक है न, यह न्याय से इसे समझना पड़ेगा।

यह बात इसने अनन्त काल से द्रव्य अन्दर क्या अस्ति है और गुणों का अस्तित्व किस प्रकार से है और उसका अस्तित्व अभेद है, तब तो उसे गुण प्रगट करने के लिये उसके द्रव्य पर दृष्टि देनी चाहिए। क्योंकि द्रव्य और गुण एक है। गुण प्रगट करना हो, धर्म प्रगट करना हो, जन्म-मरण के दुःख का नाश करना हो, समझ में आया? तो इसे गुण प्रगट करने के लिये गुण और द्रव्य दोनों एक है। प्रगट अर्थात् पर्याय। निर्मल धर्म पर्याय प्रगट करनी हो तो गुण और द्रव्य एक है, इसलिए इसे द्रव्य पर दृष्टि देने से गुण की शक्तिरूप जो भाव है, वह पर्याय में प्रगट होता है। यह गुण और द्रव्य का भिन्न प्रदेश है और अन्यपना है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अन्यपना तथा (विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना... वापस प्रदेश भिन्न हों और दोनों एक है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? भिन्न प्रदेशपना और अन्यपना ऐसा भी नहीं तथा भिन्न प्रदेशपना और एकपना, ऐसा भी नहीं। समझ में आता है या नहीं इसमें? यह दृष्टान्त देकर समझाते हैं, हों! दोनों के दो दृष्टान्त देंगे।

जिस प्रकार एक परमाणु को... देखो, दृष्टान्त दिया। देखो! एक परमाणु पॉइन्ट है यह रजकण। इसे एक स्वप्रदेश के साथ अविभक्तपना होने से... इसके परमाणु को अपना जो प्रदेश है परमाणु का जो प्रदेश अर्थात् जो अंश है, वह स्वयं। उसके साथ अविभक्तपना पृथक्पना नहीं होने से अनन्यपना है,... स्वपरमाणु को उसके प्रदेश से एकमेकपना है। पृथक्पना नहीं। कहो, बराबर है?

उसी प्रकार एक परमाणु को तथा उसमें रहनेवाले स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण आदि गुणों को अविभक्त प्रदेश होने से (अविभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना है;... लो! उस परमाणु को प्रदेश साथ में कहा। अब एक परमाणु में रहे हुए वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श गुण है, उन्हें और परमाणु को अविभक्त प्रदेश (है), पृथक् प्रदेश नहीं। ऐसा उसमें एकमेकपना है। पृथक् प्रदेश नहीं, ऐसा उसमें एकमेकपना है। यह तो सर्वज्ञ का विज्ञान

है। वह (लौकिक) विज्ञान सीखते हैं, उसमें तो समझने जैसा (कुछ नहीं)। समझने जैसा अर्थात् वह तो जानकर उसमें गप्प मारे और आड़ा चले। यह तो वीतराग का विज्ञान है।

आत्मा और उसके ज्ञानदर्शन गुण उनका प्रदेशपना-स्वप्रदेशपना एक है। किसकी भाँति? कि परमाणु को उसका स्वप्रदेश एक है, उसकी भाँति। अब परमाणु में भी जो वर्ण, गन्ध, रस गुण हैं और परमाणु उसके भी प्रदेश तो एक ही हैं। उसके प्रदेश का पृथक्पना नहीं है और प्रदेश एक है; इसलिए परमाणु और गुण को अनन्य अर्थात् एकपना है। कहो, समझ में आया? आज सूक्ष्म है।

परन्तु जिस प्रकार अत्यन्त दूर ऐसे सह्य और विन्ध्य को... दो पर्वत लिये। विन्ध्याचल पर्वत और सह्य (सह्याद्रि) नाम का पर्वत दोनों भिन्न-भिन्न। सह्य, सह्याचल है न सह्याचल। सह्याचल कहते हैं न? दोनों पर्वत को विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अन्यपना है... क्या कहा? यह दो अँगुलियाँ हैं। देखो! तो इस अँगुली को और इस अँगुली को विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप भिन्नपना है। इसके प्रदेश भिन्न और इसके प्रदेश भिन्न। विभक्त प्रदेश-पृथक् प्रदेशपना अन्यपना है। एक पर्वत है यहाँ सह्याचल और विन्ध्याचल। प्रदेश भिन्न और प्रदेश भिन्न अन्यपना है। तथा अत्यन्त निकट ऐसे मिश्रित क्षीरनीर को... दूसरा दृष्टान्त। अत्यन्त निकट ऐसे दूध और पानी को विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप... देखो। विभक्त प्रदेश भिन्न, तथापि अनन्यपना है,... ऐसे एक क्षेत्र से एकपना दिखता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उसी प्रकार द्रव्य और गुणों को विभक्त प्रदेश न होने से... लो! भगवान आत्मा और उसके आनन्द और ज्ञान के गुणों को दो के बीच के प्रदेशों के अंश का पृथक्पना नहीं होने से, समझ में आया? प्रदेश न होने से (विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) अन्यपना... पृथक् प्रदेशपना, ऐसा अन्यपना (विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना नहीं है। ऐसा। और भिन्न प्रदेश हों गुण के और द्रव्य के, तथापि वे अनन्य हैं, एक है—ऐसा नहीं है। गजब बात, भाई! फिर से लेते हैं, फिर से लेंगे, हों!

यह तो बहुत सरल युक्ति से सिद्ध करते हैं, परन्तु लोगों को दरकार ही नहीं होती न! यदि घर की बातें होवे तो एकदम कुशल-पटु। यह बराबर जाने कि इसका ऐसा

होता है और इसका ऐसा होता है और बड़ा देव का पुत्र उतारा मानो। आहाहा! कहते हैं, तेरा अस्तित्व कहाँ कैसे है और वह अस्तित्व जहाँ जैसे है, वैसे वहाँ उसे दृष्टि में लेने से उसे धर्म और सम्यग्दर्शन होता है।

तो कहते हैं, भगवान आत्मा और गुणों को, जैसे एक परमाणु-पॉइन्ट है और पॉइन्ट का वह प्रदेश है, वह प्रदेश। वह पॉइन्ट परमाणु का प्रदेश भी अविभक्त है। पृथक् नहीं। विभक्त नहीं। प्रदेश भी वह, परमाणु भी वह, तथापि अनन्य है, अनन्य है। एकमेक है। प्रदेश और परमाणु एकमेक है। एक बात। तथा परमाणु को और गुण को, उस प्रदेश के साथ में कहा। वैसे परमाणु पॉइन्ट है द्रव्य और उसमें रंग-गन्ध-रस-स्पर्श गुण हैं। उस गुण को और परमाणु को एक प्रदेशपना है। एक प्रदेशपने अनन्य है। एक प्रदेशपने अभिन्न है। ऐई बीड़ी! बीड़ी के पावरधा सब बहुत लो! किसी प्रकार की बीड़ियाँ और किसी प्रकार की, ऐई! शोभाभाई! यह वहाँ पैसे उगाहने जाते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? शान्ति से धीरे से समझो।

यह आत्मा वस्तु है, वह इस शरीर, कर्म, परमाणु, वाणी से अत्यन्त भिन्न चीज़ है। और उस भिन्न चीज़ में वास्तव में तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प उठते हैं, उनसे भिन्न चीज़ है। ऐसी भिन्न चीज़ का स्वयं अपने द्रव्य के और गुण के प्रदेश उनके भिन्न नहीं। वह द्रव्य और गुण का स्वप्रदेश एक ही प्रदेश है। जैसे परमाणु को और परमाणु का प्रदेश, परमाणु और उसका प्रदेश वह के वह प्रदेश। दोनों एक है। इसी प्रकार आत्मा और आत्मा के प्रदेश, द्रव्य के और गुण के प्रदेश एक ही है। समझ में आया? फिर गुण का दृष्टान्त परमाणु में दिया है। द्रव्य अर्थात् वस्तु कहते हैं न ऐसे। द्रव्य अर्थात् वस्तु।

द्रव्यति इति द्रव्यम्। जिसमें से अवस्था द्रवे, प्रवहे, बहे, उसे द्रव्य कहा जाता है। स्वरूपचन्दभाई! यह द्रव्य अर्थात् यह पैसा-बैसा की बात नहीं। भगवान का शब्द जो है, द्रव्य शब्द क्यों है कि द्रवता है। जैसे पानी है और वह एकरूप नहीं रहता। उसमें तरंग उठती है। अनेक अवस्था उठती है। इसलिए उसे द्रव्य कहा जाता है। द्रव्य अर्थात् द्रवे, द्रवे अर्थात् प्रवहे, प्रवहे-बहे, उसमें से नयी-नयी अवस्थाएँ बहे, इसलिए उस

चीज़ को द्रव्य कहा जाता है। डॉक्टर! यह तो लॉजिक से तो बात चलती है परन्तु अब....

मुमुक्षु : लोग उलझन में आ जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, उलझे ऐसा कुछ नहीं। परन्तु इसने कभी दरकार नहीं की न! आहाहा!

निजघर में निजगुण और निजद्रव्य दोनों किस प्रकार हैं, ऐसा यदि उसे अभिन्नपने का भान हो तो वह गुण प्रगटाने के लिये इसे द्रव्य पर दृष्टि की आवश्यकता पड़े। तब गुण प्रगट हो और तब धर्म हो और तब जन्म-मरण गले। आहाहा! बाकी तो ऐसी क्रियाएँ व्रत और नियम और ऐसे विकल्प करे और इन विकल्प से मेरा कल्याण हो, इस विकल्प को अपने साथ एकमेक माने, वह दुःख को आनन्द के साथ एक मानता है, वह दुःख से मुक्त नहीं होगा। कहो, कनुभाई! समझ में आया इसमें? यह दो दिन का अवकाश है न, ये आये हैं। यह कनुभाई जज। आहाहा!

ऐसा भगवान कहते हैं कि तूने कभी दृष्टि में, श्रद्धा में, नजर में नहीं लिया और नजर करनेवाला नजर में नहीं लिया और नजर करनेवाले ने जो चीज़ उसमें नहीं, उसकी नजर की है, वह तो इसने पर में नजर की है। समझ में आया? शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पुण्य और पाप सब चीज़ें परद्रव्य, परवस्तु है। नजर करनेवाला, नजर करनेवाले को देखा नहीं। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि नजर करनेवाला, उसने नजर होने के गुणों और गुणों की शक्ति और द्रव्य को क्या है। दोनों के अंश भिन्न हैं? दोनों के क्षेत्र के भाव भिन्न हैं? जैसे एक स्तम्भ का भाग भिन्न और दूसरे स्तम्भ का भिन्न; जैसे विन्ध्याचल पर्वत और सह्याचल पर्वत के क्षेत्र भी भिन्न और उसके गुण भी भिन्न। उसी प्रकार आत्मा और गुण के बीच में है? ऐसा नहीं है। आहाहा!

भगवान, आता है न योगसार में। कल आया था। 'जहाँ चैतन्य वहाँ अनन्त गुण, जहाँ चैतन्य वहाँ अनन्त गुण केवली बोले ऐम।' जहाँ चेतन, वहाँ अनन्त गुण भरे हैं। यह पुण्य और पाप में भी नहीं गुण और शरीर, वाणी में तो तेरे गुण हैं नहीं। जहाँ चैतन्य वहाँ अनन्त गुण केवली बोले ऐम। प्रगट अनुभव आपनो। यदि गुण और गुणी को एकरूप मानकर यदि अनुभव करे तो तुझे खबर पड़े कि अनन्त गुणों का आधार वह

चैतन्य वस्तु है। वह गुण कहीं पुण्य-पाप के विकल्प के आधार से या निमित्त के आधार से प्रगट नहीं होते। प्रगट अर्थात् पर्याय। समझ में आया? आहाहा! अब इसमें लेन-देन का क्या कहलाता है तुम्हारे? हैं? ब्याज-बटाव के धन्धेवाले आये हैं या नहीं? जयन्तीभाई! यह ब्याज-बटाव का धन्धा है सही तो। लो! यह प्रसन्न होते हैं। हैं? पैसे का द्रव्य है। यह हमारे आया है न एक यहाँ। द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि है न यह। देखो! द्रव्यदृष्टि, इतने बड़े अक्षर हैं। यह पहले यहाँ सामने था। फिर एक आये थे थान के माणेकचन्दभाई। भेंसाण के सम्बन्धी। ऐसे बाहर बैठे थे। यह द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि, यह कैसे क्या होगा? यह सब पैसेवाले आवे न, बहुत करोड़पति इसलिए द्रव्यवाले वे समकित्ती? ऐई! इसमें है न! देखो! इतने बड़े अक्षर में है। देखो! दो-दो=चार और दो, छह, आठ, दस और ग्यारह अक्षर हैं। लो! द्रव्यदृष्टि, वही सम्यग्दृष्टि। इस ओर है, इस ओर। समझ में आया? उसने पूछा, द्रव्यदृष्टि अर्थात् पैसेवाले दृष्टिवाले सम्यग्दृष्टि। यह क्या आया? कहे यह? अरे भगवान! कहा क्या? जैन में जन्मे तपग्रस्थ गृहस्थ व्यक्ति, तुमको इस शब्द की खबर ही नहीं। द्रव्य अर्थात् क्या? दृष्टि अर्थात् क्या? द्रव्य-पैसे की यहाँ बात है?

द्रव्य अर्थात् आत्मा। जिसमें से द्रवता है, वह आत्मा गुणवाला है, शक्तिवाला है। उसमें से निर्मल अवस्था द्रवति है, बहती है, प्रगटती है। परन्तु कब निर्मल प्रगटे कि द्रव्य पर दृष्टि देने से द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि होने पर उस द्रव्य में से सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? अरे! अनादि का अनजाना मार्ग कभी इसने इस मार्ग का सुख क्या है, यह सुना नहीं। धर्म के नाम से चारों ओर ऐसे मेहनत की और मर गया। और यदि इसे यह बात करे तो उसको कहे, नहीं ऐसा यह होगा? व्रत करते हैं, तप करते हैं साधन कुछ होता है या नहीं? हैं?

मुमुक्षु : ज्ञान उसका साधन।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो! यह कहता है कि ज्ञान उसका साधन। ऐई! ऐ वकील! कहो, समझ में आया?

ज्ञान उसका साधन। वह विकल्प-व्रत, वह उसका साधन नहीं। वे कहाँ गये?

जादवजीभाई! यह तुम्हारा पौत्र ऐसा कहता है कि ज्ञान, वह साधन। दूसरा साधन नहीं, ऐसा कहता है। भगवान आत्मा, 'इच्छे छे' इतना बोलता तो है अभी। ज्ञान साधन, यह कितनों को तो इतना बोलना भी नहीं आता। यह साधन है, साधन है। व्रत करना, तप करना, अपवास करना, यात्रा करना, दया-दान, ऐसे भाव कषाय की मन्दता करना, वह साधन। धूल भी वह साधन नहीं। सुन न! उसमें-वस्तु में कहाँ था कि वह साधन हो। समझ में आया?

कहते हैं, क्या कहा? जिस प्रकार एक परमाणु को एक स्वप्नदेश के साथ अविभक्तपना होने से अनन्यपना है,... परमाणु। परमाणु को प्रदेश का पृथक्पना नहीं है। उसी प्रकार एक परमाणु को तथा उसमें रहनेवाले स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण आदि गुणों... परमाणु में स्पर्श है न? यह बुखार है न? यह बुखार क्या है? यह भाई ने पूछा था। यह जड़ की पर्याय-अवस्था है। किस गुण की? कि स्पर्शगुण की। परमाणु द्रव्य है, स्पर्श वह उसका त्रिकाली रहनेवाला गुण है और शीत-उष्ण अवस्था होना, वह उसकी पर्याय है। गर्म अवस्था, वह जड़ की अवस्था है। आत्मा की नहीं। आत्मा बुखार को स्पर्श ही नहीं करता। अरे... अरे! समझ में आया? जड़ को क्या स्पर्श करे, परन्तु वह तो जड़ है और यह (आत्मा) तो अरूपी है। वह तो रूपी है। मानता है कि अरे! मुझे बुखार आया। ऐसी अवस्था जड़ में। परन्तु उसका लक्ष्य द्रव्य और गुण से आत्मा अभेद है, उसकी दृष्टि नहीं है। इसलिए ऐसा उसका लक्ष्य पर के ऊपर जाता है। यह बुखार मुझे आया। मैं गर्म हुआ। गर्म हुआ नहीं। गर्म हूँ, ऐसा इसने माना है। गर्म होता नहीं। यह गर्म हो तो जड़ हो जाये। गर्म तो दशा जड़ है। गर्म तो जड़ की दशा है। गर्म आत्मा हो तो आत्मा की दशा जड़ हो जाये। ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

एक परमाणु को तथा उसमें रहनेवाले... ऐसा है न। स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण आदि गुणों को अविभक्त प्रदेश होने से अनन्यपना है;... एकपना है। अब दूसरा दृष्टान्त। परन्तु जैसे अत्यन्त दूर ऐसे सह्याचल और विन्ध्याचल पर्वत दोनों के क्षेत्र भिन्न, दोनों के प्रदेश भिन्न ऐसे अनन्यपना है... एक बात। दूसरी बात। और अत्यन्त निकट ऐसे मिश्रित क्षीर-नीर इकट्ठा लगे ऐसे। दूध जैसा भिन्न प्रदेश स्वरूप अनन्यपना है। क्या

कहते हैं ? है तो भिन्न प्रदेश दूध के और पानी के, तथापि एक जैसा अभिन्न लगता है। ऐसा आत्मा में नहीं है। समझ में आया ?

क्षीर—नीर को विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना है,... एकपना है। उसी प्रकार भगवान आत्मा और उसके आनन्दगुण को भिन्न प्रदेश नहीं होने से। आनन्दगुण और आनन्द चाहिए हो तो उसे आनन्द धारक द्रव्य पर दृष्टि देना चाहिए। वह आनन्द और आत्मा दोनों एक है। आहाहा! वह आनन्द और आत्मा के प्रदेश भिन्न नहीं। विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना, ऐसा द्रव्य और गुण को भिन्न प्रदेशपना अनन्यपना, ऐसा नहीं है। और विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना। दूध और नीर की भाँति। पहला दृष्टान्त दो पर्वत का है। द्रव्य और गुण को विभक्त प्रदेश नहीं होने से विभक्तस्वरूप दो पर्वत भिन्न हैं, वैसे आत्मा और गुण के प्रदेश भिन्न हैं, ऐसा नहीं। ऐसा अनन्यपना नहीं। इसी तरह क्षीर और नीर—दूध और पानी के प्रदेश भिन्न हैं, तथापि एक क्षेत्र में एकपना दिखता है, ऐसा भी आत्मा में नहीं।

आत्मा और गुण के प्रदेश भिन्न और एकमेक हैं, भिन्न प्रदेश तथापि, एकमेक हैं—ऐसा नहीं है। प्रदेश एक और एकमेक है, वे अनन्य अभिन्न हैं। आहाहा! न्याय आता है या नहीं इसमें ? लॉजिक से तो समझाते हैं। उसमें व्यापारी को कभी वकील की भाँति लॉजिक का अभ्यास नहीं होता। डॉक्टर को तुम्हारे कुछ लॉजिक नहीं होता। तुम्हारे क्या, तुम्हारे तो दवा का होता है। न्याय समझ में नहीं आया ? फिर से।

यह आत्मा पर से भिन्न प्रदेश भिन्न है। शरीर के, वाणी के, परमाणु के, कर्म के प्रदेश और भगवान आत्मा के प्रदेश क्षेत्र-प्रदेश दोनों अत्यन्त भिन्न। उनके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। किसकी भाँति ? उन विन्ध्याचल और सह्याचल पर्वत की भाँति। इन दो अँगुलियों की भाँति। इस अँगुली के प्रदेश भिन्न और इस अँगुली के प्रदेश भिन्न। भिन्न होने पर भी दोनों एक हैं कोई कहे, ऐसा नहीं है। अत्यन्त भिन्न। इसी प्रकार द्रव्य और गुण के प्रदेश भिन्न हैं, ऐसा नहीं है। ऐसा बोला जाये तो ऐसे द्रव्य, गुण—ऐसे नाम पड़ा न ? नाम दो पड़े, इसलिए प्रदेश भिन्न हैं ? दूध—सफेदाई, दूध—सफेदी दो नाम पड़े न, तो सफेदी के अंश अलग और दूध के अंश अलग, ऐसा है ? नहीं, दोनों एक ही है। इसी

प्रकार द्रव्य आत्मा और आनन्द नाम का गुण आत्मा में प्रदेश भिन्न नहीं, दोनों एक है। नाम भले अलग पड़े हैं—संज्ञा भले अलग पड़ी। यह गुण और गुणी। गुण और द्रव्य, ऐसे नाम अलग पड़े; प्रदेशभेद नहीं है। अरे! हाय!

कहते हैं कि तुझे गुण शोधना हो तो द्रव्य में जा। वहाँ मिलेंगे। पुण्य-पाप के प्रदेश भिन्न और निमित्त भिन्न, वहाँ देखने जायेगा तो यह गुण नहीं मिलेंगे। वहाँ नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह भगवान के पास नजर की तो तेरे गुण वहाँ नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। कहो, भीखाभाई! भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... ॐ... ॐ... ॐ... यह कहते हैं सब वाणी है। उसके अन्दर विकल्प उठे, वह अलग चीज़ है। उसमें तू गुण शोधने जायेगा तो गुण और गुणी का अभिन्नपना उसके साथ नहीं है। आहाहा! कहो, चिमनभाई! समझ में आया या नहीं यह? आहाहा!

दो पर्वत भिन्न, उनके क्षेत्र भिन्न, इसलिए प्रदेश भिन्न; वैसे ही द्रव्य और गुण के प्रदेश भिन्न, नाम अलग पड़े, इसलिए प्रदेश भिन्न—ऐसा नहीं है। आहाहा! मूल ऐसा कहते हैं कि नाम तो अलग पड़े या नहीं? दूध और पानी, लो, नाम अलग। तथापि दूध के प्रदेश अलग और पानी के अलग, तथापि उन्हें एक प्रकार से कहने में आता है। ऐसा आत्मा में नहीं है। व्यवहार से एकपना नहीं है। भगवान आत्मा वस्तु है। उसके आनन्द और ज्ञान (आदि) गुणों के प्रदेश वे एकमेक हैं। वही प्रदेश और वही द्रव्य। वही गुण के प्रदेश और वही द्रव्य का प्रदेश। ऐसा उसमें अनन्यपना अर्थात् एकपना है। आहाहा!

धर्म अर्थात् वीतरागी पर्याय। धर्म अर्थात् वीतरागी पर्याय। वह जिसे प्रगट करनी है, उसे वीतरागभाव ऐसा गुण और उसका धारक द्रव्य, दोनों के प्रदेश भिन्न नहीं हैं। द्रव्य भी वीतरागभाववाला और वीतरागभाव द्रव्यवाला। प्रदेश एक ही है। जिसे धर्म की पर्याय—वीतरागी पर्याय प्रगट करनी है; वीतराग पर्याय कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय कहो। वह पर्याय प्रगट करनी हो, उसे वीतरागीभाव और वीतरागीद्रव्य दोनों एक है। आहाहा!

वीतरागभाववाला द्रव्य नहीं हो तो वीतरागीभाव की पर्याय प्रगट कहाँ से होगी? कहीं बाहर से आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? और वह वीतरागभाव और द्रव्य

दोनों भिन्न हों, तब तो वीतरागभाव की नजर करने से वीतरागभाव में नजर करने से द्रव्य में नजर जाती है। यह तो अभेददृष्टि है। दोनों भिन्न नहीं। समझ में आया? गजब बातें! ऐसा धर्म! वह तो सरल समझा दिया उन्होंने लो! हैं? चल निकले हैं सब लेकर। उसमें तुम्हारे यह क्या कहते हैं, छरी (पाण संघ) छरी। एक बार आहार करना और अपने कुछ प्राप्त था नहीं? छरी अर्थात् क्या तुमको तो आता होगा कभी गये नहीं छरी में? एक बार आहार, एक शैय्या, री... ऐसा कुछ शब्द है। हैं? पादविहारी। एक ही टाईम खाना।

मुमुक्षु : सचेत परिहारी, एकल आहारी, पुरुषार्थ पद करीअे रे।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो! रह गये। इस पवन को खबर नहीं होगी। स्वरूपचन्दभाई! यह मुम्बई में रहता हो....

मुमुक्षु : मुम्बईवाले इसके....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। छपणुं क्या है? एक बार आहार, शैय्या में सोना, एक प्रतिक्रमण करना। एक समझे न, पादविहारी, ऐसे विहारे छरी, री सब छरी है। हाँ, ऐसा। सचेत परिहारी। हैं? उदय आयेगा तब सवेरे और शाम प्रतिक्रमण करके यह री आया री। ब्रह्मचारी। यह बात सच्ची। यह और री आया। सब विकल्प हैं, यहाँ तो कहते हैं। अरे भगवान! क्या हो?

यह विकल्प तो एकदम आत्मा के गुण और द्रव्य से भिन्न है। भिन्न में से अपना पर से भिन्नपना निकले। गुण और द्रव्य का भिन्नपना नहीं, इसलिए उसमें से दृष्टि करने से धर्म की दशा, वीतरागदशा प्रगट होती है। आहाहा! कठिन काम, भाई! कहो, कीर्तिभाई! इसे विचार करना पड़ता है, गाँव में ऐसा हो तो ऐसा हो, ऐसा हो तो ऐसा। आहाहा!

कहते हैं कि जैसे दो पर्वत भिन्न हैं, उनके गुण भी भिन्न और उनके प्रदेश भी भिन्न। उसी प्रकार आत्मा वस्तु, और उसके आनन्द का गुण जो ज्ञान आनन्द सुखरूप गुण है, उस सुख के प्रदेश अर्थात् क्षेत्र और द्रव्य के प्रदेश भिन्न है, ऐसा नहीं है। नाम भले दो पड़े। उन पर्वतों के नाम दो पड़े, तथापि प्रदेश भिन्न हैं। इसके नाम दो पड़े, तथापि प्रदेश भेद नहीं। आहाहा! जिस क्षेत्र में आनन्द है, उसी क्षेत्र में आत्मा है। आहाहा! उसकी पुण्य और पाप की विकल्प दशा है, वहाँ तो दुःख है। वहाँ गुण नहीं, वहाँ द्रव्य

नहीं। वास्तव में वह द्रव्य की पर्याय भी नहीं। विकृत अवस्था वह वास्तव में सच्ची पर्याय नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

आता है न उसमें परमात्म पुराण में। अभव्य को ज्ञान की परिणति नहीं है। ज्ञान की परिणति अर्थात् पर्याय नहीं है। ज्ञान का क्षयोपशम है न? वह नहीं। ज्ञान की परिणति और पर्याय उसे कहते हैं कि गुण को स्पर्श कर जो दशा प्रगट हो। अर्थात् वस्तु जो द्रव्य है, उसे स्पर्शकर जो ज्ञान प्रगट हो, उसे ज्ञान की परिणति कहा जाता है। गजब बातें! अब ऐसा कहाँ समझने की निवृत्ति है। मेट्रिक पढ़ना हो और एल.एल.बी. पढ़ना और यह एम.ए. का, डॉक्टर का पढ़ना हो तो उसमें कितने वर्ष व्यतीत करते हैं। तुमने कितने वर्ष उसमें व्यतीत किये थे? वकालत पढ़ने के लिये। कहो, समझ में आया ? ...कितने वर्ष हुए। यहाँ है या नहीं? आहाहा!

कहते हैं, जैसे दूध और पानी के प्रदेश भिन्न हैं, तथापि बाहर में एकपना दिखता है। उसी प्रकार आत्मा और गुण के प्रदेश भिन्न हैं और एक है, ऐसा नहीं। आहाहा! अब यह तो सीधी बात समझ में आये ऐसी है। यहाँ तो कहते हैं कि दोनों का क्षेत्र एक है न, दोनों का भाव एक है, दोनों का काल एक है, दोनों का द्रव्य एक है। यह तो पहले आ गया है। अर्थात् उसका पूर्ण अस्तित्व द्रव्य में है और गुण में भी इतना है। गुण और द्रव्य का कहीं भिन्नपना नहीं है।

इसलिए द्रव्य पर दृष्टि देने से उसके पूर्णपने की शक्ति का स्वीकार होने से उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन और धर्म की वीतरागीदशा प्रगट होती है। वह पर्याय जन्म-मरण का नाश करनेवाली है। बाकी यह विकल्प की क्रियाकाण्ड वह स्वयं ही जन्म-मरण का कारण है। वे जन्म-मरण का नाश कैसे करे? समझ में आया? स्वयं क्या चीज़ है, इसकी भी खबर नहीं। इसलिए श्रीमद् में ऐसा आया—‘जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त।’ स्वरूप क्या है, उसका अभेदपना क्या है, यह इसने जाना नहीं। जहाँ नहीं, वहाँ झपट्टा मारा है। हें? जहाँ है, वहाँ नजर नहीं की, इसकी नजर की सूझ पड़ती नहीं। इसे सूझ पड़ती नहीं।

भगवान आत्मा वस्तु है और उसके गुण भी उसके प्रदेश के क्षेत्र से भिन्न नहीं हैं। नाम तो दो पड़े। दूध और पानी दो नाम पड़े, तथापि दोनों के प्रदेश भिन्न। वैसे आत्मा

और गुण के नाम दो भिन्न पड़े, तथापि दोनों के प्रदेश भिन्न नहीं। समझ में आया ? अन्तर्मुख देख तो वहाँ द्रव्य और गुण दोनों अभेदरूप से पड़े हैं। देखने की है पर्याय। देखनेवाली है अवस्था। देखनेवाली वह अवस्था, परन्तु अवस्था देखती किसे है ? द्रव्य और गुण की एकता को अभेदता को देखती है, तो उस पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्रगट होता है। बाकी लाख क्रियाकाण्ड करके मर जाये, सूख जाये तो भी सम्यक् पर्याय नहीं होती। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

उसी प्रकार द्रव्य और गुणों को विभक्त प्रदेश न होने से (विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) उस पर्वत की भाँति। अन्यपना तथा (विभक्तप्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना नहीं है। जैसे दूध और पानी के विभक्त प्रदेश होने पर भी अनन्य है। एकरूप है। ऐसा इसमें नहीं। समझ में आये ऐसा है, हों ! इसमें कोई चार कक्षा पढ़ा हो तो भी समझ में आये ऐसा है। यहाँ तुम्हारे भाई ऐसा कहते हैं। हैं ? इसमें कोई बहुत अधिक पढ़ा हो तो ही उसे संस्कृत तो समझ में आये, ऐसा कुछ नहीं। उसके अन्तर में इस बात को घर होना चाहिए। अरे मेरा घर। मैंपना जिसमें करूँ, वह तो द्रव्य-वस्तु है। और जिसमें मैंपना करूँ, ऐसे जो मेरे गुण वे मेरे द्रव्य से कहीं भिन्न नहीं है।

ऐसी अभेद गुण-गुणी की दृष्टि में दृष्टि होना, उस पर्याय को सम्यग्दर्शन और धर्म कहते हैं। परन्तु वह गुण और गुणी की अभेदता पर दृष्टि न देकर निमित्त, पुण्य-पाप के विकल्प पर दृष्टि देने से, अरे ! एक समय की पर्याय पर दृष्टि देने से कहीं पर्याय में शक्ति दूसरी नयी पर्याय प्रगट हो, ऐसी नहीं है। समझ में आया ? क्योंकि पर्याय तो पलटती है और गुण तथा द्रव्य तो नहीं पलटते, एकरूप कायम रहनेवाले हैं। वह शाश्वत् वस्तु जो है, उसमें नजर करे तो स्थिर हो। पलटती अवस्था में नजर करे तो पलटती अवस्था में नजर भी स्थिर नहीं होती और पलटती अवस्था रहती नहीं। समझ में आया ? अरे ! अब ऐसी व्याख्या कैसी अब यह ? यह प्रथा कैसी होगी ? नये सुनने आवे उन्हें तो ऐसा लगे, यह कौन जाने क्या कहते हैं। यह वह कोई ग्रीकलेटिन (अटपटा) बापू ! ग्रीकलेटिन नहीं भाई ! तुम्हारे घर की बात है। कहो, समझ में आया इसमें ? लो ! ४५ हुई। अभी एक गुण और द्रव्य को सिद्ध करते हैं।

गाथा - ४६

ववदेसा संठाणा संख्या विसया य होंति ते बहुगा।
ते तेसिमणणत्ते अण्णत्ते चावि विज्जंते॥४६॥

व्यपदेशाः संस्थानानि संख्या विषयाश्च भवन्ति ते बहुकाः।
ते तेषामनन्यत्वे अन्यत्वे चापि विद्यन्ते॥४६॥

व्यपदेशादीनामेकान्तेन द्रव्यगुणान्यत्वनिबन्धनत्वमत्र प्रत्याख्यातम् ।

यथा देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्वे षष्ठीव्यपदेशः, तथा वृक्षस्य शाखा द्रव्यस्य गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथा देवदत्तः फलमङ्कुशेन धनदत्ताय वृक्षाद्वाटिकायामवचिनोतीत्यन्यत्वे कारकव्यपदेशः, तथा मृत्तिका घटभावं स्वयं स्वेन स्वस्मै स्वस्मात् स्वस्मिन् करोतीत्यात्मात्मान-मात्मनात्मने आत्मन आत्मनि जानातीत्यनन्यत्वेऽपि । यथा प्रांशोर्देवदत्तस्य प्रांशुर्गौरित्यन्यत्वे संस्थानं, तथा प्रांशोर्वृक्षस्य प्रांशुः शाखाभरो मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथैकस्य देवदत्तस्य दश गाव इत्यन्यत्वे संख्या, तथैकस्य वृक्षस्य दश शाखाः एकस्य द्रव्यस्यानन्ता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथा गोष्ठे गाव इत्यनन्यत्वे विषयः, तथा वृक्षे शाखाः द्रव्ये गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । ततो न व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानां वस्तुत्वेन भेदं साधयन्तीति ॥४६॥

संस्थान संख्या विषय बहुविध द्रव्य के व्यपदेश जो ।

वे अन्यता की भाँति ही, अनन्यपन में भी घटे ॥४६॥

अन्वयार्थ :- [व्यपदेशाः] व्यपदेश, [संस्थानानि] संस्थान, [संख्याः] संख्याएँ [च] और [विषयाः] विषय [ते बहुकाः भवन्ति] अनेक होते हैं। [ते] वे (व्यपदेश आदि), [तेषाम्] द्रव्य-गुणों के [अन्यत्वे] अन्यपने में [अनन्यत्वे च अपि] तथा अनन्यपने में भी [विद्यंते] हो सकते हैं।

टीका:-यहाँ *व्यपदेश आदि एकान्त से द्रव्य-गुणों के अन्यपने का कारण होने का खण्डन किया है।

* व्यपदेश=कथन; अभिधान। (इस गाथा में ऐसा समझाया है कि-जहाँ भेद हो, वहीं व्यपदेश आदि घटित हों, ऐसा कुछ नहीं है; जहाँ अभेद हो, वहाँ भी वे घटित होते हैं। इसलिए द्रव्य-गुणों में जो व्यपदेश आदि होते हैं, वे कहीं एकान्त से द्रव्य-गुणों के भेद को सिद्ध नहीं करते।)

जिस प्रकार 'देवदत्त की गाय' इस प्रकार अन्यपने में षष्ठीव्यपदेश (-छठवीं विभक्ति का कथन) होता है, उसी प्रकार 'वृक्ष की शाखा', 'द्रव्य के गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (षष्ठीव्यपदेश) होता है। जिस प्रकार 'देवदत्त फल को अंकुश द्वारा धनदत्त के लिये वृक्ष पर से बगीचे में तोड़ता है' ऐसे अन्यपने में कारकव्यपदेश होता है, उसी प्रकार 'मिट्टी स्वयं घटभाव को (-घड़ारूप परिणाम को) अपने द्वारा अपने लिये अपने में से अपने में करती है', 'आत्मा आत्मा को आत्मा द्वारा आत्मा के लिये आत्मा में से आत्मा में जानता है' ऐसे अनन्यपने में भी (कारकव्यपदेश) होता है। जिस प्रकार 'ऊँचे देवदत्त की ऊँची गाय' ऐसा अन्यपने में संस्थान होता है, उसी प्रकार 'विशाल वृक्ष का विशाल शाखासमुदाय', 'मूर्त द्रव्य के मूर्त गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (संस्थान) होता है। जिस प्रकार 'एक देवदत्त की दस गायें', ऐसे अन्यपने में संख्या होती है, उसी प्रकार 'एक वृक्ष की दस शाखायें', 'एक द्रव्य के अनन्त गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (संख्या) होती है। जिस प्रकार 'बाड़े में गायें' ऐसे अन्यपने में विषय (-आधार) होता है, उसी प्रकार 'वृक्ष में शाखायें', 'द्रव्य में गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (विषय) होता है। इसलिए (ऐसा समझना चाहिए कि) व्यपदेश आदि, द्रव्य-गुणों में वस्तुरूप से भेद सिद्ध नहीं करते॥४६॥

गाथा - ४६ पर प्रवचन

टीका :— यहाँ व्यपदेश आदि एकान्त से द्रव्य-गुणों के अन्यपने का कारण... देखो! आया, वह नाम कहा न नाम? ऐसा कि आत्मा वह नाम और आनन्द आदि नाम। दोनों नाम भिन्न पड़े, नाम भिन्न पड़ने पर भी वस्तु भिन्न नहीं है। यह अब सिद्ध करते हैं। ऐसा कहा न वे दोनों पर्वत भिन्न, वैसे इसका भिन्नपना नहीं गुण और द्रव्य का। तथा दूध और पानी एक है, ऐसा जो कथन में दिखता है परन्तु प्रदेश भिन्न है। ऐसा नहीं है। द्रव्य और गुण दोनों प्रदेश से एक है, नाम भले भिन्न नाम से-संज्ञा से हो, परन्तु अभिन्नपना है। भेद यहाँ लिया पहला व्यपदेश लिया। नाम-नाम। आनन्द अथवा ज्ञान, यह नाम गुण का और आत्मा का नाम द्रव्य। तो यह द्रव्य और गुण नाम भिन्न पड़े या नहीं? तो नाम भिन्न है तो वस्तु भिन्न है या नहीं? कहते हैं, नहीं। अभिन्न वस्तु में भी नाम से भिन्न रूप से कहा जा सकता है। समझ में आया? यह कहते हैं।

ववदेसा संठाणा संख्या विसया य होंति ते बहुगा।
 ते तेसिमणणत्ते अणत्ते चावि विज्जंते॥४६॥
 संस्थान संख्या विषय बहुविध द्रव्य के व्यपदेश जो।
 वे अन्यता की भाँति ही, अनन्यपन में भी घटे ॥४६॥

इसकी टीका—यहाँ व्यपदेश आदि एकान्त से द्रव्य-गुणों के अन्यपने का कारण होने का खण्डन किया है। नाम भिन्न होने पर भी अन्यपना है, ऐसा नहीं है। एक का नाम लक्ष्मीचन्द्र और एक का नाम पानाचन्द्र, यह नाम भिन्न और वस्तु भिन्न। उसी प्रकार आत्मा का नाम आत्मा और आनन्द और ज्ञान गुण का नाम ज्ञान। तो यह नाम भिन्न, इसलिए वस्तु भिन्न है, ऐसा नहीं है। आहाहा! कितना सिद्ध करते हैं। हें? इसमें समझ में आता है या नहीं? रसिकभाई! व्यापारियों को ऐसे न्याय की कला के लिये अभ्यास नहीं होता और वकीलों को होगा, ऐसा होगा? यह न्याय की कला तो सबका अन्दर का स्वभाव है। उसमें कहाँ वकील हो या व्यापारी, उसका यहाँ क्या काम है?

कहते हैं, व्यपदेश इत्यादि देखो! नीचे किया है। व्यपदेश अर्थात् कथन, अभिधान। नीचे नोट है। इस गाथा में ऐसा समझाया है कि जहाँ भेद हो वहाँ ही नाम इत्यादि घटित हों, ऐसा नहीं है। और क्या कहा? कि जहाँ भिन्नता हो, जहाँ ही नाम का भिन्नपना हो, ऐसा नहीं है। भेद हो, वहाँ ही व्यपदेश इत्यादि घटित हों ऐसा कुछ नहीं है। अभेद हो वहाँ भी वैसा क्या घटित होता है नाम। ज्ञान और आत्मा देखो! व्यापदेश -कथन भिन्न पड़ा। ऐसे वस्तु अभेद है। नाम भिन्न पड़े, इसलिए वस्तु भेद ही हो, ऐसा एकान्त से नहीं है। समझ में आया?

जहाँ अभेद हो वहाँ भी वे घटित होते हैं, इसलिए द्रव्य-गुणों में जो व्यपदेश इत्यादि होता है, वह कहीं एकान्त से द्रव्य-गुणों के भेद को सिद्ध नहीं करते। नाम भले भिन्न हो, भगवान आत्मा उसे द्रव्य कहते हैं तथा आनन्द और ज्ञान को गुण कहते हैं। नाम भिन्न पड़े। नाम भिन्न से कहीं वस्तु भिन्न हो गयी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! आचार्यों ने भी जंगल में रहकर (गजब काम किया है)। कहो सेठ! यह पंचास्तिकाय

रखा है यहाँ अलग। पढ़ा नहीं होगा। पढ़े किसका? इनकार ही किया, देखो! इनकार ही किया। टीका का पहला बोला।

व्यपदेश इत्यादि अर्थात् कथन इत्यादि। भिन्न कथन है कि गुण और आत्मा। ज्ञान और आत्मा, ऐसा कथन भिन्न है। इसलिए एकान्त से द्रव्य-गुण का अन्यपने का कारण है, नाम अलग पड़े, इसलिए द्रव्य और गुण अलग हैं, उसका यहाँ खण्डन किया है। कहो, भीखाभाई! कहो, समझ में आया या नहीं? अवसर (समय) आवे तक कहे न! आहाहा!

जिस प्रकार 'देवदत्त की गाय'... देखो, अब! दो भिन्न है। नाम से भी भिन्न और वस्तु से भी भिन्न। 'देवदत्त की गाय' इस प्रकार अन्यपने में षष्ठीव्यपदेश (छठवीं विभक्ति का कथन) होता है,... इसका यह, ऐसा। देवदत्त की गाय, तथापि वस्तु भिन्न है, दोनों भिन्न है। देवदत्त की गाय भी भिन्न है और देवदत्त भी भिन्न है। वह तो छठवीं विभक्ति का कथन है। इस प्रकार वृक्ष की छाया। अब देखो। यह वृक्ष की शाखा। शाखा है न डाली। यह वृक्ष की शाखा कहीं अलग नहीं होती। देवदत्त की गाय, वह तो गाय और देवदत्त छठी विभक्ति से देवदत्त की कही। तथापि गाय और देवदत्त दोनों भिन्न हैं।

अब आया वृक्ष की शाखा। देखो! यह भी आया। जैसे देवदत्त की गाय, वैसे वृक्ष की डाली। परन्तु वृक्ष की डाली कहीं अलग नहीं है। देवदत्त की गाय—ऐसा कहा, तथापि गाय और देवदत्त भिन्न है। वृक्ष की शाखा। ऐसा कहने पर भी वृक्ष और शाखा एक है। आहाहा! उसी प्रकार 'द्रव्य के गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (षष्ठीव्यपदेश) होता है। एकपने में ऐसा। अनन्य अर्थात् एकपने में भी छठवीं विभक्ति अर्थात् इसका यह। इसका यह। इस द्रव्य के गुण। ऐसा छठवीं विभक्ति अभेद में भी कही जा सकती है। देवदत्त की गाय भिन्न हो, वहाँ ही उसकी गाय, ऐसी छठवीं विभक्ति लागू पड़े और अभेद में लागू न पड़े, ऐसा नहीं है। अरे! गजब बात, भाई!

जिस प्रकार 'देवदत्त फल को अंकुश द्वारा धनदत्त के लिये वृक्ष पर से बगीचे में तोड़ता है'... देखो! क्या कहते हैं। अब कारक लगाते हैं। हाँ, कारक लगाते हैं।

देवदत्त एक भिन्न चीज़; फल को वह भिन्न चीज़; अंकुर वह तीसरी चीज़; धनदत्त के लिये वह चौथी चीज़; वृक्ष पर से यह पाँचवीं चीज़; वाड़ी में तोड़ता है यह छठवीं चीज़। छहों भिन्न हो गयी। क्या कहा ?

देवदत्त एक वस्तु। फल को, वह फल दूसरी चीज़ हो गयी। अंकुश द्वारा, यह तीसरी हो गयी। अंकुश द्वारा तोड़ता है ऐसा। धनदत्त के लिये, देखो! देवदत्त कर्ता, यह फल अंकुश द्वारा करण वह फल, वह कर्म, धनदत्त के लिये यह सम्प्रदान, वृक्ष पर से अपादान, वाड़ी में आधार। सूक्ष्म बात है। देवदत्त कर्ता, फल उसका कर्म, अंकुश उसका करण, धनदत्त के लिये यह सम्प्रदान, वृक्ष से अर्थात् अपादान उससे और वाड़ी में यह आधार। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण, यह छह बोल लिये। व्याकरण में आते हैं। यह विद्यालय में आते हैं। एक बात।

उसी प्रकार 'मिट्टी स्वयं घटभाव को (-घटरूप परिणाम को) अपने द्वारा अपने लिये अपने में से अपने में करती है।' देखो! वे चीज़ छहों भिन्न। इन छहों के प्रदेश भिन्न। अब एक ही चीज़ में अभेद बात करते हैं। इस प्रकार मिट्टी, मिट्टी स्वयं घटरूप परिणाम को, यह कर्म, मिट्टी कर्ता। घटरूपी कर्म, वह कार्य; अपने द्वारा-करण; अपने लिये-सम्प्रदान; अपने में से-अपादान; अपने में ही अधिकरण करता है। यह अभेद कथन है। मिट्टी अपने घट के परिणाम को, है न! अपने को, अपने में से, अपने में करती है।

'आत्मा आत्मा को आत्मा द्वारा आत्मा के लिये आत्मा में से आत्मा में जानता है' ऐसे अनन्यपने में भी (कारकव्यपदेश) होता है। देखा, भिन्न-भिन्न है, तथापि उसमें एकपना है, तथापि उसके कारकों के भेद नामभेद हो सकते हैं। मिट्टी नाम अलग, है न! घटभाव को, देखो! यह घटभाव अलग नाम हुआ, अपने द्वारा यह अलग नाम हुआ, अपने लिये, अपने में से; इसी प्रकार आत्मा कर्ता, आत्मा को अर्थात् कर्म, आत्मा द्वारा अर्थात् करण, आत्मा के लिये-अपने को दे, वह स्वयं सम्प्रदान; आत्मा से, यह अपादान आत्मा में जानता है। यह निश्चय बात हुई। षट्कारक होने पर भी वह अभेद में भी लागू पड़ते हैं। अरे! बहुत सूक्ष्म आया। वस्तु तो सब लेना है न! आहाहा!

यहाँ धर्म करने में। आत्मा आत्मा का धर्म जो वीतरागी पर्याय, वह आत्मा द्वारा

अर्थात् अपने द्वारा, देखो! यह करण। इस क्रिया द्वारा साधन नहीं, ऐसा कहते हैं। पुण्य की, दया-दान, व्रत की क्रिया के द्वारा, यह नहीं। आत्मा आत्मा द्वारा, आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, उस आत्मा को अर्थात् उसका कर्म हुआ आनन्द का कार्य, आत्मा द्वारा अपने द्वारा हुआ, ज्ञान के साधन द्वारा, आनन्द के साधन द्वारा कार्य हुआ। पुण्य की क्रिया के साधन द्वारा हुआ नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! कहाँ लगाये षट्कारक! आत्मा के लिये, सम्प्रदान, स्वयं भगवान् आत्मा करनेवाला होकर आत्मा को अर्थात् वीतरागी पर्याय को, आत्मा द्वारा अर्थात् अन्तर आनन्द और ज्ञान द्वारा अपने में करके रखता है। यह सम्प्रदान—स्वयं अपने को दान दिया। समझ में आया? और अपने से किया है यह काम। पुण्य के विकल्प से या निमित्त से नहीं हुआ।

यह आनन्द से हुआ, आनन्द के आधार से हुआ यह कार्य, वह ऐसे षट्कारक एक ही वस्तु में अभेदपना होने पर भी षट्कारक के नाम भिन्न पड़ते हैं। ऐसा होने पर भी वस्तु एक है। सूक्ष्म, भाई! यह तो वीतराग का विज्ञान ऐसा है। पूरी दुनिया द्वारा मिट्टी द्वारा घड़ा होता है, कुम्हार द्वारा नहीं। मिट्टी मिट्टी के लिये ही घड़े का कार्य करती है, वह मिट्टी द्वारा करती है। कुम्हार द्वारा नहीं। यह तो परचीज हो गयी। मिट्टी घटभाव को अर्थात् घड़े की पर्याय को अपने द्वारा अर्थात् मिट्टी द्वारा, अपने लिये अर्थात् मिट्टी में उस घड़े की अवस्था रहती है। घड़े की अवस्था कहीं बाहर नहीं जाती। और अपने में से घड़े की पर्याय मिट्टी में से हुई है। कोई कुम्हार से और चक्र से नहीं हुई। अरे... अरे! गजब बात!

यह षट्कारक तो आते हैं नहीं? स्वरूपचन्द्रभाई! उस व्याकरण में आते हैं। पहले पाँचवीं कक्षा में आता था। अभी आते हैं या नहीं कहीं छह नाम?

मुमुक्षु : आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं? किसमें? छठवीं। ठीक। छठी पुस्तक (कक्षा) में आता होगा।

क्या कहना चाहते हैं, समझ में आया इसमें? देवदत्त की गाय, यह नाम भिन्न पड़ा। तथापि व्यपदेश में दो आये और वस्तु भी भिन्न है। इसी प्रकार आत्मा का गुण ऐसे

नाम भिन्न पड़े, परन्तु वस्तु भिन्न नहीं है। देवदत्त की गाय जैसे भिन्न है, वैसे आत्मा के गुण भिन्न नहीं। अरे! गजब बात, भाई!

भगवान आत्मा... यह मिट्टी घड़े की पर्याय को मिट्टी द्वारा, मिट्टी में रखने में, मिट्टी से, मिट्टी के आधार से घड़ा हुआ है। कुम्हार के आधार से नहीं। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप और ज्ञानस्वरूप। आत्मा कर्ता, आनन्द की पर्याय का कार्य कर्ता, आनन्द द्वारा कार्य कर्ता, आनन्द से अपने में रखता, अपने में से आनन्द निकालता, अपने आधार से आनन्द हुआ—धर्म (हुआ), ऐसी अभेद दशा में भी छह कारक, छह नाम भिन्न कहे जाते हैं। स्वरूपचन्दभाई! हैं? विशेष कहा जायेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४८, गाथा-४६, पौष कृष्ण ३, रविवार, दिनांक -२५-०१-१९७०

पंचास्तिकाय, ४६ गाथा और षट्द्रव्य। जीव का अस्तित्व में गुण और गुणी के नामभेद होने पर भी वह सब अभेद है। ऐसा चलता है। समझ में आया? व्यपदेश शब्द पड़ा है न पहला। व्यपदेश अर्थात् कथन। कथन करने में अभेद चीज में भी भेद से कथन हो और भिन्न चीज में भी भिन्न चीज के कथन हों। भेदकथन हो, इसलिए उसमें-वस्तु में भेद पड़ जाते हैं, ऐसा नहीं। कथन की शैली है, ऐसा कहते हैं। देखो! फिर से लेते हैं।

जिस प्रकार 'देवदत्त की गाय'... देवदत्त की गाय। इस प्रकार अन्यपने में षष्ठीव्यपदेश (छठवीं विभक्ति का कथन) होता है,... अर्थात् क्या कहा? देवदत्त की गाय। गाय भिन्न है और देवदत्त भिन्न, तथापि ऐसा कहने में आवे कि इसकी यह गाय। वास्तव में उसकी गाय है नहीं। परन्तु कथनशैली भेद से ऐसा कहा जाता है। दूसरे प्रकार से—'वृक्ष की शाखा' 'वृक्ष की डाली' नाम भिन्न पड़े परन्तु वृक्ष और डाली दोनों एक हैं, भिन्न नहीं। वृक्ष की डाली, वृक्ष की शाखा। ऐसे 'द्रव्य के गुण'। बात तो यह सिद्ध करते हैं कि—

भगवान आत्मा द्रव्य है, वस्तु है और उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण हैं। यह तो प्रत्यक्ष वस्तु है। अब यह कैसे कौन जाने, क्या करते हैं लोग? समझ में आया? अपना स्वरूप द्रव्य है। द्रव्य अर्थात् कि वस्तु तो वस्तु है, वह कोई गुण बिना वस्तु होगी? तो कहते हैं कि उसके गुण ज्ञान, दर्शन, आनन्द वे द्रव्य के गुण, ऐसा कहा, तथापि कहीं द्रव्य और गुण कोई भिन्न चीज नहीं है। जैसे देवदत्त की गाय कहा तो गाय और देवदत्त भिन्न है। उसी प्रकार 'द्रव्य के गुण'; इसलिए द्रव्य और गुण भिन्न है—ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा यह प्रत्येक वस्तु, भगवान तीर्थकरदेव ने केवलज्ञानी प्रभु ने छह द्रव्य देखे हैं। इस जगत में छह वस्तु जाति से, संख्या से अनन्त। उसमें अनन्त तो आत्मा प्रभु ने—केवली ने देखे, अनन्त परमाणु देखे। आत्मा की संख्या से अनन्तगुणे। और

इससे असंख्य दूसरे कालाणु, दूसरी भिन्न चीज़ है। एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। ऐसे भगवान परमात्मा ने छह द्रव्य देखे। अब कहते हैं कि उस द्रव्य में गुण, ऐसा कहने में आता है, वह देवदत्त की गाय है, इस प्रकार है या वृक्ष की शाखा है, इस प्रकार है ? शोभालालभाई !

‘वृक्ष की शाखा’ वृक्ष की डाली। वृक्ष की डाली तो एक ही वस्तु हुई। इसी प्रकार ‘द्रव्य के गुण’ आहाहा ! देखो ! भगवान आत्मा यहाँ तो प्रत्येक द्रव्य का लेना, तथापि मुख्य तो आत्मा की बात है। उसका द्रव्य है और उपयोग की व्याख्या है न यहाँ। आत्मा है वस्तु, उसका ज्ञान-दर्शन गुण है। तो ‘द्रव्य के गुण’—ऐसा भेद से कथन आया, तथापि है वस्तु अभेद। उसे गुण देखना हो तो द्रव्य में मिलेंगे। कहीं राग में और निमित्त में गुण नहीं मिलेंगे। समझ में आया ? ऐसे अनन्यपने में भी एकपने में भी षष्ठी अर्थात् भेदवाला कथन किया जाता है।

अब इसका बाहर का दृष्टान्त देते हैं। जिस प्रकार देवदत्त एक मनुष्य। वह कर्ता हुआ कर्ता—करनेवाला। फल को, वह फल को तोड़ता है, वह फल उसका कार्य हुआ। परन्तु फल भिन्न चीज़ है, देवदत्त अलग चीज़ है। दोनों एक नहीं है। देवदत्त फल को, यह कर्म हुआ। कर्म अर्थात् कार्य। तो कार्य भिन्न, कर्ता भिन्न। अंकुश द्वारा—साधन। अंकुश भिन्न। अंकुश है न लोहे का, फल तोड़े तब। अंकुश भिन्न चीज़ है, फल भिन्न चीज़ है और देवदत्त भिन्न। धनदत्त के लिये कोई अपना पुत्र हो या सगा हो, उसके लिये। वह भिन्न चीज़ हुई। वृक्ष से, थी-थकी आया। वृक्ष से—वृक्ष भी भिन्न चीज़ हुई। बगीचे में तोड़ता है। बगीचे में फल को अंकुश द्वारा देवदत्त धनदत्त के लिये तोड़ता है। तो छहों चीज़ें भिन्न हो गयी। समझ में आया ?

इसी प्रकार अनन्यपने में भिन्न-भिन्न चीज़ में भी कर्ता, कार्य, साधन ऐसा कहने में आता है। अब इस प्रकार जैसे भिन्न में कहने में आता है, वैसे अभिन्न में भी कहने में आता है, ऐसा कहते हैं। देखो न ! आचार्यों ने द्रव्य और गुण को सिद्ध करने के लिये, भगवान ! तू गुणवाला है न ! जैसे गायवाला देवदत्त है, ऐसे यह चीज़ नहीं है। देवदत्त और गाय भिन्न चीज़ है। परन्तु गुणवाला तू है, वह तो दोनों एक है। वह तेरे गुण हैं, वे

द्रव्य में हैं। वे द्रव्य में हैं—ऐसा कहना, वह भी भिन्न कहा, तथापि भिन्न तो भी वस्तु अभिन्न है। आहाहा!

इस प्रकार अन्यपने में... कर्ता, कार्य, साधन का कथन होता है, उसी प्रकार... अब भिन्न **मिट्टी स्वयं...** मिट्टी, यह तो दृष्टान्त है। स्वयं वह कर्ता, मिट्टी स्वयं कर्ता, मिट्टी करनेवाली। क्या करे? घटभाव को। वह मिट्टी घटभाव को करे। कुम्हार नहीं। अभेद है। मिट्टी घट की पर्यायरूपी कर्म, घट की पर्यायरूपी कर्म। कर्म अर्थात् कार्य, उसे मिट्टी करती है। तो मिट्टी कर्ता और कार्य दोनों भिन्न दिखाई दें कर्ता में। वस्तु भिन्न नहीं है। समझ में आया? देखो! ऐसा कहकर द्रव्य सिद्ध करते हैं। अपने द्रव्य-गुण अपने साथ अभेद है। राग और पुण्य-पाप के भाव, वे आत्मा के साथ अभेद नहीं। यह तो शरीर, वाणी, मन तो जड़-भिन्न हैं। वह तो एकदम भिन्न चीज़ मिट्टी है। समझ में आया?

चैतन्य चमत्कार भगवान आत्मा, ऐसा कहना कि चैतन्य चमत्कार आत्मा, तथापि चैतन्य और आत्मा दोनों कहीं भिन्न चीज़ नहीं है। जैसे देवदत्त की गाय, वह गाय और देवदत्त भिन्न हैं, वैसे यह नहीं। वस्तु तो एक अन्दर में ज्ञान और आनन्दवाला आत्मा। अथवा 'द्रव्य के गुण'। आत्मा के गुण। आत्मा वस्तु है। उसका जानना-देखना आनन्द उसके गुण हैं। ऐसा कहने में आया, तथापि वह वस्तु तो एक है। आहाहा!

कहते हैं कि '**मिट्टी स्वयं घटभाव को...** अर्थात् कर्म को **अपने द्वारा...** मिट्टी द्वारा घट को मिट्टी करती है। कुम्हार द्वारा मिट्टी की पर्याय घट की होती है, ऐसा नहीं। वस्तु की स्थिति निश्चय में ऐसी है नहीं। आहाहा! है न अन्दर में छह कारक? मिट्टी, यह मिट्टी दृष्टान्त दिया है। इस प्रकार प्रत्येक में ले लेना। स्वयं घटभाव को (घटरूप परिणाम को) भाव अर्थात् परिणाम। घट की अवस्था, वह कार्य, कर्म उसे घट करता है।

अपने द्वारा... करता है। मिट्टी द्वारा घट होता है। कुम्हार द्वारा या पर द्वारा, यह निमित्त के कथन हैं। वास्तविकपना ऐसा नहीं है। **अपने लिये...** यह मिट्टी घटरूप हुई और घड़ेरूप मिट्टी में रहती है यह। घड़े का रूप मिट्टी में रहता है। कहीं कुम्हार में मिट्टी का रूप नहीं होता। **अपने लिये, अपने में से...** यह मिट्टी में से घट का कार्य होता है। मिट्टी में से होता है, कुम्हार में से नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया?

अपने में करती है। मिट्टी अपने में अपने आधार से घड़ा करती है। पृथ्वी के आधार से इस मिट्टी का घड़ा नहीं होता। पृथ्वी के आधार से कहना, वह भिन्न बात है। वह तो व्यवहार के कथन हैं। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसे अब आत्मा। अब निश्चय में आत्मा भगवान स्वयं।

आत्मा... वह कर्ता, आत्मा वह करनेवाला, रचनेवाला। **आत्मा को....** अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र गुण की पर्याय को। भाई! समझ में आया? मिट्टी घट की पर्याय को करती है, वैसे ही भगवान आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन-आनन्द की शान्ति / धर्मपर्याय का कर्ता आत्मा है; तथापि आत्मा का काम ऐसे भिन्न नाम-कथन पड़ता है। वस्तु भिन्न नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा कर्ता और उसका धर्म जो वीतरागी पर्याय। क्योंकि आत्मा तो ज्ञान-दर्शन उपयोग है। अब यह सिद्ध करना है। तो जानने-देखने के परिणामरूपी कार्य का कर्ता आत्मा है और जानना-देखना, ऐसा जो भाव, वह मैं हूँ—ऐसी जो अन्तर प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन है और जाननेवाला-देखनेवाला वह मैं हूँ—ऐसा जो उसका ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान है और जानने-देखनेवाला मैं, ऐसा जो अन्दर स्थिर होना, वह चारित्र। समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा अपने गुण की पर्याय को स्वयं करता है। उस पर्याय का कर्ता द्रव्य है और उसकी पर्याय वह उसका कार्य है। उसका कार्य शरीर का कुछ करना, पर का कुछ करना, वह उसका कार्य नहीं है। यह सब करते हैं न कि बहुत काम करते हैं, इतनों का काम करते हैं। कहते हैं न? हैं? स्वरूपचन्दभाई! यह तुम्हारे भाई नहीं करते होंगे। इंजेक्शन देते होंगे और यह करते हैं और यह करते हैं। आँख के ऑपरेशन कितने ही हजारों किये हैं। हैं? कहते हैं, कुछ नहीं किया—ऐसा कहते हैं। ज्ञान और दर्शन के परिणाम किये। माने कि मैं यह करता हूँ, वह तो भ्रम अज्ञान है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

ऐसी चीज़ ही प्रत्यक्ष अस्तित्वरूप से; यहाँ अस्तित्व सिद्ध करना है न? जीवास्तिकाय—जीवद्रव्य और जीवास्तिकाय दोनों की व्याख्या है। जीवद्रव्य अपना है और वह जीवास्तिकाय अर्थात् असंख्यप्रदेशी आत्मा है। उसमें जो अनन्त गुण जानना-

देखना आदि है, उस गुण की अवस्था का करनेवाला आत्मा है। इसी प्रकार यह दया, दान, व्रत, आदि के विकल्प हैं, इसलिए उस धर्म के परिणाम का कर्ता ये हैं—दया, दान, ऐसा नहीं है। क्योंकि दया, दान के परिणाम, वह आत्मा का ज्ञान और दर्शन उपयोग है ही नहीं। समझ में आया ?

आत्मा, देखो! भाई यह है। अभी कहा था न सब आये हैं या नहीं? उस मारवाड़ में गये थे न! मोटर गयी। एक आये थे कि भाई! हमको चमत्कार बताओ। कहा, भाई! चमत्कार तो आत्मा का है। सुनना हो तो। अभी चार, पाँच व्यक्ति आये थे मारवाड़ में से। यह तुम्हारी लकड़ी बताओ, कहे। ऐसा सुना है कि तुम्हारी लकड़ी में चमत्कार है। चमत्कार फिरा दिया है। अभी चन्दुभाई ने प्लास्टिक की की है। पहले लकड़ी वह थी। आती है न वह सूखड़ की। मुम्बई में नहीं यह। चीनी लोग बाँटते हैं। ऐसी लकड़ियाँ हाथ में पसीना हो और उसे न छुएँ, इसलिए (लकड़ी रखते हैं)। परन्तु इसमें चमत्कार है कहे। बहुत पन्द्रह मिनट-बीस मिनट तक आग्रह था। इसके ऊपर घुमायो, उसके ऊपर घुमाओ। मैं यहाँ बैठा और लकड़ी यह थी अन्दर कहे ले आओ-बताओ तो सही। देखो! यह है, लो! इसमें चमत्कार है, ऐसा लोग कहते हैं। कहा, चमत्कार-बमत्कार नहीं। यह तो जड़ है। ऐसा कि जिसके ऊपर घूमती है न, वहाँ करोड़पति हो जाता है। हमारे मारवाड़ी-बारवाड़ी बहुत सुनते हैं। कहा, नाम में प्रसिद्ध हुआ है परन्तु इसमें कुछ है नहीं। स्वरूपचन्दभाई!

हमारे पास चैतन्य चमत्कार भगवान आत्मा, पुण्य और पाप के भावरहित चीज, उसे आत्मा कहते हैं न! ज्ञान-दर्शनवाले को आत्मा कहते हैं न? या पुण्य-पापवाले को आत्मा कहते हैं? समझ में आया? आत्मा पदार्थ है चैतन्य भगवान, उसमें जानना-देखना जो भाव उपयोग, उस उपयोग की पर्याय का आत्मा करे और पर्याय कर्म। वस्तु तो एक है, अभेद है। प्रदेशभेद है नहीं, तथापि कथन में भेद का कथन अभेद में भी भेद का व्यपदेश-कथन कहा जा सकता है। समझ में आया ?

आत्मा, यह पहला शब्द है। यह आत्मा कर्ता है। कर्ता कारक, आत्मा को-आत्मा को अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान धर्म की पर्याय को या यह जानने-देखने की पर्याय को। जानने-देखने की पर्याय को प्रतीति साथ में ही होती है। समझ में आया? भगवान

आत्मा वस्तु है। ऐसी अन्तर्दृष्टि होने पर, पुण्य-पाप और निमित्त की रुचि और दृष्टि छूटने से भगवान आत्मा जानने-देखने स्वभाववाला, गुणवाला अथवा द्रव्य-गुण इस द्रव्य के गुण हैं, इस द्रव्य के गुण, यह भेद कथन होता है। तथापि वह 'वृक्ष की शाखा' की भाँति दोनों अभेद है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर ज्ञान, दर्शन और आनन्द के गुणवाला है, उसे कर्तारूप से होकर, वह धर्म की-वीतरागी मोक्षमार्ग की पर्याय 'केवलीपणंतो धम्मोशरणम्।' मांगलिक में आता है न, मांगलिक। चत्तारि मंगलम्, अरिहंता मंगलम् परन्तु इस मांगलिक का अर्थ समझे नहीं (और) पहाड़ा बोले जाये। समझ में आया ?

यह मांगलिक अर्थात् आत्मा आनन्दमूर्ति है, वह स्वयं मांगलिक है। ऐसे आनन्दरूप के धारक भगवान आत्मा इस आत्मा पर अन्तर्दृष्टि पड़ने से वह आत्मा कर्ता है। किसका ? वर्तमान वीतरागी धर्म की पर्याय का। यह निमित्त और देव-गुरु इसके कर्ता और पर्याय धर्म की हो, ऐसा नहीं है। भारी कठिन काम ! अभी समझना मुश्किल पड़े। कहो, समझ में आया इसमें ? कहते हैं **आत्मा आत्मा को...** आत्मा को न ? या राग को ? या देह की क्रिया को करे आत्मा। यह आत्मा कहाँ है ? जड़ वाणी, मन तो जड़ है। समझ में आया ?

आत्मा आत्मा को.... यह उसका कार्य हुआ। आत्मा आत्मा को अर्थात् जानने-देखने की पर्याय को, श्रद्धा-ज्ञान की पर्याय आत्मा की पर्याय को यहाँ आत्मा को कर्म कहा जाता है। उस कर्म का कर्ता आत्मा है। छोटुभाई ! इस धन्धे का कर्ता आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। उसका कहा न ? जानने-देखने का भाव, वह द्रव्य का भाव; पुण्य-पाप के विकल्प, वह द्रव्य का भाव नहीं। शरीर, वाणी, मन वह द्रव्य की—आत्मा की वस्तु नहीं। परन्तु आत्मा की चीज़ तो अन्दर जानना-देखना ऐसी जो चीज़, उसके कार्य की परिणति को आत्मा करता है। आहाहा ! यह इन्द्रियादि है; इसलिए जानने-देखने का कार्य होता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। लो ! इन्द्रिय साधन हो तो होगा या नहीं ? यह कहीं आँखवाले को डॉक्टर को ऐसा होता है या नहीं सबको। आँख अच्छी हो तो दिखाई दे। यह बात ही सब मिथ्या है। यह देखनेवाला अपने जानने-देखने के परिणाम

द्वारा देखता और जानता है। आहाहा! समझ में आया ?

आत्मा आत्मा को आत्मा द्वारा... भाषा देखो! तीसरा बोल। आत्मा द्वारा.... यह तो जानने-देखने के गुण द्वारा। आत्मा तो वह है। यह जानने-देखने के गुण द्वारा। पुण्य के, दया-दान, व्यवहार के परिणाम द्वारा आत्मा का कार्य होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? बैठना (जँचना) कठिन पड़े। यह महावस्तु ही यह है। लोग कहीं के कहीं भ्रमणा में, निपट भ्रमणा भ्रमणा। आहाहा! लो! यह रजनीश का ऐसा लेखन है अन्दर से। लोगों को नास्तिक बना डाले। पहले नास्तिक होओगे तो आस्तिक होओगे, कहता है। पहले भौतिक में, चार्वाकमुनि कह गये हैं, तत्प्रमाण यदि हुआ होता तो कुछ अच्छा पुरुष पकता तुम्हारे में। परन्तु यह नहीं हुआ-अररर! ऐसे नियम सब।

अरे भगवान! तू तो आनन्दकन्द है न नाथ! उसके स्वभाव के कार्य का कर्ता भगवान अपने द्वारा—आत्मा द्वारा। उस सम्यक् धर्म की शान्ति और वीतरागता की पर्याय आत्मा द्वारा होती है। वीतराग शक्ति द्वारा वह पर्याय होती है। पुण्य-पाप के परिणाम द्वारा, निमित्त द्वारा होती नहीं। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया ? आहाहा!

अपने द्वारा अपने लिये अपने में से अपने में... यह छह कारक हो गये। वह यहाँ आत्मा में उतारते हैं। व्यपदेश शब्द है न कथन का। कहते हैं कि अभेद में भी ऐसा भेद का कथन हो, परन्तु वस्तु तो एक की एक है। उसके प्रदेश भिन्न नहीं हैं। आत्मा पदार्थ है, प्रभु! वह प्रभुत्वशक्तिवाला है। अथवा द्रव्य प्रभु शक्ति है, उसमें ऐसा भेद कथन हो। परन्तु कहीं प्रभुत्व शक्ति और प्रभु आत्मा दोनों के प्रदेश, दोनों का क्षेत्र कहीं पृथक् किस प्रकार होगा? शक्कर और शक्कर की मिठास के अंश भिन्न हैं? जो अंश मिठासरूप हैं, वे अंश द्रव्य-शक्कररूप हैं। समझाया क्या? एक प्रदेश उसके अलग नहीं हैं। अरे, यह बात! ऐसा करके तेरे घर में तू देख, ऐसा कहते हैं। तेरे गुण तेरे द्रव्य के हैं, तेरे गुण आनन्द आदि तेरे द्रव्य के हैं। वे किसी के नहीं कि किसी कारण से प्राप्त हो। आत्मा द्वारा, ऐसा कहकर तो यह कर दिया है।

भगवान शुद्ध चैतन्य प्रभु, वह अपने द्वारा उस वीतरागी धर्म की पर्याय को स्वयं करता है। अपने द्वारा स्वयं करता है। शरीर, वाणी और राग की मन्दता अनुकूल हो,

निमित्त लो अनुकूल अर्थात् ठीक, वह अनुकूल हो तो आत्मा यह काम करे, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐ सेठ! ऐसा है। आहाहा! लोगों को मानो क्लिष्ट जैसा जगता है। अरे! उसके घर की बातें इसने सुनी नहीं न। अनन्त तीर्थकरों ने ऐसा कहा और ऐसा किया है। अनन्त तीर्थकरों ने ऐसा कहा और किया है। भाई! तुझे सुखी होना हो तो पर के कार्य तू कर सकता है, यह मान्यता छोड़ दे। अरे! पुण्य और पाप के भाव, दया-दान यह विकार के परिणाम हैं। यह मेरा कार्य और तू कर्ता, यह तो अज्ञानभाव है। यह वास्तविक आत्मा का कार्य नहीं है। आहाहा! गजब बात, भाई!

उसकी सत्ता को शोध न, प्रभु! तेरी सत्ता के अस्तित्व में तो आनन्द और ज्ञान से भरपूर भगवान है। वह स्वयं अपने स्वभाव द्वारा, स्वभाव द्वारा यह कारण कहा, साधन कहा। देखो! कोई कहे, साधन चाहिए न! साधन हाँ, कहते हैं न! आत्मा में साधन नाम का अनादि का एक गुण है। पहली समझ तो करे सत्य यह है और दूसरे प्रकार से हो नहीं सकता, ऐसी समझ की भी जहाँ दिक्कत, वह स्वभाव सन्मुख होने की श्रद्धा किस प्रकार कर सकेगा? जिसका ज्ञान मिथ्या, वह सत्य सन्मुख किसी प्रकार ढल सकेगा? समझ में आया? आहाहा! मानो बहुत सूक्ष्म बात लगे। अरे भगवान! तू तो महासूक्ष्म है न, देखो न! आहाहा! जिसकी ज्ञान की अवस्था में तीन काल, तीन लोक ज्ञात हो जाये। जिसकी ज्ञान की दशा में अनन्त केवली ज्ञात हो जाये। ऐसा जो उपयोग, वह उपयोग तेरे आत्मा द्वारा हुआ है। यह ज्ञेय ज्ञात होते हैं, उसके द्वारा हुआ नहीं। समझ में आया? गजब बात, भाई!

आत्मा द्वारा, यह तीसरा बोल हुआ। कर्ता, कर्म और करण। करण अर्थात् साधन। आत्मा को धर्म करने में कुछ साधन है? कहते हैं, हाँ, क्या? आत्मा। गजब बात! डॉक्टर। भाई! यह भक्ति-बक्ति करना, पूजा करना, यात्रा करना कुछ साधन होगा कहीं सम्यग्दर्शन के लिये? ऐसा कहते हैं। लो! यह नवनीतभाई इनकार करते हैं। आहाहा! बापू! वह तो निमित्त है। वह साधन नहीं है। आहाहा! अन्दर पूरा चैतन्य पुंज पिण्ड पूरा पड़ा है। उसे—केवली को जो दशा प्रगट होती है, उसके द्वारा। उसका साधन वह है। उसका साधन दूसरा नहीं हो सकता। आहाहा! कहो, समझ में आया?

अब यह बाहर के सुख धूल के। कहते हैं, बाहर के सुख में बराबर प्राप्त करे तो

फिर अन्दर का सुख उस जाति का प्राप्त हो। अरे भगवान! यह तू क्या करता है? यह धूल पैसा-बैसा हो ऐसा कि अमेरिकन अमेरिका और ऐशिया वह क्या कहा? भौतिकवाद में बहुत फले हैं। अब उन्हें रास्ता अन्तर अध्यात्म होने का अब उसमें मिलेगा। सेठ! यह तुम्हारे में बैठाते हैं न, तुम वह तारणस्वामी का कुछ हो वहाँ। बैठावे सामने। वहाँ गप्प मारता हो, न मारता हो, उसे कहाँ खबर है? शोभालालजी! भाई! बात तो ऐसी है। परन्तु अपनी शोभा तो हो! कषाय दो, चार, पाँच, दस एकत्रित हो तो अपनी दुकान तो शोभे। आहाहा! अरे, भगवान! तू महाप्रभु चैतन्य अस्तित्ववाला पदार्थ है न, नाथ! और तुझमें शक्ति प्रभुत्व आदि अनन्त पड़ी है। उस शक्ति द्वारा तेरी धर्म की पर्याय प्रगट होती है। कोई दया-दान, व्रत की क्रिया से, देह की क्रिया से और किसी के आशीर्वाद से— जाओ, तुम्हारा कल्याण होओ। (ऐसे) आशीर्वाद से भी वह पर्याय प्रगट हो, ऐसी नहीं है।

मुमुक्षु : गुरुकृपा से तो होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कथन किया जाता है, होती नहीं। अरे.. अरे...! गजब बात! कहो, समझ में आया इसमें?

ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री भगवान। परमात्मा तीन लोक के नाथ इन्द्रों के समक्ष में सभा में गणधर और सन्तों के नाथ गणधर थे। उनके समक्ष प्रभु ऐसा कहते हैं। भाई! तू अनन्त शक्ति का धनी है न, प्रभु! उस शक्ति द्वारा तेरी दशा प्रगट होती है। पर द्वारा नहीं। आहाहा! निमित्त द्वारा नहीं, व्यवहार द्वारा नहीं। ऐसी तो स्पष्ट बात करते हैं। अब क्या करना? और ऐसा है। उसका यदि विचार करे तो उसकी सत्ता का स्वीकार हो तो जँचे इसे। आहाहा! समझ में आया? शरीर की इन्द्रिय सब शिथिल पड़ गयी हो, लो! सब रजकण-रजकण शिथिल पड़ जाये और रोग प्रस्फुटित हुए हों, अब इसे क्या करना? उसे काम इसके द्वारा लेना है? वे तो सब शिथिल पड़ गये। अब क्या करना? इसका काम तो आत्मा अन्दर दृष्टि में ले तो उस द्वारा इसका काम हो। बाकी दूसरे द्वारा काम हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

ऐसे परमात्मा और सन्तों ने यह बात की है। वे कहते हैं कि, पूर्व के जो ग्रन्थ और शास्त्रों से तो मैं दूर-दूर भागता हूँ। भागे ही न। भगवान होकर ऐसा कैसे जगा

ऐसा ? अरे ! भगवान से भागा ! उनके कहे हुए शास्त्र उनसे तो मैं दूर-दूर भागता हूँ। आहाहा ! क्या करता है जीव तू ! ऐसा उल्टा पड़ा हो परन्तु उल्टा वही मुझे हो। हें ? दूसरा कोई उल्टा मारे उसका ? आहाहा ! ऐसा कि पुराने भगवान हो गये और फिर भगवान ऐसे थे और ऐसा परमात्मपद था न सब, सिद्ध हो गये और ऐसा है नहीं, कुछ कहे। अब तो सब एक-एक शब्द वह तो बहुत... परमानन्दभाई को वह लगा न, इसलिए लोगों में प्रसिद्ध। देखो ! इसका अभिप्राय यह है। ऐसे शून्य मारता है। परन्तु जवान बहुत इकट्ठे हों। आहाहा ! अरेरे ! भावनगर में तो जवान बहुत इकट्ठे हो। बड़े कोई नहीं जाते।

अरे प्रभु ! आनन्द तो तुझमें है न, प्रभु ! यह तो कहे भौतिकवाद का थोड़ा आनन्द पहले आवे तो उसका बराबर तृप्त हो तो उसमें से फिर अध्यात्म जगे। अरे भगवान ! कहाँ धूल में आनन्द है ? तेरे पैसे के ढेर में, हड्डियाँ, माँस, चमड़ी में आनन्द है ? आनन्द तो तेरे निधान में पड़ा है। उस आनन्द द्वारा आनन्द की पर्याय प्रगट हो तो उसे धर्म कहा जाता है। ऐसा है स्वरूपचन्द्रभाई ! पुराने लोगों ने सुना न हो और लगे कि यह वह कैसी बात होगी ? ग्रीक लेटिन (जैसी)। भगवान ! ऐसी बात ही है तेरी, हो ! आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा को अमृतचन्द्राचार्य तो भगवानरूप से ही बुलाते हैं। (बापू !) यह पुण्य-पाप के विकल्प रहित भगवान है न तू। पूर्ण परमेश्वर है, भाई ! तुझे खबर नहीं। तुझे पूर्ण शक्ति और पूर्ण शक्तिवान उसे तू दृष्टि में लेता नहीं। इसलिए उस पर्याय के लक्ष्य पर, राग पर लक्ष्य रखकर और सब काम चलावे। वह तो कर्जदार होकर डूब जायेगा। समझ में आया ? आहाहा !

आत्मा द्वारा... आहाहा ! उसे दूसरा साधन नहीं है। देखो ! छहढाला में नहीं आता ? नियत का हेतु। परन्तु हेतु-कारण है न।

मुमुक्षु : व्यवहार या निश्चय ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भले व्यवहार परन्तु वह कारण है न। यह धूल भी नहीं, सुन न ! नहीं है, उसे कहना, वह व्यवहार का लक्षण है। है, उसको जानना, वह निश्चय का

स्वरूप है। आहाहा! आत्मा द्वारा, ठीक। उस आत्मा के लिये। यह चौथा बोल हुआ— सम्प्रदान।

भगवान आत्मा! इस उपयोग की व्याख्या में यह सब बात ली है। भगवान आत्मा वस्तु है न, और जानन-देखन उपयोग ऐसा उसका गुण है, तो उस गुण द्वारा उसकी पर्याय आत्मा द्वारा उसकी पर्याय प्रगट होती है। शान्ति की जानने-देखने की, वह केवलज्ञान की पर्याय जो प्रगट हो, वह भी आत्मा द्वारा प्रगट होती है। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि **आत्मा के लिये....** यह केवलज्ञान जो आत्मा में प्रगट होता है, वह आत्मा द्वारा और आत्मा में रहने, रखने के लिये प्रगट होता है। वह पर्याय आत्मा में रखने के लिये सम्प्रदान। आत्मा स्वयं अपनी पर्याय को दे और स्वयं ले। दाता भी स्वयं और लेनेवाला भी स्वयं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा षट्कारक यह है, वे षट्कारक गुण उसमें-आत्मा में पड़े हैं। यह षट्कारक जो बताते हैं न, वे भी आत्मा में षट्शक्ति अनादि-अनन्त पड़ी है।

कर्ता नाम का, जैसे ज्ञान गुण है, आनन्द गुण। वैसे कर्ता गुण है, कर्म गुण है। करण गुण है, सम्प्रदान गुण है, अपादान और अधिकरण (गुण है)। यह आत्मा में अनादि-अनन्त शक्ति, गुण-गुण स्वभाव पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? उसके शान्ति और आनन्द की धर्म दशा के लिये किसी के अवलम्बन और निमित्त के सहारे की उसे आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वह उसके लिये करता नहीं। अपने लिये करता है, अपने द्वारा करके अपने में रखता है। बाहर की चीज़ तो देनेवाला अलग, वस्तु अलग, लेनेवाला अलग, सब अलग-अलग।

यह तो आत्मा, द्रव्य के गुण-द्रव्य के गुण, भगवान के गुण। आत्मा की शक्ति, ऐसा जहाँ निर्णय करता है, उसकी दशा में जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के परिणाम हों, वे जीव ने किये, जीव द्वारा किये, जीव के लिये किये। उसमें रखने के लिये किये। उसे लेने के लिये दिये। समझ में आया? अपनी पर्याय ले और अपनी पर्याय दे। उसे विकल्प की आवश्यकता नहीं है। निश्चय से ऐसा आत्मा है। कथन भले भेद पड़ा, कहते हैं। **आत्मा के लिये....** आत्मा के लिये, ऐसा आया न? आत्मा के लिये, ऐसा भेद

पड़ा, परन्तु भेद है ? परन्तु वस्तु में भेद नहीं है।

लो! यह दान! सेठ यह दान है न! तुम सब दान के हो न, वास्तविक दान। लो! ऐई! इस दान में बहुत तुम दोनों महिमा पाते हो। यह बहुत दान देते हैं, पैसा देते हैं (ऐसी) लोग बातें करते हैं। यहाँ कहते हैं कि वह पैसा दे कौन ? वह तो उसकी चीज़ है। एक परमाणु में षट्कारक शक्ति पड़ी है। वह परमाणु स्वयं ही यहाँ से जाकर फेरफार होकर आगे जाता है। यह उसकी पर्याय को स्वयं करके अपने में रखता है। वह किसी को देता-लेता परमाणु किसी के हाथ में जाता नहीं। कोई रजकण में जाता नहीं। किसी के पास जाता नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सेठिया के पास तो रुपये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी सेठिया के पास पैसा कहाँ है ? उसके पास तो आत्मा है। पैसा तो पैसेवाला रखे। पैसेवाला कौन ? जड़। आहाहा! भगवान का मार्ग दुनिया से उल्टा है, उल्टा है। अज्ञान से, ज्ञान तो उल्टा ही मार्ग होगा न! आहाहा!

कहते हैं **आत्मा के लिये....** सम्प्रदान हुआ। सम—सम्यक् प्रकार से, प्र—विशेष दान दिया स्वयं ने। आत्मा के आनन्दगुणवाला आत्मा। ऐसे गुणी पर दृष्टि करने से उसमें जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह स्वयं पात्र और स्वयं देनेवाला दाता। ऐसा स्वयं गुण की पर्याय स्वयं करके अपने में रखी। एक तो अभी पकड़ना कठिन! यह षट्कारक में तो आता है, हों! उस पुस्तक में आता है। एक अपने वह व्याकरण में नहीं ? व्याकरण। कमलाशंकर का व्याकरण है। उसमें षट्कारक आते हैं। एक बार गुरुकुल में से लाये थे। समझ में आया ? इस आत्मा में एक वस्तु गुण और गुणी अथवा द्रव्य के गुण। ऐसा होने पर भी ऐसे भेद से कथन भले हो, परन्तु वस्तु में भेद नहीं है। आहाहा!

छह प्रकार पड़े न ? यह तो आत्मा द्वारा कहते हैं। वास्तव में तो जब निश्चय उसकी पर्याय जो है। वीतरागी धर्म की पर्याय, वह कर्ता, वह वीतरागी पर्याय, वह उसका कर्म, वीतरागी पर्याय द्वारा हुआ, वह उसका करण, वीतरागी पर्याय होकर रखी यह हुआ उसका सम्प्रदान, वीतरागी पर्याय में से, पर्याय में से पर्याय हुई। पर्याय में से अर्थात् पर्याय से पर्याय हुई, ऐसा। वह कहीं पर से है नहीं। यह अपादान और पर्याय के

आधार से पर्याय हुई है। अरे! अरे! द्रव्य-गुण के आधार से नहीं। चन्दुभाई!

कहते हैं, आत्मा के लिये, भगवान आत्मा... एक व्यक्ति ऐसा कहे, यह तो आत्मा आत्मा ही जाता है। परन्तु तब आत्मा के अतिरिक्त चीज़ क्या है तेरे पास? यह तो सब अनात्मा की बातें हैं। यह ऐसा करना और ऐसा करना और दया पालना, व्रत पालना, भक्ति करना और पूजा करना, यह तो विकल्प की बातें हैं। विकल्प तो अनात्मा है। वह कहीं तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! उसकी अपनी चैतन्य ऋद्धि और सम्पदा की उसे खबर ही नहीं। यह धूल बाहर से कुछ मिले पाँच-पच्चीस लाख रुपये और कुछ शरीर रूपवान और स्त्री-पुत्र अच्छे, उसका बड़ा हजीरा-हजीरा अर्थात् मकान। दो, पाँच, दस लाख का मकान हो तो मानो, आहाहा! धूल भी नहीं। वह तेरी चीज़ कहाँ थे। तुझमें वह कहाँ थी? तेरे लिये कहाँ थी? वह ऐसी है? वह तो उसके लिये आयी और उसके लिये वहाँ वह खड़ी रही। तेरे लिये पैसे आये हैं वहाँ? कैसे होगा यह?

उसमें भी परमाणु में षट्कारक शक्ति स्वतन्त्र है। उसके कारण से कर्ता, कर्म, करण होकर उसके कारण से पर्याय वहाँ खड़ी हुई है। तेरे कारण से पैसा खड़ा नहीं है। आहाहा! परन्तु अभिमान! हम चतुर हुए, विचक्षण हुए, होशियार हुए। तो यह माँ-बाप कुछ छोड़कर नहीं गये। बाहुबल से इकट्ठा किया है। बाहुबल से इकट्ठा किया है। धूल में भी नहीं किया। तुम्हारे पिता कहाँ पैसा रख गये थे? रख गये थे?

मुमुक्षु : बावडाना बलथी नहीं समझे?

पूज्य गुरुदेवश्री : बावडे धा। हाथ के बल से इकट्ठा किया। नहीं था और हमने उपलब्ध किया है। धूल भी नहीं किया, सुन न! पर का कौन करे और कौन प्राप्त करे। ऐसा यहाँ कहते हैं। सेठ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : दुनिया पागल।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया तो बड़ी पागल। पागल जैसी है तो लड़के ने नहीं कहा? गया, आज गया। ले गये उसके पिता। यहाँ उसे भेजेंगे छुट्टियाँ पड़ेगीं न दो बार भेजेंगे। यह (वह) पढ़ाई सब खोटी है। यह पढ़ाई सच्ची है। ऐसा कहता था। डॉक्टर! एक लड़का ग्यारह वर्ष का कहे कि पढ़ाई तो यह सच्ची है। वह सब पढ़ाई खोटी-

खोटी है। डॉक्टर की पढ़ाई तुम्हारी अज्ञान की मूढ़पने का है। उसे है स्वरूपचन्दभाई! बड़े भाई को यह सब डॉक्टर का जानपन यह सब। झूठा होगा? अज्ञान है सब। यह रामजीभाई को वकीलात और वकालत का अज्ञान क्या था? पूछा तो कहे, अज्ञान था। आहाहा!

भगवान आत्मा! अरे बापू! तेरे ज्ञान की क्या बात करता है? यह बाहर का जितना जानपना, वह सब कुज्ञान है। अब यह तो ठीक, शास्त्र पढ़े और ज्ञान उघड़े, वह भी कुज्ञान है। आत्मा द्वारा होता है। ऐसा कहा न? आत्मा द्वारा हो वह ज्ञान। शास्त्र द्वारा हो वह ज्ञान, ज्ञान नहीं है। आहाहा! उसे अन्तर सम्पदा का लाभ प्रभु है। उसके गर्भ में—आत्मा के गर्भ में तो सिद्धपद हो, ऐसा उसका गर्भ है। उसमें से कोई पुण्य-पाप और संसार हो, ऐसा उसका गर्भ और पेट है नहीं। आहाहा! मनुष्य के पेट में से मनुष्य होता है, कहीं कोई ढोर होता होगा? जानवर पकता होगा?

भगवान आत्मा! वस्तुरूप से महान प्रभु है। उसके लिये उसके द्वारा जो उसे रखने की अन्दर की क्रिया हो, वह आत्मा की है। राग हुआ, राग गया। परमाणु बँध जाये, वह परमाणु बँधे, वह अलग चीज़ हो गयी। वह कहीं रखा नहीं किसी ने। कितने ही कहते हैं न, हम बहुत पुण्य करेंगे फिर पुण्य प्रस्फुटित होगा, तब धर्म होगा। राग अधर्म हो और अधर्म बहुत हो, फिर धर्म होगा। अरे... अरे! कुकर्म करता है न! परमात्मा चिदानन्द स्वरूप का वह अनादर करता है। आहाहा!

तीन लोक का नाथ अप्पा सो परमप्पा। आत्मा स्वयं ही परमात्मा है। परमस्वरूप परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप से है। वह अपने स्वरूप के लिये परिणति स्वयं करे, वह अपने में रखता है। कहो, समझ में आया? पैसा-बैसा आत्मा रख सके, शरीर को रख सके, स्त्री-पुत्र को रख सके, हराम है होवे तो, कहते हैं। छोटुभाई! यह सब तुम विचार करते हो न पैसा इकट्ठा करने में। करोड़पति कहलाये जो सब विराणी करोड़ों रुपये पैदा करते हैं वहाँ। है न उस अफ्रीका में। गप्प-गप्प है। ऐई! गजब बात यह। ऐसी बात सच्ची होगी यह? यह सब करोड़पति। हैं? अरे! पागल का मत क्या लेना था! पागल का मत पागल जैसा होता है।

कहते हैं, ओहो! **आत्मा के लिये....** भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उस गुण के आश्रय से, गुण जिसके आश्रय से पड़े हैं, ऐसा जो द्रव्य, उसका जहाँ आश्रय करने जाये तो उसके द्वारा उसकी दशा होती है, यह उसमें रहे, कहीं जाये नहीं और कहीं नाश हो नहीं।

आत्मा में से.... यह पाँचवाँ बोल। आत्मा में से धर्म की पर्याय होती है। कोई पुण्य के परिणाम और दया-दान के विकल्प में से धर्म की पर्याय नहीं होती। क्योंकि पुण्य-पाप के परिणाम, वे कहीं आत्मा नहीं है। आत्मा से। आहाहा! पूर्ण स्वरूप पूर्णइदम् प्रभु, ऐसी अन्तर्दृष्टि देने पर आत्मा से निर्मल पर्याय वीतरागी धर्म सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। वह आत्मा से होता है। नहीं कि पुण्य से, निमित्त से और शरीर से होता है। कहो, समझ में आया?

अपने में से कहा न, आत्मा में से। यह उससे-से-उससे आता है न? अपने में करता है, आधार। यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का आधार आत्मा है। आत्मा के आधार से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता है। आहाहा! शरीर अच्छा हो, रोग यदि बहुत शरीर में हो तो वह सामायिक किस प्रकार कर सके? यह यहाँ कहते हैं कि तेरी बात सब भ्रमणा में गयी है। तू अच्छा निरोगी पड़ा है तो तेरे कारण से तुझमें से होकर धर्मपर्याय होती है। अब उसके घर में सड़ा हुआ शरीर है, भले पड़ा। आहाहा! उसका अस्तित्व तो तुझसे भिन्न है। जीवास्तिकाय में यह पुद्गलास्तिकाय आ गया है अन्दर? यहाँ यह सिद्ध करना है, जीवास्तिकाय सिद्ध करना है। समझ में आया?

आत्मा में जानता है... देखो! जानने की भाषा ली है न। **आत्मा आत्मा को आत्मा द्वारा आत्मा के लिये आत्मा में से आत्मा में जानता है...** आत्मा में जानता है, ज्ञेय में जानता है, ऐसा नहीं। यह जगत की चीजें ज्ञात होती हैं न? कहते हैं, नहीं। वह तो आत्मा को जानता है। वह तो आत्मा में जानता है। समझ में आया? वह चीज ज्ञात नहीं होती। चीज सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने आश्रय से हुआ, उसे यह जानता है। कहो, समझ में आया?

यह व्यपदेश की व्याख्या चलती है। पहले बोल में। 'ववदेसा'। संस्कृत, ४६ गाथा। उसका यह एक व्यापदेश का अर्थ इतना है। ऐसा अनन्यपने में भी, जैसे देवदत्त

के फल, देवदत्त भिन्न, फल भिन्न, अंकुश भिन्न, ऐसा अन्य में भी छह प्रकार कहने में आते हैं। ऐसे अनन्यपने में भी छह कारक कहने में आते हैं। लो! समझ में आया? ऐसा ही उसका स्वरूप है। यह व्यपदेश का कथन हुआ। एक व्यपदेश का इतना कथन हुआ। अब संस्थान आया। है न? ४६ गाथा, दूसरा संस्थान, संठाणा।

कहते हैं जिस प्रकार 'ऊँचे देवदत्त की ऊँची गाय'... ऊँचा देवदत्त पाँच हाथ का लम्बा और उसकी गाय भी ऊँची, मोटी। ऊँचे देवदत्त की ऊँची गाय। गाय भी भिन्न और देवदत्त भी भिन्न। दोनों का संस्थान भिन्न। देवदत्त का संस्थान पाँच हाथ का लम्बा-मोटा। और गाय भी ऊँची मोटी, लम्बी ऐसी हो। समझे न? उस ओर बिहार देश में गाये छोटी, बकरी जैसी। छोटी-छोटी इतनी-इतनी। खाने का साधन नहीं मिले और पत्ते खाये। छोटी-छोटी। यहाँ की गाये कितनी, देखो! तो मोटी हाथिनी जैसी। वह मोटी।

ऐसे 'ऊँचे देवदत्त की ऊँची गाय'... क्या कहना है यह? कि ऊँचा देवदत्त, यह उसका संस्थान। और ऊँची गाय, वह उसका संस्थान, दोनों के भिन्न, तथापि ऐसा कहा जाता है। उसी प्रकार अनन्यपने में भी संस्थान होता है। उसी प्रकार 'विशाल वृक्ष का विशाल शाखासमुदाय'... अरे... अरे! कितनी युक्ति से सिद्ध किया है! क्या कहा? विशाल वृक्ष, मोटा वृक्ष। विशाल शाखा समुदाय। यह है न उदेरवड भरूच में। उदेरवड तो इतना लम्बा, हैं? कबीरवड-कबीरवड। एक बार गये थे बहुत समय पहले। कबीरवड देखने। बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९६०! साधु आये थे। उन्हें खोजने गये थे। साधु कहाँ उतरे हैं। कबीरवड है आगे। वहाँ तो नहीं हों, कहते हैं। तब? सामने जगह है वहाँ होंगे? वहाँ चलो। (संवत्) १९६६ की बात है। १९६६। वहाँ सुना है बड़ा कबीरवड है। कितनी डालियाँ। ऐसे तो कलकत्ता में भी एक वृक्ष है बड़ा, नहीं? हैं? बाहर सामने। नदी के उस किनारे है। है, सुना है। वहाँ तो हम देखने गये थे। वह तो बड़ा कबीरवड है।

अब वह डालियाँ किसकी? क्या कहते हैं? 'विशाल वृक्ष का विशाल शाखासमुदाय'... विशाल-बड़ा वृक्ष और उसकी विशाल शाखा। यह तो अभेद हो गया। हैं? एक ही है यह तो। विशाल वृक्ष की विशाल शाखा... 'मूर्त द्रव्य के मूर्त

गुण'... अब आया। वह यह परमाणु है मूर्त, जड़, मिट्टी। उसके मूर्त गुण होते हैं। वर्ण, रस, स्पर्श, गन्ध वे उसके मूर्त गुण हैं, उसके-जड़ के। शरीर के, पैसे के। पैसे जड़ है न, तो उसके गुण भी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, जड़ है। रतिभाई! पैसे के गुण क्या होंगे?

यह दुनिया में तो ऐसा कहते हैं कि क्या कुछ कहते हैं न? पैसेवाला। हैं? सर्वे गुणा कांचनम्। हाँ, यह। सब गुण सोने में बस गये हैं। जिसके पास दो, पाँच, दस, पच्चीस लाख हों, उसके लड़के चतुर कहलाते हैं। पैसे रहित लड़के अच्छे हों तो भी पागल कहलाते हैं। यह दुनिया पागल। पागल की ऐसी कीमत है। ऐ स्वरूपचन्द्रभाई! भाई! यहाँ तो दुनिया से उल्टा है। ऐसा कहते हैं 'सर्व गुणो कांचनम्' धूल भी नहीं सुन न? कंचन के गुण कंचन के जड़ हैं। मूर्त है। सोना मूर्त है और उसके गुण मूर्त हैं। उसमें तेरे गुण वहाँ कहाँ से आये? आहाहा! पैसेवाला सुने कि यह करोड़पति है। पाँच करोड़वाला है। उसका लड़का हो तो मूर्ख जैसा। तो भी भाईसाहेब! भाईसाहेब! करते हैं सब, लो! उसमें क्या होगा? सामने देखे। होवे तो सब बाईसाहेब कौवे जैसी न, परन्तु यह पैसेवाले के कुछ गुण, पैसेवाले के गुण तो जड़ में रहे। उसमें—आत्मा में कहाँ से आ गये? 'मूर्त द्रव्य के मूर्त गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (संस्थान) होता है। लो! समझ में आया? एकमेक हुआ न यह। वृक्ष और वृक्ष की शाखा एक ही है। अनन्य है, भिन्न नहीं। इसी प्रकार मूर्त द्रव्य के गुण मूर्त हैं। ऐसा अनन्यपने में भी (संस्थान) होता है। लो!

इसी प्रकार अमूर्त द्रव्य के गुण अमूर्त हैं। आत्मा अमूर्त है। तो उसके गुण भी अमूर्त हैं। और जितने आकार में द्रव्य है, उतने आकार में उसके गुण हैं। या गुण का आकार और द्रव्य का आकार अन्तर होगा? भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी आकार है, तो उसके गुण जो ज्ञानादि, उसका आकार भी असंख्य प्रदेशी है। आता है या नहीं इसमें? तुम्हारे वह नहीं सीखते? क्या कहलाता है सिद्धान्त प्रवेशिका। द्रव्य किसे कहना? अपने लड़कों को सिखाते हैं। द्रव्य किसे कहना? गुण के पिण्ड को द्रव्य कहते हैं। द्रव्य किसे कहना? कि स्त्री-पुत्रवाला हो, उसे द्रव्य कहते हैं—ऐसा कहा है वहाँ? स्त्री, पुत्र उनका द्रव्य है।

गुण के पिण्ड को द्रव्य कहते हैं। गुण किसे कहते हैं? द्रव्य के सर्व भाग में और

सर्व हालत में रहे, उसे गुण कहते हैं। यह जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में लड़कों को सिखलाते हैं एकडा, उसमें यह आता है। एक पण्डित कहे,कहे लो! तुम बड़े ऐसे पण्डित और ऐसा सीखे? परन्तु वह पण्डित ही नहीं। यह पहला एकड़ा भी अभी वह सीखा नहीं। वस्तु भगवान आत्मा का जो गुण है ज्ञान-दर्शन, वह आत्मा के सर्व क्षेत्र में है। भाग अर्थात् सर्व क्षेत्र में और सर्व हालत में। वह गुण प्रत्येक अवस्था में वह गुण है। उस प्रत्येक अवस्था में गुण है। परन्तु कोई दूसरी चीज़ आयी और अवस्था हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? प्रश्नोत्तरी है, वह क्या कहलाता है? सिद्धान्त प्रवेशिका। प्रश्नोत्तरमाला। उसमें है वह अपने प्रश्नोत्तरमाला होगी। उसमें सिद्धान्त प्रवेशिका में।

अब कहते हैं, जिस प्रकार 'एक देवदत्त की दस गायें',... पहली संख्या। संख्या-संख्या। संख्या के दो भेद और अभेद का कथन। 'एक देवदत्त की दस गायें' ऐसी अन्यपने में संख्या होती है। उसी प्रकार 'एक वृक्ष की दस शाखायें',... यह तो अनन्य हुआ। एक वृक्ष की दस शाखा तो अनन्य हुआ। इकट्ठा है, कहीं अलग नहीं है। इसी प्रकार 'एक द्रव्य के अनन्त गुण'... लो! यहाँ आया, भाई! समझ में आया?

'एक द्रव्य के अनन्त गुण' ओहोहो! एक देवदत्त की दस गायें। वे गायें अलग हैं और देवदत्त अलग है। ऐसा कहा जाता है। इसी प्रकार एक वृक्ष की दस डालियाँ। एक वृक्ष की दस डालियाँ, वह तो अभेद हो गया। डालियों के प्रदेश अलग और वृक्ष के प्रदेश अलग, ऐसा है नहीं। उसी प्रकार एक द्रव्य के अनन्त गुण। भगवान आत्मा एक द्रव्य है, परन्तु गुण अनन्त हैं। हाय! हाय! कहो, समझ में आया? परमाणु में भी ऐसा है। प्रत्येक को ऐसा है, हों! वस्तु एक और गुण अनन्त है। अर्थात् कि तू एक द्रव्य से-वस्तु से एक है। परन्तु गुण से अनन्त है। वस्तुरूप से एक परन्तु शक्तिरूप से अनन्त है। अनन्त-अनन्त संख्या से, हों! त्रिकाल रहे, वह अलग बात है। परन्तु वर्तमान संख्या से एक आत्मा में अनन्त गुण हैं। कितने गुण हैं अनन्त? समझ में आया? उनकी बड़ी संख्या है।

छह महीने आठ समय में ६०८ (जीव) सिद्धपद को प्राप्त करते हैं, ऐसा भगवान ने देखा है। छह महीना आठ समय में ६०८ सिद्धपद को प्राप्त करते हैं। अभी भी

महाविदेह में भगवान विराजते हैं, वहाँ से भी छह महीने आठ समय में ६०८ मुक्ति प्राप्त करते हैं। तो अभी तक का कितना काल गया? कितने सिद्ध हुए? उन सिद्धों की संख्या अभी तक की इकट्टी करो तो निगोद का एक शरीर लो आलू का, उस शरीर में, एक शरीर में अनन्त जीव। एक टुकड़ा लो तो असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव, कितने? कि सिद्ध की संख्या से अनन्त गुणा। संख्या की तो—पूँजी की तो खबर हो, कितने पैसे हैं ये!

उन सिद्ध की संख्या अभी तक हुई, उसकी अपेक्षा बटाटा-आलू की इतना टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य तो शरीर हैं। और एक शरीर में सिद्ध की संख्या से अनन्त जीव हैं। और वह जीव की संख्या की अपेक्षा परमाणु की संख्या अनन्तगुणी। यह परमाणु टुकड़ा। द्रव्य, इसकी अपेक्षा तीन काल के समय अनन्तगुणे हैं। उसकी अपेक्षा आकाश के प्रदेश अलोक व्यापक कहीं अन्त नहीं उसके प्रदेश अनन्तगुणे हैं, तीन काल के समय की अपेक्षा। और उस आकाश के प्रदेश की अपेक्षा एक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। वस्तु एक और इतने गुण। आहाहा! समझ में आया?

एक-एक गुण यदि एक समय में कहने जाये तो अनन्त-अनन्त चौबीसी व्यतीत हो तो भी अनन्त गुण कह नहीं सकते। आहाहा! इतना भगवान है न, भाई! तुझे खबर नहीं। तुझमें अनन्त लक्ष्मी गुण की भरी पड़ी है। वहाँ देखता नहीं और धूल में जहाँ-तहाँ पुण्य और पाप और संयोग में देखता है, बापू! तू हैरान हो जायेगा! एक द्रव्य के अनन्त गुण। वह द्रव्य और गुण ऐसे कहे सही, परन्तु भिन्न नहीं है। द्रव्य और गुणों के प्रदेश भिन्न नहीं हैं। उसी और उसी में पूरा है।

असंख्य प्रदेशी एक द्रव्य, उसमें अनन्त गुण इकट्टे हैं। यह उसके सामने देखने से—द्रव्य के सामने देखने से उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान हो, उसे धर्म कहा जाता है। बाकी पर के सामने देखने से राग हो, उसे अधर्म कहा जाता है। विशेष कहा जायेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४९, गाथा-४६ से ४८, पौष कृष्ण ४, सोमवार, दिनांक -२६-०१-१९७०

पंचास्तिकाय, गुजराती चलेगा न अभी तो। गुजराती है। अभी गुजराती चलेगा न? है न! हाँ, एक-दो (हिन्दी) है। ४६वीं गाथा चलती है। क्या कहते हैं? देखो! आत्मा है न, आत्मा, उसमें अनन्त गुण हैं। उसके गुण उसमें हैं। उस गुण का आधार आत्मा है। द्रव्य—द्रव्य। द्रव्य अर्थात् वस्तु। वह गुण का आधार द्रव्य है। समझ में आया?

उस गुण का आधार द्रव्य, ऐसा कहने में आया, भेदरूप। ऐसा होने पर भी गुण और द्रव्य में कोई भेद नहीं है। गुण और द्रव्य अभेद है। अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द, ऐसे गुण और वह द्रव्य एक ही है। कहने में आया कि गुण का आधार द्रव्य है। ऐसा कहने में आया। ऐसा भेदरूप कथन होने पर भी द्रव्य और गुण में अन्यपना नहीं बतलाते। द्रव्य और गुण में अनन्यपना बतलाते हैं। बराबर है? देखो! यहाँ आया। पहले आया न!

जिस प्रकार 'एक देवदत्त की दस गायें',... संख्या। ऐसे अन्यपने में संख्या होती है, उसी प्रकार 'एक वृक्ष की दस शाखायें',... एक वृक्ष की दस डालियाँ, शाखायें। 'एक द्रव्य के अनन्त गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (संख्या) होती है। क्या कहते हैं? भिन्नपने में जैसे संख्या कही जाती है, 'देवदत्त की गाय'... वह गाय भी भिन्न और देवदत्त भी भिन्न। उसी प्रकार आत्मा में कहने में आता है कि आत्मा के अनन्त गुण। ऐसा होने पर भी गुण और द्रव्य अन्य नहीं है। तेरी पूँजी तेरे पास है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

देखो! 'एक वृक्ष की दस शाखायें',... यह अभेद है। एक वृक्ष की दस डालियाँ—शाखा। तो शाखा और वृक्ष को भिन्न देखने में आवे तो भी वस्तु तो एक अभेद है। इसी प्रकार भगवान आत्मा और परमाणु आदि सब द्रव्य। उस द्रव्य के अनन्त गुण, ऐसा कहा। द्रव्य के अनन्त गुण कहे, वे भी द्रव्य से अनन्त गुण कोई भिन्न नहीं है। अभिन्न है। समझ में आया? आहाहा!

परमात्मा स्वयं अनन्त गुण सम्पन्न है। समझ में आया? उसमें विकार आदि, शरीर आदि है ही नहीं। अनन्त गुण सहित है। आत्मा, अपना आत्मा, हों! यहाँ आत्मा

की बात चलती है। आहाहा! अनन्त गुण हैं। लक्ष्मी तो अनन्त होती ही नहीं, लो तुम्हारे पास। ऐ सेठ! परमाणु अनन्त होते हैं परमाणु। एक पाई हो तो भी अनन्त परमाणु होते हैं। एक नोट हो तो अनन्त परमाणु होते हैं। अनन्त रुपये और अनन्त सोना-मोहर और ऐसा नहीं होता। ऐ सेठ! अनन्त सोना-मोहर है? अनन्त गुण होते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, जैसे देवदत्त की गाय—वह भिन्नरूप है। गाय भिन्न चीज़ है और देवदत्त भिन्न है। इसी प्रकार वृक्ष की शाखा, ऐसा भेद से कथन कहने में आता है। परन्तु वृक्ष और डालियाँ—शाखा तो भिन्न नहीं है। इसी प्रकार द्रव्य के गुण। भगवान आत्मा के गुण। वस्तु एक उसके अनन्त गुण। पदार्थ एक, उसकी शक्तियाँ अनन्त। अनन्त शक्तियाँ द्रव्य की, ऐसा कहने में आया, तथापि वह गुण और द्रव्य की भिन्नता नहीं बतलाते। भाषा से अन्यपना कहने में आता है परन्तु भाव में अन्यपना है नहीं। समझ में आया? इसका पुत्र, लो! ऐसा कहा जाता है इसका? इसके पाँच पुत्र हैं। पुत्र भिन्न चीज़ है, (स्वयं) भिन्न है। समझ में आया?

उसी प्रकार वृक्ष की शाखा अथवा शक्कर में मिठास। शक्कर में मिठास। मिठास कहते हैं न? तो शक्कर में मिठास, ऐसा भेद तो हो गया परन्तु शक्कर और मिठास दो भिन्न चीज़ नहीं है। शक्कर और मिठास कोई अन्य चीज़ नहीं है। समझ में आया? उसी प्रकार द्रव्य के एक द्रव्य के, भाषा कैसी है? 'एक द्रव्य के अनन्त गुण'... आहाहा! चैतन्य रत्नाकर आत्मा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अनन्त गुण का सागर आत्मा है। तेरे गुण की संख्या भगवान ने अनन्त देखी है। आहाहा! अनन्त... अनन्त... अनन्त... यह तो कल कहा था न? आकाश के प्रदेश जो अनन्त, उनसे भी अनन्त गुणे आत्मा में गुण हैं। वस्तु एक, तथापि शक्तियाँ संख्या से गिनने में आवे तो अनन्त है। जैसे कि जानना, देखना, श्रद्धा करना, स्थिर होना, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, स्वच्छत्व, विभूति, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान... ऐसी गुण की शक्ति की संख्या अनन्त एक द्रव्य में है। समझ में आया?

चैतन्य रत्नाकर है। भगवान आत्मा चैतन्य रत्नाकर—चैतन्य के रत्न से भरपूर

आकर अर्थात् सागर-समुद्र है। अरे! समझ में आया? ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से द्रव्य का पता लगे तो सम्यग्दर्शन होता है। भगवान् आत्मा संख्या से एक और गुण अनन्त। ओहोहो! एक और अनन्त। कितना अन्तर! एक द्रव्य, अनन्त गुण। द्रव्य में द्रव्य के अनन्त गुण, ऐसा भेद से कथन हुआ। ऐसा होने पर भी द्रव्य से गुण अन्यपने को नहीं बतलाते। समझ में आया या नहीं? यह तो अन्तर की समझण की बात है। यह वहाँ तक आया।

अब विषय की बात चलती है। विषय अर्थात् आधार। जिस प्रकार 'बाड़े में गायें'... वाड़ा में गाय तो वाड़ा अलग चीज़ है, गाय अलग चीज़ है। वाड़ा में गाय, यह घर के दस लोग। ऐसा कहते हैं या नहीं? इस घर में दस लोग हैं। घर अलग चीज़ है, दस लोग अलग चीज़ है। यह आधार दूसरी चीज़ है। घर का आधार और रहनेवाले लोग आधेय, यह तो भिन्न चीज़ है। ऐसे अन्यपने में विषय (आधार) होता है, उसी प्रकार 'वृक्ष में शाखायें',... पेड़े में—वृक्ष में डालियाँ। वह कहीं भिन्न नहीं है। ऐसा होने पर भी वृक्ष और शाखायें अनन्य हैं, एकमेक हैं, अभिन्न हैं। समझ में आया? 'द्रव्य में गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (विषय) होता है। आहाहा! अनन्यपने में एकमेक चीज़ है, तथापि ऐसा कहा जाता है कि द्रव्य में अनन्त गुण। गुण का विषय द्रव्य। ऐसा आया न भाई इसमें? गुण का विषय द्रव्य। अर्थात् जो वर्तमान पर्याय है, वह पर्याय ऐसा निर्णय करे कि गुण का विषय द्रव्य, गुण का आधार द्रव्य। तो पर्याय जहाँ गुण का आधार द्रव्य, ऐसी दृष्टि होती है, उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया?

कोई क्रियकाण्ड से और बाहर से उसकी प्राप्ति नहीं होती। गजब बात, भाई! द्रव्य में गुण, ऐसा निर्णय तो पर्याय करती है न! पर्याय अर्थात् वर्तमान हालत-दशा। कि द्रव्य में गुण, गुण का विषय द्रव्य। गुण का आधार द्रव्य। मेरे अनन्त गुण हैं, उनका आधार द्रव्य-वस्तु है। ऐसा पर्याय निर्णय करे तो पर्याय में सम्यक्पना, सत्यपना जैसी एक में अनन्त गुण है, वैसा सत्यपना प्रतीति में आ जाता है। विकल्परहित प्रतीति हो, इसका नाम निर्विकल्प सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? वह धर्म की पहली सीढ़ी है। अरे! पहला कठिन... यह अन्दर झुकनेवाला, शोधनेवाला कौन, इसकी तो खबर नहीं। समझ में आया?

बालक की बात नहीं की थी ? सात वर्ष का लड़का चार-पाँच वर्ष पहले सभा में खड़ा होकर पूछा—महाराज ! आत्मा देखो, आत्मा देखो—ऐसा कहते हैं,... शान्ति से प्रश्न था, हों ! तो हम तो खुली आँख से तो बाहर की चीज़ दिखती है और आँख बन्द करें तो अन्धेरा लगता है । हमारे आत्मा को कहाँ देखना ? स्वरूपचन्दभाई ! सात वर्ष का लड़का । पाँच-सात वर्ष पहले की बात है । क्या नाम है उसका ? परेश-परेश । परेश, लड़का जामनगर में है । अब वहाँ जायेंगे तो आयेगा । आहा ! आत्मा देखो, आत्मा जानो, आत्मा देखो । कहाँ देखना ? ऐसे देखें तो यह बाहर का दिखता है । आँख बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है । भगवान ! अन्धेरे को देखनेवाला अन्धेरा नहीं है । डॉक्टर ! लॉजिक तो बराबर है न ? अन्धेरा है, वह जिसमें देखने में आता है, वह ज्ञान सत्ता में देखने में आता है । अन्धेरे में अन्धेरा देखने में नहीं आता । खबर नहीं, परन्तु कभी विचार किया नहीं, तो लड़के को प्रश्न तो हुआ ? सात वर्ष का बालक । सात, अकेला सात हो !

महाराज ! खड़ा होकर रात्रि में पूछा । आत्मा को देखना हो तो कैसे देखना ? आँख बन्द करते हैं तो अन्धेरा दिखता है, विचार करे, हों ! सुनकर विचार करे । अन्धेरा दिखता है न ? भाई ! अन्धेरा किसमें दिखता है ? अन्धेरे में अन्धेरा दिखता है ? अन्धेरे द्वारा अन्धेरा दिखता है ? या अन्धेरा जिसमें जानने में आवे, वह तो ज्ञान की सत्ता में अन्धेरा दिखता है । वह तो ज्ञान की सत्ता की स्वीकारोक्ति हो गयी । स्वरूपचन्दभाई ! वहाँ ज्ञान का स्वरूप है । जहाँ ज्ञान का स्वरूप है, उसमें अन्धेरा दिखता है । तो स्वरूप है वह अन्धेरे से रहित है और ज्ञान, आनन्द और शान्ति से सहित है । तो ज्ञान अकेला जानता है, ऐसा नहीं । ज्ञान के साथ श्रद्धा भी है कि मैं ज्ञान हूँ । स्थिरता भी है कि मैं चारित्रवन्त हूँ । आनन्द भी मैं हूँ । ऐसा ज्ञान में अनन्त गुण से विषयवाला द्रव्य जो है, ऐसा अन्तर लक्ष्य करने से अनन्त गुणवाला मैं आत्मा हूँ, ऐसा विषय होता है और ऐसा दृष्टि का विषय होता है । बाहर... बाहर... बाहर... अनादि से या तो बाहर पुण्य-पाप की क्रिया करे तो राग दिखता है, राग दिखता है । वह राग भी कहाँ दिखता है ? उसे खबर भी कहाँ है ?

दया पालना, भक्ति करना ऐसे विकल्प उठे तो उसे जानने की पर्याय है न जानने की पर्याय । जानने की एक ही पर्याय है तो राग से तो भिन्न है । यह राग, यह विकल्प

ऐसा जो जानने का अस्तित्व है, उसमें जानने का विकल्प आता है। विकल्प में विकल्प जानने में आवे, ऐसा है नहीं। आहाहा! क्या करे? कहो लाडुलालजी!

भगवान की यात्रा की भगवान की। वह तो शुभभाव है। वह शुभभाव है, उसका भी जाननेवाला कौन? शुभभाव शुभभाव को जानता है? शुभभाव, वह तो राग है। राग तो वास्तव में अचेतन है। अचेतन का अर्थ उसमें ज्ञानगुण की किरण या पर्याय नहीं है। यदि आत्मा ज्ञानस्वरूप है तो ज्ञान की किरण का अंश राग में नहीं है। भक्ति का राग, दया का राग, वह तो राग है। राग अपने को भी नहीं जानता और राग साथ में कोई चीज़ है, उसे भी नहीं जानता। जाननेवाला जानता है कि मैं ज्ञान हूँ और यह राग है। समझ में आया?

ऐसे-ऐसे ज्ञान के साथ अनन्त गुण रहते हैं। जानना, देखना, श्रद्धा करना, स्थिरता, आनन्द, स्वच्छता, विभुत्व—सर्व व्यापकपना गुण में। एक गुण में अनन्त गुण का व्यापकपना। कर्ता, कर्म, आनन्द की पर्याय का कर्ता मैं, आनन्द का कर्म मैं, आनन्द का साधन मैं, आनन्द प्रगट करके मैं रखता हूँ, आनन्द स्वयं से होता है और आनन्द का आधार आत्मा है। अन्त में आया न? आनन्द का आधार आत्मा है। समझ में आया?

यह दुःख का विकल्प उठता है, उसका आधार निमित्त पर है। समझ में आया? निश्चय से दुःख का आधार दुःख है। दुःख की जो पर्याय उत्पन्न होती है, उसका आधार निश्चय से देखो तो पर्याय में षट्कारक स्वयं से है। और आनन्द का आधार आत्मा आनन्द है। अरे! भारी सूक्ष्म वह यह सब। वकालत में ऐसा आता होगा? आहाहा! भगवान परमेश्वर तीर्थंकर परमात्मा त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी ने जो केवलज्ञान में जाना, देखा, वैसा जो कथन-उपदेश में आया, (वह) इन्द्र सुनते थे, गणधर सुनते थे। ओहोहो! ऐसा चैतन्य रत्नाकर मैं हूँ और मेरी मुझे खबर नहीं? कैसा अन्धपना? समझ में आया?

लक्ष्मी की खबर, शरीर की खबर, मेरा शरीर पतला है, मोटा है, ऐसा है, निरोगी रहता है। मैं कौन हूँ? रोग और सरोग तो जड़ की दशा है। वह तो गुण की पर्याय जड़ की है। वह तुझमें नहीं है। ओहोहो! शरीर की रोग दशा या निरोग और उसके प्रति राग या द्वेष, इन दोनों से भगवान भिन्न है। आहाहा! ऐसा भेदज्ञान करने में गुण का आधार आत्मा है, यह काम आता है। मेरे गुण का टिकना, वह मेरे द्रव्य के आधार से टिकता

है। पुण्य-पाप का जो विकल्प मुझे उठता है, उससे वे गुण नहीं टिकते। कठिन बातें ऐसी! वह तो बस एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया... समझे नहीं और हो गया मिच्छामिदुक्कडम, जाओ। आसन खाली करके खड़े हो जाये। आज प्रतिक्रमण कर दिया। जादवजीभाई! ऐसा नहीं, बापू! भाई! तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं और तुझे धर्म हो जाये, ऐसा नहीं होता।

द्रव्य में गुण, ऐसा अनन्यपने में भी द्रव्य में गुण, भगवान आत्मा में गुण, गुणी में गुण, गुणी में गुण, ऐसा भेद से कथन हुआ, वह तो अनन्यपने की बात है। गुण और द्रव्य अनन्य है, एक है। भिन्न नहीं है। इसलिए (ऐसा समझना चाहिए कि) व्यपदेश आदि,... छह बोल आये न? व्यपदेश, कथन, संस्थान, संख्या, आधार यह सब अनन्यपने में भी कथन में आते हैं और अन्यपने में भी कथन में आते हैं। यह अन्य नहीं, द्रव्य और गुण अन्य नहीं। आहाहा!

भगवान परमात्मा जहाँ है, वहाँ उसके अनन्त गुण हैं। यह आया न? योगसार में नहीं? 'जहाँ चेतन वहाँ अनन्त गुण केवली बोले ऐम।' भगवान जहाँ चैतन्य आत्मा, वहाँ अनन्त गुण, संख्या से अनन्त गुण। केवली बोले ऐम। प्रगट अनुभव आपका। अपनी पर्याय को अन्तर में लेकर देखे तो तुझे प्रगट अनुभव होगा। समझ में आया? प्रगट अनुभव अपना, निर्मल करो सो प्रेम रे चैतन्य प्रभु, चैतन्य की सम्पदा रे चेतन धाम में। डॉक्टर! चैतन्य की सम्पदा रे चेतन धाम में। भाई नवनीतभाई! तो यह बँगला-फँगला वह कोई आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

चैतन्य की सम्पदा रे चेतन धाम में। यह ज्ञान और आनन्द आदि अनन्त गुण तेरे धाम में, तेरी सत्ता में विराजते हैं। ऐसी अन्तर समझण करके, अन्तर्दृष्टि करना तो द्रव्य का यथार्थ स्वीकार होगा और पर्यायबुद्धि, रागबुद्धि टलने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के धर्म की पहली सीढ़ी उत्पन्न होती है। पहली शुरुआत वहाँ से होती है। उसके बिना धर्म नहीं होता। लो! द्रव्य-गुणों में वस्तुरूप से भेद सिद्ध नहीं करते। देखो! व्यपदेश आदि द्रव्य-गुणों में कथन से, संस्थान से, आधार से, संख्या से भले भिन्न कहने में आये। परन्तु द्रव्य अर्थात् वस्तु और उसकी शक्तियाँ गुण, वे वस्तुरूप से भेद सिद्ध नहीं करते। दोनों की भिन्नता को साबित नहीं करते। यह ४६ हुई। ४७। तुम्हारे सैंतालीस कहते हैं न? चार और सात।

गाथा - ४७

णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हूं ॥४७॥

ज्ञानं धनं च करोति धनिनं यथा ज्ञानिनं च द्विविधाभ्याम्।
भणन्ति तथा पृथक्त्वमेकत्वं चापि तत्त्वज्ञाः ॥४७॥

वस्तुभेदाभेदोदाहरणमेतत् ।

यथा धनं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य, भिन्नसंस्थानं भिन्नसंस्थानस्य, भिन्नसंख्यं भिन्नसांख्यस्य, भिन्नविषयलब्धवृत्तिकं भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य पुरुषस्य धनीति व्यपदेशं पृथक्त्वप्रकारेण कुरुते, यथा च ज्ञानमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्याभिन्न-संस्थानमभिन्नसंस्थानस्याभिन्नसंख्यमभिन्नसंख्यास्याभिन्नविषयलब्धवृत्तिकमभिन्नविषय-लब्धवृत्तिकस्य पुरुषस्य ज्ञानीति व्यपदेशमेकत्वप्रकारेण कुरुते; तथान्यत्रापि। यत्र द्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशादिः तत्र पृथक्त्वं, यत्राभेदेन तत्रैकत्वमिति ॥४७॥

धन से धनी अरु ज्ञान से ज्ञानी द्विविध व्यपदेश है।

इस भाँति ही पृथक्त्व अरु एकत्व का व्यपदेश है ॥४७॥

अन्वयार्थ :- [यथा] जिस प्रकार [धनं] धन [च] और [ज्ञानं] ज्ञान [धनिनं] (पुरुष को) 'धनी' [च] और [ज्ञानिनं] 'ज्ञानी' [करोति] करते हैं- [द्विविधाभ्याम् भणंति] ऐसे दो प्रकार से कहा जाता है, (तथा) उसी प्रकार [तत्त्वज्ञाः] तत्त्वज्ञ [पृथक्त्वम्] पृथक्त्व [च अपि] तथा [एकत्वम्] एकत्व को कहते हैं।

टीका:-यह, वस्तुरूप से भेद और (वस्तुरूप से) अभेद का उदाहरण है।

जिस प्रकार (१) भिन्न अस्तित्व से रचित, (२) भिन्न संस्थानवाला, (३) भिन्न संख्यावाला और (४) भिन्न विषय में स्थित ऐसा धन (१) भिन्न अस्तित्व से रचित, (२) भिन्न संस्थानवाले, (३) भिन्न संख्यावाले और (४) भिन्न विषय में स्थित ऐसे पुरुष को 'धनी' ऐसा व्यपदेश पृथक्त्वप्रकार से करता है, तथा जिस प्रकार (१) अभिन्न अस्तित्व से रचित, (२) अभिन्न संस्थानवाला, (३) अभिन्न संख्यावाला और (४) अभिन्न विषय में स्थित ऐसा ज्ञान (१) अभिन्न अस्तित्व से रचित, (२) अभिन्न संस्थानवाले,

(३) अभिन्न संख्यावाले और (४) अभिन्न विषय में स्थित ऐसे पुरुष को 'ज्ञानी' ऐसा व्यपदेश एकत्वप्रकार से करता है, उसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए। जहाँ द्रव्य के भेद से व्यपदेश आदि हों, वहाँ पृथक्त्व है, जहाँ (द्रव्य के) अभेद से (व्यपदेश आदि) हों, वहाँ एकत्व है॥४७॥

गाथा - ४७ पर प्रवचन

णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।
 भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हं ॥४७॥
 धन से धनी अरु ज्ञान से ज्ञानी द्विविध व्यपदेश है।
 इस भाँति ही पृथक्त्व अरु एकत्व का व्यपदेश है ॥४७॥

इसमें हरिगीत नहीं है। पीछे है ? नहीं। इसकी टीका :- यह, वस्तुरूप से भेद और (वस्तुरूप से) अभेद का उदाहरण है। क्या कहते हैं, देखो ! जिस प्रकार भिन्न अस्तित्व से रचित, ... कौन ? यह 'धनी' धन का स्वामी। तो धनी और धन भिन्न अस्तित्व से रचित हैं। दोनों का एक अस्तित्व नहीं है। बराबर है सेठ ! क्या कहा ? देखो ! भिन्न अस्तित्व से रचित। कौन ? धन और धनी। चार लाईन बाद, पुरुष को 'धनी' ऐसा व्यपदेश पृथक्त्वप्रकार से करता है, ... भिन्न अस्तित्व से रचित। कौन ? कि लक्ष्मी है उसका अस्तित्व भिन्न है और धन का धनी, ऐसा कहने में आता है। धनी का अस्तित्व भी धन से भिन्न है। यह तो समझने में आता है या नहीं ? लक्ष्मी का अस्तित्व और लक्ष्मीवान का अस्तित्व, दोनों का अस्तित्व भिन्न है।

देखो ! भिन्न अस्तित्व से रचित, भिन्न संख्यावाला... लक्ष्मी की संख्या भिन्न है, लोगों की संख्या भिन्न है। इतने लक्ष्मीवाले। पाँच करोड़ की पूँजीवाले पाँच व्यक्ति हैं। पाँच व्यक्ति, ऐसा कहने में आता है न ? तो पाँच व्यक्ति की संख्या का भिन्न अस्तित्व है और लक्ष्मी के अस्तित्व की संख्या भिन्न है। कहो, समझ में आया ? और भिन्न संख्यावाला... लक्ष्मी की संख्या अधिक हो और मनुष्यों की संख्या भी अधिक हो, तो उनकी भिन्न संख्या का अस्तित्व भिन्न है। समझ में आया ?

करोड़ की पूँजी हो तो सब कहे। लो! घर में जितने व्यक्ति हों, वे सब कहे, दो-तीन लड़कियाँ हों, चार-छह लड़के हों तो सब ऐसा कहे, हम करोड़पति... हम करोड़पति। सब कहे करोड़पति। पहले कहे या नहीं? हैं? क्या कहे? धूल में कहे! दो करोड़ का अस्तित्व भिन्न है और तेरा अस्तित्व भिन्न है। यह दृष्टान्त देते हैं न, दस व्यक्ति घर में हों, भाई! हम करोड़पति, परन्तु लड़की जहाँ सोलह वर्ष की हुई और सगाई कर दी सगाई किसी लड़के के साथ। उसे ख्याल आ गया, ओहो! अमुक गाँव का लड़का है, दो सौ रुपये वेतन है। उसके पिताजी के पास पचास हजार की पूँजी है। जहाँ सगाई की, वहाँ हम करोड़पति... हम करोड़पति मिट गया। समझ में आया? एकदम दशा बदल गयी नहीं? सब लड़के-लड़कियाँ कहते थे न कि हम करोड़पति... हम करोड़पति। घर और वर यह नहीं, घर और वर वह। उसके पास पूँजी, उतनी पूँजी और वह लावे नौकरी, उतनी नौकरी। यह माता-पिता कुछ अपने को भाग दे, ऐसा नहीं है। अभी तो सरकार ने कुछ कानून तो निकाला है। हैं? मनुष्य भी इतना दे नहीं। संग्रह कर रखे। कानून को ठग डाले। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि लक्ष्मी की संख्या भिन्न है। और लक्ष्मीवान की संख्या भिन्न है। तो संख्या भिन्न का अस्तित्व भिन्न है। इसी प्रकार आत्मा में और ज्ञान में नहीं है, ऐसा कहना है। आत्मा में गुण जो अनन्त हैं, ऐसा नहीं, ऐसा कहना है। **भिन्न विषय में स्थित ऐसा धन...** देखो! लक्ष्मी का आधार वह है और मनुष्य का आधार मनुष्य है। या लक्ष्मी का आधार मनुष्य और मनुष्य का आधार लक्ष्मी, ऐसा है नहीं। भिन्न विषय में रहा हुआ ऐसा धन। और **भिन्न अस्तित्व से रचित, भिन्न संस्थानवाले, भिन्न संख्यावाले और भिन्न विषय में स्थित ऐसे पुरुष को 'धनी' ऐसा व्यपदेश...** पहली चीज़ की बात कहते थे। फिर भिन्न अस्तित्व से रचित पुरुष, भिन्न संख्या आकारवाला पुरुष, भिन्न संख्यावाला पुरुष, भिन्न आधारवाला पुरुष। **ऐसे पुरुष को 'धनी' ऐसा व्यपदेश पृथक्त्वप्रकार से करता है,...** लक्ष्मी भिन्न और पुरुष भिन्न। समझ में आया?

उसी प्रकार **अभिन्न अस्तित्व से रचित,...** आहाहा! कितनी स्पष्टता करते हैं! भगवान आत्मा और उसका आनन्द और ज्ञान गुण। आत्मा के गुण, ऐसा कहने में आता है, तथापि दोनों का अस्तित्व तो एक ही है। बराबर है? हैं? यह भीखाभाई का हीरा।

तो कहते हैं कि हीरा का अस्तित्व भिन्न और भीखाभाई का अस्तित्व भिन्न। इसी प्रकार आत्मा का ज्ञान, ऐसा नहीं, कहते हैं। वह ज्ञान और आत्मा का अस्तित्व एक है। स्वरूपचन्दभाई! यह तो लॉजिक से तो बात सिद्ध करते हैं। हैं? आहाहा!

भगवान! तू आत्मा और ज्ञान। आत्मा का ज्ञान। जैसे धनी का धन। धनी का धन। परन्तु धन का अस्तित्व और धनी का अस्तित्व दोनों का अस्तित्व तो भिन्न है। इसी प्रकार आत्मा का ज्ञान, तो दोनों का नाम तो भिन्न पड़ा आत्मा का ज्ञान, परन्तु ज्ञान और आत्मा का अस्तित्व भिन्न है? एक ही अस्तित्व है। आहाहा! समझ में आया? वह तेरे गुण से तेरा अस्तित्व एक है, ऐसा कहते हैं। दूसरे के अस्तित्व के अस्तित्व में तेरी दृष्टि करना, वह तो भूलवाली है। तेरे अस्तित्व में तेरी दृष्टि करना और यथार्थ करना, वह अभूलवाली अर्थात् सम्यग्दृष्टि है। आहाहा!

अभिन्न अस्तित्व से रचित,... कौन? आगे आयेगा। **अभिन्न संस्थानवाला, अभिन्न संख्यावाला और अभिन्न विषय में स्थित ऐसा ज्ञान...** देखो! ऐसा ज्ञान। अब आत्मा। पहले उस धन की बात की थी न? धनी का अस्तित्व भिन्न और धन का अस्तित्व भिन्न। इसी प्रकार ज्ञान वह एक अस्तित्व से रचित है। एक ही अस्तित्व से आत्मा और ज्ञान, आत्मा और आनन्द एक अस्तित्व से एक होनेपन से रचित है। तो पहले ज्ञान को लिया, फिर आत्मा को लिया। अभिन्न विषय में ऐसा ज्ञान। अभिन्न अस्तित्व से रचित कौन? आत्मा। समझ में आया?

ज्ञान से ज्ञानी। ज्ञान से ज्ञानी। धन से धनी। धन से धनी। यह भिन्न चीज़ हुई। परन्तु ज्ञान से ज्ञानी, दोनों का अस्तित्व एक है। समझ में आया? यह तो न्याय-दृष्टान्त से तो समझाते हैं। शरीरवाला आत्मा। शरीर का अस्तित्व भिन्न है और आत्मा का अस्तित्व भिन्न है। वैसे ज्ञान से ज्ञानी। ज्ञान अर्थात् आत्मा। ज्ञान-ज्ञानपना स्वभाव। उससे ज्ञानी। दोनों का अस्तित्व तो एक है। ज्ञान से ज्ञानी कहने में आया। परन्तु उसका अस्तित्व-होनापना दो नहीं है। आत्मा और ज्ञान का अस्तित्व दो नहीं है। दो का अस्तित्व एक है। समझ में आया? लॉजिक-न्याय से। ऐई जीतू! समझ में आता है या नहीं? बराबर होगा यह? नागरभाई का जीतू। यह बात सच्ची होगी? कि भाई! जीतू का

अस्तित्व अलग और नागरभाई का अस्तित्व अलग। दोनों का अस्तित्व। परन्तु आत्मा का ज्ञान। उसका अस्तित्व एक।

भगवान आत्मा और आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वभाव। तो ज्ञान आनन्द से आनन्दित आत्मा। परन्तु यह तो आत्मा और आनन्द का दोनों का अस्तित्व भिन्न है नहीं। अस्तित्व एक है, सत्ता एक है। राग, पुण्य और शरीर का अस्तित्व भिन्न है। परन्तु अपना ज्ञान और आनन्द स्वभाव जो है, उससे आत्मा को ज्ञानी और आनन्दित कहना, ऐसा होने पर भी दोनों का अस्तित्व एक है। आहाहा! ऐसी बात करते हैं, यहाँ देखो न! क्योंकि ज्ञान का संस्थान उतना आत्मा का संस्थान—आकार है। ज्ञान है, उसका अस्तित्व और आत्मा का अस्तित्व एक ही है। ज्ञान का आधार आत्मा, ऐसा कहने में आधार और ज्ञान दोनों का अस्तित्व एक ही है। समझ में आया? हैं?

बहुत ही सुन्दर, लो! लॉजिक से-न्याय से तो बात करते हैं। भाई! तेरी चीज़ क्या है? किस प्रकार है? यह पहले समझ तो सही! समझने से पहले भटक-भटक यहाँ से मिलेगा, यहाँ से मिलेगा। सुख यहाँ से मिलेगा। लो न! पुण्य-पाप में से सुख, शरीर में से सुख। सुख का अस्तित्व पर में है? आनन्द का अस्तित्व तो तुझमें है। और आनन्द का अस्तित्व तुझमें है, ऐसा कहना, वह आधार-आधेय परन्तु अस्तित्व भिन्न नहीं। आनन्द और आनन्दवाला आत्मा, परन्तु अस्तित्व तो दोनों का एक ही है। आहाहा! समझ में आया?

तुझे आनन्द चाहिए तो आनन्द का धारक आत्मा वहाँ दृष्टि दे, ऐसा कहते हैं। क्योंकि आनन्द और आत्मा का अस्तित्व अर्थात् मौजूदगी की सत्ता एक है। सुखी होना हो, शान्ति चाहिए हो तो सुख और आत्मा का अस्तित्व एक है। जिस प्रकार लक्ष्मीवाला कहने में आता है तो लक्ष्मी का अस्तित्व भिन्न है और उसका (लक्ष्मीवाले का) अस्तित्व भिन्न है। कहीं लक्ष्मी साथ आयी है यहाँ? जहाँ बैठे हो, वहाँ हो परन्तु लक्ष्मी का अस्तित्व भिन्न है और मकान का अस्तित्व भिन्न है, तुम्हारा अस्तित्व भिन्न है। इस शरीर का अस्तित्व भिन्न है और आत्मा का अस्तित्व भिन्न है। दोनों का अस्तित्व भिन्न अपने-अपने में है, पर से तो नहीं, पर से तो नहीं। अपने से है और पर से नहीं, तो अपना अस्तित्व सिद्ध होता है।

इसी प्रकार आत्मा ज्ञानवान, आत्मा आनन्दवान। ज्ञान का आधार आत्मा, ऐसा कहने में आता है, तथापि दोनों का अस्तित्व-विद्यमानता एक ही है। गजब, भाई! भगवान आत्मा... हैं? कहो, शोभालालजी! यह वह आया था। ...नाम आया था। यह कुछ है न? क्या है यह? अनेकान्त। अनेकान्त है, उसमें तारणस्वामी का सब आया है, उसमें तुम्हारा नाम कहीं आया है। 'बालक छाप' बीड़ी के निर्माता। सेठ भगवानदास शोभालालभाई जैन, चमेली (चौक) सागर। उसमें कहाँ से आया? चमेली, क्या कहते हैं चमेली (चौक)? भगवानदास शोभालाल सेठ। अभी अन्दर पढ़ा, हों! अन्दर पढ़ा था न। एक पुस्तक पढ़ते थे.... उसमें पढ़ा था। आहाहा! अरे! (चमेली) चौक का अस्तित्व भिन्न है, बीड़ी का अस्तित्व भिन्न है। आत्मा का अस्तित्व भिन्न है। परन्तु आत्मा को ज्ञान का नाम प्रयोग करते हैं कि ज्ञान का आधार आत्मा। ज्ञान (आदि गुण) अनन्त, द्रव्य एक; गुण अनन्त, द्रव्य एक। ऐसा कहने में आता है, तथापि गुण और गुणी के अस्तित्व में भिन्नता नहीं है। अन्यता नहीं है, अनेकता नहीं है; एकता है। आहाहा! समझ में आया? तुझे गुण चाहिए तो तेरे गुण का आधार आत्मा में सब पड़ा है। गुण का आधार कोई दूसरा नहीं है। आहाहा!

अभिन्न संस्थानवाले, अभिन्न संख्यावाले और अभिन्न विषय में स्थित ऐसे पुरुष को 'ज्ञानी' ऐसा व्यपदेश... ज्ञानी, यह ज्ञानी, ज्ञान से ज्ञानी, धन से धनी—दोनों में अन्तर है, ऐसा कहते हैं। लड़के से लड़केवाला दोनों भिन्न हैं परन्तु ज्ञान से ज्ञानी अर्थात् आत्मा, दोनों भिन्न नहीं हैं। स्वरूपचन्दभाई! बराबर है या नहीं? न्याय से—लॉजिक से तो बात चले न? आहाहा! अरे! इसकी क्या चीज़ है आत्मा और आत्मा में कैसे चैतन्य रत्नाकर गुण संख्य पड़ी है, कितनी संख्या है और वह संख्या और आत्मा, आत्मा एक और गुण की संख्या अनन्त, तथापि दोनों का आधार तो एक ही है। दोनों का अस्तित्व एक ही है।

ऐसा कहते हैं कि पुण्य-पाप के विकल्प के आधार से आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा कहते हैं। किसी निमित्त के आधार से आत्मा प्राप्त नहीं होता। वह तो ज्ञान का आनन्द का आधार आत्मा है तो आत्मा के आधार से गुण की प्राप्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? 'ज्ञानी' ऐसा व्यपदेश कथन एकत्वप्रकार से करता है,...

यह तो एकपने में यह कथन है। ज्ञान से ज्ञानी, यह तो एकपने में कथन है। भिन्न है नहीं। ओहोहो! सन्तों ने जंगल में रहकर एक करुणा विकल्प की आयी है तो ऐसे शास्त्र बन गये। देखो! समझ में आया? आहाहा!

मकान और मकानवाला, यह तो भिन्न चीज़ है। भिन्न है न? या एक है? इसी प्रकार आनन्द और आनन्दवाला! भिन्न है या नहीं? भिन्नपना सिद्ध नहीं करते, अनन्तपना सिद्ध करते हैं। तेरे अनन्त गुण से तेरी चीज़ अभिन्न है, तो तुझे शान्ति और धर्म चाहिए तो अनन्त गुण का आधार जो भगवान आत्मा, उस पर दृष्टि करना। अनन्त गुण की प्राप्ति पर्याय में होती है। पर्याय में जब प्राप्त हुआ तो अनन्त गुण का आधार आत्मा है, ऐसा निर्णय हो गया। कहो, समझ में आया?

कोई लक्ष्मी दान से, कोई मन्दिर बनाने से, कोई भक्ति करने से, पूजा करने से, दया पालने से आत्मा की पर्याय प्राप्त होती है, ऐसा है नहीं। क्योंकि आत्मा का गुण तो आत्मा के आधार है। तो पर्याय जिसके आधार से है, उस पर दृष्टि करे तो प्रगट होती है। वह पर्याय राग के आधार से दृष्टि दे और पर्याय में निर्मलता प्रगट हो, ऐसा नहीं होता। कहो, त्रम्पकभाई! समझ में आया या नहीं यह? यह सब अलग प्रकार है। तुम्हारे उस धन्धे में लवलीन हो उसकी अपेक्षा यह क्या कहते हैं, ऐसा धर्म? वह तो एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया, दया पालना, जाओ व्रत करना, पंच महाव्रत करो और एक संघ निकालो, दो, पाँच, दस लाख खर्च करके। धूल भी प्रभावना नहीं, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

तेरे गुण से भरपूर भगवान पर दृष्टि करने से पर्याय में जो प्र—विशेष एकाग्रता हो, उसका नाम भगवान प्रभावना कहते हैं। जेठालालभाई! यह तो बस पर से पैसा उठाओ। दो, पाँच, दस लाख खर्च कर डालो। दो, पाँच हजार लोग साथ में ले लो। धर्म की प्रभावना। धर्म की प्रभावना अपनी पर्याय में होती है या बाहर में होती है? दो प्रकार, वह तो शुभ विकल्प से कहने में आते हैं। शुभ विकल्प प्रभावना है ही नहीं। कैसे है पाटनीजी!

शुभ विकल्प होता है न तीर्थ का, वह भी प्रभावना नहीं। नहीं, उसे कहना, इसका

नाम व्यवहार है। आहाहा! गजब बात, भाई! अनन्त गुण का धनी शत्रुंजय। अज्ञानमय राग-द्वेष का नाश करनेवाला शत्रुंजय है। वह अन्तर आरूढ़ हो तो आत्मा की यात्रा, भक्ति और तीर्थ है। समझ में आया? बाहर की तीर्थयात्रा आदि शुभ विकल्प है। वह वास्तविक तीर्थ और भक्ति नहीं है। समझ में आया या नहीं?

तन मन्दिर में जीव जिन। मन्दिर, मूर्ति और जिन। इस तन मन्दिर में जीव जिन। भगवान् जिनस्वरूप परमात्मा वीतराग और वीतरागता के धारक। वीतरागभाव और वीतराग धारक, ऐसा भेद से कथन है, तथापि वीतरागभाव और वीतराग धारक का अस्तित्व, विद्यमानपना—सत्ता दोनों की एक ही है। कहो, समझ में आया?

जहाँ द्रव्य के भेद से व्यपदेश आदि हों, वहाँ पृथक्त्व है, धन-धनी आदि। जहाँ (द्रव्य के) अभेद से (व्यपदेश आदि) हों, वहाँ एकत्व है। धन से धनी, यह पृथक् की बात हुई। ज्ञान से ज्ञानी, यह अभेद से कथन हुआ। आहाहा! किसी भी प्रकार से गुण और गुणी की एकता है, वह उसकी नजर में पड़े, यह बात यहाँ है। तेरे गुण शोधने के लिये द्रव्य पर दृष्टि करने से मिलते हैं। उस निर्मल गुण की पर्याय कोई राग अथवा एक समय की पर्याय पर लक्ष्य जाये तो भी नहीं। क्योंकि गुण का आधार तो द्रव्य है। जहाँ जिसका आधार है, वहाँ जाये तो उसका पता मिला। एक समय की पर्याय पर लक्ष्य जाये तो पर्याय का आधार तो द्रव्य है। तो आधार है, उसकी दृष्टि न करे और उस पर दृष्टि करे तो विकल्प उठता है, राग उठता है। उसमें आत्मा के गुण की प्राप्ति नहीं होती। कहो, समझ में आया? यह ४७ गाथा कही। ४७ में क्या कहा? समझ में आया? धन में धनी और ज्ञान में ज्ञानी। यह दो शब्द भिन्न पड़ते हैं। परन्तु ज्ञान और ज्ञानी एक अस्तित्व है। धन और धनी का अस्तित्व, उसी प्रकार ऐसा सम्यग्दर्शन ले लेना।

पहले धन की व्याख्या थी, फिर धनी की थी। पहले ज्ञान की व्याख्या थी, फिर ज्ञानी आत्मा की व्याख्या। ऐसे चार बोल लिये हैं। समझ में आया? धन का अस्तित्व भिन्न, धन की संख्या भिन्न, धन का संस्थान भिन्न, धन का आधार भिन्न। अब पुरुष लो। भिन्न अस्तित्व से रचित, भिन्न संस्थानवाला, लक्ष्मी से भिन्न अस्तित्व रचित। कौन?

पुरुष। भिन्न संस्थानवाला, भिन्न विषयवाला। और पुरुष को धनी, ऐसा व्यपदेश पृथक्त्व प्रकार से करते हैं।

जिस प्रकार अभिन्न अस्तित्व से रचित ज्ञान। जैसे वह धन की व्याख्या थी, उसी प्रकार यह ज्ञान की व्याख्या। अभिन्न अस्तित्व से रचित, एक संस्थानवाला। अभिन्न अर्थात् एक। एक संख्यावाला, दोनों का एक ही अस्तित्व है। अभिन्न विषय में रहा हुआ ऐसा ज्ञान। यह उपयोग की व्याख्या करते हैं, भाई! जीव में ज्ञान उपयोग, दर्शन उपयोग है, वह उपयोग और आत्मा भिन्न शब्द कथन में आता है परन्तु उपयोग और आत्मा का अस्तित्व, सत्ता दो नहीं है। समझ में आया?

इस तरह अभिन्न अस्तित्व से रचित कौन? ज्ञानी। ज्ञान से ज्ञानी अर्थात् आत्मा का अस्तित्व एक है। अभिन्न संस्थानवाला। ज्ञान का आकार और आत्मा का आकार एक है। अभिन्न संख्यावाला। ज्ञान की संख्या और आत्मा की संख्या—भले आत्मा एक और यह एक, परन्तु वस्तु तो एक है। अभिन्न आधार। ज्ञान और ज्ञानी कहने में आया, परन्तु ज्ञानी आधार और ज्ञान उसमें रहता है, ऐसा कहना वह भी एकत्व सिद्ध करता है। दोनों का एकत्व सिद्ध करता है। भिन्नपना सिद्ध नहीं करता। ओहोहे! यह बात कितनी सिद्ध करते हैं!

भाई! हम तो धर्म समझने को आये हैं। यह बात करने से क्या? तुझे धर्म समझना है या नहीं? धर्म का अर्थ क्या? धर्म का अर्थ वीतरागी पर्याय। तो वीतरागी पर्याय कहाँ से उत्पन्न होती है? क्या पुण्य-पाप के विकल्प से निमित्त से उत्पन्न होती है? ऐसा कहते हैं। वीतरागी पर्याय—धर्म तुझे करना हो तो वीतरागभाव जिसके आधार से है, उसकी दृष्टि करने से वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि तीन लोक के नाथ भी वीतराग की पर्याय उत्पन्न करने में कारण नहीं है। उनका अस्तित्व भिन्न है। परमेश्वर परमात्मा उसे पंचास्तिकाय में प्रशस्त राग का विषय कहा है। लो! और विषय आया है। ऐसा विषय आता है। पंचास्ति—यह पंचास्तिकाय चलता है न, उसमें आता है न पीछे प्रशस्त राग का विषय-विषय।

भगवान तो प्रशस्त राग या शुभराग का विषय है। वीतराग का विषय नहीं। है

इसमें? कितना है, देखो न कहीं आया था। यह पंचास्तिकाय ही पढ़ा जा रहा है। क्या कहा? प्रशस्त, इसमें आता है न? आस्रव, बन्धो, पहले मोखो, राग का नाम आता है न? यह तो हिन्दी है न, हिन्दी बहुत खबर नहीं। हैं? हिन्दी बहुत खबर नहीं। लो! देखो! हाँ, यह। १३६ गाथा है।

अरहंतसिद्धसाहुसु भक्ती धम्मम्मि जा य खलु चेद्वा।

अणुगमणं पि गुरु णं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति॥१३६॥

समझ में आया? उसे प्रशस्त राग कहा है। पहला विषय प्रशस्त है, यह पहला, हों! यह। अन्तिम। पुद्गल या... १३६ न यह? अरिहन्त-सिद्ध-साधुओं के प्रति भक्ति धर्म में—व्यवहारचारित्र के अनुष्ठान में—भावनाप्रधान चेष्टा और गुरुओं का-आचार्यादि का-रसिकपने अनुगमन, वह 'प्रशस्त राग' है, क्योंकि उसका विषय प्रशस्त है। बस यह। लाईन की है।

क्या कहते हैं? इस शुभराग का विषय भगवान है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह धर्म की पर्याय का आधार भगवान नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहे आगम और क्या कहा, यह मूर्ति। दो है अपने आधार। हैं? जिनागम सबका आधार है। लो! जिनबिम्ब और जिनागम सबको आधार है। यहाँ कहते हैं आगम अर्थात् शास्त्र और जिनबिम्ब अर्थात् भगवान की मूर्ति। यहाँ कहते हैं, वह शुभराग का निमित्त है। शुभराग का विषय है। चाहे तो भगवान का स्मरण करे तो वह भगवान शुभराग का विषय है। भारी कठिन काम! स्वरूपचन्दभाई! हाँ, परन्तु कौन सा दर्शन? यह नहीं। ऐसा यहाँ कहते हैं।

देखो ने, यहाँ क्या कहते हैं? उसका विषय तो प्रशस्त है। वह भगवान देव-शास्त्र-गुरु तो शुभराग का विषय है। होता है परन्तु वह धर्म नहीं है। आहाहा! लोगों को ऐसा कठिन पड़े न! राग है, उतना रखो और वह पुण्य है। पुण्य का कारण है। वह पुण्य संयोग देता है। उससे स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती। देखो! यह तो हिन्दी है न! अनुगमन। क्या कहते हैं। अरिहन्त-सिद्ध-साधु के प्रति भक्ति। देखो! प्रशस्त राग का स्वरूप कहते हैं न! यह अरिहन्त, साधु के प्रति भक्ति शुभराग, धर्म में—व्यवहारचारित्र के अनुष्ठान में—भावनाप्रधान चेष्टा—पंच महाव्रत की, २८ मूलगुण की क्रिया का

परिणाम, वह शुभराग है और गुरुओं का—आचार्यादिक का—रसिकरूप से अनुगमन। पंच परमेष्ठी हों, उन्हें विदा करने जाना, उनके गमन में उनके पीछे-पीछे रहना, यह विकल्प शुभराग है। अनुसरण—आज्ञांकितपना, अनुकूल वर्तन। गुरुओ के प्रति, रसिकरूप से उल्लास से, उत्साह से, रुचिपूर्वक आज्ञांकित वर्तना, वह सब प्रशस्त राग है। शुभराग है। पुण्य बन्ध का कारण है। धर्म का कारण नहीं। अरे... अरे! भारी कठिन काम! उसका विषय प्रशस्त देखो।

कहते हैं, यह तो वह विषय शब्द आया न? इसलिए यह ख्याल आया। प्रशस्त राग का विषय तो यह है। वीतरागी पर्याय का विषय तो आत्मा है। धर्म की वीतरागी (पर्याय) सम्यग्दर्शन। वह सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय का आधार और विषय तो आत्मा है। ओहोहो! ऐ कीर्तिभाई! यह सब देखो! मूर्ति और मन्दिर और यह कहते हैं कि सब शुभराग का विषय है, ऐसा कहते हैं। वीरचन्द्रभाई! लो! यह तो दो लाख का मकान बनाया है, वहाँ जामनगर में मन्दिर (बनाया है)। यह दस वर्ष का महोत्सव है। यहाँ से जामनगर जाना है न, माघ शुक्ल एकम्।

शुभराग होता है, परन्तु वह धर्म का स्वरूप नहीं और धर्म का कारण नहीं। परन्तु आये बिना रहता नहीं। व्यवहार आता है परन्तु व्यवहार, धर्म का स्वरूप नहीं और वह धर्म का विषय भी नहीं। आहाहा! इसलिए फिर एक व्यक्ति ने उसे उत्थापित कर दिया न, मूल में से निकाल दिया। दूसरे ने उसमें धर्म मना लिया। दोनों चीज़ खोटी। समझ में आया?

यह भक्ति का शुभभाव आदि आता है परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान का स्मरण—णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं ऐसा करना, वह भी शुभराग है। और उस शुभराग का विषय—भगवान का नाम आया। तब तो अपने बस एकान्त में बैठे रहो। णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं यह सब शुभ विकल्प राग है। राग का विषय परद्रव्य है। आत्मा उसका विषय नहीं है। आहाहा! जैन सिद्धान्त पीछे आता है न? भिन्न विषयवाले, आते हैं न भाई लो! उस ७२ गाथा में है। भिन्न विषयवाले देव-गुरु-शास्त्र। १७२ (गाथा)। भिन्न विषयवाले। लो! यह आगे आता है। अपने हिन्दी है न। अपने

गुजराती में भी आता है। देव-गुरु-शास्त्र भिन्न विषय है। आत्मा अन्दर वीतरागी पर्याय, वह ज्ञान का विषय है। देखो! समझ में आया?

ओहो! गजब शैली! दिगम्बर सन्तों की कथनी कोई अलौकिक पूर्वापर विरोधरहित और सत्य को सिद्ध करनेवाली है।

अब कहते हैं कि द्रव्य और गुणों का अर्थान्तरपना हो तो दोष आयेगा। क्या कहते हैं? वस्तु और वस्तु के गुण, यदि भिन्न अस्तित्व हो तो उसमें दोष आता है। वस्तु भगवान और उसका गुण। वह गुण और वस्तु में भिन्नपना हो, समझ में आया? अर्थान्तरपना—पदार्थ भिन्नपना हो, गुण का पदार्थ भिन्न और द्रव्य का पदार्थ भिन्न, ऐसा हो तो उसमें दोष आता है। ऐसा है नहीं।

गाथा - ४८

गाणी गाणं च सदा अर्थंतरिदा दु अणमणस्स।
दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं॥४८॥

ज्ञानी ज्ञानं च सदार्थान्तरिते त्वन्योऽन्यस्य।
द्वयोरचेतनत्वं प्रसजति सम्यग् जिनावमतम्॥४८॥

द्रव्यगुणानामर्थान्तरभूतत्वे दोषोऽयम् ।

ज्ञानी ज्ञानाद्यर्थान्तरभूतस्यदा स्वकरणांशमन्तरेण परशुरहितदेवदत्तवत्करणव्यापारा-
समर्थत्वादचेतयमानोऽचेतन एव स्यात् । ज्ञानश्च यदि ज्ञानिनोऽर्थान्तरभूतं तदा तत्कर्त्रांशमन्तरेण
देवदत्तरहितपरशुवत्कर्तृत्वव्यापारासमर्थत्वादचेतयमानमचेतनमेव स्यात् । न च ज्ञानज्ञानि-
नोर्युतसिद्धयोस्संयोगेन चेतनत्वं द्रव्यस्य निर्विशेषस्य गुणानां निराश्रयाणां शून्यत्वादिति॥४८॥

यदि होय अर्थान्तरपना, अन्योन्य ज्ञानी-ज्ञान में।

दोनों अचेतनता लहें, संभव नहीं अतएव यह॥४८॥

अन्वयार्थ :- [ज्ञानी] यदि ज्ञानी (-आत्मा) [च] और [ज्ञानं] ज्ञान [सदा]
सदा [अन्योऽन्यस्य] परस्पर [अर्थान्तरिते तु] अर्थान्तरभूत (भिन्नपदार्थभूत) हों तो
[द्वयोः] दोनों को [अचेतनत्वं प्रसजति] अचेतनपने का प्रसंग आये-[सम्यग्
जिनावमतम्] जो कि जिनों को सम्यक् प्रकार से असंमत है।

टीका:-द्रव्य और गुणों को अर्थान्तरपना हो तो यह (निम्नानुसार) दोष आयेगा।

यदि ज्ञानी (-आत्मा) ज्ञान से अर्थान्तरभूत हो तो (आत्मा) अपने करण-अंश
बिना, कुल्हाड़ी रहित देवदत्त की भाँति, 'करण का व्यापार करने में असमर्थ होने से नहीं
चेतता (-जानता) हुआ अचेतन ही होगा। और यदि ज्ञान ज्ञानी से (-आत्मा से)
अर्थान्तरभूत हो तो ज्ञान अपने कर्तृ-अंश के बिना, देवदत्त रहित कुल्हाड़ी की भाँति,

१. करण का व्यापार=साधन का कार्य। (आत्मा कर्ता है और ज्ञान करण है। यदि आत्मा
ज्ञान से भिन्न ही हो तो आत्मा साधन का व्यापार अर्थात् ज्ञान का कार्य करने में असमर्थ
होने से जान नहीं सकेगा इसलिए आत्मा को अचेतनत्व आ जायेगा।)

अपने ^१कर्ता का व्यापार करने में असमर्थ होने से नहीं चेतता (-जानता) हुआ अचेतन ही होगा। पुनश्च, ^२युतसिद्ध ऐसे ज्ञान और ज्ञानी को (-ज्ञान और आत्मा को) संयोग से चेतनपना हो, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि निर्विशेष द्रव्य और निराश्रय गुण शून्य होते हैं॥४८॥

गाथा - ४८ पर प्रवचन

गाणी गाणं च सदा अर्थंतरिदा दु अणमणस्स।

दोणहं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं॥४८॥

वह 'जिन' को मान्य नहीं। आहा! भगवान का नाम लेकर कहा, कहते हैं। क्या करे दुनिया माने नहीं इसलिए। इसकी टीका :- टीका है न! द्रव्य और गुणों को... द्रव्य अर्थात् वस्तु और गुण अर्थात् शक्ति का स्वभाव। अर्थान्तरपना.... अर्थात् अन्य पदार्थपना हो, भिन्न-भिन्न अस्तित्व यदि हो तो यह (निम्नानुसार) दोष आयेगा।

भगवान आत्मा और ज्ञान-आनन्दगुण। यह आनन्द, ज्ञानगुण का पदार्थपना भिन्न और आत्मा का अस्तित्व भिन्न, ऐसा यदि हो तो उसमें महादोष आता है। क्योंकि वस्तु ऐसी है नहीं। अरे! गजब बात! पहले तो प्रश्न क्या है, यह समझ में आता है? इसी प्रकार परमाणु। एक पॉइन्ट है न पॉइन्ट। उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श गुण। वह परमाणु

१. कर्ता का व्यापार=कर्ता का कार्य। (ज्ञान करण है और आत्मा कर्ता है। यदि ज्ञान आत्मा से भिन्न ही हो तो ज्ञान कर्ता का व्यापार अर्थात् आत्मा का कार्य करने में असमर्थ होने से जान नहीं सकेगा इसलिए ज्ञान को अचेतनपना आ जावेगा।)
२. युतसिद्ध=जुड़कर सिद्ध हुए; समवाय से-संयोग से सिद्ध हुए। (जिस प्रकार लकड़ी और मनुष्य पृथक् होने पर भी लकड़ी के योग से मनुष्य 'लकड़ीवाला' होता है, उसी प्रकार ज्ञान और आत्मा पृथक् होने पर भी ज्ञान के साथ युक्त होकर आत्मा 'ज्ञानवाला (-ज्ञानी)' होता है, ऐसा भी नहीं है। लकड़ी और मनुष्य की भाँति ज्ञान और आत्मा कभी पृथक् होंगे ही कैसे? विशेषरहित द्रव्य हो ही नहीं सकता, इसलिए ज्ञान रहित आत्मा कैसा? और आश्रय बिना गुण हो ही नहीं सकता, इसलिए आत्मा के बिना ज्ञान कैसा? इसलिए 'लकड़ी' और 'लकड़ीवाले' की भाँति 'ज्ञान' और 'ज्ञानी' का युतसिद्धपना घटित नहीं होता।)

है, परमाणु—रजकण, पॉइन्ट और उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श गुण। इस गुण का अर्थ भिन्न—पदार्थ भिन्न और द्रव्य का पदार्थ भिन्न, ऐसा होवे तो महा दोष आता है। गुण बिना का गुणी और गुणी बिना का गुण, ऐसा होवे तो गुणी भी नहीं रहता और गुण भी नहीं रहता। ऐसा सिद्ध करते हैं। गजब भाई! अब नीचे अर्थ करते हैं।

यदि ज्ञानी (-आत्मा)... ज्ञानी अर्थात् आत्मा। ज्ञान का धारक आत्मा। राग को धारण करनेवाला और शरीर को धारण करनेवाला वह नहीं है। धर्मात्मा अर्थात् ज्ञानी आत्मा ज्ञान से अर्थान्तरभूत हो... ज्ञान वस्तु से आत्मा की वस्तु भिन्न हो, अर्थान्तर, अर्थ अर्थात् पदार्थ से अन्तर अर्थात् अन्य। ज्ञानगुण का पदार्थ अन्य और गुणी-ज्ञानी का पदार्थ अन्य हो तो अपने करण-अंश बिना,... क्योंकि ज्ञान तो उसका करण है। कर्ता आत्मा है। कर्ता आत्मा और ज्ञान करण है। यदि ज्ञान और ज्ञानी का पदार्थ भिन्न हो तो अपने करण-अंश बिना, कुल्हाड़ी रहित देवदत्त की भाँति... यह देवदत्त कुल्हाड़ी बिना करण का व्यापार करने में असमर्थ... है। देवदत्त है और हथौड़ी—अंकुश नहीं तो क्या कर सकता है? करण नहीं तो क्या कर सकता है? उसी प्रकार आत्मा और ज्ञान भिन्न है और आत्मा भिन्न है तो आत्मा ज्ञान करण बिना आत्मा जानने की क्रिया नहीं कर सकता। अरे! अरे! गजब बात, भाई!

यहाँ तो धर्म के विज्ञान का विज्ञान है। समझ में आया? आत्मा ज्ञान अर्थात् गुण जो है, उससे गुणी, गुणी से गुण यदि भिन्न पदार्थ हो तो गुणी अपने गुण बिना, गुण के करण बिना, गुण के साधन बिना, वह गुण तो अन्य हो गये, गुणी अन्य हो गया। तो गुण तो साधन रहा नहीं। अपने कारण अंश बिना कुल्हाड़ी रहित देवदत्त की भाँति। कुल्हाड़ी-देवदत्त की भाँति। करण का व्यापार—साधन का कार्य। लो! नीचे।

आत्मा कर्ता है और ज्ञान करण है। यदि आत्मा ज्ञान से भिन्न ही हो तो आत्मा साधन का व्यापार अर्थात् ज्ञान का कार्य करने में असमर्थ होने से जान नहीं सकता, इसलिए आत्मा को अचेतनपना आवे। कुल्हाड़ी बिना देवदत्त काम नहीं कर सकता, उसी प्रकार आत्मा और ज्ञान दोनों भिन्न हों तो जानने के करण बिना आत्मा जानने का कार्य नहीं कर सकता। इसलिए ज्ञान और आत्मा एक है, भिन्न पदार्थ नहीं, ऐसा विशेष सिद्ध करते हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-५०, गाथा-४८, पौष कृष्ण ५, मंगलवार, दिनांक -२७-०१-१९७०

पंचास्तिकाय, गाथा ४८। टीका :- फिर से। द्रव्य और गुणों को अर्थान्तरपना हो... यहाँ ऐसा सिद्ध करना है कि आत्मा वस्तु है और ज्ञान उसका स्वभाव-गुण है। वह अभेद है। ज्ञान बाहर से आकर द्रव्य के साथ लगा है, ऐसा नहीं है। वह द्रव्य का स्वभाव ही ज्ञान है। उसका स्वभाव पुण्य-पाप और पर में होना, जाना, वह है नहीं। तो वह ज्ञानस्वभावी आत्मा, कहते हैं कि ज्ञानगुण और आत्मा द्रव्य, दोनों अर्थान्तरपना हो, दोनों का पदार्थ भिन्न हो, ज्ञान पदार्थ भिन्न और आत्मा पदार्थ भिन्न हो तो यह (निम्नानुसार) दोष आयेगा। देखो! यहाँ अभेद कर्ता और करण वर्णन करते हैं। भेद कर्ता और करण पर, वह वस्तु कथनमात्र है। वह वस्तु सच्ची नहीं है। समझ में आया ?

कहते हैं न कि भाई! धर्म करने में साधन क्या ? यह यहाँ कहते हैं। कि ज्ञानी अर्थात् आत्मा ज्ञान से अर्थान्तर अर्थ अर्थात् पदार्थ, अन्तर अर्थात् भिन्न। भिन्न पदार्थ हो, आत्मा और उसका ज्ञानस्वभाव दोनों भिन्न हों तो आत्मा अपने करण-अंश बिना, करण-अंश बिना। करण, यह ज्ञान करण है, ज्ञान साधन है। समझ में आया ? उपयोग जानने-देखने की आत्मा की पर्याय, उसका साधन ज्ञान है। पुण्य-पाप के विकल्प निमित्त उसका साधन नहीं है। कहते हैं न कि यह चश्मे के बिना कैसे ज्ञात हो ? अमुक के बिना कैसे हो ? परन्तु यह कहते हैं कि पर के कारण से साधन उसमें है ही नहीं।

यह आत्मा अर्थात् धर्मी, ज्ञानी और ज्ञान उसका गुण, यह उससे अर्थान्तर हो तो (आत्मा) अपने करण-अंश बिना,... करण अर्थात् साधन के अंश बिना। अंशी ऐसा आत्मा कर्ता और ज्ञान यदि उससे भिन्न हो तो उसका करण अंश तो भिन्न हुआ। और भिन्न हुआ तो वह ज्ञान का कार्य कर नहीं सकता। समझ में आया ? गये होंगे ऐसा न ? सेठ के साथ राजकोट, दाँत का था। यहाँ ऐसा कहते हैं कि आत्मा के जानने-देखने की पर्याय के व्यापार में कर्ता आत्मा और उसका ज्ञान, वह साधन का अंश है। वह करण है। पुण्य-पाप के विकल्प और इन्द्रियों से जानता है, यह बात है नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वह वास्तव में साधन आत्म द्रव्य है, वस्तु है अर्थात् ज्ञानी है। उसका

स्वभाव गुण, वह ज्ञान है। वह ज्ञान और गुणी द्रव्य दोनों भिन्न हों तो आत्मा करण अर्थात् साधन के बिना वह अकेला अचेतन हो जाये।

करण-अंश बिना, कुल्हाड़ी रहित देवदत्त की भाँति... हाथ में कुल्हाड़ी न हो और देवदत्त कुल्हाड़ी से काम करे—यह कुल्हाड़ी न हो तो काम नहीं कर सकता। यह तो दृष्टान्त दिया है। इसी प्रकार आत्मा और ज्ञानगुण, दोनों अभेद न हो, एक न हो, और ज्ञान तथा आत्मा भिन्न हों तो भिन्न द्वारा काम नहीं कर सकता। एक अभेद हो तो काम कर सकता है। अरे! गजब न्याय! **कुल्हाड़ी रहित देवदत्त की भाँति करण का व्यापार...** नीचे है साधन का कार्य। करण का व्यापार अर्थात् ज्ञानरूपी साधन। कर्ता आत्मा और साधन ज्ञान, उसका व्यापार अर्थात् कार्य। आत्मा कर्ता है और ज्ञान उसका साधन-करण है। यदि आत्मा ज्ञान से भिन्न ही हो-भिन्न ही हो तो आत्मा साधन का व्यापार अर्थात् ज्ञान का कार्य, साधन का व्यापार अर्थात् ज्ञान साधन का कार्य करने में असमर्थ होगा। तो जान नहीं सकेगा। इसलिए आत्मा को अचेतनपना आयेगा। इतनी बात युक्ति से—न्याय से तो सिद्ध की है।

कुल्हाड़ी रहित देवदत्त की भाँति करण का व्यापार... साधन का व्यापार। आत्मा कर्ता, ज्ञानी द्रव्य-ज्ञान भिन्न हो तो ज्ञान का करण का जो कार्य, वह आत्मा साधन बिना, साधन तो भिन्न पड़ा है। समझ में आया? आत्मा का ज्ञान, ज्ञान के साथ अभेद हो तो वह साधन का कार्य कर सकता है। जानने का कार्य कर सकता है, परन्तु ज्ञान भिन्न हो तो वह साधन बिना कार्य नहीं कर सकता। जैसे कुल्हाड़ी बिना देवदत्त कुल्हाड़ी बिना काम नहीं कर सकता। दृष्टान्त।

करने में असमर्थ होने से... कौन? आत्मा। साधन का व्यापार, क्योंकि साधन ज्ञान पदार्थ आत्मा से तो भिन्न है। ऐसा यदि हो तो ज्ञान का कार्य जानना, उसे करने में आत्मा असमर्थ होगा। **असमर्थ होने से न चेतता (-जानता) हुआ अचेतन ही होगा।** वह आत्मा अचेतन हो जायेगा। यह एक दोष आता है। समझ में आया?

इस शरीर द्वारा करना और इन्द्रिय द्वारा जानना, यह बात तो एकदम खोटी है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : साधन बिना ऑपरेशन हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह साधन बिना ऑपरेशन, यह साधन किसे कहना ? ऐ डॉक्टर ! यह प्रश्न करते हैं। उसका साधन तो ज्ञान है। बाहर की क्रिया का साधन, उसका गुण है। परमाणु का गुण जो है, वह परमाणु कर्ता और उसका गुण, वह साधन होने का कार्य है। आत्मा नहीं करता। इंजैक्शन लगाये और अमुक करे और ऐसा करे। परमाणु द्रव्य है और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श उसके गुण हैं। वे गुण और गुणी दोनों अत्यन्त भिन्न हों तो परमाणु गुण के साधन बिना करण का कार्य नहीं कर सकेगा। वह परमाणु नहीं कर सकेगा। आत्मा ऐसा कर सके, ऐसा नहीं। गजब बात भाई ! समझ में आया ?

यह जो अँगुली है, यह अँगुली। वह अँगुली परमाणु है, उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श और रूपान्तर होना, ऐसी उसकी शक्ति और गुण है। यह गुण और यह परमाणु यदि भिन्न हों तो अर्थान्तर हुआ। दो पदार्थ भिन्न हो गये। भिन्न हुए इसलिए परमाणु उसके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श गुण बिना साधन का कार्य वह उसका कार्य है—गुण का, उसे कर नहीं सकता। उसका परमाणु कर नहीं सकता। आत्मा कर नहीं सकता, ऐसा नहीं। लॉजिक से—न्याय से तो विज्ञान बताते हैं। कहो, समझ में आया ?

राग बिना कर नहीं सकते, ऐसा नहीं है। आत्मा अपना कार्य राग बिना करता है। पर बिना ही स्वयं काम करता है। पर के काम पर बिना नहीं होते। पर बिना पर के कार्य अपने (आत्मा) बिना होते हैं। समझ में आया ? यदि भगवान आत्मा, और वह वस्तु हुई वह तो। अब उसका ज्ञानगुण जो है, स्वभाव है वह स्वभावी वस्तु और स्वभाव दोनों की भिन्नता पदार्थ का अस्तित्व भिन्न हो तो आत्मा साधनरूपी ज्ञान के कार्य को कर नहीं सकता। अचेतन हो जायेगा। ज्ञान साधन नहीं तो आत्मा अचेतन हो जायेगा। समझ में आया ? वह सब लॉजिक और बॉजिक बी.ए. के और एम.ए. के आवे परन्तु यह नहीं आते। आहाहा ! समझ में आया ? हैं ? आत्मा अचेतन हो जाये। रहे सही, परन्तु अचेतन रहे, ऐसा। गुण बिना का रहे। गुण का साधन कार्य—गुण का साधन क्या ? कार्य ज्ञान का। जानना। वह जानना कर नहीं सके। अर्थात् अचेतन हो। कहो, धीरुभाई ! जड़ हो जाये। आहाहा ! देखो न, कैसी बात ! परमात्मा।

भाई! तू तेरा स्वभाववान है। स्वभाववान और स्वभाव दोनों भिन्न चीज़ नहीं है। स्वभाव का अस्तित्व कहीं और स्वभावी का अस्तित्व कहीं, ऐसा नहीं है। तेरा स्वभाव जानना, देखना, आनन्द वह स्वभाव और स्वभाववान तू, दोनों अभिन्न चीज़ है। यदि अत्यन्त भिन्न हो तो आत्मा भिन्न चीज़ जो जानना-देखना ऐसा जो स्वभाव, उसका जो कार्य जानना, वह भिन्न साधन से जो हो तो स्वयं से हो नहीं। स्वयं तो अचेतन हुआ। समझ में आया? अरे! ऐसी बात! हैं?

यहाँ तो वस्तु अभेद है। कर्ता और कार्य दोनों अभेद होते हैं। कर्ता का अस्तित्व कहीं और साधन और गुण का, करण का अस्तित्व कहीं, ऐसा नहीं होता—ऐसा कहते हैं। बहुत से कहते हैं न, कर्ता आत्मा और शरीर आत्मा का करण। कहते हैं कि झूठी बात है। ऐसा नहीं हो सकता। जरा भी भागीदारी नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। इसके लिए तो यह बात की है। हैं? जरा भी भागीदार नहीं। तुझे तत्त्व की भी खबर नहीं। अब तत्त्व जिस प्रकार से है, उस रीति की सम्यक्ता जहाँ दृष्टि में न आवे तो उसे सम्यक्ज्ञान और सम्यग्दर्शन होता नहीं। और उसके बिना जो कुछ विकल्प आदि करे, वह सब अधर्म है। आहाहा! समझ में आया?

इसमें तो इनकार करते हैं। गुरु द्वारा नहीं, इन्द्रिय द्वारा नहीं, मन द्वारा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसे गुण चाहिए, इसके पास, बस इतनी बात है। गुणी वस्तु है, उसका गुण अभेद है। अभेद यदि न हो और यदि भेद हो तो आत्मा कर्ता साधन के भिन्नपने के कारण उस साधन का कार्य जानना, वह अकेला अचेतन नहीं कर सकता। प्रवीणभाई! है या नहीं इसमें? आहाहा!

कहते हैं कि इसने जानने का कार्य अपने गुण द्वारा किया है। क्या? निमित्त द्वारा नहीं। यह शुभ विकल्प उठता है, उसके द्वारा नहीं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि विकल्प को... चेतन को और ज्ञान को आत्मा को तादात्म्यसम्बन्ध है। परन्तु राग को और आत्मा को तादात्म्य सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के जो भाव हैं, वह विकल्प है, राग है। उसे और आत्मा को एकरूप सम्बन्ध नहीं है। वह तो संयोगीभाव है। परन्तु ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, विकाररहितता ऐसे गुण और

आत्मा दोनों अभेद है, कि जिससे अपने स्वभावरूप साधन द्वारा कर्ता कार्य ज्ञान का करता है। स्वभावरूप साधन द्वारा आत्मा अपने सम्यग्दर्शन का कार्य करता है। सम्यग्दर्शन श्रद्धा और आत्मा दोनों भिन्न पदार्थ नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

श्रद्धा हों! श्रद्धा त्रिकाली। त्रिकाली श्रद्धा नाम का गुण और आत्मा दोनों अर्थान्तर अर्थात् अन्य पदार्थ हो तो आत्मा श्रद्धागुण के साधन बिना श्रद्धा का कार्य नहीं कर सकता। तो श्रद्धागुण बिना का आत्मा अकेला श्रद्धा बिना का सिद्ध हुआ खाली। ऐसा हो नहीं सकता। आहाहा! देखो न, कैसी बात आयी! गजब बात! नाथुलालजी! अब यह सब समझने की दरकार नहीं। और यह बाहर से फिर बेचारे उलझकर यह कुछ करो और करो और कुछ फलेगा। एक व्यक्ति कहता था। मैंने यह चालीस वर्ष से मुँडाया है। तुम कहते हो, ऐसा नहीं। परन्तु यह मुँडाया है तो कुछ तो फलेगा या नहीं? लो! ऐसा कहता था। यहाँ खड़े-खड़े वह कहता था। चर्चा थोड़ी सी चली फिर उलझन में आ गया। फिर कहे, परन्तु यह तुम कहते हो किन्तु यह चालीस वर्ष से मुँडाया है, साधु हुए हैं, कुछ तो फर्क होगा या नहीं? साधु भी हुए हैं ही कब अभी?

स्वभाव का साधन करके कर्ता अपनी वीतरागी पर्याय को प्रगट करे, उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और साधुपना कहते हैं। अब उसकी तो खबर नहीं होती। यह बाहर की क्रिया-साधन करते हैं तो अन्तर की दशा प्रगट होगी। वह तो साधन पर हुआ। भिन्न साधन हुआ। भिन्न साधन हो नहीं सकता। समझ में आया? परन्तु भारी कठिन काम, भाई! जगत के साथ मूल तत्त्व की बात का मिलान करना... लोग तो इसी प्रकार कहे, यह तो एकान्त है, एकान्त है। चिल्लाहट मचाये तो भी यह वस्तु तो ऐसी है। तेरा नाथ परमात्मा वह चैतन्य ज्ञानगुण का स्वामी है। और वह गुण का स्वामी अपने गुण द्वारा अपना कार्य धर्म का करता है। इसके बिना किसी साधन से कर सके, ऐसा वस्तु में नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इसी तरह चारित्रगुण और आत्मा गुणी, दोनों के अस्तित्व में भेद नहीं है। चारित्रगुण है आत्मा का, वीतरागता। वीतरागता का धारक आत्मा। वीतरागता का गुण, वह वीतरागता का गुण और आत्मा दोनों अर्थ अर्थात् पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रदेश में, भिन्न-

भिन्न क्षेत्र में हों, भिन्न भाव से हो तो आत्मा चारित्रगुण बिना चारित्र का कार्य जो वीतरागी पर्याय, उसे नहीं कर सकता। अरे! समझ में आया ?

पुण्य-पाप के भाव बिना नहीं कर सकता, ऐसा यहाँ नहीं लिया। हैं? कि व्यवहार न हो तो चारित्र नहीं कर सकता, ऐसा नहीं है। चारित्रगुण उसका जो त्रिकाली वीतराग स्वभाव से भरपूर भगवान, वह वीतराग स्वभाव और स्वभाववान दो भिन्न चीज़ यदि हो तो वीतराग स्वभाव द्वारा आत्मा कर्ता होकर जो कार्य वीतरागी दशा चारित्र का करना, वह नहीं हो सकता। कठिन, भाई! ऐसा साधारण महिलाओं को और सबको ऐसा समझ में आता होगा ?

मुमुक्षु : क्यों न समझ में आये ? आत्मा है या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा, परन्तु यह तो सादी भाषा है। इसमें कोई भंगभेद या अंक नहीं भरने पड़ते।

वस्तु है, वस्तु का स्वभाव है। वह उस स्वभाव का कार्य हो, यह तीन बातें। तो कहते हैं कि भगवान आत्मा वस्तु है, उसमें ज्ञान-श्रद्धा-आनन्द आदि उसके गुण हैं। वह गुण और गुणी का अस्तित्व अन्तर पड़कर भेद हो तो कर्ता गुण के साधन बिना गुण का कार्य वीतरागी पर्याय आदि नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें ?

यह एक बात ली। आत्मा और ज्ञान दोनों भिन्न हो तो (क्या दोष आवे) ? अब दूसरी बात। और ज्ञान तथा ज्ञानी यदि भिन्न हो तो, अब गुण और गुणी भिन्न हो तो—पहले गुणी और गुण भिन्न लिये। अब गुण और गुणी भिन्न हो तो। इस प्रकार बदलकर बात करते हैं।

यदि ज्ञान... गुण ज्ञानी... अर्थात् (-आत्मा से) अर्थान्तर... अर्थात् अन्य पदार्थ हो तो ज्ञान अपने कर्तृ-अंश के बिना,... तो ज्ञान नाम का गुण, उसके कर्तारूपी द्रव्य के अंश बिना देवदत्त रहित कुल्हाड़ी की भाँति,... देवदत्त बिना की कुल्हाड़ी की भाँति। देवदत्त नहीं और अकेली कुल्हाड़ी है। क्या करे ? पहला कुल्हाड़ी है और देवदत्त नहीं। यह देवदत्त है और कुल्हाड़ी नहीं, ऐसा कहते हैं अब। कठिन, भाई! समझ में आया ?

अन्तर का भगवान आत्मा ज्ञानगुण से, आनन्दगुण से वस्तु है, तत्त्व आत्मा, वह (चीज़) यदि भिन्न हो तो कर्ता-अंश बिना वह गुण अपना साधन कार्य नहीं कर सकता। नहीं तो वह ज्ञान स्वयं आत्मा बिना का अचेतन होगा। वह ज्ञान आत्मा बिना का अचेतन होगा। पहले ज्ञान बिना का आत्मा अचेतन होगा। यहाँ आत्मा बिना का ज्ञान अचेतन होगा। ठाकोरदासजी! कठिन बातें भाई!

अब अपने जैनधर्म समझना है, भाई! जैनधर्म तो यह छह काय की दया पालना, व्रत पालना, सूर्यास्तपूर्व भोजन करना, कन्दमूल नहीं खाना। भाई! सुन न अब, क्या चीज़ है। अभी वह मशकरी करता था कि यह जड़ का करना जड़ खाये। मौज-शौक करो, आत्मा को कुछ नहीं होगा। परन्तु जड़ की क्रिया आत्मा कर ही कब सकता है? मौज-शौक क्या करे धूल! कहो, समझ में आया? जड़ के साधनवाला उसका गुण तो जड़ में है। उसके साधन गुण द्वारा जड़ का कार्य होता है। हैं? ऐ धीरुभाई! कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

भाई! वह तेरे सत् परमेश्वर और तेरा सत् ज्ञान या श्रद्धा या आनन्द या चारित्र या वीतरागता, वह दोनों भिन्न चीज़ नहीं हो सकती, हों! समझ में आया? इसलिए भिन्न तू शोधने जाये, पुण्य-पाप में शोधने जाये, देह की क्रिया में शोधने जाये तो वह तो भिन्न चीज़ है। ऐसा यदि ज्ञान और आनन्द और चारित्रगुण और जो शक्ति है, (वह) भिन्न हो तो आत्मा उस भिन्न शक्ति बिना का अचेतन हो जाये। और वह ज्ञानगुण है, वह गुणी बिना का हो तो वह कर्ता बिना का वह गुण भी अपना कार्य नहीं कर सकेगा। तो वह ज्ञानगुण और श्रद्धागुण भी अचेतन हो जायेगा। न्याय समझ में आता है कुछ?

कर्ता भगवान आत्मा और ज्ञान, दर्शन आदि गुण हैं, वे उसके करण अर्थात् साधन हैं। इस साधन द्वारा उसकी धर्म की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! ऐसी बात की है। देखो तो सही! समझ में आया? इसकी इन्द्रियाँ मन और पुण्य-पाप के विकल्प यह इसका साधन ही नहीं। क्योंकि वह भिन्न चीज़ का अस्तित्व है। समझ में आया? यह साधन की चिल्लाहट करते हैं न? साधन क्या... साधन क्या?

इसमें भी आगे आयेगा। व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। यह तो व्यवहार

व्यवहारनय से साधन का ज्ञान कराया। साधन तो इसका गुण और आनन्द आदि जो शक्तियाँ हैं, उस शक्तिवान को उसकी शक्ति साधन है। समझ में आया ? और उस शक्ति को कर्ता जो आत्मा है, वह कारण है। तब उसका कार्य होता है। कहो, समझ में आया ?

यह बात मूल परमेश्वर वीतराग की है। तीन लोक के नाथ परमात्मा ने वस्तु की स्थिति ऐसी देखी है और वह ख्याल में आकर जँच सके, ऐसी है। इसके ख्याल में न आवे, ऐसी यह चीज़ नहीं है। समझाया है तो समझनेवाले को समझाते हैं। समझ में आया ? किसी जड़ को नहीं कहते। भाई ! तू आत्मा है न ? हाँ, तो उसमें कोई गुण है या नहीं ? गुण बिना का गुणी होगा ? गुण-शक्ति बिना का तत्त्व होगा ? तो गुण अर्थात् शक्ति। ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, आनन्दशक्ति, शान्तिशक्ति—ऐसी शक्तियों का कोई भगवान भण्डार है। उस शक्ति से यदि आत्मा दूसरा हो तो आत्मा उस शक्ति के साधन बिना का कार्य कर नहीं सकता तो आत्मा अचेतन और गुण बिना का खाली हो जायेगा। और वह गुण है, वह गुणी बिना का हो, अब दूसरा बोल ऐसा चलता है। डॉक्टर ! लॉजिक से तो सब बात चलती है, हों ! ध्यान रखे तो बराबर। यह तो समझना पड़ेगा, हों ! धूल-धाणी में सब समय मुफ्त में व्यतीत किया है। ठाकोरदासभाई ! बराबर है या नहीं ? स्वरूपचन्दभाई ! इतना समय व्यतीत किया मुफ्त में हैरान होकर। आहाहा !

भगवान ! तेरे घर में—तेरे घर में क्या है, कहते हैं। तेरे घर में—तू वस्तु और तेरे घर में भाव में तो आनन्द और ज्ञान और शान्ति पड़ी है। वह शान्ति और आनन्द के साथ आत्मा को तादात्म्य सम्बन्ध है, तदरूप सम्बन्ध है। पुण्य-पाप के विकल्प को संयोगभावसम्बन्ध है। शरीर, वाणी, मन को अन्यभावरूपी सम्बन्ध है। वह तो अन्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

यदि ज्ञान आत्मा से—ज्ञानी से अर्थान्तर अर्थात् अर्थ-अन्तर उसका पदार्थपना भिन्न हो। ज्ञान से आत्मा का भिन्नपना हो तो ज्ञान उसके कर्तृ-अंश बिना, उस गुण के, गुण तो साधन है-शक्ति है। और वह कर्ता आत्मा नहीं और गुण से गुणी अत्यन्त भिन्न है तो कर्ता के अंश बिना,... देखो ! कर्ता एक अंश लिया। भाई ! उस समय का कर्तापना है न ! वह कर्ता एक अंश बिना देवदत्त बिना की अकेली कुल्हाड़ी की भाँति... देवदत्त

नहीं और कुल्हाड़ी है और कुल्हाड़ी से काम होता है न, ऐसा नहीं हो सकता। यह तो दृष्टान्त है, हों! आहाहा! कुल्हाड़ी कुल्हाड़ी से काम होता है, देवदत्त देवदत्त से काम होता है। यह तो दृष्टान्त कहकर सिद्धान्त सिद्ध करना है। उसका एक अंश सिद्ध करना है।

देवदत्त रहित कुल्हाड़ी की भाँति, अपने कर्ता का व्यापार करने में... है? कर्ता का व्यापार। कर्ता का कार्य। वह साधन का कार्य था। यह कर्ता का कार्य। ज्ञान करण है, और आत्मा कर्ता है। यदि ज्ञान आत्मा से भिन्न ही हो तो ज्ञान कर्ता का व्यापार आत्मा का कार्य करने में असमर्थ होने से जान नहीं सकता। इसलिए ज्ञान को अचेतनपना होगा। उस आत्मा को अचेतनपना आता है। यह ज्ञान को अचेतनपना आता है। समझ में आया या नहीं? रमणीकभाई! ऐसी चीज़ है। यह सब समझनी पड़ेगी, हों! आहा! इस विद्यालय में चढ़ा नहीं, ...! ज्ञानी की कसरत की शिक्षा में कसरत कैसी है, उसमें आया नहीं। कसरत करना इसे नहीं आयी। कहो, भीखूभाई! आहाहा! भाई! ज्ञानी अर्थात् आत्मा। उसकी शिक्षा कसरत, ऐसा और वापस।

इसका ज्ञानस्वभाव है, आनन्दस्वभाव है। समकित-श्रद्धा इसका त्रिकाली स्वभाव है। वीतरागीभाव इसका स्वभाव है। वह स्वभाव, स्वभाव बिना का हो तो स्वभाव बिना का जो जीव है, वह कर्ता बिना का उसका स्वभाव कर्ता का कार्य नहीं कर सकता। आहाहा!

देखो! असमर्थ होने से नहीं चेतता (-जानता) हुआ... कौन? ज्ञान। ज्ञान नहीं जानता हुआ। क्योंकि ज्ञान का अस्तित्व आत्मा से भिन्नपना है। इसलिए आत्मा का बिना ज्ञान, ज्ञान का कार्य नहीं कर सकता। इसलिए वह ज्ञान अचेतन ही होगा। दो बातें। अब तीसरी बात। तीसरी बात डाली अधिक।

णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदा दु अण्णमण्णस्स।

दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं॥४८॥

तीसरा बोल ऊपर से डाला है। फिर कहेंगे सही न! बाद में कहेंगे कि यहाँ से डाला है। यह अमृतचन्द्राचार्य की शैली है।

तीसरा बोल क्या है? युतसिद्ध ऐसे ज्ञान और ज्ञानी को (-ज्ञान और आत्मा

को) संयोग से चेतनपना हो... (ऐसा नहीं) अर्थात् क्या ? कि ज्ञानी आत्मा भिन्न और ज्ञान भिन्न। वह ज्ञान जुड़कर ज्ञानी हुआ। समवाय सम्बन्ध कहते हैं। यह लकड़ी भिन्न और क्या कहलाता है ? अन्दर डालने की-कीली। यह कीली और लकड़ी दोनों भिन्न, फिर कीली अन्दर गयी, तब उसका सम्बन्ध हुआ। उसी प्रकार आत्मा और ज्ञान दोनों भिन्न थे, भिन्न पदार्थ। फिर वह भिन्न पदार्थ आत्मा के साथ जुड़ गया, तब आत्मा हुआ, ऐसा हो तो भी विरोध है। ऐसा नहीं होता। न्याय समझ में आता है ?

युतसिद्ध... देखो ! नीचे है। जुड़कर सिद्ध हुए। समवाय से-संयोग से सिद्ध हुए। संयोग से सिद्ध हुए, ऐसा। जिस प्रकार लकड़ी और मनुष्य पृथक् होने पर भी... देखो ! नीचे नोट (फुटनोट) है। लकड़ी के योग से मनुष्य 'लकड़ीवाला' होता है। लकड़ी के सम्बन्ध से मनुष्य लकड़ीवाला होता है। उसी प्रकार ज्ञान और आत्मा पृथक् होने पर भी... वह लकड़ी पृथक् और मनुष्य पृथक्, उसी प्रकार ज्ञान पृथक् और आत्मा पृथक्, ऐसा होने पर भी ज्ञान के साथ युक्त होकर आत्मा 'ज्ञानवाला' (-ज्ञानी) होता है, ऐसा भी नहीं है। लकड़ी और मनुष्य की भाँति ज्ञान और आत्मा कभी पृथक् होंगे ही कैसे ? लकड़ी और मनुष्य तो पृथक् है। उसी प्रकार ज्ञान और आत्मा कभी पृथक् नहीं हैं। पृथक् नहीं कि पृथक् लकड़ीवाला उसे कहा जाये, उसी प्रकार ज्ञान भिन्न था, उसे ज्ञानवाला आत्मा कहा जाये, ऐसा नहीं है। गजब न्याय, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

विशेषरहित द्रव्य हो सकता ही नहीं। पाठ में आयेगा। इसलिए ज्ञान बिना का आत्मा कैसा ? द्रव्य का वस्तुपना उसके गुण के विषेय बिना वह द्रव्य हो नहीं सकता। इसलिए ज्ञान बिना का आत्मा कैसा ? और आश्रय बिना गुण हो सकते ही नहीं। गुण का आधार न हो और गुण रहे, ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए आत्मा बिना ज्ञान कैसा ? इसलिए 'लकड़ी' और 'लकड़ीवाला' की भाँति 'ज्ञान' और 'ज्ञानी' का युतसिद्धपना घटित नहीं होता। क्या कहा, समझ में आया ? पैसावाला, लकड़ीवाला। तो पैसा भी भिन्न और वह भी भिन्न। पैसावाला कहलाया। इसी प्रकार कहते हैं कि ज्ञान भिन्न और आत्मा भी भिन्न। फिर ज्ञान जुड़ गया, तब ज्ञानवाला आत्मा—ऐसा है नहीं, ऐसा नहीं। हैं ? यह तो गजब, बापू ! तेरे गुण और गुणी से अभेद चीज़ है। तेरी दृष्टि अभेद पर जाने

से उस गुण का शान्ति और आनन्द का कार्य हो, वह साधन उसका गुण और आनन्द है। उसके साधन के लिये धर्म के साधन के लिये राग और पुण्य का साधन नहीं है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है।

भाई! यहाँ उपयोग को सिद्ध करना है न! हाँ, उपयोग अधिकार है। आहाहा! गजब! मेट्रिक पढ़ना हो और उसका प्रोफेसर दो घण्टे बोल जाये, हाँक रख गाडर तो सुन ले। समझे न? यह जो हो वह सच्चा, जाओ। यह क्या कहते हैं भगवान! यह भगवान प्रोफेसर है सर्वज्ञ के ज्ञान के। वे ऐसा कहते हैं कि भाई! तू और तेरा ज्ञानगुण, तू और तेरा आनन्दगुण, तू और तेरा वीतरागीगुण इन दोनों के अंश अत्यन्त भिन्न हों तो वह वीतरागभाव कर्ता बिना काम नहीं कर सकता और कर्ता वीतरागभाव बिना काम नहीं कर सकता। कर्ता साधन नहीं कर सकता। और साधन कर्ता बिना नहीं कर सकता। हैं? कहो, बराबर है? गजब! ऐसी भी धर्म की समझने की पद्धति कैसी यह?

कहते हैं कि जैसे शरीर और वाणी भिन्न है, उसी प्रकार यदि गुण और गुणी भिन्न हो तो तेरा मिलान कहीं खाये नहीं। जैसे पुण्य-पाप के भाव और आत्मा भिन्न है, उसी प्रकार आत्मा और उसकी गुण की शक्तियाँ भिन्न हों तो शक्ति के साधन बिना आत्मा उसका कार्य नहीं कर सकता। और अकेली शक्ति हो तो उसके कर्ता आत्मा बिना वह कार्य नहीं कर सकता। इसलिए साधन भी अचेतन हो जाये। ऐसी बात है। अरे! यह तो लॉजिक, इसलिए वकील और जज कोर्ट में कहे न, ऐसा माँडा है सब। (वह) न्याय सब समझने जैसा हो स्थूल। यह तो मूल मत्त्व की बात है। हैं? मूलभूत है भगवान। तेरा जानना और आनन्द जो है न, वह ज्ञान और आनन्द और आत्मा को एक माने बिना तेरी दृष्टि सच्ची होगी नहीं। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसी बात है। हाँक रखते हैं। हो जाओ, नग्न हो जाओ, साधु हो जाओ। स्त्री, पुत्र छोड़ दो। छोड़े हुए ही पड़े हैं। तुझमें कहाँ घुस गये थे? पर को छोड़ना, वह तो पर का अभिमान हुआ है। परद्रव्य का हक है तुझे छोड़ने का और लेने का? तुझमें कब थे। परद्रव्य को छोड़। तू परद्रव्य का स्वामी है कि छोड़े? समझ में आया? आहाहा!

राग को छोड़, वह भी यहाँ नहीं है, यहाँ तो कहते हैं। राग कहाँ तेरे गुण में

अन्दर घुस गया है। राग तो कृत्रिम है। तेरा गुण जो है, वह गुणी के साथ अभेद है। ऐसी अभेददृष्टि करने से राग छूट जाता है। क्योंकि छूटा हुआ ही तत्त्व है, वह सम्बन्ध छूट जाता है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द के गुणवाला है। तीन बोल रखे हैं। कि आत्मा गुण बिना का हो तो कर्तृ बिना, उस साधन बिना वह आत्मा कर्ता, काम कर नहीं सकता। देवदत्त कुल्हाड़ी बिना काट नहीं सकता उसी प्रकार।

दूसरी बात। वह गुण यदि गुणी का आश्रय, आधार और अभेद बिना का हो और यदि भेद हो तो वह गुण जो आनन्द और शान्ति और वीतरागता है, वह आत्मा के आश्रय बिना, आत्मा में अभेद बिना वह कर्ता हुए बिना वह अकेले गुण अचेतन होकर चेतन का कार्य नहीं सकता।

तीसरी बात। यह दो हुई। वे गुण भिन्न हों और आत्मा के साथ जुड़कर आवे, ऐसा हो तो भी ऐसा नहीं बन सकता। क्या कहा? देखो! क्यों? यह अन्त में कहते हैं। देखो! **युतसिद्ध ऐसे ज्ञान और ज्ञानी को संयोग से चेतनपना...** संयोग से। स्वभाव से और अभेद से नहीं। परन्तु गुण और आत्मा गुणी का संयोग से सम्बन्ध हो ऐसा भी नहीं है,... कारण? अब कारण देते हैं। वह दो का कारण दिया। **क्योंकि निर्विशेष द्रव्य...** विशेष बिना का पदार्थ और गुण आश्रय बिना के शून्य हो जायें।

विशेष बिना का द्रव्य शून्य हो और गुण को आधार द्रव्य न हो तो गुण भी शून्य हो जाये। गजब बातें, भाई! यह अब बेचारे... साठ-साठ वर्ष की बुढ़िया हो, सत्तर वर्ष की और सामायिक लेकर बैठे यह ओली करके धूल लेकर। क्या? यह तो पहले था। अभी तो घड़ी लेकर बैठे। हमार उमराला में बहुत होता था। जो हम रहते थे न कणबीवाड में, उसमें वृद्धायें बहुत रहती थी। शाम-सवेरे जाये। लड़के छोटे-छोटे घूमें और अन्दर बैठी हो... ४८ मिनिट पूरे हो जायें। धूल सही न नीचे घड़ी में से। उठे खड़े हो जायें। सामायिक हो गयी। अरे! सामायिक कहाँ आयी परन्तु तुझे? समझ में आया?

सामायिक अर्थात् कि वीतरागदशा। सामायिक अर्थात् कि वीतरागदशा। सम-आयिक है न! सामायिक, सम-समता का आय अर्थात् लाभ। ईक तो प्रत्यय है। सामायिक, समता की आय अर्थात् लाभ। ईक तो प्रत्यय है। समता का लाभ कहाँ से होगा? अभी

समता जिसमें पड़ी है और उस समता का गुणवाला गुणी है, ऐसी दृष्टि आये बिना पर्याय में समता का करण का साधन हो नहीं सकता। अरे... अरे..! कठिन बात! ऐसा तो डॉक्टर किसी दिन सुना भी नहीं होगा। नहीं? ठाकोरदासभाई! भाई, यह तो कहे.... इसे तो यह करो, इंजैक्शन देना और यह करना... बहुत तो सुनने जाये, है न कहीं कहीं ऊपरी होगा न! पदवी कहीं होगी और कहीं करते होंगे दवाखाना में पड़ी हो। अमुक में। क्या कहलाता है वह? ओनररी काम। अमुक में पदवी हो, लो न! अमुक में प्रमुख। आहाहा!

कहते हैं कि भाई! तेरा प्रमुखपना तो गुण के कारण है। बापू! आहाहा! प्रमुख-प्रकृष्ट वह मुख्य वस्तु। वह तो गुण के कारण तेरा प्रमुखपना है। और उस गुण के कारण द्रव्य का प्रमुखपना है। ऐई! आहाहा! भाई भी कहीं होंगे न तुम्हारे सोनगढ़ में यह। भाषण में न, हैं? होवे न कहीं न कहीं, बड़ी व्यक्ति हो तो कहीं लगा दे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि बड़ा किसे कहना? भगवान आत्मा अस्ति है और अस्ति है न, वस्तु है न! है, उसमें कुछ गुण है या नहीं? गुण बिना का तत्त्व अर्थात् क्या? शक्ति बिना का तत्त्व अर्थात् क्या? तत्त्व अर्थात् क्या? परन्तु जैसे आत्मा तब तो ज्ञान-दर्शन-गुण; जड़ तब तो रंग, गन्ध गुण। रंग, गन्ध गुण नहीं और परमाणु? ज्ञान, दर्शन गुण नहीं और आत्मा? अर्थात् क्या परन्तु? वहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द, ऐसा जो भाव त्रिकाली और भगवान त्रिकाली। दोनों का अस्तित्व अत्यन्त भिन्न हो तो भिन्न भाव जो गुण है, वह कर्ता बिना के काम अकेला कर नहीं सकता। और गुण है, वह गुणी बिना का—गुणी है, वह गुण बिना का हो तो गुणी उसके गुण के साधन बिना का कार्य कर नहीं सकता। क्योंकि गुण है, वह साधन है, वह तो साधन उसमें नहीं। समझ में आया? आहाहा!

महाप्रभु चैतन्य पदार्थ है। कहते हैं कि उसका स्वभाव है, वह स्वभाव अकेला भिन्न हो तो वह कर्ता बिना का साधन काम नहीं कर सकता और वह कर्ता अकेला हो तो भी वह साधन बिना काम नहीं कर सकता। दो बोल। तीसरा ऐसा कहा कि भाई है इकट्टे भले, परन्तु वे भिन्न चीजें थी न! लकड़ी में जैसे मीण लगाया लाख-लाख।

लकड़ी होती है न (उसके) लाख चुपड़ते हैं, लो! दोनों एक हो गये हैं। इस प्रकार एक है? लाखवाला लकड़ा। लकड़ीवाला मनुष्य, पैसेवाला मनुष्य, पत्नीवाला पति। तो स्त्री भिन्न और पति भिन्न ऐसे ऐसा है? कहते हैं। बाहर की चीज़ दूसरी थी, वह आत्मा के साथ चिपका दी। ज्ञान, दर्शन, आनन्द बाहर थे, उन्हें आत्मा को चिपका दिया।—ऐसा है? ऐसा नहीं। यदि ऐसा हो तो द्रव्य अर्थात् वस्तु विशेष बिना रह सके नहीं। द्रव्य उसके गुण के भेद के विशेष बिना नहीं हो सकता। और गुण उसके आधार बिना नहीं रह सकते। न्याय तो समझे, यह तो सादी भाषा है। इसमें कहीं बहुत ऐसा भंग-भेद कठिन नहीं है। कोई व्याकरण और ऐसा पढ़ा हो तो समझ में आये, ऐसी यह चीज़ नहीं है। समझ में आया?

निर्विशेष द्रव्य... है? अर्थात् क्या? विशेष बिना का पदार्थ सामान्य अकेला। विशेष बिना का पदार्थ हो सकता ही नहीं। अर्थात् कि गुण बिना का गुणी अकेला हो नहीं सकता, एक बात। **निराश्रय गुण...** और गुणों को आधार न हो और गुण रहें, ऐसा नहीं हो सकता। विशेष बिना का द्रव्य शून्य हो जाये और आश्रय बिना के गुण भी शून्य हो जाये। गजब बात, भाई! ऐसी यह धर्म की बात! कोई कहे, यह जैनधर्म की बात होगी? जैनधर्म में जायें, वहाँ बातें करे एकेन्द्रिय की दया पालना, छह काय की दया पालना।

श्रीमद् में एक जगह आता है कि भाई! पूरे दिन तुम छह काय की दया पालो, दया पालो करते हो तो चलो मुझे अब समकित की बात करो। वह हमारी तो सुनी। नवनीतभाई! श्रीमद् में आता है। पूरे दिन छह काय की दया पालो, अपवास करो, यह तो हमने बहुत बार सुनी। अब समकित की कुछ बात करना। समकित की जोगवाई करना। यह समकित क्या है? समझ में आया? इस समकित की जोगवाई की बात चलती है। और समकित बिना की चीज़ सब एक बिना के शून्य हैं। उसका त्याग भी शून्यवाला और वह साधु भी शून्यवाला अज्ञानी है। कहते हैं। आहाहा! कहो, धीरुभाई! कठिन लगे, हों! उसको बेचारे को। त्यागी, मुनि मानता हो न! कहाँ मुनि था, अब सुन न!

अन्दर आत्मा के जो अनन्त गुण हैं और तू गुणी है, दो की एकता का भाव अभेद की तो तुझे खबर नहीं। अभेद में दृष्टि देना, इसकी तो तुझे खबर नहीं और यह राग और पुण्य की क्रिया पर दृष्टि जो संयोगी चीज़ है, उस पर तेरी दृष्टि है। तू आत्मा को आत्मारूप से तूने माना और जाना नहीं। इसलिए तेरी सब क्रिया बिना एक के रण में शोर मचाने जैसी है। रण में शोर कोई सुने नहीं, ऐसा। ऐ, स्वरूपचन्दभाई! कौन सुने अकेली महिला रोती हो तो? रोती हो और फिर यदि कोई पीहरवाले मिल गये, सगे, कुटुम्ब पीहरवाले तो अधिक रुदन करे। अरे! बापू! ऐ, भाई! मुझे ऐसा हो गया। ऐसे यह तो मानो अज्ञान से तो कूटता है, रोता है। उसमें कहनेवाले मिले, हाँ, ऐसा होगा तुम्हारे। पुण्य की क्रिया से होता नहीं इसलिए रोने लगा इकट्ठा। आहाहा! नवनीतभाई! आहाहा!

प्रभु! तेरी शक्ति और शक्तिवान दोनों की एकता की प्रतीति जब तक न आवे, तब तक तेरी दृष्टि पुण्य-पाप और निमित्त पर रहती है। अरे! एक समय की अवस्था का कर्ता कौन और साधन कौन, (इसकी) खबर बिना की अवस्था पर दृष्टि रहे तो भी वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया? कहो, लक्ष्मीचन्दभाई! यह ऐसी बात है। तुम्हारे यहाँ चलता है। चलता है न वाँचन। चालू है। नैरोबी में वाँचन चलता है। अफ्रीका में-नैरोबी में यहाँ से शास्त्र ले गये हैं। हाँ, प्रतिमा ऊपर से ले गये हैं। प्लेन में। वहाँ नैरोबी में-अफ्रीका में। वे सब यहाँ के हैं। वहाँ मण्डल है। सब गृहस्थ लोग हैं सब। पन्द्रह-पन्द्रह, बीस-बीस लाख रुपये। यहाँ के इन शास्त्रों का वाँचन करते हैं। यहाँ की पुस्तकें वहाँ बसायी है। डेढ़-पौने दो लाख का स्वाध्याय मन्दिर बनाया है, नहीं? डेढ़ लाख का। आहाहा! पढ़नेयोग्य तो यह है। वह लड़का कहता था, जादवजीभाई का। पढ़नेयोग्य तो यह है, कहे। यह वह वहाँ पढ़ने ले जाते हैं। पठन तो यह सच्चा करनेयोग्य है। सच्चा पठन किये बिना और सच्ची श्रद्धा-ज्ञान पहिचाने बिना जितने व्रत और तप, सब मरकर सूख जाये बेचारे। महीने-महीने के अपवास न! कहते हैं कि राग की क्रिया का बोझा है।

रागरहित भगवान जहाँ भासित नहीं हुआ, उसे अन्तर से निर्मलता प्रगट नहीं होती और निर्मलता प्रगट हुए बिना तेरा राग अकेला बन्ध का और नुकसान का कारण

है। आहाहा! तीन बोल याद रहे कहाँ १४८ के? तीन बोल लिये। प्रवीणभाई! आत्मा वस्तु है, वैसे प्रत्येक पदार्थ की बात है। परन्तु यहाँ आत्मा की बात है न! उपयोग की बात है। भगवान आत्मा में जानना-देखना ऐसा विशुद्ध उपयोग त्रिकाल तादात्म्य है। 'सर्वहलणाणदिट्ठो जीवो उवओग लकखळो णिच्चं' (गाथा २४, समयसार) सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने आत्मा का 'उवओगो सम्भंळो दिट्ठो उवओगो लकखळं' जानने-देखने की जो शक्तिरूप उपयोग, वह त्रिकाल तेरे आत्मा में है। ऐसा भगवान ने देखा है। ऐसा जानने-देखने के उपयोग का त्रिकाल भाव, उसके बिना का जो आत्मा हो तो वह गुण के साधन बिना का कार्य कर नहीं सकता। और ज्ञान भी यदि उसके आधार बिना का—आत्मा बिना का हो तो वह आत्मा बिना का ज्ञान अकेला अचेतन का काम कर नहीं सकता। तथा ज्ञान और आनन्दगुण भिन्न हों और कहीं से चिपका देने हों, वह क्या कहलाता है? यह आगे आयेगा। ४९ गाथा में।

भाई! यह केवलज्ञान होता है न, अभी तो अल्प ज्ञान है। फिर एकदम तीन काल का ज्ञान कहाँ से आता है? बाहर से जुड़े तब आवे न? बाहर से आता है या नहीं, कहते हैं। यहाँ उसकी पर्याय में तो था नहीं। ऐई! पर्याय में—अवस्था में तो अल्पज्ञान था और एकदम केवलज्ञान हो जाये तो कहीं से आवे, तब होगा या नहीं? हैं? दृष्टि में केवल कहलाता है। यह तो कहते हैं कि तेरे द्रव्य में केवलज्ञान शक्तिरूप से पड़ा है। वहाँ से पर्याय में ज्ञान आया है। वह कहीं संयोग से आया नहीं। और दया, दान की क्रिया से भी आया नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

संयोगी भाव से आया नहीं और गुण संयोग भिन्न था और संयोग होकर आया है, ऐसा भी नहीं है। मूल तो ऐसा सिद्ध करते हैं। हैं? आत्मा तो अल्पज्ञ है। एकदम जब सर्वज्ञ हो, भाई! वह त्रिकाली ज्ञान होने की विकास शक्ति आयी कहाँ से? इसलिए कहीं था, वहाँ से जुड़ गया, ऐसा है नहीं। जैसे मिट्टी की, नयी मिट्टी हो, नयी मिट्टी, नयी मिट्टी की मटकी, उस मिट्टी को सूँघो तो गन्ध नहीं आती। पानी डालोगे तो गन्ध आयेगी। वह गन्ध पानी के कारण आयी न बाहर में। यह मिट्टी नहीं। नयी मिट्टी हो और सूँघो तो गन्ध नहीं आती। पानी डालो और तुरन्त ही गन्ध आती है। क्योंकि उस पृथ्वी में गुण नहीं था गन्ध का। पानी आया, तब गन्ध आयी—ऐसा नहीं है। वह गन्ध तो

शक्तिरूप से थी। समझ में आया ? पृथ्वी में वह प्रगटरूप से तब दिखाई दी। दिखाई दी अन्दर से गन्ध आयी है। वह गन्ध कोई बाहर से चिपकी नहीं है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान का पिण्ड प्रभु। वर्तमान दशा में अल्पज्ञान है परन्तु ज्ञानगुण और गुणी दोनों अभेद है। ऐसी दृष्टि करके स्थिर होने पर शक्ति में जो ज्ञान है, वह पर्याय में ज्ञानगुण के साधन द्वारा और ज्ञानगुण का कर्ता आत्मा द्वारा वह केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हुई है। समझ में आया ? गजब बातें, भाई! ऐसा कहते हैं, यह पर्याय तो अन्दर से आयी है यह। चौंसठ पहरी छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है न ? वह चौंसठ पहरी अन्दर से आयी है। पत्थर से नहीं। पत्थर से आवे तो पत्थर घिस डाले न! जिसमें थी] उसमें से आयी है। वह संयोग से आयी है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

एक तो ऐसा कहते हैं कि भगवान आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प संयोगीभाव है, उनसे केवलज्ञान और परमात्मदशा होती है, ऐसा तो नहीं, परन्तु उस ज्ञान की पूर्ण शक्ति बाह्य थी, अन्दर में नहीं, उससे खाली था और फिर उस शक्ति का संयोग हुआ, तब होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! यह भगवान आत्मा में शक्तिरूप से सर्वज्ञपद पड़ा है, वह सर्वज्ञपद और आत्मा का अभेदभाव है। आहाहा! समझ में आया ? धर्म की कथा ऐसी है, यह कहते हैं। नया व्यक्ति आवे, वहाँ तो उसे धर्म सुनाये। उसमें कहीं छह काय और व्रत पालना और अपवास करना, यह तो बात आती नहीं। एक घण्टे में आयी नहीं। यह घण्टा पूरा होने को आता है। लो! परन्तु सुन न, तप किसे कहते हैं और छह काय की दया किसे कहना, तुझे खबर नहीं। आहाहा! छह काय के जीव में तू जीव नहीं ? जीव तेरा है या नहीं ? और तुझमें गुण हैं या नहीं ? या गुण बाहर से कहीं से आते होंगे ?

छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट है, वह प्रगट हुई, वह कहाँ से आयी ? पत्थर में से ? पत्थर में से आवे तो कंकण घोंटे न ? उसमें पड़ी है, वह आयी है। चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया-रुपया। चौंसठ पहरी कहते न, सोलह आना। सोलह आना कहो, चौंसठ पैसा कहो, रुपया कहो... पीपर के इतने दाने में रुपया-रुपया (पूर्ण) चरपराहट (भरी) पड़ी है। तब बाहर आती है। चौंसठ पहरी प्रगट होती है।

भगवान आत्मा में सर्वज्ञ शक्ति पूर्ण भरी है अन्दर। उस शक्ति और शक्तिवान में भेद नहीं। आहाहा! न्याय से समझ में आये तो न्याय से-लॉजिक से तो बात चलती है। यह सर्वज्ञशक्तिवाला तत्त्व है। यह सर्वज्ञशक्ति और शक्तिवान दोनों भिन्न नहीं हैं। सर्वज्ञशक्ति अकेली भिन्न हो तो कर्ता बिना काम हो नहीं। सर्वज्ञशक्ति कर्ता बिना नहीं होती तो इस कर्ता बिना का सर्वज्ञशक्ति का कार्य होगा नहीं। सर्वज्ञशक्ति बाहर हो और जुड़ जाये, ऐसा नहीं हो सकता। वीतराग का-परमेश्वर का ऐसा तत्त्व है। केवलज्ञानी जिनेश्वरदेव वीतराग परमात्मा जिन्होंने एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने, वह पर्याय ऐसी कहाँ से, कहते हैं। वह गुण में शक्तिरूप से वह अभेद आत्मा साथ में थी, उस अभेद में एकाकार होने से शक्ति में जो पूर्णता थी, वह पर्याय में प्रगट हुई।

केवलज्ञान अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त चतुष्टय है न! अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द, वे पर्याय में आये हैं, वे बाहर से संयोग से नहीं आये। आहाहा! ऐसा कहते हैं। इसलिए संयोगी विकल्प का व्यवहार किया, इसलिए आये हैं—ऐसा नहीं परन्तु वह पर्याय संयोग से अन्दर बाहर से थी और संयोग से हुई, पहले अल्पज्ञ था और बहुत बड़ा आया बाहर से, ऐसा नहीं है। उस अल्पज्ञ पर्याय के प्रगटपने में गुणरूप से तो शक्ति परिपूर्ण है। वह परिपूर्ण शक्ति और शक्तिवान दोनों एक हैं। ऐसे अभेद पर दृष्टि देने से एकाकार होकर, कर्ता आत्मा होकर, करण अर्थात् गुण की शक्ति में साधन द्वारा केवलज्ञान प्रगट करता है। आहाहा! पाटनीजी! ऐसा मार्ग है। आहाहा! तोड़-मरोड़ कर मानना और समझे बिना मानना ऐसा का ऐसा, ऐसा नहीं है। जैसा है, वैसा न्याय से, युक्ति से उसके भाव में भासन होकर मानना। ऐसा यहाँ कहते हैं। हम कहते हैं वह मानो, ऐसा नहीं। समझ में आया?

यह वस्तु का स्वभाव और वस्तु किस प्रकार है, उसे ज्ञान में न्याय का तौल करके मानो। समझ में आया? यह मानना कहीं बाहर से नहीं आता। आहाहा! सुन नहीं सकता, हों! कितने ही तो वे पुरानी रूढ़ि के लोगों को तो ऐसा लगे, यह क्या लगायी है ऐसी? लगायी है, प्रभु! तेरी परमात्मशक्ति प्रगट हो, उसकी लगायी है यह। परमात्मशक्ति प्रगट होती है, वह कहीं बाहर से नहीं आती। वह शक्ति और शक्तिवान का अभेद सम्बन्ध है। शक्ति कहो या गुण कहो। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४९

ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी।
अण्णाणी त्ति य वयणं एगत्तप्पसाधगं होदि॥४९॥

न हि सः समवायादार्थान्तरितस्तु ज्ञानतो ज्ञानी।
अज्ञानीति च वचनमेकत्वप्रसाधकं भवति॥४९॥

ज्ञानज्ञानिनोः समवायसम्बन्धनिरासोऽयम् ।

न खलु ज्ञानादर्थान्तरभूतः पुरुषो ज्ञानसमवायात् ज्ञानी भवतीत्युपपन्नम् । स खलु ज्ञानसमवायात्पूर्वं किं ज्ञानी किमज्ञानी? यदि ज्ञानी तदा ज्ञानसमवायो निष्फलः । अथाज्ञानी तदा किमज्ञानसमवायात्, किमज्ञानेन सहैकत्वात्? न तावदज्ञानसमवायात्; अज्ञानिनो ह्यज्ञानसमवायो निष्फलः, ज्ञानित्वं तु ज्ञानसमवायाभावान्नास्त्येव । ततोऽज्ञानीति वचनमज्ञानेन सहैकत्वमवश्यं साधयत्येव । सिद्धे चैवमज्ञानेन सहैकत्वे ज्ञानेनापि सहैकत्वमवश्यं सिध्यतीति॥४९॥

प्रथक् चेतन ज्ञान से समवाय से ज्ञानी बने ।

यह मान्यता नैयायिकी जो युक्तिसंगत है नहीं॥४९॥

अन्वयार्थ :- [ज्ञानतः अर्थांतरितः तु] ज्ञान से अर्थान्तरभूत [सः] ऐसा वह (-आत्मा) [समवायात्] समवाय से [ज्ञानी] ज्ञानी होता है [न हि] ऐसा वास्तव में नहीं है। [अज्ञानी] 'अज्ञानी' [इति च वचनम्] ऐसा वचन [एकत्वप्रसाधकं भवति] (गुण-गुणी के) एकत्व को सिद्ध करता है।

टीका:- यह, ज्ञान और ज्ञानी को समवायसम्बन्ध होने का निराकरण (खण्डन) है।

ज्ञान से अर्थान्तरभूत आत्मा ज्ञान के समवाय से ज्ञानी होता है, ऐसा मानना वास्तव में योग्य नहीं है। (आत्मा को ज्ञान के समवाय से ज्ञानी होना माना जाये तो हम पूछते हैं कि) वह (-आत्मा) ज्ञान का समवाय होने से पहले वास्तव में ज्ञानी है कि अज्ञानी है? यदि ज्ञानी है, (ऐसा कहा जाये) तो ज्ञान का समवाय निष्फल है। अब यदि अज्ञानी है, (ऐसा कहा जाये) तो (पूछते हैं कि) अज्ञान के समवाय से अज्ञानी है कि अज्ञान के साथ एकत्व से अज्ञानी है? प्रथम, अज्ञान के समवाय से अज्ञानी हो नहीं सकता; क्योंकि अज्ञानी को अज्ञान का समवाय निष्फल है और ज्ञानीपना तो ज्ञान के समवाय का अभाव

होने से है ही नहीं। इसलिए 'अज्ञानी' ऐसा वचन अज्ञान के साथ एकत्व को अवश्य सिद्ध करता ही है। और इस प्रकार अज्ञान के साथ एकत्व सिद्ध होने से ज्ञान के साथ भी एकत्व अवश्य सिद्ध होता है।

भावार्थ :- आत्मा को और ज्ञान को एकत्व है, ऐसा यहाँ युक्ति से समझाया है।

प्रश्न :- छद्मस्थदशा में जीव को मात्र अल्पज्ञान ही होता है और केवलीदशा में तो परिपूर्ण ज्ञान-केवलज्ञान होता है; इसलिए वहाँ तो केवलीभगवान को ज्ञान का समवाय (-केवलज्ञान का संयोग) हुआ न?

उत्तर :- नहीं, ऐसा नहीं है। जीव को और ज्ञानगुण को सदैव एकत्व है, अभिन्नता है। छद्मस्थदशा में भी उस अभिन्न ज्ञानगुण में शक्तिरूप से केवलज्ञान होता है। केवलीदशा में, उस अभिन्न ज्ञानगुण में शक्तिरूप से स्थित केवलज्ञान व्यक्त होता है; केवलज्ञान कहीं बाहर से आकर केवली भगवान के आत्मा के साथ समवाय को प्राप्त होता हो, ऐसा नहीं है। छद्मस्थदशा में और केवलीदशा में जो ज्ञान का अन्तर दिखाई देता है, वह मात्र शक्ति-व्यक्तिरूप अन्तर समझना चाहिए॥४९॥

प्रवचन-५१, गाथा-४९, ५०, पौष कृष्ण ६, बुधवार, दिनांक -२८-०१-१९७०

पंचास्तिकाय....

ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी।

अण्णाणी त्ति य वयणं एगत्तप्पसाधगं होदि॥४९॥

प्रथक् चेतन ज्ञान से समवाय से ज्ञानी बने।

यह मान्यता नैयायिकी जो युक्तिसंगत है नहीं॥४९॥

पंचास्तिकाय, इसकी टीका। यह उपयोग की व्याख्या चलती है। ज्ञान का जो उपयोग है, वह उपयोग और उपयोगवान आत्मा अभिन्न एक अस्तित्व से रचित चीज़ है। उपयोग और उपयोगवान, ऐसे दो नाम पड़ें, तथापि उनका अस्तित्व दो नहीं है। वह उपयोगलक्षण जीव, वह स्वयं उपयोग और उपयोगलक्षण जीव, लक्षण और लक्ष्य दोनों एक ही चीज़ है।

जैसे पुण्य-पाप के विकल्प और शरीरादि का अस्तित्व, वह जीव के सत् के सत्व से उपयोग से वह भिन्न चीज़ है। ऐसे जानने का उपयोग और आत्मा दोनों भिन्न चीज़ नहीं है। यह बात करते हैं। देखो!

टीका :- यह, ज्ञान और ज्ञानी को... ज्ञानी अर्थात् आत्मा। ज्ञान अर्थात् गुण जाननहार शक्ति। यह जानने का शक्तिभाव उपयोग और ज्ञानी अर्थात् आत्मा। **समवायसम्बन्ध होने का निराकरण (खण्डन)** है। दोनों का जुड़ान होकर आत्मा हुआ है, ऐसा नहीं है। जाननेवाला गुण जो है और आत्मा उसे जाननेवाले गुण का उसे संयोग हुआ, इसलिए आत्मा है, यह ज्ञानी है—ऐसा नहीं है। समझ में आया? देखो! नीचे इसकी व्याख्या।

ज्ञान से.... अर्थात् जानने का जो स्वभाव है, उससे **अर्थान्तरभूत...** अर्थ-अन्तर अन्य पदार्थभूत। **आत्मा ज्ञान के समवाय से ज्ञानी होता है, ऐसा मानना वास्तव में योग्य नहीं है।** समझ में आया? ज्ञान—जाननेवाला स्वभाव और उससे अर्थान्तर अन्य अर्थ। आत्मा भिन्न, आत्मा और ज्ञान भिन्न। और उस **ज्ञान के (सम्बन्ध से) समवाय से... योग से, ज्ञानी....** अर्थात् आत्मा होता है **ऐसा मानना वास्तव में योग्य नहीं है। (आत्मा को ज्ञान के समवाय से ज्ञानी होना माना जाये तो हम पूछते हैं कि)...** प्रश्न उठता है। देखो! यह कितना उपयोग और उपयोगवान को अभेद सिद्ध करते हैं। तेरा निर्विकल्प आत्मा उपयोगस्वरूप ही है। निर्विकल्प ज्ञानस्वभाव धारक उसकी दृष्टि देने से, उसका आत्मा का अनुभव सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है। समझ में आया?

जो हम पूछते हैं कि वह (-आत्मा) ज्ञान का समवाय होने से पहले वास्तव में **ज्ञानी है या अज्ञानी?** क्या कहा? कि आत्मा वस्तु है और ज्ञान है, वह अलग चीज़ है। और उस ज्ञान का योग हुआ, तब आत्मा ज्ञानी हुआ। तो हम पूछते हैं कि ज्ञान का समवाय होने से पहले, ज्ञानगुण का गुणी का सम्बन्ध होने से पहले वह ज्ञानी है या अज्ञानी? न्याय समझ में आता है? यह तो सब न्याय की-लॉजिक की सब बात है।

यदि ज्ञानी है (ऐसा कहा जाये) तो ज्ञान का समवाय निष्फल है। तो ज्ञान भिन्न

था और आत्मा के साथ जुड़ान हुआ, यह कहना निष्फल होता है। क्योंकि ज्ञानी तो पहले ज्ञानसहित है ही। समझ में आया? ज्ञानी है, वह ज्ञानसहित ही है। तो ज्ञानी यदि कहो और ऐसा कहो कि ज्ञान भिन्न था और उसे सम्बन्ध हुआ तो यह बात सच्ची नहीं रहती।

अब जो अज्ञानी है, ऐसा कहो, यदि ज्ञानी है (ऐसा कहा जाये) तो ज्ञान का समवाय निष्फल है। अब यदि अज्ञानी है... कहो कि ज्ञानी नहीं। ऐसा (ऐसा कहा जाये) तो (पूछते हैं कि) अज्ञान के समवाय से अज्ञानी है कि अज्ञान के साथ एकत्व से अज्ञानी है? आत्मा वस्तु है और अज्ञान भिन्न चीज़ है। वह अज्ञान भिन्न चीज़ के कारण आत्मा अज्ञानी हुआ या सहज अज्ञानी के स्वभाववाला है? पूछते हैं, अज्ञान के सम्बन्ध से अज्ञानी है या अज्ञान के साथ एकत्व से अज्ञानी है। अरे! कठिन!

प्रथम, अज्ञान के समवाय से अज्ञानी हो नहीं सकता;... अज्ञान भिन्न और आत्मा भिन्न तो अज्ञान के सम्बन्ध से अज्ञानी, ऐसा नहीं हो सकता। वह तो पहली बात हो गयी थी। ज्ञान के साथ कहते हैं, ऐसा। अज्ञान के समवाय से अज्ञानी हो नहीं सकता; क्योंकि अज्ञानी को अज्ञान का समवाय निष्फल है... अज्ञानी कहना और अज्ञान का भाव भिन्न था और फिर सम्बन्ध प्राप्त कराया, यह तो निष्फल बात है। क्योंकि अज्ञानी तो पहले था। अज्ञानभाववाला तो था। समझ में आया?

अज्ञान के समवाय सम्बन्ध से अज्ञानी नहीं हो सकता, क्योंकि अज्ञानी को अज्ञान का समवाय क्या? अज्ञानी कहना और फिर उसे अज्ञान का सम्बन्ध कहना नया, यह कुछ मेल नहीं खाता। और ज्ञानीपना तो ज्ञान के समवाय का अभाव होने से है ही नहीं। अब तू तो कहता है कि ज्ञान का समवाय उसे नहीं है। इसलिए ज्ञानी ज्ञान के समवाय का अभाव होने से ज्ञानी तो है ही नहीं। अज्ञानी भी नहीं और ज्ञानी भी नहीं। क्योंकि अज्ञान का भाव उससे सम्बन्ध करे, तब अज्ञानी हो। तब पहला कहता है कि अज्ञानी तो है। तो अज्ञान के भाव से अज्ञानी होता है, यह तो रहा नहीं। अब ज्ञानी तो है नहीं, तू मानता है। क्योंकि ज्ञानी, ज्ञानवाला ऐसा तो तूने माना नहीं।

इसलिए 'अज्ञानी' ऐसा वचन अज्ञान के साथ एकत्व को अवश्य सिद्ध करता ही है। आत्मा अज्ञानी, ऐसे भाववाला, ऐसा। अज्ञानी ऐसे भाववाला। भाववान आत्मा।

और अज्ञानी भाववाला, यह तो एकत्वपने को ही सिद्ध करता है। अज्ञानभाव और आत्मा एक सिद्ध करता है। भिन्न-भिन्न सिद्ध नहीं करता। यहाँ तो लॉजिक की बात है, ऐ सेठ! यह ऐसी दलील है। आहाहा!

अवश्य सिद्ध करता ही है। और इस प्रकार अज्ञान के साथ एकत्व सिद्ध होने से... भगवान आत्मा अज्ञानी ऐसा कहना से अज्ञान के साथ समवाय अर्थात् एकरूप ही वह है। भिन्न नहीं। सिद्ध होने से ज्ञान के साथ भी एकत्व अवश्य सिद्ध होता है। जाओ। अज्ञानभाववाला, यह एकत्व सिद्ध होता है। ऐसे ज्ञानभाववाला, यह भी एकत्व सिद्ध होता है। बराबर है? अरे! यह व्यापारी को ऐसा समझ में आता होगा? ऐई! तुम्हारे तो वकालत में आवे वह। कहते हैं कायदा, नियम। यह क्या? क्या कहा, समझ में आया? कि यह आत्मा वस्तु है उपयोगस्वरूप, उपयोगस्वरूप। वह उपयोग यदि एकत्व का था और उपयोग भिन्न चीज़ थी और उपयोगवान भिन्न तो उसके समवाय से उपयोगवान होता है, ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि भिन्न चीज़ का सम्बन्ध उसे हो सकता ही नहीं। अर्थान्तरपना-भिन्न पदार्थपना हो सकता नहीं।

तब कहे, वह तो अज्ञानी था। ज्ञानी नहीं था। ज्ञानवाला नहीं था। अज्ञानी था। अज्ञानी था तो अज्ञानभाववाला था या अज्ञानभाव भिन्न पदार्थ था और आत्मा को लगा और अज्ञानी हुआ? तो यह तो वह का वह रहा। अज्ञानी कहते ही अज्ञानवाला तो हुआ। तो वह अज्ञानभाव भिन्न और आत्मा भिन्न और दोनों का एकत्वपना उसमें नहीं, ऐसा नहीं सिद्ध हुआ।

अज्ञानभाव और अज्ञानभाववाला एकत्व सिद्ध होता है। लॉजिक है, यह सब न्याय से (बात है)। आहाहा! यह तो सादी भाषा में कहा जाता है। परन्तु अब कितनों को परिचय नहीं होता। सिरपच्ची की ही नहीं उसने समझने की। यह सिरपच्ची होगी? यहाँ तो सिद्ध करना है कि उपयोग और उपयोगवान दो अभिन्न एकत्व है। इसलिए जिसे उपयोगवान को पकड़ना हो, उसे उपयोग पकड़ने से उपयोगवान पकड़ में आ जाता है। तब उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- आत्मा को और ज्ञान को एकत्व है, ऐसा यहाँ युक्ति से समझाया है।

आत्मा भाववान और भाव। यह भाव और भाववान एकपना है। भाव भिन्न था और भाववान भिन्न था, ऐसा है नहीं। ऐसा होवे तो भाववान, यह ज्ञानी ऐसा क्यों कहा? कहते हैं। तो अब ज्ञान के समवाय से। तो फिर ज्ञान सम्बन्ध नहीं था, तब पहले क्या था? कि अज्ञानी। तो अज्ञानभाववाला था या अज्ञानभाव भिन्न था और सम्बन्ध हुआ? ऐई! शोभालालजी! इसमें मस्तिष्क को फैलाने की बात है। कहो, समझ में आया या नहीं, इसमें?

पहले अज्ञानी था तो हो गया। तो अज्ञानभाववाला था ही। अज्ञानभाव भिन्न और अज्ञानी भिन्न, ऐसा रहा नहीं। तो अज्ञान से आत्मा को एकत्व सिद्ध हुआ। इसी प्रकार ज्ञान से भी आत्मा को एकत्व सिद्ध हुआ। इसमें कितना ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है? ऐई! सतीश! समझ में आता है या नहीं यह? कहो, इसमें समझ में आया या नहीं? ऐ रतिभाई! व्यापारी को पूछूँगा, हैं? यहाँ जितना ले। परन्तु यहाँ जितना जो आत्मा है, वह आत्मा है ऐसा निश्चित हुआ फिर कहाँ जितना और हुआ यह? कहो, समझ में आया? वींछियावाला हूँ, ऐसा निर्णय किया वह कहाँ जितना? जहाँ जाये वहाँ उसे ऐसा होता है कि मैं वींछियावाला हूँ, वींछियावाला हूँ, वींछियावाला हूँ। वह यहाँ जितना नहीं रहा। इसी प्रकार ज्ञानवाला आत्मा है, ऐसा जहाँ निर्णय हुआ तो किस जगह यह ज्ञानवाला नहीं? समझ में आया? कितनी बात!

ओहो! दिगम्बर आचार्य! ऐसी बात श्वेताम्बर में तो कहीं गन्ध भी नहीं हो। हैं? सुना था ऐसा इतने वर्षों में? लॉजिक-न्याय से सिद्ध करते हैं। भाई! 'निरावयम!' आत्मा को भाव से भाववान का एकपना है। ऐसा सिद्ध करते हैं। फिर आगे कर्तापना सिद्ध करेंगे। भगवान आत्मा वस्तु और उसकी शक्ति-ज्ञान। वह शक्ति और शक्तिवान दोनों अर्थान्तर अर्थात् भिन्न पदार्थ नहीं हैं। नामभेद भले हों, शब्दभेद हों कि यह गुण और गुणी, परन्तु प्रदेशभेद, भावभेद अर्थान्तर-भिन्न दो पदार्थ हैं, ऐसा नहीं है।

जैसे शरीर और आत्मा भिन्न है। अरे! पुण्य-पाप के विकल्प को और आत्मा को भिन्नता है, ऐसे ज्ञान के भाव को और भाववान को भिन्नता नहीं है। आहाहा! कितनी बात करते हैं। कहो, यह सिद्ध किया। समझ में आया या नहीं? आत्मा को और ज्ञान

को एकत्व है। एकत्व न कहे तो यदि एकत्व नहीं तो भिन्न होगा, भिन्न यदि भाव हो, तो क्या था वह ? ज्ञानी था या नहीं वह ? तब कहे नहीं, नहीं उस समय ज्ञानी नहीं था, भिन्न जब ज्ञान था तब। तब अज्ञानी था।

अब हम पूछते हैं कि अज्ञानभाववाला था या अज्ञानभाव भिन्न था और उससे चिपटा और अज्ञानी हुआ। या अज्ञानभाव भिन्न हो और अज्ञानी, ऐसा होता नहीं। परन्तु अज्ञानी तो तू कहता है। हैं ? अज्ञानी तो तू कहता है और फिर अज्ञानभाव भिन्न और अज्ञानभाववाला भिन्न, यह तो अज्ञानी तू कहते ही एकत्व सिद्ध हो गया। अज्ञानभाव और आत्मा को एकपना है। ऐसा जब अज्ञानभाव और आत्मा को एकपना सिद्ध हुआ तो ज्ञान को और आत्मा को एकपना सिद्ध हो गया।

यह तो साधारण को भी समझ में आये ऐसा है। यह तो विद्यालय होगा नहीं, धरमचन्दभाई! समझ में आया ? यह तो वह कहेंगे। चार कक्षा पढ़ा हुआ भी, यह समझ में आये ऐसा है — ऐसा कहते हैं। उसमें ऐसा नहीं कि व्यापारी को सिरपच्ची करे समय गया, इसलिए अब ऐसा सूक्ष्म... सूक्ष्म नहीं, यह तो सादा और सरल है। हैं ? वह इस प्रकार है ऐसा। इस प्रकार है। है, इस प्रकार से सिद्ध होता है। आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार, शरीर का अस्तित्व भिन्न है, यह तो अर्थान्तर है। अन्य पदार्थ है।

वास्तव में तो पुण्य और पाप का आस्रव पदार्थ, वह भी अन्य पदार्थ है। आत्मा के उपयोगवान आत्मा से पुण्य-पाप के विकल्पों का आस्रवपना, अर्थान्तरपना अर्थात् अन्य पदार्थपना सिद्ध करता है। ऐसे जानने का उपयोग और उपयोगवान दोनों के अर्थ अर्थात् पदार्थ भिन्न है, ऐसा नहीं है। बराबर है ?

प्रश्न - छद्मस्थदशा में.... जब अल्पज्ञदशा है, तब जीव को मात्र अल्पज्ञान ही होता है... तब विशेषज्ञान नहीं होता। और केवलीदशा में तो परिपूर्ण ज्ञान-केवलज्ञान होता है; इसलिए वहाँ तो केवलीभगवान को ज्ञान का समवाय हुआ न ? क्या सिद्ध करते हैं ? पहला अल्प ज्ञान है, तब पूर्ण ज्ञान नहीं। और पूर्ण ज्ञान है, तब वह पूर्ण ज्ञान पहले नहीं था, तब पूर्ण ज्ञान का संयोग हुआ। ऐसा तो हुआ या नहीं ? ऐसा कहते हैं। प्रश्नकार कुछ ऐसा करे न ? जब आत्मा में अल्पज्ञदशा है, उस काल में पूरी दशा

केवल्य सम्पूर्णदशा नहीं है। तो सम्पूर्णदशा अल्प ज्ञान की अपेक्षा से नया सम्बन्ध हुआ या नहीं? देखो ने! आहाहा! हैं? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। पहले ज्ञान कम था। बराबर है? फिर जब पूरा ज्ञान हुआ, वह आया कहाँ से? पूरे ज्ञान का आत्मा के साथ सम्बन्ध हुआ, तब केवली हुआ न? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। तुम नकार... नकार... करो, सब एकत्व है... एकत्व है... एकत्व है, तो हमारा यह प्रश्न है।

ज्ञान जाननेवाला स्वभाव और स्वभाववान दोनों एक हैं, ऐसा यदि तुम कहते हो तो हमारा प्रश्न है (कि) तुमने अवस्थित है एकत्व, ऐसा सिद्ध किया। परन्तु यह हमारा प्रश्न का उत्तर दो कि आत्मा जब अल्प ज्ञानवाला है, तब पूरा ज्ञान नहीं और जब पूरा ज्ञान है, तब अल्पज्ञान नहीं। तब पूरे ज्ञान का सम्बन्ध हो गया। अल्प ज्ञान का सम्बन्ध छूट गया और पूरे ज्ञान का सम्बन्ध हुआ। देखो! निश्चित हो गया या नहीं? पूरा ज्ञान भिन्न और आत्मा भिन्न। और फिर केवलज्ञान का सम्बन्ध हुआ, ऐसा कहता है। ऐई! कठिन बात, भाई!

पहले प्रश्न का रूप समझ में आता है? प्रश्नकार का प्रश्न ऐसा है कि जब तुम जाननेवाला स्वभाव और स्वभाववान दोनों अवश्य एकरूप सिद्ध किये, तो हमारा प्रश्न है, जाननेवाले को जब अल्पज्ञदशा छद्मस्थदशा में है, तब पूरी दशा नहीं है और पूरी दशा हुई, तब अल्पज्ञान में से नहीं आती। बाहर पूरा ज्ञान कुछ था, उसके साथ आत्मा को सम्बन्ध हो गया, इसलिए केवलज्ञानी हुआ। परन्तु तब कहाँ पहले ज्ञान था? पहले अल्प ज्ञान में पूरा ज्ञान था? पूरा ज्ञान आया कहाँ से? पूरा ज्ञान का उसे सम्बन्ध हुआ, इसलिए केवली हुआ, ऐसा प्रश्नकार कहता है। अब उसका उत्तर। उसका प्रश्न है यह...

उत्तर :- नहीं, ऐसा नहीं है। भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! जीव को और ज्ञानगुण को सदैव एकत्व है,... भगवान आत्मा और ज्ञान का गुण ऐसे सब गुण लेना, हों! आनन्द आदि। इन गुण को और आत्मा को एक ही रूप से है। एक पदार्थपने है। सदा एकरूप है। अभिन्नता है अर्थात् दो की एकता है। अभिन्नता है। छद्मस्थदशा में भी... अल्प ज्ञान के काल में भी उस अभिन्न ज्ञानगुण में... अब, देखो! यह अल्प ज्ञान

है तब भी ज्ञान और आत्मा की अभिन्नता में शक्तिरूप से केवलज्ञान होता ही है। वह शक्तिरूप केवलज्ञान और आत्मा का तो एकत्व ही है। समझ में आया ?

अल्पज्ञान के समय भी केवलज्ञान की जो शक्ति ज्ञान की पूरी है, वह शक्ति और शक्तिवान का एकत्व उस काल में भी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे लॉजिक-न्याय से बातें करते हैं। पंचास्तिकाय जैसा शास्त्र। कहते हैं कि भाई! ऐसा नहीं है। तू कहता है कि अल्पज्ञान, फिर जब सर्वज्ञ हुआ, तब वह सर्वज्ञपना, सम्बन्ध हुआ जीव को, इसलिए वह सर्वज्ञ हुआ, पूरा ज्ञान हुआ, केवलज्ञान हुआ—ऐसा तू कहे तो, ऐसा नहीं है। क्योंकि जब अल्पज्ञदशा थी, तब भी उसकी ज्ञानशक्ति में पूर्ण ज्ञान की शक्ति थी। वह पूरी शक्ति ज्ञान से आत्मा को अभिन्नपना था। समझ में आया? आहाहा! केवलीदशा में, उस अभिन्न ज्ञानगुण में शक्तिरूप से स्थित... देखो! अभिन्न ज्ञानगुण में शक्तिरूप से स्थित केवलज्ञान व्यक्त होता है;... आहाहा!

भगवान आत्मा और उसकी शक्ति अर्थात् ज्ञान, सामर्थ्य। ज्ञान का सामर्थ्य परिपूर्ण उस समय भी है। गुण में ज्ञान का सामर्थ्य परिपूर्ण है। पर्याय में अल्पज्ञ है। ज्ञान का अल्पज्ञकाल में भी ज्ञानगुण की शक्ति, उसका सामर्थ्य परिपूर्ण इस आत्मा के साथ अभेद है। कठिन बात, भाई! केवलज्ञान होता है।

केवलीदशा में, उस अल्पज्ञदशा में ज्ञानस्वभाव परिपूर्ण-परिपूर्ण शक्तिरूप से अल्पज्ञ पर्याय के काल में भी ज्ञान का परिपूर्णपना आत्मा के साथ एकत्व है। बराबर है? देखो! उसमें लिखा है। जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है। (स्वाध्याय हॉल में दीवार में लिखा है) कौने में इस ओर पूर्व में। सम्पूर्ण वीतराग हो, वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ। यह तो पर्याय की बात की। कि सर्वज्ञपना जो प्रगट हुआ, वह शक्ति में से आया है। क्योंकि अल्पज्ञ काल में भी उसकी शक्तिरूप से 'ज्ञ' स्वभाव 'ज्ञ' स्वभाव परिपूर्ण एकरूप, अखण्ड परिपूर्ण स्वभाव है।

जीव एक और अखण्ड है, इसलिए उसका ज्ञानस्वभाव एकरूप, अखण्ड परिपूर्ण है। सामर्थ्य परिपूर्ण है। उस परिपूर्ण सामर्थ्य के गुण से गुणी का एकत्व है। आहाहा! अभिन्नपना है। यह तो धीमे-धीमे से तो कहा जाता है। यह तो समझ में आये ऐसा है।

इसलिए ऐसा नहीं समझना वह व्यापारी-व्यापारी महिलाओं को कितनों को अपने को समझ में आये ऐसा नहीं। न समझ में आये ऐसा है ही नहीं। ऐई! लाडुलालजी!

अल्पज्ञ काल में भी, जैसे पीपर है, पीपर। चौंसठ पहरी चरपराहट। इस समय अल्प चरपराहट है और फिर प्रगट होती है, तब चौंसठ पहरी प्रगट हुई, तब शिष्य कहता है कि देखो! बाहर से आयी। पहले नहीं थी और चौंसठ पहरी शक्ति पर्याय में बाहर से आयी। तब कहते हैं कि जब अल्प चरपराहट है, उस काल में भी वहाँ चौंसठ पहरी चरपराहट से वह छोटी पीपर अभेद है। समझ में आया? आहाहा!

देखो न, तत्त्वज्ञान का विषय! लोगों को द्रव्य, गुण और पर्याय क्या है, इसका विचार ही नहीं। यदि उसका विचार आवे तो यह सब झगड़ा मिट जाये। आहा! वाड़ा यह किया और यह किया। हे प्रभु! पंच महाव्रत लिये और साधु हो गये। हमें यह हो जाओ, नहीं तो आड़ा निकालेंगे। खड़े निकलो नहीं तो आड़ा निकालेंगे। व्रत ले लो! अरे भगवान! व्रत कब होते हैं, भाई! जब चारित्र गुण और आत्मा अभिन्नरूप से त्रिकाल हो तो उसका आश्रय करने से जो पर्याय में चारित्र प्रगट होता है, उस काल में उसे कुछ विकल्प आदि व्रत का हो, उसे व्यवहार से व्रतधारी कहा जाता है।

अब इसकी तो कुछ खबर नहीं होती और हो गये व्रतधारी। अब इसका क्या करना? लोग कहे, परन्तु अपने से तो अच्छे हैं या नहीं? लो! ऐसा कहे। परन्तु यह सवेरे-शाम दो-दो बार खाना, तीन-तीन बार खाना और वह बेचारा एकबार खाये, हाथ में खाये। परन्तु इसका अर्थ क्या? यह तो बाहर की क्रिया की पर्याय का परिणाम स्वतन्त्र है। अन्तर उसकी पर्याय में क्या है? उसकी पर्याय में तो राग को जानना और राग से मैं, ऐसा वह तो मानता है। परन्तु ज्ञान, वह मैं परिपूर्ण हूँ, ज्ञान जो परिपूर्ण शक्ति-गुण है। गुण हो, वह परिपूर्ण ही होता है। अखण्ड हो, एक हो, पूर्ण हो—ऐसा परिपूर्ण गुण और मैं आत्मा गुणी दोनों एक हैं। ऐसी अन्तर्दृष्टि हुए बिना जिसमें स्थिर होना, वह तो दृष्टि में आया नहीं। किसमें स्थिर होना, वह तो तत्त्व दृष्टि में आया नहीं। कहाँ तुझे चारित्र और व्रत आ गया? कहो, सेठ! अपने से तो अच्छे लगे न, लो! हमने कहा, परन्तु यह तो पूरे दिन यह करते। नग्न हुए, नंगे पैर चलते हैं। चौविहारा करते हैं, पानी गर्म पीते हैं। हाँ, यह तो बकरे भी ऐसा छह महीने करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि तू वस्तु है या नहीं? ठीक। तो वस्तु में कुछ शक्ति है या नहीं? तो वह तो शक्तिवान हुई वस्तु। तो वस्तु में शक्ति है या नहीं ज्ञान की? यहाँ उपयोग सिद्ध करना है न? वह उपयोग शक्ति है, वह गुणरूप परिपूर्ण है या अपूर्ण है? गुणरूप से भी परिपूर्ण न हो तो परिपूर्ण पर्याय में आयेगा कहाँ से? कहीं अल्पज्ञता का नाश होकर अल्पज्ञ में से कहीं सर्वज्ञ होते हैं? इसका तो अभाव हो जाता है। इसलिए अल्पज्ञ काल में भी ज्ञान की शक्ति का सामर्थ्य शक्तिवान के साथ एक है, अभिन्न है। उस पर एकाग्र होने से अल्पज्ञ का नाश होकर शक्तिरूप से जो सर्वज्ञ है, वह पर्याय में प्रगट होता है। इसलिए शक्ति के गुण से आत्मा भिन्न है—अर्थान्तर दूसरा पदार्थ है—ऐसा नहीं है। यह सिद्ध करते हैं। समझ में आया? कहो, अमुलखभाई! यह तो समझ में आये ऐसा है या नहीं? यह तो हाँ ही पाड़ते हैं। ऐई! किरीट! समझ में आया या नहीं? क्या? यह तो समझ में आये ऐसा नहीं? सतीश!

वस्तु देखो! वस्तु। दूसरी वस्तु छोड़ दो एक ओर। यहाँ तो आत्मा लेना है न? यहाँ तो आत्मा का काम है न! आत्मा पदार्थ है अस्ति। तो उसमें कुछ शक्ति है या नहीं? या शक्तिवान कोई अकेला रह गया? कि यह उसकी शक्ति है। या यह क्या शक्ति है? ज्ञान उसकी शक्ति है। ज्ञान उसका भाव है। ज्ञान उसका स्वभाव है। ज्ञान उसका सत् का सत्व है। उस सत्व को और सत् को एकता है। तो जो सत्व है, वह सत्व है, वह परिपूर्ण सामर्थ्य धराता है। आहाहा! वह परिपूर्ण जो सामर्थ्य है, उसके साथ आत्मा की अभेदता है। उस अभेदता का जहाँ आश्रय करता है, अर्थात् पर्याय में, शक्ति में जो केवलज्ञान है, वह पर्याय में आता है। बाहर से आता है, ऐसा है नहीं। इसका अर्थ ऐसा हुआ कि पुण्य की पर्याय से, व्यवहार से केवलज्ञान आता है, ऐसा भी नहीं और अल्प ज्ञान की पर्याय है, उसमें से केवलज्ञान आता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! कैसी बात सिद्ध करते हैं! देखो न! हैं?

बापू! तेरा केवलज्ञान आता है, वह केवलज्ञान की शक्ति और शक्तिवान अभिन्न त्रिकाल है, ऐसे अभिन्न त्रिकाल में, भाई! एक वस्तु और उसका गुण एक। एक कहो, अखण्ड कहो, पूर्ण कहो। सामर्थ्य जिसकी अपरिमितता है। ऐसे स्वभाव और स्वभाववान दो की अवश्य एकता है। ऐसी दो की एकता जिसे अनुभव में—प्रतीति में आयी, उसे

पर्याय में मैं शक्तिरूप से केवली हूँ, यह प्रतीति हो गयी। मैं अल्पज्ञ हूँ, यह दृष्टि छूट गयी। श्रद्धा से केवलज्ञान हुआ। श्रीमद् में आता है न! समझ में आया? श्रीमद् में आता है। श्रद्धा से केवलज्ञान हुआ, इच्छा से केवलज्ञान हुआ। आहाहा! पाँच बोल। ऐसी तो उसमें बहुत सरस बात है। इसका अर्थ यह हुआ कि तेरा जो कोई भी गुण है। यह तो उपयोग, वह पूरा त्रिकाली है और उसके बिना होता नहीं, इसलिए वहाँ सिद्ध किया है। उपयोग बिना कभी होता नहीं। समझ में आया?

दुःखदशा बिना, राग बिना तो सादि-अनन्त रहता है। उपयोग तो इसका स्वरूप ही है। और वह उपयोग, उसका परिपूर्ण शक्तिरूप स्वरूप है। उस परिपूर्ण शक्ति के साथ आत्मा को एकता और अभिन्नता है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए जब पर्याय में केवलज्ञान और परिपूर्णदशा होती है, उस शक्ति में था, वह प्रगट होता है। वह पर्याय में से नहीं, निमित्त में से नहीं, राग में से नहीं, संहनन में से नहीं। ओहोहो! कथन, यह उपदेश! दिगम्बर सन्तों की वाणी परमेश्वर को ऊपर से नीचे उतारती है। प्रभु! तू ऐसा है न! जिसे यह सिद्ध जैसा है न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

तब कहे, सिद्ध की पर्याय मुझे नहीं न? परन्तु सिद्ध की पर्याय प्रगट होने की है या नहीं? तो होने की है वह कहाँ से आयेगी? वह अन्दर में परिपूर्ण सिद्धशक्ति से भगवान शक्तिवान एक है। इसलिए वह दृष्टि द्रव्य पर देने से, परिपूर्ण सिद्ध हूँ—ऐसी प्रतीति में आने पर उसे सम्यग्दर्शन होता है और आगे बढ़ने से शक्ति में जो केवलज्ञान है, उस शक्ति की व्यक्तता-प्रगटता होती है। वह 'है' उसमें से आता है। अल्पज्ञ में से, राग में से या व्यवहार में से केवलज्ञान नहीं आता। समझ में आया? ओहोहो!

कोई भी बात ले, वहाँ बात तो मूल यहाँ लाकर रखे। छद्मस्थदशा में भी... अरे! निगोद की दशा भले हो, वह तो पर्याय है। परन्तु उसका जो गुण है वह तो परिपूर्ण है। गुण-शक्ति को अपूर्ण और विपरीत, ऐसा शक्ति को लागू पड़ता नहीं। अपूर्ण और विपरीत, वह तो पर्याय में लागू पड़ता है। समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें जो ज्ञान का सामर्थ्य तो परिपूर्ण है। किसी (भी) समय अभव्य को भी परिपूर्ण

शक्ति है। आहाहा! ऐसा होगा? जीव किसका कहलाये? उसका उपयोग है, वह परिपूर्ण शक्ति और शक्तिवान है। पर्याय में प्रगट करने की उसे ताकत नहीं। समझ में आया?

सर्व जीव है सिद्धसम। सर्व जीव है ज्ञानमय—योगीन्द्रदेव में आता है। सर्व जीव है ज्ञानमय। पूरी दुनिया के अनन्त आत्मायें ठसाठस चौदह ब्रह्माण्ड में भरे हैं। कहते हैं कि ज्ञान-सुखशक्ति है न। भले क्षेत्र इतना हो परन्तु शक्ति है न, वह स्वभाव है न, वह सत्व है न, तो सत्व वह एकरूप है न, अखण्ड है न, इसलिए परिपूर्ण है। परिपूर्ण शक्ति से तो भगवान अभिन्न है। एक समय की पर्याय से अभिन्न नहीं। वह क्षणिक अभिन्न है। गुण से त्रिकाल ऐसा, इसलिए लिया न! देखो! गुण में शक्ति है, वह ज्ञानगुण को सदैव एकत्व है,... आहाहा! समझ में आया?

अल्पज्ञ पर्याय को एकत्वपना त्रिकाल नहीं है। हाँ, एक समय की पर्याय है। त्रिकालपना उसके साथ नहीं है। गुण जो है, वस्तु है न, पदार्थ है न? स्वभाववान, उसका जो स्वभाव ज्ञान, आनन्द उस सहित जो वस्तु एक और परिपूर्ण है तो उसका ज्ञानगुण, भाव-शक्ति परिपूर्ण है। अल्प काल में भी परिपूर्ण शक्ति से भगवान तो अभिन्न ही है। आहाहा! समझ में आया या नहीं इसमें? यहाँ जितना नहीं। सर्वत्र जितना रखना। यहाँ जितना आत्मा होगा? वहाँ सब फँस जाते हैं धन्धे में, वहाँ भूल जाये, ऐसा। भूल जाते होंगे? मैं रतिलाल हूँ, ऐसा भूल जाता है यह? यह सब नाम भी भूल जाये। मर जाये फिर हो गये। हैं? बापू कैसे थे। साठ वर्ष पहले पच्चीस हजार छोड़ गये। ख्याल नहीं आवे, लो! हैं? दिन ढलने से, माह दया वर्ष में आंतरिया, सूरत भूली साह्यबा जिसके नाम से उछले। नाम भी नहीं रहे, नाम याद भी नहीं रहे। हमारे दादा थे मगनलालजी और अमुक थे... क्या नाम था? कहो, समझ में आया?

कुछ नहीं, कुछ भी नहीं। यह तो त्रिकाल सम्बन्ध है। पर के साथ तो वर्तमान निमित्त-निमित्त सम्बन्ध, इसलिए वह तो पृथक् है। राग का सम्बन्ध एक क्षणिक परन्तु पृथक् है। एक समय की पर्याय का सम्बन्ध एक समयमात्र का है। और उसकी शक्ति का सम्बन्ध तो त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? छद्मस्थदशा में भी... यह

जयसेनाचार्य में (हैं) **उस अभिन्न ज्ञानगुण में...** भगवान आत्मा, उसका जो गुण ज्ञान, उसमें शक्तिरूप से तो केवलज्ञान होता ही है। शक्तिरूप तो केवलज्ञान की पर्याय में शक्तिरूप से होता है। केवलीदशा में **उस अभिन्न ज्ञानगुण में शक्तिरूप से केवलज्ञान होता है।** बस। वह चौंसठ पहरी पीपर की चरपराहट अल्प तीखाश के काल में भी चौंसठ पहरी चरपराहट और छोटी पीपर को एकपना अवश्य है। बराबर है या नहीं? आहाहा!

यह तो सब तुम्हारे लॉजिक का चलता है इसमें। भगवान तो न्याय से निरावयम्, आता है न उस प्रवचनसार में? भगवान ने कहे हुए पदार्थ युक्ति से और स्पष्ट तर्कणा से सिद्ध होते हैं। प्रवचनसार में आता है। हाँ, तीसरे अधिकार में। होते हैं। वस्तु ऐसी ही है न, बापू! कुछ न्याय से... न्याय से। परन्तु यह विकल्प के चक्र में पड़ा है और उसे रखने का मिथ्या प्रयास, उसमें वस्तु पूरी दृष्टि में से चली गयी। समझ में आया? जबरदस्ती व्रत लिये। जबरदस्ती बाहर के क्रियाकाण्ड अन्दर में बिछाये कि यह हमारी है, यह हमारी है। उसमें वह पूरा रह गया। हैं? आहाहा! क्यों चेतनजी? आहाहा!

प्रभु! तेरी महिमा का क्या पार, कहते हैं। तेरी महिमा का भी तेरे स्वभाव की शक्ति की महिमा का क्या पार? ऐसे भाव से भरपूर तत्त्व तो पूरा शक्तिवाला ही है। परन्तु विश्वास लावे कहाँ से? अल्पज्ञ होने पर भी मैं सर्वज्ञ स्वभाव की शक्ति से त्रिकाल भरपूर हूँ। आहाहा! परन्तु शक्ति हो, उसमें अपूर्णता, विपरीतता कैसे हो सकती है? वह तो पर्याय में अपूर्णता और उल्टापन, हीनता इत्यादि होते हैं। वस्तु तो कहते हैं कि प्रभु! तू आत्मा अल्पज्ञ था, इसलिए सर्वज्ञ की पर्याय बाहर से आयी है, इसलिए समवाय सम्बन्ध हुआ, (यह) बात त्रिकाल झूठ है। आहाहा!

भगवान! तू आत्मा है न, भाई! तू आत्मा है तो वह आत्मा तो वस्तु हुई। परन्तु कोई शक्ति, उसका गुण, सत्व होगा या नहीं? आत्मा तो सत् हुआ। तो उस सत् का सत्पना होगा या नहीं? सत्पना अर्थात् ज्ञान, आनन्दपना वह परिपूर्ण है। उस सत्पने के भाव से सत् की एकता है। समझ में आया? कहो, सतीश! बैठता है या नहीं? उन कपड़ों में फँस गया है, वहाँ धन्धे में। कोई कहता था, हों! यह वह भी रखा है ऐसा।

इतना जानता तो है न। जाना हुआ कुछ चला नहीं जाता, ऐसा कहते थे। कोई अभी कहता था। पोरबन्दर से कोई था मुम्बई का व्यक्ति। तेरा इतना पक्ष लिया था। अब देखो यह... हाँ, वह कुछ बोले थे। कहो, समझ में आया इसमें? इसमें भी वस्तुस्थिति ऐसी है, उसके ख्याल में नहीं आती।

केवलज्ञान व्यक्त होता है। केवलज्ञान कहीं से-बाहर से आकर केवली भगवान के आत्मा के साथ समवाय अर्थात् चिपकता नहीं है। ऐसा समझ में आता है? इस बबूल में भी गोंद तो अन्दर से आता है, तथापि ऊपर से चिपका कहलाता है। इसी प्रकार यह ऐसा नहीं है। यह तो शक्ति है। गुणी ऐसा भगवान, उसका गुण परिपूर्ण है। उसके आश्रय लेने से उसमें से शक्ति की व्यक्ति केवलज्ञान होता है।

यहाँ तो मोक्षमार्ग किसके आश्रय से होता है, यह भी सिद्ध हो गया। हैं? आहाहा! यह व्यवहार भगवान तेरा व्यवहार और दया-दान के कारण से—उसके कारण से केवलज्ञान हो, ऐसा नहीं है। और अल्प ज्ञान वर्तता है, वह व्यवहार को जाननेवाला, उससे भी केवलज्ञान होता नहीं। देखो न, ओहोहो! शैली वह भी कैसी! केवलज्ञान और अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शनोपयोग, ज्ञानोपयोग—यह चतुष्टय जो प्रगट हुए, वे चतुष्टय शक्ति से भगवान के साथ अवश्य अभेद है। उस चतुष्टय शक्ति से आत्मा अभेद है—अभेद एकत्व है। एकत्व है, उसमें एकत्व किया, उसमें से प्रगट होता है। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, कीर्तिभाई! ऐसी बात किसे कहाँ कहे? ...वापस नास्तिक कहे। अरे! सुन न, बापू! तेरा अस्तित्व कितना है, यह तुझे भी खबर नहीं और वापस दूसरे को नास्तिक ठहराये! आहाहा! समझ में आया?

ऐई, यह तो व्रत, तप को मानते नहीं। यह व्रत, तप को तो उड़ाते हैं। वे मोक्षमार्ग हैं, उन्हें तो उड़ाते हैं। परन्तु यह व्रत, तप तो विकल्प है, यह तो विकल्प है। ऐसा करूँ, ऐसा करूँ वह तो वृत्ति उठती है। वह आत्मा कैसा और आत्मा की पर्याय कैसी? आहाहा! हैं? कुछ खबर नहीं। क्या करे? कुछ नाम धरावे न फिर झूठा है, ऐसा है। अरे! भगवान! तू किसे कहता है? प्रभु! तुझे तेरी प्रभुता की खबर नहीं। आहाहा! प्रभु! भगवान, उस प्रभुता की शक्ति से प्रत्येक से परिपूर्ण स्थित है। आहाहा!

यह परिपूर्ण शक्तिवाला भगवान, इस पर दृष्टि देने से परिपूर्ण शक्ति मेरी है। मैं अल्पज्ञ भी नहीं, राग भी नहीं और निमित्त भी नहीं। ऐसी अन्तर प्रतीति हो, तब उसे अभी धर्म की—सम्यग्दर्शन की पहली शुरुआत कहा जाता है। अब इस बिना तू व्रत और तप को लेकर बैठा ऐसा। बापू! सब ठगाई खड़ी हुई है तुझे। आत्मा वहाँ ठगा गया है। हें ? आहाहा! क्या हो ?

केवलज्ञान कहीं बाहर से आकर केवली भगवान आत्मा के साथ समवाय पाता है, ऐसा नहीं है। एक बार भाई, बोटद में लोकसार अध्ययन चलता था। बोटद की सभा जोरदार। तीन सौ घर तो तब थे। पढ़ने बैठें तो लोग सभा में तो समावे नहीं। समावे तो नहीं परन्तु बाहर पूरी गली है, वह भर जाये। ऐसी कोई बात निकली थी। लोकसार अध्ययन, लोग कहे, ओहो! आज महाराज को केवलज्ञान घूमता है बाहर कहीं। ऐई! लोगों को बेचारों को कुछ खबर नहीं होती। केवलज्ञान बाहुबली को फिरता था न, ऐसा। अभी केवलज्ञान.... प्रभु! केवलज्ञान कहीं बाहर से आता होगा ? वह फिरे। ऐई! बाहर की वह बहुत महिमा हुई न बहुत! लोकसार अध्ययन चलता था। बहुत बात निकली थी। अन्यत्र कम है, उसमें है थोड़ी निकाले तो।

कहा, आत्मा तो यह है। लोकसार। चैतन्य का सार भगवान है। अकेला पदार्थ प्रभु है। उसमें से आनन्द और ज्ञान की दशा आती है, कहीं बाहर से नहीं आती और बाहर के कारण से नहीं आती। पुण्य-पाप, दया, दान तो बाहर के कारण हैं। उसमें से कहीं केवलज्ञान नहीं आता। एक बात बैठाये तो यह अन्दर से निहाल हो जाये। ऐ सेठ! अभी तक ऐसा का ऐसा समय व्यतीत किया। यह तो एकान्त में कहा जाये। यह वस्तु समझने जैसी है। बाकी सब व्यर्थ है, निष्फल होकर चला जायेगा। फल तो यह है। आहा! देखो न, कैसी बात की है!

समवाय को प्राप्त होता हो, ऐसा नहीं है। छद्मस्थदशा में और केवलीदशा में जो ज्ञान का अन्तर दिखाई देता है, वह मात्र शक्ति-व्यक्तिरूप अन्तर समझना चाहिए। पर्याय में अल्पज्ञता और पर्याय में व्यक्तता, इतना अन्तर समझना। शक्ति और आत्मा को जरा भी कहीं अन्तर नहीं है। समझ में आया ? जो ज्ञान का अन्तर ज्ञात होता है, वह मात्र

शक्ति-व्यक्तिरूप है। शक्ति में परिपूर्ण है और व्यक्त में अल्प है, यह अन्तर ज्ञात होता है, परन्तु शक्ति में और शक्तिवान में अभेदता है। वह एकता होने से सर्वज्ञ का व्यक्तपना हो जाता है। 'उवओगो लकखळो ळिच्यं स' सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा को उपयोग लक्षण ध्रुव, हो! त्रिकाली उपयोगवाली बात है। 'उवओगो लकखळो ळिच्यं स' यह नित्य की बात है। ज्ञान, दर्शन नित्य जो शक्तिरूप है, ऐसे लक्षणवाला भगवान ने आत्मा को देखा है। वह आत्मा रागमय कैसे हो जाये? उपयोगरूप है, अनात्मा है, वह आत्मा आत्मारूप कैसे हो जाये? ऐसा कहा है न! नमक का पानी हो। समझे? यह तो नमक पिघलकर पानी होता है। नमक पिघलकर कहीं अफीम होगी?

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपना स्वभाव है परिपूर्ण, उसका आश्रय करने से दशा प्रगट होती है, परिणमती है, पर्याय परिणमती है। परिणमती है—परिणमती है तो अन्दर परिणमनेवाला है, इसलिए परिणमती है। समझ में आया? लो, ४९ हुई। पंचास्तिकाय की ४९ गाथा। हैं? पंचास्तिकाय है या नहीं घर में? हैं? रखा है न। कहो, यह बहिनों, लड़कियों को समझ में आता है या नहीं? बहिनें-लड़कियाँ थी ही कब? यहाँ तो सब आत्मा है। सब चैतन्य के चोसला है। आनन्दकन्द के धाम हैं। यह आनन्द की शक्ति से आत्मा परिपूर्ण से भिन्न तीनों काल नहीं है। आहाहा!

आनन्द, ज्ञान है, वह तो परिपूर्ण है। स्वभाव है, अस्तित्व-होनापना पूर्ण हो तो ही स्वभाव कहलाता है। समझ में आया? उस पूर्ण का आश्रय लेकर पर्याय में पूर्णता प्रगट होती है। अल्पज्ञानपर्याय का आश्रय ले तो विकल्प का आश्रय लेकर नहीं होता। यह तो दो और दो=चार जैसी बात है, परन्तु यह बात बाहर में सिरपच्ची करके समझे बिना झगड़ा करे। देखो! ऐसे महाव्रत ले बेचारे। स्त्री, पुत्र छोड़े बेचारे। खाने-पीने के साधन सर्दी के समय ठण्डा, गर्मी के समय गर्म मिले। यह सब छोड़कर किसी के घर में जाये, भिक्षा मिले वह ले। यह कहते हैं कि यह खोटे! अब सुन न, लाख बार खोटे। तुझे खबर कहाँ है? देखो न... बात की। तत्त्व की अन्दर वस्तु तो कोई आयी नहीं। भगवान तो कहीं उसकी पर्याय में आया नहीं। वह तो सब राग और द्वेष की पर्याय। हैं? आहाहा!

द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों सिद्ध। देखो! किस प्रकार कहते हैं? द्रव्य परिपूर्ण

है तो उसका गुण परिपूर्ण है। पर्याय भले अल्प हो परन्तु उसकी शक्ति तो उस काल में भी परिपूर्ण है। इसलिए परिपूर्ण के आश्रय से परिपूर्णता प्रगट होती है। वह कहीं बाहर से नहीं आती। कहो, समझ में आया इसमें? ऐ, भीखाभाई!

मुमुक्षु : प्रभु! आप जो कहते हो तो आनन्द का पार नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह तो इसके घर की बात है न! आहाहा! ज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव है, उस स्वभाव से तो स्वयं एकत्व है। अब उसे किसके साथ एकत्व करना है? राग के साथ, पर के साथ, एक समय की पर्याय के साथ? ऐसा कहते हैं। बदलती-बदलती पर्याय एक समय की कभी त्रिकाल अभेद रहती नहीं। समझ में आया?

इसलिए इसे तो शक्ति और शक्तिवान दो त्रिकाली एक है, उसका आश्रय करना चाहिए। भावार्थ बराबर है या नहीं? 'भवेय वहेण' गोम्मटसार में... वचन भी उतने नय भी हैं। नय भी उतने मिथ्यावाद, ऐसा जिनवचन सर्वथा नहीं होता, ऐसा कहा, एकान्त से एक नय को माने तो मिथ्यात्व है। यह विवाद-झगड़ा... झगड़ा...झगड़ा। यह वस्तु समझ न, बापू! जादवजीभाई! समझ में आता है या नहीं यह? यह नाणावटी (ब्याज-हुण्डी) का धन्धा है। लुहार थे नाणावटी लुहार। लुहार नाणावटी.... पूँजी चालीस हजार की। लुहार, चालीस हजार की पूँजी। नाणावटी कहलाये। पुण्य की बात है न? इसी प्रकार यह तो नाणावटी—नाण अर्थात् ज्ञान, वह नाणा अर्थात् ज्ञान, उसका नाणावटी आत्मा है। उसकी यह तो दुकान है, ऐसा कहते हैं। हैं? ४९ (गाथा) हुई।

५० गाथा। अब जैन का समवायपना कैसा है, ऐसा सिद्ध करते हैं। अन्य समवाय कहते हैं, ऐसा नहीं है।

गाथा - ५०

समवर्त्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो या
तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धि ति णिद्धिटा॥५०॥

समवर्त्तित्वं समवायः अपृथग्भूतत्वमयुतसिद्धत्वं च।
तस्माद्रव्यगुणानां अयुता सिद्धिरिति निर्दिष्टा॥५०॥

समवायस्य पदार्थान्तरत्वनिरासोऽयम् ।

द्रव्यगुणानामेकास्तित्वनिर्वृत्तित्वादानादिरनिधना सहवृत्तिर्हि समवर्त्तित्वम्; स एव समवायो जैनानाम्; तदेव संज्ञादिभ्यो भेदेऽपि वस्तुत्वेनाभेदादपृथग्भूतत्वम्; तदेव युतसिद्धिनिबन्धन-स्यास्तित्वान्तरस्याभावादयुतसिद्धत्वम्। ततो द्रव्यगुणानां समवर्त्तित्वलक्षणसमवाय-भाजामयुतसिद्धिरेव, न पृथग्भूतत्वमिति ॥५०॥

समवर्त्तिता या अयुतता अप्रथकत्व या समवाय है।
सब एक ही है - सिद्ध इससे अयुतता गुण-द्रव्य में ॥५०॥

अन्वयार्थ :- [समवर्त्तित्वं समवायः] समवर्त्तीपना वह समवाय है; [अपृथग्भूतत्वम्] वही, अपृथक्पना [च] और [अयुतसिद्धत्वम्] अयुतसिद्धपना है। [तस्मात्] इसलिए [द्रव्यगुणानाम्] द्रव्य और गुणों की [अयुता सिद्धिः इति] अयुतसिद्धि [निर्दिष्टाः] (जिनों ने) कही है।

टीका:-यह, समवाय में पदार्थान्तरपना होने का निराकरण (खण्डन) है।

द्रव्य और गुण एक अस्तित्व से रचित है, इसलिए उनकी जो अनादि-अनन्त सहवृत्ति (-एक साथ रहना) वह वास्तव में समवर्त्तीपना है; वही, जैनों के मत में समवाय है; वही, संज्ञादि भेद होने पर भी (-द्रव्य और गुणों को संज्ञा-लक्षण-प्रयोजन आदि की अपेक्षा से भेद होने पर भी) वस्तुरूप से अभेद होने से अपृथक्पना है; वही, युतसिद्धि के कारणभूत 'अस्तित्वान्तर का अभाव होने से अयुतसिद्धपना है। इसलिए 'समवर्त्तित्वस्वरूप समवायवाले द्रव्य और गुणों को अयुतसिद्धि ही है, पृथक्पना नहीं है ॥५०॥

१. अस्तित्वान्तर=भिन्न अस्तित्व। (युतसिद्धि का कारण भिन्न-भिन्न अस्तित्व है। लकड़ी और लकड़ीवाले की भाँति गुण और द्रव्य के अस्तित्व कभी भिन्न न होने से उन्हें युतसिद्धपना नहीं हो सकता।)

गाथा - ५० पर प्रवचन

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य।
 तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धि त्ति णिद्धिद्वा॥५०॥
 समवर्तिता या अयुतता अप्रथकत्व या समवाय है।
 सब एक ही है - सिद्ध इससे अयुतता गुण-द्रव्य में॥५०॥

भगवान ने—परमेश्वर ने ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है कोई शास्त्र! अमृत शास्त्र है। उसके अमृतचन्द्राचार्य। यह, समवाय में पदार्थान्तरपना होने का निराकरण (खण्डन) है। अर्थात् गुण भिन्न और गुणी भिन्न, फिर समवाय सम्बन्ध हो, उसका यहाँ निराकरण किया, उसका खण्डन किया है। ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! द्रव्य और गुण एक अस्तित्व से रचित हैं,... पहले चार बोल आ गये थे।

द्रव्य स्वयं वस्तु और उसके गुणों का अस्तित्व द्रव्य से एक द्रव्य है; क्षेत्र से अभिन्न है; काल से अभिन्न है और भाव से अभिन्न है। प्रवीणभाई! इसमें प्रवीण होना चाहिए, ऐसा कहते हैं। यह लोहे का व्यापार और उन सबमें होशियार। द्रव्य और गुण एक अस्तित्व से रचित हैं,... प्रवीणभाई को बहुत जिज्ञासा है। भाई! आहाहा! चार गति के भव करना—चार गति के भव करना। आहाहा! नहीं। प्रवीणभाई! एक यह बोले और एक चन्दुलाल बोले थे। अररर! यह चार गति के भव करना... इनसे छूटे बिना कुछ छूटा नहीं। चार भव में घाणी में पिलता है। भाई! समझ में आया? चाहे तो देव का भव हो, सेठाई का हो, वह सब दुःख के पर्वत में सुलग रहे हैं। इसकी उसे खबर नहीं। आनन्द प्रभु आत्मा के झरने को प्रगट किये बिना... यह झरना झरे आकुलता का। आहाहा! यह नये... दुःखी हैं दुःखी। देव दुःखी। इन्द्राणी हजारों करोड़ों, शरीर सुन्दर रूपवान... उसमें धूल में क्या? आकुलता में सुलगता है, अंगारा है। उस आकुलता के

२. समवाय का स्वरूप समवर्तीपना अर्थात् अनादि-अनन्त सहवृत्ति है। द्रव्य और गुणों को ऐसा समवाय (अनादि-अनन्त तादात्म्यमय सहवृत्ति) होने से उन्हें अयुतसिद्धि है, कभी भी पृथक्पना नहीं है।

अंगारों में सुलग रहा है। चार गति में स्वर्ग ठीक और नरक अठीक, ऐसा है नहीं। आहाहा!

वीतराग परमात्मा का यह मार्ग है। वह एक व्यक्ति कहे—स्वर्ग के सुख तो मिलने दो। शान्तिभाई थे नहीं, नागलपुरवाले। बोटाद। वे कहें, स्वर्ग के सुख तो मिले बेचारे को, फिर मोक्ष होगा। भोगने दो। अरे! भगवान! नागलपुर के वह नागलपुर नहीं? बोटाद के पास। अमुलखभाई! हड्डियाँ बहुत मजबूत। यह बात कहीं सुनने को मिलती नहीं। क्या करे बेचारा? फिर आकर कहे, आवे तो सही। परन्तु (कहे) परन्तु महाराज आप पुण्य का निषेध करते हो, किन्तु पुण्य करेगा तो स्वर्ग में इतना सुखी तो होगा। फिर मोक्ष जायेगा। आहाहा! अरे, भगवान! कहाँ धूल में भी सुख नहीं। अग्नि से सुलगता है।

देखो! यहाँ तो कहते हैं, बापू! तेरा आनन्द और तेरा आत्मा दोनों एक अस्तित्व से रचित हैं। तेरा आनन्द कहीं बाहर में नहीं है। आहाहा! नहीं स्वर्ग में, नहीं नरक में, नहीं पैसे में, नहीं उसके बँगले में। दस-दस, बीस-बीस लाख के विशाल संगमरमर का बँगला बनाया हुआ। आहाहा! इसे ऐसा हो जाता है कि आहाहा! वह तो आकुलता है।

यहाँ तो गुण और द्रव्य का आनन्द और आत्मा का एक होने से रचित **उनकी जो अनादि-अनन्त सहवृत्ति...** देखो! भगवान आत्मा और आनन्द, यहाँ उपयोग की बात है, परन्तु उपयोग में वह आनन्द होता ही है। **जो अनादि-अनन्त (आत्मा को) सहवृत्ति (-एक साथ रहना) वह वास्तव में समवर्तीपना है;**... इसका नाम समवाय है, कहते हैं। इसकी विशेष बात कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५२, गाथा-५० से ५३, पौष कृष्ण ७, गुरुवार, दिनांक -२९-०१-१९७०

पंचास्तिकाय ५०वीं गाथा। टीका है न! यह, समवाय में पदार्थान्तरपना होने का निराकरण (खण्डन) है। अर्थात् क्या ? कि यह आत्मा जो है वस्तु, उसका ज्ञान, आनन्द आदि जो गुण है, उसका समवाय सम्बन्ध ऐसा नहीं कि वह अलग चीज़ थी और फिर द्रव्य के साथ इकट्ठी हुई। ऐसा समवाय सम्बन्ध कुछ बना है जैन वीतराग में कि यह सहवर्ती आत्मा के साथ सहवर्ती गुण अनादि-अनन्त रहते हैं, उसे यहाँ वीतरागमार्ग में समवायपना गिनने में आता है। वस्तु ऐसी है वीतरागमार्ग में, वह। समझ में आया ?

भगवान आत्मा वस्तु है और उसमें ज्ञान और आनन्द यह गुण है। क्योंकि वस्तु हो, उसे कोई शक्ति और स्वभाव गुण होते हैं न ? न्याय से कि तू चीज़ है, वह चीज़ है, वह जड़ और चैतन्य जैसे, तो जड़ चीज़ है तो उसमें जड़ गुण होते हैं। चैतन्य चीज़ है तो उसमें चैतन्य आनन्द आदि गुण होते हैं। तो कहते हैं कि गुणी जो द्रव्य, गुणी अर्थात् वस्तु, उसका जो गुण, भले नाम भेद पड़े। गुणी और गुण ऐसे नाम भेद पड़े। परन्तु ज्ञानगुण और आत्मा के प्रदेशभेद या अर्थान्तर अन्य दो पदार्थ हैं, ऐसा नहीं है। वह ज्ञान, वही आत्मा। ज्ञान, वही आत्मा। ऐसा उसे सहवर्ती को लेकर समवाय सम्बन्ध इस प्रकार से गिनने में आया है। समझ में आया ?

देखो न! कितनी बात से सिद्ध करते हैं। उपयोग के उपयोग को सिद्ध करते हैं। उपयोग की यह व्याख्या है। कि आत्मा है, उसमें जानने का उपयोग है। जाननेवाला है न, जानने का उपयोग है न, त्रिकाल, हों! वह उपयोग और उपयोगवान ऐसे नामभेद होने पर भी उस उपयोगवान के साथ उपयोग सदा अनादि-अनन्त है ऐसा, उसे वीतरागमार्ग में समवाय गिनने में आया है। कहो, समझ में आया इसमें ?

द्रव्य और गुण एक अस्तित्व से रचित हैं,... लो ! द्रव्य अर्थात् वस्तु अस्ति पदार्थ आत्मा और ज्ञान, आनन्द आदि शाश्वत् रहनेवाले गुण अर्थात् शक्ति, वह एक अस्तित्व से रचित है। एक अस्तित्व से रचित, अर्थात् रहे हुए हैं। उसके दो अस्तित्व गुण का अस्तित्व अलग और वस्तु का अस्तित्व अलग, ऐसा है नहीं। जैसे शक्कर का अस्तित्व अलग और शक्कर के मिठास का अस्तित्व अलग, ऐसा नहीं है। हैं ?

मुमुक्षु : शक्कर का और मिठास का भिन्नपना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ऐसा नहीं है। मिठास अलग और शक्कर अलग, ऐसा नहीं है। वह तो मिठास और शक्कर एक है। शक्कर द्रव्य कहें—वस्तु तो मिठास गुण कहते हैं। परन्तु गुण दूसरा है—अन्य पदार्थ है और द्रव्य शक्कर, अन्य, ऐसा है? ऐसा नहीं है। उष्णता और अग्नि। अग्नि वस्तु है और उष्णता उसकी शक्ति-गुण है। परन्तु वह शक्ति भिन्न है और शक्तिवान भिन्न है, ऐसा नहीं है। परन्तु अग्नि है, वहाँ उष्णता कायम है, ऐसा सहवर्ती गिनकर अग्नि के साथ उष्णता को समवाय सम्बन्ध कहा जाता है।

इसी प्रकार आत्मा वस्तु है। भगवान् आत्मा पदार्थ है, चीज़ है, तत्त्व है। तो उसका जो ज्ञानगुण है, वह उसके साथ सहवर्ती सदा ही है। राग-द्वेष और पुण्य-पाप के विकल्प, वे कहीं सदा नहीं हैं। यह तो गुण की बात है। परन्तु पर्याय में उपयोगरहित आत्मा कभी होता नहीं। क्योंकि वह उसकी चीज़ है। पुण्य और पाप के विकल्प, उसके बिना का तो आत्मा हो जाता है। क्योंकि उसका स्वरूप नहीं है। समझ में आया ?

द्रव्य और गुण, लॉजिक-न्याय से सिद्ध करते हैं। वस्तु जो है, है। उसके गुण हैं ज्ञान-आनन्द आदि आत्मा के (गुण हैं)। वह आनन्द और ज्ञान तथा आत्मा का एक अस्तित्व है। आनन्द का अस्तित्व आत्मा के गुण का सच्चिदानन्द है न वह! सत्-चिद्-आनन्द। सत् वस्तु में चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। ये दोनों एक अस्तित्व से रचित भाव है। दोनों के अस्तित्व का भाव पृथक् नहीं है। आनन्द चाहिए हो, उन्हें आत्मा में खोजना चाहिए, ऐसा कहते हैं। धर्म चाहिए हो, उन्हें आत्मा को शोधना। सेठ! समझ में आया ? यह सुखी होना हो तो कहते हैं कि आत्मा में आनन्द है, उसे खोजना, ऐसा कहते हैं। वह आनन्द और आत्मा दोनों पृथक् नहीं हैं।

पुण्य और पाप के जो विकल्प उठते हैं, वह तो संयोगीभाव है। दया, दान, व्रत, भक्ति अथवा काम, क्रोध, मान, माया, लोभ के, वे तो विकारी संयोगी भाव हैं। वे कहीं कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है। उत्पन्न करे तो करे और न करे तो टाले, ऐसा इसका स्वभाव है। परन्तु ज्ञान उत्पन्न करे तो करे, नहीं तो ज्ञान टाले, ऐसा कुछ आत्मा में नहीं है। समझ में आया ?

द्रव्य और गुण एक अस्तित्व से... एक अस्तित्व से रहे हुए हैं। रचित अर्थात् एक अस्तित्व से रचित हैं। आहाहा! उनकी जो अनादि-अनन्त सहवृत्ति (-एक साथ रहना)... भगवान आत्मा, वहाँ-वहाँ ज्ञान और आनन्द कायम है। वह वास्तव में समवर्तीपना है;... साथ में वर्तनापना है। आत्मा को और आनन्द को तथा ज्ञान को साथ में वर्तनापना है। वही जैनों के मत में समवाय है;... वीतराग सर्वज्ञदेव परमात्मा हो गये। समझ में आया? जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान शक्तिरूप से था, वह प्रगटरूप हो गया। क्योंकि ज्ञान शक्ति पूर्ण और आत्मा दोनों तो अभेद है। एक अस्तित्वरूप से रचित हैं। उसमें नजर करने से पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था में जो द्रव्य के आश्रय से ज्ञान, शान्ति, आनन्द आदि प्रगट दशा होती है, वह उसका धर्म और वह उसकी दशा सुखरूप दशा है। समझ में आया?

ऐसा परमेश्वर कह गये हैं, कहते हैं। परमेश्वर ने इस प्रकार सहवर्ती और समवाय कहा है। दूसरी चीज़ थी और दूसरी जुड़ गयी, उसे परमेश्वर वीतरागदेव ने समवाय कहा नहीं और ऐसा होता नहीं। कहो, समझ में आया? शरीररहित रह सकता है, वाणीरहित रह सकता है। क्योंकि उनसे रहित चीज़ है। विकार बिना रह सकता है, क्योंकि उससे रहित चीज़ है। परन्तु उपयोग बिना रह सके, ऐसी वह चीज़ है नहीं। कहते हैं, वही जैनों के मत में, वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ अभिप्राय, उसमें उसे समवाय कहते हैं। दूसरे लोग तो ऐसा कहते हैं न कि भाई! ज्ञान भिन्न था और आत्मा के साथ जुड़ान हुआ। इसलिए आत्मा ज्ञानवाला कहा गया है। जैसे लकड़ी भिन्न थी और लकड़ीवाले ने पकड़ी, इसलिए लकड़ीवाला कहा जाता है। कोई कहे कि ऐसा है। ज्ञान अलग है और आत्मा अलग है, इसलिए ज्ञान जुड़ा तो ज्ञानवाला कहा गया। ऐसा है नहीं। समझ में आया?

वही, संज्ञादि भेद होने पर भी... नामभेद है, कहते हैं। ज्ञान का नाम ज्ञान, आत्मा का नाम आत्मा। भले नामभेद हो परन्तु वस्तुभेद नहीं। उष्णता और अग्नि दो नामभेद है। परन्तु कोई उष्णता अलग पदार्थ है और अग्नि कोई अलग पदार्थ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह लॉजिक से तो बात करते हैं, भाई! यह। कहो, समझ में आया?

द्रव्य और गुणों को संज्ञा-लक्षण... गुण का लक्षण द्रव्य के आश्रय से रहना;

द्रव्य का लक्षण अनन्त गुण को आधार देना। ऐसा भले लक्षणभेद से लक्षण हो। प्रयोजन भेद हो द्रव्य और गुण को, तथापि वस्तुरूप से अभेद है। गुण और गुणी, शक्ति और शक्तिवान, स्वभाव और स्वभाववान, यह चीज़ पृथक् नहीं है। इसलिए जिसे धर्म करना हो तो कहते हैं कि धर्म अर्थात् आत्मा का स्वभाव। वह स्वभाव कायम पड़ा है। उसका आश्रय करने से पर्याय में धर्म प्रगट होता है। समझ में आया? वस्तुरूप अभेद होने से अपृथक्पना है;.... अपृथक् अर्थात् भिन्न नहीं, एक है। अरे! परन्तु इन्होंने कैसी सिद्धि की है!

यहाँ तो कहते हैं कि तुझे हित करना है या नहीं? तो जिसे पर्याय में हित करना है, वह आनन्द और शान्ति की प्राप्ति हो, ऐसा कोई गुण अन्दर गुणी के साथ अभेद है या नहीं? इस दुनिया में आकुलता है। पुण्य और पाप की आकुलता है। वह दुःख है। अब तुझे सुखी होना है या नहीं? दुःखी तो चौरासी के अवतार में अनन्त काल से हो रहा है। भले सेठ हो या राजा हो या रंक हो या नारकी हो, चींटी हो, कौआ हो। सब एक प्रकार के दुःख हैं। कम-ज्यादा आकुलता की अलग बात है परन्तु है सब आकुलतावाले। बराबर होगा? तुम पैसेवाले भी दुःखी होंगे? कहाँ इसमें पैसेवाला हो तो दाँत गिराने मोटर में एकदम राजकोट जाना पड़ा। पैसा न हो तो बेचारा गरीब व्यक्ति क्या करे? परन्तु उसमें क्या हुआ? दाँत गिराना, वह तो विकल्प था। गिराये कौन? टाले कौन? वह तो उसके कारण से पड़ने के योग से पड़ते हैं। कहते हैं, बहुत खींचना पड़ा था। अरे भगवान! सुन तो सही भाई! उस दाँत का अस्तित्व और आत्मा का अस्तित्व दोनों अस्तित्व अत्यन्त भिन्न हैं।

इसी प्रकार ज्ञान और आनन्द का अस्तित्व और आत्मा का अस्तित्व दोनों अस्तित्व पृथक् नहीं है। आहाहा! तेरा आत्मा आनन्द की खान है। अरे! कैसे बैठे इतना बड़ा! बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं। मान फिर से न मिले वहाँ हीन पड़ जाये। अररर! मेरी वेग की योग्यता है, तत्प्रमाण मुझे गिना नहीं। तू तो तीन काल, तीन लोक में केवली गिना जाये इतना बड़ा है।

ओहो! कहते हैं, वस्तु भगवान आत्मा और उसकी शक्तियाँ। शक्तिवान है, उसकी शक्ति को और वान को दोनों को पृथक्ता कैसे हो? समझ में आया?

इसी प्रकार अभेद आत्मा है तो उससे उसकी दृष्टि करने से पर्याय में आनन्द आवे और दुःख टले, यह उसका नाम धर्म और आत्मज्ञान कहने में आता है। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं? रतिभाई! यहाँ जितना नहीं। वहाँ धन्धे में मशीन में जाये वहाँ दूसरा हो जाये। दूसरा हो जायेगा? वहाँ नाम रखा है। रतिभाई! नहीं, नहीं, वहाँ हो जाये लक्ष्मीचन्द, ऐसा होता होगा वहाँ? पैसेवाले हों, इसलिए लक्ष्मीचन्द होता होगा? वस्तु तो जिस स्वरूप से है और गुण से जो है, वह है। चाहे वह हो ऊर्ध्व में हो, अधो में, मध्य में, नीचे हो। संयोग की स्थिति के भीड़ में हो परन्तु वह तो है वह है। उसे संयोग स्पर्श भी नहीं करते।

उस दिलीप को एक व्यक्ति ने पूछा था। नहीं तुम्हारे नाम से बकुल लड़का है न, लड़का है न! तुम्हारा भाई छोटा। कि अपन जंगल में जायेंगे। वह छोटा इसे कहे, इसे दिलीप को पूछता है। जंगल में जायेंगे। जंगल में भी करने का तो वापस यह है। क्या करना है? ऐसा वापस जवाब दिया। गजब लड़का है। ऐसा कहा न? उसका छोटा भाई है न! यह वह कहे चलो, हम जंगल में जायेंगे। जंगल में तो वापस (द्रव्य में) एकत्वबुद्धि करने का तो यह है। ऐई! जवाब देखो उसका। ऐई, कहाँ गये उसके दादा? कहो, ऐसा जवाब देता है! सामने एक नम्बर धारकर नहीं, एकदम! जंगल में जाकर करने का तो है तो अन्दर द्रव्य का एकत्व। वहाँ कोई दूसरा करने का है? ऐई जेठाभाई! वह लड़का नहीं ग्यारह वर्ष की उम्र? अभी बारहवाँ लगा है। ऐसा जवाब देता है। चलो, कहे जंगल में जायेंगे। वहाँ जाकर जंगल में करना का तो यह का यह है। इसका अर्थ ऐसा कि जंगल कर देता है? हैं?

भगवान आत्मा अन्तर्मुख स्वभाव और स्वभाववान एक है। ऐसा अन्तर अनुभव और निर्णय करना। चाहे जिस क्षेत्र में हो, वहाँ यह करना है। उसमें क्षेत्र कहाँ इसे मदद करता है या क्षेत्र कहाँ इसे विघ्न करता है? ऐसा यहाँ कहते हैं। वस्तु तो एकदम भगवान प्रभु! और जैसे यह शरीर, वाणी का अस्तित्व और पुण्य-पाप का अस्तित्व पृथक् है, उसी प्रकार आत्मा और आनन्द का—दोनों का अस्तित्व भिन्न नहीं है। वे दोनों अपृथक् हैं। पृथक् नहीं हैं।

वही, युतसिद्धि के कारणभूत अस्तित्वान्तर का अभाव होने से... लो! भिन्न

अस्तित्व युतसिद्धि का कारण भिन्न-भिन्न अस्तित्व है। लकड़ी और लकड़ीवाले की भाँति, गुण और द्रव्य के अस्तित्व कभी भी भिन्न नहीं होने से उन्हें युतसिद्धपना नहीं हो सकता। युत अर्थात् पृथक् होकर जुड़कर सिद्ध हो वह। युत अर्थात् पृथक् हो और जुड़कर सिद्ध हो, वह। ऐसे आनन्द और ज्ञान पृथक् और फिर जुड़कर आत्मा सिद्ध हुआ ज्ञान और आनन्दवाला (हुआ) ऐसा है नहीं। यह कितनी बात सिद्ध की है! तो भी उसकी अपनी चीज़ की सम्पत्ति, पूँजी कितनी और पूँजीवाला कौन है, उस पर इसने नजर की नहीं। समझ में आया?

वह तो पर्याय में है। पर के साथ जितना लक्ष्य है पर का, उतना पर्याय का है। द्रव्य-गुण में कहाँ है? शक्ति और शक्तिवान में हीनाधिकता कहाँ है? यह तो उसकी हालत में है। क्योंकि जितना आश्रय पर में जाता है, उतनी वहाँ पराधीन अवस्था हीन हो जाती है। स्व का आश्रय करने से दशा प्रगट होती है। स्व का पूर्ण आश्रय करने से केवलज्ञान पर्याय में हो जाता है। ऐसी चीज़ है। अनादि से अनन्त तीर्थकर केवली कहते आये हैं और न्याय से, अनुभव से, आगम से सिद्ध हो सकता है, सब पहलुओं से। समझ में आया?

वही, युतसिद्धि के कारणभूत अस्तित्वान्तर... ऐसा कि पृथक् अस्तित्व था गुण का और उसका और फिर इकट्ठा हुआ, उसका तो अभाव है। अयुतसिद्धपना है... इसलिए पृथक् होकर एकाकार हुआ, ऐसा नहीं है। अयुतसिद्ध है। अनादि से आत्मा और गुण का अयुतसिद्ध अर्थात् ऐसा का ऐसा सम्बन्ध है। इसलिए समवर्तीत्वस्वरूप समवायवाला योगफल किया। साथ में रहनेवाले **स्वरूप समवायवाले द्रव्य और गुणों को अयुतसिद्धि ही है, पृथक्पना नहीं है।** कहो, समझ में आया?

तब ऐसा कहते हैं न लोग कि भाई! अपने निर्दोष होना है। निर्दोष होना है। तो निर्दोष होना है तो कहते हैं निर्दोष स्वभाव और निर्दोष स्वभाववान अभेद है, उसकी नजर कर तो निर्दोष हुआ जाये। कारण कि वस्तु स्वभाव ही निर्दोष है। आत्मा निर्दोष है। निर्दोष कहो या वीतरागभाव कहो। समझ में आया? सदोषता टालकर निर्दोषता प्रगट करना चाहता है न! सदोषता टालकर निर्दोषता, इसका अर्थ हुआ कि सदोष टल सकता है, क्योंकि शाश्वत् चीज़ नहीं है। निर्दोषता पर्याय में प्रगट हो सकती है तो वह

निर्दोषता आयेगी कहाँ से ? कहते हैं कि तेरा निर्दोष स्वभाव पड़ा है। उसका धारक आत्मा, दोनों अभिन्न चीज़ है।

निर्दोष वीतरागीस्वभाव और वीतरागस्वभाव धारक अयुतसिद्ध है। पृथक् होकर दो सिद्ध होते हैं, ऐसा नहीं है। यह पचास गाथा हुई। यहाँ मूल तो उसमें समवाय शब्द सिद्ध किया है। दूसरी बात तो आ गयी थी परन्तु ऐसा कि उसे समवाय भी कहा जा सकता है। साथ में रहते हैं। वस्तु... वस्तु भगवान के साथ गुण रहते हैं, इसलिए उसे समवाय भी कहा जा सकता है, परन्तु भिन्न थे और जुड़ते हैं, ऐसा समवाय, युतसिद्ध समवाय वह नहीं है। अयुतसिद्ध समवाय इसे सिद्ध होता है। ऐ धीरुभाई! अरे! यह वह तो कहे, यह करो, व्रत करो, तप करो, यह सब लक्ष्य बाह्यलक्षी। आज उस कान्तिलाल का लेख (आया है), शुभभाव से समकित होता है, ऐसा कहा। क्योंकि परलक्षी शुभभाव में भी स्थिति-रस तो घटता है। और स्वलक्षी शुभभाव में समकित होता है, सम्यग्दृष्टि। क्योंकि वह समकित पाने से पहले शुद्धभाव तो नहीं, तो समकित कहाँ से हुआ ? परन्तु यहाँ द्रव्य का आश्रय करने से समकित होता है, यह तो मान। वह तो तूने पर्याय की मांडी है।

यहाँ आनन्द और आत्मा दोनों अभेद है, ऐसी अन्तर्दृष्टि होने पर वह तो द्रव्य की दृष्टि होने से पर्याय में समकित और आनन्द आता है। बहुत बड़ा लेख लिखा है। दो बड़े लेख यहाँ के विरोध के हैं। कहो, समझ में आया ? ऐसा मानता है, उसे वह पद मिला नहीं न मलाड में ? ढुंढिया हैं, यह सब तो, ऐसा लिखता है। ढुंढक वह वहाँ हिम्मतनगर में कहा था न, ऐसा यहाँ लिखा है। वह सब ढुंढक मत है। इसलिए दिगम्बर इकट्ठे होकर चेतो। ऐई! वहाँ तो मेरा सुनने आता था। यह रहे पुराने दिगम्बर। अरे भगवान! आहाहा! मूल उसे कहीं बड़ा नहीं बनाया न दिगम्बर मन्दिरों में। यह ढुंढिया सब धीरुभाई को। उल्टा मारे उसे बनाते हैं न यह। आहाहा!

यहाँ तो 'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो' यह महासिद्धान्त। भूतार्थ ध्रुव भगवान आत्मा और उसका स्वभाव ध्रुव, उसका आश्रय कर तो तुझे आत्मज्ञान और आत्मधर्म होगा। एक ही सिद्धान्त तीन काल, तीन लोक में अबाधित एक सिद्धान्त। समझ में आया ? ५१ और ५२ (गाथा)। दृष्टान्तरूप से यह सिद्ध करते हैं।

गाथा - ५१-५२

वर्णरसगंधफासा परमाणुप्ररूपिदा विसेसेहिं।
 द्रव्वादो य अणणा अणत्तपगासगा होंति॥५१॥
 दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णणभूदाणि।
 ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हि णो सभावादो॥५२॥

वर्णरसगन्धस्पर्शाः परमाणुप्ररूपिता विशेषैः।
 द्रव्याच्च अनन्याः अन्यत्वप्रकाशका भवन्ति॥५१॥
 दर्शनज्ञाने तथा जीवनिबद्धे अनन्यभूते।
 व्यपदेशतः पृथक्त्वं कुरुतः हि नो स्वभावात्॥५२॥

द्रष्टान्तदार्ष्टान्तिकार्थपुरस्सरो द्रव्यगुणानामनर्थान्तरत्वव्याख्योपसंहारोऽयम् ।

वर्णरसगन्धस्पर्शा हि परमाणोः प्ररूप्यन्ते; ते च परमाणोरविभक्तप्रदेशत्वेनानन्येऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबन्धनैर्विशेषैरन्यत्वं प्रकाशयन्ति । एवं ज्ञानदर्शने अप्यात्मनि सम्बद्धे आत्मद्रव्यादविभक्तप्रदेशत्वेनानन्येऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबन्धनैर्विशेषैः पृथक्त्वमासादयतः, स्वभावतस्तु नित्यमपृथक्त्वमेव बिभ्रतः ॥५१-५२॥

- इति उपयोगगुणव्याख्यानं समाप्तम् ।

ज्यों वर्ण आदिक बीस गुण परमाणु से अप्रथक हैं।
 विशेष के व्यपदेश से वे अन्यत्व को द्योतित करें ॥५१॥
 त्यों जीव से संबद्ध दर्शन-ज्ञान जीव अनन्य हैं।
 विशेष के व्यपदेश से वे अन्यत्व को घोषित करें ॥५२॥

अन्वयार्थ :- [परमाणुप्ररूपिताः] परमाणु में प्ररूपित किये जानेवाले ऐसे [वर्णरसगंधस्पर्शाः] वर्ण-रस-गंध-स्पर्श [द्रव्यात् अनन्याः च] द्रव्य से अनन्य वर्तते हुए [विशेषैः] (व्यपदेश के कारणभूत) विशेषों द्वारा [अन्यत्वप्रकाशकाः भवन्ति] अन्यत्व को प्रकाशित करनेवाले होते हैं (-स्वभाव से अन्यरूप नहीं है); [तथा] इस प्रकार [जीवनिबद्धे] जीव में सम्बद्ध ऐसे [दर्शनज्ञाने] दर्शन-ज्ञान [अनन्यभूते]

(जीवद्रव्य से) अनन्य वर्तते हुए [व्यपदेशतः] व्यपदेश द्वारा [पृथक्त्वं कुरुते हि] पृथक्त्व करते हैं। [नो स्वभावात्] स्वभाव से नहीं।

टीका:-दृष्टान्तरूप और *दृष्टान्तरूप पदार्थपूर्वक, द्रव्य तथा गुणों के अभिन्न-पदार्थपने के व्याख्यान का यह उपसंहार है।

वर्ण-रस-गंध-स्पर्श वास्तव में परमाणु में प्ररूपित किये जाते हैं; वे परमाणु से अभिन्न प्रदेशवाले होने के कारण अनन्य होने पर भी, संज्ञादि व्यपदेश के कारणभूत विशेषों द्वारा अन्यत्व को प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार आत्मा में सम्बद्ध ज्ञान-दर्शन भी आत्मद्रव्य से अभिन्न प्रदेशवाले होने के कारण अनन्य होने पर भी, संज्ञादि व्यपदेश के कारणभूत विशेषों द्वारा पृथक्पने को प्राप्त होते हैं, परन्तु स्वभाव से सदैव अपृथक्पने को ही धारण करते हैं॥५१-५२॥

इस प्रकार उपयोगगुण का व्याख्यान समाप्त हुआ।

गाथा - ५१-५२ पर प्रवचन

वण्णरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसेहिं।
दव्वादो य अण्णणा अण्णत्तपगासगा होंति॥५१॥
दंसण्णणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि।
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हि णो सभावादो॥५२॥

(नीचे हरिगीत)

ज्यों वर्ण आदिक बीस गुण परमाणु से अप्रथक हैं।
विशेष के व्यपदेश से वे अन्यत्व को द्योतित करें॥५१॥
त्यों जीव से संबद्ध दर्शन-ज्ञान जीव अनन्य हैं।
विशेष के व्यपदेश से वे अन्यत्व को घोषित करें॥५२॥

* दृष्टान्त=दृष्टान्त द्वारा समझाना हो वह बात; उपमेय। (यहाँ परमाणु और वर्णादिक दृष्टान्तरूप पदार्थ हैं तथा जीव और ज्ञानादिक दृष्टान्तरूप पदार्थ हैं।)

पृथक् भले शब्द से हो, वस्तु पृथक् नहीं है, ऐसा कहते हैं। कथन मात्र हो। व्यपदेश भिन्न परन्तु... आहा! गजब!

इसकी टीका :- दृष्टान्तरूप और दृष्टान्तरूप पदार्थपूर्वक, द्रव्य तथा गुणों के अभिन्नपदार्थपने के व्याख्यान का यह उपसंहार है। दृष्टान्तरूप परमाणु आदि, दार्ष्टान्तरूप आत्मा। उसे घटित करना है न? उसका यह उपसंहार है। अब उपयोग की अन्तिम गाथा है। उपयोग की शुरु की थी न पहले से बहुत गाथायें। अब फिर कर्ता की व्याख्या आयेगी।

कहते हैं कि यह परमाणु है न रजकण, उनमें रंग, वर्ण... अर्थात् रंग। रस-गन्ध-स्पर्श वास्तव में परमाणु में प्ररूपित किये जाते हैं;... भगवान ने परमाणु द्रव्य में वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्श कहा गया है, कि गुण भिन्न हैं और परमाणु भिन्न हैं, ऐसा भगवान ने कहा नहीं। दृष्टान्त परमाणु का दिया। यह परमाणु है न, यह तो बहुत परमाणु का पिण्ड है यह। उन परमाणुओं में रंग-गन्ध-रस-स्पर्श भगवान ने कहे हैं। कि वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्श का अस्तित्व पृथक् और परमाणु का अस्तित्व पृथक्, (ऐसा है नहीं)। समझ में आया?

वर्ण अर्थात् वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्श वास्तव में परमाणु में प्ररूपित किये जाते हैं; वे परमाणु से अभिन्न प्रदेशवाले होने के कारण... कौन? रंग-गन्ध-रस-स्पर्श। ऐसी जो परमाणु की शक्ति है अर्थात् परमाणु का जो गुण है, वह परमाणु से अभिन्न प्रदेशवाले होने के कारण अनन्य होने पर भी,... एकरूप होने पर भी संज्ञादि व्यपदेश के कारणभूत विशेषों द्वारा अन्यत्व को प्रकाशित करते हैं। तथापि नामभेद हो। वर्ण-रस-गन्ध नामभेद है। परमाणु का नाम परमाणु है और वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श का ऐसा नामभेद है, परन्तु दोनों का वस्तुभेद नहीं है। कहो, समझ में आया?

संज्ञादि व्यपदेश के कारणभूत विशेषों द्वारा भिन्नपना प्रकाशित करते हैं, यह दृष्टान्त हुआ। यह दृष्टान्त दिया। इसे अभी दृष्टान्त कठिन पड़ता है। यह मिट्टी है या नहीं? यह मिट्टी है। देखो! रजकण क्या है यह? यह दिखता है, वह तो उसकी अवस्था है, पर्याय है। इस पर्याय का कारण जो गुण और गुण का आधार जो द्रव्य। अर्थात् यह वस्तु अस्तित्व है। उसकी अवस्था तो क्षणिक है। इसलिए अवस्था पर लक्ष्य नहीं देना। उस अवस्था का कारण जो रंग, यह पर्याय है न लाल दिखती है, सफेद (दिखती है),

तो उस पर्याय का कारण तो अन्दर एक रंग है। यह रंग, वह गुण है कि जो परमाणु के साथ शाश्वत् रहता है। पर्याय एकरूप रहती नहीं परन्तु गुण और द्रव्य का एकरूप सदा है। और उस परमाणु में गुणों को कहा है। गुणों को गुण में कहा है और परमाणु भिन्न है—ऐसा कहा नहीं। समझ में आया ?

संज्ञा और नामभेद हो। परमाणु रजकण और उसका रंग-गन्ध, यह नाम भिन्न पड़े, तथापि वह भाव जो है, वह भाववान में कहे हैं। भाव जो है, वह भाववान में कहे हैं। वर्ण-गन्ध-रस गुण, वह परमाणु में कहे हैं। वर्ण-रस-गन्ध गुण, वे गुण में गुण हैं—ऐसा नहीं कहा। समझ में आया ? गजब बात, भाई ! इस प्रकार आत्मा में... अब, देखो ! उस परमाणु में था न ! सम्बद्ध ज्ञान-दर्शन भी उस आत्मद्रव्य से अभिन्न प्रदेशवाले होने के कारण... आहाहा ! देखो न, कैसी बात करते हैं !

कहते हैं, भाई ! यह ज्ञात होता है न, ज्ञात होता है, वह पर्याय है न ? वह पर्याय है, वह तो क्षणिक है और बदलती है। परन्तु वह पर्याय जिस कारण में से आती है, वह गुण है, वह तो कायम है। और वह गुण है, वह आत्मा में है। वह गुण है, वह पर में है या पर्याय में है, ऐसा भी नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह जानने की पर्याय है न ! जानता है न कि राग है, उसे यह मैं जानता हूँ। यह वह मैं जानता हूँ। ऐसी वर्तमान अवस्था अल्प हो, पश्चात् विशेष भले हो परन्तु वह तो बदलती है। परन्तु उस अवस्था का कारण ज्ञानगुण कायम रहनेवाला। ज्ञानगुण की वह अवस्था है, तो ज्ञानगुण कायम रहनेवाला और आत्मा कायम रहनेवाला है, तो आत्मा में ज्ञानगुण है। वह गुण नहीं राग में, रंग में, पर में और पर्याय में भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

देखो ! यह अभी इस परमाणु की अवस्था है। परमाणु की अवस्था है, वह कोमल या यह। परन्तु वह कोमल अवस्था अन्दर परमाणु में स्पर्शगुण रहा हुआ है, उस स्पर्शगुण की यह कोमल अवस्था है। अस्तिरूप से है या नहीं ? है, वह दिखती है या न हो, वह दिखती है ? तो यह एक वस्तु है रजकण शाश्वत्। उसमें एक स्पर्शगुण कायम है। अब उसकी यह कोमल अवस्था है। यह अवस्था किसकी ? पर्याय किसकी ? हालत किसकी ? तो कहते हैं, स्पर्शगुण की। वह स्पर्शगुण कहाँ रहता है ? पर्याय में रहता है ? पर में रहता है ? स्पर्शगुण परमाणु में रहता है। आहा ! कहो, शोभालालजी !

कहते हैं, यह तो दृष्टान्त दिया। समझ में आया? यह उसको पूछा था। बुखार, वह क्या है? बुखार। कहे, पुद्गल की पर्याय है। तुम्हारे लड़के को (पूछा था)। कहा, किस गुण की? कहे स्पर्शगुण की। ऐसा होशियार! कहा, अभी तक भी... वह तो अपने आता है न? उस लेख में आया न, आत्मधर्म में पढ़ा हो न! स्पर्शगुण की, क्योंकि जो अवस्था का अस्तित्व बदलता है, परन्तु बदलता जो अस्तित्व है, उसका कोई आधार—उसकी शक्ति का कोई आधार उसका? कि यह स्पर्श नाम की शक्ति है। उसके आधार से पर्याय होती है, तो वह स्पर्श नाम की शक्ति है, वह परमाणु में रही हुई है। आहाहा! देखो तो सही! कैसी बात करते हैं! समझ में आया? वह कायम रही हुई है। अवस्था बदलती है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा के ज्ञान की जो वर्तमान अवस्था दिखती है, जानता है या नहीं? और कम-ज्यादा होता है या नहीं? कम-ज्यादा तो अवस्था हुई। अब वह अवस्था अपने में से आती है या नहीं या बाहर से आती है? तो वह ज्ञान और आनन्द वह जो शक्ति है, उसकी वह अवस्था है, तो उस शक्ति को, आत्मा में यह विशेष शक्ति है। वह शक्ति आत्मा की है। वह शक्ति पर्याय की या पर की नहीं है। आत्मा में शक्ति है। देखो न! ओहोहो! कहो, धीरुभाई! न्याय से है या नहीं यह? यह पर की कूटता है—यह किया और यह किया, छोड़ न अब। यह देख न तू? तुझमें आनन्द की खान और आनन्द आत्मा में है। वह आनन्द पर्याय में भी नहीं, शाश्वत् रहनेवाला आनन्द-कायम रहनेवाला आनन्द, वह शाश्वत् रहनेवाला आत्मा, में है। हाँ, देखो न यह। समझ में आया? शान्तिभाई! कहो।

भाई! जो जानने की अवस्था है, वह पलटती है। तो पलटती किसी के आधार से है या नहीं? तो ज्ञान की अवस्था कायम रहे, ऐसा ज्ञानगुण, उसकी दशा है। और वह ज्ञानगुणरूपी शक्ति-सत्व आत्मा में है। आत्मा में है। आहाहा! इसलिए तुझे धर्म और शान्ति और आनन्द चाहिए हो तो वह आनन्दगुण कायम द्रव्य—आत्मा में है। उस आत्मा का लक्ष्य करके रुचि कर तो आनन्द पर्याय में प्रगट होगा, ऐसा कहते हैं। तो धर्म प्रगट होगा। यह धर्म है। आहाहा! तो इसमें यह व्रत, नियम और तप, यह सब कोई धर्म नहीं, ऐसा आया। वह तो विकल्प है, ऐसा कहते हैं। धीरुभाई! अरे भगवान! क्या करे, भाई! इसे भी इस जाति का.... ऐसी ही वस्तु है, वहाँ इसे ख्याल नहीं होता, खबर नहीं होती

और यह परमार्थ की-आत्मा की बात करे। भाई! आत्मा ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

आत्मा विकार करे, ऐसा भी नहीं है। क्योंकि आत्मा विकार करे, ऐसा हो तो आत्मा पूरा विकारमय ही हो, वह विकार करे। समझ में आया ? वह तो ज्ञान और आनन्द को। देखो! इसलिए कर्ता बाद में लेंगे। ज्ञान और आनन्द को करे। समझ में आया ? यह तो उदयभाव को करे, ऐसा लेंगे परलक्षी। परन्तु वस्तुस्थिति वास्तव में तो उस गुण की पर्याय को करे। तो गुण की पर्याय जो हो, वह गुण गुणी में है। समझ में आया ? परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है। आहाहा! उसके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श दूसरे परमाणु में या दूसरे क्षेत्र में या एक समय की पर्याय में भी नहीं है। भाई! यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! वाह! सेठ! समझ में आया इसमें ? यह समझने का है इसमें। आहाहा! यह वस्तु है, उसमें अर्थात् उसके आधार से गुण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यदि तुझे धर्म और शान्ति प्रगट करनी हो तो शान्तिरूपी जो धर्म शाश्वत् है, वह आत्मा में है। समझ में आया ?

शान्ति और सुख चाहिए हो, शान्ति। आकुलता... आकुलता... आकुलता, वह शाश्वत् चीज़ नहीं है। वह तो गुण की विकृत अवस्था है। तो वास्तविक गुण की अविकृत अवस्था प्रगट करना हो तो कहते हैं कि वह तो गुण की निर्मल अवस्था प्रगट करने के लिये गुण तो वस्तु में रहा हुआ है। नवनीतभाई! न्याय से तो-यह लॉजिक से तो बात सिद्ध करते हैं। ऐई! देवानुप्रिया! समझ में आया ?

आत्मद्रव्य से तो ज्ञान-दर्शन भी उपयोग है न, इसलिए दो लिये। अभी तक ज्ञान की बात की है परन्तु वापस दो मिलाकर उपयोग की व्याख्या है न यह ? **आत्मद्रव्य से अभिन्न प्रदेशवाले...** एक क्षेत्रवाले, उनका भाव एक क्षेत्र में है। आत्मा का क्षेत्र और गुण का क्षेत्र दोनों एक है। आहाहा! समझ में आया ? चावल पके वह एक क्षेत्र और कलथी पके, वह क्षेत्र जैसे भिन्न है, उसी प्रकार गुण और गुणी के क्षेत्र भिन्न नहीं हैं। समझ में आया ? आहाहा! यह भगवान का-आनन्द का और आत्मा का दोनों का क्षेत्र एक है। एक जगह, एक स्थल है। उस स्थल में आनन्द भरा है। वह आनन्द आत्मा में है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

यह वे कहते हैं, भौतिकवाद पहले बहुत हो, फिर अध्यात्मवाद हो—ऐसा

रजनीश कहता है। कुकर्म करता है न। और जवान लड़कों बेचारों को कुछ भान नहीं होता। ऐई! अक्कल के खां हों, इसलिए बेचारे बँट जाते हैं वहाँ। पहला भौतिकवाद चाहिए। पहला महापाप चाहिए, फिर धर्म होगा। कुकर्म है या नहीं? हैं? यह तो अनादि का पापभाव करता आया है। अब क्या है तुझे? समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर, सन्त हुए, साधकजीव होकर जिन्होंने साध्य प्रगट किया। वे तो कोई नहीं कहते। कहो। हैं? बहुत अभिमान! सत्य का बहुत अनादर! सत्य का बहुत खून!

परमेश्वर ऐसा कहते हैं और परमेश्वर सर्वज्ञ वीतराग अनन्त हो गये। अनन्त वीतराग और अनन्त सर्वज्ञ हो गये। क्योंकि भटकने के काल के लिये अनन्त गया। परन्तु स्वरूप की दृष्टि होकर साधक का साध्य होने के लिये असंख्य समय ही चाहिए। क्योंकि वह घर की चीज़ है, इसलिए अनन्त काल में एक जीव भी जब अपने साधक स्वभाव से चढ़े कि गुण, गुणी में है, ऐसी दृष्टि करे और जो पर्याय प्रगट हो, उसे पूर्ण पर्याय प्रगट होने का बीच का काल असंख्य समय ही होता है। अनन्त काल हो सकता ही नहीं। तो असंख्य समय में एक साध्य को पूरा करे, ऐसे अनन्त जीव साधक होकर साध्य को पूर्ण होकर परमात्मा हो गये। समझ में आया? आहाहा!

उनकी वाणी, वह आगम है। अब वह कहता है कि पुराने शास्त्रों से दूर-दूर भागना। ऐई सेठ! सह सेठ ने भी ऐसा सब किया था। सामने बैठे उन तारणस्वामी की जयन्ती हो और लोग इकट्ठे हों, अच्छा कहे, अच्छा क्या? यह कुकर्म होते हैं। नवनीतभाई! उसे खबर नहीं था वहाँ। ऐसा कहना और क्या कहना? शोभालालजी! सभा में बोले और दो-पाँच हजार इकट्ठे हों। तो अपना अच्छा कहलाये। परन्तु किसका अच्छा इसमें? कषाय इकट्ठी होकर खानदानी की शोभा हो, ऐसे होती होगी? आहाहा!

भगवान आत्मा अपने शुद्धगुण का धारक आत्मा, उसे दृष्टि में लेकर परिपूर्णता करने को असंख्य समय ही होते हैं। भले कोई एक, दो, चार भव, परन्तु उस भव में उसका साधकपना तो असंख्य समय ही रहता है। अनन्त समय नहीं होता। तो ऐसे जीव अनन्त हो गये। समझ में आया? और होते हैं, अभी भी छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ जीव सिद्ध होते हैं। महाविदेहक्षेत्र में विराजमान परमात्मा हैं, वहाँ से होते हैं। अरे रे! कहाँ! समझ में आया?

यह कहते हैं कि भाई! तुझे गुण को शोधना हो तो गुण तो द्रव्य में मिलेंगे। वह गुण पर्याय में नहीं मिलते, विकल्प में नहीं मिलते, निमित्त में नहीं मिलते। आहाहा! बात तो कैसी करते हैं! समझ में आया? तेरा सामर्थ्य कायम रहनेवाला खोजना हो तो वह द्रव्य में है। वह सामर्थ्य एक समय की पर्याय में भी नहीं है, विकल्प में तो होगा ही कहाँ से और पर में तो है ही नहीं। अभाव है। आहाहा! इस प्रकार भगवान आत्मा अपना शान्त, वीतरागी, अकषायस्वभाव और आत्मा, दोनों के नाम भले भिन्न हों, संज्ञा, कथन व्यपदेश भिन्न हों। समझ में आया? परन्तु वह शान्त अकषायभाव और अकषायभाव जिसमें है, ऐसा आत्मा, दोनों के प्रदेश-क्षेत्र भिन्न नहीं हैं। दोनों एक है। कहो, समझ में आया इसमें?

अनन्य। आत्मा में सम्बद्ध ज्ञान-दर्शन भी... सम्बद्ध, देखो! सम्बद्ध। सदा है न सम्बद्ध-सहवर्ती। ज्ञान-दर्शन भी आत्मद्रव्य से अभिन्न प्रदेशवाले... एकक्षेत्रवाले एकत्व होने के कारण अनन्य होने पर भी,... एकमेक गुण और गुणी क्षेत्र से होने पर भी संज्ञादि व्यपदेश के कारणभूत विशेषों द्वारा पृथक्पने को प्राप्त होते हैं,... नामभेद से भले भिन्न हों। परन्तु स्वभाव से सदैव अपृथक्पने को ही धारण करते हैं। आहा! ज्ञान की अल्पज्ञ पर्याय है, उसमें से पूरी ज्ञान की पर्याय करनी हो तो उस ज्ञान की पर्याय का आधार गुण और गुण, द्रव्य में रहता है। उस द्रव्य का आश्रय करने से तुझे पूरी पर्याय होगी। ऐसा कहते हैं। देखो न! समझ में आया? यह तो बैठे ऐसा है, हों! अरे! यह बात क्यों नहीं बैठे! इसके घर की और घर की भी ऐसी सीधी और सरल है। इस प्रकार ही वस्तु है। समझ में आया?

इस वस्तु को वस्तुरूप से पहिचाने (तो) इसका कल्याण हुए बिना रहे ही नहीं। आहाहा! कल्याण का तो यह पुंज है। परन्तु कल्याण तो पर्याय में आता है अंश में। आहाहा! जिसका स्वभाव है, उसे हृद नहीं होती। परिमितता नहीं होती, मर्यादा नहीं होती। तो भगवान आत्मा का स्व भाव, स्वभाववान और उसका स्व भाव जानना, आनन्द, शान्ति ऐसे अनन्त स्वभाव। उस स्वभाव में अनन्तता है। संख्या से नहीं, शक्ति से। संख्या से अनन्त गुण हैं। और एक-एक गुण का स्वभाव अनन्त है। और अनन्त न हो तो वह गुण नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? और वह गुण आत्मा में है।

ऐसे अनन्त स्वभाववाली शक्ति, ऐसी अनन्त शक्ति का सम्बन्ध आत्मा के साथ है। यहाँ तो उपयोग का सम्बन्ध लिया, परन्तु अनन्त गुण का सम्बन्ध भगवान के साथ है। किस प्रकार बात करते हैं! देखो न! यह सब २७वीं गाथा से शुरू किया है न? 'जीव हवइ, जीवो हवइ' ऐसा कहकर जीव का पहले लिया। लो, एक उपयोग की व्याख्या हो गयी। २७वीं है न २७वीं गाथा, २७ गाथा है। 'जीवो ति हवइ'— इसकी व्याख्या जीव की आयी थी। 'चेदा' की व्याख्या आयी, उपयोग की व्याख्या आयी। अब 'पहू' छोड़कर कर्ता की पहले लेंगे। है इसमें प्रभु की व्याख्या २७ में। परन्तु कर्ता को लेकर उसके साथ प्रभु बाद में विशेष लेंगे। क्या कहते हैं, देखो अब। सार क्या कहा गया, समझ में आया?

यह उपयोग का अधिकार बहुत दिनों से चलता है। उपयोग अर्थात् जानना-देखना। जो पर्याय में जानना-देखना है, वह तो एक समय की स्थिति है। परन्तु एक समय की स्थिति जिसके आधार से होती है, ऐसा जानने-देखने का जो आत्मा में उपयोग है, वह कायम सहवर्ती, आत्मा के साथ समवायरूप से सहवर्ती वर्तता है। आहाहा! यह सहवर्ती कहने पर भी दोनों के अस्तित्व का भेद नहीं, कहते हैं। सहवर्ती कहा न, तथापि उसकी कायम की शक्तियाँ और शक्तिवान, उसका अस्तित्व, प्रदेशपना, क्षेत्रपना भिन्न है। इस प्रकार से तो सिद्ध किया है, सीधी-सरल बात से।

अब देह की क्रिया करूँ और मुझे ऐसा हो, परन्तु उसमें कहाँ गुण था? राग का लक्ष्य करूँ और राग की क्रिया करूँ तो मुझे गुण प्रगट हो। परन्तु राग में कहाँ गुण था? इस पर्याय का लक्ष्य करूँ तो गुण... परन्तु पर्याय में कहाँ गुण था। आहाहा! गुण तो द्रव्य में है। महासागर प्रभु चैतन्य रत्नाकर चैतन्य के रत्न का आधार अर्थात् समुद्र भगवान है। यह सब स्वभाव और स्वभाववान वस्तु नामभेद से कथन हो भले, परन्तु वस्तुभेद नहीं है। ऐसी द्रव्य की अभेद दृष्टि होना, उसमें गुणों की पर्याय जितने गुण हैं, उतने की शक्ति की व्यक्त अवस्था आंशिक प्रगट हुए बिना नहीं रहती। एक साथ। इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन और धर्म कहने में आता है। ऐसा वीतराग धर्म है। ऐसा अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? इस प्रकार उपयोगगुण का व्याख्यान समाप्त हुआ। लो!

गाथा - ५३

अथ कर्तृत्वगुणव्याख्यानम् । तत्रादिगाथात्रयेण तदुपोद्धातः -

जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो।

सब्भावदो अणंता पंचगुणप्पधाणा य॥५३॥

जीवा अनादिनिधनाः सान्ता अनन्ताश्च जीवभावात्।

सद्भावतोऽनन्ताः पञ्चाग्रगुणप्रधानाः च॥५३॥

जीवा हि निश्चयेन परभावानामकरणात्स्वभावानां कर्तारो भविष्यन्ति । तांश्च कुर्वाणाः किमनादिनिधनाः, किं सादिसनिधनाः, किं साद्यनिधनाः, किं तदाकारेण परिणताः, किमपरिणताः भविष्यन्तीत्याशङ्क्येदमुक्तम् ।

जीवा हि सहजचैतन्यलक्षणपारिणामिकभावेनानादिनिधनाः । त एवौदयिक क्षायोपश-
मिकौपशमिकभावैः सादिसनिधनाः । त एव क्षायिकभावेन साद्यनिधनाः । न च
सादित्वात्सनिधनत्वं क्षायिकभावस्याशङ्क्यम् । स खलूपाधिनिवृत्तौ प्रवर्तमानः सिद्धभाव
इव सद्भाव एव जीवस्य; सद्भावेन चानन्ता एव जीवाः प्रतिज्ञायन्ते । न च तेषामनादिनिधन-
सहजचैतन्यलक्षणैकभावानां सादिसनिधनानि साद्यनिधनानि भावान्तराणि नोपपद्यन्त इति
वक्तव्यम्; ते खल्वनादिकर्ममलीसाः पङ्कसम्पृक्ततोयवत्तदाकारेण परिणतत्वापञ्चप्रधान-
गुणप्रधानत्वेनैवानुभूयन्त इति ॥५३॥

अब, कर्तृत्वगुण का व्याख्यान है। उसमें, प्रारम्भ की तीन गाथाओं से उसका उपोद्घात किया जाता है।

है अनादि-अनन्त आतम पारिणामिक भाव से।

सादि-सान्त के भेद पड़ते उदय मिश्र विभाव से॥५३॥

अन्वयार्थ :- [जीवाः] जीव [अनादिनिधनाः] (पारिणामिकभाव से) अनादि-
अनन्त है, [सांताः] (तीन भावों से) सांत (अर्थात् सादि-सांत) है [च] और
[जीवभावात् अनन्ताः] जीवभाव से अनन्त है (अर्थात् जीव के सद्भावरूप क्षायिकभाव
से सादि-अनन्त है) (सद्भावतः अनन्ताः) क्योंकि सद्भाव से जीव अनन्त ही होते हैं।
[पंचाग्रगुणप्रधानाः च] वे पाँच मुख्य गुणों से प्रधानतावाले हैं।

टीका:-निश्चय से पर-भावों का कर्तृत्व न होने से जीव स्व-भावों के कर्ता होते हैं; और उन्हें (-अपने भावों को) करते हुए, क्या वे अनादि-अनन्त हैं? क्या सादि-सांत हैं? क्या सादि-अनन्त हैं? क्या तदाकाररूप (उस-रूप) परिणत है? क्या (तदाकाररूप) अपरिणत हैं?-ऐसी आशंका करके यह कहा गया है (अर्थात् उन आशंकाओं के समाधानरूप से यह गाथा कही गई हैं)।

जीव वास्तव में *सहजचैतन्यलक्षण पारिणामिकभाव से अनादि-अनन्त है। वे ही औदयिक, क्षायोपशमिक और औपशमिकभावों से सादि-सान्त हैं। वे ही क्षायिकभाव से सादि-अनन्त हैं।

‘क्षायिकभाव सादि होने से वह सांत होगा’ ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है। (कारण इस प्रकार है:-) वास्तव में उपाधि की निवृत्ति होने पर प्रवर्तता हुआ, सिद्धभाव की भाँति, जीव का सद्भाव ही है (अर्थात् कर्मोपाधि के क्षय में प्रवर्तता है, इसलिए क्षायिकभाव जीव का सद्भाव ही है); और सद्भाव से तो जीव अनन्त ही स्वीकार किये जाते हैं। (इसलिए क्षायिकभाव से जीव अनन्त ही अर्थात् विनाशरहित ही है।)

पुनश्च, ‘अनादि-अनन्त सहजचैतन्यलक्षण एक भाववाले उन्हें सादि-सांत और सादि-अनन्त भावान्तर घटित नहीं होते (अर्थात् जीवों को एक पारिणामिकभाव के अतिरिक्त अन्य भाव घटित नहीं होते)’ ऐसा कहना योग्य नहीं है; (क्योंकि) वे वास्तव में अनादि कर्म से मलिन वर्तते हुए कादव से *संपृक्त जल की भाँति तदाकाररूप परिणत होने के कारण, पाँच प्रधान गुणों से प्रधानतावाले ही अनुभव में आते हैं॥५३॥

* जीव के पारिणामिकभाव का लक्षण अर्थात् स्वरूप सहज-चैतन्य है। यह पारिणामिकभाव अनादि अनन्त होने से इस भाव की अपेक्षा से जीव अनादि-अनन्त है।

१. कादव से संपृक्त=कादव का सम्पर्क प्राप्त; कादव के संसर्गवाला। (यद्यपि जीव द्रव्यस्वभाव से शुद्ध है, तथापि व्यवहार से अनादि कर्मबंधन के वश, कादववाले जल की भाँति, औदयिक आदि भावरूप परिणत हैं।)

२. औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक इन पाँच भावों को जीव के पाँच प्रधान गुण कहा गया है।

गाथा - ५३ पर प्रवचन

अब, कर्तृत्वगुण का व्याख्यान है। आत्मा कर्ता है, पर का कर्ता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। उसमें, प्रारम्भ की तीन गाथाओं से उसका उपोद्घात किया जाता है।

जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो।

सब्भावदो अणंता पंचगगुणप्पधाणा या॥५३॥

है अनादि-अनन्त आत्म पारिणामिक भाव से।

सादि-सान्त के भेद पड़ते उदय मिश्र विभाव से॥५३॥

देखो! आचार्य इसमें से पहले सिद्ध करते हैं। यहाँ तो पाँच भाव का कहा है, परन्तु इसमें से निकालते हैं। अरे! वास्तव में निश्चय से... अर्थात् वास्तव में पर-भावों का कर्तृत्व न होने से... भगवान आत्मा शरीर, वाणी, कर्म की पर्यायें नहीं करता होने से, स्वभावभावों का कर्ता होता है। यहाँ तो विकार और सब स्वभावभाव है, स्वपर्याय है न! क्या कहते हैं? यहाँ तो पर से भेदज्ञान कराना है यहाँ इतना।

यहाँ जीव का अस्तित्व सिद्ध करना है न? तो जीव है, वह अपने भाव जो है, उसे करे। परन्तु वह जीव है, वह शरीर का, वाणी का, देश का, परिवार का, कर्म का, मन का, पर का कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि उसके अस्तित्व में वह नहीं है। उसके अस्तित्व में जो भाव हो, उसे करे। परन्तु जो उसके अस्तित्व में नहीं, उसे वह नहीं करता। यह सब धन्धा करते हैं न, इतने होशियार व्यक्ति होकर। शुभाशुभभाव किये हैं, तूने ले, अनादि से। ऐसा कहता है, वह दिलीप सुनकर। इसने क्या किया है अभी तक? शुभ और अशुभभाव किया है। ऐसा बोले! अभ्यास करता है न, अभ्यास।

यह सब कपड़े-बपड़े का धन्धा करते होंगे नहीं होता होगा अधिक। कपड़े को उलट-पुलट क्या कहलाता है वह? ताक। वे लकड़ी के बड़े, दो-दो लाख के लकड़ी के वे बड़े खड़े हों ऐसे। पचास-साठ साठ के लम्बे। पानी आवे तब नीचे, हैं? परन्तु अब बहुत बरसात आवे तब लकड़ी नीचे नहीं गिरे इसलिए नीचे पत्थर रखना। उसके ऊपर यह रखना। तब रहे? अपने आप ऊँचे चढ़ते होंगे? गर्मी-सर्दी में तो भले रहे

परन्तु बरसात आवे तो वे नीचले भाग में सड़ जाते हैं। तो भाई! नीचे से ऊँचे रखो।

कहते हैं कि पर का कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि पर के अस्तित्व में अपना अस्तित्व कुछ अन्दर जाता नहीं। हैं? जादवलालजी! अरे! वह कहता है कि परद्रव्य का न करे, ऐसा माने, वह दिगम्बर जैन नहीं है। और ऐसा इन्दौर में कहा गया, एक पण्डित। अरे भगवान! क्या करता है, भाई? तुझे यह शोभा देता है? सर्वज्ञ परमेश्वर जिनका अस्तित्व भिन्न कहते हैं, और वह है। उस भिन्न अस्तित्व में तू भिन्न अन्दर प्रवेश करता है कि जिससे पर का करे? इस शरीर की अँगुलियाँ चले या भाषा निकले यह आत्मा उसका कर्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं। अरे! क्योंकि कि ये उसके अस्तित्व में नहीं। उसके अस्तित्व में नहीं, वह दूसरे अस्तित्व में है, उसे यह क्या करे? आहाहा! पूरी दृष्टि बदलना भी कठिन पड़ता है। ऐ, रसिकभाई!

यह सब होशियार लोग होकर नहीं करते होंगे यह धन्धा। हैं? भाव करे भाव। विकल्प का, उसमें उल्टा भाव करे। परन्तु पर का कुछ नहीं कर सकते। कितने ही होशियारी से पैसा पैदा करते हैं, ऐसा माना होता है न! वे ठेठ (वहाँ तक) उसे ऐसा रहा करता है कि मैं तो यह सब काम करूँगा और तुमसे कराऊँगा। भाई! बहुत अच्छा, बापू! वजुभाई! तुमने तो बड़े दस-दस लाख के बँगले बनाये हैं। उस समय के, हों! उस समय के दस लाख। अभी तो करोड़-करोड़ रुपये के कहलायें। सोलह गुना भाव बढ़ गया है न? इंजीनियर थे न, इंजीनियर। दरबार भी ऐसे थे हों! इनके जैसे वापस। हाँ, होशियार इंजीनियर।

यह फिर अन्त में भी दरबार रोये, हों! हैं? दस-दस लाख का तहसील। दस लाख की आमदनी। आँख में आँसू। वह हस्ताक्षर करना पड़ा न! हस्ताक्षर करो। बल्लभ पटेल को, क्या कहलाता है? हस्ताक्षर करो। राज दूसरा था, हों! दिखाव ऐसा राज का, राजा। दूसरे तो कितने ही हों दूसरे का लिया हुआ। यह तो राजा। देखो तो राजबीज हस्ताक्षर करते हुए आँख में से आँसू की धारा चली। हाय! हाय! अब मेरा हक नहीं और लड़के भी नहीं और परम्परा.... आहाहा!

कहते हैं कि बापू! परवस्तु का अस्तित्व तुझमें रखने से रहता हो तो यह हस्ताक्षर उसे क्यों करना पड़े? हैं? अब हमारा हक नहीं, जाओ। परन्तु कब (हक

था ?) तूने माना था। कल्पना की थी कि इस राज की व्यवस्था के हम व्यवस्थापक हैं। हैं? आये थे व्याख्यान में, आये थे न (संवत्) १९९० में आये थे। वांकानेर। दरबार आये थे, उनके पाटवी हैं, वे भी आये थे। दोनों आये थे। सुनते थे तब तो। वांकानेर तब मोहनभाई पुलिस थे न! हाँ, वे खड़े थे। लोग आवे-जाये, राजा है न। शान्त रहे। लोग बहुत पूरा खचाखच। अरे! कहा, यह नहीं। परन्तु कैसे बेचारे? अज्ञान में धूंधवाई गये हों। समझ में आया ?

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा अन्दर आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, वह धूंधवाट में दिखे कहाँ से? समझ में आया? विकार के धुँए में चढ़ा हुआ उसे निर्विकारी भगवान आत्मा भिन्न है, कैसे जँचे? विकार का कर्तापन भासित हो तो भी उसे लगता है कि मैं तो पर का कर्ता नहीं। विकार का कर्ता क्या है, यह वह? वह तो क्षणिकरूप से कहा जाता है। वस्तुस्थिति देखने पर तो विकार का कर्ता वस्तु हो नहीं सकती। पर्यायदृष्टि से विकार का कर्ता है। यहाँ तो द्रव्य और पर्याय इकट्ठे सिद्ध करने हैं न! समझ में आया ?

निश्चय से, तब व्यवहार सिद्ध कर सके और निश्चय शब्द ऐसा पड़ा है। देखो! अपने तो सामने आवे तो यह निकालना चाहिए न! यह कहा था न पहले? कि ज्ञान और आत्मा के नाम भिन्न परन्तु वस्तु भिन्न नहीं। कथन से कहो। उसी प्रकार इस कथन से कहो कि पर को करे, परन्तु कर नहीं सकता। बहियों के नामा-बामा यह सब किया नहीं था अभी तक। आहाहा!

एक आँख की पलक को फिराना, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आत्मा कर नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। क्योंकि आँख है, वह अनन्त रजकणों का दल—पिण्ड है। जड़ अस्ति है। और जड़ का अस्तित्व, उसमें चैतन्य का अस्तित्व प्रविष्ट नहीं होता। इसलिए आँख की पलक का फिरना आत्मा नहीं करता। आहाहा!

यहाँ तो कहे, बड़े बाँधकाम करते हैं, नहीं बड़े तुम्हारे क्या कहलाते हैं करोड़ के? हैं? बड़े तालाब बाँधे। करोड़ों रुपये के बाँधे चलो देखने जैसे। एक तो यह बाँधकाम देखने गये थे और वहाँ हमारे वजुभाई साथ थे। नहीं? सम्मेदशिखर जाते हैं न कहीं। हाँ, देखने गये थे, थोड़ा समय था वह। ऐई! बड़े बाँध बाँधे और पानी का

प्रपात बहे। अरे! कहते हैं, यह कुछ जीव ने किया सही? वहाँ कारीगर होशियार हो, उसने कुछ किया या नहीं? होशियारी का अस्तित्व तो उसमें रहा। तो होशियारी का अस्तित्व जड़ की क्रिया में प्रविष्ट करता है कि वह पर का करे?

निश्चय से पर-भावों का... परभाव शब्द से अभी परद्रव्य की पर्याय, यह यहाँ लेना। अभी विकारभाव की बात नहीं है। **कर्तृत्व न होने से जीव स्व-भावों के कर्ता होते हैं;**... जीव, उसकी पर्याय के भाव का कर्ता होता है। निर्मल या.... स्वभावों के स्व-अपने जो भाव हैं, जिसकी शक्ति है और उसकी पर्याय है। यहाँ तो पारिणामिकभाव को कर्ता है, ऐसा जरा कहेंगे। **और उन्हें (-अपने भावों को) करते हुए,**... भगवान् आत्मा अपने भाव है पाँच। एक पारिणामिकभाव शाश्वत् है, उदयभाव विकार है, उपशमभाव शान्त है, क्षयोपशमभाव किञ्चित् विकार और अविकार है, क्षायिकभाव विकाररहित दशा है। ऐसे भाव को करते हुए... समझ में आया?

क्या वे अनादि-अनन्त हैं? क्या सादि-सान्त हैं? अनादि अर्थात् आदि और अन्तरहित वह भाव है? **क्या सादि-सान्त हैं?** या क्या वह शुरुआत होकर अन्त रहता है, ऐसा है? **क्या तदाकाररूप (उस-रूप) परिणत हैं?** क्या तदाकार परिणमता नहीं। अरे! **ऐसी आशंका करके...** आशंका हो, शंका नहीं। समझने के लिये माँगता है कि महाराज! आत्मा में भाव है न, गुण और पर्याय। उन भावों को करता है तो किस भाव से अनादि-अनन्त करता है? किस भाव से सादि-शुरुआत से अनन्त हो, तब तक करता है। कौन सा भाव शुरुआत और अन्त आवे, ऐसे को करता है। और उस भाव में एकाकार करके करते हैं। या तदाकार परिणमे बिना करता है। **ऐसी आशंका करके यह कहा गया है (अर्थात् उन आशंकाओं के समाधानरूप से यह गाथा कही गई है)।** उसका उत्तर कहेंगे। विशेष कहेंगे। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट - पंचास्तिकाय गाथा ५४-५५ पर पूज्य गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचन क्रमांक ५३-५४ में आवाज स्पष्ट न होने से इन गाथाओं पर संकलित प्रवचन, इस हिन्दी प्रकाशन में प्रवचनप्रसाद से लिये गये हैं।

गाथा - ५४

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स हवदि उप्पादो।
इदि जिणवरेहिं भणिदं अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं॥५४॥

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य भवत्युत्पादः।

इति जिनवरैर्भणितमन्योऽन्यविरुद्धमविरुद्धम्॥५४॥

जीवस्य भाववशात्सादिसनिधनत्वेऽनाद्यनिधनत्वे च विरोधपरिहारोऽयम्।

एवं हि पञ्चभिर्भावैः स्वयं परिणममानस्यास्य जीवस्य कदाचिदौदधिकेनैकेन मनुष्यत्वादि-
लक्षणेन भावेन सतो विनाशस्तथापरेणौदधिकेनैव देवत्वादिलक्षणेन भावेन असत् उत्पादो
भवत्येव। एतच्च 'न सतो विनाशो नासत् उत्पाद' इति पूर्वोक्तसूत्रेण सह विरुद्धमपि न
विरुद्धम्; यतो जीवस्य द्रव्यार्थिकनयादेशेन न सत्प्रणाशो नासदुत्पादः, तस्यैव पर्यायार्थिक-
नयादेशेन सत्प्रणाशोऽसदुत्पादश्च। न चैतदनुपपन्नम्, नित्ये जले कल्लोलानामनित्यत्व-
दर्शनादिति॥५४॥

इस भाँति सत-व्यय अर असत् उत्पाद होता जीव के।

लगाता विरोधाभास सा पर वस्तुतः अविरुद्ध है॥५४॥

अन्वयार्थ :- [एवं] इस प्रकार [जीवस्य] जीव को [सतः विनाशः] सत् का
विनाश और [असतः उत्पादः] असत् का उत्पाद [भवति] होता है- [इति] ऐसा
[जिनवरैः भणितम्] जिनवरों ने कहा है, [अन्योन्यविरुद्धम्] जो कि अन्योन्य विरुद्ध
(१९वीं गाथा के कथन के साथ विरोधवाला), तथापि [अविरुद्धम्] अविरुद्ध है।

टीका:-यह, जीव को भाववशात् (औदधिक आदि भावों के कारण) सादि-
सांतपना और अनादि-अनंतपना होने में विरोध का परिहार है।

इस प्रकार वास्तव में पाँच भावरूप से स्वयं परिणमित होनेवाले इस जीव को
कदाचित् औदधिक ऐसे एक मनुष्यत्वादिस्वरूप भाव की अपेक्षा से सत् का विनाश और
औदधिक ही ऐसे दूसरे देवत्वादिस्वरूप भाव की अपेक्षा से असत् का उत्पाद होता ही
है। और यह (कथन) 'सत् का विनाश नहीं है तथा असत् का उत्पाद नहीं है' ऐसे पूर्वोक्त
सूत्र के (१९वीं गाथा के) साथ विरोधवाला होने पर भी (वास्तव में) विरोधवाला नहीं

है; क्योंकि जीव को द्रव्यार्थिकनय के कथन से सत् का नाश नहीं है और असत् का उत्पाद नहीं है तथा उसी को पर्यायार्थिकनय के कथन से सत् का नाश है और असत् का उत्पाद है। और यह 'अनुपपन्न नहीं है, क्योंकि नित्य ऐसे जल में कल्लोलों का अनित्यपना दिखाई देता है।

भावार्थः-५३वीं गाथा में जीव को सादि-सान्तपना तथा अनादि-अनन्तपना कहा गया है। वहाँ प्रश्न सम्भव है कि-सादि-सान्तपना और अनादि-अनन्तपना परस्पर विरुद्ध है; परस्पर विरुद्ध भाव एक साथ जीव को कैसे घटित होते हैं? उसका समाधान इस प्रकार है-जीव, द्रव्य-पर्यायात्मक वस्तु है। उसे सादि-सान्तपना और अनादि-अनन्तपना दोनों एक ही अपेक्षा से नहीं कहे गये हैं, भिन्न-भिन्न अपेक्षा से कहे गये हैं; सादि-सान्तपना कहा गया है, वह पर्याय-अपेक्षा से है और अनादि-अनन्तपना द्रव्य-अपेक्षा से है। इसलिए इस प्रकार जीव को सादि-सान्तपना तथा अनादि-अनन्तपना एकसाथ बराबर घटित होता है।

(यहाँ यद्यपि जीव को अनादि-अनन्त तथा सादि-सान्त कहा गया है, तथापि ऐसा तात्पर्य ग्रहण करना चाहिए कि पर्यायार्थिकनय के विषयभूत सादि-सान्त जीव का आश्रय करनेयोग्य नहीं है किन्तु द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत ऐसा जो अनादि-अनन्त, टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभावी, निर्विकार, नित्यानन्दस्वरूप जीवद्रव्य उसी का आश्रय करनेयोग्य है)॥५४॥

गाथा-५४ पर संकलित प्रवचन, वीर संवत् २४७८, फाल्गुन कृष्ण ८, बुधवार

जीवों को पाँच भावों में अनादि-अनन्त, सादि-सान्त और सादि-अनन्तपना कहा तो द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय से विरोध नहीं है, ऐसा कथन करते हैं।

'इस पूर्वोक्त प्रकार के भावों से परिणये जो जीव हैं, उनके जब उत्पाद-व्यय की अपेक्षा कीजिए, तब विद्यमान जो मनुष्यादिकपर्याय उसका तो विनाश होना और अविद्यमान जीव की देवादिक पर्याय की उत्पत्ति होती है, इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान के द्वारा,

१. अनुपपन्न=अयुक्त; असंगत; अघटित; न हो सके ऐसा।

यद्यपि परस्पर विरुद्ध है, तथापि विरोधरहित कहा गया है।

पूर्व में कहे गये भावोंरूप जीव स्वयं परिणमता है, उसे उत्पाद-व्यय की अपेक्षा से देखा जाये तो विद्यमान मनुष्यादि पर्याय का नाश होता है और अविद्यमान देवादिक पर्याय का उत्पाद होता है। इस प्रकार विरुद्ध लगता है, तथापि विरोधरहित है।

भावार्थ-भगवान के मत में दो नय कहे गये हैं—(१) द्रव्यार्थिकनय, (२) पर्यायार्थिकनय।

(१) **द्रव्यार्थिकनय**:—द्रव्यार्थिकनय से वस्तु उपजती नहीं तथा नाश पाती नहीं। अनादि-अनन्त एकरूप वह की वह रहती है। वस्तु कायम न हो तो वस्तु वह की वह दिखती है, वह नहीं होगा, इसलिए द्रव्यार्थिकनय से वस्तु कायम रहती है।

(२) **पर्यायार्थिकनय**:—पर्यायार्थिकनय से वस्तु में उत्पाद-व्यय होता है। आत्मा त्रिकाल रहकर पूर्व अवस्था का नाश होता है और नयी अवस्था का उत्पाद होता है।

जिस प्रकार पानी नित्य-अनित्यस्वरूप है। द्रव्य की अपेक्षा से पानी नित्य है और एक पानी की लहर उपजे और एक नाश को पाती है, इस अपेक्षा से अनित्य है।

इसी प्रकार द्रव्य कायम रहने की अपेक्षा से नित्य है और पूर्व अवस्था का नाश होकर नयी अवस्था का उत्पाद होने की अपेक्षा से अनित्य है। आत्मा कायम रहता है, वह नित्य है और मनुष्यपने का व्यय होकर देव होकर उत्पन्न हुआ, उस अपेक्षा से अनित्य है। स्वयं उसरूप परिणमनेवाला, ऐसा सिद्ध करना है। पर के कारण नहीं। नयी अवस्थारूप से उपजना, पुरानी अवस्थारूप से व्यय होना और स्वयं कायम रहना, ऐसा वस्तु का स्वरूप है।

अब जीव के उत्पाद-व्यय में कर्म का निमित्त है, ऐसा निमित्त की मुख्यता से कथन करके निमित्त सिद्ध करते हैं। निमित्त से उपजता है या विनशता है, ऐसा है ही नहीं। स्वयं अपने कारण से उपजता है-विनशता है, यह निश्चय है। उसमें कर्म निमित्त है, वह व्यवहार है। ऐसी प्रमाणज्ञान की बात चलती है।

गाथा - ५५

णेरइयतिरियमणुया देवा इदि णामसंजुदा पयडी।
कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पादं॥५५॥

नारकतिर्यङ्मनुष्या देवा इति नामसंयुताः प्रकृतयः।

कुर्वन्ति सतो नाशमसतो भावस्योत्पादम्॥५५॥

जीवस्य सदसद्भावोच्छित्युत्पत्तिनिमित्तोपाधिप्रतिपादनमेतत्।

यथा हि जलराशेर्जलराशित्वेनासदुत्पादं सदुच्छेदं चाननुभवतश्चतुर्भ्यः ककुब्धिभागेभ्यः क्रमेण वहमानाः पवमानाः कल्लोलानामसदुत्पादं सदुच्छेदं च कुर्वन्ति, तथा जीवस्यापि जीवत्वेन सदुच्छेदमसदुत्पत्तिं चाननुभवतः क्रमेणोदीयमानाः नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवनामप्रकृतयः सदुच्छेदमसदुत्पादं च कुर्वन्तीति॥५५॥

तिर्यच नारक देव मानुष नाम की जो प्रकृति हैं।

सद्भाव का कर नाश वे ही असत् का उद्भव करें॥५५॥

अन्वयार्थ :- [नारकतिर्यङ्मनुष्याः देवाः] नारक, तिर्यच, मनुष्य और देव [इति नामसंयुताः] ऐसे नामोंवाली [प्रकृतयः] (नामकर्म की) प्रकृतियाँ [सतः नाशम्] सत् भाव का नाश और [असत् भावस्य उत्पादम्] असत् भाव का उत्पाद [कुर्वन्ति] करती हैं।

टीका:-जीव को सत् भाव के उच्छेद और असत् भाव के उत्पाद में निमित्तभूत उपाधि का यह प्रतिपादन है।

जिस प्रकार समुद्ररूप से असत् के उत्पाद और सत् के उच्छेद का अनुभव न करनेवाले ऐसे समुद्र को चारों दिशाओं में से क्रमशः बहती हुई हवाएँ कल्लोलों सम्बन्धी असत् का उत्पाद और सत् का उच्छेद करती हैं (अर्थात् अविद्यमान तरंग के उत्पाद में और विद्यमान तरंग के नाश में निमित्त बनती हैं), उसी प्रकार जीवरूप से सत् के उच्छेद और असत् के उत्पाद अनुभव न करनेवाले ऐसे जीव को क्रमशः उदय को प्राप्त होनेवाली नारक-तिर्यच-मनुष्य-देव नाम की (नामकर्म की) प्रकृतियाँ (भावोंसम्बन्धी, पर्यायों-सम्बन्धी) सत् का उच्छेद तथा असत् का उत्पाद करती हैं (अर्थात् विद्यमान पर्याय के नाश में और अविद्यमान पर्याय के उत्पाद में निमित्त बनती हैं)॥५५॥

गाथा-५५ पर संकलित प्रवचन, वीर संवत् २४७८, फाल्गुन कृष्ण ८, बुधवार

‘नरक, तिर्यच, मनुष्य, देव इन नामोकर संयुक्त नामकर्म सम्बन्धिनी प्रकृतियाँ विद्यमान पर्याय के विनाश को करती है और अविद्यमान पर्याय की उत्पत्ति को करती है।’

नामकर्म के कारण से मनुष्यपने का नाश होकर देवादि हो; नारकी का नाश होकर पशु आदि हो; पशु नाश पाकर नरकादि में जाये, इस प्रकार नामकर्म विद्यमान पर्याय का नाश करता है और अविद्यमान पर्याय उत्पन्न करता है। यहाँ निमित्त से कथन किया गया है। कर्म जीव को गति में नहीं ले जाता। जीव अपने निर्विकल्प स्वरूप से चूक जाता है और अपने में गति की योग्यता के परिणाम कहता है, तब नामकर्म के निमित्त से देव मरकर मनुष्य हुआ, ऐसा कथन किया जाता है। पंचास्तिकाय गाथा ५९ पृष्ठ १०२ में लिखा है कि जीव स्वयं के कारण से परिणाम करता है, यह उपादानकारण है, वहाँ निश्चयनय समझना और कर्म के कारण परिणाम करता है, इस कथन में कर्म निमित्तकारण है, वहाँ व्यवहारनय समझना।

यह विवक्षा सर्वत्र लागू करना।

भावार्थः—जिस प्रकार समुद्र अपने रूप से स्थिर है। अपनी उत्पाद-व्यय अवस्था को प्राप्त नहीं होता। परन्तु चारों दिशा का पवन आने से समुद्र में लहरों का उत्पाद-व्यय होता है। पवन के कारण लहरें नहीं होतीं। पवन के कारण होती हों तो आकाश में भी लहरें होना चाहिए। पानी में लहरोंरूप उत्पाद-व्यय होने की योग्यता है, तो पवन को निमित्त कहा जाता है। इस प्रकार जीवद्रव्य अपने त्रिकाली शुद्ध स्वभाव से उपजता नहीं तथा विनाश को नहीं प्राप्त होता। सदा टंकोत्कीर्ण चैतन्यमूर्ति है। परन्तु अनादिकर्मों की उपाधि के निमित्त से चार गति नामकर्म के उदय से नयी अवस्था को करता है और पुरानी अवस्था का नाश करता है।

यहाँ कर्म के वश से अर्थात् परद्रव्य के निमित्त से, ऐसा कहना यह व्यवहार हुआ। स्वयं अपने शुद्धस्वभाव को चूके और देवपने में उपजने की योग्यता उत्पन्न करे तो देव नामकर्म के उदय को निमित्त कहा जाता है।

अज्ञानी जीव को भ्रम पड़ता है कि कर्म का उदय आया इसलिए हुआ। श्रेणिक राजा को नरक में जाने का भाव था? नरकगति नामकर्म का उदय आया, इसलिए उनकी इच्छा न होने पर भी जबरदस्ती नरक में कर्म के कारण जाना पड़ा, ऐसा अज्ञानी तर्क करता है।

समाधान (यह है कि) भाई! अपनी नरक में जाने की योग्यता उस समय की है, इसलिए नरक में जाता है। उसकी योग्यता बिना कोई जीव जाता नहीं। उसकी योग्यता है तो कर्म को निमित्त कहा जाता है।

यह जीव के कर्तापने का अधिकार है। स्वयं नरक, मनुष्यादि गति के औदयिक भावों को करता है, तब कहा कर्म निमित्त है, यह साबित करते हैं। जीव विद्यमान पर्याय का नाश करता है और अविद्यमान पर्याय का उत्पाद करता है। वह निश्चय है, और उसमें कर्म निमित्त है। कर्म के कारण उत्पाद-विनाश किया कहना ऐसा निमित्त से कथन करने में विरोध नहीं है। तथा जीव कर्म के कारण भटकता है, यह व्यवहार कथन है और अपने अपराध के कारण भटकता है, यह निश्चय कथन है। इन दोनों में विरोध नहीं है परन्तु विरोध का परिहार है।

कर्म तुझे राग-द्वेष नहीं कराता, परन्तु तू स्वयं करे तो विकार होता है। आत्मा में १४८ प्रकृति है ही नहीं; इसलिए कर्म का लक्ष्य छोड़नेयोग्य है और आत्मा वीतरागस्वरूप परम आह्लादस्वरूप एकरूप चैतन्य प्रकाशवाला है, उसे उपादेय माननेयोग्य है। तू ज्ञाता है, ऐसी दृष्टि कर और एकाग्र हो, ऐसा कहने का भाव है।

अब जीव के पाँच भावों का वर्णन करते हैं।

गाथा - ५६

उदण उवसमेव य खण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे।
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु वित्थिण्णा॥५६॥

उदयेनोपशमेन च क्षयेण द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां परिणामेन।
युक्तास्ते जीवगुणा बहुषु चार्थेषु विस्तीर्णाः॥५६॥

जीवस्य भावोदयवर्णनमेतत् ।

कर्मणां फलदानसमर्थतयोद्भूतिरुदयः, अनुद्भूतिरुपशमः, उद्भूत्यनुद्भूती क्षयोपशमः, अत्यन्तविश्लेषः क्षयः, द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः । तत्रोदयेन युक्त औदयिकः, उपशमेन युक्त औपशमिकः, क्षयोपशमेन युक्तः क्षायोपशमिकः, क्षयेण युक्तः क्षायिकः, परिणामेन युक्तः पारिणामिकः । त एते पञ्च जीवगुणाः । तत्रोपाधिचतुर्विधत्वनिबन्धनाश्चत्वारः, स्वभावनिबन्धन एकः । एते चोपाधिभेदात्स्वरूपभेदाच्च भिद्यमाना बहुष्वर्थेषु विस्तार्यन्त इति ॥५६॥

उदय उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक भाव जो ।

संक्षेप में ये पाँच हैं विस्तार से बहुविध कहे ॥५६॥

अन्वयार्थ :- [उदयेन] उदय से युक्त, [उपशमेन] उपशम से युक्त, [क्षयेण] क्षय से युक्त, [द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां] क्षयोपशम से युक्त [च] और [परिणामेन युक्ताः] परिणाम से युक्त-[ते] ऐसे [जीवगुणाः] (पाँच) जीवगुण (-जीव के भाव) हैं; [च] और [बहुषु अर्थेषु विस्तीर्णाः] उन्हें अनेक प्रकारों से विस्तृत किया जाता है।

टीका:-जीव को भावों के उदय का (-पाँच भावों की प्रगटता का) यह वर्णन है।

कर्मों का 'फलदानसमर्थरूप से उद्भव, सो 'उदय' है; अनुद्भव, सो 'उपशम' है; उद्भव तथा अनुद्भव, सो 'क्षयोपशम' है; 'अत्यन्त विश्लेष, सो 'क्षय' है; द्रव्य का 'आत्मलाभ (अस्तित्व) जिसका हेतु है, वह 'परिणाम' है। वहाँ, उदय से युक्त, वह

१. फलदानसमर्थ=फल देने में समर्थ। २. अत्यन्त विश्लेष=अत्यन्त वियोग; आत्यंतिक निवृत्ति।
३. आत्मलाभ=स्वरूपप्राप्ति; स्वरूप को धारण कर रखना; अपने को धारण कर रखना; अस्तित्व। (द्रव्य अपने को धारण कर रखता है अर्थात् स्वयं बना रहता है, इसलिए उसे 'परिणाम' है।)

‘औदयिक’ है; उपशम से युक्त, वह ‘औपशमिक’ है; क्षयोपशम से युक्त, वह ‘क्षायोपशमिक’ है; क्षय से युक्त, वह ‘क्षायिक’ है; ^१ परिणाम से युक्त, वह ‘पारिणामिक’ है।—ऐसे यह पाँच जीवगुण हैं। उनमें (—इन पाँच गुणों में) ^३उपाधि का चतुर्विधपना जिनका कारण (निमित्त) है, ऐसे चार हैं, स्वभाव जिसका कारण है, ऐसा एक है। उपाधि के भेद से और स्वरूप के भेद से भेद करने पर, उन्हें अनेक प्रकारों में विस्तृत किया जाता है।॥५६॥

प्रवचन-५५, गाथा-५६, पौष कृष्ण १०, रविवार, दिनांक -०१-०२-१९७०

पंचास्तिकाय षट्द्रव्य अधिकार, ५६ गाथा। पाँच भाव का वर्णन। जीव के पाँच भाव का वर्णन। जीव के ये पाँच भाव हैं, यह यहाँ सिद्ध करते हैं। भले कर्म का निमित्त हो परन्तु भाव तो अपने हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं। उदयभाव आदि।

उदण उवसमेव य खण्ण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे।

जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु वित्थिण्णा॥५६॥

उदय उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक भाव जो।

संक्षेप में ये पाँच हैं विस्तार से बहुविध कहे ॥५६॥

टीका :— जीव को भावों के उदय का (—पाँच भावों की प्रगटता का) यह वर्णन है। क्या कहते हैं? अस्तित्व का वर्णन है न? आत्मा अपने पाँच भावों से है। पर की पर्याय से या परद्रव्य-गुण से नहीं। ऐसा अपना अस्तित्व परद्रव्य से भिन्न है और अपने अस्तित्व में पर्याय-द्रव्य अपने से है, यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

१. क्षय से युक्त=क्षय सहित; क्षय के साथ सम्बन्धवाला। (व्यवहार से कर्मों के क्षय की अपेक्षा जीव के जिस भाव में आये वह ‘क्षायिक’ भाव है।)

२. परिणाम से युक्त=परिणाममय; परिणामात्मक; परिणामस्वरूप।

३. कर्मोपाधि की चार प्रकार की दशा (—उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षय) जिनका निमित्त है, ऐसे चार भाव हैं; जिनमें कर्मोपाधिरूप निमित्त बिलकुल नहीं है, मात्र द्रव्यस्वभाव ही जिसका कारण है, ऐसा एक पारिणामिकभाव है।

(-पाँच भावों की प्रगटता का) यह वर्णन है। ऐसा शब्द है, देखो! जीव भगवान आत्मा प्रत्येक। उसमें, जिसमें जो हो वह हो। उसका त्रिकाली और वर्तमान पर्यायरूप भावों के उदय का, प्रगटता का यह वर्णन है। **कर्मों का फलदान समर्थरूप से उद्भव सो 'उदय' है,...** यह तो पहले व्याख्या करते हैं। पाठ है, वह बाद में कहेंगे। पाठ का अर्थ है, वह तो उदय से युक्त वह 'औदयिक' परिणाम से युक्त 'पारिणामिक' ऐसा कहेंगे।

अमृतचन्द्राचार्य पहले व्याख्या करते हैं कि, कर्मों के फलदान समर्थरूप से उद्भव, वह उदय है। आत्मा वस्तु है, उसकी पर्याय में-अवस्था में कर्म का निमित्त है। निमित्त का फलदान, निमित्त का फलदान तो फलदान में है, परन्तु अपना लक्ष्य उस ओर जाता है तो कर्म का फलदान पर्याय में आया, ऐसा कहा जाता है। दया, दान, मिथ्यात्व, राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव, वे आत्मा के स्वभाव नहीं हैं। यह बतलाने के लिये कहा कि कर्म का फलदान, वह भाव है। कर्म जो निमित्त है, उसका अपनी पर्याय में अपने से अशुद्ध उपादान में मिथ्यात्व राग-द्वेष भाव होते हैं, वह अपनी भावपर्याय अपने से है। अपने जीव से वह भाव प्रगट हुआ है। पहले प्रगट होता है, ऐसा कहा न? समझ में आया?

कोई कहता है न, कर्म बाद में कहेंगे। चार भाव में कम के निमित्त की अपेक्षा है। परन्तु भाव है, वह अपना है। वह भाव कहीं पर से प्रगट हुए हैं, मिथ्यात्वभाव पर से प्रगट हुआ ही नहीं, ऐसा कहते हैं। उसमें है या नहीं? **जीव को भावों के उदय का यह वर्णन है। (-पाँच भावों की प्रगटता का) वर्णन है।** भगवान आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर या स्वभाव को छोड़कर अपनी पर्याय में कर्म के निमित्त से, अपनी पर्याय में अशुद्ध उपादान से जो मिथ्यात्व, राग-द्वेष, पुण्य-पाप सब इक्कीस बोल हैं, वह अपनी पर्याय में प्रगट होते हैं। कहो, समझ में आया?

तो **कर्मों का फलदान समर्थरूप से उद्भव सो 'उदय' है, अनुद्भव सो 'उपशम' है,...** कर्म के उदय का जुड़ान नहीं और आत्मा में स्थिर होते-स्थिर होते उपशमभाव करता है, उसका नाम कर्म के अनुद्भवरूप-अनुद्भवरूप उपशमभाव है। परन्तु उस भाव का कर्ता तो आत्मा है। समझ में आया?

यह दो बोल का तो कहा न (संवत्) १९७१ के वर्ष में स्पष्टीकरण आया था। श्वेताम्बर का पुस्तक भगवती (सूत्र) पढ़ते थे, १९७१ में। कि उदय है वह भी अपनी पर्याय है और उपशम करना, वह भी अपने पुरुषार्थ से होता है। दूसरी चीज़ से वह विकार या उपशम प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

देखो! अनुद्भव-अनुद्भव, अपने स्वभाव में नहीं और कर्म के निमित्त से उत्पन्न हो जो राग-द्वेष, मिथ्यात्व, उसका उत्पन्न होना नहीं। अनुद्भव-उपशम, वह भाव आत्मा का है। आत्मा उस पर्याय का कर्ता है। कर्म उपशम हो तो वहाँ उपशम हो, यह तो निमित्त का कथन है। अपने में उपशमभाव का कर्ता है तो अपने में उपशमभाव प्रगट करता है। समझ में आया ?

भाई! भगवान चैतन्य वस्तु शुद्ध चैतन्यद्रव्य, ऐसी अन्तर्दृष्टि होकर जो उपशम समकित होता है कि स्वरूप में स्थिरता होकर उपशम चारित्र होता है, वह उपशम चारित्र और दर्शन की पर्याय का कर्ता आत्मा है। कर्तृत्व का अधिकार है न! यह कर्ता का अधिकार है। समझ में आया ? उपशम, उदय का कर्ता कर्म नहीं है। बाद में कहेंगे, हों! कर्म करता है, ऐसा कहेंगे। यह निमित्त से कथन है। घड़ीक में कुछ और घड़ीक में कुछ, ऐसा कहते हैं। यह तो निमित्त बतलाना है न! उपाधि में, चार भाव में निमित्त है। तो कर्म बिना चार भाव नहीं, ऐसा कहेंगे। क्योंकि वहाँ निमित्त की अपेक्षा है न! परमस्वभावभाव भगवान आत्मा ध्रुव, उसमें कोई अपेक्षा है नहीं। वह तो परम पारिणामिक अपने निज स्वभाव से भगवान आत्मा है और उसकी दृष्टि करने से समकित / धर्म होता है। समझ में आया ?

परन्तु चार भाव उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, उनमें उदय में निमित्त का सद्भाव है। उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक में निमित्त के अभाव का सद्भाव है। इतनी अपेक्षा है न! तो कहेंगे कि कर्म बिना चार भाव होते नहीं। यहाँ कहते हैं कि चार भाव का कर्ता आत्मा है। अरे! समझ में आया ? मिथ्यात्व का कर्ता आत्मा है, ऐसा कहते हैं। दर्शनमोह का उदय हो तो मिथ्यात्व होता है, ऐसा है नहीं। और राग-द्वेष, पुण्य-पाप जो विकल्प उत्पन्न होता है, वह स्वयं के कारण स्वयं कर्ता होकर उत्पन्न

होता है। कोई कर्म विकार उत्पन्न कराता है, ऐसी चीज़ है नहीं। समझ में आया? यह कर्म की बड़ी बात है। कर्म बिना होता नहीं—कर्म बिना होता नहीं, कर्म से होता है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं, देखो!

उद्भव तथा अनुद्भव सो 'क्षयोपशम' है,... कर्म का कितना ही उदयभाव राग भी है और कितना ही विकास भी है। विकास और उदय दोनों मिलकर यहाँ क्षयोपशम कहा जाता है। अनुद्भव सो 'क्षयोपशम' है,... लो! नहीं तो क्षयोपशम में उद्भव की अस्ति नहीं। भाषा तो क्षयोपशम है। समझ में आया? परन्तु उद्भव-अनुद्भव वह क्षयोपशम, भाई! नहीं तो क्षयोपशम में उद्भव है नहीं। परन्तु निमित्त का ज्ञान कराते हैं। क्षयोपशम ज्ञान में विकास है, उतना क्षयोपशम तो अपना है। उसमें जरा निमित्त की अपेक्षा से अपने में जो मलिनता है, उस सहित उद्भव-अनुद्भव दो मिलकर क्षयोपशम कहा जाता है। क्या कहा? समझ में आया?

क्षयोपशम में तो उद्भव होता नहीं। क्षयोपशम में उद्भव कहाँ आया? परन्तु क्षयोपशम में आत्मा जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र की पर्याय का विकास करता है, उसमें कर्म के निमित्त का थोड़ा लक्ष्य है, उतना उदय भी है, उद्भव भी है, विकास है। दोनों मिलकर यहाँ क्षयोपशम कहा जाता है। क्षायिक है नहीं इसलिए। परन्तु उस क्षयोपशमभाव का कर्ता तो आत्मा है। दर्शनमोह और चारित्रमोह का क्षयोपशम हो तो यहाँ क्षयोपशम होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा है, वह निमित्त का कथन है। वह तो अभी आयेगा। वह तो निमित्त में क्षयोपशम है, तो यहाँ क्षयोपशम है तो निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बतलाते हैं। परन्तु उसके कारण से यहाँ क्षयोपशम है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

पाँच भाव, वह जीवतत्त्व लिया न! तत्त्वार्थसूत्र-दूसरा अध्याय। स्वतत्त्व है। पण्डितजी! दूसरे अध्याय में पहला (सूत्र) मिश्र, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, पारिणामिक जीव स्वतत्त्वं—जीव का स्वतत्त्व है। जीव में है। पर का तत्त्व और पर से और पर में, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह तो षट्द्रव्य, उसमें जीवद्रव्य। पंचास्तिकाय में जीव-अस्तिकाय, वह सिद्ध करना है। तो अपनी सत्ता में जो अपने से होता है, उस भाव की बात यहाँ करते हैं। समझ में आया?

अत्यन्त विश्लेष सो 'क्षय' है, ... नीचे (फुटनोट में) अत्यन्त वियोग, आत्यन्तिक निवृत्ति। बिल्कुल राग और मलिनता का अंश नहीं, ऐसा क्षायिक भाव, उसका कर्ता आत्मा है। भगवान के समीप में क्षायिक समकित होता है, तथापि क्षायिक समकित का करनेवाला तो आत्मा है। और दर्शनमोह का क्षय हो तो क्षायिक होता है, यह तो निमित्त का ज्ञान कराने की बात है। यथार्थ यह है। निश्चय, वह यथार्थ; व्यवहार अन्यथा कथन करता है। कि दर्शनमोह का क्षय हो तो क्षायिक समकित होता है। यहाँ कहते हैं कि नहीं? देखो! अत्यन्त विश्लेष... मलिनता का बिल्कुल त्याग। अपने पुरुषार्थ से क्षायिक समकित। अपना आत्मा पुरुषार्थ करके स्वयं से उस क्षायिक समकित का कर्ता होता है। आत्मा कर्ता और क्षायिक समकित उसका कार्य। कर्म कर्ता और उसका वह कार्य, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया?

बस! अब चार ऊपर देखो! महालाभ। द्रव्य का आत्मलाभ (अस्तित्व)... भाषा देखो! द्रव्य का आत्मलाभ। द्रव्य के स्वरूप का आत्मलाभ। भाई! पर्याय के लाभ को यहाँ लिया भी नहीं। द्रव्य का अस्तित्व लाभ। देखो! परिणाम भाव, वह द्रव्य के स्वरूप का लाभ आता है। हैं? द्रव्य का आत्मलाभ। आत्मलाभ-स्वरूप प्राप्ति। देखो! द्रव्य को स्वरूप प्राप्ति कहते हैं। यहाँ उत्पाद-व्यय को स्वरूप प्राप्ति नहीं कहते, भाई! आहाहा! परन्तु यहाँ तो द्रव्य के आत्मलाभ को द्रव्य को ध्रुव को आत्मद्रव्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह द्रव्य स्वरूप है स्वतः, उसकी सत्ता रखनेवाला आत्मा स्वयं से सत्ता रखता है। उसमें किसी पर की सत्ता है नहीं। आत्मलाभ—आत्म अर्थात् स्वरूप लाभ। स्वरूप प्राप्ति, स्वरूप को धारण करके रखना। अपने को धारण करके रखना अथवा अस्तित्व। द्रव्य स्वयं को धारण करके रखता है। स्वयं बना हुआ रहता है, इसलिए उसे परिणाम कहते हैं। लो! त्रिकाल... त्रिकाल भगवान आत्मा वह द्रव्य का स्वरूप लाभ है। आहाहा! भाषा देखो! आत्मलाभ है। आत्म अर्थात् स्वरूप लाभ है। आत्म अर्थात् भाव लाभ है। अपने भाव का द्रव्य वह लाभ है। समझ में आया?

चार भाव को निकालकर द्रव्य के भाव को यहाँ कहा है। क्या कहते हैं? देखो!

द्रव्य का, द्रव्य का न? द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसका अस्तित्व। द्रव्य का आत्मलाभ (अस्ति) जिसका हेतु है, वह 'परिणाम' है। भगवान आत्मा त्रिकाल ज्ञायकभाव परमपारिणामिक-स्वभावभाव ध्रुवभाव नित्यभाव, वही द्रव्य का स्वरूप लाभ है। पर्याय के स्वरूप लाभ को यहाँ द्रव्य का (स्वरूप) लाभ नहीं कहा। आहाहा! समझ में आया? यह झगड़ा है न, झगड़ा। पर्याय और द्रव्य का। देखो! यहाँ स्पष्टीकरण आया।

एक समय की पर्याय बिना शाश्वत् रहनेवाली चीज़। चार भाव तो पर्याय है। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तो पर्याय का भाव है। एक समय का अंश-भाव है। क्षायिकभाव हो तो भी तीन काल की अपेक्षा से क्षायिकभाव एक समय का भाव है। और उसकी अनन्त गुण शक्तियाँ हैं, अनन्त-अनन्त रसकन्द भाव है, उसकी अपेक्षा से क्षायिक भाव की पर्याय का अनन्तवाँ भाग भाव आया है। क्या कहा? समझ में आया?

भगवान आत्मा तो द्रव्यलाभ। यहाँ द्रव्यलाभ कहा। द्रव्यलाभ कहा न! द्रव्य का आत्मलाभ। द्रव्य जो वस्तु ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... पूरा कन्द अनन्तगुण का पिण्ड रसकन्द। उस द्रव्य का स्वरूप लाभ है। क्योंकि अनन्त... अनन्त भाव और अनन्त... अनन्त शक्तियों का सत्त्व एकरूप पड़ा है। क्षायिक भाव भी द्रव्य का आत्मलाभस्वरूप लाभ नहीं है, ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! क्योंकि उदयभाव रागादि दया, दान विकल्प है, वह तो विकृत भाव, वह द्रव्य का मूल स्वरूपलाभ नहीं है। क्योंकि समय एक और विकृत भाव। भाव भी विकृत, तो कहते हैं, वह द्रव्य स्वरूप लाभ नहीं है। उपशम है वह भी एक समय की पर्याय है। भले अन्तर्मुहूर्त रहती है। परन्तु तीन काल की अपेक्षा से एक समय की पर्याय तीन काल की अपेक्षा से अनन्तवाँ भाग एक समय आया। काल अपेक्षा से। और अनन्त भाव का पिण्ड है, उससे अनन्तवें... अनन्तवें... अनन्तवें भाग एक समय की पर्याय हुई। भले निर्मल हुई तो भी। समझ आया या नहीं?

मुमुक्षु : नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया। यह ठीक कहते हैं। यह वन्समोर कहते हैं। सेठी! मीठालालजी है न! नहीं आया, ऐसा कहकर कहते हैं कि फिर से कहो, ऐसा कहते हैं।

ऐसा कहा कि भगवान आत्मा जो ध्रुव है, उसे द्रव्य का आत्मलाभ कहा। वस्तु

का स्वरूप लाभ, वह द्रव्य है। और एक समय की पर्याय को यहाँ स्वरूप लाभ के बाहर कर दिया है। तो कहते हैं कि उपशम की एक समय की पर्याय, एक क्षायिक की या क्षयोपशम की। अपने क्षायिक की लो न विशेष। क्षायिक केवलज्ञान हुआ या क्षायिक अनन्त आनन्द हुआ, तब तो वह पर्याय एक समय की है। अनादि-अनन्त काल की अपेक्षा से भूतकाल भी भविष्यकाल की अपेक्षा से अनन्तवें भाग है। भूतकाल भी भविष्य काल से अनन्तवें भाग है। उसमें भी भूत और भविष्य त्रिकाल, उसकी अपेक्षा से एक समय की क्षायिक पर्याय का काल अनन्तवें भाग आया। पण्डितजी! आहाहा! और उसमें जो अनन्त-अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, क्षायिक केवलज्ञान हुआ।

ऐसी एक पर्याय सादि अनन्त जो प्रगट होगी। भूतकाल से भविष्य की पर्याय अनन्त गुणी, तो अनन्त गुणा जो केवलज्ञान होगा तो वह सब पर्याय ज्ञानगुण में पड़ी है, तो ज्ञानगुण तो पर्याय से अनन्त गुणा हो गया, भाव में। काल में तो तीन काल की अपेक्षा से एक समय है, तो ऐसी अनन्त... अनन्त... अनन्त... पर्याय प्रगट होगी तो अनन्त पर्याय का पिण्ड ज्ञानगुण है। केवलज्ञान की पर्याय सादि-अनन्त प्रगट होगी। ऐसा ज्ञानगुण है। तो ज्ञानगुण में तो ऐसी अनन्त... अनन्त... पर्याय भावरूप पड़ी है। तो उस भाव के सामर्थ्य की अपेक्षा से एक समय का क्षायिक भाव अनन्तवें भाग है। समझ में आया या नहीं?

यह तो भगवान के घर की बात है। हें? यहाँ कहते हैं कि वस्तु है न, वस्तु। यहाँ तो द्रव्य का स्वरूप लाभ। द्रव्य का अस्तित्व जिसका हेतु है। द्रव्य का अस्तित्व जिसका हेतु है। पर्याय, पर्याय की बात यहाँ निकाल दी है। द्रव्य का अस्तित्व जिसका हेतु है, वह परिणाम है। वह परिणाम अर्थात् त्रिकाली भाव। वह त्रिकाली भाव द्रव्य का अस्तित्व कहा, द्रव्य का स्वरूप लाभ कहा, द्रव्य का भाव भी वही कहा। पर्याय को द्रव्य का भाव कहा ही नहीं, ऐसा कहते हैं।

क्योंकि पर्याय जो है, उदय तो विकृत है। उपशम तो एक समय के अनन्तवें भाग में असंख्य समय रहता है। क्षयोपशम भी एक समय में पर्याय है। क्षयोपशम किंचित् विकास और वह। (किंचित् उदय) परन्तु विकास का अंश है, वह काल की अपेक्षा से

अनन्तवें भाग—समय। और भाव की अपेक्षा से अनन्तवें भाग भाव आया है। समझ में आया? ज्ञान, दर्शन, वीर्य का अनादि क्षयोपशमभाव है। अनादि से क्षयोपशम निगोद में भी है। तो वह क्षयोपशम करते... करते... करते... बारहवें गुणस्थान तक ज्ञान, दर्शन, वीर्य का क्षयोपशम रहता है। तो वह सब पर्याय और फिर क्षायिक केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक वीर्य प्रगट हुआ। वह सादि-अनन्त पर्याय और वह सब पर्याय, उसके पूरे पिण्डरूप जो ज्ञानगुण है, उस गुण के भाव के सामर्थ्य के भाव की सामर्थ्य की अपेक्षा से एक समय की पर्याय के भाव का अनन्तवें भाग का सामर्थ्य है। समझ में आया या नहीं? ऐई, नरेन्द्रजी! यह समझना पड़ेगा, हों! वहाँ बाहर में-धूल में कुछ नहीं है।

उन मशीनों में दोनों को लगा दिया। एक इसे और एक उसको। कमाओ।

मुमुक्षु : कमाना तो पड़े ही न, चलेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : चलेगा क्या? चलता ही है न। मर जाओगे। वह दिलीप तो कहता था अकेला बैठेगा तो पुण्य होगा तो मिलेगा। ऐसा कहता था। ऐई! जादवजीभाई! तुम्हारा कहता था कि लो, बैठे रहो, रोटियाँ मिलनी होगी तो मिलेगी।

मुमुक्षु : लड़का तो बैठा रहे तो मिले परन्तु बड़े को नहीं मिलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा और छोटा। यहाँ तो बाहर की बात तो है ही नहीं। हें? मिलना... मिलना... वह तो संयोगी चीज़ है, उसमें आत्मा में क्या आया? वह तो जिस काल में, जिस समय में, जो चीज़ आनेवाली है, वह आयेगी और नहीं आनेवाली नहीं आयेगी। यह अपने अस्तित्व में है नहीं। अपने अस्तित्व में नहीं तो उससे लाभ या नुकसान है नहीं। उससे लाभ नुकसान नहीं है।

यहाँ तो एक समय की पर्याय में पूर्ण अस्तित्व का लाभ नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! पर की चीज़ मिले, उसमें तुझे क्या मिला? वह तो पर में है। तुझमें वह आयी है? यहाँ अस्तित्व सिद्ध करना है। पंचास्तिकाय है। जीवास्तिकाय सिद्ध करना है। जीवास्तिकाय—जीव-अस्ति-काय। तो काय अर्थात् असंख्य प्रदेश-अस्ति तो वह असंख्यप्रदेशी जीवास्ति वस्तु, उसमें दो भाग एक पर्याय का भाग और एक द्रव्य का भाग। तो द्रव्य के भाग को यहाँ तो आत्मद्रव्यलाभ कहा गया है। समझ में आया?

ओहोहो! ऐसी बात! अमृतचन्द्राचार्य यह भागवत्! ऐसी बात तो श्वेताम्बर में कहीं गन्ध भी नहीं है। समझ में आया? दूसरे में तो होगी ही कहाँ से? जैन के अतिरिक्त दूसरे में तो इस सत्य बात की कहीं गन्ध भी नहीं है। परन्तु यह जैन के टुकड़े पड़े, उसमें भी गन्ध नहीं। ऐसी चीज़ है भाई! मध्यस्थता से देखे तो समझे। कोई पक्षपात से देखे तो वह समझे नहीं। हैं? लाड़लालजी! आहा! अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्तों ने तो केवलज्ञान का पेट (अभिप्राय) खोला है। समझ में आया? और वह न्याय से और सबको ख्याल में आवे, इस प्रकार से समझाते हैं। भाषा कैसी ली है! देखो! कि द्रव्य के, समझ में आया? पाठ में है, वह बाद में लेंगे। यहाँ तो अभी पाँच की व्याख्या करते हैं। फिर वह भावसहित, इसलिए पाठ ऐसा है, यह बाद में लेंगे। यह भाव ऐसा है।

भगवान आत्मा राग-द्वेष, मिथ्यात्व, बस! युक्त तो बाद में लेंगे पाठ में है वह। है वह कर्मदानफलशक्ति। निमित्त पर लक्ष्य जाने से उसमें उपाधिभाव की उत्पत्ति हुई तो उपाधिभाव का कर्ता आत्मा है। वह कोई द्रव्य का त्रिकाली स्वरूप नहीं, इसलिए त्रिकाली आत्मलाभ उसमें नहीं होता। यह उपशमभाव हुआ। तब कहते हैं कि एक समय की पर्याय अनन्तवें भाग और भाव भी अनन्तवें भाग। क्षयोपशम की पर्याय हुई तो त्रिकाल के अनन्तवें भाग काल और भाव के अनन्तवें भाग भाव। समझ में आया? क्षायिक हुआ।

आहाहा! देखो तो सही! वस्तु है न वस्तु। महाप्रभु चैतन्यध्रुव अनादि-अनन्त नित्यानन्द नाथ! वह नित्यानन्द वस्तु का स्वरूपलाभ है, ऐसा कहते हैं। स्वरूपलाभ अर्थात् प्राप्ति होना, ऐसा नहीं। वह स्वरूप की अस्ति ही ऐसी है। ऐसा कहते हैं। आत्मा अर्थात् स्वरूप और लाभ अर्थात् अस्ति। स्वरूप की अस्ति ही ऐसी है, ऐसा कहते हैं। अर्थ करो। अर्थ देखो! संस्कृत है। देखो! 'द्रव्य आत्मलाभहेतुक परिणामः' संस्कृत है। द्रव्य आत्मलाभ। द्रव्य की-आत्मा की अस्ति। उसका हेतु, कारण वह ही है। कारण और कार्य वह ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? दूसरी चीज़ तो दूसरे में रही। वह अपने उदयभाव में भी नहीं आती। यहाँ तो अपनी पर्याय में चार भाव हैं, उस पर्याय का काल एक समय का है। फिर भले ऐसी की ऐसी हो, परन्तु उसके रहने

का काल, अस्तित्व है न! रहने का अस्तित्व एक समय का है।

यहाँ पहले कह गये कि क्षायिकभाव सद्भाव है तो सादि-अनन्त, परन्तु वह तो ऐसी की ऐसी रहकर सादि-अनन्त है। एक समय का अस्तित्व है। तो एक समय का अस्तित्व, वह काल का ही एक भाग है। भाव जो अन्दर है, चैतन्य का पूरा पिण्ड चैतन्यभाव, स्वभावभाव उसमें तो अनन्तवें भाग एक समय का भाव है। तो उसे आत्मद्रव्य का लाभ नहीं कहा। उसे आत्मा की अस्तित्व नहीं कही। लाभ अर्थात् आत्मा की अस्ति पर्याय से नहीं कही। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा ध्यान खे न, तो समझे। न समझ में आये, ऐसा नहीं है। यह इसके घर की बात है न! क्यों न समझे? आहाहा!

महाप्रभु अनादि-अनन्त जो परमपारिणामिक सहजभाव, ज्ञायकभाव। तो उस ज्ञायकभाव का कहते हैं कि लाभ, स्वरूप का लाभ अर्थात् स्वरूप की अस्ति, द्रव्य के स्वरूप की अस्ति, द्रव्य के स्वरूप की मौजूदगी, वह द्रव्यलाभ, वह पारिणामिकभाव है। भाई! जेठालालजी! शोभालालजी! बहियां और सब ब्याज... ब्याज निकाले उसमें तो यह सरल है, हों! यह अभी ब्याज-ब्याज निकाले, वहाँ सब बहुत निकाले। लाखों रुपये आवे, धूल में भी नहीं कुछ। हैरान... हैरान है। विकल्प से दुःखी है। उस क्रिया से दुःखी नहीं। क्रिया तो जड़ की है। नामा लिखना-लिखना, वह तो जड़ का है। आत्मा कर नहीं सकता। आत्मा की एक समय की पर्याय में भी वह अस्तित्व नहीं है।

यहाँ तो आत्मा की पर्याय और द्रव्य में क्या है, यह बात करते हैं। कहो, तुम्हारी पर्याय में पैसा नहीं। मकान नहीं, शोभालाल नहीं, डालचन्दजी नहीं। आहाहा! परन्तु यह मेरा है, ऐसा विकल्प तेरी पर्याय में है। वह उदयभाव है, विकृतभाव है, दुःखरूपभाव है। परन्तु उसका कर्ता आत्मा है। परिणमन करनेवाला वह है। कर्म परिणमन कराता है और कर्म की अस्ति से यह उदयभाव की अस्ति है, ऐसा नहीं है। अस्तित्व सिद्ध करते हैं। उसका अस्तित्व है तो इसका अस्तित्व है, ऐसा नहीं। निमित्त भले कहेंगे। परन्तु निमित्त का अस्तित्व है तो यह अस्तित्व है, ऐसा नहीं। स्वतन्त्र बात है। आहाहा!

यहाँ तो अपने विशेष यहाँ लेना है न! पाँच का अर्थ किया। अभी गाथा का अर्थ

तो बाद में लेंगे। यह तो पाँच भाव का स्वरूप क्या? उदय-उद्भव, उपशम-अनुद्भव, क्षयोपशम-उद्भव-अनुद्भव, क्षायिक-अत्यन्त विश्लेष, बिल्कुल निवृत्ति। पूर्ण शुद्धि वह भी द्रव्य के अस्तित्व की अस्ति नहीं। आहाहा! हैं? पर्याय की अस्ति अंश है। द्रव्य क्या है, समझ में आया? निश्चय का द्रव्य, निश्चयनय का विषय द्रव्य। प्रमाण के विषय में तो द्रव्य-पर्याय की अस्ति आती है। यह तो निश्चयनय के विषय का जो पर्याय बिना का द्रव्य। उस वस्तु का स्वरूप, भाव, लाभ, अस्ति, मौजूदगी। स्वरूप की अस्ति, नीचे हयाति आया न, देखो! कोष्ठक में लिखा है। स्वरूप का अस्तित्व। आत्मलाभ अर्थात् स्वरूप का अस्तित्व। आत्मलाभ का अर्थ अस्तित्व। द्रव्य स्वयं को धार रखता है अर्थात् स्वयं अस्ति रहता है, इसलिए उसे परिणाम कहते हैं।

परिणाम अर्थात् परिणमता है, ऐसा अर्थ नहीं है। परिणाम अर्थात् अनादि-अनन्त सहजरूप भाव है। वह द्रव्य के स्वरूप की अस्ति सूचित करता है। आहाहा!

कहते हैं, भगवान! तुम तो कहीं शरीर में, वाणी में, कर्म में, स्त्री में, परिवार में, देश में तो तेरी अस्ति नहीं। अंशरूप भी नहीं। पर में तेरी अस्ति अंशरूप भी नहीं। और तुझमें भी पर की अस्ति अंशरूप भी नहीं। अब अंशरूपी जो अस्ति है, अस्तित्व सिद्ध करना है न? तो पर्याय का अस्तित्व तो एक समय का है। चाहे तो उदय हो, उपशम हो, क्षायिक हो, क्षयोपशम हो। और वस्तु है एक समय के अतिरिक्त। द्रव्य के स्वरूप की अस्ति, मौजूदगी, सत्ता महाप्रभु वही वस्तु, उसे यहाँ पारिणामिकभाव अथवा उसे परिणाम कहते हैं। परिणाम क्या आया? विद्यालय में पढ़े और परिणाम क्या आया? वह परिणाम यहाँ नहीं।

इसी प्रकार वस्तु की पर्याय क्या, वह परिणाम यहाँ नहीं। यहाँ तो त्रिकाल को ही परिणाम कहा है। समझ में आया? जो सम्यग्दर्शन का विषय है। जिसका ध्येय करने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। यह बात है। पूर्ण प्रभु प्रतीति में लेने से सच्ची प्रतीति होती है। सम्यग्दर्शन है न, सत्यदर्शन। जैसा है, वैसी प्रतीति। तो जैसा है, वैसा द्रव्य तो परिपूर्ण है। वह जैसा है, वैसा है। एक समय की पर्याय जितना आत्मा द्रव्य में नहीं। समझ में आया? आहाहा! वस्तु ही ऐसी है। वहाँ भगवान कहते हैं, इसलिए है-ऐसा

है ? है, वैसा जाना और जाना वैसा कहा। कहा वैसा है। समझ में आया ?

यह तो अमृतचन्द्राचार्य पाँच भाव का अर्थ करते हैं। समझ में आया ? द्रव्य का आत्मलाभ, द्रव्य का होना जिसका हेतु है। वस्तु का होना जिसका हेतु है। ओहो ! हेतु भी वह और वस्तु भी वह। द्रव्य-वस्तु का अस्तित्व जिसका कारण है, वैसा पारिणामिक भाव। पारिणामिक त्रिकाल भाव। उसे द्रव्य का अस्तित्व-मौजूदगी कहा जाता है। पर्याय की अस्ति भिन्न। समझ में आया या नहीं ? तू कौन है ? कितना है ? कैसा है ? कहाँ है ? किस प्रकार से है ? मैं तो कहे त्रिकाल वस्तु का अस्तित्व, वह मैं हूँ। द्रव्य स्वरूप से मैं हूँ। दास ! समझ में आया ?

भगवान का पेट बड़ा है। समझ में आया ? एक बार सहजानन्द लींबडी उपाश्रय में आया था। वह स्वामी नारायण में सहजानन्द हो गया न। लींबडी में आया था। कहे, तुम प्रभु कहलवाते हो भगवान ? तो कहे हाँ, क्यों ? भगवान का पेट बड़ा है। परन्तु इस भगवान को पेट बड़ा है। पर्याय में भगवान कहलावे उसमें कहाँ भगवान आ गया ? समझ में आया ? ऐसा सहजानन्द था न।

द्रव्य का, वस्तु का, देखो ! द्रव्य अर्थात् वस्तु की अस्ति जिसका हेतु है। वस्तु की अस्ति जिसका हेतु है, ऐसा पारिणामिकभाव। वह द्रव्यस्वरूप की अस्ति बतलाता है। समझ में आया ? आहाहा ! द्रव्य का निज घर कितना बड़ा है ? कितना क्षेत्र—असंख्य प्रदेश, कितनी शक्तियाँ—अनन्त, गुण की संख्या—अनन्त। परन्तु वे सब परमपारिणामिकभाव वह द्रव्य की अस्ति बतलाता है। वस्तु की सत्ता की मौजूदगी वह बतलाता है। समझ में आया ?

भाषा देखो ! नहीं तो पर्याय और द्रव्य दो मिलकर प्रमाण का द्रव्य है। वह यहाँ बतलाना नहीं है। वजुभाई ! नहीं तो पर्याय और द्रव्य दोनों मिलकर प्रमाण है। पर्याय और द्रव्य दोनों मिलकर प्रमाण है, यह नहीं बतलाना है। यहाँ तो अकेला ध्रुवद्रव्य है, वही बतलाना है। ऐसा जो भगवान आत्मा, आहाहा ! कहते हैं कि बाहर की चीज़ तो कहीं रह गयी, प्रभु ! तेरी अस्ति में है नहीं। तेरी पर्याय की अस्ति एक समय की वह तेरे द्रव्य की मूल अस्ति नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? अनन्तवें भाग की एक समय की

पर्याय है। पर की पर्याय तो आत्मा में है ही नहीं। शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश वे सब तो पर में हैं। वे तो अनन्तवें भाग में भी नहीं। क्योंकि है नहीं, उसमें भाग क्या? वह तो तुझमें है ही नहीं न! कर्म नहीं, शरीर नहीं, वे तो परद्रव्य है। यह तो कितने में-भाग में तुझमें है? भाग कहाँ से आया? उसमें हो तो उसका भाग हो न!

परन्तु यहाँ तो कहते हैं, भगवान् परिपूर्ण द्रव्यलाभ की अपेक्षा से एक समय की पर्याय की अस्ति अनन्तवें भाग है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की उपदेश कथनी अलौकिक! अलौकिक, लौकिक से पार—लोकोत्तर। आहाहा! भगवान्! देखो! ऐसी द्रव्य की शक्ति के स्वरूप का अस्तित्व यह है। ऐसी व्याख्या भी लोगों में मुश्किल है। समझ में आया?

जिसका हेतु है.... वापस क्या है? यह तो कारण-कार्य वही है, ऐसा बताते हैं, हों! कारण भी स्वरूप की अस्ति और परिणाम भी वही। ऐसा कहते हैं। आहाहा! त्रिकाल भगवान् ध्रुवस्वभाव, पारिणामिकस्वभाव, स्वअस्तिद्रव्यस्वभाव, द्रव्य की अस्ति वह जिसका हेतु है, वह पारिणामिक। इसका अर्थ तो वह का वही हुआ। उसका हेतु वह। समझ में आया? उसका हेतु पर नहीं, ईश्वर कोई कर्ता नहीं, पर कोई कर्ता नहीं, परन्तु पर्याय उसका हेतु नहीं। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया?

अपनी क्षायिकभाव की पर्याय है, वह भी द्रव्य का हेतु नहीं, ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! ऐई! एक अंश कोई त्रिकाली का हेतु होता है? ऐसा कहते हैं। त्रिकाली भगवान् का हेतु स्वयं और वस्तु स्वयं। आहाहा! पर की अपेक्षा का भाग तो है भी नहीं। द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय अनन्तवें भाग है। पर का तो भाग भी नहीं। पर उसमें है नहीं तो कहाँ से लाना? परन्तु पर्याय भी द्रव्य के अनन्तवें भाग की एक समय की अवस्था है। आहाहा! इतने बड़े भाग में ध्रुव है। वह बड़ा भाग लेना है या थोड़ा भाग लेना है? ऐसा कहते हैं।

वह लड़का कोई है न। तरबूज-तरबूज काटकर फाँक करते हैं न। ले तू पास कर ले, तुझे कौन सा (भाग) लेना है? झगड़ा हो न तो लड़के को कहते हैं कि ले पास कर, दस लड़के हैं। फिर तू छोटी-बड़ी करेगा तो नहीं चलेगा। नानी-मोटी समझते हो? छोटी-बड़ी। देख ले यह लम्बी। लम्बी (फाँक) थी और एक थी चौड़ी। ऐसी

दस थी। तो लम्बी (फाँक) पसन्द की। फिर कहे, उसे चौड़ी और मुझे छोटी है। परन्तु तूने लम्बी पसन्द करके ली है। यहाँ तो कहते हैं कि एक समय की पर्याय पसन्द न कर। आहाहा! छोटी है। बड़ा भाग तो द्रव्य का है। उसे पसन्द कर, दृष्टि कर। अब यह बात वहाँ गढडा में मिले, ऐसी है? भाई! फिर कहे न बेचारे मोहनभाई! क्या करे? वह भी भगवान है न, प्रभु है न, भाई! भूल है, वह एक समय की है। वस्तु में तो वह है भी नहीं। आहाहा!

वस्तु तो भगवान परमात्मा साक्षात् शक्तिरूप परमात्मा स्वयं है। वह द्रव्य की अस्ति बताता है। वस्तु की मौजूदगी बताता है। बस, अब पाठ में है वह बात करते हैं। इसका पाँच-सात अर्थ किये, हों! एक-एक शब्द का अर्थ किया। परन्तु पाठ जो है, वह अब बताते हैं। पाठ है न। 'उदयेणं जूतं' ऐसा। 'उदयेणं जूतं ते उदया' ऐसा ले लेना। देखो! वहाँ उदय से युक्त वह 'औदयिक' है, ... राग औदयिकभाव से सहित है, इसलिए औदयिक कहते हैं। पर से सहित है, इसलिए औदयिक कहते हैं, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। ऐई! इसका पाठ देखो पाठ!

कुन्दकुन्दाचार्य का कलश... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली थोड़े में, गागर में सागर भर दिया है। कहते हैं कि उदय से युक्त वह 'औदयिक' है, ... यह रागादि उदयभाव से, उदय से सहित है, इसलिए औदयिक है। कर्मसहित है, इसलिए औदयिक है - ऐसा नहीं है। आहाहा! कितनी बात! अरे भगवान! यह तो धर्मकथा है, भाई! समझ में आया? यह तो (लोग ऐसा कहते हैं) कर्म से राग होता है और शुभराग से फिर धर्म होता है तो कर्म से धर्म हुआ। यह कथा तो विकथा है, मिथ्यात्व की कथा है, समकित का नाश करने की कथा है। जिसे भगवान दंसणभेदनी कथा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

चार-पाँच लाईन की तो व्याख्या की। ऊपर से, वह अमृतचन्द्राचार्य की शैली है। फिर अस्ति सिद्ध की। अब अस्ति-उदय की अस्ति उदय से है, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! उदय की अस्ति उदय से है। देखो तो सही! पाठ में युक्त कहा न। वह और वह वस्तु है। उदय से युक्त, वह उदय, ऐसा। वह तो उदय से युक्त उदय है। समझ में

आया? कर्मसहित एक उदय है, ऐसा है नहीं। उदय से युक्त वह 'औदयिक' है, उपशम से युक्त वह 'औपशमिक' है, ... कहो, समझ में आया? निमित्तपना भले हो परन्तु अपने भाव से वे सब भाव हैं। मूल तो ऐसा कहते हैं। अपने भाव का कर्ता सिद्ध करना है न! कर्तृत्व है न! वही बताते हैं न! आगे कहते हैं न, देखो! वही बताते हैं।

उपशम से युक्त वह 'औपशमिक' है, क्षयोपशम से युक्त वह 'क्षायोपशमिक' है, क्षय से युक्त वह 'क्षायिक' है, ... क्षय के साथ सम्बन्धवाला। व्यवहार से कर्मों के क्षय की अपेक्षा जीव के जिस भाव में आवे, (वह 'क्षायिक' भाव है)। निमित्त से कथन है। समझ में आया? व्यवहार से कर्मों के क्षय की अपेक्षा आती है। उसमें निमित्त से है परन्तु क्षायिकभाव अपने से है। क्षय से युक्त—कर्म का क्षय निमित्त में, उससे सहित वह क्षायिकभाव है। क्षायिकभाव का कर्ता और परिणामन तो स्वयं का है। समझ में आया? परिणाम से युक्त वह 'पारिणामिक' है। लो! यह भाषा वापस। उसमें कहा था न 'परिणाम'। द्रव्य का आत्मलाभ जिसका हेतु है, वह 'परिणाम' है। अर्थ:—परिणाम से युक्त=परिणाममय; युक्त का अर्थ देखो! परिणाममय, परिणामात्मक; परिणामस्वरूप। परिणामात्मक अर्थात् परिणामस्वरूप ऐसा। वहाँ युक्त अर्थात् किसी के साथ में जुड़ान, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

परिणाम से युक्त सहज आत्मस्वरूप, सहजात्मस्वरूप स्वयं से सहित, इसलिए परिणाम कहा गया है। उस पारिणामिकभाव में किसी की अपेक्षा, युक्तता, सम्बन्धपना है नहीं। पारिणामिकभाव में पर्याय का सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? ऐसी धर्मकथा! बहुत सूक्ष्म पड़े! हैं? नहीं तो मन्दिर बनाओ, पूजा करो, भक्ति करो, वाँचन करो, यात्रा निकालो। ऐई सेठ! पुस्तक बनाओ, लो न भाई! खबर पड़े। हाँ, अपने तो कौन बनावे? वह तो जड़ का अस्तित्व है। पुस्तक के अस्तित्व का कर्ता आत्मा नहीं है। है नहीं, उसमें विकल्प हुआ, उसका कर्ता आत्मा है। वह अपने अस्तित्व में है। पुस्तक बनना, वह अपने अस्तित्व में नहीं है।

ऐसे बड़े यंत्र (मशीनें) चलावे। जरा ऐसा करे तो पूरी मशीन धनधनाहट, लो। उज्जैन लालचन्द सेठ! ढाई करोड़ की मशीन है। एक ऐसे चले तो लोग बहुत थोड़े

बहुत थोड़े। अपने आप सब चलता है। कपास डालकर रुई-रुई, कपड़ा बनकर निकल जाये, जाओ। अपने आप, हों! सब ताना-बाना निकले, गोटा निकले, बुने। कुछ टूटे तो व्यक्ति को खड़ा रहना पड़े। टूटे तो सांधना, नहीं तो पूरी मशीन बन्द हो जाये। डोरा निकलता हो न सूत। अपने आप वहाँ डाले वहाँ कपड़ा तैयार। उज्जैन। वहाँ देखने गये थे, मुझे कहे, चरण करो हमारे.... लालचन्द सेठ है न वह। आहाहा! कहते हैं कि उसके कारण से सब बनता है। मनुष्य से कुछ बनता नहीं। हैं? उसके अस्तित्व में आत्मा की पर्याय है? और उसका अस्तित्व यहाँ आ जाता है? उसकी पर्याय उससे होती है। गजब बात! तेरी पर्याय तुझसे होती....

परिणाम से युक्त, अन्तिम भाव। अपने परिणाम से—स्वभाव से सहित है। सहित, वह का वह युक्त। दूसरा क्या है? आहाहा! ऐसे ये पाँच जीवगुण हैं। कहो, त्रिकाली को भी गुण कहा और एक समय के राग को, मिथ्यात्व को भी गुण कहा। गुण शब्द से उसकी पर्याय में है, ऐसा। लो! वह द्रव्य में है, यह पर्याय में है। उसका अस्तित्व यह है। परिणाम से युक्त, परिणाम शब्द से यह पर्याय नहीं, हों! देखो! परिणाम से युक्त—परिणाममय—परिणामात्मक—परिणामस्वरूप। ओहो! ये पाँच जीवगुण हैं। इन पाँच में जीव की अस्ति है न! उसे जीवगुण कहा। बस, यह बतलाना है। आहाहा!

अब,—ऐसे यह पाँच जीवगुण हैं। उनमें (-इन पाँच गुणों में) उपाधि का चतुर्विधपना जिनका कारण (निमित्त) है,... देखो! उपाधि का चतुर्विधपना कर्म का उदय, कर्म का क्षयोपशम, कर्म का क्षायिक और कर्म का उपशम। ये चार अन्दर में कर्म, हों! कर्म का उदय, कर्म का उपशम, कर्म का क्षयोपशम, कर्म का क्षायिक जड़। इस उपाधि का चार प्रकार का उसमें, जिनमें निमित्त है। अपनी पर्याय में निमित्त है। ऐसे चार हैं। समझ में आया ?

कर्म का उदय वह यहाँ उदयभाव में निमित्त है। उपशम, वह उपशमभाव में निमित्त है। कर्म का क्षयोपशम, वह क्षायिकभाव में निमित्त है; कर्म का क्षय, वह क्षायिकभाव में निमित्त है। निमित्त है, कर्ता नहीं हुआ। निमित्त कर्ता नहीं है। कर्ता तो आत्मा है, ऐसा कहा। समझ में आया ? निमित्त है तो निमित्त कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं।

उपाधि का चतुर्विधपना जिनका कारण (निमित्त) है,... उदय—राग, मिथ्यात्व आदि भाव; उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव इन चार में कर्म के चार भाव। कर्म का उदय जड़, कर्म का क्षयोपशम जड़, कर्म का उपशम जड़, कर्म का क्षय जड़। यहाँ ये चार भाव जो आत्मा के हैं, उसमें निमित्त है। कहो, समझ में आया ?

कहाँ क्या है, यह समझे बिना ऐसे का ऐसा चलाये रखे। करो, धर्म करो। परन्तु धर्म कहाँ से होगा ? तत्त्व क्या है, तत्त्व की विपरीत बुद्धि तो नाश हुई नहीं। समझ में आया ? कुछ का कुछ लगा दे और विपरीत मान्यता, फिर करो धर्म, क्या धर्म होगा ? अधर्म है। समझ में आया ? **ऐसे चार हैं, स्वभाव जिसका कारण है ऐसा एक है।** और, देखो ! यह तो वस्तु के कारण वस्तु उसे उसी कारण से। स्वभाव जिसका, स्व-भाव, देखो ! भाषा द्रव्य का स्वभाव लिया। उसमें आत्मलाभ कहा था—स्वरूप की अस्ति। यहाँ स्वभाव जिसका कारण अकेला स्वभाव। ध्रुव नित्यानन्द भगवान, वह स्वभाव जिसका कारण है, ऐसा एक है।

अब, इन पाँच के वापस भेद करेंगे। इस प्रकार तो बात की है। चार भाव जो अपने में हैं, अपने कर्ता से हैं। पारिणामिकभाव त्रिकाल है। चार भाव में चार कर्म की अवस्था निमित्त है। एक उदय अवस्था, एक क्षयोपशम अवस्था... कर्म की हों ! क्षायिक अवस्था, उपशम अवस्था निमित्त है। स्वभाव में स्वभाव का कारण स्वयं अकेला है। उसका कोई कारण है नहीं। **उपाधि के भेद से....** क्या कहते हैं अब। उपाधि के भेद से चार भाव के भेद अनेक हैं। उदय के २१ हैं। है न ? उपशम के दो, क्षयोपशम के-क्षयोपशम के अठारह, उदय के २१, क्षायिक के नौ (भेद है)। समझ में आया ?

वह उपाधि के भेद से और स्वरूप के भेद से भेद करने पर,... स्वरूप के भी भेद हैं। पारिणामिकभाव—जीवत्वपारिणामिकभाव, भव्यत्वपारिणामिकभाव, अभव्यत्वपारिणामिकभाव। पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं न ! स्वभावभाव के तीन भेद हैं। देखो ! समझ में आया ? **उपाधि के भेद से और स्वरूप के भेद से भेद करने पर, उन्हें अनेक प्रकारों में विस्तृत किया जाता है।** अनेक प्रकार के विस्तार से उनकी अस्ति समझायी जाती है। नीचे अर्थ है।

कर्मोपाधि की चार प्रकार की दशा। कर्म-उपाधि की, हों! पर की। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक यह पर की दशा। जड़ में होनेवाली दशा, जिनका निमित्त है—ऐसे चार भाव हैं। जिसमें कर्मोपाधिरूप निमित्त बिल्कुल नहीं, मात्र द्रव्यस्वभाव ही जिसका कारण है, ऐसा एक पारिणामिकभाव है। कहो, समझ में आया ?

यह समझकर चार पर्याय मुझसे है, मैं कर्ता हूँ, और द्रव्यस्वभाव त्रिकाल है, ऐसा जानकर द्रव्यस्वभाव की दृष्टि आश्रय ध्रुव का करना, वह इसका तात्पर्य और सार है। समझ में आया ? पर की बुद्धि तो छोड़, क्योंकि पर तुझमें है नहीं। परन्तु एक समय की पर्याय चार है, उसकी बुद्धि छोड़, क्योंकि स्थिर नहीं और कायम की चीज़ नहीं। कायम चीज़ तो वस्तुस्वरूप अस्ति-मौजूदगी त्रिकाल, वहाँ दृष्टि लगा, वहाँ श्रद्धा का पसार कर। ज्ञेय बनाकर ज्ञान की पर्याय वहाँ जोड़ दे। ऐसा परमपारिणामिकस्वभाव, वही एक अंगीकार और आश्रय करनेयोग्य है। उसका यह तात्पर्य है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - ५७

कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं।

सो तस्स तेण कत्ता हवदि त्ति य सासणे पठिदं॥५७॥

कर्म वेदयमानो जीवो भावं करोति यादशकम्।

स तस्य तेन कर्ता भवतीति च शासने पठितम्॥५७॥

जीवस्यौदयिकादिभावानां कर्तृत्वप्रकारोक्तिरियम् ।

जीवेन हि द्रव्यकर्म व्यवहारनयेनानुभूयते; तच्चानुभूयमानं जीवभावनां निमित्तमात्रमुपवर्णयते। तस्मिन्निमित्तमात्रभूते जीवेन कर्तृभूतेनात्मनः कर्मभूतो भावः क्रियते । अमुना यो येन प्रकारेण जीवेन भावः क्रियते, स जीवस्तस्य भावस्य तेन प्रकारेण कर्ता भवतीति ॥५७॥

पुद्गल कर्म को वेदते आत्म करे जिस भाव को ।

उस भाव का वह जीव कर्ता कहा जिनवर देव ने ॥५७॥

अन्वयार्थ :- [कर्म वेदयमानः] कर्म को वेदता हुआ [जीवः] जीव [यादृश-कम् भावं] जैसे भाव को [करोति] करता है, [तस्य] उस भाव का [तेन] उस प्रकार से [सः] वह [कर्ता भवति] कर्ता है- [इति च] ऐसा [शासने पठितम्] शासन में कहा है।

टीका:-यह, जीव के औदयिकादि भावों के कर्तृत्वप्रकार का कथन है।

जीव द्वारा द्रव्यकर्म व्यवहारनय से अनुभव में आता है; और वह अनुभव में आता हुआ जीवभावों का निमित्तमात्र कहलाता है। वह (द्रव्यकर्म) निमित्तमात्र होने से, जीव द्वारा कर्तारूप से अपना कर्मरूप (कार्यरूप) भाव किया जाता है। इसलिए जो भाव जिस प्रकार से जीव द्वारा किया जाता है, उस भाव का उस प्रकार से वह जीव कर्ता है॥५७॥

प्रवचन-५६, गाथा-५७-५८, पौष कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक -०२-०२-१९७०

५७ वीं गाथा / पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य...

कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं।

सो तस्स तेण कत्ता हवदि त्ति य सासणे पठिदं॥५७॥

(पुद्गल करम को वेदते आतम करे जिस भाव को।
उस भाव का वह जीव कर्ता कहा जिनवर देव ने ॥५७॥)

गुजराती है। पर्यायदृष्टि से चार भाव हैं। उसमें पर का कुछ नहीं है। तथा आत्मा पर में कुछ करता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। अपनी वर्तमान पर्याय उदय आदि जो होती है, उस पर्याय को करता है। दूसरे को करता नहीं तथा दूसरे से उसमें कुछ मदद मिलकर हो नहीं। ऐसा उसका अस्तित्व स्वभाव द्रव्य और पर्याय का अस्तित्व सिद्ध करते हैं।

टीका :— यह, जीव के औदयिकादि भावों के... उदय अर्थात् मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि भावों का कर्तृत्व प्रकार का कथन है। ऐसे उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक इस पर्याय का कर्ता परिणमनेवाला स्वयं जीव है। जीव द्वारा द्रव्यकर्म व्यवहारनय से अनुभव में आता है;... लो! अर्थात् कि द्रव्यकर्म निमित्त है तो निमित्त को व्यवहारनय अनुभव करता है अर्थात् निश्चय से तो स्वयं को अनुभव करता है परन्तु निमित्त है, इसलिए उसे व्यवहार से अनुभव करता है, ऐसा कहा जाता है। गजब! भाई यह!

जीव द्वारा, जड़कर्म जो पर है, निमित्त है, संयोगी है, उसे व्यवहारनय से अर्थात् निमित्त की अपेक्षा से अनुभव में आता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। वास्तव में तो उसे अनुभव नहीं करता। अपने भाव को अनुभव करता है, उस काल में निमित्त है, इसलिए उसे अनुभव करता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। और वह अनुभव में आता हुआ जीवभावों का निमित्तमात्र कहलाता है। कौन? द्रव्यकर्म। वह अनुभव में आता हुआ जीवभावों का... जीवों की पुण्य-पाप की विकारी दशा या उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक-धर्म की दशा उसमें निमित्तमात्र होने से,... जड़कर्म निमित्त, संयोग कर्मरूप से; निमित्तमात्र होने से कहा।

जीव द्वारा कर्तारूप से अपना कर्मरूप (कार्यरूप) भाव किया जाता है। निमित्तमात्र होने से जीव द्वारा, अपनी पर्याय कर्तारूप से अपना कार्यरूप भाव किया जाता है। आत्मा अपनी अवस्था का कर्ता है। उसमें कर्म तो निमित्तमात्र है। इसलिए जो भाव जिस प्रकार से... यहाँ वजन है, जो भाव पर्याय में जिस प्रकार से रागादि, उपशम

आदि, क्षयोपशम आदि, क्षायिक आदि जिस प्रकार से जीव द्वारा किया जाता है, उस भाव का उस प्रकार से वह जीव कर्ता है। बहुत सिद्धान्त !

जिस प्रकार से अपनी पर्याय को जीव चाहे तो विकार करे, चाहे तो धर्म पर्याय करे, वह अपना जिस प्रकार का वहाँ भाव है, उस प्रकार से स्वयं अपने पुरुषार्थ से करे। ऐसा 'शासने पठितम्' मूल श्लोक में ऐसा है। ऐसा जैनशासन परमागम में ऐसा कहा गया है। देखो ! आचार्यों ने उसमें शब्द रखा है। जैनशासन अर्थात् परमागम वीतराग की वाणी। ५७ गाथा, चौथा पद है।

'इति शासने पठितम्' दो सिद्धान्त। कि जिस प्रकार का भाव, कर्म का उदय हो, उस प्रकार का करे, ऐसा इसमें नहीं लिया। जिस प्रकार का भाव करे, 'जारिसयं', 'जारिसयं' है न। जिस प्रकार का (भाव) करे, उसे वह परिणमे और कर्ता होता है। ऐसा परमागम में जैनशासन में वीतराग-वाणी में यह कहा गया है। यह सब कर्म... कर्म करते हैं न, वह कर्म निमित्त सामने रखा है न। समझ में आया ? जिनशासन में ऐसा कहा है। शासन में वीतरागमार्ग में ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं। कोई कहे कि वीतरागमार्ग में तो कर्म से आत्मा को जितने प्रमाण में कर्म का उदय हो, उतने प्रमाण में विकार करना पड़ता है। जितने प्रमाण में कर्म का क्षयोपशम हो, उतने प्रमाण में आत्मा की पर्याय खिलती है। ऐसा जैनशासन में नहीं कहा गया। समझ में आया ? देखो ! कैसी गाथा रखी है।

'कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं।' जैसा भाव जो अपनी विकारी, अविकारी, धर्मपर्याय या अधर्मपर्याय जिस प्रकार की करे, उसका वह कर्ता होता है, ऐसा वीतराग परमागम सिद्धान्त में कहा गया है। जहाँ वह व्यवहार से कथन आवे, वहाँ उसे चिपटता है। ऐसे भी है या नहीं ? परन्तु वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। समझ में आया ? लोग कहे, जितने प्रमाण में कर्म का उदय आवे, उस प्रमाण विकार करना पड़ता है। डिग्री टू डिग्री लो, यह और ठीक किया। डिग्री टू डिग्री, इसके बहुत वर्ष पहले बड़ा लेख लिखा था। एक व्यक्ति ने लेख लिखा और एक दूसरे को बताया। तो वह कहे अभी रख छोड़ो। समझ में आया ? नाम का कुछ नहीं। एक व्यक्ति ने लेख

लिखा डिग्री टू डिग्री का। फिर दूसरे किसी पण्डित को पढ़ाया। रख छोड़ो। अच्छा है। सेठी! परन्तु सेठी को कुछ खबर नहीं होगी। सिर पर जो कहे वह हाँ। ऐई सेठ!

मुमुक्षु : परन्तु जानता न हो तो ऐसा कह न कि मैं नहीं जानता। हाँ किसकी करता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कदाचित् वह कहता हो तो वह कहीं खोटा कहता होगा ? ऐसा। कर्म तो उदय प्रमाण होगा। भाई! देखो! अपने कुछ करने का भाव है ? विकार करने का अपने को भाव होगा ? दुःखी होने का भाव होगा ? कर्म का उदय आवे, तत्प्रमाण अपने को होता है। यह बात एकदम झूठ है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

इस गाथा में वीतराग शासन का स्वतन्त्र सत्। विकारी-अविकारी पर्याय समय-समय में जीव अपने द्वारा करता है। बस, जैसा भाव, वैसी (जीव की) पुरुषार्थ की गति उतना काम करे। आहा! समझ में आया ? (संवत्) १९७१ में यही ध्वनि पहले आयी थी। लो! दोनों के लिये भगवती शतक का पहला उद्देशक और तीसरा उद्देशक। ७१ (१९७१)। ५६ वर्ष हुए, ५५। यह उसमें है तो ऐसा। खींचकर निकाला नहीं था परन्तु उसमें था। उन लोगों को इतना ख्याल नहीं। जैसा भाव जीव करे, वह स्वयं से करता है; पर से नहीं। अपना पुरुषार्थ... यह शब्द पड़े हैं। उससे विकार करे, उसे उपशम करे वह अपने में उपशान्त मोह पुरुषार्थ वीर्य से उपशम करता है। वह यह बात है।

यह कर्म का जैन में बहुत चलता है। जैन तो कर्म को माननेवाले। फिर कर्म प्रमाण हो, (ऐसा माने) लड़की और गाय, ले जाये वहाँ जाये। उसी प्रकार जैसा कर्म उदय आवे, वैसे आत्मा में हो, (ऐसा माने)। ऐसा होगा या नहीं ? ऐई मनीष! कर्म प्रमाण आत्मा में होता है या नहीं ?

मुमुक्षु : नहीं। कर्म भिन्न और आत्मा भी भिन्न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हं.... कर्म भिन्न और आत्मा भी भिन्न। आत्मा करे, वह हो कहीं कर्म करे वह हो ? लड़के सीखे तो सही! समझ में आया ?

वहाँ दो शब्द पड़े हैं। 'कम्मं वेदयमाणो...' कर्म के निमित्त को वेदता हुआ

अर्थात् अपने पुरुषार्थ से अपनी पर्याय को वेदता हुआ। 'जीवो भावं करेदि जारिसयं...' जिस प्रकार का भाव उदय, उपशम, क्षायिक, क्षयोपशम जिस प्रकार से करे 'सो तस्स तेण कत्ता...' उस भाव का वह परिणमनेवाला और कर्ता। 'हवदि त्ति य सासणे पठिदं...' ऐसा परमागम में भगवान का यह उपदेश है। कहो, समझ में आया? 'सासणे पठिदं' है न। शासन में कहा है। परमागम में ऐसा कहा है। गोम्मटसार में ऐसा भले कहा हो। ज्ञानावरणीय के उदय से ज्ञान आवृत्त होता है। दर्शनमोह के कारण मिथ्यात्व होता है, ये सब निमित्त के कथन हैं। परन्तु परमागम का सिद्धान्त तो यह है कि जैसा अपना पुरुषार्थ वर्तमान में उल्टा होना, वह स्वयं अपने से करता है। निमित्त उसे कराता है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया?

है गाथा, देखो! यह ५७वीं (गाथा) बहुत ऊँची गाथा है। 'सासणे पठिदं...' 'जारिसयं भावं करेदि कत्ता...' ऐसा है न। 'सो तस्स तेण कत्ता' ऊपर 'करेदि' शब्द है न! आहाहा! अभी तो शास्त्र के अर्थ भी ठीक से करना नहीं आते। अर्थ करना नहीं आते और फिर अपनी कल्पना से अर्थ करे तो अन्दर अर्थ के अनर्थ हो जाते हैं। क्या है? सेठी!

यहाँ पंचास्तिकाय अपने अस्तित्व की (बात करते हैं)। यह अस्तिकाय का अधिकार है न। जीवास्तिकाय, तो जीव द्रव्य-गुण से तो अस्ति है, परन्तु पर्याय में जैसा विकार-अविकार है, उसकी अस्ति स्वयं से है और अपना कर्ता स्वयं है, ऐसा सिद्ध करते हैं। कर्म से कुछ भी किञ्चित् आत्मा में होता है, ऐसा नहीं है। तो वे लोग कहते हैं कि निमित्त को अकिञ्चित्कर कहते हो तो निमित्त उड़ जाता है, ऐसा कहते हैं। निमित्त हो, परन्तु वह कर्ता नहीं। निमित्त उसे कर्ता कहा जाता हो, कहेंगे। निमित्त कर्ता कहा जाता है परन्तु वह कर्ता नहीं है, उसे कहना, वह निमित्त का ज्ञान कराने की बात है।

जीव द्वारा कर्तारूप... देखो! भाषा ऐसी है। जीव द्वारा, ऐसा। कर्म द्वारा और पर द्वारा, ऐसा नहीं, पर तो निमित्त है। **जीव द्वारा कर्तारूप से अपना कर्मरूप (कार्यरूप) भाव किया जाता है। इसलिए जो भाव अर्थात् पर्याय...** जिस प्रकार से... जिस प्रकार से जीव द्वारा किया जाता है, देखो! फिर से.... दो बार आया। समझ में आया?

‘जीवभावानां निमित्तमात्रमुपवर्णयते । तस्मिन्निमित्तमात्रभूते जीवेन कर्तृभूतेनात्मनः कर्मभूतो भावः क्रियते ॥’ ऐसा शासन में । इसमें नहीं परन्तु टीका में है न ! मूल पाठ में है, मूल पाठ में है । फिर इसका अर्थ हो गया न, भगवान ने ऐसा कहा है । शास्त्र में ऐसा कहा है । परमेश्वर ने शासन में ऐसा कहा है । कहो, समझ में आया ? क्योंकि भिन्न चीज़ वह भिन्न को कुछ करे नहीं । उसी प्रकार भिन्न (चीज़) वह भिन्न चीज़ को कुछ स्पर्शती और छूती नहीं । स्पर्शती नहीं तो कुछ करती नहीं, हों ! निमित्तरूप । निमित्त को वेदता हुआ, ऐसा भी वहाँ कहने में आया । ‘कम्मं वेदयमाणो...’ ऐसा कहा न, लो ! पाठ में भी है और टीका में भी है । ‘कम्मं वेदयमाणो...’ है न द्रव्यकर्म व्यवहार से अनुभव में आता है । ऐसा आया न ? निमित्त है न, निमित्त । समझ में आया ?

तेरा संसार तुझे जैसा खड़ा करना हो, वैसा खड़ा कर । और तुझे धर्म की पर्याय भी जैसी करनी हो, वैसी कर । तू स्वतन्त्र है । अनादि-अनन्त में स्वतन्त्र पर्याय का कर्ता तू है । दूसरी चीज़ तो निमित्तमात्र, उपस्थितिमात्र है । वह उपस्थिति तुझे कुछ करती नहीं । यह बहुत ही गड़बड़ चलती है । लादुलालजी ! चलती है । साधु भी ऐसा कहते हैं नाम धराकर ।

देखो भाई ! कर्म से होता है, कर्म से होता है । अपने ईश्वर, हें ? ऐसा ही । कर्म से होता है, कर्म से होता है । भैया ! आपने को क्या दुःखी होने का भाव है ? कर्म कराता है । परन्तु कर्म करने का निमित्तभाव तो तेरा था, तब तो कर्म हुए हैं । और कर्म निमित्त हुए, तो तुझे भाव ऐसे हुए, तब निमित्त हुए न ? भाव न कर तो निमित्त कहाँ है ? भाव तो जैसे तुम करो, वैसे होते हैं । विकार भी जैसे जिस प्रकार से करे, उसका तू कर्ता होता है । धर्म की पर्याय भी आत्मा अपने स्वभाव के, आश्रय से शुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वीतरागी धर्म पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय वह जीव जिस प्रकार के पुरुषार्थ से करे, उस प्रकार की होती है । समझ में आया ?

भाई ! सम्यग्दर्शन तो दर्शनमोह का क्षय हो तो होता है । लो ! क्षायिक । उपशम भी दर्शन के उपशम पहले आया नहीं था ? उद्भव और अनुद्भव । ५६ (गाथा) में । आया या नहीं ? देखो ! जीव को भावों के उदय का... लो ! कर्मों का फलदानसमर्थरूप

से उद्भव, वह 'उदय' है; अनुद्भव, वह 'उपशम' है। देखो! यह तो निमित्त से ज्ञान कराया है। वस्तु तो यहाँ सिद्ध की है।

जिस भाव का वह कर्ता है, जीव द्वारा किया जाता है। दो बातें की हैं। देखो! ओहो! अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप, उसे भूलकर जितने प्रमाण में पुण्य-पाप का कर्ता होता है, उस प्रमाण में परिणमन करता है। किसी पर के कारण उसमें परिणमन होता है, ऐसा नहीं होता। ५७ (गाथा) हो गयी। लो! अब कहते हैं। देखो! यह आये और तुरन्त बात दूसरी। निमित्त हो, यह उसका अर्थ है।

कि परमपारिणामिक स्वभावभाव जैसी अपनी नित्य चीज़ है, उसमें वह पर्याय नहीं। तो पर्याय जो है, वह निमित्त से होती है, ऐसा कैसे? शुद्ध पारिणामिकभाव पर्याय से भिन्न है, ऐसा बतलाने के लिये चार भाव में तो कर्म से, निमित्त से कर्म के निमित्त से होता है, ऐसा कहा। उसमें पाठ है, देखो!

गाथा - ५८

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।
खड्दयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं॥५८॥

कर्मणा विनोदयो जीवस्य न विद्यत उपशमो वा।

क्षायिकः क्षायोपशमिकस्तस्माद्भावस्तु कर्मकृतः॥५८॥

द्रव्यकर्मणां निमित्तमात्रत्वेनौदयिकादिभावकर्तृत्वमत्रोक्तम् ।

न खलु कर्मणा विना जीवस्योदयोपशमौ क्षयक्षयोपशमावपि विद्येते; ततः क्षायिकक्षायोप-
शमिकश्चौदयिकौपशमिकश्च भावः कर्मकृतोऽनुमन्तव्यः । पारिणामिकस्त्वनादिनिधनो निरुपाधिः
स्वाभाविक एव । क्षायिकस्तु स्वभावव्यक्तिरूपत्वादनन्तोऽपि कर्मणः क्षयेणोत्पद्यमान-
त्वात्सादिरिति कर्मकृत एवोक्तः । औपशमिकस्तु कर्मणामुपशमे समुत्पद्यमानत्वादानुपशमे
समुच्छिद्यमानत्वात् कर्मकृत एवेति ।

अथवा उदयोपशमक्षयक्षयोपशमलक्षणाश्चतस्रो द्रव्यकर्मणामेवावस्थाः, न पुनः
परिणामलक्षणैकावस्थस्य जीवस्य; तत उदयादिसञ्जातानामात्मनो भावानां निमित्तमात्रभूत
तथाविधावस्थत्वेन स्वयं परिणमनाद्रव्यकर्मापि व्यवहारनयेनात्मनो भावानां कर्तृत्वमापद्यत
इति ॥५८॥

पुद्गलकरम विन जीव के उदयादि भाव होते नहीं।

इससे करम कृत कहा उनको वे जीव के निजभाव हैं॥५८॥

अन्वयार्थ :- [कर्मणा विना] कर्म बिना [जीवस्य] जीव को [उदयः] उदय,
[उपशमः] उपशम, [क्षायिकः] क्षायिक [वा] अथवा [क्षायोपशमिकः] क्षायोपशमिक
[न विद्यते] नहीं होता, [तस्मात् तु] इसलिए [भावः] भाव (-चतुर्विध जीवभाव)
[कर्मकृतः] कर्मकृत हैं।

टीका:-यहाँ, (औदयिकादि भावों के) निमित्तमात्र रूप से द्रव्यकर्माँ को
औदयिकादि भावों का कर्तापना कहा है।

(एक प्रकार से व्याख्या करने पर-) कर्म के बिना जीव को उदय-उपशम तथा
क्षय-क्षयोपशम नहीं होते (अर्थात् द्रव्यकर्म के बिना जीव को औदयिकादि चार भाव
नहीं होते); इसलिए क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक या औपशमिकभाव कर्मकृत

सम्मत करना। पारिणामिकभाव तो अनादि-अनन्त, *निरुपाधि, स्वाभाविक ही हैं। (औदयिक और क्षायोपशमिकभाव कर्म के बिना नहीं होते, इसलिए कर्मकृत कहे जा सकते हैं-यह बात तो स्पष्ट समझ में आ सकती है; क्षायिक और औपशमिकभावों के सम्बन्ध में निम्नोक्तानुसार स्पष्टता की जाती है) क्षायिकभाव, यद्यपि स्वभाव की व्यक्तिरूप (-प्रगटारूप) होने से अनन्त (-अन्त रहित) है तथापि, कर्मक्षय द्वारा उत्पन्न होने के कारण सादि है, इसलिए कर्मकृत ही कहा गया है। औपशमिकभाव कर्म के उपशम से उत्पन्न होने के कारण तथा अनुपशम से नष्ट होने के कारण कर्मकृत ही है। (इस प्रकार औदयिकादि चार भावों को कर्मकृत सम्मत करना।)

अथवा (दूसरे प्रकार से व्याख्या करने पर)-उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमस्वरूप चार (अवस्थाएँ) द्रव्यकर्म की ही अवस्थाएँ हैं, परिणामस्वरूप एक अवस्थावाले जीव की नहीं है (अर्थात् उदय आदि अवस्थाएँ द्रव्यकर्म ही है, 'परिणाम' जिसका स्वरूप है, ऐसी एक अवस्थारूप से अवस्थित जीव की-पारिणामिकभावरूप स्थित जीव की-वे चार अवस्थाएँ नहीं हैं); इसलिए उदयादिक द्वारा उत्पन्न होनेवाले आत्मा के भावों को निमित्तमात्रभूत ऐसी उस प्रकार की अवस्थाओंरूप (द्रव्यकर्म) स्वयं परिणमित होने के कारण द्रव्यकर्म भी व्यवहारनय से आत्मा के भावों के कर्तृत्व को प्राप्त होता है॥५८॥

गाथा - ५८ पर प्रवचन

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।

खड्दयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं॥५८॥

(पुद्गलकरम विन जीव के उदयादि भाव होते नहीं।

इससे करम कृत कहा उनको वे जीव के निजभाव हैं॥५८॥)

अब इसकी टीका। देखो! टीका। निमित्तमात्रभाव है। देखो! 'निमित्तमात्रत्वेद-नोदयिकादि भावकर्तृत्वमत्रोक्तम्' देखो! संस्कृत में पहली लाईन है।

* निरुपाधि=उपाधि रहित; औपाधिक न हो ऐसा। (जीव का पारिणामिकभाव सर्व कर्मोपाधि से निरपेक्ष होने के कारण निरुपाधि है।)

यहाँ, (औदयिकादि भावों के) निमित्तमात्ररूप से द्रव्यकर्मों को औदयिकादि भावों का कर्तापना कहा है। उपादान से तो स्वयं से कर्ता होता है। निमित्त से कर्ता है, ऐसा कहने में आता है। औदयिकादि भावों के, चारों भाव, हों। समकित, क्षायिक समकित, उपशमभाव, विकारभाव, उसमें निमित्तमात्ररूप से द्रव्यकर्मों को औदयिकादि अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से कर्ता कहा गया है। क्योंकि कर्म नजदीक हैं, एकक्षेत्रावगाह अनुपचरित असद्भूत है। उसमें है नहीं। अनुपचरित झूठे व्यवहारनय से कर्ता कहा गया है, ऐसा है। समझ में आया ?

तो कहा क्यों ? कि निमित्त का ज्ञान कराने के लिये। निमित्त चीज़ है। असद्भूत-व्यवहारनय से। हें ?

मुमुक्षु : निमित्त का ज्ञान करावे, ऐसा लिखा क्यों ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया है, व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। उसमें आया है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : परन्तु स्पष्ट लिख दिया होता तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु स्पष्ट ही लिखा है न! आँख से सूझे नहीं तो क्या करे ? आँख में क्या कहलाता है वह ? मोतिया हो, हें ? पीलिया हो। यह वह बेल हो। अब आँख से सूझे नहीं तो क्या करे ? स्पष्ट लिखा है देखो इसमें! यह अंक यह है। आहाहा! गजब हमारे यह चर्चा बहुत चलती थी। दामनगर-दामोदर सेठ था न! गृहस्थ व्यक्ति। बहुत पैसेवाला न, उस समय पैसावाला कोई नहीं था। उसके पास पैसे थे। दस लाख रुपये, चालीस हजार की आमदनी। बड़ी इज्जत। पचास-साठ वर्ष। एक ही बात, कर्म प्रमाण होता है। कहा, कर्म प्रमाण जरा भी नहीं होता। तो ऐसा रखो महाराज! कि ५१ प्रतिशत पुरुषार्थ के रखो, ४९ प्रतिशत कर्म के रखो। ऐसा कहता था।

तो तुम्हारे पण्डित भी यहाँ (विक्रम संवत्) २००१ के वर्ष में आये थे। इन्दौर के पण्डित। तो कहे, पचास-पचास प्रतिशत रखो। पचास प्रतिशत कर्म के और पचास प्रतिशत अपने पुरुषार्थ के, उपादान के। तो और एक दूसरा पण्डित कहता है कि यह रहने दो। हाँ करना। यह मार डाला तुम्हारे। पचास-पचास प्रतिशत कैसे? पर थोड़ा

एक काम करावे, दूसरा थोड़ा काम करे। तो दोनों मिलकर काम होता है? दो चीज़ कभी एक होती नहीं। तो दो कहाँ से करे?

टीका :- यहाँ, (औदयिकादि भावों के) निमित्तमात्ररूप से... निमित्तमात्र यह चार (भाव) में, हों! पारिणामिकभाव की यहाँ बात नहीं। द्रव्यकर्मों को औदयिकादि भावों का कर्तापना कहा है। पाठ में चार नाम हैं न! पाठ में शब्द भी चार हैं।

(एक प्रकार से व्याख्या करने पर-) दो प्रकार से करेंगे। कर्म के बिना जीव को उदय-उपशम तथा क्षय-क्षयोपशम नहीं होते... हैं ?

मुमुक्षु : स्पष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट है न, परन्तु किस नय से? पहले बात कह गये, वह झूठी करके यह कहते हैं?

असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय से। है जयसेनाचार्य में। यह तो जयसेनाचार्य की टीका में यह शब्द ही है। यह समझे न? है? देखा था। फिर और कहा झूठे नय से, शब्द आता है न, कहा उसमें? जयसेनाचार्य में। कितनी हुई यह? ५८, देखो ५८। 'जीवस्य उत्पादिकभाव तत्त्वस्य अनुपचरित असद्भूत' व्यवहार द्रव्यकर्म से—जयसेनाचार्य में है। पर का कहना वह तो झूठे नय से है। असद्भूत है। अपनी पर्याय में है नहीं, वह पर करे, वह तो असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। परन्तु नय का अर्थ समझे नहीं न, क्या करे झगड़ा... झगड़ा। यह लिखा, ऐसा कहे। परन्तु किस नय से लिखा है, ऐसा कहते हैं। नजदीक में है, अनुपचरित। क्षेत्रावगाह से है न! अपनी पर्याय में है नहीं, असद्भूत-व्यवहार निमित्त। असद्भूत अनुपचरित व्यवहार से कर्ता कहने में आया है। समझ में आया?

भारी झगड़ा! कर्म का झगड़ा तो जैन में इतना चलता है! तीनों सम्प्रदाय में (चलता है), एकान्त है... एकान्त है। तुम कर्म से नहीं मानते (तो) एकान्त है। कथंचित् कर्म से होता है, कथंचित् अपने से होता है तो स्याद्वाद होता है। कहो, समझ में आया? ऐसा है नहीं। कर्म से कहना, वह असद्भूतव्यवहारनय के निमित्त का ज्ञान कराने का कथन है। होता है, वह तो पहले ५७ में स्पष्टीकरण कर दिया। अपने में जितने

प्रमाण में अपना स्वभाव भूले, चूके, उतने प्रमाण में विकार स्वयं से होता है। जितने प्रमाण में स्वभाव का आश्रय ले, उतने प्रमाण में उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक धर्म की वीतरागी पर्याय स्वयं से स्वयं में होती है। कहो, समझ में आया ?

कर्म के बिना... यह असद्भूतव्यवहारनय का वचन। जीव को उदय-उपशम तथा क्षय-क्षयोपशम नहीं होते (अर्थात् द्रव्यकर्म के बिना जीव को औदयिकादि चार भाव नहीं होते); इसलिए क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक या औपशमिक भाव कर्मकृत सम्मत करना। ठीक। ऐ सेठी! आज्ञा दी, इसलिए कर्म निमित्त मानना। निमित्त है, ऐसा जानना। ऐसा कहते हैं। आहा! देखो! वापस अभी तो स्पष्टीकरण करेंगे, हों! उठा देंगे। पहले लिख डाला न ५७ में।

(गाथा) ५७ में बतलाया कि तेरी पर्याय का तू कर्ता है। पर की कौन ? यह ५८ में बतलायेंगे। फिर निमित्त को उड़ा दिया। ऐसा होगा ? निमित्त का ज्ञान, निमित्त दूसरी चीज़ है या नहीं ? दूसरी चीज़ है, उसकी अस्ति-मौजूदगी का ज्ञान कराते हैं। समझ में आया ? पर से नहीं होता परन्तु दूसरी चीज़ है या नहीं ? उसका ज्ञान कराते हैं।

पारिणामिकभाव तो अनादि-अनन्त... आहाहा! देखो! भगवान आत्मा चार पर्याय से पार। चार पर्याय विकारी—उदयभाव। हैं! कितने बोल हैं उदय के ? इक्कीस, क्षयोपशम के अठारह, क्षायिक के नौ, उपशम के दो। यह तो समकित और चारित्र दो। सब पर्याय, पर्याय वर्तमान व्यवहारनय। पर्याय कहो या व्यवहारनय कहो। पर्यायनय कहो या व्यवहारनय कहो। उसकी पर्याय का अस्तित्व एक समय का है। समझ में आया ? व्यवहारनय से-पर्यायनय से उसमें है।

निश्चयपारिणामिकभाव त्रिकाल द्रव्यार्थिक दृष्टि से उसमें वे चार पर्यायें हैं ही नहीं। समझ में आया ? परन्तु दोनों किस प्रकार है ? पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। दोनों कहना है न, दोनों वस्तु है या नहीं ? समझ में आया ? ऐसा भी कौन निर्णय करे ? बातें करे, मेहनत करे। पूजा-भक्ति करना और शास्त्र की भक्ति करना। चलो, पैसा दे देना, जाओ। पाँच हजार हो तो सागर जाते-जाते ग्यारह हजार कर देना। चलो भाई! ग्यारह हजार। ऐई सेठ! (संवत्) २०१३ के वर्ष में हुआ था न, है न, सम्मदशिखर। भाई! तुम

थे न ? पहले कुछ तीन हजार कहे थे। विद्यालय था या कुछ था। तीन हजार, फिर कहे कि भाई! ग्यारह हजार होंगे। सागर जाते-जाते ग्यारह हजार कर देना। ठीक भाई चलो। उसमें खबर भी कुछ पड़े, दिया, लिया। क्या दिया, लिया ? वह तो विकल्प है। देने-लेने की क्रिया, वह तो पर की है। अपने से होती नहीं और अपने से वह होती नहीं। अपने में से होती नहीं परन्तु अपने में भी होती नहीं। आहाहा! गजब वस्तु!

सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा के अतिरिक्त कहीं इस वस्तु का शरण नहीं है। सर्वज्ञ वीतराग अपना स्वभाव। यह वह कहते हैं। देखो! पारिणामिकभाव, जिसमें किसी निमित्त की अस्ति या निमित्त का अभाव, ऐसी अपेक्षा नहीं, ऐसा भगवान आत्मा का अनादि-अनन्त स्वभाव है। है... है... है... है... खण्ड-खण्ड नहीं। पर्याय तो खण्ड-खण्ड है। समझ में आया ? क्षायिकभाव भी सादि-अनन्त खण्ड हुआ न ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : स्पष्ट कहते है निमित्त बिना होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निमित्त बिना होता नहीं। निमित्त है। निमित्त को तो पहले सिद्ध करते हैं। उपादान से हुआ तो पहले सिद्ध किया। तेरा भाव तेरे उपादान पुरुषार्थ से उल्टा-सुल्टा तेरे द्वारा,... तेरे द्वारा तुझमें कर्ता होकर परिणमन होता है। अब तो बात सिद्ध कर दी। अब निमित्त का ज्ञान करा दिया। दूसरी चीज़ है या नहीं ? इसका अर्थ दूसरी चीज़ है। ऐई शान्तिभाई! क्या करना इसमें ? झगड़ा। करना कहते हैं न!

पारिणामिकभाव भगवान आत्मा जहाँ दृष्टि करनी है, उस चीज़ में तो कोई निमित्त का सद्भाव या निमित्त का अभाव है नहीं। वह तो भगवान पूर्णानन्दम् भाव। ओहो! एकरूप ध्रुवस्वरूप। वह तो पर्याय में निमित्त का सम्बन्ध कहने में आया है। द्रव्य में कोई निमित्त का सम्बन्ध है ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया ? निमित्त का सम्बन्ध भी पर्याय के साथ है।

राग-विकार करे तो निमित्त कहा जाता है। विकार का अभाव करे तो निमित्त का भी अभाव हुआ, ऐसा निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध पर्याय के साथ है, व्यवहार (है)। वह कहे, नहीं, वह निमित्त-निमित्तसम्बन्ध व्यवहार नहीं कहलाता, निश्चय कहलाता है।

ऐई, एक लेख लिखता है। लिखता है न? बड़ा लेख लिखा ही करता है। अरे! क्या करे? समय-समय की पर्याय एक समय की। विकार हो या अविकार हो। वास्तव में तो सत् अहेतुक है। निश्चय से तो अहेतुक है। पर तो हेतु नहीं, परन्तु द्रव्य-गुण भी हेतु नहीं। ऐसी चीज़ है। एक समय का विकार हो या एक समय की धर्म की स्वआश्रित पर्याय हो। परमभाव निश्चय से देखो तो उस भाव में कोई हेतु ही नहीं है। पर का हेतु तो नहीं परन्तु स्वद्रव्य-गुण का भी हेतु नहीं। ऐसी पर्याय की स्वतन्त्रता का भगवान का यहाँ तो ढिंढोरा है। समझ में आया?

पारिणामिक भाव तो... त्रिकाल स्वभाव तो, जिसमें निमित्त-निमित्तसम्बन्ध है नहीं, ऐसा भगवान आत्मा का भाव तो **अनादि-अनन्त है...** वह तो अखण्ड है, खण्ड नहीं। क्षायिकभाव तो खण्ड हुआ सादि-अनन्त। उदय, उपशम, क्षयोपशम को सादि-सान्त कहा है। वैसे तो अनादि का उदय था परन्तु उदय की पर्याय भिन्न-भिन्न समय-समय में होती है, इस कारण सादि-सान्त कहा है। उपशम, क्षयोपशम को भी सादि-सान्त कहा है। एक समय की ही पर्याय गिनकर भिन्न-भिन्न होती है, इसलिए सादि-सान्त कहा। क्षायिक सादि-अनन्त, परन्तु होती है तो एक समय की पर्याय न। सादि-अनन्त एक समय में कहाँ होती है? समझ में आया? उस पर्याय में कर्म के निमित्त का अभाव इतना कहने में आता है। वस्तु में कोई निमित्त-निमित्तसम्बन्ध है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वहाँ नजर कर न अब! यहाँ कहते हैं। पर्याय में भले तुझसे हो, निमित्त भले हो। वह सब व्यवहार है। पर्याय स्वयं व्यवहार है। निमित्त-निमित्तसम्बन्ध तो और व्यवहार का... ले और वह कहे, व्यवहार नहीं। ऐई पण्डितजी! बड़ा लेख लिखता है। मोतीलालजी! क्या आता है? निश्चय अर्थात् निमित्त-निमित्तसम्बन्ध है, अस्ति धराता है, ऐसा। परन्तु निमित्त-निमित्त दो हुए, इसलिए व्यवहार हो गया। बात समाप्त हो गयी। यहाँ तो एक समय की पर्याय को व्यवहार कहा है, फिर पर का प्रश्न क्या? उत्पाद-व्यय जो द्रव्य में होते हैं, सिद्ध की पर्याय, उत्पाद-व्यय व्यवहार। व्यवहार अर्थात् भेद हो गया। त्रिकाल द्रव्य में एक अंश भेद हो गया। अंश पर्यायनय का विषय हुआ-व्यवहारनय का

विषय (हुआ)। वास्तव में तो अभूतार्थ है। अपने द्रव्य के भूतार्थपने की अपेक्षा से एक समय की पर्याय, केवलज्ञान भी सद्भूतव्यवहार का विषय स्वभाव की अपेक्षा से अभूतार्थ। भारी कथन जगत के। समझ में आया ?

समझना पड़ेगा, भाई! यह तो जैनशासन है। वीतरागमार्ग ऐसा गम्भीर है। परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव जिन्हें सौ-सौ इन्द्र, अर्धलोक के स्वामी सौधर्म और ईशान इन्द्र, जैसे उसकी माँ के पास ऐसे गडुलिया, तुम्हारे गडुलिया को क्या कहते हैं ? क्या कहते हैं ? पिल्ला। जैसे दूध पीता है न; उसी प्रकार भगवान की वाणी, अर्धलोक के स्वामी समवसरण में बैठे हों। ऐसी विनय, नरमाई। ऐसे भगवान सौ इन्द्रों के पूज्य प्रभु, उनके समवसरण में सिंह, बाघ, रीछ, भालू, सर्प, बड़े नाग व्याख्यान में आते हैं। आहाहा! समझ में आया ? सब समुदाय समवसरण में आता है। आहाहा! काले नाग जहरीले हों, वे भी कितने ही वहाँ आते हैं। बन्दर, भोला बन्दर हो न जैसे। भोला बालक होता है न, बहुत भोला बालक, ऐसे उसकी माँ सामुं किया करे। उसी प्रकार यह भद्रिक जीव धर्मात्मा की वाणी सुनने आते हैं। बापू! वहाँ अमृत के सागर उछलते हैं। समझ में आया ?

उसके लेने वाले भी वहवाया भी ऐसे होते हैं। वहवाया समझते हो न ? नहीं। यह किसान होते हैं, न किसान ? उसका काम करनेवाला होता है लुहार, सुतार, वे सब वहवाया कहलाते हैं। वे तो बारह महीने बहुत अनाज पके तो बहुत दे। दो कलशी अनाज पके, उसमें कहीं पाँच मण दे कुछ उसे ? हैं ? जिसके घर में अढळक अनाज— ढेरों अनाज। उसके काम करनेवाले को भी ढेरों ले जाओ। उठाओ बाजरा चाहिए हो तो ले जाओ। तिल चाहिए हो तो भी ले जाओ। आहाहा!

भगवान की वाणी सुननेवाले उनके वहवाया ऐसे कि अलौकिक बात ले जाये। ऐसे भगवान की वाणी में ऐसा आया है, लो! देखो! भगवान! तेरे द्रव्यस्वभाव में पर का तो कुछ सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया ? वह सम्बन्ध नहीं, ऐसी चीज़ पर दृष्टि दे न! तेरे कल्याण के पन्थ का राग उसमें से प्रगट होगा। समझ में आया ?

देखो न, महावीर भगवान का जीव दसवें भव में सिंह था, हिरण को मारता था।

ऊपर से मुनि उतरते हैं। भावलिंगी सन्त। ऐसे सामने (मुनि को आते हुए देखता है और विचार करता है) अरे! यह क्या? हम सिंह के सामने आने पर प्राणी भी दूर भागते हैं, यह ऊपर चलते हुए नीचे उतरते हैं। हमारे सामने दोनों आये! गजब किया! समझे? सिंह हिरण को फाड़कर खाता था। अरे सिंह! दसवें भव में तू तीन लोक का नाथ महावीर तीर्थकर होनेवाला है। आहाहा! ऐसा सुनता है, हों! देखो न वाणी! आहाहा! तीन लोक का नाथ जिनकी दिव्यध्वनि खिरेगी। उन्हें यह मुनि सुनाते हैं। हैं? आहाहा! ...हिरण रह गया है। ऐसे, थाप मारा हुआ। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थकरदेव साक्षात् दसवें भव में तू। यह? यह क्या करता है? बात गुल्लाँट खा गयी। समझ में आया?

अपने द्रव्यस्वभाव को पकड़ लिया। वाणी का विकल्प और वाणी का निमित्त-निमित्त सम्बन्ध छोड़ दिया। आहाहा! चैतन्य पारिणामिकभाव समता का सागर वीतराग स्वभाव त्रिकाली पारिणामिकभाव (पर) दृष्टि लगायी। आहाहा! कहाँ हिरण को मारने की क्रूरता और कहाँ वीतरागभाव की दृष्टि! हैं? वह तो स्वतन्त्र आत्मा है। पर्याय का कर्ता स्वतन्त्र है, उसे कोई रोक नहीं सकता।

कहो, आहाहा! आँख में आँसू बहते जाते हैं, हों! सिंह। अपने हरिभाई ने बहुत अच्छा रखा है। सिंह ऐसे नहीं परन्तु ऐसे रखा है। दो पैर नीचे और दो पैर ऐसे। वह तो शरीर की क्रिया है। आत्मा अन्दर गुल्लाँट खाता है। आहाहा! परम स्वभाव तेरा है। उसमें यह वाणी का सम्बन्ध से भी तू समझे नहीं, ऐसी चीज़ है। आहाहा! सेठी! आहाहा! ऐसा परमपारिणामिकभाव तेरे पास अनादि-अनन्त है, भगवान! तेरा स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! और निरुपाधि है। उपाधि रहित है, सोपाधिक नहीं हो ऐसा।

जीव का पारिणामिकभाव सर्व परभावों से निरपेक्ष है। यहाँ तो द्रव्य निरपेक्ष लेते हैं। आगे जाकर पर्याय निरपेक्ष लेंगे। विकार की पर्याय भी निरपेक्ष, व्यवहार की अपेक्षा बिना तुझसे होती है। भगवान तो निरपेक्ष वस्तु है, उसे पर्याय की अपेक्षा भी नहीं। समझ में आया?

निरुपाधि, स्वाभाविक ही है। आत्मा स्वाभाविक भाव है। भगवान! उसे कोई पर्याय के साथ निमित्त सम्बन्ध है, वह द्रव्य का सम्बन्ध ही नहीं। देखो! समझ में

आया ? (औदयिक और क्षायोपशमिकभाव कर्म के बिना नहीं होते, इसलिए कर्मकृत कहे जा सकते हैं—यह बात तो स्पष्ट समझ में आ सकती है;...) कहते हैं। स्पष्टीकरण करते हैं, कोष्ठक में स्पष्टीकरण, हों! उदय और क्षयोपशम, क्योंकि कर्म का निमित्त है और विकार स्वयं से होता है। क्षयोपशम में थोड़ा कर्म का निमित्त है, थोड़ा क्षयोपशम में। तो दोनों में तो ठीक। परन्तु क्षायिकभाव! भगवान आत्मा अन्तर में से पारिणामिकभाव उछलता है, प्रगट होता है। एक न्याय से पर्याय, पर्याय से होती है। अरे! गजब बात है न! यह द्रव्य भी पर्याय का कर्ता नहीं। भाई! आहाहा! यहाँ तो कर्ता सिद्ध करना है, हों! पर कर्ता नहीं और पर से होता नहीं। यहाँ इतना ही सिद्ध करके बात करनी है। परम सूक्ष्म से बात करे तो द्रव्य क्षायिक पर्याय का भी कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

ऐसा भगवान का स्वभावभाव, जिसमें अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत पड़ा है, ध्रुव। अतीन्द्रिय आनन्द ठसाठस ध्रुवरूप पड़ा है। उसे तो कोई पर के साथ निमित्त-निमित्तसम्बन्ध नहीं है। समझ में आया ? अरे! अपनी निधि की कभी भी सम्हाल नहीं की। समझ में आया ? राग-द्वेष की सम्हाल की, पर की सम्हाल (करता हूँ, ऐसा) तो माना है। कर सकता तो नहीं। आहाहा! आठ-आठ वर्ष के बालक जब वैराग्य पाते हैं, तब जंगल में चले जाते हैं, हों! हों, यह कैसा दिखाव होगा! आहाहा! अन्तर आनन्द की लहरें उठी होती है। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु लबालब भरा है। ऐसी अन्तर अनुभव दृष्टि हुई, आनन्द ही छलकता है। चले जायें! जंगल में चले जाते हैं। लो! आठ वर्ष के बालक, इतनी छोटी मोरपिच्छी, छोटा कमण्डल, शरीर छोटा। आहाहा! धन्य अवतार किया न! हें? वे उस परमपारिणामिकभाव को चिपटे हैं। उसके समक्ष उन्हें अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं लगती। समझ में आया ?

भगवान महाप्रभु निरुपाधि स्वाभाविकभाव त्रिकाल है। उसमें कोई निमित्त की अपेक्षा है ही नहीं। चार भाव से पर्याय में कर्ता तो उस समय की पर्याय का आत्मा स्वतन्त्र है। परन्तु निमित्तपना चार में कहने में आया है। तो कहते हैं कि क्षायिक भाव, यद्यपि स्वभाव की व्यक्तिरूप (-प्रगटतारूप) होने से... यद्यपि क्षायिकभाव जो है,

वह स्वभाव जो भगवान था, उसमें से शक्ति में से व्यक्ति हुई है। उसमें कोई पर की अपेक्षा नहीं है। देखो! स्वभाव की व्यक्तिरूप (-प्रगटारूप) होने से अनन्त (अन्त रहित) है... अनन्त अर्थात्? किसी काल में, उसका नाश कभी नहीं होता। क्षायिक समकित लेकर गये हैं। लो! श्रेणिक राजा। वह की वह क्षायिक समकित की पर्याय लेकर सिद्ध में जायेंगे। उसमें कोई फेरफार नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

आत्मा के अन्तर आनन्द के अनुभव में से आनन्द का वेदन करते हैं। क्षायिक समकित निरन्तर धारावाही। कहते हैं, वह तो क्षायिक अन्तर स्वभाव की प्रगटता है। उसमें और कर्म के निमित्त की अपेक्षा क्यों लगायी? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तथापि, कर्मक्षय द्वारा उत्पन्न होने के कारण सादि है,... निमित्त का अभाव है और पुरुषार्थ की जागृति के समय की सादि है। समझ में आया ?

इसलिए कर्मकृत ही कहा गया है। औपशमिक भाव कर्म के उपशम से उत्पन्न होने के कारण तथा अनुपशम से नष्ट होने के कारण... निमित्त-निमित्त हो। कर्मकृत ही है। (इस प्रकार औदयिकादि चार भावों को कर्मकृत सम्मत करना।) यह बात निमित्त की अपेक्षा से लक्ष्य में लेना। बस, इतनी बात है। डालना हो तो इसमें डाले। परन्तु पहला कहते हैं, वह क्या? हैं? दूसरा तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं। ऐसी चीज़ है।

बादशाह तीन लोक का नाथ! आहाहा! वह जो जिस ओर डोले, उस ओर जाये। राग की ओर डोले तो वहाँ जाये और स्वभाव में डोले तो, जाये तो परिणति शुद्ध हो। उसमें निश्चय से तो पर की अपेक्षा है नहीं। व्यवहार की बात करते हैं, चार में व्यवहार का निमित्त है। भले केवलज्ञान में शक्ति की व्यक्तता हो। नव लब्धि, क्षायिकभाव है न, नव लब्धि। दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य पाँच केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक समकित और सुख, सुख नहीं वहाँ, वीर्य। सुख तो समकितदर्शन में गया। उसमें ज्ञान, दर्शन, क्षायिक समकित और अनन्त वीर्य। (ये) चार और पाँच—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। इन नौ की प्राप्ति। तो कहते हैं कि शक्ति में थी तो व्यक्तता हुई। परन्तु उसमें कर्म का निमित्त कहने में आया है। है न, वस्तु है न! उस पर्याय का अभाव उसके कारण से होता है और यहाँ आत्मा में अपने पुरुषार्थ से क्षायिक होता है। इतना सम्बन्ध कहकर चार भाव को कर्मकृत कहा गया है।

अरे! एक गाथा में ना, तो दूसरी गाथा में हॉ। यह स्याद्वाद के कथन हैं। स्याद्वाद के कथन ऐसे नहीं कि पहले कहा था तुझसे होता है और दूसरी बार कहे निमित्त से होता है, निमित्त से कार्य है, ऐसा है नहीं। कार्य तो तुझसे हुआ है परन्तु निमित्त का आरोप देकर, और आरोप का विवाद। भाई! आहाहा! गजब भाई! निमित्त की व्याख्या आरोपित करने में आती है, निमित्त में वह कहाँ से आया? अरे भगवान! अनारोपित भाव में निमित्त हुआ, वह आरोपित भाव है। उसमें क्या? शब्द के झगड़े! यह पाटनीजी लाये हैं न वहाँ से-जयपुर से। तुम लाओ हो, कौन लाया? यही लाये हैं। लो! ऐई! लाडुलालजी! आरोप कहा न, तुम नहीं थे? अनुकूल को आरोप देना चाहिए, आरोप दिया जाता है इसलिए। आरोप देना चाहिए, आरोप कहाँ है? तब थे या नहीं तुम? समझ में आया?

यह तो निमित्त से है आरोप का। वास्तविक कारण स्वयं का है अनारोपित। निमित्त कारण तो वास्तविक कारण नहीं। दो कारण का निमित्त से कथन है। समझ में आया? क्या हुआ? वह निमित्त के वश पड़ता है, ऐसा शास्त्र है। शास्त्र में ऐसा है। निमित्त कराता नहीं, परन्तु निमित्त के वश पड़ता है, इसलिए उसे निमित्त कहा जाता है। वश आता है न? भारी झगड़ा, भाई! अरे रे! तेरी स्वतन्त्रता तुझे नहीं बैठती! और परतन्त्रता कहे, तब तुझे ठीक लगती है। गजब यह! तुझे मार डाला कर्म ने, हाँ, यह ठीक। परन्तु तू उल्टा पड़ा, इसलिए मर गया। नहीं, यह नहीं, यह नहीं। हमारे बहुत चलता था ऐसा। लो, ऐसी बात कहाँ से निकाली? हमारे गुरु ने दी नहीं। शास्त्र में ऐसा है नहीं। यह तो उड़ती पतंग की जैसे है, पडाई क्या कहलाता है? पतंग... पतंग... उड़ती पतंग है, ऐसा महाराज करते हैं। परन्तु उड़ती पतंग कहाँ जायेगी? ऐसा कहते थे। सेठ थे बुद्धिवाले लौकिक में, हों! यह सब साधारण है। वह तो गृहस्थ व्यक्ति को पहले से पूरे दिन वाँचन बहुत, बहुत वाँचन! बड़े-बड़े सेठ मिलने आवे, बड़े उनके क्या कहलाये अमरेली के? हैं? सुबो। हाँ, हाँ, सुबो। अमरेली का सुबो, उसे वहाँ मिलने आवे, गृहस्थ व्यक्ति को। और राज की ओर से उसे बहुत मान था। हमारे साथ करे तूफान। बहुत बोले नहीं, हो! मेरे सामने तो सीधे बोले नहीं। एकान्त में कहे। यह महाराज की पतंग उड़ती है, जाये वहाँ ठीक। कर्म से तो कुछ मानते नहीं। सेठ! सेठी!

कर्म को नहीं मानते, ऐसा किसने कहा ? कर्म है परन्तु कर्म से अपने में कुछ होता नहीं। नहीं होता, इसलिए तो उसे निमित्त कहा जाता है। उससे हो तो वह उपादान हो गया। तो उपादान निमित्त का झगड़ा ! लो, अभी तुम्हारे तो वहाँ यही चलता है न ?

(इस प्रकार औदयिकादि चार भावों को कर्मकृत सम्मत करना।) अथवा (दूसरे प्रकार से व्याख्या करने पर)... अब यह ठीक। यह तो चार अवस्था कर्म की है। ऐसा कहते हैं, भाई ! क्यों परमपारिणामिकभाव अपना है न शुद्ध। इस अपेक्षा से निमित्त की चार अवस्था है, ऐसा कहते हैं। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, वह तो निमित्त की ही अवस्था है। ऐई ! शुद्ध उपादान भगवान आत्मा की अवस्था नहीं, इस अपेक्षा से बात करते हैं। आहाहा ! गजब भाई !

उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमस्वरूप चार (अवस्थाएँ) द्रव्यकर्म की ही अवस्थाएँ हैं, ... किसकी ? इस आत्मा की पर्याय द्रव्यकर्म की अवस्था है, ऐसा कहते हैं। ऐई ! तुम्हारे चर्चा करनी हो तो कहाँ इसमें ? तुम्हारे में से निकाली। लाओ तुम्हारे में से निकाल दूँ, कहे। परिणामस्वरूप एक अवस्थावाले जीव की नहीं हैं... ऐई ! क्या कहा ? पारिणामिक भगवान स्वभाव की क्षायिक अवस्था अपनी नहीं। चिल्लाहट मचाये। वह तो त्रिकाली में नहीं और एक समय की अवस्था निमित्त की अपेक्षा से है। इसलिए निमित्त से है, ऐसा कहने में आता है।

भगवान आत्मा परमस्वभावभाव नित्यानन्द प्रभु ध्रुवस्वभाव की अवस्था नहीं। उसकी अवस्थावाले जीव की नहीं। आया या नहीं ? ऐई ! हिम्मतभाई ! हमारे हिम्मतभाई को वहाँ वापस विवाद उठेगा वहाँ। कुछ प्रश्न सामने करेंगे, जायेंगे इसलिए। वह पत्र आया है न इतना बड़ा, कान्तिभाई का। उसने पढ़ा। भाई ! पढ़ो तुम तुम्हारे वहाँ जवाबदारी है। मुम्बई के पण्डित हैं, लो यह नहीं। लो यह नहीं आया। ऐई ! मणिकान्तभाई के साथ झगड़ा उठा है। कान्तिलाल हरिलाल। बड़ा पत्र आया है, हों ! मणिभाई ! इतना बड़ा। मोटा कागज, मोटा है। और पौने दो पेपर हैं। वापस पौने दो पेपर बहियों के। जरा इस ओर दो आने काट दिया है। पढ़ा है या नहीं तुमने ? मणिभाई को देना जरा यह। पढ़े तो सही मणिकान्तभाई अभी। इसमें पढ़े तो समझने में, चाहे जो हो, किस अपेक्षा से कहते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि पारिणामिक भगवान आत्मा, वापस परिणामस्वरूप एक अवस्थावाले। अवस्था अर्थात् पर्याय की बात नहीं। एक स्वरूपवाला, ऐसा। अवस्था अव-निश्चय स्थ-एकरूप ध्रुव है। उसकी चार अवस्था नहीं। जादवलालजी! किस अपेक्षा से कहते हैं, समझे! यह वस्तु स्वरूप में सम्बन्ध नहीं न, निमित्त-निमित्त सम्बन्ध वह चीज़। उसमें यह निमित्त-निमित्त सम्बन्धवाली अवस्था उसमें नहीं है, ऐसा कहना है। समझ में आया? एकरूप भगवान आत्मा परम अवस्थावाला। अवस्था शब्द से द्रव्य। अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं। अव-स्था, अव-निश्चय स्थ। कायम निश्चय रहनेवाला ऐसा पारिणामिक ध्रुवस्वभाव। समझ में आया?

जिसे अपारिणामिकभाव कहते हैं। पारिणामिकभाव को अपारिणामिक कहते हैं। वह परिणमता ही नहीं। परिणमे, वह दूसरा। हैं? चिल्लाहट मचाये। भगवान! बापू! तेरे घर की बात है, भाई! आहाहा! समझ में आया? उदय आदि अवस्थाएँ द्रव्यकर्म की ही हैं, 'परिणाम' जिसका स्वरूप है... परिणाम अर्थात् वस्तु त्रिकाली। ऐसी एक अवस्थारूप से... एकरूप रहनेवाला, ऐसा। एकरूप रहनेवाला। वापस भाई कहते थे उजमशीभाई। पारिणामिकभाव की पर्याय अलग और पारिणामिकभाव अलग। ऐसा आवे न! वह पारिणामिक अवस्था कौन? अवस्था अर्थात् वस्तु त्रिकाली। यह शब्द आया न पारिणामिकभाव से परिणमता है। यह उसकी अवस्था है। एकरूप अवस्था है। अवस्था का अर्थ द्रव्यरूप है। ऐसा उसका अर्थ है। अवस्था-त्रिकाल एकरूप रहनेवाली वस्तु है। उस चीज़ की यह चार अवस्था निमित्त-निमित्त सम्बन्धवाली उसकी नहीं। यह बताकर निमित्त का ज्ञान कराते हैं और स्वभाव में निमित्त सम्बन्ध नहीं, उसकी दृष्टि कराने के लिये यह बात की है। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५७, गाथा-५८ से ६०, पौष कृष्ण १३, मंगलवार, दिनांक -०३-०२-१९७०

बाकी है न थोड़ा ? ५८। हैं ? ५८ गाथा। पंचास्तिकाय षट्द्रव्य का वर्णन। यहाँ कहते हैं कि आत्मा परमपारिणामिकस्वभावभावरूप जो त्रिकाल है, उसमें जो कर्म के निमित्त से अवस्था होती है, वह अवस्था पर्यायदृष्टि से उसकी है। वस्तुदृष्टि से उसकी नहीं। ऐसा यहाँ लिया गया है।

त्रिकाल ज्ञायकभाव परमस्वभावभाव, ऐसे जीव की, ऐसा लिया न! चैतन्य स्वभावभाव ज्ञायकभाव उसकी चार कर्म के निमित्त से अवस्था होती है, वह पर्यायदृष्टि से उसकी है। समझ में आया ? वस्तुदृष्टि से उसकी नहीं। ऐसा लेना।

मुमुक्षु : स्वयं परिणमता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमता भी नहीं। बस यही कहते हैं न! परन्तु यहाँ तो परिणमता है, ऐसा लेना है। ध्रुव तो परिणमता नहीं। यह अभी यहाँ नहीं लेना है। यहाँ तो अभी पर्याय परिणमती है, ऐसा लेना है। यहाँ पर से अत्यन्त भिन्न बतलाना है। परन्तु अपनी पर्याय से भिन्न है, यह तो आगे जाकर कहेंगे।

वस्तु है चैतन्यमूर्ति, वह कर्म से तो भिन्न है ही। और वह राग से और विकल्प से भी भिन्न है। परन्तु परमनिश्चय से देखो तो उसकी जो अवस्था है पर्याय एक समय की, उससे भी द्रव्य सर्वथा भिन्न है। यह बात यहाँ विशेष नहीं कहनी है। समझ में आया ? यहाँ तो आत्मा चैतन्य भगवान पूर्ण स्वरूप परमस्वाभाविकभाव की अवस्था, वह पार्ट चार है। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। वह पारिणामिक की अवस्था नहीं। पर्याय में उसकी अवस्था है। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म है।

यह कहते हैं न, द्रव्य के पारिणामिकस्वभाव में नहीं है, इसलिए लिया है ऐसा। पारिणामिक स्वभाव की नहीं। **परिणामस्वरूप एक अवस्थावाले जीव की नहीं हैं...** त्रिकाल स्वभाव की वह अवस्था नहीं है। पर्याय से उसकी अवस्था है। और निमित्तरूप जो कर्म की अवस्था है, वह कर्म की अवस्था अपनी पर्याय से नहीं। द्रव्य से तो नहीं परन्तु अपनी पर्याय निमित्त है तो उससे भी कर्म की अवस्था नहीं है। उसमें पर्याय तो

निमित्त है। निमित्त-निमित्तसम्बन्ध उसके साथ है न? द्रव्य के साथ निमित्त-निमित्तसम्बन्ध कहाँ है? ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

यहाँ तो निमित्त-निमित्तसम्बन्ध सिद्ध करना है। चैतन्य ज्ञायक भगवान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु में जो वस्तु स्वभाव है, तो एक समय की पर्याय में तो वह वस्तु-चीज तो आती नहीं, परन्तु एक समय की अवस्था है, वह कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुई तो उसे कर्मकृत कहा जाता है। और यहाँ कहते हैं कि वह अवस्था उसकी है। परमस्वभावभाव ऐसे आत्मा की नहीं। और वह कर्म की अवस्था कर्म में है चार। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक वह कर्म में है। आत्मा की पर्याय उसमें निमित्त है-निमित्त है। निमित्त तो है न! यह तो निमित्त-निमित्तसम्बन्ध सिद्ध करना है। समझ में आया?

अथवा इसलिए, देखो! यहाँ तो पारिणामिक भावरूप स्थित जीव की—वे चार अवस्थाएँ नहीं हैं... नहीं तो ऐसा कहे कि भाई! चार अवस्था, यह बात ली है न! जरा ऐसी ली है मूल तो, नहीं तो ऐसा कि अपनी पर्याय है चार और पारिणामिकभाव, उसकी वह नहीं। समझ में आया?

वस्तु जो भगवान आत्मा चैतन्य द्रव्यस्वभाव ध्रुव। उसकी अवस्था कर्म की अवस्था उसकी नहीं। और चार अवस्था जो अपनी है, वह भी पारिणामिकस्वभाव की नहीं। पारिणामिकभाव जो त्रिकाल है, उसकी पर्याय में जो अवस्था है, वह अवस्था पर्यायदृष्टि से अपनी है। वह कर्म की अवस्था में नहीं। कर्म की अवस्था में यह पारिणामिक अवस्था निमित्त है। और अपनी पर्याय चार है, उसमें कर्म की अवस्था निमित्त है। परस्पर निमित्त है। सेठी! अब यह चार जड़ की अवस्था बताते हैं। देखो!

इसलिए उदयादिक द्वारा उत्पन्न होनेवाले आत्मा के भावों को... उदयादि जो आत्मा में भाव होते हैं, उसमें जो निमित्तभूत है, ऐसी उस प्रकार की अवस्थारूप द्रव्यकर्म स्वयं परिणमित होने से, अवस्था उसमें निमित्त है। किसकी अवस्था? जीव की। उदय अर्थात् विकार मिथ्यात्व राग-द्वेष, उपशम-सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि, क्षयोपशमज्ञान-समकित आदि, क्षायिक-समकित, ज्ञान आदि। यह अवस्था जड़कर्म की अवस्था में निमित्त है और इस अवस्था में जड़कर्म निमित्त है। यह पहले कह दिया। समझ में आया?

यहाँ तो पारिणामिकभाव की नहीं, ऐसा कहा न? पारिणामिकभाव की नहीं तो वह वास्तव में तो पारिणामिकभाव की पर्याय नहीं। पर्याय, पर्याय में है। उस पर्याय में कर्म का निमित्त है। निमित्त है, वह कर्म की जड़ अवस्था, वह आत्मा की पर्याय में नहीं है। वह जड़ की पर्याय में है। कठिन बात, भाई! यह तो अपना अस्तित्व कितना है और किस प्रकार है, यह बात सिद्ध करते हैं। त्रिकाल भगवान आत्मा पूर्णानन्द नाथ में तो चार पर्याय भी नहीं। और उसमें तो कर्म के निमित्त का सम्बन्ध भी नहीं। निमित्त का सम्बन्ध उसकी वर्तमान ज्ञानक्रिया आत्मा की पर्याय चार। विकारी और तीन अविकारी। उसमें कर्म के निमित्त के सद्भाव और असद्भाव की अपेक्षा है। समझ में आया?

वह कर्म की अवस्था जड़ की, उसमें जो यह चार परिणाम हुए, वे निमित्त हैं। और अपनी चार पर्याय में कर्म का निमित्त है। कर्म के निमित्त में चैतन्य की पर्याय नहीं। समझ में आया? अरे! यह कभी सुना न हो न! इसमें क्या होगा? चाहे जो हो, परन्तु हमें धर्म, परन्तु कर्म किस प्रकार करते हैं, वह सुन तो सही! तेरी एक समय की विकार की पर्याय करनेवाला तू, ऐसा सिद्ध करना है न यहाँ, भाई! द्रव्य कर्ता है, ऐसा सिद्ध करना है। पर्याय कर्ता, ऐसा कहीं सिद्ध नहीं करना। द्रव्य चार पर्याय का कर्ता है। ठीक पड़े, तब जैसा हो (ऐसा कहते हैं)। ऐसा ठीक पड़े तब जैसा (ऐसा नहीं)। यहाँ द्रव्य पर्याय का कर्ता। पर्याय का कर्ता पर्याय यहाँ सिद्ध नहीं करना है। निमित्त कर्ता पर, परन्तु अपनी पर्याय का कर्ता द्रव्य, यह सिद्ध करना है न! (गाथा) ६२ में यहाँ तक ले जायेंगे न! ठीक पड़े का अर्थ ही जहाँ जो बात सिद्ध करनी है, वैसी ही सिद्ध होती है न!

भगवान आत्मा जब पूर्ण द्रव्य ध्रुव अकेला कहो, तो वह ध्रुव स्वभाव जो है, वह अपनी निर्मल पर्याय का भी कर्ता नहीं है। यह बात यहाँ सिद्ध नहीं करनी। वह तो परम निश्चय की बात है। समझ में आया? विकार का कर्ता जीव है, यह भी निश्चय है। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। और कर्म निमित्त है, वह व्यवहार है। जीव विकार करे तो अपने निश्चय से करता है। हैं? कर्म व्यवहार से निमित्त है।

मुमुक्षु : इसमें तो लोग उलझ जायें ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उलझे ऐसा कुछ नहीं परन्तु समझना आवे नहीं तो क्या करे? नवनीतभाई!

एक ओर ऐसा कहे कि पर्याय का कर्ता पर्याय है। वह तो जब दो के बीच भिन्नता सिद्ध करनी हो तब। परन्तु पर से भिन्न सिद्ध करना हो, तब तो पर्याय का कर्ता द्रव्य है। यह सिद्ध करते-करते आत्मा में ले जायेंगे न! समझ में आया? भीखाभाई! आहाहा! पर तो निमित्तमात्र है और पर की अवस्था में तेरी पर्याय निमित्त है। बस, इतना सम्बन्ध सिद्ध करना है। समझ में आया? अभी यह उस मुम्बई का आया है, वह यहाँ नहीं डाला जाता। ऐई!

बाकी तो निश्चय से स्वभाव भगवान् चैतन्यद्रव्य वह तो पर्याय का कर्ता नहीं। पर्याय का कर्ता पर्याय है। यह तो एकदम परम निश्चय, दो के बीच भिन्नता करनी है। समझ में आया? यहाँ तो पर से भिन्न करने की बात इतनी है। समझ में आया? पर से भिन्न निर्णय किये बिना अपनी पर्याय से भिन्न द्रव्य उसे कभी निश्चित नहीं हो सकता। समझ में आया? अपनी सत्ता में द्रव्य और पर्याय का अस्तित्व है। जीवास्तिकाय सिद्ध करना है न! विकार भी उसके अस्तित्व में है। कर्म तो निमित्तमात्र है और कर्म की अवस्था जड़ में अस्तित्वरूप से है। उसमें जीव की चार पर्याय निमित्तमात्र है, ऐसा सिद्ध करना है। ऐई! माणेकलालजी! वह पूछता था, वह सुरेन्द्र किस पक्ष में है, ऐसा पूछता था। ऐई मणिकान्त! कहा, उस पक्ष में है। आहाहा! पक्ष-बक्ष क्या? उसमें मध्यस्थता से विचार करना, समझना चाहिए। ऐसा आग्रह नहीं।

भगवान् आत्मा अपनी पर्याय में समुद्र में जैसे तरंग उठती है, वह तरंग समुद्र में समा जाती है। पहले यह बात सिद्ध करना चाहिए। और समुद्र में से तरंग की पर्याय आती है, ऐसा सिद्ध करने के बाद, पर्याय पर्याय से होती है, द्रव्य से नहीं, यह तो पर से अत्यन्त भिन्न बतलाने की बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : परन्तु प्रभु शुरुआत समझने के बाद...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। उससे पहले यह हो, उतना बाहर से निर्णय किये बिना... यह निश्चयनय है। कर्म का भी व्यवहार है। फिर यहाँ जब आवे, तब पर्याय, वह व्यवहार है; द्रव्य, वह निश्चय है।

एक समय की पर्याय जो है, वही व्यवहार है। परन्तु कब? वह तो पर्याय और द्रव्य के बीच सिद्ध करना हो तो। परन्तु पर से भिन्न करना हो तो पर्याय निश्चय से

उसकी है। आहाहा! समझ में आया? नवनीतभाई! ऐसा कहाँ सब? भगवान की भक्ति करे तो हो गया। भगवान मुक्ति दे देंगे। धूल में भी कोई मुक्ति नहीं देता। मुक्ति का मार्ग है?

मुमुक्षु : निर्णय नहीं होता भगवान कौन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान आत्मा है। उनका भगवान भगवान में रहा। अपना आत्मा, वह भगवान है। पूर्णानन्द का नाथ भगवान का भगवान है। इसका अर्थ यह अनन्त भगवान को अपने ज्ञान में जानता है। समझ में आया? क्या हो? अपनी चीज़, निमित्त पर दृष्टि रहेगी तो अपनी पर्याय अपने से होती है, ऐसी स्वतन्त्रता का भान नहीं रहेगा। यह बात सिद्ध करनी है। परन्तु फिर पर्याय पर दृष्टि रहेगी तो द्रव्य पर दृष्टि नहीं जायेगी। समझ में आया?

एक समय की पर्याय जो है, वहाँ लक्ष्य रहेगा तो पर्याय को द्रव्य में अभिन्न करना है, वह तो रहेगा नहीं। तो पर्याय के साथ एकत्वबुद्धि हुई। यहाँ तो निमित्त के साथ एकत्वबुद्धि छुड़ाते हैं। निमित्त-निमित्त की अवस्था है, तेरी पर्याय तुझमें है। दो की एकता नहीं। दोनों मानना चाहिए। जैसा है, वैसा मानना चाहिए न! एक माने, वह चले? अभी पर से भिन्न की स्वतन्त्रता की सिद्धि की खबर नहीं तो पर्याय से भिन्न द्रव्य सिद्ध कैसे होगा?

मुमुक्षु : दोनों एक साथ मानना या आगे-पीछे मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले साथ में माने, साथ में, वह तो होगा ही न। पहले मेरी पर्याय स्वतन्त्र है, मुझसे हुई है, निमित्त से नहीं - ऐसा सिद्ध करे तो वह पर्याय द्रव्य में नहीं। समझ में आया?

ध्रुव पर दृष्टि देने में कारण कोई पहले पर से भिन्न है, उसकी भी यहाँ आवश्यकता नहीं, परन्तु यहाँ समझावे तो क्रम से समझावे न? अभी पर में एकत्वबुद्धि है, पर से छूटे नहीं तो पर्याय में एकत्वबुद्धि है तो द्रव्य में एकत्वबुद्धि कहाँ से आयेगी? क्या कहा, समझे? जिसे भगवान अपनी पर्याय से पर के साथ एकत्वबुद्धि रखता है तो पर्याय के साथ एकत्वबुद्धि, द्रव्य के साथ एकत्व रहना और पर्याय से एकत्व छूटना,

वह इसे कहाँ से होगा ? जहाँ पर के साथ एकत्वबुद्धि है, कर्म के साथ है, शरीर के साथ है। यह पर्याय मुझसे हुई, मेरी पर्याय उससे हुई, यह तो एकत्वबुद्धि है। समझ में आया ? ऐसा सूक्ष्म मार्ग है, भाई !

वीतराग का मार्ग लोगों को सुनने मिला नहीं और बाहर से सिरपच्ची मरकर जिन्दगी चली जाती है। सेठी ! बराबर कहा। थोड़ा-थोड़ा धीरे-धीरे समझ में आता है। आहाहा ! कहते हैं कि अपना स्वभाव शुद्ध ध्रुव पारिणामिकभाव, उस त्रिकाल द्रव्य की अवस्था, वर्तमान चार अवस्था जीव की है, वह त्रिकाल की नहीं। परन्तु अपनी अवस्था है, वह जड़ की नहीं। और जड़ की जो अवस्था है, वह अपनी पर्याय की नहीं। समझ में आया ? अब पर्याय नाम भी सुना न हो और द्रव्य और पर्याय। शिवलालभाई ! सुना हो कभी कोई पर्याय और द्रव्य क्या है ? भगवान ! द्रव्य अर्थात् पैसा। पर्याय अर्थात् प्रजा। स्त्री, पुत्र यह प्रजा। समझ में आया ?

परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकर भगवान के ज्ञान में ऐसा आया कि प्रभु ! तेरी पर्याय तुझसे और तेरा द्रव्य तो तुझसे अनादि से है। उसमें तो प्रश्न नहीं। पर्याय तेरी राग कर या सम्यग्दर्शन प्रगट कर। वह तेरी पर्याय तुझसे और उसका कर्ता तू है। समझ में आया ? और कर्म की अवस्था जो होती है, उसका कर्ता तू नहीं। उस कर्म की अवस्था का कर्ता कर्म पुद्गल है।

अब यहाँ तो पारिणामिकभाव की जीव की चार अवस्था भी नहीं। ऐसा नहीं कहा कि पारिणामिकभाव की चार अवस्था वह स्थित की चार नहीं। वह जड़ की अवस्था नहीं, इतना यदि कहना हो तब तो पारिणामिकभाव और पर्याय भी पारिणामिकभाव की है, वह चार। स्व से लो तो। यहाँ तो अकेले पारिणामिकभाव स्थित जीव की चार अवस्था नहीं है।

भगवान परमस्वभावभाव कर्म की अवस्था वह नहीं। समझ में आया ? पर्याय की अवस्था, उसमें है, वह पारिणामिकभाव द्रव्य की पर्याय है, उसका कर्ता वह है। कहो, समझ में आया ? इसलिए उदयादिक द्वारा उत्पन्न होनेवाले आत्मा के भावों को निमित्तमात्रभूत... अब जड़ की। ऐसी उस प्रकार की अवस्थाओंरूप (द्रव्यकर्म) स्वयं

परिणमित होने के कारण... जैसे उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जीव-द्रव्य पर्यायरूप से स्वयं परिणमता है। ऐसे कर्म की अवस्था क्षयोपशमरूप आदि हो, वह कर्म स्वयं परिणमता है। कारण द्रव्यकर्म भी व्यवहारनय से आत्मा के भावों के कर्तृत्व को प्राप्त होता है। लो! व्यवहारनय हुआ, निमित्त बताते हैं। परिणमित तो स्वयं से है। परन्तु द्रव्यकर्म भी व्यवहारनय से आत्मा की पर्याय को, पर्याय की बात है न! द्रव्य को कहाँ करता है ?

आत्मा के भावों के कर्तृत्व को प्राप्त होता है। लो! निमित्त से कर्तृत्व है, ऐसा कहने में आता है। लो! निमित्त कर्ता तो है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : द्रव्यकर्म करता है, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह यहाँ द्रव्यकर्म की बात है न। द्रव्यकर्म है। पर्याय है, वह द्रव्यकर्म निमित्त, पर्याय का कर्ता निश्चय से उपादान द्रव्य है। यह पहले सिद्ध किया। परन्तु वह पर्याय द्रव्यकर्म स्वयं से परिणमता है तो उसमें वह निमित्त पड़ती है, तो निमित्त कर्ता द्रव्यकर्म से पर्याय हुई, ऐसा निमित्त से कहने में आता है। समझ में आया ? कहो, सेठ ! यह पंचास्तिकाय कभी पढ़ा भी नहीं होगा। पुस्तक तो है न घर में ? न समझ में आये, ऐसा नहीं होता। पहले समझे तो खबर पड़े। कि अपने इस प्रकार से तो नहीं समझे थे। परन्तु पढ़ा भी नहीं होगा, उल्टा-सुलटा देखा भी नहीं होगा। उसे इस प्रकार से पढ़ा है कि समझ में आयेगा, वह कहाँ से मिलान करे ?

द्रव्यकर्म भी व्यवहारनय से आत्मा के भावों के... यह कौन भाव ? चार। कहीं पारिणामिकभाव के साथ सम्बन्ध नहीं। आत्मा की जो चार अवस्था है, विकार जीव करता है, कर्म नहीं। परन्तु कर्म निमित्त है तो निमित्त से कर्ता जीव की पर्याय का। अरे ! क्षायिक पर्याय का। जीवद्रव्य कर्म कर्ता, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया ? यह तो पंचास्तिकाय सरल है, समयसार की अपेक्षा। उससे महँगा पड़ गया ? यह ५८ (गाथा) हुई। लो! निमित्त कर्ता कहा न ? वापस व्यवहार-निश्चय कहा न ? व्यवहार-निश्चय कहा न, तो अब प्रश्न करते हैं। देखो ! ५९ (गाथा)

गाथा - ५९

भावो यदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता।

ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं॥५९॥

भावो यदि कर्मकृत आत्मा कर्मणो भवति कथं कर्ता।

न करोत्यात्मा किञ्चिदपि मुक्त्वान्यत् स्वकं भावम्॥५९॥

जीवभावस्य कर्मकर्तृत्वे पूर्वपक्षोऽयम् ।

यदि खल्वौदयिकादिरूपो जीवस्य भावः कर्मणा क्रियते, तदा जीवस्तस्य कर्ता न भवति। न च जीवस्याकर्तृत्वमिष्यते । ततः पारिशेष्येण द्रव्यकर्मणः कर्तापद्यते । तत्तु कथम्? यता निश्चयनयेनात्मा स्वं भावमुज्झित्वा नान्यत्किमपि करोतीति ॥५९॥

यदि कर्मकृत हैं जीव भाव तो कर्म ठहरे जीव कृत।

पर जीव तो कर्ता नहीं निज छोड़ किसी पर भाव का ॥५९॥

अन्वयार्थ :- [यदि भावः कर्मकृतः] यदि भाव (-जीवभाव) कर्मकृत हों तो [आत्मा कर्मणाः कर्ता भवति] आत्मा कर्म का (-द्रव्यकर्म का) कर्ता होना चाहिए। [कथं] वह तो कैसे हो सकता है? (आत्मा) क्योंकि आत्मा तो [स्वकं भावं मुक्त्वा] अपने भाव को छोड़कर [अन्यत् किञ्चित् अपि] अन्य कुछ भी [न करोति] नहीं करता।

टीका:-कर्म को जीवभाव का कर्तृत्व होने के सम्बन्ध में यह *पूर्वपक्ष है।

यदि औदयिकादिरूप जीव का भाव कर्म द्वारा किया जाता हो, तो जीव उसका (-औदयिकादिरूप जीवभाव का) कर्ता नहीं है, ऐसा सिद्ध होता है। और जीव का अकर्तृत्व तो इष्ट (-मान्य) नहीं है। इसलिए, शेष यह रहा कि जीव द्रव्यकर्म का कर्ता होना चाहिए। लेकिन वह तो कैसे हो सकता है? क्योंकि निश्चयनय से आत्मा अपने भाव को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं करता।

(इस प्रकार पूर्वपक्ष उपस्थित किया गया)॥५९॥

* पूर्वपक्ष=चर्चा या निर्णय के लिये किसी शास्त्रीय विषय के सम्बन्ध में उपस्थित किया हुआ पक्ष ता प्रश्न।

गाथा - ५९ पर प्रवचन

भावो यदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता।
 ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं॥५९॥
 (यदि कर्मकृत हैं जीव भाव तो कर्म ठहरे जीव कृत।
 पर जीव तो कर्ता नहीं निज छोड़ किसी पर भाव का॥५९॥)

टीका :- कर्म को जीवभाव का कर्तृत्व होने के सम्बन्ध में यह पूर्वपक्ष है। यदि औदयिकादिरूप जीव का भाव कर्म द्वारा किया जाता हो,.... लो! चार पर्याय कर्म द्वारा की जाती हो, यह तो भाई वहाँ व्यवहारनय से कहा। ऐसा नहीं कहा कि निश्चय से कर्म करता है। तथापि उससे करता है, ऐसा यदि कहो तो, जीव उसका कर्ता नहीं है। जीव अपने राग का, विकार का, धर्म की पर्याय का कर्ता नहीं, ऐसा सिद्ध होता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो निमित्त से कथन किया है। व्यवहार से कथन किया है।

अरे! भगवान! गजब! व्यवहार से भी सच्चा और यह भी सच्चा, ऐसे दोनों सच्चे होंगे? व्यवहार तो असद्भूतव्यवहारनय से कथन किया है। कर्म से यह चार भाव कहा है। कर्म से चार भाव। कर्म बिना नहीं होते, ऐसा कहा न? हाँ, शिष्य का तर्क है। बराबर है। यदि उदयादि अर्थात् चारों ही भाव, हों। कर्म भाव कर्म द्वारा किये जाते हों तो जीव उनका कर्ता नहीं है, तो जीव अपनी पर्याय का कर्ता नहीं हुआ।

और जीव का अकर्तृत्व तो इष्ट (-मान्य) नहीं है। लो! जीव करता ही नहीं। यह बात तो ठीक नहीं है। जीव करता ही नहीं, ऐसी बात तो इष्ट (-मान्य) नहीं है। इसलिए, शेष यह रहा... इसलिए इसमें से न्याय यह निकला कि, जीव द्रव्यकर्म का कर्ता होना चाहिए। जीव द्रव्यकर्म का कर्ता, कारण कि कर्तृत्व तो है। जड़कर्म जीव की पर्याय को करे और जीव कर्ता नहीं, तो जीव कर्ता नहीं, ऐसा तो बनता ही नहीं। तो जीव

की पर्याय को कर्म करे, तब जीव कर्म को करे, ऐसा हुआ। हैं ? जीव द्रव्यकर्म का कर्ता होना चाहिए। समझ में आया ? शामदासजी ! सूक्ष्म बात ! यह तो बहुत सादा है।

ऐसा कहा कि आत्मा की चार पर्याय जो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक दशा है, उसका कर्ता यदि कर्म हो, आत्मा नहीं, तो आत्मा तो अकर्तृत्व हुआ। आत्मा अकर्तृत्व होने से फिर क्या हुआ ? कर्ता तो होना चाहिए। तो द्रव्यकर्म का कर्ता हुआ, ऐसा हुआ। समझ में आया या नहीं ? कहाँ खबर है कौन द्रव्यकर्म ? कौन भावकर्म ? मूल धर्म की द्रव्य, गुण, पर्याय की स्वतन्त्रता की बात ही गुम हो गयी। एक-एक पर्याय कौन भाई सेठ कहते थे न, कल आये थे न ! तो अभी तक हमने क्या किया ? कहा, तुमने किया संकल्प-विकल्प। शोभालालजी ! भाई आये थे कल। कुछ किया नहीं बीड़ी, तम्बाकू का, स्त्री, पुत्र का और डालचन्दजी का और स्त्री का कुछ किया नहीं। और जाति का तथा समाज का (कुछ किया नहीं)। समाजभूषण। समाज का तूने कुछ किया नहीं। तुमने किये संकल्प और विकल्प और पुण्य-पाप का विकार, वह तुमने किया है। अनादि से यह किया है। जीव ने दूसरी कोई चीज़ की ही नहीं। समझ में आया ?

लेकिन वह तो कैसे हो सकता है ? देखो ! वापस शिष्य का प्रश्न। भगवान ! आप तो ऐसा कहते हो कि द्रव्यकर्म आत्मा की अवस्था का कर्ता। चार अवस्था जो होती है विकार और शान्त धर्म आदि। उस अवस्था का कर्ता द्रव्यकर्म। पाठ में तो अकर्तृत्व कहा। अकर्तृत्व कहा तो ऐसा तो बनता नहीं। कर्ता तो है। तो कर्ता अपना न हुआ तो जड़ की पर्याय का कर्ता हुआ। जड़ की पर्याय अपनी पर्याय की कर्ता और अपनी पर्याय जड़ की पर्याय की कर्ता हुई, ऐसा हुआ। तो ऐसा तो बनता नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

कारण कि निश्चयनय से आत्मा अपने भाव को छोड़कर... देखो ! निश्चय... अर्थात् यथार्थ दृष्टि से आत्मा अपने भाव को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं करता। वह तो पहले से शुरु किया था। हैं ? पहले से यह तो शुरु किया है। देखो ! जीव के औदयिकादि भाव के कर्तृत्व का कथन है। ५७ से शुरु किया है। यह पहले आया था न,

परभाव का शुरु किया है न? परभाव का कर्ता नहीं। यह पहले आ गया है। हाँ यह। ५३। पहले से। निश्चय से परभावों का कर्तापना नहीं होने से, लो, ५३ मूल शुरु करते हैं। वास्तव में तो जीव अपनी विकारी और अविकारी पर्याय का वास्तव में कर्ता है। शरीर, वाणी, मन, कुटुम्ब, देश का कुछ कर्ता नहीं। पर जीव की अवस्था का और पर अजीव की अवस्था का जीव कभी भी तीन काल में कर्ता है नहीं। पहले ५३ में लिया था। शुरुआत वहाँ से की थी।

निश्चय से परभावों का कर्तृत्व नहीं होने से जीव स्वभावों का कर्ता होता है। यह तो कहा था। स्वभाव शब्द से चार पर्याय। स्वभाव शब्द से यहाँ अकेला विकाररहित, ऐसा कुछ नहीं है। समझ में आया?

आत्मा अपने अस्तित्व में-मौजूदगी में विकार करो या धर्म की पर्याय करो, उस स्वभाव का कर्ता अपने भाव का कर्ता है। परन्तु शरीर, वाणी और कर्म, जीव और जड़ दूसरी चीज़ की पर्याय का तो कभी भी आत्मा कर्ता, आत्मा अज्ञानभाव से भी नहीं होता। ऐसा होगा यह? लक्ष्मीचन्दभाई! तो यह सब धन्धा-बन्धा वहाँ कौन करे? ऐई रायचन्दभाई! यह धन्धा कौन करे वहाँ? नैरोबी में। संकल्प-विकल्प करे, ऐसा कहते हैं। धन्धे की क्रिया बिल्कुल नहीं कर सकता। एक परमाणु को फेरफार-आँख की पलक का इतना फिरना, उस क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं। कहो, बराबर है? यह तो यहाँ सिद्ध करना है। पर का किंचित् कर्ता नहीं और अपनी पर्याय में विकार करो या धर्म की पर्याय करो, कर्ता अपने भाव का है। यह तो यहाँ सिद्ध करना है।

पश्चात् यहाँ विकार का कर्ता नहीं, यह तो बाद में आया। भाई! जहाँ जो है, उसे समझना चाहिए। विकार का कर्ता जीव है, पर नहीं। समझ में आया? परन्तु फिर जब स्वभावदृष्टि बतलानी हो, भगवान ज्ञानानन्दस्वभाव, वह विकार की पर्याय का कर्ता किस प्रकार होगा? यदि विकार का कर्ता हो परिणमन तो पारिणामिक स्वभाव शुद्ध रहता नहीं। वह तो अशुद्ध का कर्ता-पारिणामिकभाव अशुद्ध हो गया। समझ में आया? यह दूसरी बात हुई, गजब बात भाई! हमारे फावाभाई कहते थे कि सवेरे कुछ आता है, दोपहर में कुछ आता है। वे कहें, हमारे इसमें निर्णय क्या करना? बुद्धि थोड़ी। वीतराग

जैनतत्त्व सूक्ष्म और किस अपेक्षा से कथन है, यह जाने बिना एकान्त में ले जाये—दृष्टि में विपरीतता हो जायेगी, कहते हैं। समझ में आया ?

(गाथा) ५३ से शुरु किया है। देखो! यहाँ तो इसमें चिह्न नहीं। गुजराती में होंगे। यह चिह्न। चिह्न इसमें नहीं। यह हिन्दी पढ़ा जाता है न! उसमें चिह्न होंगे। यह तो हिन्दी है न। समझ में आया ? यह क्या कहा ५८ में ? कर्म को जीवभाव का कर्तापना होने के सन्दर्भ में यह पूर्वपक्ष है। पूर्वपक्ष अर्थात् चर्चा करनेवाले शिष्य का प्रश्न है। नीचे लिखा है न, चर्चा या निर्णय के लिये किसी शास्त्रीय विषय की बाबत में उपस्थित किया गया पक्ष या प्रश्न। इस प्रकार पूर्वपक्ष उपस्थित किया गया। अब इसका उत्तर।

गाथा - ६०

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं॥६०॥

भावः कर्मनिमित्तः कर्म पुनर्भावकारणं भवति।

न तु तेषां खलु कर्ता न विना भूतास्तु कर्तारम्॥६०॥

पूर्वसूत्रोदितपूर्वपक्षसिद्धान्तोऽयम् ।

व्यवहारेण निमित्तमात्रत्वाज्जीवभावस्य कर्म कर्तृ, कर्मणोऽपि जीवभावः कर्ता; निश्चयेन तु न जीवभावनां कर्म कर्तृ, न कर्मणो जीवभावः । न च ते कर्तारमन्तरेण सम्भूयेते; यतो निश्चयेन जीवपरिणामानां जीवः कर्ता, कर्म परिणामानां कर्म कर्तृ इति ॥६०॥

कर्मनिमित्तिक भाव होते अर कर्म भावनिमित्त से।

अन्योन्य नहि कर्ता तदपि, कर्ता बिना नहिं कर्म है॥६०॥

अन्वयार्थ :- [भावः कर्मनिमित्तः] जीवभाव का कर्म निमित्त है [पुनः] और [कर्म भावकारणं भवति] कर्म का जीवभाव निमित्त है, [न तु तेषां खलु कर्ता] परन्तु वास्तव में एक दूसरे के कर्ता नहीं है; [न तु कर्तारम् विना भूताः] कर्ता के बिना होते हैं, ऐसा भी नहीं है।

टीका:-यह, पूर्व सूत्र में (५९वीं गाथा में) कहे हुए पूर्वपक्ष के समाधानरूप सिद्धान्त है।

व्यवहार से निमित्तमात्रपने के कारण जीवभाव का कर्म कर्ता है (-औदयिकादि जीवभाव का कर्ता द्रव्यकर्म है), कर्म का भी जीवभाव कर्ता है; निश्चय से तो जीवभावों का न तो कर्म कर्ता है और न कर्म का जीवभाव कर्ता है। वे (जीवभाव और द्रव्यकर्म) कर्ता के बिना होते हैं ऐसा भी नहीं है; क्योंकि निश्चय से जीवपरिणामों का जीव कर्ता है और कर्मपरिणामों का कर्म (-पुद्गल) कर्ता है॥६०॥

गाथा - ६० पर प्रवचन

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं॥६०॥
(कर्मनिमित्तिक भाव होते अर कर्म भावनिमित्त से।
अन्योन्य नहि कर्ता तदपि, कर्ता बिना नहिं कर्म है॥६०॥)

लो! इसका उत्तर देते हैं।

टीका :- यह, पूर्व सूत्र में (५९वीं गाथा में) कहे हुए पूर्वपक्ष के समाधानरूप सिद्धान्त है। व्यवहार से निमित्तमात्रपने के कारण जीवभाव का कर्म कर्ता है... देखो! वास्तव में जीव निश्चय से अपने में विकार करे, तो कर्म व्यवहार से निमित्त कहो या व्यवहार कहो, देखो! व्यवहार से निमित्तमात्रपने के कारण जीवभाव का कर्म करता है, ऐसा कहने में आया है। (-औदयिकादि जीवभाव का कर्ता द्रव्यकर्म है), ऐसा व्यवहार से निमित्तमात्र से कहने में आया है। समझ में आया ?

कर्म का भी जीवभाव कर्ता है;... कर्म का भी जीवभाव कर्ता है, वह भी व्यवहार पारस्परिक। क्या कहा, समझ में आया ? जीवभाव का कर्ता कर्म, यह व्यवहारनय के निमित्तमात्र से और कर्म का भी जीवभाव कर्ता, यह व्यवहारनय के निमित्तमात्र से (कथन है)। वास्तव में है नहीं। आहाहा! कठिन परन्तु! निमित्त-निमित्तसम्बन्ध सिद्ध करते हैं न? पर्याय के साथ निमित्त-निमित्तसम्बन्ध है, वस्तु के साथ कुछ है नहीं।

निमित्त-निमित्तसम्बन्ध का ज्ञान कराते हैं। उसमें यह लिखा है। समझ में आया ? कि विकार में निमित्त वह है और कर्म परिणमन में निमित्त यह है। यहाँ तो विकार निमित्त नहीं परन्तु उसका-कर्म के अभाव में भी निमित्त यहाँ क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय है न। कर्म में क्षयोपशम होना, क्षायिक होना, वह स्वयं की पर्याय से है, जड़ की पर्याय से। उसमें निमित्त यहाँ क्षयोपशम, क्षायिकभाव है। समझ में आया ? उसका अभाव होना, वह उसके परिणमन में, परन्तु यहाँ निमित्तपना क्षयोपशम, क्षायिकभाव। यहाँ विकार होता है अपने में। निमित्त कर्म का भाव। ऐसे क्षयोपशम, क्षायिकभाव स्वयं से

होता है। कर्म का निमित्त अभाव। मार्ग ऐसा है। समझ में नहीं आवे तो क्या करें? ऐ वकील! समझ में आता है या नहीं? यहाँ वकील को लिया, व्यापारी को बहुत न समझ में आये तो।

यहाँ तो जो होता है, जैसा है, वैसी बात सिद्ध करना और निमित्तमात्र भिन्न चीज़ है, वह व्यवहार से सिद्ध करना, यह बात यहाँ है। यह शरीर अथवा स्त्री, कुटुम्ब, मकान, परिवार उसका कर्ता कहना, वह अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से कर्ता है। है नहीं, उसको कहना (व्यवहार है)। यहाँ कर्म नजदीक है तो कर्म की पर्याय का जीवपर्याय कर्ता कहना, वह अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। यह उपचरित व्यवहारनय का कथन—पर के मकान बनाते हैं, यह करना, बीड़ी बनावे, तम्बाकू लावे, तम्बाकू लपेटकर। हैं ?

मुमुक्षु : व्यवहारनय का समझाओ तो सही, फिर निश्चय की समझण पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु व्यवहार का अर्थात् पर, व्यवहार का अर्थात् पर, निश्चय अर्थात् स्व। अब यह तो बात आ गयी है न दोपहर की। सवेरे। स्व-आश्रय वह निश्चय परन्तु वहाँ स्व-आश्रय दूसरी बात है, हों! यहाँ तो स्व-आश्रय अर्थात् पर्याय अपनी है, वह निश्चय है। वहाँ स्व-आश्रय निश्चय, वह तो द्रव्य स्व-आश्रय त्रिकाली है। अरे!

(समयसार गाथा) २७२ में आया था न? स्व-आश्रय वह निश्चय। स्व अर्थात् पूर्ण द्रव्य वह स्व-आश्रय निश्चय है। और यहाँ स्व-आश्रय निश्चय का अर्थ, (गाथा) ५९ गई न, उस ५९ में भाई ने लिखा है हेमराजजी ने। उपादान-निमित्त। उपादान निमित्त का। लिखा है, थोड़ा-सा लिखा है। वह अपने यहाँ नहीं डाला। उपादान स्वयं से हो—निश्चय। और निमित्त से कहना, वह व्यवहार। तो अपनी विकारी और धर्म की पर्याय स्वयं से है, वह निश्चय। और कर्म के निमित्त से हुआ—ऐसा कहना, वह व्यवहार अर्थात् पराश्रय निमित्त का कथन है। अरे! कितना याद रखे! समझ में आया?

यह उपादान-निमित्त का डाला है। समझे? ५९ में। यह तो अपने ६० का उत्तर है।

मुमुक्षु : आप कहते हो, वैसा स्पष्ट नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्पष्ट ही है। उपादान, वह निश्चय और निमित्त, वह व्यवहार। ऐसा कहा है या नहीं? किसमें है, अपने है न कहीं? यह गुजराती न! यह देखो, यह ५९। लो! देखो आया।

सिद्धान्त में कार्य की उत्पत्ति के लिये दो कारण कहे गये हैं। एक उपादान, एक निमित्त। द्रव्य की शक्ति का नाम उपादान है। प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्याय की ताकत से काम करे, उसका नाम उपादान है। सहकारी कारण साथ में दूसरी चीज़ निमित्तरूप हो, संयोगरूप सहकारी कारण का नाम निमित्त है। जैसे घट कार्य की उत्पत्ति के लिये मिट्टी की शक्ति तो उपादान कारण है। घट की पर्याय होने में मिट्टी की शक्ति है। वह सत् उपादान शक्ति है। और कुम्हार, दण्ड और चक्र आदि निमित्त कारण है। इसलिए निश्चय से मिट्टी घट की पर्याय की कर्ता है। मिट्टी घट पर्याय की कर्ता है, कुम्हार नहीं। समझ में आया?

इस रोटी की क्रिया का कर्ता आटा है। स्त्री और वह क्या कहलाता है चूल्हे के ऊपर का? तवा। तुम्हारे तवा कहते हैं न, तवा। तवा और स्त्री रोटी की पर्याय की कर्ता नहीं है। क्योंकि जो परिणमे, वह कर्ता। स्त्री और तवा रोटी की पर्यायरूप हुए नहीं, इसलिए रोटी की पर्याय का कर्ता आटा है। समझ में आया? कौन करता है? ऐई... सेठ! बीड़ी बँधती है न बीड़ी? ऐसे... ऐसे... ऐसे...। तो बीड़ी के परमाणु अपनी शक्ति से ऐसी क्रिया होती है, वह उपादान। और बीड़ी बनानेवाले का विकल्प है, वह निमित्त, तो बीड़ी की पर्याय का करना वह बीड़ी के परमाणु जो हैं, वे उसके कर्ता हैं।

मुमुक्षु : तो मजदूरी तो उसे देना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : मजदूरी कौन किसे देता है? वह तो बाहर की मजदूरी दे कौन? विकल्प तो उसका था। दे कौन? पैसा तो जड़ है।

यहाँ तो कहते हैं कि जड़ देने की क्रिया होती है, वह उपादान पैसे से होती है। देनेवाले के विकल्प से नहीं। देनेवाले का विकल्प व्यवहारनय से निमित्तमात्र कहने में आता है। वह पैसा देने की क्रिया, नोट गिनने की क्रिया जड़ से हुई है। ऐई... सेठ! उसकी योग्यता से हुई है। लड़के सब ऐसा जवाब देते हैं। क्रियावतीशक्ति, ऐसा देते हैं सब। लड़के ऐसा जवाब देते हैं। सबको पूछें तो। वह वहाँ ऐसा कहता था। दिलीप।

ऐई! तुम्हारा दिलीप ऐसा कहता था। वह तुम्हें नहीं आता। परन्तु वह बोला। अर्थ कैसे जाये? तो कहे, क्रियावतीशक्ति से जाता है। वह भी तुम्हारा बोला, क्रियावतीशक्ति। भाई मनीष! मनीष भी कहे क्रियावतीशक्ति। जड़ में क्रिया रूपान्तर, क्षेत्रान्तर होना उस क्रिया से वह परमाणु पर्याय वहाँ जाती है। अपने आत्मा से संकल्प से नहीं। आहाहा! गजब बातें, भाई!

अनन्त पदार्थ को मानना और अनन्त पदार्थ को एक-दूसरे की क्रिया करने का मानना, वह अनन्तपना पृथक् रहता नहीं। वस्तु तो ऐसी वस्तु है। समझ में आया? व्यवहार से कुम्हार कर्ता है। लो, ठीक! व्यवहार से कर्ता निमित्त से कहा गया है। लो, उपमा यहाँ, हों! क्योंकि निश्चय से तो कुम्हार अपने चैतन्यमय घटाकार परिणामों का कर्ता है। हें? उसके परिणामों का कर्ता है। घट बनाने के परिणामों का कर्ता है। घट का नहीं। सेठी ने हीरे उठाये हों न हीरे, इस अँगुली की पर्याय का कर्ता अँगुली; हीरे की पर्याय का कर्ता हीरा। उसका संकल्प उसमें निमित्तमात्र। संकल्प उसका कर्ता नहीं।

यह बात यहाँ उपादान-निमित्त की सिद्ध करनी है। अन्दर। दो के बीच की बात हो। विकार और स्वभाव के बीच की बात।

मुमुक्षु : निमित्त कुछ करता नहीं, ऐसा नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसका अर्थ आया। देखो! घटाकार परिणाम वहाँ कुम्हार घट की पर्याय का कर्ता.... जहाँ उपादान कारण, वहाँ निश्चयनय और जहाँ निमित्त कारण, वहाँ व्यवहारनय है। और यदि न कहा जाये, चैतन्यात्मक घटाकार परिणाम का कर्ता सर्वथा प्रकार निश्चयनय घड़ा ही है, कुम्हार तो अचेतन घट चैतन्यात्मक घटाकार परिणाम का कर्ता किस प्रकार होगा? अचेतन घट कुम्हार के चेतनात्मक घटाकार परिणाम का कर्ता कैसे होगा? चेतनद्रव्य चेतन परिणामों का कर्ता हो। अचेतन द्रव्य चेतन परिणामों का कर्ता नहीं होता। उसी प्रकार आत्मा के कर्मों में उपादान-निमित्त के कथन जानना। लो! समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ थोड़ा लम्बा किया। सेठ ने प्रश्न किया था, यदि सर्वथा प्रकार से द्रव्यकर्म को भावकर्म का कर्ता मानने में आवे तो आत्मा कर्ता हो जाये। द्रव्यकर्म को करने के लिये निमित्त कौन होगा? इस कारण से आत्मा भावकर्मों का निमित्त पाकर

द्रव्यकर्म होते हैं, द्रव्यकर्मों से संसार होता है। वापस यह लम्बी बात की। समझ में आया ?

यहाँ (चलती गाथा में) क्या कहा ? व्यवहार से निमित्तमात्रपने के कारण जीवभाव का कर्म कर्ता है... इसका अर्थ क्या हुआ ? कि आत्मा अपना संसारभाव-विकार करे और अपने स्वभाव के आश्रय से धर्म की सम्यग्दर्शन की पर्याय करे, उस भाव में जीवभाव कर्ता है, ऐसा कहना व्यवहारनय से निमित्तपना देखकर कहते हैं। निश्चय से कर्ता है नहीं। यह तो सादी बात है। परन्तु अब अभिमान पूरे दिन ऐसा कि 'मैं करूँ'-'मैं करूँ यही अज्ञान है, गाड़ी का भार जो श्वान खींचे'। पूरे दिन दुकान पर बैठा हो तो ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा करो। लोगों को ऐसा कहे कि जाओ, ले जाओ। दो जीप ले जाओ। जहाँ मार्ग हो, वहाँ मोटर नहीं ले जाना। जीप ले जाना। बीड़ी-बीड़ी सुलगावे तब ध्यान रखना, नीचे न गिर जाये। सेठ ! यह तो दृष्टान्त। सेठ का दृष्टान्त ठीक है न ? हैं ? बड़े व्यक्ति का काम। कहो, भीखाभाई ! आहाहा !

यह बंगड़ी का हार उसमें सजावे न, कहते हैं कि वह सजाने की पर्याय-सजावे कौन ? रखने के लिये क्या शब्द है तुम्हारे ? हैं ? सजावट। तो उस सजावट की पर्याय का कर्ता वह जड़ बंगड़ी है। ऐ, भीखाभाई ! और हीराभाई का विकल्प कर्ता नहीं। उस विकल्प का कर्ता जीव है। उसमें कर्म का निमित्त कर्ता विकल्प में कहा जाता है। आहाहा ! कठिन बात, भाई !

व्यवहार से... व्यवहार से अकेला शब्द नहीं परन्तु निमित्तमात्रपने के कारण... जीव भाव का कर्ता जीव है। उसमें व्यवहार से निमित्तमात्र कर्म है। जीवभाव का कर्म कर्ता है... ऐसा कहने में आता है। और कर्म का भी जीवभाव कर्ता। क्या कहा ? जीव ने ज्ञानावरणी आदि बँधे, ऐसे छह प्रकार के भाव किये। ज्ञान की अशातना, ज्ञान की विराधना इत्यादि। उस भाव का कर्ता जीव है। वह भाव कर्म में निमित्त है। तो कर्म का कर्ता जीव को व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया ?

निश्चय से जीवभावों न तो कर्म कर्ता है और न कर्म का जीवभाव कर्ता है। देखो ! वास्तविक दृष्टि से देखो तो जीव का विकारभाव और धर्मभाव, इस पर्याय का न तो कर्म कर्ता है और न कर्म का जीवभाव कर्ता है। आठ कर्म की पर्याय होती है, उसमें

जीव की पर्याय कर्ता नहीं। समझ में आया ? यह तो निमित्त-निमित्तसम्बन्ध दोनों का ख्याल कराते हैं।

ज्ञायकभाव तो निमित्त-निमित्तसम्बन्ध रहित है। द्रव्य के साथ निमित्त-निमित्तसम्बन्ध होता नहीं। पर्याय के साथ निमित्त-निमित्तसम्बन्ध के व्यवहार का ज्ञान कराते हैं। वह और कहे, निमित्त-निमित्तसम्बन्ध व्यवहार से नहीं, निश्चय से है। ऐई ! यह तो क्या कहा ? व्यवहार से निमित्तमात्र कहा, ऐसा। निश्चय हुआ ? वह कहे नहीं। कर्म का निमित्त और यहाँ विकार हो, वह निमित्त-निमित्तसम्बन्ध निश्चय से है। लिखा है अर्थात् है, ऐसा निश्चय, ऐसा। नहीं, ऐसा नहीं है। गजब विकार और कर्म के बीच का झगड़ा ! अनादि का झगड़ा।

कहते हैं कि वास्तव में तो निश्चय नाम। वह उपचार हुआ। वास्तव में नहीं। जीवभावों का न तो कर्म कर्ता है और न कर्म का जीवभाव कर्ता है। परिणमन करे, वह कर्ता। विकार और अविकाररूप परिणमन तो जीव करता है। और जड़ की पर्याय-कर्म की अवस्था पुद्गल करता है। तो परिणमे, वह कर्ता। आत्मा कर्ता कहाँ से हुआ ? समझ में आया ? घट की पर्याय का कर्ता मिट्टी, क्योंकि मिट्टी परिणमती है। कुम्हार के परिणाम वहाँ परिणमते नहीं। निमित्त और उपादान के अभी बड़े झगड़े हैं। वह भी यहाँ से निकला, तब झगड़े उठाये, नहीं तो पड़े थे सब। हैं ? मोतीलाल और सब उठाते हैं। कितने लेख लिखे हैं !

निमित्त-निमित्तभाव व्यवहार नहीं। व्यवहार नहीं, निश्चय है। कहीं होता नहीं तुम्हारे... आते हैं थोड़ा। बैठे हैं और ऐसा-ऐसा क्या-क्या करके। यह तुम्हारी बात झूठी है। दूसरे के कारण से तुम्हारा सिर ऐसा हुआ, ऐसा नहीं है। तुम्हारे कारण से हुआ है। दूसरे के कारण से है ही नहीं। उपादान-निमित्त का सम्बन्ध है। निमित्त, वह निमित्त और नैमित्तिक निश्चय से है। अरे ! निश्चय से होते नहीं, भगवान ! यह तो क्या कहते हैं, व्यवहार से निमित्तमात्रपने के कारण जीवभाव का कर्म कर्ता है... यह तो पूर्व गाथा में आ गया है, जीवभाव कर्म द्वारा किये जाते हैं, तो कहते हैं नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

वे (जीवभाव और द्रव्यकर्म) कर्ता के बिना होते हैं, ऐसा भी नहीं है;... देखो !

अब। विकारी पर्याय जीव की और धर्म की पर्याय का कर्म कर्ता नहीं और कर्म की पर्याय का आत्मपर्याय कर्ता नहीं। और कर्ता बिना होता नहीं। जीव की पर्याय भी कर्ता बिना होती नहीं और जड़कर्म भी कर्ता बिना होते नहीं। कर्ता बिना होते हैं, ऐसा भी नहीं। **क्योंकि निश्चय से जीवपरिणामों का जीव कर्ता है...** देखो! यहाँ सिद्ध यह करना है। समझ में आया ?

भगवान परमस्वभावभाव पारिणामिकभाव होने पर भी पर्याय में कर्ता जीव है। आहाहा! कहो, बराबर है ? मैं यहाँ आया तो दुकान की व्यवस्था का काम बराबर चलता है। मैं नहीं था और नौकर था और लड़का बैठा था तो व्यवस्था बराबर नहीं थी। यह बात यहाँ मिथ्या सिद्ध करते हैं। ऐसा मानते हैं। सेठ बैठे हों तो लोग आने लगे। लोग आये-जाये धन्धा चले। वह मूढ़ है। वह तो पर की क्रिया है। पर की क्रिया तुझसे कहाँ हुई है ? व्यवहार से का अर्थ क्या ? होने में जो निमित्त है, वह व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय से तो उसकी पर्याय उससे हुई है। वह तो निमित्त कौन था, इसका ज्ञान कराया है। लाडुलालजी !

यह होशियार में अन्तर पड़ता है या नहीं ? लाडुलालजी बैठे हों तो कितने आने लगे। नौकर को बैठाओ, देखो! ऐई दुकान पर। हं... साधारण नौकर को दुकान पर बैठाओ। हमारे यहाँ था बोटोद में। रायचन्द गाँधी थे न, बाजार की गली बड़ी ऐसी। उसमें नौकर-बौकर ऐसे बैठे हों। घोड़ा हो न लकड़ी का, क्या कहा जाता है उसे ? टेबल। पैर डालकर बैठे ऐसे, बस बैठे हों। एक व्यक्ति ध्यान रखे। सेठ आवे तो ध्यान रखना। पूरी गली बाजार की बड़ी न। रायचन्द गाँधी ऐसे लकड़ी लेकर वृद्ध व्यक्ति बड़ी इज्जतदार। जहाँ सेठ आते हुए देखे वहाँ, वे आये!

मुमुक्षु : काम करने लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाजार की गली बहुत बड़ी। कौने से दिखाई दे। ऐ... सेठ आते हैं... सब तैयार होकर पगड़ी-बगड़ी बाँधकर ऐसे पड़े हों सब। कहो, इतना अन्तर पड़ता है या नहीं निमित्त के कारण ? ऐसा हमारे यहाँ दुकान गली में अन्तिम थी, बाजार में। खानदानी व्यक्ति बड़ी दुकान। सेठ आये वहाँ तो तैयार होकर बहियाँ खुल्ली करके (बैठ जाये)। सेठ न हो तो सोवे। इतना निमित्त में अन्तर पड़ता है या नहीं ? शोभालालजी !

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष आपने ही इसका जवाब दिया ।

पूज्य गुरुदेवश्री : शोभालालजी काम पर जाये, तब वे पैसे देने आवें । कहो, ऐसा बनता है या नहीं ? गाँव में न आवे तो कौन उन्हें देने आवे ? किसके कारण से ? वह तो यह जड़ की पर्याय स्वयं के कारण से वहाँ जाती है । शोभालाल आये तो पैसे आये, ऐसा है नहीं । अरे ! अरे ! गजब बात, भाई !

नवनीतभाई ! देखो ! नवनीतभाई भी वहाँ जलगाँव में गये थे । नहीं ? अपने जलगाँव में गये थे न ? ऐसे जहाँ गये वहाँ नौकर-बौकर सब सेठ को... सेठ को भी बहुत ऐसे जलगाँव में । सब लोग कमरे में आये । जलगाँव में बड़ा पम्प है । पावर हाउस । यहाँ अब जाना है न वहाँ जलगाँव ? उसे आना है, वहाँ भारी वह ! सेठ आवे तब वे सब तैयार हों और उससे पहले तैयार नहीं हों तो उसमें कारण कौन ? सेठ का उसमें कुछ कारण है या नहीं ?

मुमुक्षु : निमित्त कारण कहा ।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो निमित्त कारण का अर्थ क्या हुआ ? वह तो दूसरी चीज़ उपस्थित है, इतना । परन्तु जो कार्य हुआ, वह निमित्त से हुआ नहीं । व्यवहार प्रधानता का अर्थ क्या ? कर सकता नहीं । ठीक है । सेठी ने किया है न सब अभिमान ! परन्तु वहाँ व्यवहार प्रधान रखो और यहाँ, निश्चय प्रधान यहाँ रखो । हैं ? अनेकान्त हो कि पर से हुआ और अपने से नहीं, इसका नाम अनेकान्त है । पर से भी हुआ और अपने से भी हुआ, ऐसे दोनों अनेकान्त नहीं, वह तो फुदड़ीवाद हुआ । आहाहा ! गजब काम !

भगवान तो अनन्त द्रव्य कहते हैं, अनन्त पदार्थ है । अनन्त आत्मा है, अनन्त परमाणु है । तो अनन्त का अनन्तपने अस्तित्व कैसे रहेगा ? उसकी बात तो यहाँ चलती है ।

अनन्त जीव हैं, अनन्त परमाणु हैं । अनन्त की संख्या एक-दूसरे की क्रिया करे तो एक दूसरे में मिल जाती है, तो अनन्त की संख्या पृथक् नहीं रहती । तो अनन्त को जाननेवाला अपने ज्ञान में अनन्त जाने, ऐसा तो रहा नहीं । घोटाला हुआ । इससे यह हुआ और इससे यह हुआ, ऐसा ज्ञान जाने, वह मिथ्याज्ञान हुआ । समझ में आया ?

मुमुक्षु : पूरा विरोध हुआ ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण विरोध हुआ। क्योंकि निश्चय से जीवपरिणाम का जीव कर्ता है। सम्यग्दर्शन के परिणाम का कर्ता जीव है। दर्शनमोह का अनुदाय हुआ तो सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। कल यह प्रश्न करता था, भाई! कर्म का उदय-दर्शनमोह का उदय हो और मिथ्यात्व न हुआ हो तो बताओ? अरे भगवान! क्या करता है तू? और दर्शनमोह का अनुदाय हो और समकित न पावे तो बताओ। अरे! यह तो निमित्त का कथन है, भाई! आहाहा! तेरे दृष्टान्त खोटे ले! प्रश्न किये हैं, हों! यह सब प्रश्न हमारे आ गये हैं। अखबार में आ गये हैं। मिथ्यात्व का उदय हो जड़ का-दर्शनमोह का और मिथ्यात्व न पावे, यह एक दृष्टान्त बताओ। ऐसा कहते हैं। अरे! दृष्टान्त ऐसे हैं। सुन तो सही!

मिथ्या परिणाम आत्मा राग में आनन्द माने, पुण्य के परिणाम में आनन्द माने, शरीर में सुख माने, स्त्री-कुटुम्ब में सुख माने, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव उस भाव का निश्चय से कर्ता जीव है। दर्शनमोह का उदय है, वह तो निमित्त है। निमित्तमात्र उसे कहा है। यहाँ तो यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अपना आनन्द अपने में है, उसे भूलकर पर में आनन्द माने, वह तो तेरी स्वतन्त्र मिथ्यात्व की क्रिया तू करता है। कर्म से हुई है, यह तो निमित्त से कथन है। हें? सेठी! आहाहा! लो, भाई! महेन्द्रभाई जैसा विनयवाला लड़का हो। तो हृदय ऐसे स्थिर हो! हाश! यह कहते हैं हृदय में सुख माना, वह किसने मनाया? कर्म ने मनाया है? सेठी! क्या? स्वयं कल्पना की है कि मेरा लड़का विनयवन्त हुआ और मेरी.... क्या कहलाते हैं? हें? बराबर वैयावृत्य आदि करता है, हें? मेरी आज्ञा में रहता है। विनयवाला है, भाई! और इससे अपने को सुख ही होता है। सुख ही लगता है। नहीं? डॉक्टर जैसा लड़का हो तो कितने काम करे! देखो! यहाँ पड़े हो तो, वह सब वहाँ करता है। देखो! धूल भी नहीं। सुन तो सही! डालचन्दजी तो पर हुए। पर में सुख है, ऐसा आया कहाँ से? उस सुख की कल्पना की, वह मिथ्यात्व की है। तो उस मिथ्यात्व का कर्ता जीव है। कर्म नहीं है, यह कहते हैं। देखो!

और कर्मपरिणामों का कर्म (-पुद्गल) कर्ता है। कर्म की पर्याय जो हुई, उसका कर्ता कर्म है। जीव है नहीं। यहाँ वह यथार्थ और राग दो पक्ष भिन्न करने की बात है। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - ६१

कुर्व्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स।
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेदव्वं॥६१॥

कुर्वन् स्वकं स्वभावं आत्मा कर्ता स्वकस्य भावस्य।
न हि पुद्गलकर्मणामिति जिनवचनं ज्ञातव्यम्॥६१॥

निश्चयेन जीवस्य स्वभावानां कर्तृत्वं पुद्गलकर्मणामकर्तृत्वं चागमेनोपदर्शितमत्र इति ॥६१॥

निजभाव परिणत आत्मा कर्ता स्वयं के भाव का।
कर्ता न पुद्गल कर्म का यह कथन है जिनदेव का॥६१॥

अन्वयार्थ :- [स्वकं स्वभावं] अपने *स्वभाव को [कुर्वन्] करता हुआ [आत्मा] आत्मा [हि] वास्तव में [स्वकस्य भावस्य] अपने भाव का [कर्ता] कर्ता है, [न पुद्गलकर्मणाम्] पुद्गलकर्मों का नहीं; [इति] ऐसा [जिनवचनं] जिनवचन [ज्ञातव्यम्] जानना।

टीका:-निश्चय से जीव को अपने भावों का कर्तृत्व है और पुद्गलकर्मों का अकर्तृत्व है, ऐसा यहाँ आगम द्वारा दर्शाया गया है॥६१॥

प्रवचन-५८, गाथा-६१-६२, पौष कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक -०४-०२-१९७०

पंचास्तिकाय, गाथा ६१

कुर्व्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स।
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेदव्वं॥६१॥
(निजभाव परिणत आत्मा कर्ता स्वयं के भाव का।
कर्ता न पुद्गल कर्म का यह कथन है जिनदेव का॥६१॥)

* यद्यपि शुद्धनिश्चय से केवलज्ञानादि शुद्धभाव 'स्वभाव' कहलाते हैं, तथापि अशुद्धनिश्चय से रागादिक भी 'स्वभाव' कहलाते हैं।

गाथा - ६१। जिनवचन को बीच में डाला। लो! बहुत सिद्धान्त है न।

टीका :- पौने दो लाईन हैं। परन्तु इसमें पूरा सार है। क्या कहते हैं, देखो! निश्चय से... वास्तव में जीव को अपने भावों को कर्तृत्व है... राग-द्वेष-भाव, पुण्य-पाप-भाव, मिथ्यात्व-भाव उसे यहाँ स्वभाव कहा है। अशुद्धनिश्चय से अपने में होता है न? समझ में आया?

विकारी पर्याय, वह अपनी पर्याय अपने में होती है। इस कारण उसे स्वभाव कहा। और उस स्वभाव का कर्ता आत्मा है, ऐसा कहा। अपनी पर्याय का कर्ता है और पुद्गलकर्मों का अकर्तृत्व है। पुद्गल जड़कर्म का कर्तृत्व उसे है नहीं। उसे है नहीं। समझ में आया? ऐसे आओ, ऐसे कोठारी! इनका नाम जयन्तीभाई न! क्या समझ में आया?

वास्तव में यह आत्मा जो है, आत्मा। वह अपनी पर्याय पुण्य-पाप, काम, क्रोध, भ्रमणा, ऐसी अपनी पर्याय की अवस्था का कर्ता है। परवस्तु का आत्मा कर्ता नहीं। यहाँ तो कर्म की बात है। **पुद्गलकर्मों का अकर्तृत्व है...** जितने विकारी परिणाम हों, उतने प्रमाण में कर्म बाँधे तथापि, ऐसा होने पर भी, कर्म की पर्याय का आत्मा कर्ता नहीं है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? बाँधे, बाँधे यह सब व्यवहार के वचन हैं। जीव बाँधे किसे? अपनी पर्याय को बाँधे, भावबन्ध। वह अशुद्ध निश्चयनय। भगवान की सूक्ष्म बात! समझ में आया?

यहाँ तो नजदीक में जो अन्दर कर्मसम्बन्ध है, जितने प्रमाण में दोष करे, उतने प्रमाण में कर्म सामने बाँधते हैं। जैसे कि मिथ्यात्वभाव तीव्र करे, दर्शनमोह तीव्र बाँधे। मन्द करे तो मन्द बाँधे। और जितना राग-द्वेष का भाव करे, उतना कर्मबन्धन होता है, तथापि उतना होने पर भी जीव अपने विकार का कर्ता है, परन्तु कर्मबन्धन की पर्याय का कर्ता नहीं है। क्योंकि वह तो परद्रव्य है।

मुमुक्षु : उपादान कर्ता नहीं परन्तु निमित्त कर्ता तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त कर्ता, वह तो आरोप है। निमित्त कर्ता का अर्थ आरोप है। वस्तुस्थिति नहीं। यह तो कर्म का कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। तो तुम्हारी बीड़ी-बीड़ी का कर्ता तो आत्मा है नहीं।

मुमुक्षु : यह कहाँ से आया बीड़ी का कर्ता....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें नहीं आया ? यहाँ तो कहते हैं कि नजदीक, इसलिए तो पहले कहा। अपने सद्भाव है न पाठ में। देखो! 'कुर्व सगं, सहावं' भगवान आत्मा अपने को भूले तो अपनी पर्याय अर्थात् अवस्था में भ्रमणा, राग-द्वेष आदि पर्याय करे।... समझ में आया ?

अभी खबर नहीं कि मैं क्या करता हूँ और मुझसे क्या होता है। यह तो मैं कर्म बाँधता हूँ। तो कर्म तो जड़ पर्याय है। जड़ की अवस्था का कर्ता तो जड़ है। आत्मा उसका कर्ता नहीं। तो शरीर, वाणी, मन, पैसा, इज्जत, कीर्ति जड़ पर पर्याय है, उसका कर्ता आत्मा नहीं है। धन्धा पानी की क्रिया होती है न, वह जड़ की है। आत्मा उसका कर्ता नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

निश्चय से जीव को अपने भावों को कर्तृत्व है... देखो! पुद्गलकर्मों का अकर्तृत्व है... जड़कर्म जो आठ कर्म बँधते हैं, उनका कर्तृत्व आत्मा में है नहीं। **ऐसा यहाँ आगम द्वारा दर्शाया गया है।** भगवान की वाणी में-जिनवर वाणी में परमात्मा, पाठ है न मूल पाठ में। 'जिळवयळं' देखो, 'जिळवयळं भुळेदव्वं' वीतराग की वाणी में, ऐसा आया है। समझ में आया ?

अब एक ओर यह माने और दूसरी बात जब ऐसी आवे कि विकारी पर्याय है, उसका जब तक कर्ता होता है, तब तक वह मिथ्यादृष्टि है। वह दूसरी बात है। यहाँ तो पर का कर्ता नहीं और अपनी अवस्था का स्वयं कर्ता है, इतना सिद्ध करके पर से भिन्न बतलाना है। समझ में आया ? कोई कहे कि भाई! क्या करें, जैसा कर्म का उदय आवे वैसा हमारा में भाव होता है—तो यह बात झूठी है। ऐसा नहीं है। तेरी जितनी प्रमादता और आलस, हिंसा है, उतने प्रमाण में तुझमें तुझसे विकार होता है। चाहे तो मिथ्यात्व हो। समझ में आया ? या राग-द्वेष हो, विषय-वासना हो, क्रोध, मान, माया, लोभ हो या पुण्य-पाप के दो प्रकार से विकल्प हैं, वे असंख्य प्रकार के हों, उनका कर्ता आत्मा है। पर के—कर्मबन्धन का कर्ता आत्मा नहीं है। समझ में आया ?

दूसरी बात ऐसी भी आती है कि इतनी हृदपूर्वक भी यथार्थ नहीं। विकार की पर्याय पर जहाँ तक दृष्टि है, वहाँ तक विकार का कर्ता है, वह अज्ञानभाव से है। अपना

ज्ञायकस्वभाव चिदानन्द प्रभु ध्रुव है, ऐसी दृष्टि होने से वह विकारी की पर्याय का भी कर्ता नहीं, उसका ज्ञाता और जाननेवाला है। तदुपरान्त आगे लें तो अपनी निर्विकारी पर्याय का भी द्रव्य कर्ता नहीं। आहाहा! कर्ता द्रव्य नहीं, आत्मा नहीं। पर्याय का कर्ता पर्याय है। पर्याय में कर्ता-कर्म की शक्ति पड़ी है। समझ में आया? ऐसा अपेक्षा से सब समझना चाहिए। बापू! अनन्त काल से बराबर नहीं समझे तो एकान्त हो जायेगा। समझ में आया? वस्तु भगवान् जिनवाणी में ऐसा आया है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव ने जैसा जाना, वैसा इन्द्र और गणधर के समक्ष फरमाया। तीर्थकर त्रिलोकनाथ परमात्मा— भाई भैया! तू तेरी विकारी दशा का कर्तृत्व तुझमें है, परन्तु पर की क्रिया और पर का कार्य तुझसे नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी पर से अपनी भिन्नता बताकर, फिर आगे कहते हैं कि भैया! तेरा स्वभाव तो भगवान् ज्ञायक शुद्ध चैतन्य है न! तेरा स्वभाव तो भगवान् ध्रुव चैतन्य पड़ा है। तो वह स्वभाव राग को, विकार को कैसे करे? क्योंकि स्वभाव की दृष्टि सम्यक्त्व हुई तो विभाव का कर्ता आत्मा नहीं होता। विभाव जो होता है, उसका तो ज्ञाता-दृष्टा रहता है। इससे भी आगे जायें तो विभाव जो विकार है, उसको जानने की पर्याय है, जानने की पर्याय, उसका भी कर्ता द्रव्य नहीं। पर्याय है न? पर्याय का कर्ता पर्याय है, द्रव्य कर्ता नहीं। क्योंकि द्रव्य और पर्याय दोनों भिन्न चीज़ है। सेठ! अभी तक सुना भी नहीं जैन में। भाई कहते हैं कि सुनने को भी नहीं मिलता। पैसा इकट्ठा करने में कितनी दरकार करता है। जहाँ और तहाँ से प्राप्त करता है या नहीं? मानता है, हों! क्या? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! भाई! तू आत्मा है या नहीं? है या नहीं? है तो तेरा अस्तित्व है और तुझमें कोई चीज़ शाश्वत् है या नहीं? यदि तू शाश्वत् चीज़ है तो तेरा स्वभाव असली कायम नित्य कोई स्वभाव है या नहीं? तो भगवान् का नित्य स्वभाव तो ज्ञान, आनन्द, शान्ति वह नित्य स्वभाव है। आत्मा का तो वह स्वभाव है तो उस स्वभाव की दृष्टि से विकार का भी कर्ता नहीं। विकार भी पर हो गया। और उस दृष्टि से द्रव्यस्वभाव की दृष्टि में पर्याय से द्रव्य का निर्णय हुआ। पर्याय से 'द्रव्य शुद्ध है', ऐसा निर्णय हुआ। परन्तु उस पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं। अरे! गजब बात भाई! ऐई! सम्यग्दर्शन की पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं। यह वीतराग की गजब बात है! समझ में आया? कहो, सेठी! यह बात जरा कहो, थोड़ी विशेष स्पष्ट करो, ऐसा कहते हैं। वन्स मोर करते हैं।

कहते हैं, भाई! जैसी चीज़ है, वैसा तेरा ज्ञान सच्चा होना चाहिए। सच्चे ज्ञान बिना सच्ची दृष्टि नहीं और सच्ची दृष्टि बिना धर्म नहीं। जन्म-मरण का उद्धार करने की चीज़ तेरे पास नहीं है, यदि सच्ची दृष्टि न हो तो। समझ में आया? तो कहते हैं कि भगवान आत्मा अपनी पर्याय-अवस्था में जितने प्रकार के पुण्य-पाप के विकार करता है, उसका उसे कर्तापना है। क्योंकि उसकी पर्याय का परिणामन है। परन्तु उससे पर का कर्ता हो जाये, आत्मा कर्म बाँधे और कर्म तोड़े, ऐसा नहीं है। क्योंकि कर्म परद्रव्य है। तो परद्रव्य अर्थात् परवस्तु है। तो परवस्तु की अवस्था का कर्ता स्ववस्तु नहीं होती।

और इससे आगे जाने पर कि विकारी पर्याय भी क्षणिक है, भगवान तो निराकुल आनन्दकन्द आत्मा है, ऐसे निज कायमी असली स्वभाव की दृष्टि करने से कृत्रिम विकार का कर्ता भी असली स्वभाव दृष्टिवान है नहीं। अर्थात् असली स्वभाव है नहीं। असली स्वभाव दृष्टिवान है नहीं कि असली स्वभाव जो त्रिकाल है, वह भी विकार का कर्ता है नहीं।

इससे आगे जायें तो विकार की जो पर्याय होती है, उसे सम्यग्दृष्टि धर्मी अपने द्रव्यस्वभाव को जानता है, उसमें जो राग आया, उसे जानता है। अपने अस्तित्व में रहकर राग भिन्न है, ऐसा जानता है। वह जानने की पर्याय जो है अथवा सम्यग्दर्शन की पर्याय है, उस पर्याय का कर्ता भी द्रव्य नहीं। अरे! गजब बात है न! ऐसा समझना पड़ेगा, सत् की शरण लेना हो तो। नहीं तो कल्याण नहीं होगा। भटक मरे और दुःखी... दुःखी... दुःखी। आहाहा!

कहते हैं निश्चय से जीव को अपने भावों को कर्तृत्व है और पुद्गलकर्मों का अकर्तृत्व है... अरे! पुद्गल कर्म जितने प्रमाण में विकार, उतने प्रमाण में कर्म बाँधे तो कर्म की पर्याय की अवस्था का कर्ता आत्मा नहीं, तो फिर शरीर, वाणी, माल, पानी यह तुम्हारे बाहर की। पैसा, तम्बाकू यह सब बाहर की चीज़, वह जड़ की चीज़ अस्तित्व है और पर आत्मा। इन सबकी पर्याय-अवस्था जो कार्य होता है वह, उस द्रव्य से होता है, तुझसे है नहीं। समझ में आया? इतनी लाईन में सब भर दिया है। यहाँ आगम द्वारा दर्शाया गया है। आगम अर्थात् भगवान की वाणी में त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतराग की वाणी में ऐसा आया है।

गाथा - ६२

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण॥६२॥

कर्मापि स्वकं करोति स्वेन स्वभावेन सम्यगात्मानम्।
जीवोऽपि च तादृशकः कर्मस्वभावेन भावेन॥६२॥

अत्र निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वात्कर्मणो जीवस्य च स्वयं स्वरूपकर्तृत्वमुक्तम् ।

कर्म खलु कर्मत्वप्रवर्तमानपुद्गलस्कन्धरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणं, कर्मत्वगमनशक्तिरूपेण करणतामात्मसात्कुर्वत्, प्राप्यकर्मत्वपरिणामरूपेण कर्मतां कलयत्, पूर्वभावव्यपायेऽपि ध्रुवत्वालम्बनादुपात्तापादानत्वम्, उपजायमानपरिणामरूपकर्मणाश्रीयमाणत्वादुपोढसम्प्रदानत्वम्, आधीयमानपरिणामाधारत्वाद्गृहीताधिकरणत्वं, स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानं न कारकान्तरमपेक्षते । एवं जीवोऽपि भावपर्यायेण प्रवर्तमानात्मद्रव्यरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणो, भावपर्यायगमनशक्तिरूपेण करणतामात्मसात्कुर्वन्, प्राप्यभावपर्यायरूपेण कर्मतां कलयन्, पूर्वभावपर्यायव्यपायेऽपि ध्रुवत्वालम्बनादुपात्तापादानत्वः, उपजायमान भावपर्यायरूपकर्मणा-श्रीयमाणत्वादुपोढसम्प्रदानत्वः, आधीयमानभावपर्यायाधारत्वाद्गृहीताधि करणत्वः, स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानो न कारकान्तरमपेक्षते । अतः कर्मणः कर्तुर्नास्ति जीवः कर्ता, जीवस्य कर्तुर्नास्ति कर्म कर्तृ निश्चयेनेति ॥६२॥

कार्मण अणु निज कारकों से करम पर्यय परिणमं ।

जीव भी निज कारकों से विभाव पर्यय परिणमं ॥६२॥

अन्वयार्थ :- [कर्म अपि] कर्म भी [स्वेन स्वभावेन] अपने स्वभाव से [स्वकं करोति] अपने को करते हैं [च] और [तादृशकः जीवः अपि] वैसा जीव भी [कर्मस्वभावेन भावेन] कर्मस्वभाव भाव से (-औदयिकादि भाव से) [सम्यक् आत्मानम्] बराबर अपने को करता है।

टीका:-निश्चयनय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के (-अपने-अपने रूप के) कर्ता है, ऐसा यहाँ कहा है।

कर्म वास्तव में (१) कर्मरूप से प्रवर्तमान पुद्गलस्कन्धरूप से कर्तृत्व को धारण

करता हुआ, (२) कर्मपना प्राप्त करने की शक्तिरूप करणपने को अंगीकृत करता हुआ, (३) प्राप्य ऐसे कर्मत्वपरिणामरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ, (४) पूर्व भाव का नाश हो जाने पर भी ध्रुवत्व को अवलम्बन करने से जिसने अपादानपने को प्राप्त किया है ऐसा, (५) उत्पन्न होनेवाले परिणामरूप कर्म द्वारा समाश्रित होने से (अर्थात् उत्पन्न होनेवाले परिणामरूप कार्य अपने को दिया जाने से) सम्प्रदानपने को प्राप्त और (६) धारण किये हुए परिणाम का आधार होने से जिसने अधिकरणपने को ग्रहण किया है ऐसा - स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता।

इसी प्रकार जीव भी (१) भावपर्यायरूप से प्रवर्तमान आत्मद्रव्यरूप से कर्तृत्व को धारण करता हुआ, (२) भावपर्याय प्राप्त करने की शक्तिरूप से करणपने को अंगीकृत करता हुआ, (३) प्राप्य ऐसी भावपर्यायरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ, (४) पूर्व भावपर्याय का नाश होने पर ध्रुवत्व का अवलम्बन करने से जिसने अपादानपने को प्राप्त किया है ऐसा, (५) उत्पन्न होनेवाले भावपर्यायरूप कर्म द्वारा समाश्रित होने से (अर्थात् उत्पन्न होनेवाला भावपर्यायरूप कार्य अपने को दिया जाने से) सम्प्रदानपने को प्राप्त और (६) धारण की हुई भावपर्याय का आधार होने से जिसने अधिकरणपने को ग्रहण किया है ऐसा - स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता।

इसलिए निश्चय से कर्मरूप कर्ता को जीव कर्ता नहीं है और जीवरूप कर्ता को कर्म कर्ता नहीं है। (जहाँ कर्म कर्ता है, वहाँ जीव कर्ता नहीं है और जहाँ जीव कर्ता है, वहाँ कर्म कर्ता नहीं है।)

भावार्थ :- (१) पुद्गल स्वतन्त्ररूप से द्रव्यकर्म को करता होने से पुद्गल स्वयं ही कर्ता है; (२) स्वयं द्रव्यकर्मरूप से परिणामित होने की शक्तिवाला होने से पुद्गल स्वयं ही करण है; (३) द्रव्यकर्म को प्राप्त करता - पहुँचता होने से द्रव्यकर्म कर्म है, अथवा द्रव्यकर्म से स्वयं अभिन्न होने से पुद्गल स्वयं ही कर्म (-कार्य) है; (४) अपने में से पूर्व परिणाम का व्यय करके द्रव्यकर्मरूप परिणाम करता होने से और पुद्गलद्रव्यरूप से ध्रुव रहता होने से पुद्गल स्वयं ही अपादान है; (५) अपने को द्रव्यकर्मरूप परिणाम देता होने से पुद्गल स्वयं ही सम्प्रदान है; (६) अपने में अर्थात् अपने आधार से द्रव्यकर्म करता होने से पुद्गल स्वयं ही अधिकरण है।

इसी प्रकार (१) जीव स्वतन्त्ररूप से जीवभाव को करता होने से जीव स्वयं ही कर्ता है; (२) स्वयं जीवभावरूप से परिणमित होने की शक्तिवाला होने से जीव स्वयं ही करण है; (३) जीवभाव को प्राप्त करता-पहुँचता होने से जीवभाव कर्म है, अथवा जीवभाव से स्वयं अभिन्न होने से जीव स्वयं ही कर्म है; (४) अपने में से पूर्व भाव का व्यय करके (नवीन) जीवभाव करता होने से और जीवद्रव्यरूप से ध्रुव रहने से जीव स्वयं ही अपादान है; (५) अपने को जीवभाव देता होने से जीव स्वयं ही सम्प्रदान है; (६) अपने में अर्थात् अपने आधार से जीवभाव करता होने से जीव स्वयं ही अधिकरण है।

इस प्रकार, पुद्गल की कर्मोदयादिरूप से या कर्मबंधादिरूप से परिणमित होने की क्रिया में वास्तव में पुद्गल ही स्वयमेव छह कारकरूप से वर्तता है, इसलिए उसे अन्य कारकों की अपेक्षा नहीं है तथा जीव की औदयिकादि भावरूप से परिणमित होने की क्रिया में वास्तव में जीव स्वयं ही छह कारकरूप से वर्तता है, इसलिए उसे अन्य कारकों की अपेक्षा नहीं है। पुद्गल की और जीव की उपरोक्त क्रियाएँ एक ही काल में वर्तती है, तथापि पौद्गलिक क्रिया में वर्तते हुए पुद्गल के छह कारक जीवकारकों से बिल्कुल भिन्न और निरपेक्ष हैं तथा जीवभावरूप क्रिया में वर्तते हुए जीव के छह कारक पुद्गलकारकों से बिल्कुल भिन्न और निरपेक्ष हैं। वास्तव में किसी द्रव्य के कारकों को किसी अन्य द्रव्य के कारकों की अपेक्षा नहीं होती॥६२॥

गाथा - ६२ पर प्रवचन

अब ६२ गाथा। ६२ गाथा बहुत ऊँची है। यह गाथा चर्चित हुई थी, हों! (संवत्) २०१३ के वर्ष में। कौन सा गाँव, क्या कहलाता है मधुवन-मधुवन। मधुवन में थे तुम? कमरे में वर्णीजी थे। सब पण्डित थे। बहुत पण्डित थे। २०१३ के वर्ष। तेरह वर्ष हुए। नीचे दोनों थे। परन्तु वहाँ अन्दर चर्चा में नहीं थे। चर्चा में नहीं थे। उस समय पैसा देना और सब। वहाँ वर्णीजी के साथ बहुत ही चर्चा हुई थी। मधुवन में २०१३ के वर्ष। तेरह वर्ष हुए।

कि विकार जो है, वह आत्मा स्वयं से करता है निश्चय से, पर की अपेक्षा रखे बिना। कर्म है तो विकार होता है, ऐसा भी नहीं। क्योंकि वह है तो उसके अस्तित्व में

है। उसके अस्तित्व से विकार का अस्तित्व होता है, ऐसा है नहीं। पण्डितों में गड़बड़ हो गयी। ऐसी बात करें तो पण्डितों में गड़बड़ हो गयी। वर्णीजी! बंसीधरजी! (वे लोग कहे) यह तो अभेद की बात है, अभेद की बात है। ऐसा नहीं है। विकार तो स्वयं से नहीं होता। कर्म है तो विकार होता है। कहा, ऐसा कभी भी है नहीं। तब यह ६२ गाथा ली, कहा था। यह ६२। कहा कि, देखो! विकार स्वयं से भूल कर्म की, निमित्त के उदय की अपेक्षा रखे बिना अपने से विकार अपने कारण से स्वयं कर्ता होकर, अपने साधन होकर, अपने आधार से विकार अपने से होता है। पण्डितों में गड़बड़ हो गयी। मगनभाई! फिर एक फूलचन्दजी बोले। स्वामीजी कहते हैं कि निश्चय से विकार दोष पर की अपेक्षा रखे बिना स्वयं से होता है, ऐसा कहते हैं। फूलचन्दजी अकेले बोले। समझ में आया?

अभी जैन बहुत ही गड़बड़ी है। कर्म से विकार होता है, कर्म आत्मा को भटकाते हैं। कर्म एक गति में से दूसरी गति में ले जाते हैं। कर्म आत्मा है। आत्मा तो पंगु है। परमात्मप्रकाश में कहा है न! यह रतनचन्दजी कहते हैं। देखो! आत्मा पंगु है। किस अपेक्षा से है, सुन तो सही। समझ में आया? गति करना और यह करना, वह क्रिया आत्मा की नहीं। समझ में आया?

आत्मा तो ज्ञान-दर्शन-आनन्द का कन्द है। भूले तो अपनी पर्याय को करे। परन्तु गति आदि करे और पर की क्रिया करे और पर के कारण चले, ऐसा नहीं है। तत्त्व की बहुत ही विरुद्ध। समझ में आया? सेठ! यह वह गाथा है, लो! २०१३ के वर्ष में तुम वहाँ थे। पाँच के ग्यारह हो जायेंगे इसमें। लो! सेठ ने कुछ पाँच हजार कहे थे, सागर विद्यालय में। फिर कहे, सागर जाते-जाते ग्यारह हजार हो जायेंगे। हम बैठे थे न मधुवन में। देखो! ६२।

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं।

जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण॥६२॥

कार्मण अणु निज कारकों से करम पर्यय परिणमें।

जीव भी निज कारकों से विभाव पर्यय परिणमें॥६२॥

यह अभिन्न शब्द तब आया था, भाई! यह तो अभिन्न है, कहे। अभिन्न का अर्थ

क्या ? समझ में आया ? पण्डित ने यह अभिन्न शब्द कहा था। यह तो अभिन्न की बात है। परन्तु अभिन्न का अर्थ क्या ? पर से होता नहीं और अपने से होता है, इसका नाम अभिन्न है। दोष तू करे और डाले कर्म के ऊपर आरोप, बड़ा अपराध करता है। कहा, अन्याय करता है। बहुत ही आये थे। व्याख्यान में भी आये थे। समझ में आया ?

‘जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभवे नहीं।’ कि विकार करे तू, भ्रमणा करे तू, भ्रमणा और राग-द्वेष तू करे और उसमें कहे कि कर्म से होता है, कर्म से होता है। बड़ा अन्याय करता है। समझ में आया ? कहे, यह तो जहाँ-तहाँ से ले लेकर अपनी बात सिद्ध करते हैं। ऐसा वहाँ कहा था। टुकड़े (वाक्यांश) लेकर। परन्तु जहाँ-तहाँ से लेकर सत्य सिद्ध करते हैं या असत्य सिद्ध करते हैं ? सुन तो सही ? आहाहा ! क्या हो ? परन्तु इन सेठियाओं को भान नहीं होता। और ऊपर जो कहे, उसकी हाँ-हाँ करके चले जायें।

मुमुक्षु : अभ्यास न हो तो क्या करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अभ्यास न करना हो तो जैन में जन्मे किसलिए ? तुम्हारा बचाव करते हैं। सामने ये बैठे हों। जय महाराज ! सच्ची बात है।

कर्म हो तो विकार होता है। कर्म बिना विकार होगा ? सिद्ध में कर्म नहीं और विकार होता नहीं। देखो ! तुम्हें खबर नहीं ? सिद्ध में विकार है ? परमात्मा सिद्ध हुए, विकार है ? क्यों नहीं ? कर्म नहीं। वहाँ कर्म नहीं तो विकार नहीं। इतना भी समझ में नहीं आता ? हाँ, महाराज ! ऐसा अनादि से... (चला करता है)। नवनीतभाई ! यह प्रश्न हुआ था न, ईडर में। ईडर नहीं ? वह विकासचन्दजी ! राजकोट चर्चा हुई न, विकासचन्दजी ने प्रश्न किया था। राजकोट में सभा भरी और तब सब पटेल थे। सिद्ध में कर्म नहीं तो विकार नहीं होता, इसलिए कर्म है, वहाँ विकार होता है। कहा, ऐसा बापू ! वह कर्म है तो विकार होता है ! उसके अस्तित्व से यहाँ अस्तित्व होता है ? आहा ! ऐसी की ऐसी विपरीतता... परन्तु यह बनिये को कहाँ व्यापार के कारण धन्धे के कारण निर्णय करने की फुरसत कहाँ है ? समझ में आया ? ऐ रसिकभाई ! आहाहा !

क्या कहते हैं ? **निश्चयनय से...** निश्चय अर्थात् वास्तविक ज्ञान के अभिप्राय से **अभिन्न कारक होने से...** अभिन्न कारक होने से, जड़ की पर्याय का जड़ में होना और

जीव की पर्याय—पर्याय अर्थात् अवस्था, विकार अपने से होना वह अभिन्न। द्रव्य स्वयं से विकार करता है। जड़ स्वयं से पर्याय करता है। यह अभिन्न हुआ। भिन्न द्रव्य कर्ता है, ऐसा नहीं है।

कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के (-अपने-अपने रूप के) कर्ता हैं... स्वयं स्वरूप के—स्वरूप शब्द से यहाँ विकार लेना है। समझ में आया? यहाँ तो अकेले अशुद्ध की बात है। यहाँ तो अशुद्ध की बात है। यहाँ तो कर्म को परचीज़ सिद्ध करना है। कर्म अर्थात् अपना कार्य। अपने कार्य का कर्ता आत्मा है। समझ में आया? आहाहा!

अभिन्न कारक होने से... अभिन्न कारकों का अर्थ क्या? कि जड़ कर्म की पर्याय जड़ से होती है, वह अभिन्न हुआ। उस पर्याय का कर्ता भिन्न आत्मा है नहीं। और अपने विकार का कर्ता आत्मा है। अभिन्न अर्थात् पर्यायें द्रव्य से अभिन्न हैं। पर्यायें अभिन्न हैं, ऐसा यहाँ लेना है न! गजब बात, भाई! विवाद चले। नहीं। पर्याय और द्रव्य भिन्न है। परन्तु किस अपेक्षा से है, यह सुन तो सही! यहाँ तो पर से भिन्न करने की बात है। फिर और पर्याय द्रव्य में नहीं और द्रव्य पर्याय में नहीं, यह तो अन्तर का भेदज्ञान है। समझ में आया? हैं?

अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के कर्ता हैं... देखो! अपना-अपना स्वरूप। जड़ पर्याय जड़ से होती है और आत्मा की पर्याय आत्मा से होती है। देखो! यह हाथ ऐसे हिलता है, तो कहते हैं कि परमाणु जो है परमाणु, वे उसकी पर्याय के कर्ता हैं। यह अभिन्न हुआ। द्रव्य और पर्याय एक है, एक प्रदेश में है। आत्मा भिन्न प्रदेश में भिन्न चीज़ है। तो भिन्न चीज़ ऐसे शरीर की पर्याय करे, ऐसा कभी तीन काल में नहीं होता। कठिन बात, भाई! समझ में आया? यह वाणी निकलती है, देखो! वाणी। तो कहते हैं कि वाणी परमाणु की अवस्था है, जड़ के रजकण की। तो रजकण की वह पर्याय रजकण से अभिन्न है। इस कारण वह रजकण भाषा की पर्याय का कर्ता है। आत्मा भिन्न है, तो भिन्न भाषा की पर्याय का कर्ता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

आत्मा बिना बोला जाता है? दीवार में से आवाज निकलती है? सुन तो सही! वह भाषा जड़ की पर्याय है। वह आत्मा बिना निकलती है। अरे! भारी कठिन!

लाडुलालजी! जड़ पदार्थ है या नहीं? अजीव पदार्थ है या नहीं? अजीवतत्त्व है या नहीं? तो अजीव तत्त्व की पर्याय अजीव से होती है। जीव से नहीं होती। आहाहा! मेरी जड़ की पर्याय जीव से होती है, ऐसा मानना वह भ्रमणा-अज्ञान है। महा मिथ्या श्रद्धा का महा पाप है। समझ में आया?

जीव स्वयं कर्म के स्वरूप को और अपने स्वरूप को स्वयं पदार्थ.... देखो! स्वरूप शब्द से विकार भी जीव का—पर्याय का स्वरूप है न! और कर्म की पर्याय पुद्गल की पर्याय वह पुद्गल का स्वरूप है। तो कर्म है न ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय इत्यादि आठ कर्म। तो वह कर्म पर्याय है, वह पुद्गल की है। उसे जीव ने किया है, ऐसा है नहीं; और जीव में राग-द्वेष, पुण्य-पाप होते हैं, वे जीव से होते हैं। जड़ से नहीं होते। इतने निर्णय की खबर नहीं, उसे विकार से भी भिन्न भगवान आत्मा है (उसकी खबर नहीं)।

विकार क्षणिक है, वस्तु त्रिकाली आनन्दकन्द सच्चिदानन्द शुद्ध है। ऐसी दृष्टि हुए बिना विकार का कर्तापना जाता नहीं और विकार का कर्तापना गये बिना निर्विकार दृष्टि होती नहीं। निर्विकार दृष्टि हुए बिना धर्म नहीं होता। कहो, समझ में आया? स्वयं स्वरूप के कर्ता हैं। वह स्वयं का अर्थ—परमाणु, परमाणु की पर्याय के कर्ता हैं, आत्मा अपनी विकारी पर्याय का कर्ता है। यह उसका स्वरूप है। अभी यह सिद्ध करना है।

अब, **कर्म वास्तव में...** पहले कर्म का पाठ में है? **‘कम्मं पि सगं’** कर्म पहले लिया है। आठ कर्म है न, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र, आयुष्य और अन्तराय, आठ कर्म अन्दर हैं। जैसा यह शरीर जड़ है, वैसे कर्म के सूक्ष्म रजकण हैं। अन्दर सूक्ष्म। वे सूक्ष्म रजकण कर्म की अवस्था धारण करते हैं, वे पुद्गल स्वयं से कर्म होते हैं। जीव ने राग-द्वेष किये तो कर्म की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। कठिन बात, भाई! समझ में आया?

ऐसा तो कभी सुना नहीं हो। कोठारी! धन्धे के कारण कहाँ निवृत्ति है? तुम्हारा घर तो नजदीक है उपाश्रय के पास।... आहाहा! **‘ठाणाओठाणं अयेयथं वियथं’** हुआ ही करता है। क्षेत्र अपना बदलता नहीं, हों! स्वयं तो असंख्य प्रदेशी है, उसी में रहता

है। समझ में आया? अभी किसी ने प्रश्न किया था। मनीष ने (किया था) कि यह चक्की है, ऐसा प्रश्न किया था। उसने किया था दो दिन पहले। चक्की है चक्की, मक्खी बैठी है तो चक्की घूमती है, तब मक्खी घूमती है या नहीं? ऐसा पूछा था। चक्की है न चक्की। चक्की पर मक्खी बैठी। यह दृष्टान्त आया था, उसमें-सम्यग्ज्ञान दीपिका में। उसे भी कुछ खबर नहीं, पढ़ा कहाँ हो उसने। लड़के ने पूछा था। हमारे काठियावाड़ में चक्की को घंटी कहते हैं। उस चक्की पर मक्खी बैठी हो तो चक्की घूमे तो मक्खी नहीं घूमती। ऐसा भी कहते हैं, क्योंकि उसके असंख्य प्रदेश में वह है। ऐसे क्षेत्रान्तर होता है, इस अपेक्षा से कहो परन्तु वह जहाँ है, वहाँ ही है। अपने जीव के असंख्य प्रदेश हैं, वहाँ है। उसमें फेरफार नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

देखो! यह हाथ है। हाथ के ऊपर मक्खी बैठी हो तो हाथ हिलता है तो मक्खी तो वहीं की वहीं है। तो मक्खी को भी अपना क्षेत्रान्तर अपनी पर्याय से स्वतन्त्रत होता है। इसके कारण से नहीं। ऐसे हाथ हिलता है और मक्खी बैठी हो तो ऐसे हो तो मक्खी भी ऐसे हो। वह मक्खी की पर्याय परमाणु स्वयं से क्षेत्रान्तर होते हैं। और आत्मा जो असंख्य प्रदेश में है, उसमें कोई क्षेत्रान्तर नहीं होता। वह तो ऐसे होता है, वह तो असंख्य प्रदेश में है। समझ में आया?

एक गति से दूसरी गति में जाये। तो कहते हैं कि आत्मा तो आत्मा में है। हमारे तो क्षेत्रान्तर होता नहीं। न्यालभाई लिखते हैं। भाई! ऐसा कि यह मरकर कहीं अन्यत्र जाओगे या नहीं? देवलोक में जाओगे या नहीं? समझ में आया? हम तो जहाँ हैं, वहाँ हैं। समझ में आया? क्षेत्रान्तर होना, वह पर का कारण है। हम तो जहाँ हैं, वहाँ हैं। हमारे देव की गति होगी या मनुष्यगति का नाश होगा वह हमारे में तो है नहीं। ऐई! समझ में आया? यह तो ज्ञानस्वरूप भगवान जानने-देखनेवाला है। उसमें कोई गति-फति है नहीं। परन्तु यहाँ तो सिद्ध करना है कि उसकी पर्याय में विकार है, वह स्वयं से होता है, यह सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया?

कोई करावे तो जीव विकार करे, कर्म का अन्दर से जोर आवे। लोग नहीं कहते कि यह तो जमीन में से भाला निकले। ऐसी बातें करे बातें। बातें करे न अविचारा हुआ।

अविचारा कुछ नहीं होता। सुन तो सही! तेरी दशा में तेरा विकार कर्तारूप से होकर हुआ है। पर से हुआ नहीं। बराबर होगा माणेकलालजी! अविचारा कुछ नहीं होता? अविचारा नहीं? विचार प्रमाण होता होगा? धारणा अपनी है। और पर का कार्य परद्रव्य से है। आहाहा! कदम, परन्तु इच्छा हुई तो कदम भरता है। लो! कदम भरता है तो कदम की क्रिया जड़ से है। आत्मा से नहीं। बराबर रखना चाहे परन्तु केले का छिलका आ जाये तो? क्या कहलाता है तुम्हारी सड़क-सड़क, पक्की सड़क हो न, उसमें केले का छिलका ऐसे उल्टा पड़ा हो। पैर रखो तो फिसल जाये। लो! भाई को ऐसा हुआ था—हरगोविन्दभाई को। यहाँ हरगोविन्दभाई थे न, उन्हें ऐसा हुआ था। आठ महीने पैर उल्टे टाँगकर रखा। हड्डी फट गयी थी। आहाहा!

क्या गिरने की इच्छा थी? स्वयं का क्षेत्रान्तर होता है, वह तो स्वयं से होता है। शरीर की क्रिया हो गयी। धारणा में था कि ऐसा करना है? जड़ की पर्याय जड़ के कारण से होती है। स्वयं से रोकने से रुकती नहीं और स्वयं से की हुई होती नहीं। की हुई होती नहीं और रोकी जाती नहीं। आहाहा! यह मगनभाई को हुआ था या नहीं? हैं? क्या हुआ था? पैर का। यह अभी कम सुनते हैं। खबर है न! ख्याल आया न, पैर का हुआ था न। फिसले थे न? ये भी गिरे थे। ऐसे उल्टे पैर बाँधकर किया था। अरे! गजब भाई!

कहते हैं कि जड़ की यह परमाणु की जो अवस्था होती है, वह परमाणु से होती है। आत्मा से बिल्कुल नहीं। ऐसा माने बिना अजीव को जीव माने, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। आहाहा! समझ में आया? हैं? छिलके से गिरे ही नहीं। अपनी पर्याय जो होनेवाली थी तो हुई है जड़ से। अपने से—जड़ से। छिलके से भी नहीं। छिलके के परमाणु अन्य हैं, शरीर के परमाणु अन्य हैं। ऐसे पैर आ गया तो पैर की जड़ की पर्याय उस समय में ऐसी होनेवाली थी, उसका कर्ता परमाणु है। यह आत्मा भी नहीं और वह छिलका भी नहीं। छिलका कहते हैं न केले का छिलका? आहाहा!

जब भिन्न तत्त्व को भिन्नरूप से न जाने तो दृष्टि पर से हटकर अपने में नहीं आती। यह तो उसका कर दूँ, ऐसा कर दूँ, बालक को पढ़ा दूँ, बराबर शिक्षा दूँ, ऐसा

करूँ,.... ऐसा करूँ,.... ऐसा करूँ,....

मुमुक्षु : पैर को छिलका स्पर्शा भी नहीं, ऐसा आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्शा भी नहीं। बात तो ऐसी है, परन्तु अभी धीरे-धीरे सुने तब न! एक बात होती हो तब दूसरी बात नहीं होती। छिलके रजकण अन्य हैं, शरीर के रजकण अन्य हैं। यह रजकण में... यह कहा था, कोठारी को! कोठारी को कहा, इन पैसे में आत्मा नहीं और आत्मा में पैसे नहीं। कोठारी कहे, यह गजब बात कही। इसी प्रकार छिलके में शरीर नहीं और शरीर में छिलका नहीं। दोनों में अभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुम्बई की दुकान छूटती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : छूटती नहीं राग से।

राग करता है। दुकान कौन छोड़ता है? बबूल को बांध में भरता है और कहता है कि बबूल छोड़ता नहीं। हाथ छोड़ दे, तुझे कोई पकड़ता नहीं है। बन्दर की बात नहीं आती? बन्दर। घड़े में बोर थे, बोर-बोर। बोर को क्या कहते हैं? घड़ा हो न मिट्टी का। मुख छोटा हो। (उसमें) बोर पड़े थे। बन्दर ने हाथ तो डाला। इतना तो चौड़ा था। बोर की मुट्टी भरी। हाथ नहीं निकलता। अरे! भूत ने पकड़ा है। हैं? आता है न? भूत लगा है अन्दर। परन्तु भूत नहीं (तू) छोड़ दे न! मुट्टी भरकर हाथ डाला है, वह हाथ निकाल ले न! मुट्टी पकड़ी हो बोर की। यह किसी ने पकड़ा। ऐसा है। शोभालालजी! क्या करें, लड़के छोड़ते नहीं। धन्धा बहुत बढ़ गया और दो-चार महीने वहाँ उपस्थिति देनी पड़े। नहीं तो व्यवस्थित काम रहे नहीं। ऐसा यह सब मानते हैं। लालच होता है।

यह तो कहते हैं कि तेरी लालच की दशा है। लालच के कारण तू पर के कारण अटका है? आहाहा! समझ में आया? तोते का दृष्टान्त है न तोते का। नलनी, डोरी होती है न सूत की डोरी, उसमें पीतल की नलनी हो नलनी। तोता आया हो तो ऐसे बैठे। जहाँ बैठे वहाँ वह नलनी ऐसी (उल्टी) हो जाती है, यह मुझे किसी ने पकड़ा (तोता ऐसा मानता है)। परन्तु पकड़ा किसी ने नहीं है। छोड़कर उड़ जा न। पकड़ रखता है और कहता है कि मुझे नलनी ने पकड़ा है। उल्टा हो गया तो, हाय... हाय! नलनी तो घूमती है। डोरी पर नलनी हो न इसलिए ऐसे जहाँ पकड़े, वहाँ नलनी ऐसी हो जाती है, ऐसे

घूमे वहाँ सिर नीचे ऐसे हो जाता है। हाय.. हाय! मुझे पकड़ रखा है। किसने पकड़ा है? तूने पकड़ रखा है। छोड़ दे। उड़ जा।

इसी प्रकार राग-द्वेष को पकड़ रखा है और मानता है कि मुझे यह पकड़ता है। लड़का मुझे छोड़ता नहीं। स्त्री छोड़ती नहीं। अर्धांगिनी कहलाती है। अब उसका आश्रय कैसे छोड़े? धूल में भी नहीं। अर्धांगिनी कैसी? वह तो पर है। पर आत्मा पर है। पर के देह की क्रिया पर है। तेरी अर्धांगिनी कहाँ से आयी? आधा अंग उसका और आधा अंग तेरा, ऐसा है एक अंग? मूर्ख की दृष्टि में दो द्रव्य को एक मानता है। समझ में आया? पाटनीजी! भाई! यहाँ तो यह बात है। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि तू पर को पकड़ लेता है और मानता है कि मुझे उसने पकड़ा है। वह मुझे छोड़ता नहीं। मुझे तो छोड़ने का बहुत ही भाव है। नौकरी भी ऐसी है कि मुझे तो छोड़नी है परन्तु सेठ छोड़ता नहीं। बहुत अच्छी बात! सेठ पकड़ता है। तीन सौ-चार सौ का वेतन देता है और बस! तुम आओ। खाली बैठो दो घण्टे। बस दुकान पर बैठो। हमारे भाई था, वह भी कहता था। कालीदासभाई थे न। इज्जत बहुत अच्छी हो गयी। उसे सेठ नौकरी देता है। बस, तुम दो घण्टे बैठो। तुम्हारे कारण हमारे नौकर भी ठीक से काम करेंगे। हेमचन्द्र के बड़े भाई थे न कालीदासभाई। नौकरी फिर छोड़ दी। सेठ छोड़ता नहीं, परन्तु तू ममता छोड़ता नहीं, ऐसा कह न! सेठ छोड़ता नहीं, ऐसी कहाँ उल्टी पकड़ मारी है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि मुझे विकार तो करना नहीं परन्तु कर्म का ऐसा उदय आ जाये, मुझे कर्म का धक्का लग जाये। हैं? पड़ना नहीं परन्तु धक्का लग जाये इसलिए पड़ा हूँ। अरे सुन तो सही! पड़ने की क्रिया भी क्षेत्रान्तर होने की तुझसे होती है। कहीं पर से नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

कर्म... कर्म की बात करते हैं। देखो! आत्मा कर्म बाँधता है? नहीं। कर्मरूप से प्रवर्तमान पुद्गलस्कन्धरूप से कर्तृत्व को धारण करता हुआ,... देखो! यह कर्ता। समझ में आया? कर्म जो होता है ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आठ कर्म की जो पर्याय होती है, तो कर्मरूप से प्रवर्तमान, कर्मरूप अवस्था होने में पुद्गलस्कन्धरूप से कर्तृत्व को धारण करता हुआ,... इस कर्म की पर्याय का कर्ता पुद्गलस्कन्ध है। आत्मा उसका

कर्ता नहीं। कर्मपने को प्राप्त करने की शक्ति। कर्म अर्थात् पर्याय। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय ऐसी जो कर्म में पर्याय होती है, वह **कर्मपना प्राप्त करने की शक्तिरूप करणपने को अंगीकृत करता हुआ,...** कहो, समझ में आया ?

यह पहले करण लिया। करण लिया है। करणपने को प्राप्त करने की शक्ति, उस कर्म की अवस्था को प्राप्त करने को—प्राप्त करने की शक्तिरूप करण—करण/साधन। कर्म में साधनरूप पुद्गलस्कन्ध से साधक होकर कर्म की पर्याय होती है। आत्मा ने राग-द्वेष किये तो कर्मपर्याय होती है, ऐसा नहीं है। देखो! जीवास्तिकाय सिद्ध करते हैं न! भगवान ने छह द्रव्य कहे। तेरा अस्तित्व तुझसे है। तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय अस्तित्व द्रव्य अर्थात् शक्तिवान त्रिकाली चीज, गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् दशा। उस दशा का अस्तित्व तेरी दशा के कारण से दशा होती है। पर से नहीं होती। इसी प्रकार कर्म की अवस्था कर्म से होती है। कर्म की अवस्था का करण / साधन कर्म है; आत्मा साधन नहीं है।

एक व्यक्ति कहता था। देखो! था। दोष करे तो कर्म होते हैं। दोष न करे तो कर्म नहीं होते। देखो! इतनी तो पराधीनता है या नहीं? यह प्रश्न तो यहाँ कर्म के बहुत आये थे न? (संवत्) २००६ के वर्ष में। अरे! उस समय यदि तेरे राग-द्वेष हों, उस समय भी पुद्गलकर्म होने की शक्तिवाले कर्मरूप होते हैं। और तुम राग-द्वेष न करो तो, पुद्गलकर्म में कर्म शक्ति न होनेवाले पुद्गल वहाँ हैं। पुद्गल ऐसे होते हैं। तुझसे कर्म की पर्याय रुक गयी, ऐसा नहीं है। आहाहा! कठिन, भाई! गड़बड़! समझ में आया ?

करणपने को अंगीकृत करता हुआ,... लो! पुद्गल जड़ कर्म अवस्थारूप से, कर्मरूप से साधन होकर कर्म की पर्याय होती है। **प्राप्य ऐसे कर्मत्वपरिणामरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ,...** पहले कर्ता, दूसरा करण, तीसरा कर्म। कर्म अर्थात् कार्य। प्राप्य ऐसे कर्मत्वपरिणामरूप से कर्मपने को अनुभवता हुआ, यह पुद्गल उसका कर्ता है। कहो, समझ में आया ?

पूर्व भाव का नाश हो जाने पर भी... (अपादान) ध्रुवत्व को अवलम्बन करने से जिसने अपादानपने को प्राप्त किया है ऐसा,.... पुद्गल स्वयं से है। पुद्गल में पूर्व की

पर्याय का नाश होकर नयी पर्याय का कारण वह पुद्गल है। जिसका अपादान पुद्गल से कार्य हुआ है, आत्मा से नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ?

उत्पन्न होनेवाले परिणामरूप कर्म द्वारा समाश्रित होने से... सम्प्रदान। जो विकारी पर्याय कर्म में हुई, पुद्गल में, उस परिणामरूप कर्म द्वारा समाश्रित होता होने से (अर्थात् उत्पन्न होनेवाले परिणामरूप कार्य अपने को दिया जाने से)... वह कर्म की पर्याय पुद्गल में रहती है। पुद्गल की पर्याय पुद्गल में रहे, वह सम्प्रदान। वह स्वयं ने स्वयं को दान दिया। विकार करके अपने में रखा। वह पुद्गल ने स्वयं दान दिया स्वयं में। आत्मा से नहीं और आत्मा में नहीं।

और धारण किये हुए परिणाम का आधार होने से... ओहोहो! विकारी पर्याय का आधार आत्मा है। वास्तव में तो पर्याय, पर्याय के षट्कारक हैं, हों! समझ में आया? परिणाम का आधार होने से जिसने अधिकरणपने को ग्रहण किया है... आधार। ऐसा—स्वयमेव... स्वयं-एव कर्मरूपी अवस्था स्वयं-अपने से ही षट्कारकरूप से वर्तता हुआ... कौन? पुद्गलस्कन्ध। अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता। लो! क्या कहते हैं? कि जीव ने विकारभाव किया तो कर्म की पर्याय हुई, ऐसी अपेक्षा नहीं है। समझ में आया ?

स्वतन्त्र परमाणु में उस समय की कर्म की पर्याय होने में षट्कारक स्वयं से होते हैं। जीव की अपेक्षा नहीं रखते। जीव के विकार की अपेक्षा छोड़कर, अरे! यह जगत की स्वतन्त्रता तो देखो! देखो! थोड़ा दया भाव किया हो तो सातावेदनीय के परमाणु की पर्याय थोड़ी बँधती है। तो भी कहते हैं कि दया के परिणाम की अपेक्षा रखे बिना कर्म की पर्याय स्वयं से पर से निरपेक्ष होती है। समझ में आया? लाडुलालजी! कर्म तो आत्मा 'अप्पा कत्ता विकत्ता य सुहाणीय दुहाणीय' आत्मा कर्म को करे और आत्मा भोगे, यहाँ इनकार करते हैं। आत्मा अपनी विकारी पर्याय को करे और विकार को भोगे। पर कर्म को करे और कर्म को भोगे, ऐसा आत्मा में नहीं है। समझ में आया ?

यहाँ जोर है। अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता। दूसरे के कारणों की अपेक्षा, पुद्गल में से कर्म होने की शक्ति-पर्याय उत्पन्न होती है, तो जीव के विकारी परिणाम

की अपेक्षा रखे बिना कर्म की पर्याय कर्म के स्कन्ध से होती है। देखो! यहाँ तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध उड़ा दिया। भाई! निमित्त की अपेक्षा रखे बिना नैमित्तिक पर्याय होती है, ऐसा कहते हैं। देखो! ऐई! ऐसी है। तेरा विकार हुआ तो कर्म पुद्गल में हुए, कर्मरूपी अवस्था हुई, ऐसी अपेक्षा विकार की उसमें नहीं है। वह द्रव्य ही स्वयं स्वयं से पर्याय में परिणमता है। आहाहा!

यह अँगुली है, देखो! तो इस अँगुली की पर्याय के कर्ता परमाणु, उसका साधन-करण, कारण परमाणु, उसका कर्म-कार्य परमाणु का। वह परमाणु स्वयं से ऐसी पर्यायें करता है और उस परमाणु ने पर्याय करके अपने में रखी है। और वह पर्याय कर्म के परमाणु के आधार से हुई है। अन्दर आत्मा की इच्छा से, ऐसे शरीर हिलता है, बिल्कुल नहीं। अरे.. अरे! गजब भाई! आत्मा की इच्छा अँगुली हिलाने की थी तो इच्छा की अपेक्षा रखकर परमाणु की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। कहो, सेठ! हैं? स्वतन्त्र चीज़ ऐसी है। इसे खबर नहीं। पागल... पागल हो गया है, ऐसा कहते हैं। पागल भी स्वतन्त्ररूप से हुआ है।

समाधिशतक में आचार्य लिखते हैं न! शुभाशुभभाव होना, वह पागलपन है। आहाहा! हैं? गहलता है। विकार-विकार गहलता का भाव है। आहाहा! उन्माद... उन्माद... उन्माद! उन्माद किया है जीव ने स्वयं से। पर से नहीं। और पर में जो पर्याय-अवस्था होती है, वह पर की अपेक्षा रखे बिना होती है। ओहोहो! कितनी स्वतन्त्र! वस्तु ऐसी उत्पादव्ययध्रुवयुक्तम् सत् तो पुद्गल स्वयं से उत्पाद-व्यय होता है। कर्म की पर्याय उत्पन्न होना, पूर्व वर्गणा की पर्याय का नाश होना, उसके कर्ता-करण आदि कर्म है, आत्मा नहीं है। आत्मा की अपेक्षा रखे बिना पुद्गल की अवस्था ऐसी होती है। कहो, समझ में आया?

सेठ ने नौकर को हुकम किया, जा, यहाँ से उगाही लेने के लिये। कहते हैं कि जो शरीर की पर्याय हुई, वह सेठ ने हुकम किया, यह अपेक्षा रखकर शरीर की पर्याय गति की नहीं हुई। और उसमें आत्मा है... उसे सेठ ऐसा कहता है कि मुझे जाना पड़ेगा। नहीं तो शाम को आठ बजे चले जाना। अपने लेना है तो दुकान-बुकान बन्द करके चले

जाते हैं। अपना लेना रह जायेगा। इसलिए जल्दी चलो। तो देह की जल्दी चलने की पर्याय सेठ के हुकम की अपेक्षा से हुई, ऐसा भी नहीं और जल्दी जाऊँ, इस विकल्प की अपेक्षा से भी देह की पर्याय शीघ्रता से चलती है, ऐसा नहीं है। सेठी!

मुमुक्षु : देखने में तो आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या देखने में आता है? विकल्प ऐसा हुआ कि एक घण्टे में तीन मील जाना है, तो शीघ्रता से चलो भैया! समझ में आया? तो कहते हैं कि ऐसी इच्छा हुई तो इच्छा की अपेक्षा रखकर ऐसी शरीर की गति होती है, ऐसा है नहीं। सेठ! गजब बात, भाई!

शरीर में बुखार आया। शरीर की पर्याय है न बुखार की। तो वह दवा का निमित्त हुआ, उसकी अपेक्षा रखकर बुखार उतर गया, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! गला सूखा था। सूखापन। तो मौसम्बी का पानी आया तो सूखापन गीला हुआ, गीला हुआ, यह बात मिथ्या है। अरे... अरे! कठिन बात, भाई! यह मौसम्बी के पानी की अपेक्षा रखकर (गला) गीला हुआ है, ऐसा है नहीं। पाटनीजी! अब तुम्हारे जैसे होशियार व्यक्ति तो सब कितना करे। लो!कितना जयपुर में करते हैं। लो! अब आया था उसमें कि तुम्हारी कमी दिखाई दी। नहीं आया था? पत्र में कहीं आया था। हैं? आया था। हैं! अभाव खटकता है, ऐसा आया था। बाबूभाई के उसमें नहीं? यह क्या होगा? लाडुलालजी!

भगवान! वह परमाणु जड़ स्वतन्त्र पदार्थ है। उसमें गति होने की क्रियावती शक्ति स्वयं से है। पर की अपेक्षा रखकर गति करता है, ऐसा वस्तु में नहीं है। अज्ञानी मानता है, मिथ्यात्वभाव का सेवन करता है। आहाहा! समझ में आया?

स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ... कौन? पुद्गलस्कन्ध। अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता। जीव की इच्छा की अपेक्षा कर्म होने में पुद्गल में है नहीं। ऐसे शरीरादि चलने की क्रिया में जीव की इच्छा की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! गजब बात भाई!

स्वतन्त्र अजीव की पर्याय अजीव से होती है। तेरी अपेक्षा से वह पर्याय—क्रिया

उत्पन्न नहीं होती, ऐसा कहते हैं। सेठीजी! क्या है? सूखा गला गीला हुआ, वह अपनी परमाणु की पर्याय से हुआ है। यह पानी आया, उसकी अपेक्षा से गीला हुआ है, वस्तु में ऐसा है नहीं। स्वतन्त्र पदार्थ भिन्न है। हैं? कठिन बात, भाई! रोटी पेट में पड़ी, जठराग्नि थी। जठराग्नि। हाश! रोटी पेट में पड़ी है तो पानी पड़े। ऐसी अपेक्षा है नहीं, ऐसा कहते हैं। परमात्मा के घर की (अलौकिक बात है), बापू! आहाहा! ऐसा बोले उस प्रतिक्रमण में। अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व, जीव को अजीव माने तो मिथ्यात्व। ऐसे पच्चीस मिथ्यात्व में बोले। यह क्या अजीव को जीव माने तो बड़ा (दोष आवे) अजीव की पर्याय अजीव से होती है। दूसरे अजीव से होती है तो एक अजीव से दूसरे अजीव को माना। भिन्न अजीव तो रहा नहीं। क्या है सेठी! इसमें कुछ बोला जाये ऐसा नहीं। नहीं? भिन्न-भिन्न है।

एक परमाणु दूसरे परमाणु की अपेक्षा पर्याय करने में रखता नहीं, तो जीव की अपेक्षा रखकर परमाणु में पर्याय होती है, ऐसा तीन काल में नहीं है। ओहोहो! यह सब सच्चा होगा यह?

मुमुक्षु : आप तो सच्चा है ऐसा कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सच्चा दिखता नहीं। इसकी इच्छा हो और हाथ न हिले, लो। हैं? यही है। सर्दी में देखो न हाथ अकड़ जाता है। नहीं? सर्दी में। वह आत्मा की इच्छा से अकड़ जाता है। सर्दी से हुआ है? ऐसा कहते हैं, सर्दी से हुआ नहीं। सर्दी भिन्न चीज़ है। सर्दी के परमाणु भिन्न चीज़ है और यह हाथ ऐसे अकड़ जाए, वह भिन्न चीज़ है। आहाहा!

एक अभी आया था न बेचारा। चार-पाँच दिन पहले। एक अपने नरसिंहभाई हैं। गाँव के कोली है। रंगरेज हैं। उसमें मैं सुबह निकलता हूँ न दस मिनिट? तुम थे तब? नहीं थे। मिस्त्री थे। रंगता है। तो उसे बिजली की चोट लग गयी। यह हाथ देखो तो एकदम काला। ऐसा सब खून मरकर, ऐसा देखो तो मुर्दा। ऐसे चलकर आते थे। मुझे देखकर खड़ा रह गया। अरे! क्या हुआ? हाथ-हाथ पर चोट आयी। पैर के एक भाग में। हाथ तो एकदम काला ऐसा गाढ़ा खून न, एक हाथ से काम करता हूँ, कहे।

आहाहा! यह रंगने का। रंगने का करे। नरसिंहभाई है बेचारा। हाँ, वह। हाथ ऐसा। मैंने तो चार-पाँच दिन पहले देखा। वह मोटा एकदम काला। हो गया। बेचारा गरीब व्यक्ति। परन्तु वह परमाणु की पर्याय बिजली से हुई है, ऐसा भी नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! भिन्न-भिन्न पदार्थ में भिन्न पदार्थ के कारण से अपेक्षा रखकर भिन्न पर्याय भिन्न में होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! इसके बिना अनन्त द्रव्य है, उसकी श्रद्धा भी उसे नहीं है। समझ में आया?

अनन्त द्रव्य, पदार्थ अपनी-अपनी पर्याय की अपेक्षा रखकर द्रव्य की अपेक्षा रखकर पर्याय होती है। पर की अपेक्षा रखकर पर्याय हो तो अनन्त भिन्न पृथक्-पृथक् प्रत्येक नहीं रहते। दो को इकट्ठा करते हैं तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ द्रव्य को मानता नहीं। भगवान कहते हैं, वैसा वह मानता नहीं, ऐसा कहते हैं। हैं? लाडुलालजी! आहाहा!

यह कहते हैं। कर्म वास्तव में यह प्रवर्तमान पुद्गलस्कन्ध से कर्तृत्व को आदि पर्याय होती है। पर की अपेक्षा नहीं रखता। **इस प्रकार जीव भी...** अब जीव। **भावपर्यायरूप से प्रवर्तमान आत्मद्रव्यरूप से कर्तृत्व धारण करता हुआ,...** लो! आत्मद्रव्य से कर्तापने को धरता, देखो! उसमें 'पुद्गलस्कन्धरूप से कर्तापने को धारण करता हुआ' था। आत्मा में जो भ्रमणा-मिथ्यात्व होता है। पुण्य में सुख है, स्त्री में सुख है, लक्ष्मी में सुख है, ऐसी मान्यता के मिथ्याभ्रम के परिणाम, उस परिणाम में विकारीभाव पर्याय, वह प्रवर्तमान आत्मद्रव्य से कर्तृत्व है। आत्मद्रव्य मिथ्यात्व का कर्ता है। ठीक! हीरा-माणिक्य है तो सुखी हूँ, बँगला हो तो मैं सुखी हूँ, ऐसी मिथ्यादृष्टि की मूढ़ मान्यता वह जीव की पर्याय से होती है। कर्म का उदय आया तो ऐसी पर्याय हुई, वह (कर्म के) उदय की अपेक्षा रखे बिना होती है। आहाहा!

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ क्या तत्त्व कहते हैं, उसकी खबर नहीं और मान ले कि हम धर्मी हो गये और भगवान सच्चे और हमने धर्म किया। तो कहते हैं कि देखो! **भावपर्याय से....** वापस भाषा पर्याय ली है न! प्रवर्तमान कौन? आत्मद्रव्यरूप से कर्तापने को धरता हुआ, समझ में आया? **स्वयंमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता।** कर्म का उदय है, उसकी अपेक्षा विकार करने में है

नहीं। सिद्ध को कर्म है नहीं, इसलिए सिद्ध विकार करते नहीं और अपने कर्म हैं तो विकार है, इतनी अपेक्षा है नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ?

तुझसे विकार होता है, ऐसे निश्चय बिना, पर से होता है ऐसी भ्रमणा में पड़नेवाली चीज़ से दूर होता है। निर्णय करना। भाई! मेरी भूल मुझसे है। भूल टालूँ भी में और भूल करूँ भी मैं। पर के कारण से कुछ है नहीं। ऐसा निर्णय करे तो उसकी दृष्टि आत्मद्रव्य पर जाती है। और विकार टालने का अवसर और मौका उसे मिलता है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५९, गाथा-६२, पौष कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक -०५-०२-१९७०

पंचास्तिकाय, ६२ गाथा चलती है। टीका का तीसरा पेरोग्राफ है। क्यों नहीं मिला? आता है? बातें तो साथ में हो न! देखो! क्या कहते हैं कि आत्मा—जीव भी, वह कर्म में पहले घटित किया न! आत्मा **भावपर्याय से...** अपने विकारीभाव या धर्मपर्यायभाव, उसरूप से **प्रवर्तमान आत्मद्रव्यरूप से कर्तृत्व धारण करता हुआ,**... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपनी पर्याय में मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि विकार का कर्ता आत्मा है। कोई कर्म से होता है या पर से होता है, ऐसा नहीं है। ऐसी स्वतन्त्र बात है परन्तु अभी गड़बड़ करते हैं। इतना विरोध आता है इतना, जैनदर्शन (पत्रिका) में तो निमित्त से न माने वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। ऐसा देखा, लो! अरे! गाली, लो, अरे! गाली दे या भाई चाहे जैसा कर। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा वस्तु चिदानन्दस्वरूपी भगवान आत्मा है। वह अपने को भूलकर मिथ्याभ्रान्ति—मिथ्यात्व-राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकल्प का कर्ता आत्मा है। उनका कर्ता कोई कर्म करता है और होता है, ऐसा नहीं है। है? भावपर्यायरूप से प्रवर्तमान है? बीच में कहाँ है इसमें? आया? देखो! हिन्दी है न हिन्दी। १०५ पृष्ठ है। दूसरा फिराते हैं। हाँ आया। इस ओर क्यों आया? दूसरी पुस्तक होगी। दो प्रकाशित हैं? हं... इसमें इस ओर आया। उसमें अन्तर है।

भावपर्याय से... ऐसा शब्द है। जीव अपनी पर्याय-अवस्था विकाररूप करो या धर्मरूप पर्याय करो, उसका करनेवाला आत्मा स्वतन्त्र है। कोई कर्म है तो विकार होता है और कर्म का अभाव हो तो धर्म की पर्याय होती है, ऐसी निमित्त की अपेक्षा उसमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **भावपर्याय से...** एक भाव में चारों पर्याय ले लेना। विकार-उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। **पर्यायरूप से प्रवर्तमान...** उसमें कौन प्रवर्तता है? कि **आत्मद्रव्यरूप से...** आत्मद्रव्य उसमें—पर्याय में प्रवर्तता है। समझ में आया?

कर्तृत्व धारण करता हुआ, स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ... स्वयं

कर्तारूप से स्वयमेव वर्तता हुआ, ऐसा। अन्तिम शब्द है। आहाहा! इतनी स्पष्ट बात है। यह बात (संवत्) २०१३ के वर्ष में की थी। वहाँ क्या कहलाता है? मधुवन में। पण्डितों के बीच बहुत ही गड़बड़ चली। यह जहाँ ६२ गाथा रखी वह.... गड़बड़ हो गयी। आहाहा! यह तो विकार स्वतन्त्र कहते हैं, तो स्वभाव हो जायेगा। पकड़ा गये—पकड़ा गये—उठो। कलकत्ता गये थे। वहाँ प्रश्न आया। वह शान्ति साहूजी है न, उन पर प्रश्न आया। साहूजी लाये। कहा, प्रश्न का उत्तर वहाँ हो गया है। क्या है? गजराजजी के यहाँ भोजन करने गये थे और वहाँ आये थे। पकड़े गये, ऐसा। वे लोग वास्तविक भूल में पकड़े गये। आहाहा! भगवान! ऐसा हुआ। वर्णीजी और है न पण्डित लोग। वहाँ बात बहुत ही चली, सबके बीच में (चली)। रामजीभाई थे, भाई थे न? हिम्मतभाई थे। नहीं? भाई नहीं थे कमरे में घण्टे भर ऊपर। भाई थे न!

क्या कहते हैं? जैन में ऐसी गड़बड़ हो गयी है। कर्म हो तो संसार और विकार होता है। कर्म न हो तो विकार नहीं होता, ऐसी (गड़बड़) चली है। ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। जैन परमेश्वर वीतरागदेव और उनके सन्त कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि आत्मा अपने को भूलकर पर्याय में, अवस्था में राग-द्वेष मिथ्यात्वभाव करे तो अपने कर्तव्य से आत्मद्रव्य करता है। दूसरे के कर्तव्य का अंश उसमें बिल्कुल नहीं है। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन की पर्याय करता है, सम्यग्दर्शन धर्म की प्रथम पर्याय, उसमें भी आत्मद्रव्य ही कर्ता होकर सम्यग्दर्शन की पर्याय करता है।

व्यवहार विकल्प है तो सम्यग्दर्शन की पर्यायरूप आत्मद्रव्य परिणमता है, ऐसा है नहीं। सेठी! आहाहा! जीव को स्वतन्त्रता की खबर नहीं। कि नहीं, ऐसा ही है। वायुमण्डल की बात लिखी है। महेन्द्रलाल है, किसी ने।निमित्त बिना वायुमण्डल होता नहीं। कौन जाने गड़बड़ कौन सोनगढ़वाले मूर्ख लोग हैं जो निमित्त बिना मानते हैं। नहीं, सोनगढ़ ऐसा लिखा है। लिखा है। सोनगढ़वाले किसी ने हमारे विरुद्ध लिखा है। ऐसा लिखा है। नाम नहीं दिया। यह उसका मैं जवाब देता हूँ, ऐसा कहे। अरे! भगवान! क्या करता है तू! हैं? हाँ, किसी ने लिखा है। उसके सामने लिखा है।

यहाँ कहते हैं कि भाई शान्त हो, बापू! आहाहा! ऐसे समय में तेरी सत्यता तुझे

स्वीकार न हो तो फिर कब आयेगी ? यहाँ तो **भावपर्यायरूप से....** भगवान आत्मा सम्यग्दर्शनरूपी पर्याय में तो ध्येय द्रव्य है। समझ में आया ? वह ध्येय द्रव्य है और द्रव्य वस्तु है। उसकी दृष्टि से ध्येय के ध्येय से यहाँ पर्याय में द्रव्य कर्ता होकर, आत्मा कर्ता होकर उसमें सम्यग्दर्शन की पर्याय-धर्म की अवस्था में आत्मा का कर्तृत्व है। पर का कर्तृत्व नहीं। विकल्प का कर्तृत्व नहीं, निमित्त का कर्तृत्व नहीं, दर्शनमोहनीय का अभाव होता है तो यहाँ सम्यग्दर्शन की पर्याय होती है, ऐसी परकारक की अपेक्षा उसमें है नहीं। समझ में आया ?

है या नहीं खुल्ला ? उसमें है। देखो ! और क्षायिकसमकित। उपशम, क्षयोपशम की अपनी पर्याय का कर्ता आत्मा। क्षायिक का कर्ता आत्मा है। केवली तीर्थकर की सभा में क्षायिक समकित होता है, ऐसा गोम्मटसार में पाठ है। वह तो निमित्त क्या था, उसका ज्ञान कराते हैं। परन्तु क्षायिक समकित की पर्याय का करनेवाला तो आत्मद्रव्य है। कर्ता आत्मा है।

मुमुक्षु : भगवान न हो तो नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान न हो, भगवान हो ही वहाँ। यहाँ पर्याय होती है तो उसके कारण से होती है। वह न हो तो न हो कहाँ ? पर्याय स्वयं से होती है, वहाँ निमित्त होता है। यहाँ तो निमित्त की बात भी नहीं। निमित्त की अपेक्षा है नहीं। वहाँ देखो ! षट्कारक से, परकारक की अपेक्षा नहीं। पर कर्ता, पर कर्म, पर कारण की अपेक्षा अपने कार्य में पर की अपेक्षा नहीं है। ऐसा निरपेक्ष अपना कार्य होता है। समझ में आया ?

कर्तृत्व धारण करता हुआ, देखो ! कर्तृत्व को धरता हुआ, आत्मा ही अपने कर्तृत्व का विरुद्ध धरता हुआ, ऐसा। समझ में आया ? वे कहते हैं न, कि भाई ! पैसा आ जाता है, तो हमारी इच्छा नहीं तो भी आता है या नहीं ? ऐसे धर्म भी उसके कारण से आ जायेगा। हैं ? खोटी बात है। धर्म कहाँ से आयेगा ?

तू तेरी दृष्टि द्रव्य पर लगा और द्रव्य कर्ता हो तो निर्मल धर्म की पर्याय का कार्य होता है। उस कार्य का कर्ता तो यह छह क्रिया के कारक हैं न ? छह क्रिया। सम्यग्दर्शन की पर्याय क्रिया है। उसका कर्ता आत्मा है। समझ में आया ?

यहाँ शास्त्र में तो बहुत ही निमित्त की बात आती है। भगवान के दर्शन से समकित होता है, वेदना से समकित होता है। नारकी में भी बहुत वेदना होती है। देव की ऋद्धि देखने से समकित होता है। आता है या नहीं ?

मुमुक्षु : होगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : होगा नहीं। होगा तब उसे निमित्त कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? नारकी में जीव है न, नरक में बहुत ही दुःखी है। इतना दुःख है कि उसे तो वह सहन करे और भगवान जाने। ऐसी पीड़ा। ऐसी पीड़ा में कोई समकित पाता है तो कहीं पीड़ा से पाता है ? शास्त्र में ऐसा कथन आता है, बहुत ही वेदना ! अरे रे ! यह क्या ? चीज़ क्या है ? ओहोहो ! यह पीड़ा ! यह पीड़ा तो कितनी ! एक अग्नि का छोटी चिंगारी यदि वहाँ से यहाँ आवे तो, दस-दस हजार योजन के आसपास के मनुष्य जल जायें। उसमें लाखों-करोड़ों अरबों वर्ष रहता है। ऐसे अनन्त भव अन्दर गये। आत्मा के समकित धर्म बिना। तो कहते हैं कि वेदना-वेदना तो अनन्त बार वेदी है। क्यों वेदना के कारण से समकित नहीं हुआ। तब तो सबको होना चाहिए। समझ में आया ?

शास्त्र में ऐसा आता है। लो ! तत्त्वार्थसूत्र में (आता है)। भगवान के दर्शन से, देवऋद्धि से, वेदना से, कोई जातिस्मरण से। लो ! जातिस्मरण हुआ तो उसे समकित हो जाता है। जातिस्मरण से हो तो जातिस्मरण तो जीव को अनन्त बार हुआ है। वह कहीं नयी चीज़ नहीं है। अपने सम्यग्दर्शन धर्म की पर्याय आत्मद्रव्य कर्ता होकर निमित्त की, व्यवहार की अपेक्षा रखे बिना अपने से होता है। कहो, सेठी ! उसमें ऐसा है या नहीं ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल... बिल्कुल ! आहाहा !

भावपर्याय प्राप्त करने की शक्तिरूप से करणपने को अंगीकृत करता हुआ,...
भगवान आत्मा अपनी भावपर्याय को प्राप्त। विकार भी भावपर्याय है और धर्म की निर्विकारी पर्याय भी भावपर्याय है। उस भावपर्याय के कार्य को प्राप्त करने में, शक्ति अपनी है। अपनी शक्तिरूप से करणपने को अंगीकृत करता हुआ,.... कारण लो ! यह आत्मा कारण है। मिथ्यात्व की प्राप्ति, राग-द्वेष की प्राप्ति में आत्मा करण अर्थात् साधन है। निमित्त

साधन नहीं। समझ में आया ? है या नहीं इसमें ? पर से है, यह तो बात पण्डितों में चली थी। गड़बड़ हो गयी। आहाहा!

कहीं भी दुनिया को अन्तर में क्या हूँ, कहाँ जाऊँगा, अरे ! मेरा क्या होगा ? यह तो पाँच-पच्चीस वर्ष का खेल है। जहाँ आँख बन्द हो गयी, वहाँ जाओ चौरासी के अवतार में। तो क्या उस अवतार का कारण भी स्वयं किया है या पर से हुआ है ? यह कहते हैं कि विकार का कर्ता तू है। निगोद में भी, निगोद का जीव भी—ऐसा कि निगोद का जीव है न, तो उसे कोई वाणी या मन तो है नहीं। तो उसे कर्म साधन से मिथ्यात्व होता है। हैं ? नहीं ? ऐसा है नहीं। यह उलझन करता है, वह कौन करता है, कर्म ? हैं ? यह कर्म का उदय ऐसा आया इसलिए या नहीं ? नहीं। इस शरीर में नींद न आवे इसलिए ? नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि भाई ! भगवान ! तू तेरी चीज़ को भूलकर तेरा करण अर्थात् साधन होकर तेरे कारण से मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम होते हैं। आहाहा ! करण अर्थात् साधन कहते हैं। समझे ? उस द्वारा हुए, ऐसा कहते हैं न ! उस द्वारा हुए। तो कहते हैं आत्मा द्वारा भ्रमणा हुई। वह भ्रमणा कोई दूसरे से नहीं होती। आहाहा ! समझ में आया ?

शरीर में कोई रोग हुआ या शरीर में कोई सर्प डसा या बिच्छू डसा तो दुःख होता है। वह पर के कारण दुःख होता है ? उस द्वेष की पर्याय का करनेवाला आत्मा है। समझ में आया ? पर का कोई कारण-फारण है नहीं। पर की अपेक्षा उसमें है ही नहीं। **भावपर्याय प्राप्त करने की शक्तिरूप से करणपने (साधनपने को) को अंगीकृत करता हुआ,...** अंगीकार करता हुआ, भाषा देखो ! वह अपने करण / साधन उसे अंगीकार किया है। पर का साधन अंगीकार किया नहीं। आहाहा ! तो सम्यग्दर्शन में कारण है न ! शास्त्र में नहीं आये दो ? अधिगम-निसर्गज-अधिगमात्। सम्यक्त्व दो प्रकार से होता है। (अधिगम-निसर्गज) अधिगमात् निसर्गात् होता है। यहाँ तो इनकार करते हैं। अधिगम वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है।

यहाँ तो कहते हैं समकित का साधन अपना आत्मा है। धर्म की पर्याय का साधन

करनेवाला भगवान आत्मा है। सीधे, पूर्व की पर्याय नहीं, विकल्प नहीं और निमित्त नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी वस्तु की स्थिति सहज है। कोई पर की अपेक्षा रखे और धर्म होता है, और पर की अपेक्षा रखे और अधर्म होता है, ऐसा है नहीं। क्या करे परन्तु गड़बड़ ऐसी घुस गयी है न? संयोग बिना होता नहीं, निमित्त बिना होता नहीं, बस ऐसा। पेट में आहार-बाहार हो, क्षुधा टूटे तो कुछ धर्म के विचार चलें। नहीं तो धर्म के विचार नहीं चलते। ऐसा यदि कहे तो वह मिथ्या कहता है। हैं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ दिखता है? क्या दिखता है? यह खोटा भाव करता है, ऐसा दिखता है। पर से करता है, ऐसा दिखता है? कहो, धरमशीभाई! क्या है?

ऐसा कि यह सब लोग जाये और हमारे यहाँ आमदनी कम हो गयी है, यह प्रत्यक्ष दिखता है। लो! और यहाँ हो तो आमदनी होती है और यहाँ न हो तो आमदनी कम होती है तो जरा संकल्प-विकल्प आते हैं। यह कहते हैं कि यह पर के कारण से नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह तो पूरे गाँव में बहुतों को गड़बड़ हो गयी। कोई दो-तीन महीने बाहर निकले तो यहाँ सब कितने लोग आते हों, कितने दूधवाले, लकड़हारा-लकड़ी सबको, हैं? सब्जीवाले सबको शिथिल पड़ जाता है। चिल्लाहट करते हैं। परन्तु करे क्या? परन्तु वह चिल्लाहट करते हैं, दुःख उसके कारण से है, पर के कारण से नहीं, ऐसा कहते हैं। बहुत से कहते हैं। बहुत गाँव में भी कहते हैं। तीन महीने बाहर जाये इतना सब सूना-सूना लगता है। आधा दरवाजा किसने बन्द रखा? कहो, समझ में आया?

भावपर्याय प्राप्त करने की शक्ति अपनी है। आहाहा! देखो भाषा! अपनी शक्ति के कारण से वह विकार करता है। अपनी शक्ति के कारण-साधन से वह धर्म की पर्याय करता है। निमित्त और संयोग से बिल्कुल नहीं होता। लो! पाटनीजी! निमित्त मानते हैं या नहीं? यह बात थी, विवाद यह था। निमित्त कब माना कहलाये?—कि वह तो उस पुस्तक में भी ऐसा है न? भाई छोटाभाई ऐसा कहते थे न तब एक बार ऐसा कहा था। इसमें जो लिखा है यह कि निमित्त माने तो... परन्तु निमित्त मानते नहीं। वह निमित्त से होता है, ऐसा कहते हैं। तो निमित्त माना कहलाये, ऐसा वे कहते हैं। यह अन्तर है। बड़ा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है।

यहाँ तो एक बार कहीं से वचन आया हो तो ख्याल तो हो न! ऐई! समझ में आया? ऐसा कहते हैं। देखो न, वर्णीजी कहते हैं न, निमित्त माने तो कोई बाधा नहीं। परन्तु क्या निमित्त माने तो, निमित्त नहीं मानते? निमित्त से होता है, ऐसा माने तो निमित्त माना कहलाये? बिल्कुल मिथ्या बात है। ऐई!

मुमुक्षु : यहाँ तो निमित्त को निमित्त मानते हैं, परन्तु वहाँ निमित्त को निमित्त नहीं मानते।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, निमित्त मानते हैं क्या? निमित्त नहीं मानते, क्योंकि निमित्त है तो कार्य होता है, हम निमित्त मानते हैं, ऐसा (वे) कहते हैं। हम तो कहते हैं। निमित्त है परन्तु अकिंचित्कर है। अकिंचित्कर है। बड़ी चर्चा हुई थी न? निमित्त अकिंचित्कर अनन्त बार है। ले और सुन न अब! पर में वह क्या करता है? तब तो निमित्त कहने में आता है। समझे? नहीं तो उपादान अपनी पर्याय में वह चीज़ आ जाये। परन्तु तब कहाँ भान था इस जयपुर में भी। सेठी! यह नहीं बोले। इनका दूसरा जवाब धीरे-धीरे....

कहते हैं, अपना चार गति में भटकने का भाव, वह उसकी कर्ता-करणशक्ति अपने में है। उस क्रिया का करण आत्मा है। उस क्रिया का करण दूसरी चीज़ नहीं है और भावपर्याय धर्म—सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, सम्यग्ज्ञान इस पर्याय का करण-साधन भी आत्मद्रव्य है। पूर्व की पर्याय नहीं, विकल्प नहीं और निमित्त तो नहीं। ऐसी तो बात है। परन्तु यह भगवान आत्मा कैसा स्वतन्त्र है, इसकी खबर नहीं और गड़बड़... गड़बड़। अन्त में ऐसा कहते हैं निगोद में तो कर्म का जोर है, ऐसा लेना। फिर क्षयोपशम हो, पंचेन्द्रिय हो, तब तो उसके पुरुषार्थ का दोष है वहाँ तो।

यहाँ तो कहते हैं कि तीन काल में किसी द्रव्य की पर्याय में निमित्त की अपेक्षा नहीं और ऐसी पर्याय होती है, ऐसा कहते हैं। यह तो सब द्रव्यों की, निगोद से लेकर सिद्ध सबकी। उसमें ऐसा है या नहीं? ऐ सेठ! छह कारक कर्ता है। कर्ता, करण आदि क्रिया के कारण हैं। तो क्रिया का कारण अपना भाव है। पर्याय बदलती है, वह क्रिया है। उस क्रिया में कारण कौन? तो कहते हैं कि अपना भाव। आत्मा कारण है, दूसरा

कोई कारण नहीं है। परमेश्वर-बरमेश्वर की कृपा हो जाये और धर्म हो जाये, कोई श्राप दे जाये और विकार हो जाये, ऐसा नहीं होता। बराबर है? दो बोल आये। तीसरा।

पहला कर्ता आया। दूसरा करण—साधन आया। अब कर्म आता है। कर्म अर्थात् कार्य। अपने कार्य को प्राप्य ऐसी भावपर्यायरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ,... प्राप्य-कर्म। अपना कर्म अर्थात् कार्य जो होता है मिथ्यात्व का, राग-द्वेष का, सम्यक्त्व का, चारित्र का। उस कार्य की पर्याय प्राप्त करने की भावपर्यायरूप से कर्मपने को अनुभव करता हुआ, अपने कार्यपने अनुभवता हुआ आत्मा उस कार्य का कर्ता है। वह आत्मा का कार्य है। मिथ्यात्व, राग-द्वेष आत्मा का कर्म है। कर्म शब्द से कार्य है। गजब भाई! अरे... अरे!

एक ओर कहते हैं कि मिथ्यात्व और राग-द्वेष का कर्ता होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। यहाँ कहते हैं कि भाई! सुन तो सही, वहाँ तो उसकी पर्याय को सिद्ध करना है। पर का दोष नहीं, इतना सिद्ध करना है। पश्चात् फिर राग-द्वेष के कर्तापने जब तक दृष्टि है, तब तक स्वभाव की दृष्टि नहीं है। तो स्वभाव की दृष्टि नहीं, तब तक मिथ्यादृष्टि है। परन्तु उस मिथ्यादृष्टि के परिणाम के कार्य का कर्ता भी आत्मा है। समझ में आया? भाई! क्या करें, हमको ऐसा सुनानेवाले मिले तो ऐसा हम मानते हैं। सेठ!

मुमुक्षु : बहुत सुनानेवाले शोधते थे, परन्तु नहीं मिले तो क्या करें?

पूज्य गुरुदेवश्री : ना करते हैं। यह ना करते हैं कि तेरे खोटे अभिप्राय का कर्ता तू है। सुनानेवाले नहीं मिले, इसलिए खोटा अभिप्राय हुआ, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। भाई, शोभालालजी! ऐसी बात है। आहाहा! अरे भगवान!

प्राप्य ऐसी भावपर्यायरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ,... आत्मा अपने कारण से क्रियारूप प्रवर्तता है। मिथ्या राग-द्वेष हो या सम्यग्दर्शन की शान्ति-चारित्र की पर्याय हो, उसके कार्य का प्रवर्तनेवाला आत्मा ही है। पर की अपेक्षा नहीं रखता। आहाहा! कितनी ६२ गाथा! हैं? कितनी बात! हो निमित्त। निमित्त कौन इनकार करता है? परन्तु निमित्त की अपेक्षा है तो यहाँ परिणमता है, ऐसा अस्तित्व... अस्तित्व सिद्ध करते हैं। है अपनी पर्याय का कर्ता आत्मा। उसमें दूसरा तो यह होता है, ऐसी अपेक्षा नहीं है। समझ में आया? तीन बोल हुए।

पूर्व भावपर्याय का नाश होने पर भी... पूर्व अवस्था का नाश हुआ। ध्रुवत्व का अवलम्बन करने से... ध्रुवस्वरूप का अवलम्बन त्रिकाल ध्रुव है, उसका अवलम्बन करने से जिसने अपादानपने को प्राप्त किया है ऐसा,... उसमें से हुआ है। ध्रुव में से मिथ्यात्व आदि और ध्रुव के आश्रय से सम्यग्दर्शन आदि। भाषा देखो! ऐई! यहाँ तो ध्रुव। पर्याय का नाश हुआ, तथापि ध्रुवपना चीज़ है, उससे होता है। विकार भी उससे होता है और धर्म की पर्याय भी उससे होती है। अरे... अरे! गजब बात, भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि ध्रुव के ध्येय से तो सम्यग्दर्शन होता है। वह दूसरी बात है। यहाँ तो द्रव्य जो ध्रुव है, वह अपनी पर्याय पलटकर नयी पर्याय में अपादान ध्रुव है, वहाँ से होता है। पर से होता नहीं। समझ में आया? पूर्व भावपर्याय... भावपर्याय है न! चार भाव लेना। नाश होने पर भी... निगोद में और एकेन्द्रिय में सबमें। ध्रुवत्व का अवलम्बन करने से... लो! भाषा देखो! इसका अर्थ ध्रुव द्रव्य है न! वही अपनी पर्याय का, क्या? अपादान है। अपने से—ध्रुव से वह विकार हुआ है। ध्रुव अर्थात् द्रव्य से विकार हुआ है। द्रव्य से निर्विकार धर्मपर्याय हुई है, द्रव्य से समकित हुआ है, द्रव्य से केवलज्ञान हुआ है। गजब समझना! एक ओर कहे तथा एक ओर कहे—कर्म के निमित्त पर लक्ष्य जाये तो तुझे विकार होता है। तो और वहाँ निमित्त का लक्ष्य जाता है। लक्ष्य जाता है परन्तु... लक्ष्य जाये तो अपने निमित्त की अपेक्षा बिना अपना लक्ष्य जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह विचारने की ताकत न हो। फिर कोई पाप किया हो न थोड़ा, पूरे दिन चौबीस घण्टे-घण्टों पास करता है। दो घड़ी भगवान की भक्ति और पूजा-बूजा करके यदि पाप नाश हो जाये तो यह समझना मिटे। ऐई! ऐसा समझे बिना कभी कल्याण नहीं होता। भक्ति करे क्या, लाख मन्दिर बनावे, लाख मन्दिर बनावे और करोड़ों-अरबों पैसा हो, वह दान में दे देवे। तो भी, किंचित्-जरा भी आत्मा का कल्याण और धर्म नहीं होता। समझ में आया? क्या है? समझ में आया या नहीं? क्या है?

मन्दिर कौन बनाता है? वह तो जड़ की पर्याय से हुआ है। उसका कोई करनेवाला है? उसमें यह आ गया है? परमाणु जो है, वह पूर्व पर्याय का नाश करके

ध्रुव के अवलम्बन से वह पर्याय होती है। पर के कारण से होती नहीं। अरे... अरे! दिखता है न कहते हैं, ऐई रमणीकभाई! हैं? उपदेश से भी नहीं होता। वाणी की पर्याय भिन्न है। वह तो पुद्गल की पर्याय है वाणी की। आहाहा! हैं? कौन करावे? विकल्प स्वयं करता है। अपने में होता है। देह की क्रिया जड़ से होती है, आत्मा से नहीं होती। शरीर की क्रिया चले, वह आत्मा से नहीं। समझ में आया? गजब, भाई!

पैर उठते हैं न, पैर? तो वह परमाणु स्वयं पूर्व की पर्याय बदलकर नयी पर्याय का कार्य ध्रुव से होता है। परमाणु से होता है। आत्मा से बिल्कुल नहीं। चलने में उसे आत्मा की अपेक्षा है ही नहीं। आत्मा ने विकल्प किया कि मुझे चलना है, तो विकल्प की अपेक्षा है तो अँगुली और पैर की पर्याय ऐसी होती है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। बिल्कुल झूठ है, ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! यह तो पाठशाला अलग है यह।

मुमुक्षु : इनका तो कहना ऐसा है कि विकार स्वयं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आवे इतना। बस, इतना ही। आवे उसे तोड़े कहाँ से? उस काल में होता है। वह और तोड़ने का दूसरा विषय है। यह है खबर है, सब ख्याल है। विकल्प तो आया न? ख्याल है न, यह नहीं ख्याल?

यह विकल्प आये बिना रहता नहीं। इस विकल्प का परिणमन भी जीवद्रव्य से है, ऐसा कहना है। तथापि जीवद्रव्य से होता है, तो भी ज्ञानी उसे जानता है कि इस विकल्प का परिणमन मुझसे हुआ है, ऐसा जानता है। बस जानता है। कर्ता नहीं। यह कर्ता अर्थात् परिणमन हुआ। परन्तु यह मैं करता हूँ और करनेयोग्य है, ऐसा नहीं है। ऐसे आये बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? गजब बातें, भाई! लाभ किससे होता है? लाभ की कहाँ बात है? राग आता है तो राग आये बिना रहे? लाभ नहीं तो आये बिना रहे? छोड़ना या नहीं, यह प्रश्न ही कहाँ है? तथापि उसके काल में राग आये बिना रहता ही नहीं। खाने का विकल्प आवे या नहीं? लो! खाने का विकल्प छोड़े तो! छोड़े, परन्तु किस प्रकार छोड़े? खाने का विकल्प हुआ है। छोड़े क्या? समझ में आया? यह द्रव्य की पर्याय उस समय में विकल्प होने की थी, वह पर्याय उसकी है। उसके अस्तित्व में है। पर से नहीं। आहाहा! कौन करे? यह अपवास करे

और छोड़े किसे ? राग को छोड़ूँ, यह भी विकल्प है। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का मार्ग.... समझ में आया ?

ज्ञानी को भोग का विकल्प आता है। लो! ख्याल नहीं है ? कि उसमें दुःख है। आकुलता है। विवाह करे, ज्ञानी कुँवारा हो। समकित होने के बाद विवाह करे। तीर्थकरदेव तीन ज्ञान के धनी, क्षायिक समकित लेकर आते हैं और फिर छियानवें हजार स्त्रियों से विवाह करते हैं। भोगना, यह कर्म कब था ? उस समय का वह विकल्प आये बिना रहता नहीं। जानते हैं कि यह आया है इतना। टालना और उत्पन्न करना, यह ज्ञान का स्वभाव है ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा! यह और अलग बात है। ज्ञान का स्वभाव, मैं विकल्प टालूँ, (ऐसा नहीं) यह भी टलता है, उसे ज्ञान जानता है, उदय होता है उसे जानता है, खिरता है, उसे जानता है, आता है उसे जानता है। वह दूसरी चीज़ है। यह तो ज्ञानस्वभाव का भान में ऐसा होता है। परन्तु वह परिणमन है, वह तो इसका है। कहीं जड़ का है और जड़ के कारण से है, ऐसा है नहीं। ज्ञानी को भी नहीं, ऐसा कहते हैं। हैं ? आवे, आये बिना रहे नहीं। उसका काल है या नहीं ? राग का काल है। अशुभ का काल है, वह आये बिना रहे नहीं। समझ में आया ?

परन्तु इसे-वीतराग को कहाँ निर्बलता है। और कमजोरी है तो आवे सही। टालता क्यों नहीं ? परन्तु उस समय टलने का योग ही नहीं है। उत्पन्न हुआ, उस काल में टलने के योग्य नहीं है, ऐसा ज्ञानी जानता है। कठिन काम है। लाडुलालजी ! हैं ? पूरा विषय अलग, बापू! यह अभी अलग विषय है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ वश ही नहीं होता। ज्ञानी तो राग आवे, उसे जानता है। उसकी ज्ञान की पर्याय ऐसी है कि वह ज्ञान अपने को जानता है और राग को भी जाने ऐसी पर्याय प्रगट होती है। उस पर्याय में फेरफार करना, वह ज्ञानी का कर्तव्य नहीं है। अरे ! कठिन काम है।

मुमुक्षु : दो धारी तलवार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो धारी तलवार नहीं। ऐसा है, बापू! सूक्ष्म बात है, भाई!

अभी तो ऐसा कहना है कि द्रव्य में जो पर्याय होती है विकार या अविकार, उसका अपादान स्वयं से हुआ है। से, उससे, आत्मा से विकार हुआ है। आत्मा से सम्यग्दर्शन हुआ है। ऐसा अपना अपादान अपना कारण है। पर से हुआ है, ऐसा नहीं है। गजब काम, भाई!

आत्मभान हुआ कि राग से मैं भिन्न हूँ, चैतन्य हूँ, ज्ञायक हूँ। तो उसमें ध्रुवदृष्टि में, ध्रुव की दृष्टि में पर्याय की जैसी योग्यता हो, वैसी आये बिना रहे नहीं। बस, उसे जाने। आहाहा! कठिन काम! क्रमबद्ध हो जाये। भाई! ऐसा ही है। सुन तो सही! वह ज्ञान की पर्याय भी उस समय में उस प्रकार के राग का ज्ञान हो, स्वयं से, हों! राग से नहीं। राग आया उसका ज्ञान, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। परन्तु अपने ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि हुई तो अपना ज्ञान हुआ और जो राग है, वह स्व-परप्रकाशक पर्याय स्वयं से होती है। उसमें पर्याय में फेरफार करना और राग में करना, ऐसी चीज़ है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

गाथा-३२० 'दिट्ठी जअेव णाणं' उसमें बहुत आया है। क्या कहलाये वह? ज्ञान, ज्ञानचक्षु। 'दिट्ठी ज अेव णाणं' ज्ञान तो उदय को जानता है, निर्जरा को जानता है, भावबन्ध को जानता है और भावमोक्ष को जानता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी चीज़ दृष्टि की भाँति आत्मा ज्ञाता है। यहाँ तो दूसरी चीज़ सिद्ध करनी है। अपनी पर्याय में दोष होता है या धर्म की पर्याय में होता है, उसे करनेवाला अथवा साधन अथवा से, उससे वह अपने ध्रुव से होता है। एक पर्याय तो बदल गयी। नयी हुई न, किससे? कि ध्रुव से हुई। आहाहा! गजब बात, भाई!

यह वस्तु का विज्ञान है। विज्ञान का विज्ञान। सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ। आहाहा! वीतरागी विज्ञान है यह। खबर नहीं होती। यह धन्धे और पाप के कारण सुनने समझने की निवृत्ति भी नहीं होती। जयन्तीभाई! उसमें और कुछ पाँच-पच्चीस लाख इकट्टे हो जायें-आहाहा! मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो गयी। मानों क्या हो गया, क्या हुआ? धूल भी नहीं हुई, सुन न! मिथ्यात्व का-ममता का भाव परिणमाया है। उसमें तुझे यह लाभ मिला है। पर का लाभ तो है नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि से... से... से... हो गया, लो! ध्रुवत्व का अवलम्बन करने से...

भाषा देखो! वस्तु जो ध्रुव है, उसके अवलम्बन से विकार होता है। ऐ शान्तिभाई! विकार होता है। कहो, समझ में आया? वह कहे ध्रुव के अवलम्बन से तो धर्म पर्याय होती है। वह दूसरी बात है। यह दूसरी बात है। यह तो द्रव्य ध्रुव में से वह पर्याय आती है, कहीं बाहर से नहीं आती, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! समझ में आया? कहो, चन्दुभाई! ऐसा है यह। देखो! आहाहा! कल से कुछ अन्तर पड़ा है थोड़ा सा। थोड़ा अन्तर पड़ा है।

अरे! जागृत ज्योति तू चैतन्य, तुझे दबानेवाला कौन? समझ में आया? बादशाह तीन लोक का नाथ, वह जगत की प्रतिकूलता से भी हिलाया हिलता नहीं। डिगाया डिगता नहीं, ऐसा भगवान आत्मा! आहाहा! हैं? चैतन्य मेरुपर्वत भगवान महाप्रभु है न, भाई! वह पूर्व के कारण से तो हिलता नहीं परन्तु वर्तमान विकल्प जाल हो तो भी ध्रुव है तो ध्रुव ही है। उसे कोई हिलावे-डिगावे, ऐसी चीज़ है नहीं। ऐसी चीज़! कौन हिलावे? समझ में आया? पर्याय से तो पार है प्रभु! एक समय की पर्याय से तो पार ध्रुव भगवान आत्मा है। ऐसी ध्रुव की दृष्टि हुई, ध्रुव पर चली गयी, चलो। 'ध्रुव अचलं, चाली गयी अर्थात् ध्रुव पर्याय होकर ऐसा। आता है न?' 'ध्रुव अचल अरु अनुपम गति पाये हुए सब सिद्ध को' (समयसार) पहली गाथा। सिद्ध की पर्याय ध्रुव।

ध्रुव तारा नहीं कहते हैं? भगवान, आनन्दघनजी तो कहते हैं कि निरखी ध्रुव की तारी। ध्रुव तारी आत्मा चैतन्य ध्रुव, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो विकार-फिकार का ज्ञाता-दृष्टा हुआ। किसी को पलटना नहीं, बदलना नहीं, नाश करना नहीं और उत्पन्न भी करना नहीं। आहाहा! अरे भगवान! तेरे घर की बात तुझे खबर न पड़े और दूसरे के घर की होशियारी लगाये! ऐसा होता है और ऐसा होता है। अरे! तेरे घर में क्या है, यह तुझे खबर है? मेरी मुझे खबर नहीं। तो पर की कहाँ से खबर होगी? आँख तो मीचे है। तेरे शरीर की खबर नहीं तो दूसरे को यह कहाँ से देखा? समझ में आया? यहाँ तो भूल और भगवान होने की पर्याय का कर्ता आत्मा है, ऐसा कहते हैं। हैं? आहाहा! अपादान हुआ।

उत्पन्न होनेवाले भावपर्यायरूप कर्म द्वारा समाश्रित होने से... क्या कहते हैं?

आत्मा में जो विकारी पर्याय हुई, वह स्वयं से हुई और अपने में रखी है, यह सम्प्रदान है। अपनी पर्याय में जो विकार हुआ, वह स्वयं ने रखा है। स्वयं ने लिया और स्वयं को दिया है। किसी को दिया नहीं और किसी से लिया नहीं। समझ में आया? आहाहा! पर में सुख है, पुण्य में सुख है, पाप में मजा है। इन्द्रियों के विषय में सुख, ऐसी मिथ्याबुद्धि। कहते हैं कि यह मिथ्याबुद्धि आत्मा ने की है और आत्मा ने ली है। देने-लेनेवाला आत्मा है। वही पर्याय देनेवाली और वही पर्याय लेनेवाली है। किसी को देना-लेना, वह आत्मा में है नहीं। हैं?

इसी प्रकार धर्म की पर्याय। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु की दृष्टि से जो धर्मपर्याय है, वह धर्मपर्याय स्वयं से ली और स्वयं को दी। पात्र भी आत्मा और दाता भी आत्मा। आहाहा! समझ में आया? किसी को देना-लेना, वह आत्मा की क्रिया नहीं है। सेठ! यह पैसा-बैसा देने की क्रिया आत्मा की नहीं है। इसलिए अब नहीं देना न? दे कौन और रखे कौन? वे तो परमाणु स्वयं की पर्याय से कर्ता होकर रहते हैं और जानेवाले हों तो अपनी पर्याय से पर में जाते हैं। मैंने पैसे दिये, मूढ़ है। पैसा तेरी चीज़ है? तू जड़ का स्वामी हुआ? आहार मैंने दिया, दूसरे को जल में दिया, मैंने कपड़े दिये, दवाये दीं। लो! इंजेक्शन दिये, सेवा की, पगचम्पी करते-करते। हाथ तेरा है? हाथ तो जड़ है। जड़ की पर्याय उत्पन्न करके जड़ रखता है। मैंने दिये और लिये हैं? गजब बात भाई! ऐ, शिवलालभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! यह शिवलालभाई को कहता हूँ। गोसलिया तो वकील हैं और बुद्धिवाले हैं। व्यापारी को बराबर समझ में नहीं आये और सूक्ष्म पड़े। बुद्धि थोड़ी—बहुत उघाड़ तो होता है न उसे? तर्क करने को। उसे समझ में आये, समझना चाहे तो। आहाहा! धन्धेवाले तो सब साधारण कहा न! कुछ नहीं होता।

बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९६३-६४ की। यह मुम्बई माल लेने गये तो एक खोजो था। खोजो था खोजो। पचास हजार की आमदनी, तब की बात है, हों! (संवत्) १९६४ के वर्ष की। बारह महीने में पचास हजार की आमदनी। तब पचास हजार अर्थात् अभी सोलह गुने गिनना। आठ लाख। ऐसा पूछा कि भाई! इस दुकान का मालिक कौन है? वह तो वहाँ हमारे उमराला का व्यक्ति दुकान में नौकर था। इतना

लेना हो तो लो। उसमें और एक ऐसा व्यक्ति था कि दो पेटियाँ मेरे नाम से ले जाओ चोरकर। पैसा मुझे देना। अरे! यह क्या करता है, कहा। कहा, कौन सेठ है, कहा? सामने एक होटल थी। उसकी दुकान में। दुकान में ही माल रखा। नमूना हो और गोदाम भरे हों। १९६४ के वर्ष की लगभग बात है। संवत् १९६४। मुम्बई। वहाँ सामने होटल में पानी, दूध-बूध, चाय पीता था। खड़ा हुआ। यह? हस्ताक्षर करना आवे नहीं। बोलना आवे नहीं। पचास हजार रुपये पैदा करता है। १९६४ में पचास हजार कितने कहलाये। ऐ जयन्तीभाई! अभी सोलह गुने हो गया है, हों! सोलह लाख हो तो एक लाख कहलाये। अभी सोलह लाख हो तो पूर्व के एक लाख। लाडुलालजी! बराबर है या नहीं? क्योंकि सब भाव एक बार हो गया न! दाने का, खाण्ड का, सबका सोलह गुना भाव। किसी का बीस गुना होगा। कहा, यह जड़ भरत जैसा और कुछ पचास हजार पैदा करे। उसमें क्या?

अब यह तो पुण्य के परमाणु। उसकी पर्याय से कहाँ पैदा करता है? वे परमाणु तो आनेवाले हों, वे आते हैं। तब तो इतना था कि यह उसके पुण्य के कारण हैं इतना। यह क्या, यह जड़ भरत! हस्ताक्षर करना भी आता नहीं। और बुद्धि के बड़े खाँ हों, तो भी हजार रुपये महीने पैदा करने में पसीना उतरे। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? वह तो जड़ की पर्याय जड़ से आती है और जड़ से जाती है। आत्मा से आवे और आत्मा से जाये, ऐसा है नहीं।

होवे तो ध्यान रखने में अन्तर पड़ता है, ऐसा लोग कहते हैं। यह भी अन्तर है। भाई! एक व्यवस्थापक होशियार हो तो कार्य में अन्तर पड़ता है। जादवजीभाई! और मूर्ख जैसा बैठा हो, उसमें कार्य में क्या? तेरा मुफ्त अभिमान है, सुन न! मूर्ख भी वहाँ वकील हो। कौन सा कायदा निकालने का तुम कहते थे न किसी का? एक व्यक्ति ऐसा वकील था। बड़ी पुस्तक में से कायदा (कानून) निकाले, क्या कुछ दूसरा कहा, ठीक। कायदे में बड़ा-छोटा होगा? ऐसे भी वृद्ध वकील होंगे। लो! आहाहा! अच्छी पुस्तकों में से जो निकालना हो तो उसमें पैसे इतने देने पड़ेंगे। सौ रुपये। नहीं तो छोटे में पच्चीस देंगे। हाँ, यह तो अपने कुछ अच्छी पुस्तकों में से निकालना है। अच्छी पुस्तकों में कायदा दूसरा होगा? ऐसे के ऐसे। वकील अर्थात् क्या परन्तु अब? ऐई! मूर्ख के सरदार

हों बड़े और पाँच-पाँच हजार पैदा करते हों, उसमें क्या है ? धूल में भी है नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि जो कुछ उत्पन्न होनेवाली दशा आत्मा में, उस पर्याय को स्वयं रखता है। किसी को देता नहीं। दे कहाँ से ? अपने में उत्पन्न करके स्वयं रखता है न! उत्पन्न होकर वह पर्याय भाव में होनेवाली, उसे रखता है। रहती है उसके कारण से। समझ में आया ? आहाहा! विकार या अविकार जो पर्याय होती है पूर्व की पर्याय बदलकर। होती है कहाँ से ? उस ध्रुव से। परन्तु रखता है कौन ? कि वह पर्याय रखती है। आत्मा की पर्याय स्वयं को रखती है। दूसरे को आत्मा रखता है, ऐसा है नहीं। और दूसरा है तो अपनी पर्याय रहती है, ऐसा भी नहीं है। ओहोहो! यह सम्प्रदान कहा। सम्प्रदान। अब आधार।

धारण की हुई भावपर्याय का आधार होने से... देखो ! मिथ्यात्व या राग-द्वेष का आधार आत्मा है। पर आधार नहीं है। ऐरण होती है न लोहे की ? ऊपर टीपते हैं न ! तो आधार नीचे की चीज़ है न ! तो कहते हैं, नहीं। उन परमाणु में आधार नाम की शक्ति है तो अपने से ऐसी-ऐसी क्रिया होती है। उस ऐरण के कारण से नहीं। लोहे की ऐरण निचले के कारण से नहीं। देखो !

यह पुस्तक ऊपर यह रखी है, तो कहते हैं नहीं। यह उसमें रही नहीं है। यह परमाणु अपनी पर्याय से, अपने आधार से स्वयं में रहा है। पुस्तक के आधार से बिल्कुल नहीं। पुस्तक के निमित्त की अपेक्षा रखे बिना निरपेक्ष अपनी पर्याय अपने से वहाँ रही है। हाय ! हाय ! दुनिया से अन्ध। दुनिया अन्धी उसके सामने विरुद्ध है यह सब। कहो, समझ में आया ? लो ! यह (पुस्तक) उठी। तो कहते हैं कि यह अँगुली के कारण उठी है, ऐसा नहीं है। उसे ऊँची होने में अँगुली की अपेक्षा भी नहीं है। आहाहा ! गजब बात है।

एक साधु कहता था। लो ! यह मोरपिच्छी पड़ी। इसके कारण से उठेगी ? लो, अपने अब क्या करेंगे ? मोरपिच्छी। इसके सामने विरोध करने में। भाई ! यहाँ के सामने विरोध नहीं है। भगवान ! तू तेरे सामने विरोध (करेगा)। कुछ खबर नहीं। यह मोरपिच्छी पड़ी है, लो ! इसके कारण से उठेगी ? यहाँ कहते हैं कि मोरपिच्छी की उठने की पर्याय

का आधार वह परमाणु है। दूसरे के कारण ऊँची होती है, ऐसा नहीं है। वस्तु में स्वभाव है नहीं, माने वह भ्रम में-अज्ञान में पड़ा है। कठिन काम, भाई! लड्डू-रोटी दाँत में पड़ी है तो दाँत के कारण रोटी के टुकड़े होते हैं, ऐसा नहीं है। रोटी के परमाणु जो है, उनमें आधार नाम की शक्ति है। इस कारण वहाँ टुकड़े स्वयं की पर्याय के आधार से, पर्याय का द्रव्य आधार है, इसलिए उस पर्याय के टुकड़े होते हैं। दाँत से नहीं, छुरी से नहीं। छुरी से खाते हैं न यूरोपियन, छुरी से (काँटे से) खाते हैं।

मुमुक्षु : तो भी चबाना तो पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : चबाये कौन, कहते हैं यहाँ। अरे!

यह वह एक आया था न, वह कहे मैं छुरी से नहीं काटता। नहीं? ऑस्ट्रेलिया का आया था न? हाँ, फल भी हाथ से काटे, खाये। छुरी को छूने का नहीं, दूसरा खाता नहीं। ऑस्ट्रेलियन आया था। अभी तो तीन व्यक्ति—एक अमेरिकन आया था पहले। तुम्हारी राजुल के लिये, नहीं? फिर दूसरा एक आया था जर्मनी। जवान लड़का रूपवान। मैंने कहा, यहाँ अंग्रेजी-बंग्रेजी हमें नहीं आती। पण्डितजी के पास जाओ। और यह तीसरा ऑस्ट्रेलियन आया था। आवे, नाम बड़ा न, वहाँ जाये। मुझे कुछ अंग्रेजी आती नहीं कि तुम्हें समझा सकें। रामजीभाई के पास जाओ और हिम्मतभाई के पास जाओ। फिर पण्डितजी के पास गये थे, नहीं?

यहाँ तो कहते हैं कि जो कोई द्रव्य अर्थात् परमाणु और आत्मा है, उसकी जो पर्याय है, उसका आधार वह परमाणु और जीव है। दूसरा आधार मानना, वह भ्रमणा और अज्ञान है। समझ में आया? अपनी पर्याय में जीव का, मिथ्यात्व या राग-द्वेष की पर्याय का आधार द्रव्य है। कर्म आधार है या शरीर आधार है, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन पर्याय, चारित्र की वीतरागी पर्याय आत्मा की हो, उसका आधार आत्मा है। पुण्य विकल्प है, तो चारित्र की पर्याय का आधार होता है, ऐसा नहीं है। विकल्प का आधार भी वह और वीतरागी पर्याय का आधार भी वह। आहाहा!

धर्मी जीव अपने स्वरूप में स्थिर होता है, आनन्द में आता है, तो चारित्र की वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। साथ में थोड़ा पंच महाव्रत का विकल्प भी है। पूर्ण

वीतराग न हो तब तक। तो वह विकल्प और वीतरागी पर्याय दोनों का आधार द्रव्य है। विकल्प के आधार से चारित्र है या चारित्र की पर्याय के आधार से विकल्प उत्पन्न हुए हैं, ऐसा नहीं है। दोनों पर्याय का आधार द्रव्य है। ओहोहो! क्या परन्तु... कहो, राग-अराग दोनों दशा आत्मा की जब तक वीतराग न हो, तब तक (होती है)। अज्ञानी को तो अकेला विकार और मिथ्यात्व है, तो भी उसका आधार तो आत्मा ही है। और धर्म पर्याय स्वयं से प्रगट हुई, उस समय भी राग तो है। दोनों पर्याय का आधार, पर्याय का आधार पर्याय नहीं, द्रव्य है। और निश्चय से देखो तो पर्याय, पर्याय का आधार है। आहाहा!

निश्चय से तो विकार पर्याय का आधार विकारपर्याय है। धर्म की पर्याय का आधार धर्मपर्याय है। पर्याय का आधार पर्याय है, द्रव्य भी नहीं। अरे... अरे..! कठिन बात, भाई! ऐसा तत्त्वज्ञान समझने में न आवे और फिर गड़बड़ उठे बिना रहे नहीं। भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा। और ऐसा जहाँ बाहर आवे तो, है... एकान्त हो गया, जाओ। ऐसा नहीं है। ऐसा होता है। आचार्यों ने दया, दान, व्रत, भक्ति को साधन कहा है। उन्हें कोई संसार नहीं कहा। और यह तो समकिति के राग को संसार कहते हैं।

संसार अर्थात् उदयभाव। कहो, यह उदयभाव संसार की पर्याय का आधार भी आत्मा है इतना। जब तक अस्थिर दशा है, तब तक संसार है। आस्रव है न? आस्रव कहा है। आस्रव भी प्रशस्त है। धर्म का कारण है। लो! कान्तिलाल ने बड़ा लेख लिखा है। जैनदर्शन (पत्रिका) में तो सब पूरा सरीखा विरोध का आता है। सब लेख यहाँ के विरोध के हैं। वह सनावद का मांगीलाल, वह एक दूसरा, तीसरा और कोई है। चौथा कोई। सबको ऐसे खटकता है। अमुक का (उल्टे का) प्रचार अधिक होता है, ऐसी उसे खबर नहीं पड़ती। निमित्त करने जाये तो उसका कुछ होता है कि क्या कहते हैं, लाओ न सुनें। वह तो होनेवाला हो तो होता है। परन्तु यह तो एक दृष्टान्त। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान! तेरे भाव का आधार कोई दया, दान का विकल्प हुआ तो उसका आधार—पैसा है तो पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं है। जीव मरता है और दुःखी

हैं तो तुझे दया के परिणाम हुए तो दया के परिणाम का आधार वह है, ऐसा नहीं है। आहाहा! कठिन बात भाई! यह दया के विकल्प का आधार तो आत्मा है। नि अर्थात् परम निश्चय से विकल्प का आधार तो विकल्प है। समझ में आया? यहाँ तो मात्र पर से भिन्न करने की बात है न! तो सम्यग्दर्शन की धर्म की पर्याय किसके आधार से उत्पन्न होती है? लो! निमित्त के आधार से? सुनने से? या इस विकल्प से? या पर्याय के आधार से पर्याय, वर्तमान क्षयोपशम पर्याय है, उसके आधार से दूसरी पर्याय दूसरे समय में हुई उसके आधार से? बिल्कुल नहीं।

धर्म की पर्याय तो द्रव्यस्वरूप भगवान आत्मा के आधार से हुई है। और वह पर्याय अपने में रखी तो दान अपने को दिया। कहो, समझ में आया? **ऐसा—स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ...** वर्तता हुआ, देखो! आहाहा! ऐसा—स्वयं एव, ऐसा। स्वयं अपना आत्मा अपने से ऐव-निश्चय। षट्कारकरूप से, वह क्रिया हुई, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। ऐसी क्रिया के कारकरूप से वर्तता हुआ, उस क्रिया में **वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता**। आहाहा! देखो! निमित्त के कारक की अपेक्षा वह पर्याय रखती नहीं। गाथा महा सिद्धान्त है। समझ में आया?

अपने कार्य में पर की—घड़े की पर्याय का कर्ता मिट्टी है। वह कुम्हार की अपेक्षा नहीं रखती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह रोटी की पर्याय आटे में से होती है। वह रोटी की पर्याय की अपेक्षा आटे की है। तवे, स्त्री आदि की अपेक्षा उसे है नहीं। ऐसे रोटी बनती है, ऐसा कहते हैं। भारी सूक्ष्म! यह महासिद्धान्त! **अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता**। अपनी विकारी या अविकारी क्रिया में निमित्त की अपेक्षा नहीं रखता, ऐसा वस्तु का स्वरूप है। व्यवहार से कहो तो जाननेयोग्य चीज़ हुई। समझ में आया?

इसलिए निश्चय से कर्मरूप कर्ता को जीव कर्ता नहीं है... जड़ की कर्म की पर्याय का कर्ता जीव नहीं और जीवरूप कर्ता को कर्म कर्ता नहीं है। बस, जहाँ कर्म कर्ता है, वहाँ जीव कर्ता नहीं। जहाँ जीव कर्ता है, वहाँ कर्म कर्ता नहीं। ऐसा सिद्धान्त बैठ जाये तो अपनी पर्याय अपने से है तो द्रव्य पर लक्ष्य करना चाहिए। दूसरे की जंजाल छोड़ दे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

 प्रवचन-६०, गाथा-६२, वैशाख शुक्ल ०५, रविवार, दिनांक -१०-०५-१९७०

पंचास्तिकाय....

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं।

जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण॥६२॥

यह अधिकार षट्द्रव्य पंचास्तिकाय का वर्णन है। प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय करने में स्वतन्त्र है। यह बात यहाँ सिद्ध करनी है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपनी-अपनी एक समय की जो पर्याय है, उसका करनेवाला वह द्रव्य स्वतन्त्र है। पर की अपेक्षा रखे बिना अपनी पर्याय अपने से होती है। यहाँ तो सिद्धान्तरूप से कर्म और निमित्तरूप से।

निश्चयनय से, देखो! यह बड़ी विवाद की गाथा है। विवाद अर्थात्... क्या कहलाता है? मधुवन में। मधुवन में तेरह वर्ष पहले यह गाथा चली थी। सब पण्डित बैठे थे। गड़बड़ हो गयी। देखो! निश्चयनय से यथार्थ दृष्टि से, अभिन्न की तक़रार हुई। अभिन्न कारक होने से अर्थात् प्रत्येक आत्मा या प्रत्येक कर्म जड़ आदि अपने कर्ता और अपने कर्म अभिन्न होता है। कर्ता दूसरा और कार्य दूसरा, ऐसा निश्चयनय की यथार्थ दृष्टि में ऐसा नहीं होता।

अभिन्न कारक, जीव के परिणाम जीव करे और जीव परिणाम उसका कर्म अभिन्न है। जीव परिणाम करे कर्ता और कर्म, और कर्ता जड़ कर्म है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? इसी प्रकार ज्ञानावरणीय आदि कर्म स्कन्ध कर्मरूप परिणामते हैं, वह कर्म के परिणाम स्कन्ध कर्ता और कर्मपरिणाम उसका कर्म। परन्तु आत्मा उसका कर्ता हो कर्म का और कर्म कार्य है, ऐसा नहीं है। विकारी भाव अपना कर्ता है। वह तो यहाँ विकारी भाव की बात चलती है। 'कम्मसहावेण भावेण' जिसमें कर्म निमित्त है और अशुद्धभाव जो है, उसकी तो यहाँ बात चलती है। आत्मा में अशुद्धभाव जो होते हैं मिथ्यात्व, राग-द्वेष, विषय-वासना आदि। उस पर्याय का कर्ता जीव और वह पर्याय उसका कार्य। कर्म के कारक की अपेक्षा रखे बिना। यह अधिकार चलता है। समझ में आया?

निश्चयनय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव.... पुद्गलकर्म की जो पर्याय होती है, वह कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के (— अपने-अपने रूप के) कर्ता हैं... अपनी-अपनी पर्याय के कर्म अपना कर्ता है और जीव अपनी अशुद्ध रागादि पर्याय का कर्ता है। कर्म की पर्याय है। कर्म की पर्याय नहीं होती? परन्तु जड़ में पर्याय नहीं होती? यह प्रश्न कैसा? जड़ में पर्याय नहीं? जड़ कर्ता है (और) पर्याय उसका कर्म.... छहों कारक उसमें एक समय में है। वर्तमान में बड़ी गड़बड़ है। यह गाथा तेरह वर्ष पहले चली थी। सब पण्डित बैठे थे। वर्णीजी थे, बंशीधरजी थे, फूलचन्दजी थे। अभिन्न कारक, अभिन्न की बात है। परन्तु अभिन्न का अर्थ क्या? कि आत्मा अपने परिणाम का कर्ता अपने परिणाम उसका कार्य, इसका नाम अभिन्न। और कर्म अपनी पर्याय का कर्ता और कर्मपर्याय होती है, वह उसका कार्य। कर्ता-कर्म भिन्न नहीं होते। यहाँ निश्चय से यह सिद्ध करना है। समझ में आया?

यहाँ तो कर्म और आत्मा दो की बात चलती है। क्यों? कि शरीर आदि परवस्तु है, उसकी जो अवस्था जैसे-जैसे होती है तो उसका कर्ता वह परमाणु की पर्याय उसका कर्ता है। यह बात तो यहाँ लेनी नहीं, क्योंकि वह तो पर है। परन्तु जितने प्रमाण में आत्मा में विकार होता है, उतने प्रमाण में वहाँ कर्म बँधते हैं तो भी कर्म की पर्याय का कर्ता विकार भाव नहीं, ऐसी बात है। समझ में आया?

ज्ञानावरणीय आदि कर्म जो बँधते हैं, सातावेदनीय बँधे तो जितने प्रमाण में यहाँ दया, दान का शुभभाव हुआ, उतने प्रमाण में अन्दर पुण्य की पर्याय—सातावेदनीय की पर्याय होगी। तो सातावेदनीय की पर्याय का कर्ता वह परमाणु है और पर्याय उसका कार्य है। यह सातावेदनीय के परिणाम जीव ने किये तो कर्म की पर्याय हुई, ऐसा है नहीं। ऐसी बात है। यह गाथा चली थी। इसका अर्थ किया था। भावार्थ नहीं किया था। यहाँ से विहार करने से पहले। समझ में आया? वर्तमान में बड़ी गड़बड़ है। यह पण्डित लोग भी गड़बड़ करते हैं। पण्डितजी! क्या कहते हैं? उसे कुछ खबर नहीं कि क्या कहते हैं?

कहते हैं, देखो! अपने टीका है न! सामने पुस्तक है। निश्चयनय से सत्यदृष्टि से

वस्तु के सत्स्वरूप के भाव से देखो तो **अभिन्न कारक होने से...** अभिन्न का अर्थ कि कर्म पुद्गल की पर्याय जो है, वह पुद्गल उसका कर्ता और पर्याय सातावेदनीय बँधी, दूसरी बात। छह कारण ज्ञानावरणीय बन्धन का कारण है। बराबर है ? तत्त्वार्थसूत्र। छह कारण से ज्ञानावरणीय बँधता है। ज्ञान की असातना, ज्ञान छोड़ना इत्यादि छह बोल हैं। उन छह बोल के परिणाम जीव ने किये, तो जीव उनका कर्ता और वह पर्याय उसका कार्य। परन्तु उस समय जो ज्ञानावरणीय कर्म बँधे, वह पुद्गलस्कन्ध उसका कर्ता और ज्ञानावरणीय पर्याय उसका कार्य। वहाँ जीव ने छह भाव किये तो ज्ञानावरणीय पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? अभी तो बहुत ही गड़बड़ है। यह बात चलती है। देखो ! नेमीचन्दजी !

निश्चयनय से अभिन्न कारक होने से, अभिन्न समझ में आया ? प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय का कर्ता और पर्याय उसका कार्य, अभिन्न। और आत्मा कर्ता और पर पर्याय कार्य अथवा पर कर्ता और आत्मा की पर्याय कार्य, यह बात सत्यदृष्टि में है नहीं। अपने परिणाम का कर्ता भोक्ता है, किसका है ? जड़ का है ? कर्म उसके कारण से हैं। अपने से हैं ? यह तो बात चलती है। शरीर का भोक्ता आत्मा है ही नहीं। कर्म अपना भोक्ता है राग-द्वेष का। कर्म का भोक्ता तो उदय है। उदय तो जड़ है, अजीव है। अजीव की पर्याय का आत्मा कर्ता और भोक्ता तीन काल में नहीं है, इसलिए तो ६२ गाथा तेरह वर्ष पहले भी वहाँ मधुवन में बहुत चली थी। यह बड़ी गड़बड़ हो गयी। बहुत ही फेरफार हो गया है।

यहाँ देखो ! पुस्तक है या नहीं सामने ? संस्कृत है। देखो ! 'अत्र निश्चयनयेना-भिन्नकारकत्वात्कर्मणो जीवस्य च स्वयं स्वरूपकर्तृत्वमुक्तम्।' एक-एक शब्द शास्त्र में क्या है, वह समझना चाहिए या नहीं ? अपनी कल्पना से अर्थ करे, वह नहीं चलता।

तो कहते हैं, निश्चयनय से कर्म अपनी पर्याय का कर्ता है और जीव अपनी पर्याय स्वयं स्वरूप के (— अपने-अपने रूप के) कर्ता हैं... ऐसा यहाँ कहा है। समझ में आया ? अब यहाँ लेंगे। पहले कर्म की बात, फिर जीव। कर्म वास्तव में, जो कर्म है, क्या कहते हैं ? कि जितने प्रमाण में ज्ञानावरणीय का भाव बँधने में निमित्त है, वह भाव

जीव का है। वह जीव का ही कार्य है। उस समय ज्ञानावरणीय जो बँधता है, वह पुद्गल का कार्य है, जीव का कार्य नहीं। जीव कर्म बाँधता भी नहीं और जीव कर्म छोड़ता भी नहीं। क्योंकि कर्म जड़ पदार्थ है। परपदार्थ का बन्धन आत्मा करे और बन्धन छोड़े, ऐसा वस्तुस्वरूप में है नहीं। तो ऐसा कैसे चले कि भाई! आत्मा कर्म करे और आत्मा भोगे। वह तो निमित्त का कथन है। ऐसा है नहीं। आत्मा जैसे अपने विकारी या अविकारी परिणाम करे, उसका फल भोगे पर्याय में अपने भाव को। कर्म की पर्याय कर्म में होती है। जीव की पर्याय जीव में होती है। किसी का कर्ता कोई है नहीं।

कर्ता हो तो ईश्वर कर्ता जड़ का, पर का। और इस विकार का कर्ता जड़ कर्म। तो उसका तो कर्ता जड़ कर्म। वह ईश्वर दुनिया का कर्ता हो गया। जगत का कर्ता ईश्वर और अज्ञानी के भाव का कर्ता कर्म। तो कर्म उसका बड़ा ईश्वर हो गया। ऐसा है ही नहीं। समझ में आया ?

कर्म.... वास्तव में वास्तव में... जो पुद्गल है और ज्ञानावरणीय आठ कर्म की पर्याय बँधती है, तो कहते हैं कि कर्म वास्तव में, वास्तव में, समझ में आया ? वह पाठ है न ? 'कर्म खलु कर्मत्वप्रवर्तमानपुद्गलस्कन्धरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणं।' समझने की चीज़ है। बहुत ही गड़बड़ है। आत्मा पर की दया पाल सकता है और पर की आत्मा हिंसा कर सकता है, यह बात है ही नहीं। शास्त्र तो ऐसा कहते हैं। यह बात तो है ही नहीं, परन्तु यहाँ तो जितने प्रमाण में जीव विकार करे, उतने प्रमाण में कर्म बँधते हैं। जैसे कि ज्ञानी, यह विकल्प आया तीर्थकरगोत्र का। परन्तु यह आया तो तीर्थकर प्रकृति के परिणाम का बन्ध हुआ, ऐसा है नहीं।

उस समय में कर्म का स्कन्ध कर्ता होकर तीर्थकरप्रकृति की पर्यायरूप कार्य, उसका कर्ता स्कन्ध है। आत्मा के परिणाम उसके कर्ता-फर्ता है नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आत्मा के परिणाम न हो तो बँधे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : न हो, यह प्रश्न ही कहाँ है ? है तो है, एक काल है दोनों का। आयेगा अर्थ में। अर्थ में आयेगा। दोनों का एक समय है। प्रत्येक पदार्थ के परिणामन का स्वकाल तो एक समय में है। किसी का परिणामन अभी और किसी का परिणामन बाद

में, ऐसा है ? छहों द्रव्य एक समय में अपने-अपने परिणाम को वर्तमान करते हैं। किसी काल में पहले राग का कर्ता हुआ, पहले और बाद में हुआ वीतराग का कर्ता अथवा पहले हुआ राग का कर्ता जीव और फिर कर्म राग का कर्ता, ऐसा काल भेद है नहीं। समझ में आया ? बात बहुत ही गड़बड़ हो गयी है।

कहते हैं, **कर्म वास्त्व में (१) कर्मरूप से प्रवर्तमान...** भाषा देखो! पुद्गल-स्कन्धरूप से... पुद्गलस्कन्ध जो है, कर्म होने की योग्यतावाले। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, आयुष्य उस परमाणु में कर्म होने के स्कन्ध जो हैं, वे स्कन्ध अपनी कर्मरूपी पर्याय में प्रवर्तमान होकर **कर्तृत्व को धारण करता हुआ,...** उस कर्म का परिणाम का कर्तृत्व पुद्गलस्कन्ध है। आत्मा उसका कर्ता-फर्ता तीन काल में है नहीं। आहाहा! मोहनलालजी! ऐसी बात है। कहाँ गये नेमीचन्दजी ? पीछे बैठे हैं। स्वयं से परिणामे हैं, यह आगे आयेगा। परन्तु कारक की अपेक्षा रखे बिना। पाठ आयेगा। अभी तो शुरु होता है। कर्म की पर्याय जीव के परिणाम की अपेक्षा रखे बिना। पाठ में देखो!

'न कारकान्तरमपेक्षते' दूसरे कारकों की अपेक्षा, कर्म की पर्याय दूसरे विकारी परिणाम की अपेक्षा नहीं रखती। और कर्म की पर्याय स्वयं से होती है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान ने कहा है तो भगवान ने जाना वैसा कहा। भगवान ने किया है कहीं ? ऐसा होता है परमाणु कर्म की पर्याय का स्वकाल होता है। कर्म कर्मरूप से प्रवर्तते हुए ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, आयुष्य। कोई कहे भाई हम जैसे परिणाम करें, वैसा आयुष्य बँधता है। हम परिणाम न करें तो कैसे बँधे ? परन्तु न करें यह प्रश्न ही कहाँ है यहाँ ? उस समय वे परिणाम हुए विकारी, उसका कर्ता जीव है और कर्म की पर्याय जो हुई, उसका कर्ता उसका स्कन्ध है। आत्मा विकारी परिणाम का कर्ता और कर्म की पर्याय कार्य वस्तु के स्वरूप में तीन काल, तीन लोक में है नहीं। देखो! हमारे वकील कहते हैं। अब तो वकील मिट गया, वकील का पढ़े थे। समझ में आया ? आहाहा!

यह लकड़ी, देखो! ऐसी होती है न! चलावे कौन ? अँगुली से भी नहीं चलती। यहाँ तो, यह वहाँ आयी है और ऐसी हुई। ऐसी थी, ऐसी हुई। तो वह स्कन्ध उसका कर्ता। और उसकी पर्याय उसका कार्य। अँगुली कर्ता और इस पर्याय का कार्य अँगुली

से हुआ, (ऐसा) तीन काल, तीन लोक में नहीं। समझ में आया? परन्तु यह तो बात बाहर में गयी। परन्तु अन्दर में तो जैसे परिणाम करे, वैसे कर्म बँधते हैं न! तो कहते हैं कि नहीं। तेरे परिणाम का कर्ता तू और कर्म की पर्याय का कर्ता वह स्कन्ध। तेरे परिणाम उसका कार्य अथवा कर्ता और वह परिणाम कर्म, (ऐसा) तीन काल में है नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब भाई!

जैन में तो कर्म करे और कर्म भोगे। हैं? गड़बड़-गड़बड़ और उल्टी की उल्टी। देखो! श्रेणिक राजा लो। उन्हें नरक में जाना था? नरक गति का बन्ध पड़ा। तो नरक गति का उदय हुआ तो नरक में जाना पड़ा। सीधी बात है या नहीं? उल्टी। सीधी-उल्टी। ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! वह नरक गति में जाने के परिणाम, उस समय के, उसका कर्ता और वह परिणाम उसका कर्म है। कर्म का उदय उसे खींचता है और ले जाये—तीन काल, तीन लोक में ऐसा वस्तु का स्वरूप है नहीं। समझ में आया? आहाहा! भारी गड़बड़ी!

जैन में तो कर्म के नाम से ईश्वर। कर्म मेरा ईश्वर। दूसरे का ईश्वर कर्ता परमात्मा कोई। हैं? हमारे ईश्वर कर्ता। बात ऐसी करते हैं न भाई! भाई! वह जड़ेश्वर है। परमाणु भी जड़ेश्वर है। अपनी ईश्वरता अपने में रखता है। और एक-एक परमाणु में परमात्मा कहते हैं कि षट्कारक के गुण पड़े हैं। एक-एक परमाणु में जैसे अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रदेशत्व, रंग, गन्ध, रस, स्पर्श गुण है, वैसे कर्ता, कर्म, करण आदि षट्कारक की शक्ति परमाणु में पड़ी है। वह षट्कारक का परिणमन पर्याय है, वह परमाणु कर्ता है। आहाहा! दूसरे परमाणु की पर्याय का कर्ता दूसरा परमाणु, ऐसा भी है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

एक परमाणु में दो अंश स्निग्धता के हैं। दूसरे परमाणु में चार अंश स्निग्धता के हैं। उसके हों तो दो परमाणु की स्निग्धता के अंश चार हो जायेंगे। तो कहते हैं कि चार की पर्याय जो हुई स्निग्धता की, वह कार्य और उसका कर्ता वे परमाणु हैं। वह चार अंशवाले परमाणु जैसे यहाँ चार अंश हुए, (ऐसा) तीन काल में है नहीं। समझ में आया? कठिन बात, भाई! जैनदर्शन यह तो वस्तु का स्वरूप जैनदर्शन है। जैनदर्शन

कोई सम्प्रदाय नहीं। जैनदर्शन अर्थात् वस्तु का स्वरूप है। षट्द्रव्य जो हैं, उन्हें एक समय में जानने की पर्याय की सामर्थ्य है। षट्द्रव्य की एक समय में जानने की सामर्थ्य है। षट्द्रव्य माने तब तो एक समय की पर्याय मानी। और आत्मा मानना वह तो अनन्त पर्यायें अनन्त गुण का पिण्ड पूरा आत्मा है, उसका अनुभव करे और माने तो आत्मा माना कहने में आता है। अभी पर्याय में षट्द्रव्य जैसा है, वैसा पर्याय में मानने की ताकत में भी विपरीतता है, उसे द्रव्य की दृष्टि कभी नहीं होती। समझ में आया ?

कहते हैं, **कर्मरूप से प्रवर्तमान...** कौन ? **पुद्गलस्कन्धरूप से कर्तृत्व को धारण करता हुआ...** पुद्गल उसका कर्ता है। ज्ञानावरणीय पर्याय बँधती है, उसका पुद्गल कर्ता है। भगवान आत्मा की विकारी पर्याय उसका कर्ता नहीं है।

मुमुक्षु : यह तो स्पष्ट बात है, इसमें कोई गड़बड़-गड़बड़ है नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे कैशियर थे न भाई ६३ के वर्ष में, हमारे से छोटे। (संवत्) १९६३ के वर्ष की बात है। सत्रह वर्ष की उम्र में।

(संवत्) १९६३ के वर्ष की बात है, सत्रह वर्ष की उम्र में बड़ा यूरोपियन था, उसका ६३ के वर्ष में तीन हजार मासिक वेतन था। हमारे ऊपर झूठा आरोप लगाया था। दुकान पर पैसे लेने आया था। बक्षीस लेने आया था। मैंने कहा, तुम्हारे साथ हमारे क्या सम्बन्ध, हम तो व्यापारी हैं। स्टेशन के ऊपर हो न पोर्टर-पोर्टर। भूल जाते हैं तुम्हारा यह सब। हमने कहा कि आठ आने दूँगा। वह कहे कि रुपया दो। उसमें हो गया विवाद, फिर उसमें कोर्ट में केस चला। बड़ी कोर्ट थी, वह बड़ी कारकून भी जबरदस्त, मेरे साथ मेरे पिताजी थे। बड़ा भाई था। उन्हें लगा कि कुछ उलझन आयी होगी ? क्यों कानजी ! क्या हुआ ? कहा, कुछ नहीं, होगा क्या ? तीन घण्टे केस चला। हमने तो कह दिया, असत्य हो तो गड़बड़ करनी पड़े। तीन घण्टे चला, हों ! बराबर एक के बाद एक प्रश्न कारकून करता था। सत्य में क्या गड़बड़ करनी हो। असत्य निश्चित करना हो तो गड़बड़ का पार नहीं होता। ऐसे यह सत्य का निर्णय है।

परमाणु की पर्याय कर्म की आयुष्य की। आयुष्य के मनुष्यपने के भाव किये, ऐसा आयुष्य बँधा, भले बँधा, तुझसे नहीं। तुझसे नहीं। जड़कर्म की पर्याय में आयुष्य

बँधने की पर्याय का कर्ता स्कन्ध है। अमरचन्दभाई! आहाहा! गजब जैन में बड़ा घोटाला! क्यों नहीं आये तुम्हारे? ऐई सेठ! तबीयत ठीक नहीं होगी।

कर्मरूप से प्रवर्तमान... भाषा देखो! '**कर्मत्व प्रवर्तमानः**' कर्मरूप से पर्याय में प्रवर्तमान पुद्गलस्कन्धरूप से कर्तापने को धरता हुआ पुद्गल कर्ता है। कर्म की चाहे तो ज्ञानावरणीय हो, दर्शनावरणीय हो। जीव ने अज्ञानी ने मिथ्यात्वभाव किये और दर्शनमोह बँधा, तो कहते हैं कि उस समय के स्कन्ध में दर्शनमोह की पर्यायरूप से परिणमनेवाला कर्ता वह स्कन्ध है। और दर्शनमोह की पर्याय उसका कार्य है। आत्मा का कार्य बिल्कुल नहीं है। अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया? एक बात हुई। कर्ता की बात हुई। अब कर्म। पहले कर्म न लेकर करण लिया। **कर्मपना प्राप्त करने की...** परमाणु में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय, ऐसी **कर्मपना प्राप्त करने की शक्तिरूप करणपने को...** उसके परमाणु में वह शक्ति है। **करणपने को अंगीकृत करता हुआ,...** वह कार्य जो परमाणु में है, उसका करण वह परमाणु है। कारण, करण, साधन परमाणु है। आत्मा के विकारी परिणाम साधन और करण है नहीं। ऐ प्रवीणभाई! यह घड़ी-बड़ी का धन्धा करनेवाला आत्मा नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : किया करेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : किया करेगा अर्थात् ऐसा हुआ करेगा। पर के कारण, आत्मा के कारण होगा, ऐसा है नहीं तीन काल में।

यहाँ तो अन्तर के दो भेद को भिन्न कर दिया, यह तो बाहर की बात है। क्या? नोकर्म की। घड़ियाल आदि नोकर्म है। उनका कर्ता तो आत्मा है नहीं। यहाँ तो कर्म और आत्मा के बीच की बात में कर्म का कर्ता आत्मा कर्ता-फर्ता है नहीं। अप्पा कत्ता-विकत्ता भाई! आत्मा कर्म करे ऐसे भोगे। यह तो निमित्त का कथन है। जड़ की पर्याय आत्मा करे? पर्याय बिना का वह स्कन्ध है? कर्मपना प्राप्त करने की शक्ति है। पुद्गल में कर्म होने की एक समय में वह परिणाम होने की शक्ति है। जीव ने विकार किया तो हुए, कर्मपने की शक्ति पुद्गल में, ऐसा है नहीं। **करणपने को अंगीकृत करता हुआ,...**

यह करण हुआ। कर्ता गया, फिर करण लिया। अब कर्म लेते हैं। कर्म अर्थात् कार्य।

प्राप्य ऐसे कर्मत्वपरिणामरूप से... भाषा देखो! इस स्कन्ध में वह पर्याय होने की थी वह प्राप्य है। वह कर्मत्व परिणाम। कर्मत्व परिणाम मतिज्ञानावरणीय पर्याय होने की कर्मत्व परिणाम। जीव ने मतिज्ञान उल्टा किया तो मतिज्ञानावरणीय बँधा, ऐसा है नहीं। अरे! कठिन बात, भाई! प्राप्य-स्कन्ध में कर्म होने की पर्याय का काल है, उसे प्राप्त करके **कर्मत्वपरिणामरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ,...** अनुभव का अर्थ-उस प्रकार से पर्याय होती है। समझ में आया? **'कर्तृता मनुबिभाणं'** ऐसा है न। कर्ता को अनुभवता है। अनुभवता है अर्थात् होता है। जड़ को कहाँ अनुभव? अनुभव का अर्थ यह है। द्रव्य के अनुसार पर्याय होती है। पर के अनुसार उसमें पर्याय नहीं होती। स्पष्ट बात है। उसमें कोई गड़बड़-गड़बड़ है नहीं। पण्डितजी! आहाहा! अरे भगवान! जैसी चीज़ है, वैसा अभी छह द्रव्य की स्वतन्त्रता का निर्णय नहीं, पर्याय अपनी विकारी है, उसका मैं स्वतन्त्र कर्ता हूँ, ऐसा निर्णय नहीं, उसे यह द्रव्य अव्यक्त है, उसका निर्णय पर का अकर्ता और ज्ञाता कैसे बैठेगा?

पर्याय प्रगट है, उसका कर्ता मैं हूँ, मेरा कार्य है - ऐसी पर्याय की स्वतन्त्रता न बैठे तो पर्यायरहित पूरा द्रव्य था, वह तो उसे दृष्टि में बैठेगा नहीं। उसे सम्यग्दर्शन होगा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बिल्कुल नहीं होता। इसलिए तो कहा, वह पर्याय स्वतन्त्र है एक समय की, कर्म की या जीव की। इतना वर्तमान प्रगट पर्याय का भी स्वतन्त्रपना प्रसिद्ध दृष्टि में न हो, उसे पर्यायवान पूरा द्रव्य प्रसिद्ध करता हुआ, यह ऐसा अव्यक्त आत्मा है, उसे प्रतीति में नहीं आता। समझ में आया? इसके लिए यह बात है। अभी पर्याय में बड़ी गड़बड़ है तो द्रव्य तो कहाँ से आयेगा? समझ में आया?

प्राप्य ऐसे कर्मत्वपरिणामरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ,... कर्मत्व-परिणाम से होता ऐसा। वह कर्म हुआ-कार्य हुआ। पुद्गल का कार्य पुद्गल है। कर्मस्कन्ध का कार्य कर्म ही है। कार्य कर्म ही है। वह कर्म जीव का बिल्कुल है नहीं। समझ में आया? तीन बोल हुए।

चौथा बोल। **पूर्व भाव का नाश हो जाने पर भी...** परमाणुओं में पूर्व में कर्म होने

की योग्यतावाले स्कन्ध थे। कर्म होने की योग्यतावाले स्कन्ध थे। इस स्कन्ध की पर्याय का व्यय हुआ और कर्मरूप पर्याय उत्पन्न हुई। पूर्व भाव का-पूर्व पर्याय का। पूर्व पर्याय का क्या अर्थ? ज्ञानावरणीय आदि जो होने योग्य कर्म हैं विसस्त्रा। तो उसमें वर्तमान कर्मपर्याय नहीं थी। विसस्त्रा पुद्गल कर्म होने की योग्यतावाले थे। तो उस योग्यतावाले की पर्याय का व्यय होकर कर्म की पर्याय उत्पन्न हुई। **नाश हो जाने पर भी ध्रुवत्व को अवलम्बन करने से जिसने अपादानपने को प्राप्त किया है...** उससे हुआ, ऐसा। कर्म की पूर्व की अवस्था का नाश हुआ, नयी अवस्था प्रगट हुई परन्तु परमाणु का ध्रुवपना तो त्रिकाल रहता है। आलम्बन ध्रुव का है। आलम्बन में अपनी पर्याय उत्पन्न हुई, नाश हुई, वह अपने आधीन है। पर के आधीन है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

समय-समय की खबर ली है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, सर्वज्ञ की बात ही ऐसी है। सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा, उसे प्रतिनिधिरूप से सन्त कहते हैं। कोई अपने घर का कहते हैं? समझ में आया? कहते हैं, **पूर्व भाव का (पर्याय का) नाश हो जाने पर भी ध्रुवत्व को अवलम्बन करने से...** नाश हुआ परन्तु ध्रुव का अवलम्बन है न, उससे होता है न! जिसने अपादानपने को, अर्थात् पूर्व पर्याय का नाश हुआ तो उत्पन्न किस प्रकार हुआ? ध्रुव से। अन्दर ध्रुव रहा हुआ है, उससे उत्पन्न हुआ है। यह निश्चय अपादान हुआ। आहाहा! प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक द्रव्य यह जितने षट्द्रव्य हैं न, प्रत्येक द्रव्य में एक समय में षट्कारक की शक्ति गुण भरे हुए पड़े हैं। उस गुण का परिणामन उसकी पर्याय का कार्य उसका है। आहाहा! समझ में आया? अपादान, चार बोल हुए। पाँचवाँ बोल सम्प्रदान।

उत्पन्न होनेवाले परिणामरूप... कर्म की पर्याय उत्पन्न हुई। **कर्म द्वारा समाश्रित...** वह पर्याय स्वयं ने रखी है। दूसरे ने दी, आत्मा ने दी, कर्म का अनुभाग है तो आत्मा को देता है, (ऐसा नहीं है), भाई! कर्म का-कर्म का अनुभाग हो, विपाक हो, अनुभव हो। तत्त्वार्थसूत्र में आता है न, पण्डितजी! कर्म का विपाक, वह अनुभव, हों! वह तो निमित्त का कथन है। पर का विपाक और आत्मा का अनुभव विकार का, ऐसा तीन काल में नहीं है। कहते हैं कि कर्म का पाक हुआ बन्धन में, वह स्वयं से स्वयं में रखा है। आत्मा को दिया है, ऐसा नहीं है। कर्म का अनुभाग, विपाक हो तो वैसा आत्मा को भोगना पड़े,

ऐसी बात नहीं है। गजब बात, भाई! वीरचन्दभाई! यह वीरचन्दभाई तो वहाँ कलकत्ता वाँचन करते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें बनता है, उसकी पर्याय के कारण से। परमाणु में प्रकृति स्वभाव, अर्थ, अवस्था की योग्यता से उसमें होती है। स्वयं से बिल्कुल नहीं। अपनी योग्यता से अपने में परिणाम की अपनी योग्यता का स्वयं कर्ता है, परमाणु की पर्याय का वह कर्ता है। समझ में आया ?

(संवत्) १९८४ में बहुत ही प्रश्न हुआ था। वीरजीभाई के साथ १९८४ में। कितने वर्ष हुए ? ४२। यह क्या है निगोद में, निगोद में भी अपने परिणाम जितने वहाँ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। द्रव्य, क्षेत्र अर्थात् ? परमाणु की प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेश-संख्या। जितने प्रमाण में बँधे, वह स्वयं के कारण से। यह पर्याय अपने कारण से है। यह पर्याय हो तो वहाँ बँधता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! पाठ ऐसा है, देखो!

कषायों से स्थिति और योग से प्रदेश बँधते हैं। प्रकृति और प्रदेश योग से बँधते हैं और कषाय से स्थिति, रस। यह तो निमित्त का कथन है। वस्तु स्वरूप ऐसा नहीं है। समझ में आया ? द्रव्यसंग्रह में ऐसा आया था। वह तो निमित्त का कथन है। उस समय निमित्त क्या था, यह बतलाते हैं। निमित्त है, वहाँ स्थिति, रस पड़े हैं, यहाँ कषाय भाव हुआ तो कर्म में स्थिति, रस पड़े हैं, स्थिति, रस (अनुभाग) कषाय के परिणाम का कार्य है, ऐसा नहीं है। निमित्त का कथन यथार्थ है और यह भी कथन यथार्थ है। निमित्त का अर्थ क्या ? कर्ता नहीं। तब निमित्त कहने में आता है न ? कर्ता नहीं तो निमित्त है। (यदि) कर्ता हो तो निमित्त कहाँ रहा ? तब तो उपादान हो गया। समझ में आया ? गड़बड़वाला है न ? निमित्त है, वहाँ कर्ता मानता है। बड़ी गड़बड़ है।

इस गाथा में बहुत ही स्पष्ट कर दिया है। हम तो, हम पहले से कहते थे। तो बड़ी गड़बड़ हो गयी। कलकत्ता (में) बहुत ही प्रश्न आये। कैसे ? गजराजजी ! गजराजजी के यहाँ भोजन करते थे न, वहाँ कहा था कि विकार निरपेक्ष अपने से होता है, तो उन लोगों को ऐसा लगा कि आहाहा ! भारी पकड़ में आ गये। यह भारी गड़बड़। वहाँ प्रश्न

आये। गजराजजी के घर में। वह शान्तिसागर (साहू शान्तिप्रसाद) लाये। कहा, इस प्रश्न का उत्तर हो गया है, चलो। मुझे क्या शान्तिसागर (साहू शान्तिप्रसाद) होवे तो भी (मुझे क्या)? प्रश्न का उत्तर हो गया है, विकार स्वयं से.... पर के कारण बिना होता है। अब आयेगा। समझ में आया?

मिथ्यात्व के परिणाम हों, अव्रत के परिणाम हों, कषाय के परिणाम हों, पाठ में यह है भाई! जयसेनाचार्य की टीका में तो सब लिया है—चारों भाव। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव। जयसेनाचार्य की टीका में (है, उसमें से) अपने डाला है। भावार्थ में है। इस प्रकार, पुद्गल कर्मोदयादिरूप से या कर्मबन्धादिरूप से परिणमित होने की... भावार्थ में जयसेनाचार्य में है। उदय और कर्म की पर्याय दो के बीच की बात कर्ता-कर्म की। परन्तु आत्मा में जब सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है तो कर्म-दर्शनमोह का अभाव हुआ तो उत्पन्न होती है, ऐसा है नहीं। दर्शनमोह की पर्याय का व्यय हुआ, वह तो परमाणु में होता है। उस कारण से सम्यग्दर्शन होता है? सम्यग्दर्शन की पर्याय का कार्य-कर्ता आत्मा है और उसका कार्य सम्यग्दर्शन पर्याय है। दर्शनमोह का अभाव कर्ता और सम्यग्दर्शन की पर्याय कार्य, ऐसा तीन काल में वस्तु में नहीं है। समझ में आया?

यह गाथा पहले वाँचन हो गयी थी। परन्तु यहाँ थोड़ा चला। भावार्थ तक का। सुने तो सही (कि) जैनदर्शन में क्या है? जैनदर्शन में नहीं, वस्तु के स्वरूप में है। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय है? षट्द्रव्य है, उसका ज्ञान करनेवाली एक समय की पर्याय है और वह पर्याय पर सत्तावलम्बी ज्ञान है, वह भी बन्ध का कारण है। निज द्रव्य का आश्रय करता नहीं। राग को और अज्ञान को जीते, वह जिन। स्वभाव के आश्रय से अज्ञान और राग-द्वेष को जीते, वह जैन। जैन क्या कोई पक्ष या वाडा है? समझ में आया? दिगम्बर जैन। दूसरे तो, वह तो जैन हैं ही नहीं। टोडरमलजी ने तो उन्हें अन्यमत में डाला है।

यह तो सन्त परम्परा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की परम्परा से अनुभव हुआ, उन सन्तों की यह वाणी है। अनादि सनातन सत्य का प्रवाह है। उसमें किंचित् गड़बड़ चलती नहीं। समझ में आया? उसमें तो पंच महाव्रत को निर्जरा का कारण कहा है,

श्वेताम्बर में ठाणांग में आता है। मूल में पाठ है। महाव्रत निर्जरा का कारण है। धूल में भी निर्जरा का कारण नहीं। पूरा फेरफार हजारों... तत्त्वदृष्टि से, सत्य से बहुत ही.... लोग समन्वय करने जाते हैं। बड़े सुधरे हुए हो न! समन्वय करो। जहर और अमृत का समन्वय करो।

...ऐसी बात बाहर आती है न, तो कितने ही कहते हैं भाई! उनके शास्त्र में ऐसा होगा, अपने शास्त्र में तो निर्जरा का कारण है। राग को निर्जरा का कारण कहे, वे शास्त्र कैसे? हैं? वे शास्त्र कैसे? वह तो कुशास्त्र हैं। यह तो जैनदर्शन है। जैन की अपनी पर्याय का कर्ता स्वयं है और पर्याय को राग को जीतनेवाला आत्मा स्वयं से है। पर के कारण से बिल्कुल नहीं, उसे जैन कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, उत्पन्न होनेवाले परिणामरूप... कार्य, कर्म.... अर्थात् कार्य। कार्य द्वारा समाश्रित होने से... उत्पन्न होनेवाले परिणाम कार्य अपने को दिया जाता है। कर्म की पर्याय उत्पन्न हुई वह कर्म ने रखी है। आत्मा को नहीं हुई। यही कहते हैं कि उदय आता है तो कर्म की पर्याय कर्म ने रखी है। आत्मा को देता है? सम्प्रदान ऐसा है? बिल्कुल नहीं। झूठ है। कर्म का अनुभाग जीव को भोगना पड़े, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। कर्म की पर्याय तो जड़ है, वह तो अजीव है। आत्मा जीव है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शरहित चीज़ है और उदय तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाली चीज़ है। तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाली चीज़ रंग, गन्ध, रस, स्पर्श बिना की चीज़ करे, ऐसा है नहीं। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भगवान! यह तो ऐसा सत्य स्वीकार करना पड़ेगा। मार्ग ऐसा है। भूल हो गयी हो तो भूल निकाल डालना। उसमें क्या? भूल निकालने की तो बात है। भूल तो अनादि से होती है। उसमें क्या है? टालना, वह नवीन बात है। भूल तो होती है। अनादि से लोग करते हैं। यह बात तो हम (संवत्) १९७१ के वर्ष से कहते हैं। १९७१। कितने वर्ष हुए? ५५। कर्म से आत्मा में बिल्कुल विकार नहीं होता। जो (ऐसा) मानता है, वह जैन नहीं है। खलबलाहट हो गयी। उस समय तो दिगम्बर के शास्त्र तो देखे भी नहीं थे। श्वेताम्बर शास्त्र देखे थे। भगवतीसूत्र है न। ७१। है, उसमें ऐसा है। उसमें है। ५५ वर्ष पहले कहा था न! बड़ी गड़बड़ हो गयी। कितने ही तो ऐसा

कहे कि हमारे गुरु ने ऐसा कहा नहीं और यह कहाँ से निकालते हैं ? यह पतंग कैसे उड़ती है ? पडाई समझते हो न ? पतंग, ऐसी कैसे उड़ती है ? उड़कर कहाँ जायेगी ? यह तो जायेगी कहाँ ? अपने में जायेगी । कहाँ जाएगी ! सुन तो सही ।

५५ वर्ष पहले की बात है । (संवत्) १९७१ का वर्ष । हम भगवती (सूत्र) देखते थे । उपवास के दिन । एक दिन उपवास और एक दिन आहार । स्थानकवासी में थे । उसमें ऐसा आया था । भगवती का तीसरा श्लोक उसमें आया तो हमने तो उसमें से ऐसा निकाला कि दर्शनमोह की पर्याय दर्शनमोह से होती है । मिथ्यात्व की पर्याय आत्मा से होती है, पर से बिल्कुल नहीं । भगवती में ऐसा है । परन्तु उसमें ऐसा है कि अर्थ निकलता नहीं । वह तो जरा हमारी दृष्टि ऐसी थी न ! बाहर निकालते थे । गुरु को बताते थे और मौन हो जाते थे ।

....मिथ्यात्व होने में अथि से अपने पुरुषार्थ से मिथ्यात्व होता है, ऐसा पाठ है । उसमें सब लिखा था । समझ में आया ? पर के कारण से अपने में मिथ्यात्व और राग-द्वेष होते हैं, वहाँ कांक्षा मोहनीय की बात है । कांक्षा मोहनीय । मिथ्यादृष्टि की बात है । बहुत ही पहले ७१ में देखा था । कांक्षा मिथ्यात्व मोहनीय अपने पुरुषार्थ से होता है । पर के कारण से नहीं होता । ऐसी बात डाली थी । गड़बड़ हो गयी । कहाँ से ? यह पाठ देखो ! क्या है पाठ ? हाँ करे नहीं, हाँ करे नहीं । मार्ग तो ऐसा है, भगवान ! तीन काल, तीन लोक में महाविदेह में भगवान कहते हैं, ऐसा है । सन्त कहते हैं ऐसा और समकिति कहे तो ऐसा है । उसमें फेरफार है नहीं ।

कहते हैं कि कर्म का फल कर्म को देता है । गजब बात है न ! कर्म का अनुभाग हुआ, बन्ध पड़ा, वह पर्याय कर्म ने रखी है । और फल आया, वह भी कर्म ने रखी है । आत्मा को कर्म का फल जड़ दे, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं होता । यह सम्प्रदान हुआ । सम्प्रदान । और अब आधार, अधिकरण है न, अधिकरण ।

धारण किये हुए परिणाम का... ज्ञानावरणीय पर्याय हुई, उसे धारण किया है पुद्गल ने । धार रखने में आते हुए परिणाम अर्थात् पर्याय है, कर्म पर्याय है न ? कर्म गुण नहीं है । परमाणु द्रव्य है । और उसके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श गुण हैं और यह कर्म तो

उसकी पर्याय है। ऐसे परिणाम कहो या पर्याय कहो। धारण किये हुए परिणाम का आधार होने से... ओहोहो! कर्मस्कन्ध आधार है। आत्मा के विकारी परिणाम कर्म के परिणाम का आधार नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

जैन में इसे एकान्त कहते हैं। अरे! तुम्हारा एकान्त है, भाई! हमारा एकान्त नहीं, भगवान का एकान्त है, ऐसा कह न! कर्म भी राग कराता है और आत्मा भी करता है तो इसका नाम अनेकान्त स्याद्वाद है। मोहनलालजी! ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। धूल में भी तेरा स्याद्वाद नहीं है, वह तो फुदड़ीवाद है। पर से भी होता है और स्वयं से भी होता है, यह तो फुदड़ीवाद हुआ। चक्करवाद है। अनेकान्तवाद तो यह कि अपने से होता है और पर से नहीं होता, इसका नाम परमात्मा त्रिलोकनाथ दिव्यध्वनि में अनेकान्त इसे कहते थे। समझ में आया? उसमें कोई सन्देह का स्थान नहीं है।

धारण किये हुए परिणाम का... पर्याय का, कार्य का आधार। आहाहा! देखो न, वे कहते हैं दो कारण से कार्य होता है। वह तो व्यवहार का कथन है। साथ में निमित्त क्या था, यह बतलाना है। यहाँ तो कहते हैं कि स्वयं ने धारण की हुई पर्याय का आधार जिसने अधिकरणपने को ग्रहण किया है, उस पर्याय का आधार तो द्रव्य-परमाणु हैं। आत्मा उस परिणाम का आधार नहीं है। वहाँ कर्म रहे हुए हैं न आठ कर्म, तो आत्मा के आधार से वहाँ रहे हुए हैं या नहीं? असंख्य प्रदेश में कर्म रहे हुए हैं तो आत्मा के आधार से नहीं रहे? ठीक आ जाये यहाँ। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! सुन तो सही, प्रभु! उस कर्म की पर्याय का आधार और कर्म रहते हैं आधार परमाणु है। आत्मा असंख्यप्रदेशी है तो उसका आधार है, (ऐसा) बिल्कुल नहीं। कर्म ने जैसा विकार किया तो उसका आधार.... बिल्कुल नहीं। आहाहा! भाई! एक-एक परमाणु में भगवान षट्कारक गुण हैं, गुण, वह शक्ति है। दूसरे परमाणु की पर्याय.... एक निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव और एक-एक जीव को, साथ में दो-दो—तैजस और कार्मण, औदारिक शरीर तो एक। औदारिक, तैजस और कार्मण इतने शरीर में उस कार्मण में अनन्त स्कन्ध हैं। एक-एक ज्ञानावरणीय... एक-एक स्कन्ध में अनन्त परमाणु, वह एक-एक परमाणु की पर्याय स्वयं से कर्ता स्वतन्त्र और कार्य परमाणु का है। दूसरा परमाणु कर्ता और वह कार्य, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

सब मिलकर तो आयु बँधी है न? अनन्त निगोद के जीव हैं, जैसे भाव किये तो आयुष्य बँधे। देखो! नहीं, अपने परिणाम, प्रत्येक जीव ने अपने परिणाम किये। एक जाति के हों तो भी किये स्वयं ने। पर के कारण से नहीं। और कर्म आयुष्य बँधा, उसके कारण से, आत्मा के परिणाम के कारण नहीं। समझ में आया?

लोग विचारते नहीं। पण्डितजी कहते हैं न वाँचना। वाँचेंगे तो, भाई वाँचते तो हैं परन्तु विचार नहीं करते। यह तो विचार करके निर्णय करना है। भगवान! यह तो वस्तु की सत्य बात है। माने या नहीं मैं कर्ता हूँ, तुझसे हो जाता है? ऐसा—स्वयमेव भाषा यहाँ है। स्वयं-एव—ऐसा शब्द पड़ा है न, इसलिए अपने अर्थ में पुद्गल स्वयं ही कर्ता, स्वयं ही, 'ही' शब्द रहा हुआ है। वह यहाँ से शब्द निकाला है। स्वयं-एवः, स्वयं एवः, कर्म की पर्याय स्वयं एवः।

षट्कारकरूप से वर्तता हुआ... पाठ है न? 'व्यवतिष्ठमानं, स्वयमेव षट्कारकी-रूपेण व्यवतिष्ठमानं न कारकान्तरपेक्षते। सत् आवे तो सत् को तो निश्चय स्वीकार करना पड़े न? आहाहा! स्वयं-एव, स्वयं-एव शब्द रहा है। अपने से ही... अपने से ही षट्कारकरूप से वर्तता हुआ... 'व्यवतिष्ठमानं' वर्तता हुआ, 'अन्यकारकन्तरं' अन्य कारक की... जीव के विकारी परिणाम के कारक की अपेक्षा नहीं रखता। समझ में आया? हैं? जीव के परिणाम जहाँ हुए राग या द्वेष, तो वहाँ चारित्रमोहनीय बँधा, तो कहते हैं कि इस परिणाम की अपेक्षा रखकर बँधता है—ऐसा नहीं है। निरपेक्ष षट्कारक स्वयं से पुद्गल में परिणमते हैं। समझ में आया?

देखो! यह चश्मा है। तो कहते हैं कि निरपेक्ष अपनी पर्याय का कर्ता वह चश्मा है। इस अँगुली की अपेक्षा रखे बिना, पर कारक की अपेक्षा रखे बिना वह कार्य चश्मे में होता है। अँगुली, अँगुली में रही। अँगुली की पर्याय का कर्ता अँगुली है। कौन छोड़े? छोड़े कौन और रखे कौन? पर को ग्रहण किया है तो छोड़े? पकड़े भी क्या? सब अपनी-अपनी पर्याय में है, स्वचतुष्टय में (है)। यह परमाणु भी स्वचतुष्टय में है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है। यह परमाणु भी अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है। अपनी पर्याय में यह है और अपनी पर्याय में वह है। पकड़े कौन और छोड़े कौन? हैं? पकड़े कौन? है ही नहीं और पकड़े कौन? बड़ी गड़बड़! बड़ी गड़बड़!!! आहाहा!

मूल अभी षट्द्रव्य की पर्याय की स्वतन्त्रता की बात जँचे नहीं, उसे द्रव्य अखण्डानन्द प्रभु है, (उसकी बात तो नहीं जँचती!) आहाहा!

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव स्पष्ट ढिंढोरा पीटकर कहते हैं, गुप्त कहाँ कहते हैं? यह गुप्त कहने की बात है? हजार, लाख, करोड़ मनुष्यों में। यह बात चली थी न भाई! सेठ आये थे तब। उन्होंने फिर एक व्यक्ति ने ऐसा कहा, यह महाराज नये हैं न! बात कुरेदना नहीं। लोग पण्डित में कहते थे।स्वयं से होता है, पर से नहीं तो बहुत कुरेदना नहीं। क्यों नहीं कुरेदना? पण्डित को कुरेदो, सेठियों को कुरेदो कि कोई पर्याय किसी से नहीं होती। यहाँ गुप्त रखने की बात नहीं है। उन्हें मेरे प्रति प्रेम था न, इसलिए कहे कि महाराज हैं न, दिगम्बर में पहले आये हैं न, यह सब मेरे.... इन्दौर में कुरेदो पण्डितजी को। ऐसा कहते हैं कि अपनी पर्याय अपने उपादान से होती है, पर से नहीं होती। निमित्त से नहीं होती। उपादान से अपने काल के कारण अपने से होती है। कुरेदो। (संवत्) २००१ के वर्ष में, पच्चीस वर्ष हुए। वह भी वैशाख था, हों! कृष्ण, कृष्ण। तुम्हारी (हिन्दी में) ज्येष्ठ कृष्ण। हमारे (गुजराती में) वैशाख कृष्ण छठवीं।

स्वयमेव.... कर्म की पर्याय स्वयं निश्चय से ही। षट्कारकरूप से वर्तता हुआ... परमाणु अपनी पर्याय में षट्कारक से वर्तता हुआ, पर्याय में, **अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता**। जीव का अवगुण विकार है तो पर्याय कर्म होती है, ऐसी अपेक्षा कर्म नहीं रखता। समझ में आया? यह तो सीधी बात सीधी-सादी बात है। उसमें कोई सूक्ष्म बात नहीं। परन्तु अब उसे पकड़ रखी है न! ज्ञानावरणीय ज्ञान को रोके। करो अर्थ। ज्ञानावरणीय शब्द पड़ा है या नहीं? ज्ञानावरणीय पड़ा है तो ज्ञानावरणीय का अर्थ करो। ज्ञानावरणीय ज्ञान को आवरण करे, वह ज्ञानावरणीय। ऐसा है नहीं। सुन तो सही! यह तो निमित्त का कथन है। ज्ञान अपनी पर्याय से हीन होता है तो ज्ञानावरणीय उसमें निमित्त कहने में आता है। उस निमित्त की अपेक्षा बिना ज्ञान की पर्याय स्वयं से हीन होती है। आहाहा! गोम्मटसार में पढ़ा हो इसलिए गड़बड़ करे। देखो! भाई! दर्शनमोह के कारण आत्मा में मिथ्यात्व होता है। आयुष्य के कारण आत्मा को शरीर में रहना पड़ता है। यह बेड़ी है। बेड़ी कहते हैं न? परन्तु क्या बेड़ी है? वह तो निमित्त का कथन है। समझ में आया?

अपनी पर्याय की स्वयं स्वयं की योग्यता से वहाँ रहता है। आयुष्य के कारण शरीर में रहता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! शोभालालजी! उसकी पर्याय। नहीं... नहीं, वह उसके कारण से, यह इसके कारण से। नहीं, उसके कारण से नहीं। वह उसके कारण से है, आत्मा के कारण से नहीं। आत्मा ने सम्यग्दर्शन-चारित्र प्रगट किया तो चारित्रमोह का नाश हुआ, ऐसा है नहीं। जैसी चारित्रमोह की पर्याय जड़, उसका कर्ता है तो उसके नाश का कर्ता भी जड़ है। आत्मा ने वीतरागभाव किये तो चारित्रमोह का नाश हुआ, ऐसी पर की अपेक्षा बिल्कुल नहीं है। समझ में आया? यह तो महासिद्धान्त है, ६२ गाथा। हैं? छह और दो=आठ। आठ कर्म का नाश करने की चीज़ है। मगनलालजी! आये हैं या नहीं? देखो यह।

स्वयंमेव... यहाँ से 'ही' है न? उस भावार्थ में। पुद्गल स्वयमेव ही कर्ता है। वहाँ से डाला है। 'ही' यहाँ से निकाला है। स्वयमेव मूल में। उसका वहाँ बहुत अर्थ नहीं लिया न! **स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता।** यह कर्म की बात हुई। अब जीव की।

इस प्रमाण जीव भी, निगोद का हो या सिद्ध का हो, साधु का जीव हो या समकित्ती का हो या मिथ्यादृष्टि का हो। सभी जीव भाव पर्याय से प्रवर्तते हुए, यहाँ अशुद्धता की योग्यता की बात है। हाँ, परन्तु जयसेनाचार्य की टीका में सब लिया है। सिद्धान्त तो सबको लागू पड़ता है न? अशुद्ध पर्याय का कर्ता भी स्वयं से जीव है। कर्म की-निमित्त की अपेक्षा रखे बिना, ऐसे समयग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय का कर्ता भी जीव स्वयं से है, कर्म के अभाव की अपेक्षा रखे बिना। अभाव हो तो उसके कारण से उसमें है। उसमें कोई आत्मा की अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

जितना-जितना चारित्रमोह का उदय हो, उतना राग करता है। जितना-जितना चारित्रमोह का, देखो! भाई! छह महीने बलभद्र ने वासुदेव को कन्धे पर लिया, तो चारित्रमोह का उदय छह महीने तक रहा। चारित्रमोह समाप्त हो गया तो छोड़ दिया। यह सब ऐसा कहते हैं। खोटा है। आता है तो निमित्त का कथन है। क्या है? नय क्या? नय का कथन। यह तो पराश्रित कथन है, स्वाश्रित कथन है, निश्चय कथन है या व्यवहार है। हैं? रखा नहीं था। कौन रखे? कन्धे पर क्या कहलाये शरीर? ऐसा नहीं है। परमाणु

की पर्याय मुर्दे की स्वयं के कारण से वहाँ आधार से रही है। कन्धे के आधार से रही नहीं और उसका राग आया तो कर्म का उदय आया, तब राग आया—ऐसा भी नहीं है। और कर्म का उदय खिर गया।

कहते हैं न छह महीने की स्थिति है, भाई! पूरी हो गयी। एकदम वैराग्य हो गया। मोहनलालजी! ऐसा कहते हैं या नहीं? कहते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? जीव भावपर्याय से, देखो! भाषा ऐसी। भावपर्याय अर्थात् विकारी। मिथ्यात्वभाव हो, राग भाव हो, द्वेष भाव हो, ज्ञानावरणीय के बन्ध का निमित्तरूप से छह भाव हों, परन्तु वे भाव पर्याय से प्रवर्तते आत्मद्रव्यरूप कर्तापने को धरता हुआ, विकारी पर्याय आत्मा ने कर्ता होकर धारण की है। पर की अपेक्षा कर्म के निमित्त की कारक की अपेक्षा रखे बिना। जैसा कर्म का तीव्र उदय आवे तो अशुभभाव होता है, मन्द उदय आवे तो शुभभाव होता है, अभाव होवे तो समकित होता है—ऐसी बात है नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाई, समझ में आया या नहीं? यह तो तुम्हारी हिन्दी चलती है। आहाहा! भगवान!

यहाँ तो सत्य बात ऐसी है। कोई क्या करे, कोई पक्ष की बात है नहीं। परन्तु लोगों को समझ में नहीं आती, इसलिए (वे कहते हैं) एकान्त! वे लोग तो कर्म से कुछ होता नहीं, कौन कहता है कर्म से नहीं होता। कर्म में कर्म से होता है। आत्मा में कुछ नहीं होता। समझ में आया? परन्तु तुम कर्म से आत्मा में घुसाओ और आत्मा में से कर्म में घुसाओ, यह बात है ही नहीं। तीन काल—तीन लोक में ऐसी बात नहीं है। समझ में आया? कहीं बात गुप्त रखी है?

भगवान आत्मा निगोद का जीव हो, कितने ही कहते हैं कि जब तक... नहीं, तब तक तो कर्म का जोर है। क्षयोपशम हो पंचेन्द्रिय हो, तब आत्मा स्वतन्त्र है। तब कर्म का जोर नहीं। ऐसी बात तीन काल में है नहीं। यह निगोद का जीव भी भावपर्याय से प्रवर्तते आत्मद्रव्यरूप से कर्तापने को धरता हुआ, प्रचुर भाव कलंक, ऐसा पाठ गोम्मटसार में है। वह अपने प्रचुर भाव कलंक के कारण निगोद में रहा है। कर्म के कारण रहे हैं, ऐसा नहीं है। यह बात है। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६१, गाथा-६२, वैशाख शुक्ल ०६, सोमवार, दिनांक -११-०५-१९७०

कर्म भी ऐसा है नहीं। अब जीव की बात करते हैं। जीव भी भावपर्यायरूप से प्रवर्तमान... विकारी पर्यायरूप से प्रवर्तते-वर्तते हुए आत्मद्रव्यरूप से कर्तृत्व धारण करता हुआ,... तीन बाल यहाँ लेनी है। अर्थ तीन गिने हैं। परमनिश्चय में तो विकार का कर्ता विकार है। यहाँ अर्थ ही भिन्न बतलाना है। तो विकारी पर्याय का कर्ता आत्मद्रव्य है। कर्म के उदय की अपेक्षा रखे बिना, स्वयं से विकार, मिथ्यात्व, अज्ञान, रागादि-द्वेषादि पर्याय जो होती है स्वतन्त्र.... समझ में आया ?

देखो, यहाँ 'न कारकान्तरमपेक्षते' पर के कारक की अपेक्षा वहाँ है ही नहीं। व्यवहार कहो, तब निमित्त होता है। यह तो निमित्त का ज्ञान कराने की बात है। वस्तु स्वयं में जो निगोद का जीव है, एकेन्द्रिय का जीव है, वह भी अपनी विकारी मिथ्यात्व की पर्याय में उसका कर्ता द्रव्य है। पर की अपेक्षा रखे बिना, पाठ यह है न? 'न कारकान्तरमपेक्षते' दूसरे कर्ता और कर्म की अपेक्षा रखे बिना जीव का विकार स्वयं से निश्चय से यथार्थ से स्वयं से होता है। बड़ी गड़बड़ है। कर्म से होता है... कर्म से होता है। ज्ञानावरणीय कर्म है तो ज्ञान को आवरण होता है। विकार भी क्या, किस नय का कथन है। दो नय का कथन आता है। व्यवहारनय का कथन है या निश्चय का? ज्ञानावरणीय से ज्ञान होता है, ऐसा कहे, वह तो व्यवहारनय का कथन है। पराश्रित कथन है। समझ में आया ?

ज्ञान अपनी पर्याय में हीन दशा प्रगट करे तो कर्म का-ज्ञानावरणीय का निमित्त कहने में आता है। ज्ञानावरणीय निमित्त है तो ज्ञान की पर्याय हीन होती है, ऐसा है नहीं। भाई! यह सब निर्णय करना,... समझ में आया ? क्या कहते हैं ? देखो! भावपर्याय से, संस्कृत कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक में से 'सगं कुव्वदि सेळ सहावेळ' है न पुस्तक— उसका कर्ता। जब-जब जीव अपनी पर्याय में निगोद के जीव को नित्य निगोद, वह कभी एकेन्द्रिय बाहर में आये ही नहीं और कभी त्रस होंगे भी नहीं, ऐसे जीव रहे हुए हैं। नित्य निगोद। उसका जीव भी अपने मिथ्यात्व पर्याय करता है, उसका द्रव्य कर्ता है। उसका कर्मोदय कर्ता है नहीं। विकार बिना किसी को रुचता है ? कर्म बलजोरी से

करावे तो विकार होता है। पण्डितजी! हैं? कर्म जबरदस्ती से करावे, यह बात अत्यन्त मिथ्या और अज्ञानी का भ्रम है। यहाँ आचार्य ऐसा कहते हैं।

जबरदस्ती का अर्थ क्या? वह तो अपने स्वभाव की शुद्ध द्रव्य की दृष्टि हुई और राग करने की रुचि नहीं। और अस्थिरता होती है तो कर्म की जबरदस्ती से अस्थिरता हुई, ऐसा कहने में आता है। ज्ञानी को भी राग होता है, वह कर्म के जोर से नहीं होता। परन्तु राग की रुचि ज्ञानी को नहीं होती। धर्मी जीव को अपने आनन्द और ज्ञान के स्वरूप की रुचि-दृष्टि है। राग करना, वह स्वभाव दृष्टिवन्त की रुचि है ही नहीं। इस कारण उसमें जो राग होता है, वह अपने में है नहीं, अपने करने का भाव है नहीं। इस कारण से कर्म निमित्त है और उसका राग है, ऐसा कहकर पर के जोर से हुआ है, ऐसा कहने में आता है। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। समझ में आया?

कर्म के नाम से तो अभी बहुत ही गड़बड़ी है। हमारे तो यह (संवत्) १९७१ के वर्ष से चलता है। कर्मवादी बिल्कुल नहीं। जैन तो आत्मवादी है। पण्डितजी! ऐसा कहते हैं, हों! जैन तो परमात्मवादी है। एक आत्मा परमात्मा हो सके, ऐसा यह आत्मा जैन है। एक-एक आत्मा परमात्मा हो सके, वह जैन है। हैं? वे कहते थे। (संवत्) १९९४ के वर्ष। कितने वर्ष हुए?संगठन। वे सब वहाँ गये थे..... अजीव से हुआ तो ऐसा भी है, जड़ से हुआ तो ऐसा भी है। जड़ है तो है नहीं तो नहीं। कहा, ऐसा नहीं है। जड़ जड़ से है, अपने से जड़ नहीं, इस कारण जड़ को अपने से नहीं, ऐसा कहने में आया है। और विकार विकार से है, पर से विकार नहीं। समझ में आया?

गुरुकुल चलता है न। यह बात चलती थी। (संवत्) १९९४ के वर्ष की बात है। बत्तीस वर्ष हुए। बहुत ही चली थी। हमारे तो, हमारे सेठ थे। वे बहुत ही कर्मवादी थे। हमारी कर्म की चर्चा (संवत्) १९७१ से बाहर निकली। विकार स्वयं से होता है, कर्म से बिल्कुल नहीं। ७१, समझते हो न? ७१। पचपन वर्ष हुए। लाठी में चातुर्मास था। अपने को आप भूल के हैरान हो गया। दूसरा कोई हैरान करे, ऐसी कोई चीज़ जगत में है नहीं। यह हिन्दी में भी है। हाँ, बोलते हैं परन्तु वापस गड़बड़ कर देते हैं। गड़बड़ कर देते हैं। भाषा तो कर देते हैं। भजन में भी आता है।

‘कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।’ यह समझते हो ?

आता है न चन्द्रप्रभ की स्तुति में।नहीं, बिल्कुल बात नहीं। यह झूठ कहते हैं। यह बात यहाँ झूठी कहते हैं। किसी की पर्याय कोई करे, ऐसा तीन काल में जगत में होता नहीं। जगत का ईश्वर कर्ता, जगत ईश्वर करे और यह राग पर करे, दोनों में अन्तर क्या पड़ा ? अपनी पर्याय से जाता है, जाता कौन है ? अपनी पर्याय से, कल कहा था न ? श्रेणिक राजा क्षायिक समकित, तीर्थकरगोत्र बाँधा है। वे भी अपनी पर्याय की योग्यता से वहाँ गये हैं। कोई कर्म बाँधा है तो उसके कारण से वहाँ गये हैं, ऐसा है ही नहीं। यह तो यहाँ सिद्ध करना है। कौन मुक्ति, स्वयं के कारण से मुक्ति नहीं होती है। भाव बन्ध में रुकता है तो मुक्ति नहीं होती। यह तो स्वयं के कारण से मुक्ति नहीं होती। कहीं पर के कारण से मुक्ति नहीं होती, ऐसा है ? बड़ी गड़बड़ है।

जीव-अजीव की श्रद्धा की ही उसमें भूल है। हैं ? कल आये थे। काल आये थे न ? कर्मफल कर्म दे। आत्मा में क्या ? वह तो जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय रूपी है। कहाँ गये थे ? समझ में आया ? देखो ! यह समझने की बात है—६२ गाथा। प्रत्येक **भावपर्यायरूप से....** चाहे तो मिथ्यात्व पर्याय हो, ज्ञान की हीन दशा हो, हीन को क्या कहते हैं ? कम। चाहे तो दर्शन उपयोग की हीन दशा हो, चाहे तो वीर्य की हीन अथवा विपरीत दशा हो। उस **भावपर्यायरूप से प्रवर्तते....** जीव अपनी पर्याय में प्रवर्तता है। **आत्मद्रव्यरूप से....** आत्मद्रव्यरूप से उसका कर्ता है। उसमें पर कर्ता बिल्कुल है नहीं। समझ में आया ?

बहुत दृष्टान्त दिया है। श्रेणिक राजा को नरक में जाना था ? वे तो समकिति थे। इसलिए उन्हें नरकावरणीय कर्म थे, तो वे ले गये। बिल्कुल झूठी बात है। आनुपूर्वी-फानुपूर्वी वह तो जड़ पर पर्याय है। पर पर्याय तो जड़-अजीव है। जीव की पर्याय तो जीव है। गति करने में जीव की पर्याय अपनी है। पर से गति करने में नरक में जाता है, ऐसा बिल्कुल है नहीं। वह तो जब स्वभाव की दृष्टि करानी है। समझ में आया ? भगवान ज्ञानस्वभाव है। चैतन्यपिण्ड आनन्दस्वभाव है, ऐसा स्वभाव है और विकार

अपना नहीं है, ऐसा माननेवाले की अपेक्षा से कर्म का विकार है और कर्म के कारण से गति मिलती है, ऐसे व्यवहार से पर की अपेक्षा रखकर बोलने में आता है। ऐसी बात है।

कर्म की तो हमारे बहुत ही चर्चा चली थी। (संवत्) १९७१। दामोदर सेठ, दस लाख-बहुत पैसा था और बड़ा सेठ। कर्म जितने उदय में आवें, उतना विकार हो, बस यह उसका प्रश्न था। कहा, बिल्कुल नहीं। बहुत ही प्रश्न करते-करते ऐसी चर्चा चली कि, महाराज... हमारे सामने कोई बोल नहीं सकता। हम तो पैसे-बैसेवाले को बहुत गिनते नहीं थे। पैसावाला हो तो हमारे क्या है? रंक हो या रांक हो, उसके घर में रहा। दामोदर सेठ, यहाँ दामनगर। उस समय—साठ वर्ष पहले दस लाख (की पूँजी)। चालीस हजार का एक गाँव उसके पास था। गाँव समझते हो न? गाँवस्वामी थे। हमारे बनिया थो। कर्म के ऊपर बहुत ही श्रद्धा। कर्म, कर्म और कर्म।

फिर हमारे साथ चर्चा चली तो उसने इतना कहा, महाराज! तुम बहुत ही कहते हो तो इतना रखो, इक्यावन प्रतिशत अपने पुरुषार्थ के और उनपचास प्रतिशत कर्म के उदय के। मोहनलालजी! हमारे तो बहुत ही चर्चा हुई थी न! यहाँ पहेली-बहेली कहाँ है? इक्यावन प्रतिशत... वीरचन्दभाई! उसे वीरचन्दभाई पहिचानते थे। दामोदर सेठ, उसकी कर्म की श्रद्धा इतनी। बस कर्म, कर्म और कर्म। कहा, कर्म बिल्कुल नहीं। उसने बहुत ही चर्चा करते-करते ऐसा कहा कि महाराज! अपने पुरुषार्थ से विकार होता है, इक्यावन प्रतिशत, दोकड़ा, समझते हो न? टका-टका (प्रतिशत) कहते हैं न? इक्यावन पर्सेन्ट इस ओर रखो। निमित्त को उनपचास प्रतिशत रखो। दोनों मिलकर विकार होता है, ऐसा रखो। कहा, बिल्कुल झूठी बात है, एक प्रतिशत भी नहीं। सौ में सौ प्रतिशत विकार का कर्ता जीव और सौ में सौ प्रतिशत उदय का कर्ता जड़। अपने को कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो ऐसी चर्चा पचास वर्ष पहले हो गयी। समझ में आया? हैं? यही चलता है पूरी दुनिया में। चूल्हे में तो राख ही होगी न? जहाँ देखो वहाँ चूल्हे में राख ही होती है। चूल्हा समझते हो? वहाँ कस्तूरी होती है? कोई देश हो, वहाँ ऊंधी दृष्टि होती है? सबको एक सरीखी ही होती है।

यहाँ कहते हैं, वहाँ भी हमने एक दृष्टान्त दिया था। वहाँ जामनगर। (संवत्) १९८८ का चौमासा था न, लोग कहते थे, हों! हम तो वहाँ बैठे थे। कि देखो भाई! चने

का आटा है और एक रुपया भार शक्कर हो, एक रुपया भार शक्कर तो सीधी शक्कर खाये तो मिठास पूरी आवे परन्तु उसमें एक रुपया भार चने का लोट समझते हो न? उसमें एक रुपया भार साथ में डाल दो तो मिश्र हो जायेगा। थोड़ा स्वाद आटे का और थोड़ा स्वाद शक्कर का, दोनों इकट्ठे हो गये।

इसी प्रकार कर्म के उदय के प्रतिशत थोड़े हैं और आत्मा के विकार के थोड़े, दोनों इकट्ठे होकर विकार होता है, ऐसा दृष्टान्त दिया था। १९८८ के वर्ष की बात है। संवत् १९८८। कितने वर्ष हुए? अड़तीस वर्ष हुए। हमारे साथ तो बहुत ही चर्चा चलती थी न? नहीं, कहा—बात बिल्कुल झूठी है। मिश्र-बिश्र कुछ है ही नहीं। कर्म के उदय की पर्याय जड़ में है और विकार अपनी पर्याय में है। समझ में आया?

कर्म के उदय का एक भी प्रतिशत उसमें आता है तो कहीं जड़ के उदय की पर्याय इस ओर आ जाती है? जड़ के उदय की पर्याय में विकार की पर्याय की नास्ति है और विकार की पर्याय में जड़ के उदय की पर्याय की नास्ति है। अस्ति कहाँ से आयी? न्याय समझ में आता है, भाई? निर्णय करना, हों! नहीं तो यहाँ बहुत ही गड़बड़ है। यह कर्म के लिये तो बहुत ही गड़बड़ पहले से है। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी, दिगम्बर में, तीनों में। कर्म... कर्म करता है।

मुमुक्षु : तीनों झूठे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म से माने, वे तीनों झूठे हैं। चाहे तो दिगम्बर हो या चाहे तो वह हो। समझ में आया?

यहाँ परमात्मा ने जो कहा, वह कुन्दकुन्दाचार्य उस बात को प्रसिद्ध करते हैं। **भावपर्याय से....** यहाँ विकार की बात है, हों! आत्मा में किसी भी क्षण में निगोद का जीव हो या एकेन्द्रिय जीव हो या पंचेन्द्रिय हो, वह अपनी **भावपर्यायरूप से प्रवर्तमान...** संस्कृत में है, देखो! है न? **‘भावपर्यायेण प्रवर्तमानात्मद्रव्यरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणो’** कर्तृत्व धारण करता हुआ,... विकार की उस समय की पर्याय धारण करता हुआ, कर्ता जीवद्रव्य है। कर्ता की व्याख्या इतनी है, स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। कहो, समझ में आया? स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। यदि पर की अपेक्षा हो जाये तो स्वतन्त्ररूप से

करे, ऐसा नहीं रहता। वह तो छह विभक्ति साथ में है न? व्याकरण में ऐसी बात आती है। व्याकरण में ऐसा आता है। यहाँ एक बड़ी व्याकरण है कमलास्वामी की। उसमें यह लिखा है। एक बार इतिहास मँगाया था, उसमें ऐसा लिखा था। स्वतन्त्र कर्ता, उसे कर्ता कहा जाता है। स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। स्वतन्त्ररूप से करे, सो कर्ता। अपने यहाँ आयेगा देखो, नीचे भावार्थ में।

पुद्गल स्वतन्त्ररूप से द्रव्यकर्म को करता होने से पुद्गल स्वयं ही कर्ता है। नीचे भावार्थ में व्याख्या की है। स्वयं पुद्गल अपनी कर्मपर्याय करने में स्वतन्त्र है। जीव अपनी विकारी पर्याय करने में पूर्व की पर्याय की अपेक्षा नहीं, बाद की नहीं, निमित्त की नहीं। स्वतन्त्र है। यहाँ तो अभी पर से भिन्न करना है। भाई! द्रव्य को कर्ता कहा। परमनिश्चयनय की दृष्टि से देखो तो विकार का कर्ता विकार है। विकार का कर्ता द्रव्य-गुण है ही नहीं। द्रव्य-गुण की सत्ता बिना... यहाँ चिद्विलास नहीं? चिद्विलास है, चिद्विलास। यहाँ नहीं है। मोहनलाल ने जाना है। कहो, समझ में आया? चिद्विलास में स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया?

अपनी पर्याय स्वतन्त्ररूप से करे, उसमें पर की अपेक्षा है नहीं। वहाँ तो लिया है कि पर्याय का कारण पर्याय है, द्रव्य-गुण की सत्ता बिना। कल रात्रि के प्रश्न में बताया था। रात्रि के प्रश्न में बताया था। गुण की सत्ता बिना विकार विकार की पर्याय करती है। पर्याय का कर्ता पर्याय है। पर्याय का कर्ता उसकी सूक्ष्म पर्याय है। सूक्ष्म शक्ति। पर्याय का कर्ता अथवा पर्याय का कारण पर्याय का प्रतिसत्त्व है। पर्याय का कारण पर्याय का वीर्य है। द्रव्य-गुण का वीर्य नहीं। गजब बात, भाई!

यह जैनदर्शन वस्तुस्थिति ऐसी है। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। सर्वज्ञ ने जैसा देखा, ऐसी जगत की चीज़ है। छह द्रव्य अनादि - अनन्त पदार्थ हैं। एक-एक द्रव्य में अनन्त गुण हैं। और प्रत्येक गुण समय में परिणमन करनेवाले हैं। परिणमन धारावाहिक चलता है। यह परिणमन करने में वह द्रव्य स्वतन्त्र है। पर की कुछ अपेक्षा नहीं है। समझ में आया?

तो कहते हैं, देखो! गुण की सत्ता बिना, ऐसा लिखा है। चिद्विलास-दीपचन्दजी

साधमती (कृत)। अनुभवप्रकाश के करनेवाले, चिद्विलास के करनेवाले, आत्मावलोकन के करनेवाले। उन्होंने लिखा है। बहुत ही स्पष्ट (लिखा है)। गृहस्थ थे। उन्होंने सिद्धान्त निकाला था। गुण की सत्ता बिना पर्याय का कारण पर्याय है। गुण है तो पर्याय होती है, ऐसा नहीं। समझ में आया? अमरचन्द्रजी! यह ऐसी बात है। यह कहीं यहाँ गड़बड़... गड़बड़ चलती नहीं। वीतराग का मार्ग है। यह तो केवली ने कहा हुआ मार्ग है। उसमें कोई कल्पना करे, कोई दूसरा कुतर्क करे, ऐसा नहीं चलता। समझ में आया? क्यों नहीं आये? गर्मी है, ठीक।

भावपर्यायरूप से प्रवर्तमान आत्मद्रव्यरूप से... यहाँ तो यह सिद्ध करना है न? आत्मद्रव्य—कर्ता, वह है, क्योंकि आत्मद्रव्य में कर्ता नाम का गुण है। वह गुण अपनी विकारी पर्याय में परिणमता है। कोई पर के कारण से होता है, ऐसा बिल्कुल अंशमात्र नहीं है, इसका नाम अनेकान्त है। विकार का कर्ता जीवद्रव्य है, परद्रव्य बिल्कुल नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। थोड़े प्रतिशत रखो जीव के और थोड़े प्रतिशत रखो कर्म के, यह जैनदर्शन नहीं है। यह तो मूर्ख दर्शन है। समझ में आया?

वीतरागमार्ग है, परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। तीर्थकर तो सिद्ध हो गये। चौबीस आदि जो अनन्त हुए, वे तो सिद्ध में गये। अशरीरी हैं। यह भगवान तो सशरीर है। अरिहन्त पद में विराजते हैं। जीवन्त स्वामी हैं। जीवन्त स्वामी—जीवन्त—विद्यमान भगवान विराजते हैं। भाई! महाविदेहक्षेत्र है। भगवान विराजते हैं। बीस तीर्थकर हैं। लाखों केवली विराजते हैं। समझ में आया? भगवान के मुख में से यह बात निकली है। यह कुन्दकुन्दाचार्य को अपना अनुभव—चारित्र तो था। विशेष वहाँ गये और आठ दिन वहाँ रहे। साक्षात् भगवान की वाणी समवसरण में आठ दिन सुनी। वहाँ चक्रवर्ती की उपस्थिति थी। चक्रवर्ती ने पूछा, प्रभु! यह कौन है टिड्डी जैसा। वहाँ तो दो हजार हाथ ऊँचे हैं। यहाँ तो चार हाथ ऊँचे हैं। टिड्डी जैसा लगे। टिड्डी होती है न टिड्डी? टिड्डी को क्या कहते हो? वह उड़ती टिड्डी होती है न? जीवांत। पतंग जैसा कीड़ा, तीड़ी—तीड़ी होती है न। इतने छोटे लगे। चक्रवर्ती ने प्रश्न किया, महाराज! टिड्डी जैसे मनुष्य कौन है? भगवान की वाणी में आया—भरतक्षेत्र का धर्मधुरन्धर—धर्म को धारण करनेवाला यह आचार्य है। बात यथार्थ—सब यथार्थ है। समझ में आया?

भगवान के मुख में से निकला, महा आचार्य धर्म को टिकाये रखनेवाले भरतक्षेत्र के आचार्य हैं। आहाहा! समझ में आया? दो हजार वर्ष हुए, दो हजार तो क्या है? वहाँ तो करोड़ों वर्ष का आयुष्य है। भगवान का तो करोड़पूर्व का आयुष्य है। भगवान का करोड़पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष चले जाते हैं। ऐसे करोड़ पूर्व। दो हजार तो क्या है? अभी दो हजार वर्ष पहले भगवान के पास गये थे और यहाँ आकर यह शास्त्र रचे हैं। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं, यह हम तुम्हें कहते हैं। 'जिणवरे हिं' बन्ध अधिकार में आया था। व्रत और नियम नहीं थे। 'जिणवरे हिं पणंतम्' जिनवर ने कहा भाई! ७२ गाथा में आया था न? आहाहा! परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञदेव ने कहे पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति। तो ऐसा व्यवहार तो, भगवान! अभव्य भी करता है न! तो उसमें क्या लाभ का कारण है? व्यवहार तो हेय है, बन्ध का कारण है। ऐसा भगवान कहते हैं। ऐसा कहे चलो। नहीं तो मुनि हैं, वे कहते हैं वह भी सच्चा है।

स्वयं भगवान णमो लोए सव्व आयरियाणं, पंच परमेष्ठी में हैं। समझ में आया? णमो लोए सव्व आयरियाणं, लोए सव्व साधु है न, वह पाँचों में लागू है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आयरियाणं। सव्व अर्थात् दूसरे नहीं, हों! अन्यमति के नहीं। यह और कोई अर्थ करता है। देखो! इसमें क्या डाला है, जैन के ही आचार्य या जैन के साधु हैं? परन्तु जैन के अतिरिक्त कोई साधु-आचार्य होते ही नहीं। समझ तो सही! अन्यमत में कोई सत्य बात है ही नहीं न!

परमेश्वर के मार्ग में वीतराग मार्ग में जो है, वह जहाँ-जहाँ अपने स्वरूप का आचरण करता है, वैसे णमो लोए सव्व आयरियाणं, इसका अर्थ नमस्कार लोक में विराजमान आचार्य (को)। णलो लोए सव्व उवज्जयाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। सर्व साधु का अर्थ भी कितने ही ऐसा करते हैं। देखो! उसमें जैन के ही साधु कहाँ कहे हैं? परन्तु जैन के अतिरिक्त कोई साधु होते ही नहीं। सुन तो सही! यह छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान अन्तर जैन दशा, यह वस्तु।

जिन सो हि है आत्मा अन्य सो हि है कर्म,
यही वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म।

‘जिन सो हि है आत्मा।’ समझ में आया ? आत्मा जिनस्वरूपी, वीतरागस्वरूपी है। वीतरागता प्रगट होती है तो कहाँ से आती है ? बाहर से आती है ? सर्वज्ञ को वीतराग पर्याय प्रगट होती है, वह अन्तर में पड़ी है। भगवान आत्मद्रव्य में सब शक्तियाँ हैं।

**जिन सो हि है आत्मा अन्य सो हि है कर्म,
कर्म कटे जिन वचन से सो हि जैन धर्म का मर्म।**

वीतराग वचन जो कहते हैं, वीतराग के वचन राग के पोषक नहीं होते। जिनवाणी वीतराग भाव की पोषक है। जो राग की पोषक हो तो जिनवाणी नहीं है। समझ में आया ? इसमें कहाँ गुप्त रखना है ! यह ऐसी बात है।

जिनवाणी ! आहाहा ! त्रिलोकनाथ परमात्मा एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने, उससे अनन्त गुणे काल को भी समय में जाने, ऐसी ताकत ! उन परमात्मा के मुख में से यह वाणी आयी है। निमित्त से कथन है। जैसा उपादान वैसा, वाणी भी उपादान में ऐसी आयी। वाणी में भी स्व-पर वार्ता कहने की ताकत है। आत्मा में स्व-पर जानने की ताकत है। वाणी में स्व-पर कथा करने की ताकत है। वाणी आत्मा करता नहीं। जिन जिनवाणी के कर्ता नहीं हैं। नेमीचन्द्रजी ! क्या बात निर्णय करना ? एक-एक बात में अन्तर ! जिनवाणी निकलती है, उसका कर्ता भगवान आत्मा नहीं है। क्योंकि वह तो जड़ की पर्याय है। पुद्गल की पर्याय का कर्ता पुद्गल है। समझ में आया ? यह पहले आया था पुद्गल। समझ में आया ?

भगवान के मुख में से ॐ... ध्वनि निकलती है। ऐसी वाणी नहीं होती। पूरे शरीर में से परमात्मा को ॐध्वनि निकलती है। उस जड़ की पर्याय का कर्ता जड़ है; आत्मा नहीं। आत्मा तो ज्ञान में जानता है कि उस समय में वाणी निकलेगी। उस समय तीन काल के ज्ञान में आया है कि इस समय वाणी परिणमित होगी। ज्ञान में आया है परन्तु उस वाणी के कर्ता हैं ? आहाहा ! नहीं है। वाणी में, पहले कहा न ? स्व-पर कथा कहने की ताकत है। यह पहले कहा।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... नहीं उनकी उस समय में वाणी में ऐसी ताकत

है। हाँ, दूसरे में नहीं। उस समय वाणी में ऐसी स्व-पर कथा कहने की ताकत है।

यह आया है इसमें। यह क्या है? देखो! यह क्या है? पंचास्तिकाय। है न अन्त में है, अन्त में है। देखो! अन्तिम श्लोक है। २६८ पृष्ठ।

स्वशक्तिसंसूचित वस्तुतत्त्वै-व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।

स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥८ ॥

अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (यथार्थ स्वरूप) भलीभाँति कहा है ऐसे शब्दों ने यह समय की व्याख्या (-अर्थसमय का व्याख्यान अथवा पंचास्तिकाय-संग्रह शास्त्र की टीका) की है;... लोग विचार करते नहीं, पढ़ते नहीं और अकेला धोकापंथी करते हैं। हैं? लौकिक जैसी बात। यह तो लोकोत्तर सर्वज्ञ की बात है। भाई! देखो! प्रत्येक में ऐसे शब्द आये हैं, हाँ! प्रवचनसार में भी ऐसे हैं, समयसार में भी ऐसे हैं। प्रत्येक में अन्तिम एक कलश रखते हैं।

अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (यथार्थ स्वरूप) भलीभाँति कहा है ऐसे शब्दों ने यह समय की व्याख्या (-अर्थसमय का व्याख्यान अथवा पंचास्तिकाय-संग्रह शास्त्र की टीका) की है; स्वरूपगुप्त... मैं तो अरूपी आत्मा हूँ। मैं तो राग से और पर से भिन्न गुप्त हूँ। मैं कहाँ वाणी का कर्ता हूँ। आहाहा! किञ्चित् कर्ता नहीं। देखो!

स्वरूपगुप्त (-अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूप में गुप्त) अमृतचन्द्रसूरि का (उसमें) किञ्चित् भी कर्तव्य नहीं है। किञ्चित् भी कर्तव्य नहीं। पाठ है, देखो! 'कर्तव्यमेव अमृतचन्द्रसूरे न किञ्चिदस्ति' संस्कृत है, परन्तु पढ़ते नहीं। यह सब संस्कृत पढ़े हुए यह सब भी गहराई से पढ़ते नहीं। ऊपर-ऊपर से पढ़ते हैं। सामने हो तो हम कहते हैं न! पण्डितजी! जवाबदारी। पण्डित लोगों की जवाबदारी है। बराबर है? परन्तु इस सत्य को दूसरे पर रखे तो जवाबदारी बड़ी है। भगवान के नाम से कहा है।

वीतरागमार्ग को उल्टा कर दे तो उसमें बड़ी जवाबदारी है। समझ में आया? लोग कहते हैं कि भाई! हम तो जानते हैं परन्तु पण्डित लोग बहुत जानते हैं न! परन्तु वे क्या जानते हैं, इसकी बराबर परीक्षा करो तो खबर पड़े।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं ? यह तो सुनी हो। देखो! परन्तु क्या कहते हैं, देखो! कुछ भी कर्तव्य नहीं है। देखो! 'न किंचदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः' मैं मुनि हूँ, वीतरागभाव में रहा हुआ हूँ। मेरी वाणी के कर्तव्य में कुछ भी निमित्त नहीं। निमित्त का अर्थ है, मैं हूँ तो वाणी होती है, यह बिल्कुल नहीं।

परमाणु की पर्याय में उस समय में वाणी में स्व-पर वार्ता कहने की शक्ति से वह वार्ता हुई है। टीका उससे हुई है। आत्मा से नहीं हुई। भाई! है या नहीं इसमें? पंचास्तिकाय है या नहीं? देखो! अपने तो शास्त्र दिखाते हैं। रामजीभाई उन्हें कानून बताते हैं या नहीं? जीव को माने नहीं। वह जज कहे। कानून अन्दर है कानून। आहाहा! भगवान! यह कर्ता अधिकार चलता है या नहीं? वाणी के कर्ता भगवान भी है नहीं। आहाहा! एक-एक परमाणु की पर्याय प्रभु, वह एक-एक परमाणु अनन्त परमाणु की पर्याय तो स्कन्धरूप पर्याय भाषा है। परन्तु उस भाषा में भी एक-एक परमाणु अपनी पर्याय का कर्ता है। दूसरा परमाणु दूसरी पर्याय का कर्ता भी नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ भगवान की वीतरागमार्ग की है। क्या अभिमान करे! ऐसा हो गया न! हम वाणी करते हैं, हम उपदेश देते हैं, हम लोगों को घण्टे भर रंजन (कराते हैं)। अरे भगवान! वाणी के परमाणु क्या आत्मा में है? आत्मा में संग्रह है? वह वाणी तो भाषावर्गणा में से उठती है। आत्मा में से नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भाषा आत्मा तो करता नहीं परन्तु भाषा का कर्ता यह औदारिकशरीर भी नहीं। (यह) आहारवर्गणा है और वह भाषावर्गणा भिन्न है। सूक्ष्म बात, भगवान! क्या कहे? अनन्त पदार्थ मानना और अनन्तपना अस्तित्व में स्वीकार करना, और एक द्रव्य को दूसरा करे, ऐसा मानना तो अनन्त-अनन्तरूप से स्वतन्त्र नहीं रहते। समझ में आया? अनन्त पदार्थ है, ऐसा मानना और एक-दूसरे का करे, ऐसा मानना तो अनन्त रहते नहीं। आहाहा! देखो तो वीतराग का मार्ग! वहाँ देखो तो एकदम सीधी-सट वहाँ तो सौ प्रतिशत सत्य की पुकार है। समझ में आया? जीव-अजीव तत्त्व भिन्न है, राग की पर्याय भिन्न है। भगवान आत्मा से यहाँ तो भिन्न है परन्तु कर्ता तो वह है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अज्ञानरूप से राग का कर्ता तो जीवद्रव्य ही है।

कर्तृत्व धारण करता हुआ,... स्वतन्त्ररूप से विकार का कर्ता आत्मा धारण

करता है। कोई पर की अपेक्षा, कर्म की अपेक्षा है नहीं। तेरह वर्ष पहले बड़ी गड़बड़ हो गयी थी न? यह गाथा कही थी। सब पण्डित बैठे थे। बंसीधरजी, वर्णीजी थे और फूलचन्दजी थे, कैलाशचन्दजी थे। यह गाथा कही थी। उन लोगों को हुआ कि आहाहा! इन लोगों की बड़ी भूल हो गयी। विकार जीव करे, तब तो विकार उसका स्वभाव हो जाये, ऐसा प्रश्न था। परन्तु स्वभाव, स्वभावनं स्वभावः विकार भी विकाररूप से अपना स्वभाव है। अपनी पर्याय है। यह सब आता है। पहले में स्वभावम्। समझ में आया?

पर्याय का स्वभाव, यहाँ कहा न, भावपर्याय। मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष और वीर्य की हीनता अपने में यदि हो उस **भावपर्यायरूप से प्रवर्तमान...** भगवान आत्मा प्रवर्तता है। कर्म प्रवर्तमान होकर पर्याय होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! भगवान चैतन्यबिम्ब प्रभु। अपने आनन्द और ज्ञान का सागर भगवान, वह अपने द्रव्य में कर्तृत्वशक्ति रखता है तो विकार का कर्ता जीवद्रव्य है। यह कर्ता की व्याख्या हुई। स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। पर की अपेक्षा रखे तो वह स्वतन्त्रपना रहता नहीं। और स्वतन्त्र हुए बिना कर्ता हो सकता नहीं। कहो, बराबर है? ऐई दिलीप! बराबर है? वहाँ भी बन्ध अधिकार पढ़ते थे, नहीं? वीरचन्दभाई! वहाँ बन्ध अधिकार सुनता था। यहाँ आया तो कहे, यहाँ भी बन्ध अधिकार चलता है। वह जब आया था न, तब तीन-चार महीने पहले वहाँ भी बन्ध अधिकार चलता होगा। वह उसने याद रखा। वहाँ भी बन्ध अधिकार चलता है और यहाँ भी बन्ध अधिकार चलता है। अपने यह दोपहर में बन्ध अधिकार चलता था न, तीन महीने पहले की बात है।

ओहो! भगवान आत्मा! 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' श्रीमद् का एक संक्षिप्त वाक्य है। श्रीमद् राजचन्द्र—सन्तों की यह पहली शिक्षा है, तुझे तेरे दोष से बन्धन है। सन्तों की यह पहली शिक्षा है कि तुझे तेरे दोष से बन्धन है। तेरा दोष इतना कि पर को अपना मानना और अपने को भूल जाना, वह तेरा दोष है। इतना शब्द में रहा हुआ है। हैं? बहुत ही इतने शब्द में! ऐसी बात है, भाई! क्या हो? दुनिया को कुछ विचार नहीं, मन्थन नहीं, निर्णय नहीं। सत्य का मार्ग क्या है? ऐसे के ऐसे अन्ध की भाँति चलते हैं। बिना भान के वीतरागमार्ग में नहीं चलता। यह तो सर्वज्ञ परमात्मा कहनेवाले हैं। यह पेढ़ी तो सर्वज्ञ की है। कोई कल्पना से चले ऐसा नहीं है।

परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव के मुख में से बात निकली है, वह बात यहाँ है। भाई! उनका मुनिम बनकर उनके नाम का विरोध करे तो बड़ा गुनहगार है। बड़ा अपराध है। समझ में आया? आत्मा की श्रद्धा विपरीत करता है। आहाहा! कहते हैं **भावपर्यायरूप से...** आहाहा! कितनी बात समाहित कर दी है। **प्रवर्तमान...** अनादि-अनन्त कोई भी जीव निगोद का हो या एकेन्द्रिय हो, **आत्मद्रव्यरूप से कर्तृत्व धारण करता हुआ,**... यह कर्ता की व्याख्या हुई। स्वयं कर्ता है, बस इतना। पाठ में है न स्वयं **‘सगं सेल सहावेळ’** स्वयं कर्ता अपने **‘स्वभावेण’** शब्द है, देखो! **स्वभावेण**। यह स्वभाव है न, उस जाति का, स्वभाव है न? कथा में है। देखो! **‘श्वेत स्वभावेन’** अपने स्वभाव से **‘स्वतः करोति’** यह स्वभाव भी राग करने का पर्याय का स्वभाव है। हाँ, मूल में पाठ है न! वह विकार भी स्वभाव है न? स्व अपना है न, अपना। **‘स्वस्य भवनम् स्वभावः’** अपने में हुआ, इस कारण से उसे स्वभाव कहा जाता है। एक के निर्णय का भी ठिकाना नहीं। समझ में आया?

जिसका घड़ा पहले से उल्टा, घड़ा होता है न घड़ा? वह उल्टा हो तो उसके ऊपर के सब उल्टे ही रहते हैं एक भी सुलटा नहीं रहता। हैं? टिके कहाँ से? यहाँ ऊपर, उल्टे-उल्टे रखे तो चले। उसी प्रकार जहाँ पहले से द्रव्य की पर्याय स्वतन्त्र है, उसकी खबर नहीं, जहाँ कुतर्क है तो उसकी सब दृष्टि उल्टी है। समझ में आया? उसमें कोई सुलटी बात रह नहीं सकती। मार्ग ऐसा है, भाई! नेमीचन्दजी! यह कभी आये नहीं न! यह तो सत्य बात है, प्रभु! क्या कहें? दुनिया कहीं उल्टी चलती है और उल्टी चलानेवाले हैं। मार्ग तो ऐसा है, भाई! अब करण। यह पहले कर्ता लिया, फिर यहाँ कर्म नहीं लेकर। यहाँ करण लेते हैं।

भावपर्याय प्राप्त करने की शक्तिरूप से... विकार की पर्याय प्राप्त करने की शक्तिरूप से, ले! आत्मा की शक्ति है ऐसी। **करणपने को अंगीकृत करता हुआ,**... आत्मा का करण-साधन। आत्मा में विकार करने का करण है। अपने करण से विकार करता है। उसमें यह करण गुण है। प्रत्येक पदार्थ में यह षट्कारक गुण है। छहों द्रव्यों में एक समय में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण छह शक्तियाँ हैं। जगत में कोई द्रव्य छह शक्ति बिना के हैं ही नहीं। तो इस जीव में भी करणपने को

अंगीकृत करता हुआ, आहाहा! विकारी पर्याय प्राप्त करने की शक्तिरूप से करणपने को अंगीकृत करता हुआ, करण में दूसरा कोई करण निमित्त है, साधन दो है - ऐसा नहीं है। साधन एक ही है। अपने साधन से विकार करता है। समझ में आया?

जैसे दो मोक्षमार्ग कथन में आते हैं। मोक्षमार्ग दो नहीं हैं। मोक्षमार्ग एक ही है। निश्चय, वही मोक्षमार्ग है। कथन, निश्चय हो, वहाँ ऐसा राग हो तो आरोप देकर कथन किया जाता है। मोक्षमार्ग दो नहीं हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। सातवें अध्याय में, दो आते हैं। उसमें भी विवाद करते हैं। नहीं, मोक्षमार्ग दो नहीं माने, वह मिथ्यात्वी है। यहाँ कहते हैं कि मोक्षमार्ग दो माने वह भ्रम में पड़े हैं। टोडरमलजी कहते हैं कि दो मोक्षमार्ग माने, वे भ्रम में पड़े हैं। क्योंकि एक उपादेय है और एक हेय है, वह तो राग है। दोनों को मोक्षमार्ग मानना, वह भ्रम में है। एक पण्डित कहता है, दो को मोक्षमार्ग न माने, वह भ्रम में पड़े हैं। भगवान! स्वतन्त्र है। मार्ग है और हेय है। राग है न। वह कहाँ मोक्षमार्ग है।

निश्चयसम्यग्दर्शन तो स्वरूप का आश्रय करके हुआ हो, वह निश्चय समकित है। पश्चात् देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का राग है, वह तो व्यवहार का आरोप दिया। परन्तु राग, वह तो राग है। व्यवहार समकित है ही कहाँ? व्यवहार समकित कोई चीज़ है? राग है। राग को आरोप करके कहा कि व्यवहार समकित है। राग तो चारित्र का दोष है। समझ में आया? तो मोक्षमार्ग जैसे दो नहीं, तो मार्ग कहो या कारण कहो या उपाय कहो।

इसी प्रकार साधन दो प्रकार के नहीं हैं। साधन एक ही है। विकार का साधन जीव अकेला है। और दूसरा लो तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अपनी पर्याय का साधन जीवद्रव्य ही है। दूसरा कोई साधन है नहीं। यह तो उदय से व्याख्या है परन्तु जयसेनाचार्य में चारों बोल से लिया है। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, सम्यग्दृष्टि की पर्याय जो क्षायिकरूप हो, उपशमरूप हो, भगवान के समीप में बैठे हों क्षयोपशम समकित, उसे क्षायिक समकित होता है, तो कहते हैं कि वह क्षायिक समकित की पर्याय का करनेवाला, वह जीवद्रव्य है। भगवान है तो क्षायिक समकित हुआ है, ऐसा नहीं है। अरे! गजब बात भाई!

‘केवली दुग्गे’, आता है न क्या कहलाता है वह गोम्मटसार! ‘केवली दुग्गे’, सर्वज्ञ

या श्रुतकेवली के समीप में उसे क्षायिक समकित होता है। यह तो निमित्त का कथन है। कौन निमित्त था, यह (बतलाया है), परन्तु क्षायिक समकित की पर्याय के करण और कर्ता जीवद्रव्य है। पर की अपेक्षा रखे बिना, दर्शनमोह के अभाव की अपेक्षा रखे बिना, भगवान है तो हुआ है—ऐसी अपेक्षा रखे बिना। समझे रतनचन्दजी! ऐसी बात है। अरे, भगवान! जैन में कर्म की बहुत ही बड़ी भूल है, पहले से, हों! हम तो पहले से (संवत्) १९७१ से कहते आये हैं। अरे! जैन को यह कहाँ विपरीतता! लाकडुं क्या कहलाये? अरे परमात्मा तेरी चीज़ स्वतन्त्र है न! हम तेरी भूल कहते हैं और भूल को टालनेवाला भी तू ही है। जो करे, वह तोड़े। पर करे तो तुझे तोड़ने का रहा नहीं। समझ में आया? भावपर्याय प्राप्त करने की, समकितरूपी पर्याय प्राप्त करने की या मिथ्यात्वरूपी पर्याय प्राप्त करने की या चारित्रदोष के राग आदि विषय-वासना आदि प्राप्त करने की शक्तिरूप से करणपने को अंगीकार करता हुआ जीवद्रव्य करण है। जीवद्रव्य विकार का साधन है। दूसरा साधन है नहीं। आहाहा!

दो कारण बिना कार्य नहीं होता। एक तो सत्य है और एक को निमित्त का आरोप देकर ऐसा कथन किया है, ऐसा है। बहुत ही गड़बड़, बहुत ही गड़बड़ है। देखो न, फूलचन्दजी ने कैसा लिखा है तत्त्वज्ञान (जैनतत्त्व) मीमांसा! हैं? जैनतत्त्व मीमांसा। कैसी लिखी है? सरस लिखी है। और खानियाचर्चा। आये हैं न, दो भाग आ गये हैं। खानियाचर्चा। कैसी सरस! दोनों ओर के तर्क हैं। व्यवहार की ओर के तर्क हैं और निश्चय की ओर के भी तर्क हैं। पूरा संग्रह उसमें आ गया है। ऐसी चर्चा है और लोग पढ़ते नहीं, विचारते नहीं। ऐसी चर्चा हुई तो बाहर प्रकाशित करने का भाव नहीं था। बाहर प्रसिद्ध करो। लोग समझे तो सही कि दूसरे के तर्क क्या हैं और निश्चयवाले के तर्क क्या हैं। लोग भी ऐसे हैं। दूसरा साहित्य बनावे, उसे लाख रुपया दे। लो, लाख-लाख का देते हैं न भाई! क्या कहलाते हैं साहूजी? इनाम देते हैं। तीन वर्ष से लाख-लाख रुपये। हैं? हर वर्ष देंगे। साहित्य या दूसरे ऐसे कोई लौकिक बनावे—एक लाख! आहाहा! यह वीतरागमार्ग का सर्वोत्कृष्ट साहित्य कौन बनावे, उसे लाख देना है या किसकी बात है? आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ की द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, क्रमबद्ध,

निश्चय-व्यवहार जो वस्तु की स्थिति है, ऐसा साहित्य बनावे, उसकी कदर करनी चाहिए या इस दुनिया के धूल के साहित्य बनावे। समझ में आया? नेमीचन्दजी! यहाँ तो जो बात हो, वह चलती है। हैं? लाख-लाख बड़े लोग विरुद्ध करने के लिये कितने ही पैसा खर्च करते हैं। पैसा तो पैसा का है जड़, परन्तु उसके भाव में सत्य न जँचे, क्या करे? यह बात ऐसी लगे। यह तो अकेला निश्चय और अकेला एकान्त। अनेकान्त मार्ग हो, ऐसा बेचारे को लगता है। अरे! उसे खबर नहीं, भाई! यही अनेकान्त है, दूसरा अनेकान्त होता भी नहीं। प्रभु!

विकार के करण, अकेला आत्मा पर की अपेक्षा रखे बिना, ऐसे धर्म की पर्याय को करनेवाला आत्मा अपने करण से अकेला, कर्म, गुरु और देव-शास्त्र की अपेक्षा रखे बिना। समझ में आया? गुरु की अपेक्षा रखे बिना। कहाँ गये, हीराभाई गये? ठीक! समझ में आया? ऐसा भगवान कहते हैं। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। आत्मा चारित्र प्राप्त करता है। चारित्र की पर्याय तो अपने करणगुण से चारित्र की पर्याय प्राप्त होती है। कोई चारित्रमोह का अभाव हो और मन्द हो तो चारित्र की पर्याय प्राप्त होती है, ऐसा है नहीं। देव-गुरु-शास्त्र का विकल्प आता है तो होती है... (ऐसा नहीं है)। वह तो विकल्प है। विकल्प आवे तो जानता है। विकल्प का कर्ता नहीं और पर से होता नहीं। यहाँ तो बात ऐसी है। आहाहा! आता है तो किसलिए सुनना? भाई! सुनने का विकल्प आये बिना रहता नहीं। परन्तु सुनने से ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं कि अपनी ज्ञान की सम्यक् पर्याय का करण स्वद्रव्य है। देखो! वाणी और वाणी के निमित्त में अपने ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, वह भी सम्यग्ज्ञान में करण अर्थात् साधन नहीं है। आहाहा! तेरा प्रभु तुझमें डोले। वीर प्रभु ऐसा बोलते हैं कि तेरा प्रभु तुझमें डोले। तेरी पर्याय का कर्ता तू है। उल्टी या सुल्टी। दूसरा कोई कर्ता-फर्ता करण-बरण है नहीं। आहाहा! क्या करे, हमारे पर का संग हुआ और हमारे सेठ कहते हैं न भगवानदास। हमें सुनने को ऐसा मिला तो हम क्या करें? शोभालालजी! भाई ऐसा कहते हैं या नहीं? परन्तु तुम्हारी पर्याय के कर्ता तो तुम हो। कोई सुनानेवाले ने तुम्हारी पर्याय की है? तुम्हें यह बात उल्टी बैठी, वह सुनने से नहीं, तेरी पर्याय की उल्टी दृष्टि के कारण से बैठी है। दूसरे का दोष नहीं है।

भावपर्याय, इसमें उदय की बात है परन्तु चारों लेना। उदय पर्याय, उपशम पर्याय, क्षयोपशम पर्याय, क्षायिक पर्याय—चार पर्याय है। पारिणामिकभाव द्रव्य है। पारिणामिकभाव, वह द्रव्य है, वस्तु है और चार पर्यायें हैं, तो जीव की चार पर्यायों में प्रत्येक पर्याय का कर्ता जीवद्रव्य है और प्रत्येक पर्याय का करण जीवद्रव्य है। चाहे तो क्षयोपशम, उपशम, क्षायिक की पर्याय हो या चाहे तो उदय की-राग की पर्याय हो, दूसरा कोई करण-फरण है नहीं। समझ में आया ?

भावपर्याय.... प्राप्त करने की, यह तो वह भावपर्याय ली है न, वापस कोई वह गुण ले लेते हैं। भावपर्याय। मिथ्यात्व की पर्याय, राग की पर्याय, द्वेष की पर्याय, विषय-वासना की पर्याय, उसे प्राप्त करने की शक्तिरूप से करणपने को अंगीकृत करता हुआ,... जीवद्रव्य। जीवद्रव्य अंगीकार करता है। उस करण में दूसरा कोई करण-फरण है नहीं। समझ में आया ? कोई प्रश्न हो तो रात्रि (चर्चा) में करना। ऐई! गोहाटी! रात्रि में प्रश्न करना। रात्रि में यह प्रश्न नहीं हुआ था ? पर्वत पर बिजली पड़ती है, दो टुकड़े हो जाते हैं तो वापस इकट्ठे नहीं होते। तो तुमको प्रश्न होना चाहिए कि समकित होने के पश्चात् मिथ्यात्व हो जाता है। मोहनलालजी! यह बात यहाँ है नहीं।

यहाँ तो अप्रतिहत जहाँ स्वरूप की प्रतीति हुई, भान हुआ, वह पड़ता नहीं, इसका नाम आत्मा है। यहाँ कहते हैं। अलिंगग्रहण में, अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं। अभी बहुत सूक्ष्म अधिकार आया है, उसमें नौवाँ बोल है। अलिंगग्रहण। अलिंग-लिंग अर्थात् उपयोग, अ अर्थात् हरण नहीं होता। आत्मा के उपयोग का नाश कभी नहीं होता। ऐसा प्रवचनसार (में है)। है ? नहीं। नहीं लाये। सब पुस्तकें नहीं लाते। हैं ? आहाहा ! देखो ! अलिंगग्रहण (गाथा) १७२। देखो ! नौवाँ (बोल)।

लिंग का अर्थात् ? गुजराती है। उपयोग नामक लक्षण का ग्रहण अर्थात् ? पर से हरण नहीं हो सकता। दूसरे से ले जाया नहीं जा सकता अलिंगग्रहण। आत्मा का ज्ञान हरण नहीं किया जा सकता। क्या कहा ? आहाहा ! जब ज्ञान की पर्याय लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है। जब लक्ष्य पर पर्याय गयी तो उसका नाम उपयोग कहने में आता है। वह उपयोग द्रव्य से हटता नहीं, इसका नाम उपयोग है। और उस उपयोग का हरण कभी नहीं होता। समझ में आया ? और लक्ष्य छूट गया तो उपयोग रहा नहीं। सूक्ष्म बात, भाई !

जैनदर्शन का तत्त्व सूक्ष्म है। वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा... चारित्रदोषवाले सीझ जायेंगे, परन्तु दर्शनभ्रष्ट नहीं सीझेंगे। है न पाठ ? दंसण भट्टा भट्टा, चारित्र भट्टा न भट्टा। चारित्रभ्रष्ट वह सीझ जायेगा। क्योंकि ख्याल में आता है कि राग है-दोष है। परन्तु श्रद्धा में भ्रष्ट वह तो सब में भ्रष्ट है। नहीं सीझेगा। यह दर्शनपाहुड़ की गाथा है। समझ में आया ? आता है न ? माघमुनि। माघमुनि आता है या नहीं ? कुम्हारण की लकड़ी के साथ विवाह कर लिया। कहाँ मुनि ! वह तो चारित्र का दोष है। श्रद्धा में दोष नहीं है। आहाहा ! कुम्हार की लड़की के साथ बैठ गये। लो ! संघ में प्रश्न उपस्थित हुआ। इस प्रश्न का स्पष्टीकरण माघमुनि देंगे। आहाहा ! अभी कीमत ! दर्शन और सम्यग्ज्ञान की कीमत तो जहाँ हो वहाँ कीमत है। समझ में आया ? संघ गया। महाराज ! इस प्रश्न का उत्तर आप दे सकेंगे। हैं ? अभी मेरे ज्ञान और श्रद्धा की कीमत संघ में है ?

महाराज ! आपके ज्ञान-श्रद्धा की कीमत तो सदा रहेगी। ऐसे आये और मोरपिच्छी उठाकर वापस साधु हो गये। समझ में आया ? अन्दर चारित्र की स्थिरता आ गयी। आहाहा ! श्रद्धा भ्रष्ट नहीं थे। चारित्रभ्रष्ट थे। ख्याल में आ गया। अरे रे ! आहाहा ! मैं किस भूमिका में था और कहाँ आ गया ? ओहो ! मेरी आनन्द शक्ति और शान्ति शक्ति में से च्युत हो गया। अस्थिरता हो गयी। मैं श्रद्धा में तो बराबर हूँ। राग है, वह दोष है, गुनाह है, मेरा अपराध है। समझ में आया ? ऐसा माननेवाले क्षण में वापस साधु हो गये। सन्त हो गये। भावलिंगी हो गये, भावलिंगी। आहाहा !

श्रद्धा भ्रष्ट। भले साधुपना पालन करे और बाहर व्रत आदि रखे। समझ में आया ? भ्रष्ट में भ्रष्ट है। सम्यक्त्व से भ्रष्ट है, ज्ञान से भ्रष्ट है और चारित्र से भी भ्रष्ट है। लोगों को सम्यग्दर्शन की क्या कीमत है और मिथ्यात्व में कितना दोष और अवगुण है, यह खबर बिना, यह व्रत क्यों नहीं लेते ? और ऐसा कहते हैं। इतने-इतने वर्ष हुए तो भी कोई व्रत तो लेता नहीं। भाई ! व्रत कहीं ऊपर से आ जाते हैं ? अन्तर में जब सम्यग्दर्शनपूर्वक स्थिरता आती है, तब व्रत का विकल्प उठता है। हठपूर्वक ले, वह व्रत है नहीं। वह तो अज्ञान है, मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व का पोषण करता है। समझ में आया ?

‘लहा स्वरूप न वृत्ति का, ग्रहा व्रत्त अभिमान, ग्रहे नहीं परमार्थ को लेने लौकिक मान।’ श्रीमद् राजचन्द्र का वाक्य है। ‘लहा स्वरूप न वृत्ति का, ग्रहा व्रत्त अभिमान,’

वृत्ति-परिणति क्या है, सम्यग्दर्शन क्या है, वह तो खबर नहीं। 'लहा स्वरूप न वृत्ति का, ग्रहा व्रत अभिमान,' और व्रत धारण करके अभिमान लिया। 'ग्रहे नहीं परमार्थ को लेने लौकिक मान।' दुनिया में बड़े मान के लिये व्रत लेकर बैठे, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया? भाई! बात ऐसी है यहाँ। कड़क बात है, हों! आहाहा! भगवान का मार्ग तो ऐसा है न! भाई का एक लड़का था। काना तलाब (में) अपने देवजीभाई का, छोटा। मैंने कहा—लड़के! यहाँ मक्खियाँ बहुत हैं। मक्खियाँ बहुत मर जाती हैं। गन्ना और रस बहुत होवे न, इन मक्खियों को भले परन्तु गाँव किसे कहना? कहे, गाँव उसे कहना। छोटा लड़का देवजीभाई का है। देवजीभाई आये हैं? चले गये। छोटा लड़का कहे, गाँव किसे कहना? गाँव में तो ऐसा ही होता है। छिलकों में रस हो, उसमें रस हो। गन्ने का बड़ा व्यापार न! एक-एक किसान लाख रुपये की आमदनीवाला वहाँ है। मन्दिर बनाया न! एक किसान एक लाख की वार्षिक आमदनी है। एक लाख की आमदनी। दस-दस लाख की पूँजी। किसान। वह कैसा कहलाता है, काना तलाब। वह लड़का कहे, महाराज! यह तो गाँव है। गाँव में तो ऐसा ही होता है। इसी प्रकार उल्टी श्रद्धा में तो ऐसा ही होता है। मक्खियों की भाँति वहाँ उल्टी श्रद्धा के सब तर्क होते हैं।

यहाँ कहते हैं, देखो! लिंग अर्थात् उपयोग नामक लक्षण का ग्रहण अर्थात् पर से हरण नहीं हो सकता। मोहनलालजी! उपयोग का नाश नहीं होता, ऐसा कहते हैं। सम्यक्त्व पाने के पश्चात् मिथ्यात्व हो जाता है न, तो उपयोग का नाश नहीं होता। उपयोग हट गया तो वह तो अनुपयोग हो गया। उपयोग द्रव्य पर लक्ष्य नहीं गया। समझ में आया? वीतराग का मार्ग अलौकिक है, भाई! हैं? आहाहा!....

भावपर्याय प्राप्त करने की शक्तिरूप से करणपने को अंगीकृत करता हुआ,... द्रव्य ने यह साधनपना अंगीकार किया है। इस कारण से विकार नहीं होता। यह साधन अंगीकार किया है, इस कारण से जीव में सम्यग्दर्शन की पर्याय स्वयं से होती है। मिथ्यात्व का भाव अभाव हो दर्शनमोह का, तो होती है, ऐसा निश्चय की पर्याय में पर की अपेक्षा का होता नहीं। परकारण की अपेक्षा रखते नहीं। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६२, गाथा-६२, वैशाख शुक्ल ०७, मंगलवार, दिनांक -१२-०५-१९७०

पंचास्तिकाय, ६२ गाथा... जीव का अधिकार चलता है। तीन बोल आये हैं। देखो! अन्तिम तीन है न? जीव अपनी **भावपर्यायरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ,...** क्या कहते हैं? आत्मा अपनी विकारी पर्याय का कर्ता हुआ, विकारी पर्याय उसका कार्य है। कर्म है तो विकारी कार्य है, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

कितने ही कहते हैं कि भाई! तुम ऐसा कहो, 'ज्ञानावरणीय क्षयात' ज्ञानावरणीय क्षय होता है तो केवलज्ञान होता है, ऐसा कहो। तुम कहते हो कि यह तो व्यवहारनय का वचन है। तत्त्वार्थसूत्र में है न! मोह क्षया, ज्ञानावरणीय क्षयात—यह तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं। यह तो कहते हैं कि कर्म का क्षय हो तो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा कहो। यहाँ तुम कहते हो कि ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है तो कर्म का क्षय होता है, यह तुम कहते हो, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो ऐसा भी नहीं। सुन तो सही। समझ में आया? यह रतनचन्दजी मुखत्यार इत्यादि हैं न, वे ऐसा कहते हैं।

ऐसा कहते हैं कि तुम ऐसा कहते हो कि कर्म क्षयात, शास्त्र में ऐसा पाठ है कि कर्म क्षयात, कर्म का क्षय होता है तो केवलज्ञान प्राप्त होता है। तो तुम ऐसा कहते हो कि केवलज्ञान प्राप्त होता है, तो कर्म का क्षय होता है, ऐसा कहते हो। परन्तु हम तो ऐसा भी नहीं कहते। यहाँ तो अपनी पर्याय अपने से होती है। आहाहा! बहुत ही गड़बड़ है। बड़े रतनचन्दजी तो बहुत ही गड़बड़ करते हैं। पढ़ा हुआ बहुत ही उल्टा है सब। परन्तु यह तो उस ओर से (बात) आयी, इसलिए यहाँ स्पष्ट करना पड़ता है। कि आत्मा में केवलज्ञान की पर्याय का कार्य स्वयं से होता है। इस भावपर्याय में वह भी है। यहाँ तो विकार का, परन्तु उसमें सब है। केवलज्ञान की पर्याय आत्मा स्वयं स्वतन्त्र कर्ता होकर और स्वतन्त्र करण अर्थात् साधन होकर केवलज्ञानरूपी कार्य का करनेवाला जीव है। समझ में आया?

ज्ञानावरणीय क्षय हुआ, केवलज्ञानावरणीय क्षय हुआ तो केवलज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु रह सकता है तो उसके कारण से या इसके कारण से ? यह तो बात चलती है। पहले आ गयी कि ज्ञानावरणीय का क्षय जो होता है, वह अपने स्वकाल से अपनी पर्याय से परमाणु का स्कन्ध उसका कर्ता है। वह अपना स्कन्ध। परमाणु जो स्कन्ध है कर्म होने के योग्य, वह कर्म के क्षय की पर्याय का करनेवाला है। समझ में आया ? आत्मा नहीं। आत्मा पर को क्षय करे, ऐसा होता ही नहीं। कर्म तो परद्रव्य है। परद्रव्य का कर्ता आत्मा है ही कहाँ ? आहाहा ! रतनचन्दजी ! गड़बड़ है या नहीं ? बहुत ही गड़बड़ है।

ऐसा है नहीं, भाई ! शास्त्र का वचन है, किसी समय व्यवहारनय, निमित्त का ज्ञान कराते हैं और किसी निश्चय का ज्ञान कराते हैं। और किसी समय दोनों का प्रमाण ज्ञान कराते हैं। ऐसी बात है। समझ में आया ? दो कारण हों तो कार्य होता है, वहाँ प्रमाण का ज्ञान कराया है और केवलज्ञानावरणीय का क्षय हो तो केवलज्ञान होता है, यह व्यवहारनय का ज्ञान कराते हैं कि वह क्षय किसका हुआ ? और अपनी केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, वह स्वयं से होती है, यह निश्चय का ज्ञान कराया। समझ में आया ? बहुत ही गड़बड़ है। अरे ! यहाँ तो क्या ? ज्ञानावरणीय की पर्याय का कर्ता तो है नहीं और नाश होता है तो उसके कारण से अपनी केवलज्ञान की पर्याय अपने से, यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय का उत्पन्न होना, वह भी वहाँ लक्ष्य नहीं है। वहाँ तो लक्ष्य भगवान शुद्ध चिद्रूप आनन्दकन्द ध्रुव है, उसका लक्ष्य करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। पर्याय का लक्ष्य करने से भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती। यह मूल चीज़ है। अब इसकी तो खबर नहीं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा शुद्ध चिद्रूप अकेला आनन्दकन्द है। उसमें यह ज्ञानावरणीय का क्षय हो तो यह चिद्रूप है, ऐसा भी नहीं है और चिद्रूप का भान हुआ तो वहाँ दर्शनमोह का अभाव होता है, इस कारण से, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया ?

तो यहाँ प्राप्य ऐसे भावपर्यायरूप से, प्राप्त, प्राप्त। आत्मा में अज्ञानी को मिथ्यात्वभाव प्राप्य उसका कर्म है, राग-द्वेष का कार्य है। और ज्ञानी का ज्ञान और दर्शन और शान्ति

का जो कार्य है, उस कार्य का कर्ता आत्मा है और कार्य वह ज्ञानी का कर्म है। वह आत्मा का कार्य है। वह कार्य पर का कार्य है, ऐसा है नहीं। वह कर्म कहो या कार्य कहो। परन्तु आधे-आधे यह तो हमारे कहते थे न, इक्यावन प्रतिशत आत्मा के और उनपचास प्रतिशत कर्म के, ऐसा कहते थे। यहाँ पचास-पचास हुए थे वापस। पहले वर्ष में वे आये थे न इन्दौर से जीवणधरजी। वे तो कहे, भाई! पचास प्रतिशत पुरुषार्थ के और पचास प्रतिशत कर्म के, ऐसा रखो। तो और यह भाई नथुलाल कहे रहने दे हाँ-हाँ करना। प्रतिशत किसके? दोकड़ा समझते हो न क्या? हं.... प्रतिशत। सौ प्रतिशत में से कर्म के चार प्रतिशत रखो।

कर्म भी द्रव्य है न, ऐसा हमारे दामोदर सेठ तो कहते थे, और ऐसे सूत्र भी बनाये हैं। वह है न, कैसा जिनमुनि, मन्दिरमार्गी। नहीं। हैं? भद्र नहीं। यह वह जिनविजय। जिनविजय, यह कर्म के सिद्धान्त की बड़ी पुस्तक बनायी है। कर्म भी द्रव्य है। द्रव्य है तो कर्म का क्षयोपशम हो तो वहाँ होता है। ऐसी पुस्तक बनायी है। वहाँ (संवत्) १९८४ के वर्ष में। ८४ नहीं, समझे न ८३ के वर्ष में। दामनगर थे न। दूधीबेन के यहाँ है, वे वहाँ थे। देखो! यह लिखा इसमें। यह पुस्तक बतायी थी। देखो! उसमें लिखा है। यह सब, हैं? जिनविजय। यह सब ऐतिहासिक, इसे क्या कहा जाता है? पुरातत्त्व। पुरातत्त्व का शोधक निकलता है न? बड़ी गप्प-गप्प मारता है। लोगों को बेचारों को भान नहीं होता। कुछ बोलने हों कुछ। भू... भू... भाषण करे। लोगों को ऐसा लगे। आहाहा! गजब!

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हुआ, वह अपने कारण से वहाँ हुआ है। वहाँ केवलज्ञान हुआ तो ज्ञानावरणीय का क्षय हुआ, ऐसा भी है नहीं और ज्ञानावरणीय का क्षय हुआ तो केवलज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया?

और क्षायिक समकित में भी दर्शनमोह का बिल्कुल अभाव हुआ तो यहाँ क्षायिक समकित हुआ, ऐसा भी नहीं है और क्षायिक समकित स्वरूप के आश्रय से अपने में हुआ तो वहाँ दर्शनमोह का क्षय होना पड़ा, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? परमेश्वरदास आज गये लगते हैं।

देखो! यह तीसरा बोल। हैं ?

मुमुक्षु : सवेरे....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सवेरे नहीं। कहीं गये हों यात्रा में गये हों।

प्राप्य ऐसी भावपर्यायरूप से... जीव में ज्ञान की पर्याय हो, दर्शन की पर्याय हो, आनन्द की पर्याय हो या राग और मिथ्यात्व की पर्याय हो, वह सब पर्यायरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ,... वह द्रव्य-जीव ही अपना कार्य करता है। वह कार्य करने में दूसरे किसी की अपेक्षा नहीं है। पर कार्य की अपेक्षा नहीं, अन्त में कहेंगे। इतनी स्पष्ट बात है। स्वतन्त्र अपनी पर्याय करने में स्वतन्त्र, उसमें कर्म की अपेक्षा नहीं है, लो।

वहाँ प्रश्न हुआ था न? ईडर... ईडर। वे थे न तुम्हारे क्या, विकासविजय, उसने वहाँ ईडर में प्रश्न किया था। सिद्ध को क्यों विकार नहीं? कि कर्म नहीं इसलिए। यहाँ कर्म है तो विकार है। ऐसा प्रश्न किया था। बड़ी होशियारी करता था। आहाहा! पहले से वहाँ होगा और हम फिर गये तो सबको पूछा होगा, सभा में प्रश्न किया था। क्यों विकार कर्म बिना विकार होता है? सिद्ध को क्यों विकार नहीं है, कर्म नहीं है इसलिए। यहाँ कर्म है तो विकार होता है। ऐसा प्रश्न।

भाई! विकार तो अपनी पर्याय से अपने कारण से होता है। कर्म है तो होता है, कर्म है, वह तो उसके अस्तित्व में है। विकार अपनी पर्याय के अस्तित्व में है। उसके अस्तित्व से इसका अस्तित्व हुआ? दूसरे सत् के कारण यह सत् हुआ? ऐसा है नहीं। परन्तु यह विचार करने की शक्ति नहीं। बस जो अनादि से चला (आता है)। ऐसा करो, ऐसा होता है। कर्म मार्ग दे तो धर्म होता है, लो! ऐसा कहे। कर्म मार्ग कहाँ से दे? जड़ की पर्याय कहाँ से मार्ग दे? और उसकी पर्याय को मार्ग दे तो उसमें है। तुझसे उसमें क्या हुआ? यहाँ बहुत लोग बोलते हैं।

देखो न, भाई! श्रेणिक राजा जैसों को नरक में जाना पड़ा। कर्म का बन्ध पड़ा, वह कहीं बदलता है? इस कारण रुलना पड़ा। केवली को भी रुलना पड़ा, ऐसा कहते हैं हमारे एक। चार कर्म बाकी रहे, इसलिए उन्हें रुलना पड़ा। केवली को अघातिकर्म

रहते हैं न? वह कहते हैं प्रश्न है। प्रेमचन्दभाई की पुस्तक में था, गुरुगम में। उसमें भी सब चलते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध भगवान अपनी पर्याय से वहाँ रहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर नहीं जा सकते। ऊपर जाने की योग्यता ही नहीं है। अपने कारण से है। धर्मास्तिकाय ऊपर नहीं, इस कारण से ऊपर नहीं जा सकते, ऐसा है ही नहीं। अपनी एक-एक समय की वहाँ रहने की पर्याय के कर्ता और पर्याय कार्य, वह स्वयं से है। धर्मास्तिकाय के कारण से है नहीं। धर्मास्तिकाय अभावात्, यह हमारे पहला प्रश्न हुआ था। (संवत्) २००१ के वर्ष में। यह जीवणधर ने कहा था। लो, इसमें ऐसा आया। धर्मास्तिकाय अभावात्। धर्मास्तिकाय नहीं है, तो ऊपर नहीं जा सकते। यह तो निमित्त का कथन है। पहले कहा कि ऊर्ध्वगमन। अपने ज्ञानानन्द की पर्याय पूर्ण हो तो ऊर्ध्वगमन।

एक समय का तो है.... अपने लोक का द्रव्य है। तो लोक में ही रहने की उसकी योग्यता है। अलोक जाने की योग्यता उसमें है नहीं। वह पराधीन नहीं है। समझ में आया? ज्ञान अभी सिद्ध को भी पराधीन। नहीं तो अनेकान्त नहीं होता। रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं। कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र तो अनेकान्त है, ऐसा कहते हैं। पाठ में लिखा है और सबमें लिखा है। खानियाचर्चा में आया है प्रायः, बहुत खबर नहीं। खानियाचर्चा। अभी भाई बहुत कहते थे, फूलचन्दजी को बुलानेवाले हैं विदिशा।

तो कहते हैं कि वहाँ धर्मास्तिकाय नहीं है तो ऊपर नहीं जा सकते, ऐसा है ही नहीं। वह तो निमित्त धर्मास्ति नहीं, ऐसा बतलाना है। परन्तु स्वयं की पर्याय की योग्यता उस क्षेत्र में रहने की है। स्वयं के कारण से उस पर्याय का कार्य स्वयं से कर्ता होकर हुआ है। पर के कारण से है नहीं। क्या हो? पूरा बड़ा द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान ही घट गया। घट गया के बदले विपरीत हो गया।

प्राप्य ऐसी भावपर्यायरूप से... लो! कहते हैं कि उसमें लिखा है। रिकॉर्डिंग

आया है न ईसरी में, मधुवन में। जितने प्रमाण में ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो, उतने प्रमाण में ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है। लो! दूसरा क्या शब्द कहा? डिग्री टू डिग्री। हाँ, किसने कहा? हाँ, उसमें डिग्री टू डिग्री लिखा है। यहाँ है नहीं, मैंने वह पुस्तक देखी है। सब नहीं रखते। मुझे तो दूसरा देखना है। कर्म क्षयात- तत्त्वार्थसूत्र में है न! वे पाँच-छह इकट्ठे पुस्तक नहीं, वह यहाँ रखते नहीं। छोटी-छोटी पुस्तकें। परन्तु सब किसी समय कुछ रखे और किसी समय कुछ रखे, ऐसा है। प्लास्टिक में है न, प्लास्टिक अन्दर। हों!

तत्त्वार्थसूत्र का एक शब्द कहना है। क्षयात है वहाँ। क्षयात का अर्थ? किसी समय क्षय होता है, ऐसा निमित्त का ज्ञान कराया है। परन्तु कर्म क्षय हुए तो ज्ञान हुआ, सिद्ध हुए, ऐसा है नहीं। ओहोहो! क्या अभी स्वतन्त्रता की स्वीकार करने में इनकार करते हैं। हाँ, यह भी कुछ पाँचवीं गति। परन्तु क्षय से। क्षय से हुआ। कर्मक्षयात, ऐसा न! तत्त्वार्थसूत्र में दसवें अध्याय में है न? कर्मक्षयात-कर्म क्षय से हुआ। परन्तु कर्म क्षय हुए तो अकर्म पर्याय हुई। नाश हुआ। अकर्म पर्याय हुई, कर्म के क्षय से क्या हुआ? अकर्म पर्याय हुई। कर्म के क्षय से क्या केवलज्ञान हुआ? समझ में आया? आहाहा! परन्तु क्या करे? जगत को सब उल्टा ही मिला है। पण्डितों ने उल्टा चढ़ा दिया और फिर उन लोगों को बेचारों को खबर नहीं होती—बराबर है (ऐसा कहे)। पण्डित लोग पढ़े हुए हैं या नहीं? उल्टा पढ़े हुए हैं, इसकी तो खबर नहीं।

अनुभवता.... कौन? द्रव्य। जीवद्रव्य अपने मिथ्यात्वभाव को अनुभवता हुआ, अनुसरकर अपने से मिथ्यात्व होता है। राग-द्वेष स्वयं से होते हैं। वेद की वासना विकार की उत्पन्न होना, वह पर्याय का कार्य भी आत्मा ही करता है। वेद का उदय कर्म में है तो यहाँ वेद की वासना होती है, ऐसा नहीं है। पुरुषवेद का उदय हो तो विकार पुरुष का होता है, ऐसा यहाँ इनकार करते हैं। और स्त्रीवेद का उदय हो तो स्त्री का विकार होता है, ऐसा है नहीं। और पुरुषवेद का उदय है - राग का, तो यहाँ पुरुषवेद के उदय को यहाँ सामने आना पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया जरा? थोड़ा कहा? यह जरा कहा। यह तीन बोल हुए।

चौथा— पूर्व भावपर्याय का नाश होने पर... देखो! राग पूर्व की पर्याय का नाश हुआ, और ध्रुवत्व का अवलम्बन करने से... आत्मा में जो ध्रुवपना है, उसके अवलम्बन से नयी पर्याय उत्पन्न होती है। से है न, से। ध्रुवत्व का अवलम्बन करने से जिसने अपादानपने को प्राप्त किया है... पूर्व की अवस्था का नाश करके ध्रुव के अवलम्बन से नयी पर्याय अपने में अपने कारण से होती है। विकार का भाव या धर्म का भाव अपनी पर्याय में अपने कारण से होता है। पर के कारण से कुछ है नहीं। यह तो व्यवहार का ज्ञान कराने के लिये तत्त्वार्थसूत्र में आता है न? उभय कारण—उभय कारण। उभय निमित्त वसात, इसका अर्थ क्या? दूसरी चीज़ है, उसका ज्ञान कराया है। ज्ञान में स्व-पर प्रकाशकशक्ति है। ज्ञान कराते हैं। ओहोहो!

भगवान आत्मा! अभी तो विकल्प का कर्ता स्वतन्त्र है और धर्म की पर्याय स्वतन्त्र है, ऐसी भी स्वीकृति नहीं है, उसे द्रव्यस्वभाव चिदानन्द अखण्डानन्द प्रभु का आश्रय करना और उसका लक्ष्य करना, उसके आश्रय से धर्म होता है। दूसरे कोई क्रियाकाण्ड से धर्म नहीं होता। समझ में आया?

तो कहते हैं, अपादान, मूल अपादान कहो या मूल उपादान कहो अन्दर में। भावपर्याय का नाश होने पर भी ध्रुवत्व का अवलम्बन करने से जिसने अपादानपने को प्राप्त किया है... आत्मा ने अपने अपादानपने-उपादान को ग्रहण किया है। विकार—उदय भाव हो तो भी वह है, क्षयोपशम भाव हो तो भी वह है। समझे? इतना डिग्री टू डिग्री। ऐसा लिखा था। सुना है नेमीचन्दजी? डिग्री टू डिग्री। जैसे बुखार हो तो डिग्री टू डिग्री आता है या नहीं? परन्तु उसे कहते हैं, यहाँ एक सौ दो डिग्री हो तो माप में डिग्री आ जाये। माप है न, क्या कहते हैं? थर्मामीटर। इसी प्रकार कर्म का उदय जितना है, उतने प्रमाण में विकार है। ऐसा डिग्री टू डिग्री। समझ में आया? ऐसा अज्ञानी कहता है। ऐसी बात है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो स्पष्ट करते हैं कि सत्य यह है। तो कहते हैं, नहीं। जितने प्रमाण में ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो, समझ में आया? उतने प्रमाण में, है या नहीं इसमें? कहाँ है? तत्त्वार्थसूत्र नहीं। वह रिकॉर्डिंग। उसमें है न उसमें। हैं? अन्दर होगा अन्दर।

आगे होगा आगे। वह है एक। वहाँ ईसरी में रिकॉर्डिंग उतरा है। देखो! यहाँ है। देखो! 'कानजीस्वामी कहते हैं, महाराज! ज्ञानावरणीय आदि कर्म कुछ नहीं करते। अपनी योग्यता से ज्ञान में घट-बढ़ होती है। महाराज! ज्ञान में घट-बढ़पना होता है, वह अपने कारण से होता है। अपनी योग्यता से होता है। कानजीस्वामी यह कहते हैं। ज्ञानावरणीय कर्म कुछ नहीं करता। महाराज! क्या यह ठीक है? क्या ठीक है, तुम ही समझो किस प्रकार ठीक है? यह ठीक नहीं। कोई भी कहे, हम तो कहते हैं कि अंगधारी कहे तो भी ठीक नहीं।'—ऐसा जवाब दिया है। समझ में आया?

देखो! विभाव दूसरी बात है। ज्ञानावरणीय आदि कर्म के उस प्रकार से क्षयोपशम है तो तारतम्यभाव से आत्मा के ज्ञानादि विकास होते हैं। जितना उदय होता है, उतना अज्ञान रहता है। यह रिकॉर्डिंग उतरी है। और जितना ज्ञानावरणीयकर्म का उदय होगा, उतना ही अज्ञान रहेगा। जितना ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम होगा, उतना ज्ञान रहेगा। आहाहा! क्या करे? जगत कहाँ भरमाया है! अभी तो स्थूल मिथ्यात्वदृष्टिपना है। समझ में आया? जितना ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वीर्यांतराय... इस कर्म में जितने क्षयोपशम हो, उतना यहाँ क्षयोपशम होता है, ऐसा कहते हैं। दो द्रव्य की एकताबुद्धि है। समझ में आया? हैं?

और जितना यहाँ ज्ञानावरणीय का उघाड़ जितना हुआ, उतना क्षयोपशम है और जितना ज्ञानावरणीय का उदय है, उतना यहाँ अज्ञान है, ऐसी बात है नहीं। समझ में आया? वस्तु का स्वरूप ऐसा भगवान ने देखा नहीं और ऐसा है नहीं। अपनी पर्याय से विकार आदि होता है। क्षयोपशमज्ञान भी पर्याय है। उस पर्याय का करण—साधन, कर्ता अपना आत्मा है। है न, देखो यहाँ!

ध्रुवपने को अवलम्बता होने से, ज्ञान में जो क्षयोपशम पर्याय उत्पन्न हुई, वह अपना कार्य और अपने अवलम्बन से होता है। कर्म का क्षयोपशम है और यहाँ क्षयोपशम भाव होता है, ऐसा वस्तु में तीन काल में नहीं है। दो द्रव्य की एकताबुद्धि मिथ्यात्व भाव है। उसे राग से भिन्न करने की तो योग्यता है नहीं। अभी यहाँ तो भेदज्ञान कराते हैं। कर्म से भी भिन्न और पर्याय से फिर राग से भी भिन्न। यह तो अभी कहाँ

रहा? आहाहा! कर्म में जितना डिग्री टू डिग्री ऐसा। एक व्यक्ति ने लेख लिखा था। दूसरे ने कहा कि अभी तुम्हारे पास रखो। हैं?

मुमुक्षु : तीन साल पहले?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, तीन साल नहीं। बहुत वर्ष पहले। यह बीस वर्ष पहले की बात है। दो त्यागियों के बीच में है।

एक त्यागी ने लिखा था कि डिग्री टू डिग्री कर्म जैसा उदय, किसलिए? कर्म निमित्त होकर आता है और बाहर की चीज़ नोकर्म निमित्त होकर नहीं आती। यहाँ विकार करो तो नोकर्म को निमित्त कहा जाता है। परन्तु कर्म तो निमित्त होकर ही आता है। इसे विकार करना ही पड़े। आहाहा! बहुत ही स्थूल मिथ्यादृष्टि! दो द्रव्यों के बीच की एकता दृष्टि। रतनचन्दजी! और मानता है कि हम बराबर समझते हैं। हमारा ज्ञान अच्छा। मिथ्या अज्ञान है। दृष्टि मिथ्यात्व है। आचरण मिथ्यात्व है। तीनों मिथ्यात्व है। आहाहा! क्या करे? अनादि से ऐसा का ऐसा अनादि से भटका है।

यहाँ कहते हैं कि अपने क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय अपने से अपने कारण से हुई है। क्षायिक ज्ञान की पर्याय अपने से हुई है। कर्म का जितना क्षयोपशम और क्षायिक, इसलिए हुई है - ऐसा है नहीं। ६२ गाथा स्पष्ट है, स्पष्ट है। परन्तु अब क्या करे? उस समय रखी थी। तेरह वर्ष हुए। यह चौथा बोल हुआ।

पाँचवाँ। उत्पन्न होनेवाले भावपर्यायरूप कर्म द्वारा... कर्म अर्थात् कार्य। **समाश्रित होने से...** यदि आत्मा ने रागादि किये, वह राग आत्मा अपने में रखता है, किसी को देता नहीं। भाई! राग हुआ तो वहाँ स्थिति कर्म की पड़नी पड़े। कषाय हुआ तो कर्म की स्थिति, रस पड़ता है तो पर में कुछ देता है, ऐसा है नहीं। नेमीचन्दजी! सुना है या नहीं? कषाय से स्थिति पड़ती है और योग से प्रदेश में प्रकृति होती है। गोम्मटसार में और यह द्रव्यसंग्रह में आता है। योग से प्रकृति और प्रदेश (बन्ध) होता है और कषाय से स्थिति और अनुभाग (बन्ध होता है) तो उसने कुछ दिया। यहाँ तो कहते हैं, कोई देनेवाला है ही नहीं। आहाहा!

अपनी पर्याय राग करके अपने में रखती है। और सम्यग्दर्शन की पर्याय स्वयं के

कारण से अपने में रखी है। केवलज्ञान की पर्याय अपने कारण से अपने में रखी है। स्वयं को देनेवाला आत्मा और लेनेवाला आत्मा। पात्र और वस्तु, सब आत्मा है। किसी को देता-लेता नहीं। आहाहा! समझ में आया? मुनि को आहार देते समय देनेवाले का विकल्प है तो कहते हैं कि विकल्प करके अपने में रखा है। उसने आहार-पानी दिया, यह बात है नहीं। राजमलजी! क्या किया? उसने आहार-पानी दिया नहीं, ऐसा कहते हैं। विकल्प किया कि मैं आहार-पानी देता हूँ। बस, विकल्प करके रखा। और ज्ञान में ऐसा आया। विकल्प का ज्ञान। वह ज्ञान, ज्ञान से ज्ञान में रखा। अपनी पर्याय अपने से रखी। राग को भी कुछ दिया नहीं और पर को भी कुछ दिया नहीं। आहार-पानी पर को देना लेना, यह आत्मा की क्रिया है ही नहीं। गजब बात, भाई! आहाहा! विधि से दिया नहीं? जातिस्मरण ज्ञान हुआ, वहाँ सुना। आता है या नहीं?

ऋषभदेव भगवान को बारह महीने तक आहार नहीं था। बारह महीने ऊपर हो गये। हरिभाई ने लिखा है। सत्य बात है, हों! चैत्र कृष्ण नवमी के दिन दीक्षा ली है न, इसलिए वैशाख कृष्ण नवमी कहो, वैशाख शुक्ल तीज कुछ थोड़ा बढ़ा। फाल्गुन कृष्ण यदि शास्त्र की हो तो दूसरी बात है। सिद्धान्त प्रमाण चैत्र कृष्ण होता है, तब तो नवमी हो, छह और दो=आठ दिन विशेष फाल्गुन कृष्ण हो तो महीना विशेष बढ़ गया। चैत्र कृष्ण नवमी के दिन भगवान ने दीक्षा ली और आहार लिया वैशाख शुक्ल तीज को। भगवान को आहार वैशाख शुक्ल तीज को मिला। तो बीच में इतना अन्तर है। वर्षी तप वर्ष वर्ष में। यह तो बारह महीने ऊपर हमारे हरिभाई ने उसमें लिखा है। यह ख्याल.... समझ में आया?

यह बराबर है। क्योंकि दीक्षा ली चैत्र कृष्ण नवमी और आहार मिला वैशाख शुक्ल तीज। बारह महीने नहीं हुए, बारह महीने से ऊपर हो गया। और छह महीने बाद, सात महीने आहार नहीं मिला, ऐसा लिखा है। सात महीने आहार नहीं मिला। तेरह महीने हो गये। क्योंकि आहार मिलने की पर्याय जब अपने में हुई, आहार शरीर जड़ में तो जड़ उससे होता है। क्या आत्मा को आहार मिलता है? आहाहा!

आत्मा ने आहार लेने का विकल्प किया परन्तु विकल्प के कर्ता भी ज्ञान नहीं हैं।

विकल्प करके रखा, ऐसा भी नहीं। हाँ, विकल्प का ज्ञान करके अपने में रखा, वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? उत्पन्न होनेवाली भावपर्याय, चाहे तो राग आया, जातिस्मरण हुआ। लो! किसे? श्रेयांसकुमार को। भगवान को देखकर हुआ, तो कहते हैं नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। पहले क्यों नहीं हुआ? भगवान को ऐसे देखा, ओहो! आहार कैसे देना? ऐसे नजर करते हैं। एकदम! कर्म का पर्दा खुल गया। लो! खुल गया, इसलिए जातिस्मरण हुआ, ऐसा नहीं है। यह यहाँ निषेध करते हैं। अपनी जातिस्मरण की पर्याय का कार्य करनेवाला आत्मा स्वतन्त्र है। मतिज्ञानावरणीय गया तो ऐसी पर्याय हुई, ऐसा है नहीं। समझ में आया? और भगवान को देखा तो जातिस्मरण हुआ, ऐसा भी नहीं है। अपनी ज्ञान की पर्याय उत्पन्न करने में पर के कारक की अपेक्षा आत्मा नहीं रखता। आहाहा! गजब भाई! जीव की चीज़ परन्तु विपरीतता इतना कि उसे मानना, उसे ऐसा हो जाता है या नहीं। ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। आहाहा!

कहते हैं, भावपर्याय कार्य द्वारा अपने में रखी है। किसी को दिया-लिया है नहीं। कर्म की पर्याय भी उत्पन्न होकर कर्म ने रखी है। आत्मा अपनी पर्याय विकार या निर्दोष धर्म की पर्याय करके अपने में रखता है। अपने को दान दिया है। किसी को दान दे सके, ऐसा आत्मा में नहीं है। देखो! पद्मनन्दि (पंचविंशति) शास्त्र में ऐसा आया है, मुनिपना है, वह तीन रत्न से निभता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपना स्वभाव शुद्ध स्वभाव के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उससे मोक्षमार्ग है। और आहार देनेवाले मोक्षमार्ग की पुष्टि करनेवाले हैं। मोक्षमार्ग दिया। ऐसा पाठ है। ऐई! है या नहीं? रतनचन्दजी! परन्तु वह तो निमित्त का कथन है। निमित्त कौन था, वह बात है। क्या मोक्षमार्ग उसने दिया है?

पद्मनन्दि (पंचविंशति) में दान के अधिकार में पाठ तो ऐसा है कि दूसरे को आहार दिया, उसने मोक्षमार्ग दिया। और मोक्षमार्ग दिया तो उसकी सहायता उसने की। यह तो सब निमित्त के कथन हैं। निमित्त का कथन है। कर्म का विपाक आत्मा को दे तीन काल-तीन लोक में है नहीं। अपने में परिणाम देता है, लो! अपने में अर्थात् अपने आधार से द्रव्यकर्म करता होने से पुद्गल स्वयं ही अधिकरण है। लो! इसी प्रकार

जीव स्वतन्त्ररूप से जीवभाव को करता होने से... स्वतन्त्रपना दोनों में डाला है। जीव स्वतन्त्ररूप से विकारी या निर्विकारी दशा अपनी अपेक्षा रखकर पर की अपेक्षा बिल्कुल छोड़कर जीव स्वयं ही कर्ता है;... विकार का और धर्म की पर्याय का कर्ता स्वयं ही है। उसमें पर की अपेक्षा है नहीं।

परन्तु काललब्धि आवे तो होता है, ऐसा तो है या नहीं? नहीं। उस काललब्धि की पर्याय का कर्ता आत्मा है। समझ में आया? उसी समय धर्म की पर्याय होने की योग्यता का कर्ता तो आत्मा है। स्वयं जीवभावरूप से परिणामित होने की शक्तिवाला होने से जीव स्वयं ही कारण है;... यह ज्ञानावरणीयरूप से पर्याय होने की शक्ति परमाणुओं में है, तो इस कारण से करण होता है। साधन। दूसरे परमाणु क्यों नहीं हुए? उस समय वह शक्ति उनमें नहीं थी। शक्तिवाला होने से जीव स्वयं ही कारण है; जीवभाव को प्राप्त करता—पहुँचता होने से जीवभाव कर्म है, अथवा जीवभाव से स्वयं अभिन्न होने से जीव स्वयं ही कर्म है;... लो! वही जीव समकितरूपी कार्य जीव ही है, केवलज्ञानरूपी कार्य जीव ही है, विकाररूपी कार्य जीव ही है। जीव का कार्य जीव ही है, ऐसा। अभी भिन्न सिद्ध करना है न? पर से भिन्न सिद्ध करना है न? समझ में आया?

अभी पर से भिन्न करने की मान्यता का ठिकाना नहीं। उसे राग से भिन्न करने की शक्ति कभी नहीं होती। समझ में आया? पर का कार्य करने से अपने में कुछ होता है, और अपना कार्य होने में पर में कुछ होता है, ऐसी दो द्रव्य की एकत्वबुद्धि है। उसे राग से भिन्न भगवान आत्मा है, ऐसी श्रद्धा करने का उसे अवकाश नहीं मिलता। समझ में आया? राग भी पर का है, अपना नहीं। स्वभावदृष्टि से, हों! यहाँ तो विभाव का कर्ता उसे कहना है न! ओहोहो!

चैतन्यस्वभाव ज्ञानानन्दस्वभाव से सम्पन्न है। ऐसी दृष्टि हुई, धर्मात्मा ज्ञानी राग को जाननेवाला है, राग का-व्यवहार का करनेवाला नहीं है। यह व्यवहार क्रियाकाण्ड के राग को करनेवाला धर्मी नहीं है। परन्तु व्यवहार क्रिया का राग आया, उसे जाननेवाला ज्ञानी है। अब यह भान नहीं और दीक्षा ले लो। हो जाओ साधु। महाव्रत ले लो बाहर से (ऐसा अज्ञानी विचारता है)।

अथवा जीवभाव से स्वयं अभिन्न होने से... क्या कहते हैं ? विकार हुआ, वह भी जीवभाव से अन्य नहीं है। इसलिए विकार, वह जीव है, ऐसा। यह विकार, वह जीव है। और सम्यग्दर्शन हुआ तो भी जीव की पर्याय जीव से भिन्न नहीं है। तो सम्यग्दर्शन भी जीव ही है। केवलज्ञान पर्याय जीव से उत्पन्न हुई है, भिन्न नहीं। तो केवलज्ञान पर्याय जीव ही है। समझ में आया ? आहाहा!

कहो ! यह शब्द की पर्याय शब्द से होती है, ऐसा कहते हैं और सुनने में जो ज्ञान होता है, उस पर्याय का कर्ता वह जीवद्रव्य है। शब्द नहीं। बिल्कुल नहीं। शब्द का कारण भी नहीं और शब्द का कार्य भी नहीं। जीव शब्द का कारण भी नहीं और शब्द का सामने ज्ञान होता है, वह शब्द का कार्य भी नहीं। शान्तिभाई ! आहाहा ! अभी द्रव्य और गुण-पर्याय किस प्रकार स्वतन्त्र हैं, इसकी खबर नहीं। वह तो महा विपरीत दृष्टि अनादि से है, ऐसी है। और मान ले कि हमारी श्रद्धा बराबर है। शास्त्र कहते हैं, वह हमारी श्रद्धा है। ऐसा कितने ही कहते हैं। हमारी तो आगम प्रमाण श्रद्धा है। तुम्हारे आगम प्रमाण श्रद्धा नहीं, ऐसा कहते हैं, लो ! उसमें लिखा है, खानियाचर्चा में। फूलचन्दजी को बहुत ही... समझ में आया ? हमको तो आगम की श्रद्धा है, देखो आगम में। आचार्य कहते हैं वह हम मानते हैं परन्तु किस नय का कथन है ? तुम तो मानते नहीं। हम शास्त्र के आधार देते हैं तो तुम तो मानते नहीं। परन्तु शास्त्र का आधार किस नय का कथन है ? रतनचन्दजी ! उसमें ऐसा आया है। खानियाचर्चा। खानियाचर्चा देखी है, भाई ! नहीं देखी। उसमें बहुत ही आया है। जयपुर-खानियाचर्चा है न।

यहाँ तो कहते हैं, अपना स्वयं भाव विकार और निर्विकार होने से जीव ही है। भिन्न चीज़ है नहीं। यहाँ तक आया। दूसरा आयेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-६३, गाथा-६२ तथा १५४, वैशाख कृष्ण ०८, बुधवार, दिनांक -१३-०५-१९७०

पंचास्तिकाय, ६२ गाथा का भावार्थ चलता है। तीन बोल चले हैं, तीन। चौथा (बोल)। फिर से लेते हैं। देखो! दूसरा पेरेग्राफ है।

इसी प्रकार (1) जीव स्वतन्त्ररूप से जीवभाव को करता होने से... जीव अपनी विकारी पर्याय को और उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की पर्याय का जीव स्वयं ही कर्ता है। समझ में आया? चाहे तो विकार की पर्याय हो या चाहे तो धर्म की पर्याय उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक हो, उसका स्वयं जीव ही कर्ता है। पर के कारक की कर्ता आदि की अपेक्षा रखे बिना। समझ में आया?

स्वयं जीवभावरूप से परिणामित होने की... जीव में अपने से विकाररूप होने की और धर्म-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप पर्याय होने की शक्तिवाला होने से.... यह जीव की शक्ति अपने में है। इस कारण जीव स्वयं ही करण है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम में भी जीव में शक्ति होने से स्वयं कारणरूप करण / साधन आत्मा है। और धर्म की पर्याय प्रगट करने में भी जीव शक्तिवान होने से सम्यग्दर्शन उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, चारित्र वीतराग की पर्याय उसे करने में जीव स्वयं शक्तिवान है। किसी की अपेक्षा उसमें है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं न कि व्रजवृषभनाराचसंहनन हो तो केवलज्ञान होता है। लो! क्या है? यह यहाँ इनकार करते हैं। ऐसी अपेक्षा केवलज्ञान उत्पन्न होने में है नहीं। निमित्त के कारक की अपेक्षा यहाँ है ही नहीं। अपनी केवलज्ञान पर्याय, पूर्ण पर्याय अपनी जीव की शक्ति होने से उस कारण में करण साधन स्वयं से प्रगट करता है। समझ में आया? मनुष्यदेह हो तो केवलज्ञान होता है, हड्डियों की मजबूती व्रजवृषभनाराचसंहनन हो तो केवलज्ञान होता है। संहननशक्ति मजबूत हो तो संहननशक्ति उत्पन्न होती है, ऐसा निषेध करते हैं। समझ में आया?

देखो! नरक में; यह उष्ण है, उससे अनन्तगुणी उष्णता नरक में है। यह उष्णता है ११८-२०। यहाँ तो ११८-२० हुई नहीं। यहाँ तो दस हुई थी गत वर्ष। हाँ, दस।

उसमें से बीस और पच्चीस, सौ और हजार, लाख और करोड़ डिग्री हो। उससे अनन्तगुणी डिग्री वहाँ है। पहले नरक में दस हजार वर्ष की स्थिति में अनन्तगुणी डिग्री की उष्णता है। वहाँ अनन्त बार रहा है। क्यों, सेठी नहीं आये? तबीयत बराबर नहीं होगी। क्या हुआ होगा, मर गया, कुछ गया नहीं... वह तो ऐसा का ऐसा रहा है। शोभालालजी! ऐसी वेदना अनन्त बार (सहन) की प्रतिकूल में। भूल गया। जरा यहाँ प्रतिकूल आवे तो यह नित्य भगवान आत्मा अविनाशी नित्य है। तो ऐसी नरक की स्थिति में एक-एक दस हजार वर्ष की स्थिति में अनन्त बार गया। दस हजार वर्ष और एक समय की स्थिति में अनन्त बार गया। दस हजार वर्ष और दो समय की स्थिति में अनन्त बार गया। ऐसे करते-करते सागरोपम तक अनन्त बार उष्ण वेदना में गया। भाई! भूल गया। समझ में आया?

संसार का दुःख विकल्प, वह दुःख (है), संयोग का दुःख नहीं है। दुःख वहाँ आकुलता, राग और द्वेष मिथ्यात्व सहित करता था, उस आकुलता का वहाँ दुःख है। वह आकुलता जीव स्वयं अपने से करता है। ऐसा यहाँ कहते हैं। कोई कर्म का कारण है और कोई अग्नि की उष्णता का बाह्य कारण है, इसलिए आकुलता होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अविनाशी अनादि-अनन्त भगवान आत्मा निर्विकल्पस्वरूप आत्मा को यह विकल्प का होना, वह भी स्वयं के कारण से और स्वयं की योग्यता की शक्ति से होता है, ऐसा कहते हैं। और विकल्प को तोड़कर सम्यग्दर्शन होना, वह भी स्वयं की शक्ति से है। वीरचन्दभाई! आहाहा!

अरे! विकल्प को तोड़ने से पहले भी, श्रद्धा करना कि विकल्प को तोड़ने से सम्यग्दर्शन होता है, उसका नाम धर्म है। ऐसी श्रद्धा करना, वह भी अपनी शक्ति से श्रद्धा होती है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात! जगत में बाहर में इतना प्रचार बाहर का, यह बारह महाव्रत करते हैं, यह करते हैं, यह करते हैं। समझे? बाहर से निवृत्ति ली है तो कुछ धर्म होगा या नहीं? ऐसा नहीं कहते, भाई! धर्म की शक्ति तो अपने में पड़ी है। राग और निमित्त की अपेक्षा रखे बिना अपने शुद्ध स्वभाव की शक्ति में ऐसी करण शक्ति पड़ी है, वह साधन शक्ति पड़ी है। इस कारण से अपने में वीतरागी निर्विकार निर्विकल्प दृष्टि-ज्ञान और शान्ति अपने से आत्मा उत्पन्न कर सकता है।

किसी पर की अपेक्षा नहीं है। ऐसा बलवान जोरदार आत्मा है। ऐसा कहते हैं, समझ में आया ?

यह पामर नहीं बलवान है। उल्टे कर्म ने, उल्टे विकार करने में भी बलवान है और सुलटा करने में भी बलवान है। बड़ी शक्ति। अशुद्धता करने में भी बड़ी शक्ति है और शुद्धता करने में भी बड़ी शक्ति स्वयं से है। पर के कारण से है नहीं। आहाहा! यहाँ तो थोड़ी जहाँ गर्मी लगे तो यह.... किस प्रकार जाना ? ऐसी गर्मी में व्याख्यान में कैसे जाना ? गजब किया है न इसने ! इसने अनादि से ऐसा ही किया है। आहाहा ! निरपेक्ष है तो ? वस्तु सापेक्ष है ही नहीं। व्यवहार, वह तो दूसरी चीज़ हो गयी। स्वयं से वह तो निरपेक्ष है। यह बात तो चलती है। विकार निरपेक्ष होता है। धर्म की बात तो कहाँ रही ? यह वह बात तो चलती है।

निश्चय में अपना मिथ्यात्व का विकार करे या राग-द्वेष करे, पुण्य-पाप के विकल्प में धर्म है, ऐसा माने, वह भी मिथ्याश्रद्धा पर की अपेक्षा रखे बिना, कर्म के निमित्त की अपेक्षा रखे बिना करता है। यह बात तो चलती है। रतनचन्दजी ! यह तो ऐसा कहते हैं। विवाद है। यह बात तो हमारे (संवत्) १९७१ के वर्ष से है, १९७१। पचपन वर्ष हुए। ५५, सम्प्रदाय में। यह कथन दूसरी बात है। व्यवहार दूसरी बात है। व्यवहार तो निमित्त का ज्ञान कराने की बात है। निमित्त, वह दूसरी चीज़ है। इस अपेक्षा का ज्ञान कराना है। क्योंकि आत्मा में स्व-पर प्रकाशक शक्ति इस कारण से है। परन्तु निमित्त की अपेक्षा है तो यहाँ विकार होता है, विकार निमित्त का अभाव हो तो धर्म होता है, ऐसी अपनी पर्याय में धर्म की निरपेक्षता है। पर की अपेक्षा है नहीं। ऐसी श्रद्धा का जिसे ठिकाना नहीं, उसे सम्यग्दर्शन पाने की योग्यता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

जीवभाव को प्राप्त करता — पहुँचता होने से जीवभाव कर्म है,... अपना विकार का कार्य और धर्म की पर्याय का कार्य जीव ही है। क्योंकि जीव अपनी निर्विकारी पर्याय और विकारी पर्याय को आत्मा पहुँचता है। आत्मा वहाँ उसे पकड़ता है। आत्मा उसे प्राप्त करता है। कर्म कोई प्राप्त करता है, ऐसा है नहीं। कहो, रतनचन्दजी ! यहाँ

निरपेक्ष तो बात सिद्ध करनी है। आहाहा! बड़ी गड़बड़ है। हमारे (संवत्) २०१३ के वर्ष वर्ष में मधुवन में बात चली थी न? सब पण्डित बैठे थे। बंसीधरजी थे, वर्णीजी थे। यह भाई फूलचन्दजी थे। बहुत बात चली थी। तेरह वर्ष हुए। यह ६२ गाथा की ही बात हुई थी। यह गाथा ही बतायी थी। रामजीभाई थे न, भाई थे न, तुम थे। तुम थे? नहीं थे। भाई नहीं थे। मधुभाई नहीं थे। बहुत पण्डित बैठे थे।

विकार निरपेक्ष—पर की अपेक्षा रखे बिना स्वयं से निरपेक्ष विकार होता है। ऐ... गड़बड़ हो गयी। हाय... हाय! इतना-इतना अभ्यास किया तो भी गड़बड़ हो गयी। यह वहाँ तो अभिन्न कारक कहा है। ऐसा प्रश्न हुआ। परन्तु अभिन्न का अर्थ क्या? कि विकार का कार्य और कर्ता अभिन्न अर्थात् एक ही है। विकार अपना कार्य है और कर्ता भी विकार आत्मा करता है। भिन्न कर्ता और भिन्न कार्य, ऐसा नहीं है। यह तो यहाँ बतलाना है। बहुत ही गड़बड़ हो गयी थी। (संवत्) २०१३ के वर्ष में मधुवन में। वहाँ कमरा है। व्याख्यान का हॉल था बाहर पण्डाल। परन्तु अन्दर एक घण्टे दस मिनट पहले चर्चा हुई। सब बैठे थे। वर्णीजी थे, फूलचन्दजी सब थे। फूलचन्दजी ने पकड़ लिया। फूलचन्दजी ने पकड़ा। स्वामीजी ऐसा कहते हैं कि निश्चय से विकार पर की अपेक्षा रखे बिना स्वयं से होता है, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात चली थी। रामजीभाई थे और सब थे। आहाहा! वीरचन्दभाई! बड़ी गड़बड़ है। सबकी, हों! सब बड़े-बड़े पण्डित नाम धरानेवालों में भी बड़ी गड़बड़ है। गजब हो गया। हाय... हाय! यह! वे यह लोग भूले। यहाँ क्या है?

विकार करने में अन्य कारक की अपेक्षा नहीं है। अब इतना तो स्पष्ट है, अब तुम्हारे क्या लेना है? नहीं, ऐसा नहीं। विकार निमित्त बिना होवे तो,...

मुमुक्षु : उपादान कारक की बात है। निमित्त कारक की आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त कारक उसमें रहा, इसमें कहाँ रहा? निश्चय में तो पर के कारक की अपेक्षा है ही नहीं। वह तो व्यवहार है तो बताते हैं, दूसरी चीज़ एक है। समझ में आया? आहाहा! बहुत भूल। अभी मूल में भूल है। और राग से रहित अपना कार्य करना, वह तो दूसरी बात रही। यहाँ तो राग भी कर्म कराता है और कर्म का

निमित्त हो तो राग होता है, तो अभी दो द्रव्य की एकता, उसमें राग भिन्न करने की श्रद्धा उसे कहाँ से आवे ? समझ में आया ? सूक्ष्म बात है। भाई ! यह तत्त्व की-मूल तत्त्व की बात है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने तो पाठ लेकर स्पष्ट कर दिया है। देखो ! समझ में आया ?

....अपने स्वभाव से मिथ्या और राग-द्वेष पर की अपेक्षा रखे बिना करता है। अब इस प्रकार से तो प्रश्न है। अब किसी को क्या पूछना है ? समझ में आया ? बड़ी गड़बड़ हो गयी। वहाँ कलकत्ता में प्रश्न आया था। क्या है ? कहा, जवाब दे दिया है। शान्ति साहूजी है न, साहूजी वहाँ आये थे, ऐसा कि यह लोग बराबर पकड़ा गये हैं। विकार निरपेक्ष होता है, पर की अपेक्षा बिना, तो स्वभाव हो जाएगा। अरे ! स्वभाव ही है। सुन तो सही ! पाठ क्या है ? देखो ! 'सहावेण', देखो !

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं ।

जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ॥६२ ॥

यह स्वभाव वहाँ भी लागू पड़ता है। ऐसा न्याय से न समझे और कचड़-मचड़ करे, शास्त्र के मिथ्या आधार दे, ऐसा नहीं चलता। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, यह प्रश्न तो हमारे (संवत्) १९७१ के वर्ष से चलता है। ५५ वर्ष, ५५। बहुत ही गड़बड़ करते थे। हमारे यहाँ सेठ है स्थानकवासी सम्प्रदाय में, वह गृहस्थ था। साठ वर्ष पहले, दस लाख रुपये, चालीस हजार की आमदनी थी। एक गाँव खरीदा। गाँव के स्वामी थे। है बनिया। परन्तु अरब लोग रहते हैं न ? समझते हो ? चौकीदार। आरब रहे। बन्दूक और तलवार। घोड़ साथ में। दस-दस घोड़ा, घोड़ी। बड़े गरासदार। बनिया ऐसी जाति दशाश्रीमाली। उसकी श्रद्धा ऐसी थी कि कर्म हो, तत्प्रमाण होता है, कर्म हो तत्प्रमाण होता है। कहा, बिल्कुल नहीं। हमारे तो बहुत ही झगड़ा चलता था।

यहाँ भगवान आत्मा अपने विकार करने में थोड़ा या विशेष, अधिक या मध्यम जितने प्रकार का मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि करता है, उस समय में अपनी शक्ति से स्वतन्त्र करता है। कर्ता आया न पहले। स्वतन्त्ररूप से कर्ता। देखो ! जीव स्वतन्त्ररूप से

जीवभाव को करता होने से... छहों बोल में लेना। समझ में आया? पक्का करना चाहिए। यह गड़बड़ करते हैं, ऐसा नहीं। ऐसा होता है। देखो! शास्त्र में ऐसा लिखा है। ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुक जाता है। देखो, गोम्मटसार में पाठ है, नहीं? यहाँ तुम्हारे सत्य बात है और वहाँ खोटी बात करनी है, ऐसा कहते हैं। परन्तु क्या कहते हैं, सुन तो सही! वह तो झूठे नय से असद्भूत से अपनी पर्याय हीन करने में निमित्त चीज़ कौन थी, उसका ज्ञान कराते हैं। यह तो उसका आश्रय छोड़कर स्वभाव में आ जाये, ऐसा बताने की बात है। आहाहा! क्या करे? विवाद... विवाद। अभी तो विकार में विवाद। समझ में आया? विकार पर से नहीं होता, है ऐसा कहे तो श्रुतकेवली आवे तो भी हम नहीं माने। ऐसा प्रश्न आया था।

यह स्वयं चिदानन्द भगवान् अपने स्वभाव का स्वयं कर्ता, करण आदि साधन से स्वयं को भूलकर विकार की दशा निरालम्बी-पर के आलम्बन बिना निरपेक्षरूप से करता है। ऐसी श्रद्धा किये बिना उसके सम्यग्दर्शन के कारणरूप श्रद्धा, वह भी नहीं होती। श्रद्धा साधक है और फिर सम्यग्दर्शन साध्य है। समझ में आया? साधक का अर्थ, सम्यग्दर्शन होने से पहले ऐसी श्रद्धा थी, ऐसा। ऐसी श्रद्धा थी, इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ—ऐसा भी नहीं। यह तो पूर्व में साधक था, इसका क्या अर्थ? कि अपने निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का अनुभव होने से पहले यह श्रद्धा थी कि मैं राग से रहित मेरी चीज़ है। राग को मैं ही करता था और राग को तोड़ने में भी मैं ही समर्थ हूँ। ऐसी पक्की श्रद्धा थी। 'अनुभव प्रकाश' में मैंने लिया है भाई! श्रद्धा को साधक कहा है और फिर सम्यग्दर्शन को साध्य कहा है। परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं कि श्रद्धा साधक हुई तो सम्यग्दर्शन कार्य होता है, ऐसा नहीं। इसमें लिखा है। समझ में आया? ऐई, भीखाभाई!

मुमुक्षु : जी प्रभु! आप कहते हो ऐसा ही है साहेब।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा करके वह व्यवहार स्थापित करते हैं। ऐसा कहते हैं कि निमित्त से होता है। यह हमारे होशियार व्यक्ति हैं। व्यापारी हैं न! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो तीन लोक के नाथ दिव्यध्वनि द्वारा कहते हों तो भी निमित्त से ज्ञान होता

है, ऐसा नहीं है और यहाँ निमित्त तो वह है और ज्ञान की पर्याय स्वयं से हुई है। उसकी अपेक्षा से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। जीव स्वयं अपने सम्यग्दर्शन निर्विकल्प प्रतीति करने में पर के ज्ञान की अपेक्षा भी रखता नहीं। आहाहा! देखो! ओहोहो! जीव का स्वरूप ही ऐसा है, ऐसा न माने और उल्टा माने तो मिथ्यात्व का पोषक है।

‘बिल्ली निकालते ऊँट प्रविष्ट हुआ।’ एक दृष्टान्त आता है न, समझ में आया? ओहोहो! हम करते हैं, महाव्रत पालते हैं। ऐसा करते हैं और ऐसा करते हैं। करते-करते हमारे धर्म हो जायेगा। तो वह तो ऐसा हुआ, मिंदडुं समझते हो न? बिल्ली। एक बुढ़िया थी। बिल्ली मर गयी थी। एक बुढ़िया थी। डोसी समझते हो? वृद्धा। वृद्धा महिला थी तो उसके मकान के पीछे वाडा था, वाडा। खाली जमीन। तो सामने दरवाजा खाली। लकड़ी की क्या कहलाती है? तो दरवाजा दिया था। तो उसमें एक बिल्ली मर गयी। वह महिला कंजूस। उसे विचार आया कि हरिजन को बिल्ली उठाने को कहूँगी तो पाँच सेर, दस सेर अनाज देना पड़ेगा। तो अन्दर चूल्हे में से राख निकालकर टोकरे में राख डाली और बिल्ली उसमें डालकर बाहर डालने गयी। हरिजन को तो देना पड़े। तो जहाँ बाहर डालने गई वहाँ दरवाजा-फाटक खुल्ला रह गया। दरवाजा अर्थात् लकड़ी का एक ऐसा... खुल्ला रह गया तो एक बड़ा ऊँट था और मरने की तैयारी थी और वह (बिल्ली को) डालने गयी, वहाँ ऊँट अन्दर गया। गया और अन्दर मर गया। नेमीचन्द्रजी!

यह हमारे काठियावाड़ में दृष्टान्त है। तुम्हारे भी होगा। बिल्ली निकालते ऊँट घुसा। है या नहीं, सर्वत्र दृष्टान्त तो होगा। हिन्दी में भी होगा हिन्दी। यह भाषा होगी दूसरी। खबर है? तुमको खबर नहीं। कोई दृष्टान्त ऐसे नहीं चलते? हमारे तो बहुत ही चलते हैं। हैं? बिल्ली निकालते ऊँट घुसा। ऊँट, ऊँट। वह ऊँट अन्दर घुस गया। अब वह जहाँ डालने जाये वहाँ यह.... अब? यह कोई उठाकर डालने नहीं जाया जाता। हरिजन को बुलाया। चार मण गेहूँ देने पड़ेंगे। एक प्याली या दो-चार सेर देने थे, उसके बदल चार मण। उसी प्रकार अज्ञानी अनादि से राग की मन्दता की क्रिया करता है और उसमें ऊँट प्रविष्ट हो गया है। यह मेरा है, ऐसा मिथ्यात्व का भाव पड़ा है। राग मन्द करने गया और कर्ता हुआ, मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु उसकी कुछ खबर नहीं। हम दया पालते हैं और महाव्रत पालते हैं। अमुक करते हैं। सामायिक करते

हैं। ऐसी राग की मन्दता करने गया और उसमें कुछ लाभ है, ऐसा माना, माना और मिथ्यात्व का ऊँट अन्दर प्रविष्ट हो गया। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा जो अनन्त संसार का बीज है। वह श्रद्धा अन्दर प्रविष्ट हुई, उसकी तो खबर नहीं। उसमें संसार में भटकने का कितना फल आयेगा! बात ऐसी है, भगवान! आहाहा!

यह कोई पक्षपात की बात नहीं। परमात्मा जैसी बात है, वैसी बताते हैं कुन्दकुन्दाचार्य। सर्वज्ञ ने कहा, वह मार्ग जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। कहते हैं जीवभाव को प्राप्त करता... भाव शब्द से विकारी और धर्म दोनों। पहुँचता होने से जीवभाव कर्म है,... वह जीव ही कार्य है, ऐसा। अथवा जीवभाव से स्वयं अभिन्न होने से जीव स्वयं ही कर्म है;... आत्मा ही सम्यग्दर्शन है, आत्मा ही मिथ्यात्व है, आत्मा ही चारित्र्य है, आत्मा ही केवलज्ञान है, आत्मा ही सिद्ध है, ऐसा कहते हैं। जो पर्याय प्रगट हुई, वह आत्मा ही है। यह तो मिथ्यात्व किया तो भी आत्मा ही है, ऐसा कहते हैं। जेठाभाई! मिथ्यात्व, वह आत्मा! आहाहा! आत्मा की पर्याय है या नहीं? आत्मा की पर्याय आत्मा है। ऐसा कहा न?

देखो न! अथवा जीवभाव से स्वयं अभिन्न होने से... मिथ्यात्वभाव किया या पुण्य में धर्म है, व्रत में धर्म है और व्रत करते-करते धर्म होगा, ऐसा मिथ्यात्वभाव और जीव दोनों अभिन्न हैं। अभिन्न होने से मिथ्यात्वभाव ही आत्मा है, बस। मिथ्यात्वभाव ही आत्मा है। समझ में आया? यह तीन बोल हुए।

अपने में से पूर्व भाव का व्यय करके... आत्मा ही पूर्व पर्याय का नाश करके, (नवीन) जीवभाव करता होने से... नवीन जीवपर्याय का, विकारी या धर्म की पर्याय का कर्ता हुआ। जीवद्रव्यरूप से ध्रुव रहने से... जीव वस्तुरूप से ध्रुव नित्यानन्द प्रभु है। जीव स्वयं ही अपादान है;... स्वयं से ही राग का नाश करके वीतरागी पर्याय प्रगट करता है। अथवा पूर्व के राग का नाश करके नया राग स्वयं से प्रगट करता है, ऐसा। समझ में आया? और पहली मिथ्याश्रद्धा है, उसका नाश करके नया मिथ्यात्व अपने आत्मा से प्रगट करता है। रतनचन्दजी! समझ में आया? आहाहा! यह पाँचवाँ बोल हुआ।

अपने को जीवभाव देता होने से जीव स्वयं ही सम्प्रदान हैं;... यह पाँचवाँ बोल।

अपने जीवभाव को देता होने से, भगवान आत्मा अपने में मिथ्यात्व करे, राग करे, द्वेष करे, विषय की वासना करे तो वह भाव करता हुआ अपने में रखता है। वह अपनी पर्याय में दान देता है। अपनी पर्याय को अपना आत्मा दान देता है। विकार करो तो विकार और धर्म करो तो धर्म। समझ में आया? हैं?

मुमुक्षु : गरीब लोगों को दान देने का मर्यादित हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देता है गरीब को? कोई गरीब है ही कहाँ? भगवान आत्मा परिपूर्ण प्रभु है। गरीब तो संयोगी चीज़ थोड़ी हो और न हो तो गरीब कहते हैं। गरीब-बरीब की उपमा देना वह भी आत्मा को शोभता नहीं। महाप्रभु है। बाहर का संयोग अल्प हो तो वहाँ गरीब हो गया? और संयोग अधिक हो तो सेठिया हो गया? ऐसा कौन कहता है? ऐई! लोग कहते हैं तो लोग तो चीखते हैं। लोग तो चिल्लाते हैं। लोगों को भान कहाँ है? समझ में आया? यहाँ तो ऐसी बात है। एक रतनचन्दजी थे। ऐसा कि लोग ऐसा मानेंगे, ऐसा कहेंगे। तो कहे लोग तो चिल्लाते हैं। छोड़ न अब अभी तुझे क्या काम है? सत्य क्या है, उसकी श्रद्धा कर न! दुनिया दुनिया के घर में रही। आहा!

अपने को जीवभाव देता होने से, जीव अपनी पर्याय में मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि करो तो भी अपने में रखता है। और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय स्वयं से करता है तो भी अपने में रखता है। बनाकर किसी को देता है, ऐसा नहीं है। **जीव स्वयं ही सम्प्रदान हैं;....**

छठवाँ बोल, अपने में अर्थात् अपने आधार से जीवभाव करता होने से... मिथ्यात्व भी आत्मा अपने आधार से करता है। कर्म के आधार से बिल्कुल नहीं। सम्यग्दर्शन भी अपने आधार से आत्मा करता है। देव-गुरु-शास्त्र के आधार से नहीं। यह कहते हैं न? उसमें है या नहीं? अपने आधार से जीवभाव करता हुआ, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ऐसी वीतरागी पर्याय, मोक्ष का मार्ग अपने आधार से होता है। निमित्त और देव-गुरु-शास्त्र के आधार से नहीं होता। आहाहा! सुरेन्द्रभाई! है या नहीं इसमें? पुस्तक रखी है या नहीं? नहीं रखी। गुजराती बुजराती नहीं होगी।

स्वयं ही अधिकरण है। देखो! जीव ही आधार है। आहाहा! अपनी वीतरागी या अज्ञान पर्याय को करने में जीव स्वयं ही आधार है। कोई दूसरा आधार-फाधार है नहीं। अभी श्रद्धा में तो इतना लो! इस श्रद्धा के बिना सम्यक्त्व सन्मुख होने की योग्यता भी उसमें नहीं है। समझ में आया?

इस प्रकार, पुद्गल कर्मोदयादिरूप से... देखो! कर्म जो जड़ है, उसमें उदय होना, कर्म का उपशम होना, कर्म का क्षय होना, क्षयोपशम होना, यह परिणत होने की क्रिया जड़ की स्वतन्त्र है। आत्मा यहाँ राग करता है तो वहाँ बन्धन की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग न हो तो बन्धन होता है? और ऐसा प्रश्न करते हैं न? परन्तु प्रश्न कहाँ है यहाँ। यहाँ तो राग करता है और वहाँ बन्धन स्वयं की—जड़ की पर्याय से होता है। देखो! कर्मोदयादि.... कर्म का उदय, कर्म का उपशम, कर्म का क्षयोपशम, कर्म का क्षायिक और कर्मबन्धादिरूप परिणमित। कर्म का बन्धन होना, कर्म की सत्ता रहना, कर्म की निर्जरा होना, परमाणु की निर्जरा झरना। यह पुद्गल की शक्ति से झरता है। आत्मा ने वीतराग पर्याय प्रगट की तो कर्म को झरना पड़ा, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

कर्म की निर्जरा अपने में होती है। अपने से वह स्वतन्त्र पर्याय में निर्जरा कर्म के कारण से होती है। सत्ता भी स्वयं के कारण से रही है। आत्मा ने मिथ्यात्व रखा है तो दर्शनमोहनीय की सत्ता रही है, आत्मा में राग-द्वेष है तो चारित्रमोहनीय की सत्ता रही है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

पुद्गल कर्मोदयादिरूप से... आदि है न? मूल पाठ में अकेले उदय की व्याख्या की है। व्यापक कहा, उदयादिरूप से या कर्मबन्धादिरूप से... गोम्मटसार में दस प्रकार है न? दस करण, बन्ध, सत्ता आदि। वह सब बन्ध, सत्ता, विसंयोजन, अपकर्षण, उत्कर्षण, स्थिति में कर्म का होना, वह कर्म की अपनी पर्याय से होता है। जीव ने यहाँ पुरुषार्थ किया है तो वहाँ होता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। वह अपनी पर्याय से बँधता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं ? कौन देता है ? किसी को नहीं देता। यह तो यहाँ कहते हैं। उसकी पर्याय उसमें है। उस पर्याय का करनेवाला, टालनेवाला और रहनेवाला पुद्गल है। वह नहीं, उसके साथ क्या सम्बन्ध है ? निकाचित तोड़ डालता है। नहीं आता ? धवला में आता है। निध्धत, निकाचित टूटनेयोग्य हो तो यहाँ सम्यग्दर्शन पाता है। तोड़ डालता है। हाथी के ऊपर जैसे सिंह की थाप पड़े तो हाथी चिल्लाहट मचा देता है, हाथी का लैंडा निकल जाता है।

उसी प्रकार आत्मा स्वयं अपने स्वभाव की गर्जना से जब जागता है तो कर्म उसके कारण से नाश हो जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! वीर प्रभु महाचैतन्य है, परन्तु खबर नहीं। रंक होकर, परन्तु रंक हुआ है परन्तु स्वयं से। कहते हैं, समझ में आया ? अपना दोष अपने से हो तो छोड़ने की ताकत अपने में रहे, परन्तु कर्म से दोष हुआ हो तो कर्म टले तो दोष टले। तो कर्म को उपदेश देना ? भाई ! निकल जा, इसे (जीव को) धर्म करना है। समझ में आया ? कहते हैं, पुद्गल की कर्मोदयादि, उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और कर्मबन्धादिरूप से, बन्ध, सत्ता, अपकर्षण, उत्कर्षण। कर्म की स्थिति में अल्प स्थिति होना, विशेष स्थिति होना, वह पुद्गल के स्वयं के कारण से है। आत्मा के कारण से बिल्कुल नहीं। **क्रिया में वास्तव में पुद्गल ही स्वयमेव छह कारकरूप से वर्तता है...** देखो ! यह क्रिया के कारक हैं न, क्रिया के ? इसलिए उसे अन्य कारकों की अपेक्षा नहीं... यह पुद्गल की बात की।

अब जीव की औदयिकादि, देखो ! अब यहाँ लिया। पाठ में एक उदय की बात है। जीव की उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक अपनी पर्याय करने में जीव स्वतन्त्र कर्ता, करण और साधन अपने में है। पर की कुछ अपेक्षा नहीं है। भाई ! शरीर निरोग हो तो धर्म हो सकता है। सामायिक में कब बैठे। शरीर ऐसा जीर्ण हो जाये, कमर टूटती हो। लो ! सेठ ! सामायिक हो सकती है ? ऐ भीखाभाई ! यह कहते हैं कि सामायिक वीतराग पर्याय प्रगट करना, उसमें शरीर की निरोगता हो तो हो सके, ऐसी बात नहीं है। भाई ! शरीर अच्छा हो तो, क्या कहलाता है ? पहला सुख यह निरोगी काया। शरीर साधन नहीं कहते पुरुषार्थसिद्धिउपाय में। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में कहा है। हाँ, शरीर धर्म

खलु साधनम्, वह साधन निमित्त से कथन है। साधन-फान है नहीं। अरे! गजब बात भाई! शरीराद्यं खलु धर्म साधनम्, कहते हैं न? आद्य धर्म और साधन और शरीर अच्छा हो तो, वैद्य जैसा कहे, यदि शरीर बराबर रहे तो मन अच्छा रहे, मन अच्छा रहे तो धर्म करने में सुविधा रहे। कहते हैं, सब भूल और अज्ञान है। समझ में आया?

वह भाई कहता था, वह वैद्य है न बड़ा। अहमदाबाद में। लाख रुपये की आमदनी। लाखों रुपये की आमदनी हो। हाँ, वह। वह कहता है कि यदि शरीर निरोगी हो और शरीर बराबर हो तो मन को भी ठीक पड़े। और स्वच्छता रहने से धर्म की स्फूर्ति रहेगी। जेठाभाई! धूल में भी नहीं। सुन तो सही! सातवीं नरक के नारकी, आहाहा! इतनी पीड़ा सर्दी! सम्यग्दर्शन समय में प्रगट करते हैं। वहाँ पर की अपेक्षा नहीं है। सातवें नरक का नारकी, रव-रव नरक की स्थिति में पड़ा है। जिसकी सर्दी की पीड़ा, लाख मण लोहे के गोले को लुहार का निरोगी लड़का छह महीने तक लोहे को टीपे, ऐसे टीपते-टीपते मजबूत हो, ऐसा छह महीने तक टीपे। टीपे कहते हैं न वहाँ। ऐसा लोहा, उसे सातवें नरक की सर्दी में यदि लोहा छोड़ दे, तो जैसे अग्नि में घी का पिण्ड पिघल जाये, वैसे पिघल (बिखर) जाये। ऐसी सर्दी है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ इतनी सर्दी कि घी है न, घी। ऐसा कठोर घी हो, उसे अग्नि पर रखो तो पानी जैसा हो जाता है, वैसे ही लाख मण का गोला उस सर्दी में एक सेकेण्ड में पानी हो जाता है। पानी हो जाए, ऐसी सर्दी वहाँ है। उसमें अनन्त बार रहा है। और उसमें ही वह जीव समकित प्राप्त करता है। कुछ ठीक हो तो पाता है, ऐसी अपेक्षा वहाँ है नहीं। समझ में आया? कि शरीर निरोग हो और ऐसा हो और खाने-पीने में कुछ ठीक हो, खाने-पीने की सुविधा बिना धर्म कैसे होगा? समझ में आया? इस बात में कुछ सत्य है नहीं।

जीव की औदयिकादि भावरूप से... पर्याय से परिणमने की क्रिया में, पर्याय में परिणमने की क्रिया में, सम्यग्दर्शन होने की क्रिया में, मिथ्यात्व होने की क्रिया में, चारित्र होने की क्रिया में, वास्तव में जीव स्वयं ही छह कारकरूप से वर्तता है... जीव स्वयं वर्तता है। पर की अपेक्षा है नहीं। इसलिए उसे अन्य कारकों की अपेक्षा नहीं है। लो! वहाँ निमित्त की अपेक्षा है नहीं। निश्चय में ऐसी बात है। महासिद्धान्त है, महासिद्धान्त।

पुद्गल की और जीव की उपरोक्त क्रियाएँ एक ही काल में वर्तती हैं... जीव अपनी पर्याय में राग करता है और कर्म में चारित्रमोह की पर्याय उसके कारण से चारित्रमोह की पर्याय बनती है। एक काल में दोनों है। परन्तु उस पुद्गल की क्रिया का कर्ता जीव नहीं और जीव के राग का कर्ता पुद्गल की पर्याय नहीं। समझ में आया? कहाँ गया तुम्हारा दिलीप नहीं आया? हैं? समझ में आया? एक ही काल में वर्तता है। जीव में विकार की पर्याय जिस समय में वर्तती है, उसी समय में चारित्रमोह की पर्याय जड़ में जड़ के कारण वर्तती है, तथापि एक-दूसरे के कर्ता-फर्ता है नहीं। आहाहा! ऐसे कथन पड़े हैं, वाँचे, परन्तु विचार नहीं करते। 'वाँचे पण नहीं करे विचार, वह समझे नहीं सघळो सार।'

तथापि पौद्गलिक क्रिया में वर्तते हुए पुद्गल के छह कारक जीवकारकों से बिल्कुल भिन्न और निरपेक्ष हैं... हैं? भिन्न और निरपेक्ष है, पर की अपेक्षा है नहीं। लो! तथा जीवभावरूप क्रिया में वर्तते हुए जीव के छह कारक पुद्गलकारकों से बिल्कुल भिन्न और निरपेक्ष हैं। आहाहा! एक-एक समय की पर्याय अवस्था आत्मा स्वतन्त्र करता है। परमाणु की पर्याय परमाणु से स्वतन्त्र है। किसी की कुछ.... धर्मास्ति आदि छहों द्रव्य तो है। चार तो अरूपी है। उसमें कोई गड़बड़ करता नहीं। समझ में आया? परन्तु इन दो में गड़बड़—पुद्गल और जीव।

हमने विकार किया तो कर्मबन्धन होना पड़ा न? खोटी बात है, यह ऐसा कहते हैं। कर्म तो पुद्गल की पर्याय में बन्धन होने की योग्यता से बँधना पड़ा है। विकार किया तो बँधना पड़ा है, ऐसा है नहीं। वस्तु में ऐसा है नहीं। कोई वस्तु किसी के आधीन-आधीन है नहीं। वास्तव में किसी द्रव्य के कारकों को... अब छहों द्रव्य लिये। कोई अन्य द्रव्य के कारकों की अपेक्षा नहीं होती। लो! समझ में आया? यह अधिकार पूरा हुआ। अब १५४, वहाँ से लेना है। गाथा १५४। मोक्षमार्ग का अधिकार है।

गाथा - १५४ पर प्रवचन

मोक्षमार्ग का अधिकार है। गाथा १५४ है।

अब मोक्षमार्गप्रपंचसूचक चूलिका है। है ? प्रपंच अर्थात् विस्तार। प्रपंच का अर्थ विस्तार। मोक्षमार्ग के विस्तार के सूचकरूपी यह चूलिका अर्थात् अन्त में स्पष्ट करने की बात कहते हैं। नीचे लिखा है। मोक्षमार्गप्रपंचसूचक—मोक्षमार्ग का विस्तार। प्रपंच का अर्थ विस्तार। प्रपंच का अर्थ कुछ दूसरा नहीं। विस्तार है। बतलानेवाली मोक्षमार्ग का विस्तार से कथन करनेवाली यह चूलिका। चूलिका के अर्थ के लिए यह टिप्पण पहले कह गये हैं। देखो! अब यहाँ।

जीवसहावे णाणं अप्पडिहदंसणं अणणमयं।

चरिय च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणिये ॥१५४॥

टीका :- यह, मोक्षमार्ग के स्वरूप का कथन है। मोक्षमार्ग का स्वरूप क्या है, उसका कथन। जीवस्वभाव में नियत चारित्र वह मोक्षमार्ग है। देखो! अब यहाँ क्या कहते हैं ?

भगवान आत्मा अब स्वभाव क्या, वह बाद में कहेंगे। जीव का स्व-भाव शाश्वत् है, ज्ञान और दर्शन उपयोग, हों। ज्ञान और दर्शन जो जीव में शाश्वत् स्वभाव है। उसमें नियत निश्चयचारित्र, उसमें लीनता होना, वह मोक्षमार्ग है। पंच महाव्रत का विकल्प आदि मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

जीव स्वभाव में निश्चयचारित्र, वह मोक्षमार्ग है। अट्टाईस मूलगुण पालना और पंच महाव्रत पालना... यह अब लोग कहते हैं—कुन्दकुन्दाचार्य ने अट्टाईस मूलगुण पालन किये थे। पंच महाव्रत पालन किये थे। शास्त्र में है। वह तो व्यवहारनय का कथन है। व्यवहारनय के लक्षण ऐसे हैं कि है, उससे दूसरे प्रकार से कहना, वह व्यवहार का लक्षण है, उल्टा। यह चार आते हैं न ? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आते हैं। अन्यथा कहना, वह व्यवहार का कथन है।

व्यवहार ऐसा कहता है कि मुनि पंच महाव्रत पालते हैं, अट्टाईस मूलगुण पालते

हैं, अर्थात् ऐसा है नहीं। परन्तु उस भूमिका में ऐसा विकल्प है, उसे पालते हैं ऐसा व्यवहारनय से कथन है। पाले तो राग की रक्षा करना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि तो राग से, व्यवहार से मुक्त है। तो राग को पालना... मुक्त है, उसे पालना? समझ में आया?

कहते हैं कि **जीव स्वभाव में....** भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शन-दृष्टा, ऐसा त्रिकाली भगवान जीव का स्वभाव, उसमें **नियत....** लीन होना। नियत निश्चय या लीन **चारित्र वह मोक्षमार्ग है।** देखो! चारित्र से पहले दर्शन-ज्ञान उसमें आ गये। यहाँ चारित्र मोक्ष का मार्ग बतलाना है न? समझ में आया? क्योंकि चारित्र, वह मोक्ष का मार्ग है। चारित्र के कारणरूप पहले सम्यग्दर्शन कारण भले हो। परन्तु धर्म का बीज मूल सम्यग्दर्शन है। परन्तु धर्म है चारित्र। समझ में आया?

आता है या नहीं, वह 'दंसण मूलो धम्मो', 'चारित्तम् खलु धम्मो'। यह आता है या नहीं? उसका अर्थ क्या हुआ? धर्म अर्थात् चारित्र, वीतरागी निर्दोष दशा। आत्मा में ज्ञान-दर्शन स्वभाव है, उसमें लीनता वीतरागी दशा, उसका नाम परमात्मा चारित्र कहते हैं। वह चारित्र मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

जीवस्वभाव में नियत चारित्र वह मोक्षमार्ग है। देखो! यहाँ चारित्र को मोक्षमार्ग कहा। क्योंकि दंसण मूलो धम्मो, धर्म वह चारित्र परन्तु उसका मूल है सम्यग्दर्शन। तब वे कहते हैं न कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान धर्म नहीं है, इसलिए धर्म तो चारित्र है। परन्तु कौन सा चारित्र? कितने ही पण्डित लोगों का पत्र में बहुत ही आता है। देखो! चारित्र को धर्म कहा। और चारित्र का भेद वह पंच महाव्रत, अट्टाईस मूलगुण भेद है। श्रावक के भेद बारह व्रत है और मुनि के पाँच महाव्रत भेद है। चारित्र के दो भेद हैं। वह तो व्यवहार क्रियाकाण्ड की बात है। उसे चारित्र नहीं कहते। बन्ध का कारण है, उसे व्यवहार कहते हैं। पालते हैं, ऐसा व्यवहारनय का कथन है।

जीव स्वभाव में.... आहाहा! कैसी बात है? समझे? पहले कुछ आया था २०६ पृष्ठ में। हाँ, बराबर है। मार्ग वास्तव में संवर है। ऐसा लिया था न? १४१ गाथा। **मार्ग वास्तव में संवर है....** १४१ गाथा। २०६ पृष्ठ पर है। है? नीचे। **मार्ग वास्तव में संवर**

है.... यहाँ चारित्र कहा, वहाँ संवर कहा। दोनों एक ही बात हैं। २०६ (पृष्ठ) और दूसरा २६६ (पृष्ठ) है। (१७३ गाथा) मार्ग परमवैराग्य करने के प्रति ढलती पारमेश्वरी परम आज्ञा (अर्थात् परम वैराग्य करने की परमेश्वर की परम आज्ञा); उसकी प्रभावना अर्थात् प्रख्यापन द्वारा अथवा प्रकृष्ट परिणति द्वारा उसका समुद्योत करना। (परम वैराग्य करने की जिनभगवान की परम आज्ञा की प्रभावना है।) इसका नाम चारित्र है। आहाहा! है? १७३ गाथा। अन्तिम है न मार्ग!

मार्ग परमवैराग्य करने की, राग से बिल्कुल उदास होकर अत्यन्त वीतरागी स्वभाव में रमना, उसे यहाँ मार्ग कहते हैं, उसे संवर कहते हैं, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन मार्ग! निश्चय की वास्तविक तत्त्व समझने में बड़ी गड़बड़। पारमेश्वरी परम आज्ञा यह है। चारित्र में रमना, वह परमेश्वर की आज्ञा है। समझ में आया? बाहर का वेश धारण करे, नग्न हो और क्रिया हुई, हो गया धर्म, चारित्र है या नहीं पण्डितजी! उसमें यह लिखा है। तीन जगह है। संवर मार्ग है। यहाँ चारित्र मार्ग है, वहाँ परम वैराग्य, वैराग्य का अर्थ राग से बिल्कुल पृथक् पड़कर स्वभाव में आ जाना, वह वैराग्य है। समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर भगवान आत्मा के स्वभाव में आ जाना, इसका नाम परम वैराग्य है। स्त्री-पुत्र छोड़े और वैराग्य कहे, वह वैराग्य वैराग्य है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, देखो! १५४। जीवस्वभाव वास्तव में ज्ञान-दर्शन हैं... पहली व्याख्या तो चारित्र की की है कि चारित्र किसे कहते हैं और मोक्षमार्ग किसे कहते हैं। भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प, महाव्रत आदि के विकल्प जीवस्वभाव नहीं। वह तो विकार विभाव है। समझ में आया? यह तो त्रिकाल भगवान आत्मा वस्तु त्रिकाल अविनाशी है, ऐसा ज्ञान, जानना और देखना, वह अविनाशी त्रिकाल स्वभाव है।

वस्तु अविनाशी है, ऐसा उसका जानना-देखना स्वभाव, वह त्रिकाल अविनाशी है। ऐसा जीवस्वभाव वास्तव में ज्ञान और दर्शन है। पंच महाव्रत का विकल्प वह जीवस्वभाव नहीं; दया-दान का भाव जीवस्वभाव नहीं; पूजा-बूजा का भाव जीवस्वभाव नहीं। अरे! भारी कठिन काम! वास्तव में ज्ञान-दर्शन हैं क्योंकि वे (जीव से) अनन्यमय हैं। देखो!

भगवान आत्मा और जानन-देखन स्वभाव, ये दोनों अनन्य हैं। अन्य-अन्य, ऐसा नहीं। ज्ञान और दर्शन और आत्मा दोनों अनन्य है। अन्य-अन्य नहीं परन्तु अनन्य है। अन्य-अन्य नहीं परन्तु अनन्य है—एकमेक है। जैसे उष्णता और अग्नि अनन्य है, वैसे जीव के ज्ञान-दर्शन स्वभाव और जीव अनन्य है। उष्णता अन्य है और अग्नि अन्य है, ऐसा नहीं है; उसी प्रकार जीव-भगवान आत्मा और जानन-देखन स्वभाव दोनों अनन्य है, एक ही है। दोनों अन्य-अन्य है नहीं। अन्य-अन्य नहीं तो अनन्य है। समझ में आया ?

जीवस्वभाव वास्तव में ज्ञान-दर्शन हैं क्योंकि वे (जीव से) अनन्यमय हैं। ऐसा। क्योंकि आत्मा जैसे त्रिकाली है। आत्मा त्रिकाली स्वभाववान और ज्ञान-दर्शन त्रिकाली स्वभाव। ज्ञान-दर्शन त्रिकाली गुण। भगवान आत्मा गुणी। गुण और गुणी अनन्य है, एकमेक है। भिन्न है नहीं। ऐसे ज्ञान-दर्शन में लीनता होना, इसका नाम चारित्र है। अरे! गजब बात! समझ में आया ?

स्वआश्रित धर्म, अपने गुण के आश्रय से धर्म है। आहाहा! चारित्र की व्याख्या भी न समझे। लाठी में दीक्षा होनेवाली है न! हैं? दो होनेवाली है। यहाँ का पढ़ते हैं। आत्मधर्म पढ़ते हैं। तथापि उसे ऐसी विपरीतता घुस गयी हो न कि अपने तो दीक्षा ले ली। हो गया फिर तो, बहुत समय मिले और निवृत्ति लूँगा। धूल में यह तो मिथ्यात्व का पोषक है। क्षण-क्षण में मिथ्यात्व का पोषण, मिथ्यात्व की पुष्टि और वृद्धि होती है। आहाहा!

कहते हैं, **ज्ञान-दर्शन का (जीव से) अनन्यमयपना होने का कारण यह है कि... देखो! आहाहा! भगवान आत्मा और ज्ञान-दर्शन का अनन्यपना अर्थात् अन्यपना नहीं है, उसका कारण यह है कि विशेष चैतन्य और सामान्य चैतन्य जिसका स्वभाव है,... देखो! विशेष चैतन्य वह ज्ञान; सामान्य चैतन्य, वह दर्शन, वह तो जीव का स्वभाव है। समझ में आया? देखो! नीचे है। विशेष चैतन्य, वह ज्ञान है और सामान्य चैतन्य, वह दर्शन है। कुछ समझ में आया ?**

आत्मा है न वस्तु, जैसे कि शक्कर है न, शक्कर, वह वस्तु। तो शक्कर में जो मिठास और सफेदाई है, वह उसका स्वभाव है। शक्कर है शक्कर और उसकी मिठास

और सफेदाई उसका स्वभाव। मिठास और सफेदाई शक्कर से अनन्य है। अन्य-अन्य नहीं है। इसी प्रकार भगवान आत्मा... अलौकिक बात है। वस्तु का स्वभाव जानन-ज्ञान, वह विशेष चेतना है और सामान्य दर्शन, दर्शन है। दर्शन और ज्ञान दो उसका स्वभाव है। विशेष चैतन्य और सामान्य चैतन्य जिसका स्वभाव—आत्मा का वह स्वभाव है। ऐसे जीव से वे निष्पन्न हैं... ज्ञान-दर्शन ऐसे आत्मा से प्राप्त है। कोई बाहर से प्राप्त है नहीं। आहाहा! गजब! यह तो अभी गुण की बात करते हैं, हों! जीव से निष्पन्न-प्राप्त है। जीव द्वारा ज्ञान-दर्शन रचे गये हैं। रचित का अर्थ—जीव से वह ज्ञान-दर्शन है, बस इतना। रचित अर्थात् कहीं नये रचित हैं, ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा जीव—आत्मा और जानन-देखन उसका स्वभाव, वह आत्मा से दर्शन-ज्ञान रचित, भाषा देखो! रचित का अर्थ आत्मा से ही ज्ञान-दर्शन है। आत्मा से ही ज्ञान-दर्शन है। कोई पर के कारण से ज्ञान-दर्शन है, ऐसा है नहीं। त्रिकाली स्वभाव की बात है, हों! अब जीव के स्वरूपभूत ऐसे उन ज्ञान-दर्शन में... अब विशेष लेते हैं। ओहोहो! क्या टीका! जीव के स्वरूपभूत, भगवान आत्मा के स्वरूपभूत, स्वरूपरूप, ऐसे उन ज्ञान-दर्शन में नियत... ऐसा जानन-देखन जो स्वभाव, उसमें नियत=अवस्थित, स्थित, स्थिर, दृढरूप से रहा हुआ।

अवस्थित ऐसा जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वृत्तिमय अस्तित्व, वृत्ति=वर्तना;... क्या कहते हैं? देखो! जीव के स्वरूपभूत ऐसे... भगवान का त्रिकाली स्वरूप ऐसा जानन-देखन स्वभाव, वह उसका त्रिकाली स्वरूप है। उस स्वरूप में नियत-अवस्थित ऐसा.... यह पर्याय हुई। ज्ञान-दर्शन वह त्रिकाली गुण, आत्मा गुणी। आत्मा द्रव्य, वह गुणी; ज्ञान-दर्शन गुण और उसमें स्थित रहना, वह चारित्र पर्याय। समझ में आया? अरे! व्याख्या भी सुनी न हो!

यह लोग छोड़कर महाव्रत लिया, चारित्र लिया, उसे यह सब माने। झवेरचन्दभाई! ऐ झवेरचन्दभाई! मूल प्रमुख हो सामने आगे, पश्चात्। नहीं वीरचन्दभाई! यह सेठिया सामने और दूसरी कुछ खबर तो होती नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पर के लड़के को मुँड़ने में भी यह भान नहीं होता। उसने चारित्र लिया। लो! दीक्षा ली। परन्तु क्या चारित्र! कहना किसे, इसकी तो खबर नहीं। हैं? यहाँ तो कठिन धर्म है। महाव्रत विकल्प से धर्म नहीं होता। आत्मा के ज्ञान-दर्शन और एकाग्र हो, उसमें धर्म है, ऐसा कठोर धर्म है। सस्ता अर्थात् ऐसा कहते हैं कि महाव्रत बहाव्रत लिये बिना धर्म होता है, अच्छा है। अरे भगवान! क्या करे? आहाहा! कितनी बात सिद्ध की है।

एक ओर तो ऐसा कहा कि जीवस्वभाव में नियत चारित्र। तो वह स्वभाव कौन सा? कि ज्ञान और दर्शन। क्योंकि ज्ञान-दर्शन स्वभाव से भगवान आत्मा अनन्य अर्थात् अन्य-अन्य नहीं। क्यों अनन्यपना है? कि विशेष चैतन्य और सामान्य चैतन्य उसका स्वभाव है। विशेष चैतन्य ज्ञान और सामान्य चैतन्य दर्शन उसका स्वभाव उसका है। ऐसे जीव से निष्पन्न है। जाननपना और देखनपना जो स्वभाव, वह जीव से हुआ है। पर से नहीं हुआ। आहाहा! अब जीव के स्वरूपभूत बड़ी टीका परन्तु... ओहोहो! पाठ में तो ऐसा है न, 'जीव सहायं णाणं अप्पडिहद्दंसणं अण्णणमयं' पहला श्लोक है यह। 'चरियं च तेसु लियदं अत्थितमळिंदियं भणियं' आहाहा!

कहते हैं कि अब जीव के स्वरूपभूत ऐसे उन ज्ञान-दर्शन में नियत-अवस्थित, स्थिर, दृढ़। ऐसा जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वृत्तिमय अस्तित्व... त्रिकाली ज्ञान-दर्शन सामान्य वह ध्रुव। उसमें नयी पर्याय उत्पन्न होना और पूर्व की पर्याय व्यय होना, उस चारित्रगुण में उसे उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहते हैं।

फिर से, जीव जो है, वह त्रिकाली अविनाशी। उसका सामान्य दर्शन और विशेष चैतन्य ज्ञान, यह दोनों त्रिकाली अविनाशी स्वभाव। उस स्वभाव में लीनता करना। तो लीनता करना, वह उत्पाद-व्यय हो गये। ध्रुव जो ज्ञान-दर्शन है, वह ध्रुव रहा। उसका अस्तित्व ध्रुव रहा। सत्ता। और उसमें लीन होना, तो पूर्व की पर्याय का व्यय और नयी पर्याय का उत्पाद, ऐसा सत्ता का उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप चारित्र है, उसे चारित्र कहते हैं। उसे अवसर आया कि भाई! यह गुरुगम बिना समझ में नहीं आता। क्या कहते हैं? देखो!

जीव के स्वरूपभूत... अर्थात् जीव है, वहाँ स्वरूप ऐसा ही है। ऐसे उन ज्ञान-

दर्शन में नियत-अवस्थित ऐसा... ज्ञान-दर्शन में नियत। ज्ञान-दर्शन ध्रुव है और नियत पर्याय है।

जीव है, वह द्रव्य है। और ज्ञान-दर्शन त्रिकाली उसका ध्रुव स्वभाव। उसमें नियत एकाग्रता होना, वह पर्याय है। वह पर्याय उत्पाद-व्यय और ध्रुव सहित हो गयी। त्रिकाली ज्ञान-दर्शन स्वभाव वह ध्रुव और चारित्र की नयी पर्याय उत्पन्न हुई, पूर्व की पर्याय का व्यय, उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अस्तित्व चारित्र के गुण की तीन बात है। आहाहा! भारी सूक्ष्म भाई! यह तो पंचास्तिकाय है।

उत्पाद-व्यय अर्थात् भगवान आत्मा वस्तु है, अस्ति तत्त्व है, सत्तावान पदार्थ है। उसका ज्ञान-दर्शन त्रिकाली सत्ता स्वभाव है, वह ध्रुव है और उसमें लीनता करना, वह उत्पाद-व्यय है। चारित्र की पर्याय का उत्पन्न होना और पूर्व की पर्याय का व्यय होना, यह चारित्र अस्तित्व है, उसमें तीन लागू पड़ते हैं। त्रिकाली ध्रुव, नया उत्पन्न हुआ उत्पाद, पूर्व की पर्याय का व्यय। ऐसे चारित्र के अस्तित्व में उत्पाद-व्यय-ध्रुव रहते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म है सूक्ष्म।

वृत्तिमय-अस्तित्वमय है न। वर्तना, होना, ऐसा वृत्ति-अस्तित्व। जानन-देखन स्वभाव, उसका रहना और उसमें, उस राग की उत्पत्ति या राग के नाश की कोई बात यहाँ है नहीं। स्वरूप की, चारित्र, ज्ञान, दर्शन जो स्वभाव है, उसमें लीन होना, यह उत्पाद हुआ। और उस चारित्र की पूर्व की पर्याय वर्तमान में नाश होती है, यह व्यय हुआ। ध्रुव कायम है—ज्ञान-दर्शन यह ध्रुव हुआ। ऐसे अस्तित्व की सत्ता में तीन बोल चारित्र में होते हैं। गजब बात, भाई! आहाहा! समझ में आया? यह चारित्र मोक्ष का मार्ग है।

जो कि रागादिपरिणाम के अभाव के कारण... पंच महाव्रत आदि का विकल्प जो राग है, उसका उसमें अभाव है। रागादिपरिणाम के अभाव के कारण अनिन्दित है... राग तो निन्दित है। आहाहा! चारित्र है; वही मोक्षमार्ग है। ऐसे चारित्र को यहाँ मोक्षमार्ग कहा है। इसका विशेष स्पष्टीकरण आयेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)